'History is the story of deeds
and achievements of men
living in Societies.'

—*Henry Pyrrene.*

राजहंस की सुप्रसिद्ध पाठ्य पुस्तकें

इन्टरमीडियेट, हायर सेकन्डरी व प्री० यूनिवर्सिटी कक्षाओं के लिये

१ अर्थशास्त्र की रूप-रेखा (भाग १ व २) —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
२ कृषि अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
३. वाणिज्य अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
४. मुद्रा तथा बैंकिंग की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
*५. मध्य-प्रदेश हायर सेकन्डरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
६ बिहार हायर सेकन्डरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
७ दिल्ली हायर सेकन्डरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
८ राजस्थान प्री० यू० अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
९. बिहार प्री० यू० अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप शर्मा तथा प्रो० एम० के० शर्मा
१० नागरिक शास्त्र के मूल सिद्धान्त —प्रो० [illegible] मित्तल
११ भारतीय संविधान और नागरिक जीवन —प्रो० [illegible] मित्तल
१२ भारत का इतिहास (भाग १ व २) —डा० दया प्रकाश
१३. हायर सेकन्डरी भारत का इतिहास —डा० दया प्रकाश
१४. आधुनिक भौतिकी (भाग १ व २) —प्रो० के० डी० शर्मा तथा प्रो० के० पी० गोयल
१५ कृषि भौतिकी एवम् जलवायु विज्ञान —प्रो० के० डी० शर्मा तथा प्रो० के० पी० गोयल
१६ आधुनिक प्रयोगिक भौतिक विज्ञान —प्रो० गुलाब शर्मा
१७ हायर सेकन्डरी प्रयोगिक भौतिक विज्ञान —प्रो० गुलाब शर्मा
१८ आधुनिक अकार्बनिक रसायन शास्त्र —डा० एम० एन० मुकर्जी
१९ आधुनिक प्रयोगिक रसायन शास्त्र —प्रो० [illegible]
२० हायर सेकन्डरी प्रयोगिक रसायन शास्त्र —प्रो० [illegible]
२१ कृषि प्रयोगिक रसायन शास्त्र —प्रो० [illegible]
२२ कृषि प्रयोगिक भौतिकी —प्रो० गुलाब शर्मा
२३ कृषि प्रयोगात्मक जन्तु विज्ञान —प्रो० [illegible] मिश्र
२४ कृषि प्रयोगात्मक वनस्पति विज्ञान —प्रो० [illegible] मिश्र
२५ प्रायोगिक जन्तु शास्त्र —प्रो० [illegible] मिश्र
२६ प्रयोगात्मक वनस्पति विज्ञान —प्रो० [illegible] मिश्र
२७ [illegible] रसायन गणित —प्रो० [illegible]
२८ हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास —प्रो० [illegible]
२९ चुने हुए कवि और लेखक —प्रो० [illegible]
३० [illegible] हिन्दी निबन्ध —प्रो० [illegible]
३१ [illegible] —[illegible]
३२ [illegible] —[illegible]

राजहंस प्रकाशन मन्दिर, मेरठ।

नवीन पाठ्यक्रमानुसार

भारत का इतिहास

[सन् १५२६ ई० से अब तक]

तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, दिल्ली, पंजाब आदि प्रदेशो
के विभिन्न बोर्डों व विश्वविद्यालयों द्वारा इण्टरमीडिएट, हायर
सेकेण्ड्री तथा प्री-यूनिवर्सिटी एवम् त्रि-वर्षीय डिग्री कक्षाओं
के लिये निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार

लेखक

डा० दया प्रकाश

एम० एम० एच० कॉलिज, गाजियाबाद ।

। : भारत का इतिहास, हा० सै० भारत का इतिहास, प्राचीन भारत,
मध्यकालीन भारत, मुगलकालीन भारत, आधुनिक भारत
भारतीय संस्कृति का इतिहास आदि ।

ूर्णतया संशोधित तथा परिवर्द्धित सप्तम् संस्करण १९६६

प्रकाशक

राजहंस प्रकाशन मन्दिर

रामनगर, मेरठ (उ० प्र०)

]

[मूल्य रु० ७·५०

राजहंस की सुप्रसिद्ध पाठ्य पुस्तकें

इण्टरमीडियेट, हायर सेकन्डेरी व प्री० यूनिवर्सिटी कक्षाओं के लिये

१ अर्थशास्त्र की रूप-रेखा (भाग १ व २) —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
२ कृषि अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
३. वाणिज्य अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
४. मुद्रा तथा बैंकिंग की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
५. मध्य-प्रदेश हायर सेकन्डेरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
६. बिहार हायर सेकन्डेरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
७ दिल्ली हायर सेकन्डेरी अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
८. राजस्थान प्री० यू० अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
९. बिहार प्री० यू० अर्थशास्त्र की रूप-रेखा —प्रो० आनन्द स्वरूप गर्ग तथा प्रो० एस० के० गर्ग
१०. नागरिक शास्त्र के मूल सिद्धान्त —प्रो० नेमिशरण मित्तल
११ भारतीय संविधान और नागरिक जीवन —प्रो० नेमिशरण मित्तल
१२. भारत का इतिहास (भाग १ व २) —डा० दया प्रकाश
१३. हायर सेकन्डेरी भारत का इतिहास —डा० दया प्रकाश
१४. माध्यमिक भौतिकी (भाग १ व २) —प्रो० जे० सी० गर्ग तथा प्रो० जे० पी० गोयल
१५ कृषि भौतिकी एवम् जलवायु विज्ञान —प्रो० जे० सी० गर्ग तथा प्रो० जे० पी० गोयल
१६ माध्यमिक प्रयोगिक भौतिक विज्ञान —प्रो० गुरदत्त शर्मा
१७ हायर सेकन्डेरी प्रयोगिक भौतिक विज्ञान —प्रो० गुरदत्त शर्मा
१८. माध्यमिक प्रयोगिक रसायन शास्त्र —डा० एम० एल० मुकर्जी
१९ माध्यमिक प्रयोगिक रसायन शास्त्र —प्रो० जयकृष्ण बत्रा
२०. हायर सेकन्डेरी प्रयोगिक रसायन शास्त्र प्रो० जयकृष्ण बत्रा
२१. कृषि प्रयोगिक रसायन शास्त्र —प्रो जयकृष्ण बत्रा
२२. कृषि प्रयोगिक भौतिकी —प्रो० गुरदत्त शर्मा
२३ कृषि प्रयोगात्मक जन्तु विज्ञान —प्रो० शास्त्री डी० विमल
२४ कृषि प्रयोगात्मक वनस्पति विज्ञान —प्रो० शास्त्री डी० विमल
२५. प्रयोगिक प्राणी शास्त्र —प्रो० शास्त्री डी० विमल
२६. प्रयोगात्मक वनस्पति विज्ञान —प्रो० शास्त्री डी० विमल
२७. मौलिक रसायन गणित —प्रो० जयकृष्ण बत्रा
२८. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास प्रो० आर० एन० गौड़
२९. चुने हुए कवि और लेखक —प्रो० वेदभानु आर्य
३०. राजहंस हिन्दी निबन्ध प्रो० आर० एन० गौड़
३१. राजहंस इङ्गलिश ऐसेज —प्रो० रघुनन्दन तिलक
३२. राजहंस जनरल इङ्गलिश —प्रो० एम० के० प्रेम

राजहंस प्रकाशन मन्दिर, मेरठ ।

नवीन पाठ्यक्रमानुसार

भारत का इतिहास

[सन् १५२६ ई० से अब तक]

...र प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, दिल्ली, पंजाब आदि प्रदेशों
के विभिन्न बोर्डों व विश्वविद्यालयों द्वारा इण्टरमीडिएट, हायर
सेकेण्ड्री तथा प्री-यूनिवर्सिटी एवम् त्रि-वर्षीय डिग्री कक्षाओं
के लिये निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार

लेखक

डा० दया प्रकाश

एम० एम० एच० कॉलिज, गाजियाबाद ।

...ता : भारत का इतिहास, हा० सै० भारत का इतिहास, प्राचीन भारत,
मध्यकालीन भारत, मुगलकालीन भारत, आधुनिक भारत
भारतीय संस्कृति का इतिहास आदि ।

पूर्णतया संशोधित तथा परिवर्द्धित सप्तम् संस्करण १९६६

प्रकाशक
राजहंस प्रकाशन मन्दिर (रजि०)
मेरठ (उ० प्र०)

तार : 'राजहंस'
फोन : कार्यालय ३२५८
निवास ३३५८

भारत का इतिहास	पुस्तक की प्रगति	
प्रारम्भ से १५२६ तक ६·५० रु०	प्रथम संस्करण	१६५८
१५२६ से अब तक ७·५० रु०	द्वितीय संस्करण	१६६०
प्रारम्भ से १७०७ तक ८·०० रु०	तृतीय संस्करण	१६६१
१७०७ से अब तक ५·५० रु०	चतुर्थ संस्करण	१६६२
प्रारम्भ से १२०६ तक ५·५० रु०	पंचम संस्करण	१६६३
	षष्ठ संस्करण	१६६४
	सप्तम् संस्करण	१६६६

मूल्य सात रुपये पचास पैसे मात्र

मुद्रक
राजहंस प्रेस,
मेरठ।

सप्तम् संस्करण की भूमिका

ाहास के योग्य तथा अनुभवी प्राध्यापकों के सामने अल्प समय में ही 'भारत
' का सप्तम् संस्करण प्रस्तुत करते हुये मुझे बड़ी प्रसन्नता है। पुस्तक के
रण का इतना शीघ्र होना इस बात का प्रतीक है कि पुस्तक पाठकों में
प्रिय हुई है और उस अभाव (Vaccum) की पूर्ति कर रही है जो पर्याप्त
रा आ रहा था। मैं उन समस्त महानुभावों का आभारी हूँ जिन्होंने इसको
ने में सहयोग प्रदान किया है।

भिन्न बोर्डों और विश्वविद्यालयों द्वारा प्री० यूनिवर्सिटी, हायर सेकण्डरी
मीडियेट कक्षाओं के लिये निर्धारित पाठ्य-क्रम के आधार पर यह पुस्तक
है। पुस्तक लिखने समय इतिहास की इस परिभाषा "इतिहास एक कहानी
ऐसी कहानी नहीं जो कल्पना पर आश्रित हो, वरन् इतिहास उस कहानी
ई जो तथ्यों के आधार पर लिखी गई हो। कल्पना अथवा कुछ सत्य और
पर आधारित कहानी तो केवल कहानी रह जायगी, इतिहास नहीं" का
ा पालन किया है। जहाँ तक सम्भव हो सका है इस पुस्तक के लिखने में
ोतों (Original Sources) तथा उन पर आधारित पुस्तकों का उपयोग
विद्यार्थी के ज्ञान को अधिक विकसित एवं पुष्ट करने के हेतु इतिहास की
न खोजों तथा तथ्यों का भी समावेश किया है और विभिन्न इतिहासकारों
नों के उद्धरण (Quotations) यथा-स्थान दिये हैं।

स्तक की रचना में मेरा यह भी ध्यान रहा है कि विषय-सामग्री ऐसी रोचक
जिससे कि विद्यार्थियों में अपने इतिहास के प्रति रुचि जागृत हो और वे
-असत्य की खोज करने की ओर प्रयत्नशील हों। तथ्यों को वास्तविक रूप
किया गया है, किन्हीं बातों से प्रभावित होकर तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है।
ने राजनीतिक घटनाओं की अपेक्षा भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति, धर्म
विकास तथा उसके प्रभाव आदि पर विशेष महत्व दिया है जिसमे पाठक उन
ातों से पूर्णतया अवगत हो जायें और उनको अपने प्राचीन गौरव का
ज्ञान प्राप्त हो सके क्योंकि इसके द्वारा ही किसी राष्ट्र की उन्नति तथा
म्भव है।

पर्याप्त शिक्षण तथा पारिक्षिक अनुभव के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर
कि इतिहास के अधिकतर विद्यार्थी इतिहास की पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन
ते वरन् वे सहायक पुस्तकों पर विशेष निर्भर रहते हैं, जिसके कारण परीक्षा
वे असफल हो जाते हैं अथवा कम अंक प्राप्त करते हैं, जिससे विद्यार्थियों

में यह विश्वास उत्पन्न हो गया है कि इतिहास कठिन विषय है और उसमें अंक कम मिलते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है, यदि इतिहास के विद्यार्थी भी विज्ञान तथा गणित के विद्यार्थी की भाँति ही लगन के साथ नियमित रूप से अध्ययन करें, पाठ्य-पुस्तक के आधार पर प्रश्नों के उत्तर तैयार करें—Points बना बनाकर To the Point पूर्ण उत्तर लिखें तो निश्चय ही इस विषय में भी विद्यार्थियों को उच्च श्रेणी के अंक प्राप्त हो सकते हैं। विद्यार्थियों को विषय को समझने तथा याद रखने के लिये सहायक पुस्तकों की ओर आकृष्ट न होना पड़े इसी उद्देश्य के हेतु मैंने पुस्तक को अत्यन्त सरल प्रवाहमय तथा व्यावहारिक भाषा में लिखा है, स्थान-स्थान पर चित्र, मानचित्र व चार्ट देकर विषय को अधिक स्पष्ट तथा बोधगम्य बनाया है। प्रत्येक बात को अलग-अलग प्वाइट्स (Points) बनाकर छोटे-छोटे अनुच्छेदों (Paras) में बाट दिया है जिससे पाठकों को तनिक भी कठिनाई का अनुभव न हो। इतना ही नहीं, वरन् परीक्षा की दृष्टि से जो *विषय अधिक महत्वपूर्ण हैं उनके Points स्मरणहेतु एक स्थान पर* हर अध्याय में अलग-अलग दिये हैं तथा प्रत्येक अध्याय के अन्त में विभिन्न बोर्डों और विश्वविद्यालयों के परीक्षा-प्रश्न तथा अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न भी दिये हैं।

विद्यार्थियों और प्राध्यापकों की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए मैंने प्रारम्भ में भारतीय इतिहास के प्रमुख व्यक्तियों का अत्यन्त सूक्ष्म परिचय तथा भारतीय इतिहास की स्मरणीय तिथियाँ भी दी हैं।

योग्य प्राध्यापकों से मुझे कुछ बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं जिनका इस संस्करण में यथा-स्थान समावेश किया गया है। मैं उनके अमूल्य सुझावों का आदर करता हूँ और इस कृपा के लिये उनका विशेषाभारी हूँ, क्योंकि इनके समावेश द्वारा पुस्तक अवश्य अधिक लोकप्रिय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

विद्वान् प्राध्यापकों एवम् प्रिय विद्यार्थियों से मेरा नम्र निवेदन है कि अतीत की भाँति वे अपने अमूल्य सुझाव भेजने का कष्ट करते रहें, जिससे मैं पुस्तक को और अधिक उपयोगी रूप देने में सफल हो सकूँ। इनके लिये मैं उनका सदा आभारी रहूँगा।

अन्त में, मैं अपने पूज्य गुरुजन, जिनके चरण-कमलों में बैठकर मैंने यह सब कुछ सीखा है तथा इस विषय के विभिन्न विद्वानों एवम् लेखकों, जिनके विचारों का जहाँ-तहाँ मैंने समावेश किया है, का विशेषाभारी हूँ।

जुलाई १८, १६६६
एम० एम० एच० कॉलिज,
गाज़ियाबाद

—दया प्रकाश

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

(१५२६—१७०७)

१—ज़हीरउद्दीन बाबर	१
२—अफगान-मुगल संघर्ष	२२
३—शेरशाह तथा उसके उत्तराधिकारी	३६
४—अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उनका निराकरण	६६
५—मुग़लों का साम्राज्य-विस्तार	७६
६—मुग़लों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया सम्बन्धी-नीति	१२१
७—मुग़लों की राजपूत-सम्बन्धी नीति	१२७
८—मुग़ल और सिक्ख	१३५
९—मुग़ल और मरहठे	१३९
१०—मुग़ल और दक्षिण के मुसलमानी राज्य	१६६
११—मुग़लों की धार्मिक नीति	१७२
१२—मुग़लों की शासन-व्यवस्था	१८९
१३—मुग़लकालीन समाज	२०३
१४—मुग़लकालीन सभ्यता और संस्कृति	२१२
१५—मुग़लकालीन अन्य ज्ञातव्य बातें	२२८
१६—उत्तरकालीन मुग़ल-सम्राट	२४३
१७—मरहठों का उत्थान	२५९

द्वितीय खण्ड

(१७०७—१८१८)

१—भारत में योरोपीय जातियों का आगमन	३
२—अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों का संघर्ष	१४
३—बंगाल में नवाबी का अन्त	३२
४—क्लाइव की दूसरी गवर्नरी	५३
५—शासन का पुनर्निर्माण	६३
६—अंग्रेज़ी साम्राज्य का विस्तार (१७६५–१७८९)	८८
७—अंग्रेज़ी साम्राज्य का विस्तार (१७८९–१८१८)	१०२

शुजा	शाहजहां का द्वितीय पुत्र
मुराद	शाहजहां का चौथा पुत्र
जहांनारा	शाहजहां की पुत्री
रोशन आरा	शाहजहां की पुत्री
मीर जुमला	औरंगजेब का प्रसिद्ध सेनापति
शाइस्ता खां	आसफखां का पुत्र, औरंगजेब का एक सेनापति
सर टामस रो	अंग्रेज राजदूत जो जहांगीर के काल मे भारत आया
शिवाजी	मरहठा साम्राज्य का संस्थापक
छत्रपति साहू	शिवाजी का पौत्र, शम्भा जी का पुत्र, मरहठों का राजा
बालाजी विश्वनाथ	मरहठों का प्रथम पेशवा
बाजीराव	मरहठों का द्वितीय पेशवा
बालाजी बाजीराव	मरहठों का तृतीय पेशवा
वास्को-डी-गामा	पुर्तगाल निवासी, योरप से जलमार्ग द्वारा सर्वप्रथम भारत आया
अल्मीडा	पुर्तगाल बस्तियों का गवर्नर
एलबुकर्क	पुर्तगाल बस्तियों का गवर्नर
डूप्ले	फ्रांसीसी बस्तियों का गवर्नर, क्लाइव का समकालीन
क्लाइव	बङ्गाल का गवर्नर, भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक
काउन्ट लैली	फ्रांसीसी वीर तथा साहसी सेनापति
चांदा साहब	कर्नाटक का नवाब
अलीवर्दी खां	बङ्गाल का शासक
सिराजउद्दौला	अलीवर्दीखां का धेवता, क्लाइव द्वारा प्लासी के युद्ध मे पराजित
मीरजाफर	सिराजउद्दौला का सेनापति, देशद्रोही बङ्गाल का नवाब
मीर कासिम	मीरजाफर का दामाद, बङ्गाल-नवाब, बक्सर-युद्ध मे पराजित
वन्सीटार्ट	बङ्गाल का गवर्नर, क्लाइव का उत्तराधिकारी
वारेन हेस्टिंग्ज	बङ्गाल का गवर्नर, प्रथम गवर्नर जनरल
नन्दकुमार	कुलीन ब्राह्मण, हेस्टिंग्ज का कट्टर विरोधी
चेतसिंह	बनारस का राजा, हेस्टिंग्ज द्वारा अपदस्थ
हैदरअली	मैसूर का शासक, अंग्रेज का कट्टर विरोधी
टीपू	हैदरअली का पुत्र, अंग्रेजों का विरोधी
सर आयर कूट	अंग्रेज प्रसिद्ध सेनापति
नाना फड़नवीस	मरहठों का महान् कूटनीतिज्ञ
वैलेजली	भारत का प्रसिद्ध गवर्नर-जनरल एवं साम्राज्यवादी
महादजी सिन्धिया	मरहठों का सरदार
दौलतराव सिन्धिया	मरहठों का सरदार
जसवन्तराव होल्कर	मरहठों का सरदार
[illegible]	पंजाब का शासक
एमहर्स्ट	गवर्नर जनरल
विलियम बैंटिंक	गवर्नर-जनरल-सुधारक

भारत के इतिहास के प्रमुख व्यक्ति

ाकलैंड	गवर्नर-जनरल
एलिनबरा	गवर्नर-जनरल
हार्डिंज	गवर्नर-जनरल
डलहौजी	गवर्नर-जनरल, साम्राज्यवादी शासक
केनिंग	गवर्नर-जनरल
मुहम्मद	अफगानिस्तान का अमीर
ुजा	अफगानिस्तान का अमीर
पाँडे	क्रान्ति का अग्रदूत
साहेब	बाजीराव पेशवा का दत्तक पुत्र, महान् क्रान्ति का नेता
ा टोपे	क्रान्ति का नेता
लक्ष्मीबाई	झांसी की रानी
मैकाले	प्रथम विधि सदस्य (गवर्नर जनरल कौंसिल)
लारेंस	गवर्नर जनरल, महान् अकर्मण्यता की नीति का संस्थापक
लिटन	गवनर-जनरल उग्र नीति का पालक, महान् साम्राज्यवादी
कर्जन	गवर्नर-जनरल, साम्राज्यवादी, उच्च कोटि का शासक
ार अब्दुर्रहमानखां	अफगानिस्तान का अमीर
ार अमानुल्ला खा	अफगानिस्तान का अमीर, अग्रेजों द्वारा अपदस्थ
ा-ह्यूम	निवृत्त नागरिक, कांग्रेस के संस्थापक
ोकमान्य तिलक	राष्ट्रवादी नेता, उग्र विचारों का समर्थक
ा लाजपतराय	राष्ट्रवादी नेता, उग्र विचारों के समर्थक
ाल कृष्ण गोखले	राष्ट्रवादी नेता, नरम विचारों के समर्थक
ात्मा गांधी	भारत के राष्ट्रपिता, देश के महान् सुधारक
ाहरलाल नेहरू	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रधान मन्त्री
० राजेन्द्र प्रसाद	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रथम राष्ट्रपति
दार पटेल	राष्ट्रवादी नेता, भारत के लोह पुरुष
ाषचन्द्र बोस	राष्ट्रवादी नेता, आई० एन० ए० के निर्माता
० आर० दास	राष्ट्रवादी नेता, } स्वराज्य दल के संस्थापक
ीलाल नेहरू	राष्ट्रवादी नेता, } स्वराज्य दल के संस्थापक
ुम्मद अली जिन्ना	मुस्लिम लीग के निर्माता
ीन्द्रनाथ टाकुर	गीतांजली के रचयिता, महान् साहित्यकार
जगोपालाचार्य	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल
० राधाकृष्णन	प्रमुख दार्शनिक, भारत के द्वितीय राष्ट्रपति
० जाकिर हुसैन	राष्ट्रवादी नेता, भारत के उपराष्ट्रपति
लजारी लाल नन्दा	राष्ट्रवादी नेता, अन्तरिम सरकार के प्रधान मन्त्री
ालबहादुर शास्त्री	राष्ट्रवादी नेता, भारत के द्वितीय प्रधान मन्त्री
ीमती इन्दिरा गांधी	भारत की तृतीय प्रधान मन्त्री

एलबुकर्क की गोआ-विजय	१५१० ई०
अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जन्म	१६०० "
डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जन्म	१६०२ "
हॉकिंस का जहांगीर के दरबार में आना	१६०८ "
सर टॉमस रो का जहांगीर के दरबार में आना	१६१५ "
फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना	१६६४ "
कम्पनी और मुगलों की सन्धि	१६९० "
डूप्ले का पांडेचरी शासक होना	१७४२ "
हैदरअली का जन्म	१७२२ "
एलाचपल की सन्धि	१७४८ "
डूप्ले का वापिस जाना	१७५४ "
लैली का भारत-आगमन	१७५८ "
वांडेवाश का युद्ध	१७६० "
पैरिस की सन्धि	१७६३ "
हैदरअली की बेदनूर-विजय	१७६३ "
मद्रास और हैदरअली का आक्रमण	१७६९ "
मराठों का मैसूर पर आक्रमण	१७७१ "
अलीवर्दी खां का बंगाल का गवर्नर होना	१७४१ "
अलीवर्दी खां की मृत्यु	१७५६ "
सिराजुद्दौला का बंगाल का गवर्नर होना	१७५६ "
प्लासी का युद्ध	१७५७ "
मीरजाफर का बंगाल का गवर्नर होना	१७५७ "
अलीगौहर का बंगाल आक्रमण	१७५९ "
क्लाइव का इङ्गलैंड लौटना	१७६० "
मीर कासिम का बंगाल का गवर्नर होना	१७६० "
बक्सर का युद्ध	१७६४ "
मीर जाफर की मृत्यु	१७६५ "
क्लाइव का दूसरी बार गवर्नर होना	१७६५ "
क्लाइव का इङ्गलैंड वापिस जाना	१७६७ "
क्लाइव की मृत्यु	१७७४ "
वारेन हेस्टिंग्स का बंगाल का गवर्नर होना	१७७२ "
[illegible] की मृत्यु	१७८२ "
[illegible]	१७७३ "
	१७७३—८४ "
[illegible]	१७८४ "

सालबाई की सन्धि	१७८२ ई०
हैदरअली की मृत्यु	१७८२ "
बेदनूर पर टीपू का अधिकार	१७८३ "
मंगलोर की सन्धि	१७८४ "
पिट का इण्डिया एक्ट	१७७४ "
वारेन हेस्टिंग्ज का वापिस जाना	१७८५ "
रणजीतसिंह का जन्म	१७८० "
मराठों की पहली लड़ाई	१७७५–८२ "
मैसूर की दूसरी लड़ाई	१७८०–८४ "
मैसूर की तीसरी लड़ाई	१७९०–९२ "
बंगाल का स्थायी प्रबन्ध	१७९३ "
महादजी सिन्धिया की मृत्यु	१७९४ "
खर्दा का युद्ध	१७९५ "
मैसूर का चौथा युद्ध	१७९९ "
नाना फड़नवीस की मृत्यु	१८०० "
कर्नाटक का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८०१ "
बेसिन की सन्धि	१८०२ "
देवगांव और सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि	१८०३ "
लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु	१८०५ "
वैलोर का गदर	१८०६ "
अमृतसर की सन्धि	१८०९ "
गोरखों का प्रथम युद्ध	१८१४—१६ "
सिगौली की सन्धि	१८१६ "
पिंडारी युद्ध	१८१६—१८ "
ब्रह्मा का प्रथम युद्ध	१८२४—२६ "
भरतपुर का घेरा	१८२६ "
मैसूर के शासन-प्रबन्ध को हाथ में लेना	१८३१ "
रणजीतसिंह के साथ सन्धि	१८३१ "
सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि	१८३२ "
अंग्रेजी का शिक्षा का माध्यम होना	१८३५ "
समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता	१८३५ "
हिरात का घेरा	१८३७ "
अंग्रेजों का कन्दहार और गजनी पर अधिकार	१८३९ "
रणजीतसिंह की मृत्यु	१८३९ "
काबुल से अंग्रेजी सेना की वापसी	१८४२ "
सिक्खों की पहली लड़ाई	१८४५–४६ "

सिक्खों की दूसरी लड़ाई	१८४८–४९ ई०
पंजाब का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८४९ "
ब्रह्मा का दूसरा युद्ध	१८५२ "
सतारा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८४९ "
नाना साहब की पेंशन का बन्द होना	१८५३ "
सर चार्ल्स वुड की रिपोर्ट	१८५४ "
अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८५६ "
प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम	१८५७ "
दोस्त मुहम्मद की मृत्यु	१८६३ "
शेरअली का अमीर होना	१८६८ "
द्वितीय अफगान युद्ध	१८७८ "
अब्दुर्रहमान का काबुल का अमीर होना	१८८१ "
कांग्रेस का जन्म	१८८५ "
उत्तरी ब्रह्मा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८८६ "
पश्चिमोत्तर प्रान्त का निर्माण	१९०१ "
आगाखां का डेप्यूटेशन	१९०६ "
रौलट बिल	१९१९ "
अफगान-युद्ध	१९२०–२१ "
स्वराज्य पार्टी की स्थापना	१९२३ "
नादिरखां का अमीर होना	१९२९ "
असहयोग आन्दोलन	१९३० "
साइमन रिपोर्ट	१९३० "
गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट	१९३५ "
प्रान्तों में स्वायत्त शासन	१९३७ "
वेवेल कान्फ्रेंस	१९४५ "
शिमला कान्फ्रेंस	१९४५ "
लार्ड माउन्टबेटेन का गवर्नर-जनरल होना	१९४७ "
स्वाधीनता एक्ट	१९४७ "
महात्मा गांधी की मृत्यु	१९४८ "
हैदराबाद को पुलिस कार्यवाही	१९४८ "
लन्दन कान्फ्रेंस	१९४९ "
डा० राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु	१९६३ "
जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु	१९६४ "
लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमन्त्री होना	१९६४ "
भारत पाक युद्ध	१९६५ "
ताशकन्द समझौता	१९६६ "
लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु	१९६६ "
श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रधानमन्त्री होना	१९६६ "

जहीरउद्दीन बाबर

(१५२६-१५३०)

मुग़लों का संक्षिप्त परिचय

मुग़ल जाति तुर्क तथा मंगोल जातियों के सम्मिश्रण का परिणाम है। मंगोल पर्याप्त समय तक मध्य एशिया में शासन करते रहे और उनके पतन के उपरान्त तुर्कों के अधिकार में शासन-सत्ता आई। इन दोनों जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध से मुग़ल जाति का उदय हुआ। बाबर का पिता तैमूर का वंशज था और उसकी माता चंगेज खां की वंशज थी। अतः उसकी धमनियों में मध्य एशिया के दो प्रमुख व्यक्तियों के रक्त का सम्मिश्रण था।* इतिहास में बाबर चग़ताई तुर्क नाम से भी विख्यात है। इससे भी सिद्ध होता है कि यह जाति तुर्क और मंगोल जाति का सम्मिश्रण थी, क्योंकि चग़ताई चंगेज खां के पुत्र का नाम था और उससे ही उनकी वंशावली का प्रारम्भ होता है।

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत की राजनीतिक दशा उसी समान छिन्न-भिन्न तथा शोचनीय थी जिस प्रकार वह बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में थी जब भारत पर ग़ौर वंश के सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी ने आक्रमण किया था। इस समय भी भारत विभिन्न राज्यों में विभक्त था और उनमें पारस्परिक संघर्षों की बहुलता थी। यद्यपि लोधी वंश के शासकों ने उत्तरी भारत में एकछत्र शासन की स्थापना करने के लिए घोर प्रयत्न किया, किन्तु उनको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई और उनका राज्य दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों तक ही सीमित रहा।† उस समय भारत में निम्न प्रमुख राज्य थे—

(१) **दिल्ली का राज्य**—इस समय दिल्ली राज्य का स्वामी इब्राहीम लोधी था जो १५१७ ई० में अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ था। उसका राज्य बहुत संकुचित था। उसमें दिल्ली, आगरा, दोआब तथा जौनपुर के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। वह एक अयोग्य शासक था। उसने अपनी मूर्खता तथा हठधर्मी के कारण अफ़ग़ान अमीरों को अपना शत्रु बना लिया था जो उसके स्थान पर स्वयं राज्य करने की बलवती इच्छा रखते थे। यद्यपि उनके विद्रोह का दमन कर दिया

---

* "He brought the energy of the Mughals, the courage and capacity of the Turks to the subjection of the listless Hindus and himself a soldier of fortune and no architect of empire, yet he laid the first stone of the splendid fabric which his grandson Jalaluddin Mohammad Akbar completed." —Lane-Poole.

† "A race of conquerors became a squabbling crowd, jostling with each other for the luxuries of thrones, but wanting the power to hold a sceptre....... The Empire of Delhi had disappeared. The greater provinces had their separate Kings, the smaller districts and even single cities and forts belonged to chiefs and clans who owed no higher lords. The King's writ was no more supreme, it was the day of little princes." —Lane-Poole.

गया, किन्तु अमीरों का पूर्ण रूप से पतन नहीं हो सका और उनमें से कुछ ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित किया। इस प्रकार दिल्ली पर चारों ओर से अशान्ति तथा विद्रोह के बादल मंडरा रहे थे। इरस्किन (Erskine) के शब्दों में "दिल्ली का लोधी राज्य कुछ थोड़ी सी स्वतन्त्र रियासतों, जागीरों तथा प्रान्तों द्वारा निर्मित था, जिनका शासन-प्रबन्ध वंश परम्परागत सरदारों, जमींदारों तथा दिल्ली द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों के अधीन था। वहां की जनता सूबेदार को जो वहां का एकमात्र शासक था तथा जिसके हाथ में उन लोगों को सुखी करना तथा दुखी करना था, दिल्ली के शासकों से अधिक मानती थी जो उनसे दूर था। व्यक्ति का शासन था और नियमों का कोई महत्व न था।"*

बाबर के आक्रमण के समय भारत के राज्य

(१) दिल्ली का राज्य।
(२) बंगाल।
(३) मालवा।
(४) गुजरात।
(५) मेवाड़।
(६) पंजाब।
(७) उड़ीसा।
(८) खानदेश।
(९) बहमनी राज्य।
(१०) विजयनगर राज्य।

(२) बंगाल— बंगाल ने फीरोज तुगलक के समय में ही अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। सिकन्दर लोधी ने बंगाल विजय के लिये उस पर आक्रमण किया था। इसका कारण यह था कि बंगाल के शासक ने जौनपुर के हुसैन खां शर्की को जो सिकन्दर लोधी का शत्रु था, अपने राज्य में शरण दी थी। सिकन्दर और बंगाल के शासक में युद्ध हुआ, किन्तु निर्णायक युद्ध न होने से बाद में दोनों में सन्धि हो गई और यह निश्चय हुआ कि दिल्ली राज्य की सीमा पूर्वी बिहार तक रहेगी। बाबर का समकालीन बंगाल का शासक नुसरतशाह था जिसने बाबर से सन्धि कर ली थी। वह एक योग्य शासक था और उसके समय में बंगाल राज्य में विशेष प्रगति हुई।

(३) मालवा—मेवाड़ की उन्नति के कारण मालवा मध्य-भारत का प्रमुख राज्य नहीं रह गया था। बाबर का समकालीन मालवा का शासक महमूद द्वितीय था। उसके शासन-काल में मेदनीराय का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और उसने उच्च पदों पर राजपूतों को नियुक्त किया, जिसके कारण मुसलमानों में असन्तोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने गुजरात के शासक की सहायता से मेदनीराय के प्रभाव का अन्त किया, किन्तु उसने मेवाड़ के राणा सांगा की सहायता से अपना प्रभुत्व फिर जमाया। उसने महमूद द्वितीय को बन्दी किया, किन्तु बाद में उसने उदारतावश उसको मुक्त कर दिया। इससे

* "The Lodi monarchy was a congeries of nearly independent principalities, jagirs and provinces, each ruled by a hereditary chief or by a Zamindar or delegate from Delhi, and the inhabitants looked more to their immediate governors who had absolute power, in whose hands lay their happiness or misery than to a distant and little known sovereign consequently it was the individual and not the law that reigned."
—Erskine.

भी मालवा की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा और वहां पारस्परिक कलह तथा संघर्ष होते रहे।

(४) गुजरात—सन् १४०१ ई० में मुजफ्फरशाह ने अपने आपको गुजरात का स्वतन्त्र शासक घोषित किया। बाबर के आक्रमण के समय गुजरात पर मुजफ्फरशाह द्वितीय शासन कर रहा था। उसकी मृत्यु के उपरान्त गुजरात राज्य की मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुंचा, किन्तु जब उसके पुत्र बहादुरशाह ने अपनी शक्ति को संगठित किया और जब मेवाड़ का खनवा के युद्ध में पराजित होने से पतन होना आरम्भ हो गया तो गुजरात की गणना शक्तिशाली राज्यों में की जाने लगी।

(५) मेवाड़—*मेवाड़ की गणना राजस्थान के प्रमुख राज्यों में की जाती थी।* जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय मेवाड़ पर प्रसिद्ध राणा सांगा शासन कर रहा था। समस्त राजपूत उसके छत्र के नीचे थे। उसने मालवा और गुजरात के शासकों तथा इब्राहीम लोधी को कई युद्धों में परास्त किया था। उसका सैनिक-संगठन बहुत उच्च था। बाबर को उससे खनवा का युद्ध १५२७ ई० मे करना पड़ा जिसमें बाबर विजयी हुआ।

(६) पंजाब—पंजाब यद्यपि दिल्ली राज्य का भाग था, किन्तु केवल नाममात्र में, *क्योंकि यहां के सूबेदार दौलत खां लोधी और दिल्ली के शासक इब्राहीम लोधी में* अनबन थी और वह दिल्ली पर अधिकार करने का स्वप्न देखा करता था। वह पंजाब में स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करता था। इब्राहीम अपनी अन्य कठिनाइयों में इतना अधिक ग्रस्त था कि वह पंजाब की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। दौलत खां को सूचना मिली कि इब्राहीम अपनी कठिनाइयों का समाधान कर उसकी ओर ध्यान देगा। इस समाचार से अवगत होकर वह बड़ा भयभीत हुआ और उसने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया।

(७) उड़ीसा - यह एक हिन्दू राज्य था, किन्तु उत्तरी भारत की राजनीति से उसका कोई विशेष सम्पर्क नहीं था।

(८) खानदेश—*खानदेश की स्थापना मलिक फारुकी ने की।* इस राज्य का गुजरात से सदा संघर्ष रहा क्योंकि गुजरात के शासक इस पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे। सन् १५०८ में दाऊद की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ जिनमें से एक की सहायता गुजरात ने तथा दूसरे की सहायता अहमदनगर राज्यों ने की। इस युद्ध में गुजरात वाला पक्ष विजयी हुआ और उसका उम्मीदवार खानदेश के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। दिल्ली से दूर होने के कारण उत्तरी भारत की राजनीति में खानदेश का कोई प्रभाव नहीं था।

(९) बहमनी राज्य—दक्षिण में बहमनी राज्य ने विशेष उन्नति की। कुछ समय पश्चात् यह राज्य पांच भागों में—(क) बरार, (ख) अहमदनगर, (ग) बीजापुर, (घ) गोलकुण्डा तथा (ङ) बीदर—विभक्त हो गया। ये भी दिल्ली की राजनीति से अलग ही रहे और उनका कार्य-क्षेत्र दक्षिण तथा मध्य-भारत तक सीमित था।

(१०) विजयनगर राज्य—यह दक्षिण राज्य का प्रमुख हिन्दू राज्य था। बाबर

का समकालीन शासक कृष्णदेव राय था जो विजयनगर के सम्राटों में सबसे योग्य तथा प्रतिभाशाली था। इसके समय में विजयनगर राज्य ने विशेष उन्नति की। उत्तरी भारत से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था और बहमनी वंश से इसका संघर्ष सदा चलता रहता था।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन

बाबर का प्रारम्भिक जीवन
(१) जन्म तथा शिक्षा।
(२) फरगना की रक्षा।
(३) समरकन्द-विजय।
(४) काबुल की ओर।
(५) काबुल-विजय।
(६) समरकन्द की पुनः विजय।
(७) समरकन्द का हाथ से निकलना।
(८) बाबर का भारत-प्रवेश।

(१) बाबर का जन्म तथा शिक्षा—बाबर का जन्म १४ फरवरी सन् १४८३ ई० को फरगना के शासक उमरशेख मिर्जा के घर हुआ था। उसकी माता चंगेज खां की वंशज थी जबकि उसका पिता तैमूर का वंशज था। इस प्रकार वह मध्य एशिया के दो महान् विजेताओं तथा योद्धाओं का वंशज था और इसीलिये कहा जाता है कि उसकी धमनियों में इन दो वंशों के रक्त का प्रवाह था, उसका परिवार चगताई तुर्कों के अन्तर्गत था। बाबर का पिता उमर शेख मिर्जा बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था जिसके कारण उसका उनके साथ सदा मनमुटाव रहता था। सन् १४६४ में समरकन्द और बुखारा के शासक अहमद मिर्जा और महमूद खां ने मिलकर फरगना को हस्तगत करने के अभिप्राय से आक्रमण किया। इसी समय जब वह कबूतरों की उड़ान का आनन्द भोग रहा था तो यकायक मकान की छत से गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई और समस्त भार उसके अल्पवयस्क पुत्र बाबर के सिर पर आ गया जिसकी इस समय अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी। उमर शेख मिर्जा ने अपने पुत्र बाबर की शिक्षा की उचित व्यवस्था की थी। उसने बाल्यकाल में ही तुर्की तथा फारसी भाषा का अच्छा अध्ययन तथा अनुभव प्राप्त कर लिया था। उसको उच्च कोटि की सैनिक शिक्षा भी प्रदान की गई और शासन-व्यवस्था तथा कूटनीति का पर्याप्त ज्ञान उसको अपने पिता के समय में ही प्राप्त हो गया था।

(२) फरगना की रक्षा—राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही बाबर ने शीघ्र ही फरगना की रक्षा करने की व्यवस्था की, जिस पर उसके पिता के समय में अहमद मिर्जा और महमूद मिर्जा खां ने आक्रमण कर दिया था। उसने अहमद मिर्जा से सन्धि का प्रस्ताव किया, किन्तु वह सन्धि करने को तैयार नहीं हुआ, तो भी कुछ विशेष कारणों से बाध्य होकर उसने (अहमद मिर्जा ने) फरगना-अभियान से वापिस जाने में ही अपना हित समझा। बाबर ने डट कर महमूद खां का सामना किया और उसको जाने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार वह फरगना की रक्षा करने में सफल

हुआ। वह शीघ्र ही अपने चरित्र तथा गुणों के कारण अपनी प्रजा तथा सेना में बड़ा लोकप्रिय बन गया।

(३) समरकन्द विजय—अपने पिता के समान बाबर भी महत्वाकांक्षी था। वह फरगना के छोटे से राज्य से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह समरकन्द पर अधिकार करना चाहता था जो किसी समय मध्य एशिया के प्रसिद्ध विजेता तैमूर की राजधानी थी और उस समय वह मध्य एशिया का एक बड़ा उन्नत तथा समृद्धिशाली नगर था। उसके भाग्य से उसको समरकन्द पर अधिकार करने का अवसर भी शीघ्र प्राप्त हुआ। सन् १४६४ ई० में समरकन्द के शासक महमद मिर्जा का देहान्त यकायक हो गया और उत्तराधिकार के प्रश्न पर उसके पुत्रों में गृह-युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हुई। इस परिस्थिति का लाभ उठाने के अभिप्राय से उसने १४६६ ई० में समरकन्द पर आक्रमण किया किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अगले वर्ष अर्थात् १४६७ ई० में उसने पुनः समरकन्द पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। इस प्रकार वह अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा की पूर्ति करने में सफल हुआ, किन्तु उसकी यह विजय अस्थायी सिद्ध हुई। अकस्मात् वह बीमार पड़ गया और उसके पैतृक राज्य फरगना में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई। उसके फरगना पहुँचने के पूर्व ही विद्रोहियों ने फरगना पर अधिकार कर लिया। फरगना से निराश होकर जब उसने समरकन्द की ओर मुंह मोड़ा तो उसको ज्ञात हुआ कि वह भी उसके हाथ से निकल गया।

जहीरउद्दीन बाबर

(५) काबुल की ओर—समरकन्द और फरगना के हाथ से निकल जाने पर बाबर निराश्रित हो गया और उसके साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया जैसा प्रायः होता १४६८ ई० में विशेष प्रयत्न द्वारा उसने फरगना पर अधिकार किया, किन्तु १५०० ई० में फरगना उसके हाथ से फिर निकल गया और वह गृहहीन हो गया। इन विकट परिस्थितियों से बाबर हतोत्साहित नहीं हुआ अपितु इस बार उसने बड़े उत्साह तथा अदम्य साहस से समरकन्द पर आक्रमण किया जो इस समय उजबेग सरदार शैबानी खां के अधीन था। उसने शैबानी खां को परास्त कर समरकन्द पर अधिकार किया, किन्तु शैबानी खां अपनी पराजय को नहीं भूला और बाबर से बदला लेने की चिन्ता में संलग्न हो गया। १५०२ ई० में वह शैबानी खां द्वारा परास्त हुआ और उसको तीसरी बार पुनः जगह-जगह भटकने के लिये बाध्य होना पड़ा। इस काल में उसको विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु वह निराश नहीं हुआ। समरकन्द की विजय को असाध्य समझकर उसने काबुल

की ओर अपना ध्यान लगाया।

(५) काबुल विजय—काबुल पर अधिकार करने के उद्देश्य से बाबर ने सेना एकत्रित करनी प्रारम्भ की और सैनिक तैयारियां करने के उपरान्त उसने काबुल पर आक्रमण किया। बाबर विजयी हुआ और १५०४ ई० में वह वहां के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। १५०७ ई० में उसने बादशाह की उपाधि से अपने आपको सुशोभित किया और अपनी सत्ता दृढ़ करने के कार्य में संलग्न हुआ।

(६) समरकन्द की पुनः विजय—काबुल में अपनी सत्ता को दृढ़ करने के उपरान्त बाबर ने समरकन्द को विजय करने की योजना बनाई। शैबानी खां के जीवित रहते हुये उसकी इस इच्छा का पूर्ण होना असम्भव था। बाबर के सौभाग्य से १५१० ई० में शैबानी खां फारस के शाह द्वारा परास्त हुआ और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसने शीघ्र ही समरकन्द पर फारस के शाह की सहायता से आक्रमण किया और बाबर के अधिकार में बुखारा से खुरासान के प्रदेश आ गये। विजय के परिणामस्वरूप उसके राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया, किन्तु यह अधिक काल तक स्थायी नहीं रहा।

(७) समरकन्द का हाथ से निकलना—उजबेगों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर उसे नव-विजित प्रदेश अर्थात् समरकन्द त्यागने के लिये बाध्य किया। अब बाबर के पास काबुल और बदख्शां ही शेष थे।

(८) बाबर का भारत-प्रवेश—मध्य एशिया की राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर बाबर इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि मध्य एशिया में उसको सफलता प्राप्त होनी असम्भव है, किन्तु बाबर जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति काबुल और बदख्शां के राज्यों से भी संतुष्ट होने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः उसने शीघ्र ही अपना ध्यान भारत-विजय की ओर आकर्षित किया और भारत-विजय के लिये विशेष तैयारियां करनी प्रारम्भ कर दीं तथा उसके लिये उसने एक निश्चित योजना का निर्माण किया। उसने भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से चार प्रारम्भिक आक्रमण किये। बाबर तैमूर का वंशज होने के नाते पंजाब पर अपना पैतृक अधिकार समझता था। उसने अपनी आत्म-कथा (तुजके बाबरी) में लिखा है कि "काबुल राज्य को हस्तगत करने के उपरान्त उसके हृदय तथा मस्तिष्क में भारत-विजय की भावना बलवती हुई, पर वह आन्तरिक कठिनाइयों के कारण उसको पूर्ण नहीं कर सका।"

(क) बाबर का प्रथम आक्रमण—१५१६ ई० में उसने भारत पर प्रथम आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में रहने वाली यूसुफजाई जातियों को परास्त किया जो बड़ी बलवान, शक्तिशाली तथा लड़ाकू जातियां थीं। इसके बाद उसने बंजोर की ओर प्रस्थान किया और बाद में झेलम नदी के समीप ... नामक स्थान की ओर प्रस्थान किया। भेरा उसके अधिकार में बिना किसी विरोध ... गया। वहां से वह काबुल वापिस चला गया, किन्तु उसके वापिस चले जाने के ... प्रदेश पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया और समस्त विजित प्रदेश पूर्ववत् ... हो गये।

(ख) बाबर का दूसरा आक्रमण—बाबर का दूसरा आक्रमण १५१९ ई० अन्त में हुआ, किन्तु मध्य एशिया की भीषण तथा अनिश्चित परिस्थिति के कारण उसको शीघ्र ही काबुल वापिस जाना पड़ा।

(ग) बाबर का तीसरा आक्रमण—१५२० ई० में बाबर ने भारत पर तीसरा आक्रमण किया। बैजोर, भेरा आदि की विजय करता हुआ वह स्यालकोट (पंजाब) पहुँचा। इस पर भी बाबर का अधिकार हो गया। इसके बाद उसने सैयदपुर की विजय की। कन्दहार के उपद्रव की सूचना प्राप्त होने पर वह शीघ्र काबुल वापिस चला गया।

(घ) बाबर का चौथा आक्रमण—१५२४ ई० में उसने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। इस समय उसको लोधी-वंश के दो विरोधी सरदारों—**दौलत खाँ** लोधी तथा आलम खाँ लोधी—ने भारत आक्रमण के लिये निमन्त्रित किया था। बाबर ने इस अवसर का लाभ उठाने के अभिप्राय से शीघ्र ही पंजाब पर आक्रमण किया। बाबर का बिना किसी विरोध के लाहौर पर अधिकार हो गया। फिर उसने दीपालपुर की ओर प्रस्थान किया और उसको भी अपने अधीन किया। **दीपालपुर को अधिकृत करने में दौलत खाँ ने बाबर की सहायता इस आशा से की थी कि बाबर उसको पंजाब का प्रान्त दे देगा, किन्तु बाबर ने उसको जालन्धर और सुल्तानपुर के जिले ही दिये और शेष पंजाब पर अपना अधिकार रक्खा। इससे दौलत खाँ को बड़ी निराशा हुई और उसने बाबर के साथ छल करने का षड्यन्त्र रचा, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई।** भारत में अपनी सेना का कुछ भाग छोड़कर वह काबुल वापिस चला गया।

बाबर की भारत-विजय यात्रा—अगले वर्ष सन् १५२५ ई० में बाबर विशेष तैयारी करने के उपरान्त भारत विजय के लिये चल पड़ा। उसके साथ १२,००० अश्वारोही तथा ७०० तोपें थीं। उसने दौलत खाँ का दर्प चूर्ण किया और आलम खाँ ने बाबर की शक्ति से भयभीत होकर आत्म-समर्पण किया। इस प्रकार सम्पूर्ण पंजाब पर उसका अधिकार स्थापित हो गया। पंजाब से निश्चिन्त होकर उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। जब दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोधी को बाबर के मन्तव्य का ज्ञान हुआ तो वह भी अपनी सेना लेकर पंजाब की ओर बाबर का सामना करने के लिये चल पड़ा। बाबर के अनुसार इब्राहीम की सेना में एक लाख (१,०००००) व्यक्ति थे, किन्तु यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। उसकी युद्ध सेना ४० हजार से अधिक नहीं थी, जबकि बाबर की सेना में २० हजार व्यक्ति होंगे; क्योंकि कुछ सेना उसको पंजाब से अवश्य प्राप्त हुई होगी। यह मानना भ्रम होगा कि उसने केवल १२,००० सैनिकों से युद्ध कर इब्राहीम को पराजित किया। १२ अप्रैल सन् १५२६ ई० को दोनों सेनायें पानीपत के रण-क्षेत्र में एक दूसरे के सामने आकर डट गईं। बाबर ने इब्राहीम लोधी के विषय में लिखा है कि "वह अनुभव-शून्य नवयुवक था। उसकी सम्पूर्ण गतियाँ असावधानी से पूर्ण थीं। वह बिना किसी क्रम के कूँच कर देता था। बिना योजना के

रुक जाता था या पीछे हट जाता था तथा बिना दूरदर्शिता के युद्ध करना प्रारम्भ क देता था।"

पानीपत का युद्ध (१५२६ ई०)

२० अप्रैल की रात्रि को बाबर ने अपने चार पांच हजार सैनिकों को अफग शिविर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। उन्होंने उसके आदेशानुसार शीघ्र ही आक्रम किया। उधर अफ़गान भी सचेत थे और उन्होंने मुगलों को पीछे खदेड़ दिया। २ अप्रैल को दोनों सेनाओं में प्रातःकाल से ही युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध बड़ा भीषण हुआ बाबर ने बड़ी योग्यता से अपनी सेना को व्यूह में खड़ा किया। अफ़गान सेना तोपों मार न सह सकी और उसके पैर उखड़ गये। इस अवसर पर बाबर ने दक्षिण त बाईं दिशाओं की सेनाओं को 'तुलुगमा' धावे मारने का आदेश दिया। उधर इब्राही ने मुगलों की बाईं ओर की सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसका परिणा यह हुआ कि अफ़गान सेना चारों ओर से घिर गई। इस प्रकार शीघ्र ही घमासान यु आरम्भ हो गया और दोनों सेनाओं के सभी दस्ते युद्ध में भाग लेने लगे। इसी सम बाबर ने अपने तोपचियों को अफ़गान सेना पर गोलों की वर्षा करने का आदेश दिया इब्राहीम ने इन सब विपत्तियों का बड़े उत्साह तथा वीरता से सामना किया, किन्तु अन्त में वह रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ और अफ़गान सेना केवल आधे दिन के युद्ध में बुरी तरह परास्त हुई।*

युद्ध के परिणाम—यह युद्ध बड़ा महत्वपूर्ण था। इसके मुख्य परिणाम इ प्रकार थे—(I) निर्णायक युद्ध—यह युद्ध पूर्ण निर्णायक सिद्ध हुआ। लोधियों की पूर्णतय पराजय हुई और उनके कम से कम २० हजार सैनिकों की युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु हुई (II) लोधियों की सत्ता का अन्त—भारत मे लोधियों की सत्ता का सर्वदा के लिये अन्त हो गया। (III) एक नवीन राजवंश की स्थापना—भारत में एक नये राजवंश की स्थापना हुई। जिसने लगभग २०० वर्षों तक भारत पर शासन किया और जिसके शासन काल में भारत की पंचमुखी उन्नति हुई तथा भारत में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। (IV) अफ़गानों में नया उत्साह-अफ़गानों की इस पराजय ने उनकी आँखें खोल दीं और उनमें नये रक्त, साहस तथा उत्साह का संचार हुआ। इसी के कारण शेरशाह अफ़गान जाति को मुगलों के विरुद्ध संगठित करने में सफल हुआ। (V) लौकिक राज्य की स्थापना—मुगलों ने भारत में लौकिक राज्य की

> **युद्ध के परिणाम**
> (I) निर्णायक युद्ध।
> (II) लोधियों की सत्ता का अन्त।
> (III) एक नवीन राजवंश की स्थापना।
> (IV) अफ़गानों में नया उत्साह।
> (V) लौकिक राज्य की स्थापना।

* "By the grace and mercy of Almighty God this difficult affair was made easy to me and that mighty army in the space of half a day, was laid in the dust."
—Tuzak-i-Babari.

* "To the Afghans of Dehli, the battle of Panipat was their canaille (rabble). It was the ruin of their dominion and the end of their power." —Lane-Poole.

स्थापना की। मुगलों में धर्मान्धता का सर्वथा अभाव था। उन्होंने राजनीति को धर्म से पृथक् कर दिया।

इस विजय के परिणामस्वरूप बाबर के हाथ में सम्पूर्ण पंजाब आ गया और उसने शीघ्र ही दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार किया। रशब्रुक विलियम्स के अनुसार 'इस युद्ध में विजयी होने से बाबर के दुर्दिनों का अन्त हो गया और उसको अब अपने प्राणों तथा सिंहासन की सुरक्षा के लिये चिन्ताग्रस्त होने की आवश्यकता नहीं रही। उसको तो अब अपनी असीम शक्ति तथा प्रतिभा का प्रयोग अपने राज्य-विस्तार के लिये करना पड़ा।

बाबर की सफलता के कारण

यह नितान्त सत्य है कि बाबर को पानीपत के युद्ध में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई जिसके बहुत से कारण थे जिनमे प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(१) इब्राहीम का अमीरों के साथ दुर्व्यवहार—इब्राहीम लोधी का व्यवहार अमीरों तथा सैनिकों के साथ अच्छा नहीं था जिसके कारण वे उसके शत्रु हो गये और उसके शासन का अन्त करने के कुचक्र रचने लगे। इतना ही नहीं वरन् उन्होंने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। इब्राहीम को अकेले बाबर की सेना का सामना करना पड़ा। जनता भी उससे प्रसन्न नहीं थी। इब्राहीम को उसका भी सहयोग प्राप्त नहीं हुआ।

> **सफलता के कारण**
> (१) इब्राहीम का अमीरों से दुर्व्यवहार।
> (२) इब्राहीम की नव-प्रशिक्षित (नौसिखी) सेना।
> (३) इब्राहीम की सैनिक अनुभव-हीनता।
> (४) बाबर के पास तोपखाने का होना।
> (५) भारत में एकता का अभाव।

(२) इब्राहीम की नव-प्रशिक्षित (नौसिखी) सेना— इब्राहीम की सेना मुगलों की सेना की अपेक्षा बहुत कम सुसज्जित तथा सुसंगठित थी। अफगान सेना में अधिकांश नौसिखिए सैनिक थे जो बाबर के अनुभवी सैनिकों का सामना नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त अफगान सेना में न धार्मिक और न राष्ट्रीय उत्साह था जबकि मुगलों में भारत-विजय का उत्साह था और वे अपने नेता बाबर के व्यवहार तथा चरित्र बल से बड़े प्रभावित थे।

(३) इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता—बाबर तथा इब्राहीम लोधी के सैनिक गुणों मे आकाश-पाताल का अन्तर था। बाबर को युद्ध तथा सैनिक कार्यों का इब्राहीम की अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव था। इब्राहीम अपनी सेना की उचित व्यूह में रचना करने के वैज्ञानिक ढङ्ग से बिल्कुल परिचित न था। बाबर ने उसकी सेना को अपनी व्यूह-रचना में फंसा लिया।

(४) बाबर के पास तोपखाने का होना—बाबर के पास तोपखाना था जब कि इब्राहीम के पास इसका सर्वथा अभाव था। बाबर के पास बन्दूकें भी थीं। इनकी मार अफगान सेना सहन न कर सकी और वह शीघ्र ही तितर-बितर हो गई। इब्राहीम

की युद्ध-प्रणाली पूर्णतया प्राचीन थी जिसमें पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गये थे। अन्त में बाबर ने 'तुलुगमा' रणनीति का प्रयोग किया और उसके कारण उसको शीघ्र ही सफलता प्राप्त हुई।

(५) भारत में एकता का अभाव—भारत में एकता का सर्वथा अभाव था। समस्त भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। समस्त राज्यों के अपने निजी हित तथा स्वार्थ थे। उन्होंने सम्मिलित रूप से कार्य नहीं किया।

बाबर तथा राजपूत

पानीपत के रणक्षेत्र में विजयी होने के उपरान्त बाबर ने अपनी सेना का एक भाग आगरे तथा दूसरा भाग दिल्ली पर अधिकार करने के लिये भेजा। दोनों भागों को अपने उद्देश्य तथा कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इसके उपरान्त बाबर ने दिल्ली में प्रवेश किया। वहां से वह आगरा गया और इब्राहीम लोधी के महल में निवास करने लगा। यद्यपि भारत के कुछ भागों पर उसका अधिकार स्थापित हो गया था, किन्तु अभी उसको राजपूतों की सैनिक शक्ति का सामना करना शेष था जिसका दृढ़ संगठन राणा सांगा ने बड़ी योग्यता तथा तत्परता से किया था।* पुस्तक के प्रथम भाग में उसकी विजयों आदि का सविस्तार वर्णन किया जा चुका है। यहां तो केवल इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि उसकी शक्ति बहुत अधिक थी और राजपूताने के अधिकांश राजा उसको अपना स्वामी स्वीकार करते थे। उसकी सत्ता का अन्त किये बिना बाबर की पानीपत-विजय का कोई महत्व नहीं था। इधर राणा सांगा की यह धारणा थी कि बाबर दिल्ली और आगरे की लूट-मार कर स्वदेश वापिस चला जायेगा और फिर उसको स्वयं दिल्ली पर अधिकार करने का सुवर्ण अवसर प्राप्त होगा, किन्तु जब राणा सांगा ने यह अनुभव किया कि वह भारत में स्थायी रूप से राज्य की स्थापना करना चाहता है, तो दोनों के मध्य एक निर्णायक युद्ध होना अवश्यम्भावी हो गया।

युद्ध की तैयारियां—बाबर और राणा सांगा ने एक दूसरे पर विश्वासघात का आरोप लगाया। इसी समय राणा सांगा ने बियाना के शासक नियाम खां पर आक्रमण किया। नियाम खां ने राणा सांगा की सुसज्जित सेना का सामना करने में अपने को असमर्थ पाया। उसने बाबर से सहायता की प्रार्थना की। बाबर ने उसकी सहायता के लिये एक सेना भेजी जिसने बियाना पर नियाम खां का अधिकार सुरक्षित रक्खा। राणा सांगा इसे सहन न कर सका। उसने शीघ्र ही बियाना पर आक्रमण किया और उसको अपने अधिकार में कर लिया। मुगलों ने राजपूतों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की। इसी समय संयोग से हसन खां मेवाती राणा सांगा से मिल गया था जिसके पुत्र को बाबर ने पानीपत के युद्ध में बन्दी कर लिया था। बाद में उसको अपनी ओर मिलाने के अभिप्राय से बाबर ने उसके पुत्र को मुक्त कर दिया था, किन्तु इसका हसन

* "But he (Babar) had now to meet warriors of a high type than any he had encountered. The Rajputs energetic, chivalrous, fond of battle and blood shed, ... a strong national spirit were ready to meet face to face the boldest ... the camp, and were at all times prepared to lay down their life for ..."
—Lane-Poole.

खाँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परिस्थिति से बाध्य होकर बाबर भी अपनी सेना लेकर राणा सांगा तथा हसन खाँ मेवाती की सम्मिलित सेनाओं का सामना करने के लिये चल पड़ा। उसने सीकरी में पड़ाव डाला। राणा ने भी उसी ओर प्रस्थान किया और युद्ध की तैयारी में संलग्न हो गया। राजपूतों की एक सेना ने मुगलों पर आक्रमण किया जिसमें उनको सफलता प्राप्त हुई। इसी समय काबुल से एक ज्योतिषी आया जिसकी भविष्यवाणी ने मुगल सेना को हतोत्साहित कर दिया। किन्तु बाबर पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने अपने सैनिकों में धार्मिक तथा धर्म-लाभ का उत्साह भरने का प्रयत्न किया। उसने स्वयं मद्यपान न करने की शपथ ली और मद्यपान करने के बहुमूल्य पात्रों को तुड़वा कर दीन-दुखियों में वितरण करवाया। उसने अपनी सेना को एकत्रित कर एक बड़ा ओजस्वी भाषण दिया जिसका सैनिकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। भाषण यद्यपि संक्षिप्त था, किन्तु वास्तव में था बड़ा मार्मिक। वह इस प्रकार है—

'अमीरों तथा सैनिकों ! जो व्यक्ति इस संसार में आता है उसका अन्त निश्चय ही होगा। हम सबकी मृत्यु होगी और केवल एक खुदा ही शेष रहेगा। जो व्यक्ति जीवन का आनन्द लेते हैं उनको मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिये। जो इस सराय रूपी संसार में आता है उसको इस दुःखरूपी संसार से एक न एक दिन अवश्य प्रस्थान करना होगा। इसलिए गौरव के साथ मृत्यु का आलिंगन करना अपमान के साथ जीवित रहने से कहीं हितकर है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु सम्मान के साथ हो। मुझे गौरव प्राप्त हो। शरीर तो नश्वर है। खुदा का शुक्र है कि यदि इस युद्ध में हम लोग मृत्यु को प्राप्त होंगे तो हम शहीद कहलायगे और यदि जीवित रहेंगे तो इस संसार का उपभोग करेंगे। आइये, हम सब कुरान शरीफ की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करें कि उस समय तक युद्ध करते रहेंगे जिस समय तक हमारे शरीर में प्राण हैं।"

इस भाषण का मुगल सेना पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसमें नवीन साहस तथा उत्साह का संचार हुआ। फिर तो बाबर ने बड़े उत्साह के साथ युद्ध की तैयारियाँ करनी आरम्भ कीं। इसके साथ-साथ उसने कुछ भारतीय राजाओं को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह अपनी इस कार्य-सिद्धि में सफल नहीं हो सका। इस युद्ध में राणा सांगा की ओर से मुसलमानों ने भी युद्ध किया। इसी कारण इसको राष्ट्रीय युद्ध भी कहा जाता है।

✓ खनवा का युद्ध (१५२७ ई०)

बाबर और राणा सांगा के मध्य युद्ध खनवा नामक स्थान पर हुआ। बाबर ने पानीपत के समान अपनी सेना की व्यूह रचना की और समस्त सेना को तीन भागों में विभाजित किया। उसने अपनी सेना के आगे जंजीरों से जकड़ी हुई गाड़ियों तथा तिपाइयों की आड़ में तोप तथा बन्दूक चलाने वाले रक्खे। १७ मार्च १५२७ ई० को यह निर्णायक युद्ध बड़ी भीषणता से आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में राजपूतों को विजय प्राप्त हुई और वे मुगलों को पीछे हटाने में सफल हुये, किन्तु इसी समय सहायता आ जाने से मुगलों का साहस बढ़ गया और उन्होंने राजपूतों को धकेल दिया। मुगलों ने राजपूतों के बांये पक्ष पर आक्रमण किया। राजपूत इस आक्रमण को सहन न कर सके। 'तुलुगमा' ने

पीछे से राजपूतों पर प्रहार किया। राजपूत तोपों की मार सहन न कर सके और अन्त में बाबर की विजय हुई जो अपनी विजय से पूर्ण निराश हो चुका था।

खनवा के युद्ध का परिणाम—यह युद्ध बड़ा भीषण था और किसी भी दल की विजय निश्चित नहीं थी। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के शब्दों में शायद ही कोई दूसरा ऐसा घमासान युद्ध हुआ हो, जिसका निर्णय अन्त समय तक तुला में अटका रहा*। यह युद्ध भी पानीपत के समान निर्णायक हुआ।† राणा सांगा और उसके अफगान साथियों की पूर्ण पराजय हुई। राणा सांगा को अपनी जान की सुरक्षा के लिये युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। इस पराजय से राजपूतों की सैन्य-शक्ति तथा प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुंचा और पर्याप्त समय तक उनकी सैनिक शक्ति क्षीण हो गई।‡ किन्तु उनकी शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं हो सका। बाबर यद्यपि विजयी हुआ किन्तु उसको राजपूतों की वीरता तथा साहस के कारण राजपूताने को अपने अधिकार में करने का साहस नहीं हुआ। उसने १५२८ ई० में केवल चन्देरी दुर्ग की विजय की और उसी से उसको संतोष करना पड़ा, यद्यपि वहां के राजपूतों ने भी मुगल सेना का बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह के साथ सामना किया।

✓ राजपूतों की पराजय के कारण

राजपूतों में यद्यपि साहस और पौरुष का अभाव नहीं था तथा उन्होंने युद्ध में बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह का परिचय दिया, किन्तु युद्ध में मुगलों की सेना से पूर्णरूपेण परास्त हुये। उनकी पराजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(१) बाबर का सैनिक संगठन—बाबर की राजपूतों पर विजय होने का सबसे प्रमुख कारण बाबर का सैनिक संगठन था। (i) यद्यपि बाबर की सेना बहुत सुसंगठित तथा सुसज्जित थी। (ii) बाबर ने तोपों तथा बन्दूकों का प्रयोग किया जिनका राजपूतों के पास अभाव था। (iii) इसके अतिरिक्त राजपूत बन्दूक तथा तोपों की मार सहन नहीं कर सके। (iv) बाबर ने 'तुलुगमा' नीति का प्रयोग किया जिसने राजपूतों की सेना को चारों ओर से घेर लिया। (v) यद्यपि बाबर की सेना राजपूतों तथा अफगानों की सम्मिलित सेना की अपेक्षा बहुत छोटी थी, और राजपूतों की सेना विभिन्न सरदारों तथा सामन्तों की सम्मिलित सेना थी और उनमें संगठन तथा एकता का सर्वथा अभाव था (vi) मुगल सेना की गति बड़ी तेज थी, जबकि राजपूतों की सेना में यह अभाव था। (vii) राजपूतों की सेना विशाल होने के कारण थोड़ी सी गड़बड़ के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही तितर-बितर हो जाती थी।

(२) बाबर का व्यक्तित्व तथा सैन्य संचालन का अनुभव—बाबर का व्यक्तित्व बहुत उच्च कोटि का था। उसका अपनी सेना में सीधा सम्पर्क था। उसकी सेना

---

* "Hardly was any other battle so stubbornly contested with its issue hanging in the balance till almost its very end." —Dr. Shrivastava.

† "Kanwaha is one of the most decisive battle in the history of India." —Rushbrook Williams.

‡ "The menace of Rajput supremacy which had loomed large befor the eyes of the Mohammadans in India for the last ten years, was removed once for all." —Prof. Sharma

का उस पर पूर्ण विश्वास था और वह उसके लिये सदा सब कुछ करने को उद्यत रहती थी। राजपूत सेना में इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्पर्क का सर्वत्र अभाव था। बाबर को सैन्य-संचालन का बड़ा अनुभव था। यद्यपि राणा सांगा भी बहुत से युद्धों में भाग ले चुका था, किन्तु उसका अनुभव बाबर से कम था।

(३) सेना में धार्मिक उत्साह—मुगलों में धार्मिक उत्साह पर्याप्त था और उस उत्साह की वृद्धि करने में बाबर के ओजस्वी भाषण ने बड़ा योग प्रदान किया था राजपूतों मे इस प्रकार के उत्साह का बिल्कुल अभाव था और वे युद्धों से तंग आ गये थे, क्योंकि उनको राणा सांगा के नेतृत्व में विभिन्न युद्धों में भाग लेना पड़ा था, जिनसे उनको विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ था।

राजपूतों की पराजय के कारण
(१) बाबर का सैनिक संगठन।
(२) बाबर का व्यक्तित्व तथा सैन्य-संचालन का अनुभव।
(३) मुगल सेना में धार्मिक उत्साह।
(४) बाबर को अवकाश प्राप्ति।
(५) सलादी का विसवासघात।

(४) बाबर को अवकाश प्राप्ति—बाबर को अपनी सैनिक तैयारियों तथा व्यूह रचना के लिये पर्याप्त समय प्राप्त हो गया था जिसका उसने पूर्णरूपेण सदुपयोग किया। उसने बहुत दृढ़ मोर्चाबन्दी की थी जिसका टूटना असम्भव था। यदि युद्ध कुछ समय पूर्व आरम्भ हो गया होता और बाबर को व्यूह-रचना का अवकाश प्राप्त नहीं होता तो सम्भव ही नहीं, पूर्ण आशा थी कि युद्ध में उसकी पराजय होती और राजपूत विजयी होते और भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

(५) सलादी का विश्वासघात–राजपूतों के अनुसार राणा सांगा की पराजय का कारण सालदी का विश्वासघात था जिसने महत्वपूर्ण अवसर पर राणा सांगा का साथ परित्याग कर बाबर की ओर से युद्ध किया।

✓ घाघरा का युद्ध (१५२६ ई०)

पानीपत के युद्ध ने अफगानों की सत्ता का दिल्ली, पंजाब आदि प्रदेशों से अन्त कर दिया था, किन्तु इन्होंने भारत के पूर्वी प्रदेशों में शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया। वे बाबर की सत्ता का अन्त करने के अन्तिम प्रयास में संलग्न हुए। महमूद लोधी ने बिहार को अपने अधिकार में किया और दोआब के मुगल प्रदेशों को अपने अधिकार में करने के लिये प्रयत्न करने लगा। उसने कन्नौज पर अधिकार कर मुगल सेना को वहाँ से भागने के लिये बाध्य किया। बाबर उसे सहन नहीं कर सका और उसने तुरन्त अपनी सेना लेकर २ फरवरी १५२८ को उस ओर प्रस्थान किया। उसने युद्ध में अफगानों को परास्त किया। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर वह वापिस लौट आया। कुछ समय उपरान्त उसको समाचार मिला कि अफगानों ने अपनी शक्ति को पुनः संगठित कर लिया है। अब की बार उसने उनका पूर्णरूपेण दमन करने का निश्चय किया और वह विशाल सेना लेकर चल पड़ा। उन्होंने (अफगानों) चुनार का घेरा डाला, किन्तु बाबर के

आगमन का समाचार ज्ञात होने पर वे बंगाल की ओर भाग गये। बाबर उनका पीछा करता हुआ बंगाल की ओर बढ़ा और उसने घाघरा के युद्ध में ६ मई १५२९ ई० को बंगाल के शासक नसरत शाह को बुरी तरह परास्त किया। इस पराजय के कारण अफगानों की शेष आशा भी समाप्त हो गई और उनकी शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा। नसरत शाह ने बाबर के साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे की राजसत्ता स्वीकार की और विद्रोहियों को शरण न देना स्वीकार किया। इस सन्धि के सम्पन्न होने पर बाबर वापिस लौट आया।

बाबर की विजय के कारण

(१) इब्राहीम लोधी का दुर्व्यवहार।
(२) इब्राहीम की नौ-सिखी सेना।
(३) इब्राहीम की अनुभवहीनता।
(४) बाबर के पास तोपखाने का होना।
(५) युद्ध-प्रणाली में अन्तर।
(६) बाबर द्वारा तुलुगमा नीति का प्रयोग।
(७) बाबर का व्यक्तित्व।
(८) अफगानों में उत्साह की कमी।
(९) भारतीयों में उत्साह का अभाव।
(१०) बाबर को अकस्मात प्राप्ति।

✓ **बाबर की विजय के कारण**—बाबर को भारत-विजय के लिये तीन युद्ध करने पड़े। प्रथम युद्ध उसके और इब्राहीम लोधी के बीच पानीपत के रणक्षेत्र में १५२६ ई० में हुआ, द्वितीय युद्ध उसके और राणा साँगा के बीच खानवा नामक स्थान पर १५२७ ई० में हुआ तथा तृतीय युद्ध उसके और अफगानों के बीच घाघरा नामक स्थान पर सन् १५२९ ई० में हुआ। इन तीनों युद्धों में उसको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उसके कारण निम्नलिखित थे—

(१) **इब्राहीम लोधी का दुर्व्यवहार**—इब्राहीम लोधी ने अपने सरदारों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया जिसके कारण वे उसके विरोधी हो गये और उसके शासन का अन्त करने के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। जब वे उसमें सफल न हुए तो उन्होंने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया।

(२) **इब्राहीम की नौसिखी सेना**—इब्राहीम को यद्यपि युद्धों का पर्याप्त अनुभव था, किन्तु वह एक योग्य तथा कुशल सेनापति नहीं था। उसको बाबर के समान युद्ध का ज्ञान नहीं था। उसकी सेना दृढ़ तथा सुसंगठित नहीं थी। जबकि इसके विपरीत बाबर की सेना पर्याप्त दृढ़ तथा सुसंगठित थी और उसको युद्धों का बहुत अधिक अनुभव प्राप्त था। इब्राहीम की सेना नौसिखी थी और उसमें धार्मिक व राष्ट्रीय उत्साह का लेशमात्र अंश नहीं था जबकि बाबर की सेना में ये दोनों भावनाएं पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थीं।

(३) **इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता**—बाबर तथा इब्राहीम लोधी के सैनिक गुणों में आकाश-पाताल का अन्तर था। बाबर को युद्ध तथा सैनिक कार्यों का उसकी अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव था। इब्राहीम अपनी सेना का संगठन युद्ध-क्षेत्र में ठीक ढंग से नहीं कर सका। इसके विपरीत बाबर ने व्यूह की रचना कर इब्राहीम को इसके अन्दर बंद किया।

(४) बाबर के पास तोपखाने का होना—बाबर के पास तोपखाना था और भारतीयों के पास इसका सर्वथा अभाव था। बाबर के पास बन्दूकें थीं जिनका दूर से प्रयोग किया जा सकता था। इनकी मार को भारतीय सैनिक सहन नहीं कर सके और उनकी सेना शीघ्र ही तितर-बितर हो गई।

(५) युद्ध-प्रणाली में अन्तर—भारतीयों की युद्ध-प्रणाली पूर्णतया प्राचीन थी। यह बहुत अधिक दोषपूर्ण थी। भारतीय हाथियों पर अधिक विश्वास करते थे, किन्तु वे तोपखाने और बन्दूकों की मार व आवाज से भयभीत होकर अपनी ही सेना का विध्वंस करने लगते थे। राजपूत आमने-सामने के युद्ध को अच्छा समझते थे और उसकी ही उनको विशेष जानकारी थी।

(६) बाबर द्वारा तुलुगमा नीति का प्रयोग—बाबर ने युद्धों में तुलुगमा नीति का प्रयोग किया। उनकी विजय का यह एक बहुत बड़ा कारण था।

(७) बाबर का व्यक्तित्व—बाबर का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह अपने सैनिकों तथा पदाधिकारियों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था। वे उसके लिए अपने प्राणों को भी बलिदान करने तक से नहीं हिचकते थे। बाबर स्वयं बड़ा साहसी तथा वीर था। उसको युद्ध से प्रेम हो गया था और भयंकर परिस्थिति के उत्पन्न होने पर भी वह कभी नहीं घबराता था। वरन् वह इसका वीरता तथा अदम्य उत्साह से सामना करने को उद्यत रहता था।

(८) अफगानों में उत्साह की कमी—अफगानों में उत्साह की कमी पानीपत की पराजय के कारण बहुत अधिक हो गई थी। इसी कारण बाबर घाघरा के युद्ध में सरलतापूर्वक विजय प्राप्त करने में सफल हो सका।

(९) भारतीयों में एकता का अभाव—भारत की राजनीतिक स्थिति के कारण भारतीयों को एक दूसरे पर विश्वास नहीं था। सलादी ने राणा सांगा के साथ विश्वासघात किया।

(१०) बाबर को अवकाश प्राप्ति—बाबर को अपनी सैनिक तैयारियों तथा व्यूह-रचना के लिये खनवा के युद्ध से पूर्व पर्याप्त समय प्राप्त हुआ जिसका उसने सदुपयोग किया। यदि युद्ध कुछ समय पूर्व आरम्भ हो गया होता तो बाबर को सफलता प्राप्त होनी कठिन थी।

बाबर की मृत्यु

अकथनीय परिश्रम करने के कारण बाबर का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन खराब होने लगा। बाबर के प्रधान मन्त्री ने उसके पुत्र हुमायूं के स्थान पर बाबर के बहनोई मुहम्मद मेंहदी ख्वाजा को राज्यसिंहासन पर आसीन करने का षड्यन्त्र रचा। इस समय हुमायूं बदख्शां में था। जब हुमायूं को यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह शीघ्र ही आगरे की ओर चल पड़ा। उसके आते ही षड्यन्त्रकारियों का हृदय टूट गया और इसके साथ-साथ इनके षड्यन्त्र का भी अन्त हो गया। इधर से निश्चित होकर हुमायूं अपनी जागीर सम्भल की देख-रेख के लिये चला गया। इसी समय १५३० ई० के ग्रीष्मकाल में हुमायूं बहुत बीमार पड़ा। अब कुछ उपचार करने के उपरान्त भी उसके स्वास्थ्य में

कोई उन्नति नहीं हुई और उसकी बीमारी दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। इसी समय बाबर को एक ज्योतिषी ने बताया कि हुमायूं का रोग केवल उस समय ठीक हो सकता है जब बाबर अपनी कोई अमूल्य वस्तु दान करे। बाबर ने विचार किया कि उसके पास सबसे मूल्यवान वस्तु उसका अपना जीवन है। अतः उसने निश्चय किया कि हुमायूं की रक्षा के लिये वह अपने प्राणों का बलिदान करेगा। ऐसा संकल्प कर उसने हुमायूं के पलंग के तीन चक्कर लगाये और ईश्वर से प्रार्थना की कि हुमायूं शीघ्र स्वस्थ हो जाय। ऐसा कहा जाता है कि उसी समय से हुमायूं अच्छा होने लगा और बाबर ने रोग-शैय्या पकड़ ली। २६ दिसम्बर सन् १५३० ई० को यह वीर सेनानी तथा मुगल साम्राज्य का संस्थापक मृत्यु का ग्रास बन गया।*

बाबर का चरित्र तथा मूल्यांकन

सभी इतिहासकारों ने बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्तव में उसकी प्रशंसा में सत्य का बहुत बड़ा स्थान है।

रशब्रुक विलियम्स (Rushbrook Williams) के अनुसार 'बाबर दृढ़ तथा उच्च निर्णय करने वाला महत्वाकांक्षी, विजय प्राप्त करने की कला का ज्ञाता, शासन की कला से परिचित, जनता का शुभचिन्तक, सिपाहियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाला तथा न्यायप्रिय शासक था।'†

विंसेन्ट स्मिथ (V. Smith) के अनुसार 'बाबर अपने काल के एशिया के बादशाहों में सबसे अधिक देदीप्यमान था और किसी भी काल अथवा देश के सम्राटों में वह उच्च स्थान पर आसीन होने के योग्य है।‡

हैवेल (Havell) के अनुसार "बाबर अपने मनोरम, व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण इस्लाम के इतिहास में सबसे अधिक चित्ताकर्षक बन गया।"**

बाबर व्यक्ति के रूप में—बाबर का व्यक्तिगत जीवन आदर्श था। (i) योग्य पुत्र और योग्य पिता—वह एक योग्य पुत्र और एक योग्य पिता था। उसने हमेशा अपने पिता की आज्ञाओं का पालन किया और उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाया। उसका अपने पुत्रों के साथ विशेष सद्व्यवहार था। वह उनको बहुत प्रेम करता था। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि उसने अपने पुत्र हुमायूं के जीवन की रक्षा के लिये अपने

* "He passed away in his beautiful garden at Agra on the 26 th of December 1530, a man of only forty-eight, a King for thirty-years crowned with hardships, tumult and strenuous energy but he lies at peace in his grave in the garden he built at Kabul, the sweetest spot, which he had closer for himself." —Lane Poole

† "A lofty judgment, noble ambition, the art of victory, the art of government, the art of conferring prosperity upon his people, the talent of ruling midly the people of God, ability to win the hearts of his soldiers and love of justice." —Rushbaooke Williams.

‡ "Babar was the most brilliant Asiatic Prince of his age and worthy of a high place among the sovereigns of any age or country." —Vincent Smith.

** "He (Babar's) engaging personality, artistic temperament and romantic made him one of tht most attractive figures in the history of Islam —Havell

प्राणों का बलिदान कर दिया तथा मरते समय उसने हुमायूं को अपने छोटे भाइयों से दया तथा प्रेम का व्यवहार करने का आदेश दिया। *(ii) सम्बन्धियों से सद्व्यवहार*—उसके अपने अन्य सम्बन्धियों से भी अच्छे सम्बन्ध थे। अपने बड़ों के प्रति उसमें आदर तथा श्रद्धा के भाव रहे। *(iii) पत्नियों के प्रति अनुरक्त*—वह अपनी पत्नियों के प्रति भी पूर्णरूप से अनुरक्त था। **(iv) मित्रों का मित्र**—वह अपने मित्रों का मित्र था और सदा उनकी सहायता भी करने को तत्पर रहता था। **(v) नैतिकता का होना**—उसमें नैतिकता भी विद्यमान थी जो तत्कालीन तथा उसके देश के निवासियों में कम होती थी। **(vi) मद्यपान का दास न होना**—वह मद्यपान करता था, किन्तु वह उसका दास नहीं था। **(vii) साहसी कार्यों के प्रति प्रेम**—उसको साहसी कार्यों में अनुरक्ति थी। वह भयानक परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता था, वरन् उनका सामना करने में उसको आनन्द आता था। **(viii) शारीरिक बल की बहुलता**—उसमें शारीरिक बल बहुत था जिसके कारण उसके मित्रों ने उसको बाबर (शेर) की उपाधि से सुशोभित किया। उसने भारत की अधिकांश नदियाँ तैर कर पार की। वह अपनी बगल में दो व्यक्तियों को दबाकर दुर्ग की चाहर-दीवारी की छत पर बड़ी सुगमता से भाग सकता था।

(२) बाबर विद्वान के रूप में—बाबर बड़ा विद्वान् था। उसको साहित्य के साथ-साथ ललित कलाओं से भी अनुराग था। वह प्राकृतिक सौंदर्य का विशेष प्रेमी था तथा वह व्यक्ति और जीवन के बहुरंगी रूपों का दर्शन बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से करता था। वह स्वयं साहित्यकार था। वह विद्वानों और साहित्यकारों का बड़ा आदर करता था। और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। वह स्वयं उच्च कोटि का कवि था। उसकी रचना 'बाबरनामा' तथा 'दीवान' का स्थान साहित्य में बहुत ऊंचा है। उसका तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं पर प्रभुत्व था, वह संगीत का भी प्रेमी था।* डा० आशीर्वादी लाल के शब्दों में "वैसे तो बाबर में एक विद्वान् की सभी विशेषतायें विद्यमान थीं, *फिर भी उसे एक सैनिक विद्वान् कहना ठीक होगा। वह सैनिक पहले था विद्वान् बाद में।* उसकी विद्वता तथा संस्कृति ने उसके अविश्रान्त सैनिक कार्य-कलापों में कोई बाधा *नहीं डाली और न इसके द्वारा उसके अन्दर उन अतिशय कोमल भावनाओं का ही उदय* हुआ, जो प्रायः विद्वता के साथ सम्बन्धित रहती हैं।'

(३) बाबर के धार्मिक विचार—बाबर पक्का सुन्नी मुसलमान था, किन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। उसकी धार्मिक नीति बड़ी उदार थी और उसने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कठोर एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया। उसने अन्य धर्मों के अनुयायियों के साथ राजनीतिक मित्रता की। उसने फारस के शाह इस्माइल सफवी से सन्धि की और उसने शियाओं के साथ सद्व्यवहार किया। उसका ईश्वर की सत्ता में विश्वास था और वह अपनी विजय के उपरान्त उसका लाख-लाख धन्यवाद किया

* "Babar himself will break off in the middle *of a tragic story to quote a* verse and he found leisure in the thick of his difficulties and danger to compose an ode on his misfortunes. His battles as well as his orgies were humanized by breath of poetry."
—Lane poole.

करता था। भारत में उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर राणा सांगा के विरुद्ध युद्ध को जिहाद (धार्मिक युद्ध) के नाम से सम्बोधित किया और अपने सैनिकों के हृदय में धार्मिक भावना को प्रोत्साहित किया। उसने भारत के प्रसिद्ध पवित्र स्थान अयोध्या में एक मस्जिद का निर्माण हिन्दुओं की धार्मिक भावना पर कुठाराघात करने के अभिप्राय से करवाया। हिन्दुओं पर चुंगी लगी रही जबकि मुसलमान उससे पूर्णतया मुक्त थे। इतना सब कुछ होते हुए भी यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों की अपेक्षा उसकी नीति हिन्दुओं के साथ विशेष उदार थी।

(४) बाबर सैनिक तथा सेनापति के रूप में—सैनिक तथा सेनापति के रूप में बाबर का स्थान बहुत ऊंचा है। बाल्यकाल से ही उसका जीवन युद्धों में व्यतीत हुआ और उसका अधिकांश जीवन सैनिक जीवन ही था। वह "एक प्रशंसनीय घुड़सवार, कमाल का निशानेबाज, योग्य तथा कुशल तलवार-चालक और उच्च-कोटि का शिकारी था।" उसमें असीम शारीरिक बल था। वह एक कुशल सेनापति तथा मानव-जाति का नेता था। उसका अपने सैनिकों से बड़ा अच्छा व्यवहार था जिसके कारण वे उसके लिये अपने जीवन की बाजी तक लगाने को प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। वह हर समय उनके दुःख-सुख में साथी रहता था। इसके साथ-साथ उनका सैनिक अनुशासन बड़ा कठोर था। युद्ध के समय वह उनसे खूब काम लेता था और अनुशासन भंग करने वालों के साथ वह कठोर व्यवहार करता था और उनको कठोर दण्ड दिया करता था। उसने मध्य एशिया की प्रचलित युद्ध-कला का भारत में प्रयोग किया जिससे उसको बड़ी सफलता प्राप्त हुई। उसका सैन्य-संचालन तथा संगठन बहुत उच्च कोटि का था। इसी कारण वह बड़ी-बड़ी तथा विशाल सेनाओं को परास्त करने में सफल हुआ। रशब्रुक विलियम्स के शब्दों में "युद्ध-क्षेत्रों की पराजय, साहसपूर्ण घुमक्कड़ी और विभिन्न घोर जातियों से सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित करने के अनुभवों पर ही बाबर एक उच्च कोटि का सेनापति बन सका था।"

(५) बाबर शासक के रूप में—बाबर शासक के रूप में भी सफल रहा। उसने भारत में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना की। उसने आवागमन के मार्गों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया ताकि चोर-डाकू यात्रियों को न लूट सकें। उसने सरकारी कर्मचारियों पर भी नियन्त्रण रखा जिससे वे जनता को कष्ट न पहुँचा सकें। उसने प्रजा की सुविधा का सदा ध्यान रखा।

(६) बाबर कूटनीतिज्ञ के रूप में—बाबर एक सफल कूटनीतिज्ञ था। बाल्यकाल से ही उसने अपने इस अद्वितीय गुण का परिचय दिया। जब फरगना पर कासे बादल मंडरा रहे थे तो उसने अपने चचा अहमद मिर्जा को जो सन्देश भेजा जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है वह पूर्णतया सिद्ध करता है कि बाबर में यह गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। उसने इब्राहीम लोधी के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके अमीरों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा उनको आपस में भिड़ाया। इस सम्बन्ध में डेनीसन रोस का कथन है "जिस रीति से उसने सुल्तान इब्राहीम के विरोधी सामन्तों को आपस में एक दूसरे से भिड़ाया, वह किसी

मैकियावैली के अनुरूप ही थी।"

बाबर शासन-प्रबन्धक के रूप में—बाबर में शासन-प्रबन्धक की प्रतिभा उच्च कोटि की नहीं थी। उसमें शेरशाह तथा अकबर के समान रचनात्मक बुद्धि का सर्वथा अभाव था। उसने समस्त पुरानी संस्थाओं को यथावत् रखा और उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन तथा नवीनता प्रदान नहीं की। उसके शासन-काल में शासन सम्बन्धी सुधार नहीं हुए। उसने लोधियों के समय की शासन-व्यवस्था को ही अपनाया। उनका समस्त साम्राज्य सामन्तों तथा जागीरदारों में विभक्त था। उनको अपने क्षेत्रों में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। उसने किसानों की उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसको अर्थ-सम्बन्धी ज्ञान लेश-मात्र भी नहीं था। उसने साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को उन्नत करने का तनिक भी प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत उसने साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को डांवाडोल कर दिया। उसका राज-कोष रिक्त था और जो कुछ उसको लोधियों से प्राप्त हुआ था वह सब उसने समाप्त कर दिया। उसको शीघ्र ही अनुभव हुआ कि धन के अभाव में शासन-व्यवस्था का चलाना असम्भव है। अतः उसने कर लगाये, किन्तु इनके द्वारा भी आर्थिक समस्या का समाधान नहीं हो पाया। हुमायूं को इन सबका दुःखद परिणाम भोगना पड़ा। इसी आधार पर रशब्रुक विलियम्स का यह कथन है कि "बाबर ने अपने पुत्र के लिये एक ऐसा राज्य छोड़ा जो केवल युद्धकालीन परिस्थितियों में ही सुसंगठित रह सकता था, शान्तिकाल के लिये वह पूर्णतया निर्बल तथा निकम्मा था।"

बाबर का मूल्यांकन

बाबर के चरित्र के अध्ययन तथा उससे सम्बन्धित बातों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबर का स्थान इतिहास में बहुत उच्च था। बाबर के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचारों से यह सिद्ध होता है। उसके सम्बन्ध में प्रमुख इतिहासकारों के मत निम्नलिखित हैं—

विन्सेंट स्मिथ के अनुसार "बाबर अपने काल के एशिया के सम्राटों में सबसे अधिक दैदीप्यमान था और वह किसी भी काल अथवा देश के सम्राटों में उच्च स्थान प्रदान करने योग्य है।"

हैवेल के अनुसार "बाबर अपने मनोरथ, व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण इस्लाम में सबसे अधिक चित्ताकर्षक था।"

इलियट के अनुसार 'यदि बाबर की शिक्षा यूरोप में हुई होती तो वह अच्छे स्वभाव का वीर, दयालु, बुद्धिमान तथा स्पष्टवादी होने के कारण हेनरी चतुर्थ का स्थान प्राप्त करता।"

वास्तव में वह उन समस्त गुणों से परिपूर्ण था जो एक सम्राट में होने आवश्यक थे। वह एक कुशल विजेता, योग्य सेनानी, उच्च कोटि का कवि तथा साहित्यकार था। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। उसका स्वभाव बड़ा अच्छा था। इस प्रकार उसमें एक सम्राट तथा एक व्यक्ति की प्रतिभा विद्यमान थी, किन्तु इस सम्बन्ध में इतना अवश्य याद रखना चाहिये कि यदि उसका पुत्र हुमायूं पुनः भारत का राज्य विजित करने में

सफल नहीं होता और उसका पौत्र अकबर एक महान् साम्राज्य की स्थापना न कर पाता तो उसका नाम भारतीय इतिहास में वैसी प्रकार शून्य पर प्राप्त करता जो उसको मध्य एशिया में प्राप्त हुआ।

बाबर द्वारा अपनी आत्म-कथा में भारत का वर्णन

जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि बाबर ने अपनी आत्म-कथा (तुजुक-ए-बाबरी) तुर्की भाषा में लिखी और उसकी गणना उच्च कोटि के साहित्य में की जाती है। उसने अपनी इस पुस्तक में भारत का वर्णन किया है जिसको निम्न पंक्तियों में उद्धृत किया जाता है।

"हिन्दुस्तान ऐसा देश है जिसमें थोड़े ही सौंदर्य हैं। यहां के लोग देखने में सुन्दर नहीं होते। इनमें सामाजिक व्यवहार तथा एक दूसरे के यहां आना-जाना नहीं होता। इनमें प्रतिभा तथा योग्यता नहीं होती। इनमें सद्व्यवहार नहीं होता। हस्तकला तथा अन्य कार्यों में कोई स्वरूप तथा सुडौलपन नहीं होता। उनमें न कोई ढंग होता है और न कोई गुण होता है। यहां के बाजारों में न पका भोजन, न यहां अच्छे घोड़े, न अच्छे कुत्ते, न अंगूर, न तरबूज, न उत्तम फल, न बर्फ, न ठण्डा पानी, न अच्छी रोटी, न उष्ण स्नानागार, न कालेज, न बत्ती, न मशाल और न मोमबत्ती पाई जाती हैं। बड़ी-बड़ी नदियों तथा पहाड़ी झरनों के पानी को छोड़कर जो कन्दराओं अथवा खोहों में बहता है उनके उपवनों में तथा घरों के पास प्रवाहित जल दिखलाई नहीं देता। घर न हवादार होते हैं और न सुन्दर। किसान तथा निम्न वर्ग के लोग इधर-उधर नंगे जाते हैं। यह लोग सौजन्यता के लिये एक प्रकार का वस्त्र पहनते हैं जो लंगोटा कहलाता है और टूंडी से दो बालिश्त नीचे होता है। इस लंगोटे में एक और कपड़ा लगा रहता है जो जांघों के बीच से जाता है और पीछे बांध दिया जाता है। औरतें भी लांग बांधती हैं जिसका आधा भाग कमर के चारों ओर बंधा रहता है और दूसरा भाग सिर पर रहता है। हिन्दुस्तान की चित्ताकर्षक चीजें यह हैं कि यह एक विशाल देश है और सोने तथा चांदी का ढेर लगा रहता है। इसकी हवा वर्षा ऋतु में बहुत अच्छी होती है। कभी-कभी एक दिन में १६ या १५ अथवा २० बार वर्षा हो जाती है। कभी-कभी ऐसी मूसलाधार वर्षा होने लगती है और जहां पर पानी नहीं था वहां पर नदी बहने लगती है। जब पानी बरसता है तो हवा बड़ी बढ़िया लगती है और इससे बढ़कर स्वास्थ्यवर्धक तथा मनोरम कोई दूसरी हवा नहीं हो सकती। दोष केवल इतना ही है कि हवा अत्यन्त मुलायम तथा नम हो जाती है। उन देशों (ट्रान्सओक्सियाना) का धनुष भारत में वर्षा के आ जाने के उपरान्त खींचा भी नहीं जा सकता। वह बिल्कुल नष्ट हो जाता है। न केवल धनुष वरन् अस्त्र, पुस्तक, कपड़े, बर्तन सभी वस्तुओं पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। न केवल वर्षा ऋतु में वरन् शीत तथा ग्रीष्म ऋतु में भी हवा मनोरम होती है। परन्तु उन दिनों उत्तर-पश्चिम से निरन्तर हवा चलती है जो धूल तथा मिट्टी से भरी रहती है। लोग इसे आंधी कहते हैं। गर्मी के दिनों में गर्मी उतनी असह्य तथा उतने अधिक दिनों तक नहीं पड़ती जैसा कि बल्ख व कन्दहार में। हिन्दुस्तान की दूसरी अच्छी बात है कि यहां पर हर प्रकार के असंख्य तथा अनन्त श्रमजीवी मिलेंगे। हर-एक

ार्य के लिए एक जाति होती है, जिसका यह परम्परागत पेशा होता है।"

बाबर ने जो भारतीयों की निन्दा की उसमें कोई सार नहीं है। प्राकृतिक वर्णन सने बड़ा अनुपयुक्त किया। इसका कारण यह था कि वह बहुत कम समय भारत में हा, और वह सभ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्तियों के सम्पर्क में बहुत कम आया। इस सम्बन्ध लेनपूल का कथन है कि यदि बाबर और अधिक समय भारत मे निवास करता और हां के लोगों का और अधिक निरीक्षण करता तो वह इस प्रकार की निन्दीय आलोचना करता।

✓ क्या बाबर मुगल-साम्राज्य का निर्माता था ?

यह प्रश्न बड़ा विवादग्रस्त है कि बाबर मुगल साम्राज्य का निर्माता था। बाबर ने पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में इब्राहीम लोधी को तथा खनवा के युद्ध-क्षेत्र में राणा सांगा को परास्त कर भारत में एक नये राजवंश की स्थापना की। उसने घाघरा के युद्ध में अफगानों को भी परास्त किया जिससे अफगानो की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। यद्यपि उसने उत्तरी भारत के पर्याप्त भाग पर अधिकार किया, किन्तु उसका यह अधिकार केवल सैनिक था। वह साम्राज्य की वास्तविक स्थापना करने मे सफल नहीं हो सका, क्योंकि वह उसको सुदृढ़ शासन का रूप प्रदान करने मे असफल रहा। उसका अधिकांश समय विजयो में व्यतीत हुआ और उसने शासन-प्रबन्ध को उन्नत तथा प्रजा के हृदय पर अधिकार करने के लिये कोई कदम नही उठाया। उसका मुख्य उद्देश्य नव-विजित राज्य की सुरक्षा ही था और उसमे ही उसका जीवन व्यतीत हुआ। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं को जो *राज्य प्रदान किया वह निर्मूल तथा निराधार था जिसके कारण* हुमायूं को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अन्त मे हुमायूं को भारत से पलायन करना पड़ा। भारत पर अफगानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। वास्तव में बाबर एक कुशल सेनापति तथा योग्य सैनिक था किन्तु उसमें कुशल शासक के गुणों का पूर्णतया अभाव था। इसीलिये वह नव-विजित राज्य को दृढ़ता प्रदान नहीं कर सका। इसी आधार पर कहा जाता है कि वह मुगल साम्राज्य का निर्माता नहीं था और उसको भारत-विजय का महत्व केवल सैनिक दृष्टि से ही था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) भारत में बाबर की कृतियों का वर्णन कीजिये। (१६५३)

(२) आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं कि 'बाबर मुगल साम्राज्य का निर्माता था।' अपने विचारों की व्याख्या सविस्तार कीजिये। (१९५५)

(३) बाबर ने अपनी आत्म-कथा 'तुजके बाबरी' में भारत की तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक दशाओं का विवरण दिया है ? सविस्तार बताइये। (१९५६)

(४) राणा सांगा पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५६)

(५) बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व का वर्णन कीजिये और भारत में उसकी सफलता के कारणों का उल्लेख कीजिये। (१९६०)

(६) बाबर के आक्रमणों से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था का परिचय दीजिये। (१९५४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख करो। (१९५०)

(२) 'बाबार राज्य को दृढ़ बनाने में असफल रहा। वह केवल एक सेनापति तथा सैनिक था।' क्या यह कथन बाबर के चरित्र तथा उसकी सफलता का उचित चित्रण करता है? (१९५२)

(३) 'मध्यकालीन इतिहास में बाबर सबसे अधिक दिलचस्प व्यक्ति था? राजकुमार, सैनिक, विद्वान् के रूप में वह मध्य युग के व्यक्तियों में सबसे उन्नत था। विवेचना करो। (१९५५)

मध्य भारत—

(१) 'बाबर भाग्य से सिपाही था राज्य बनाने वाला नहीं, किन्तु उसने राज्य की नींव डाली जिसको उसके पोते अकबर ने प्राप्त किया।, इस कथन की विवेचना करो। (१९५२)

(२) बाबर के काल के मुगल अफगान संघर्ष का वर्णन करो। (१९५३)

२ अफगान-मुगल संघर्ष

हुमायूं का प्रारम्भिक जीवन—हुमायूं बाबर का ज्येष्ठ पुत्र था जिसका जन्म १५०८ ई० को काबुल में हुआ था। उसकी माता का नाम माहम बेगम था जो शिया धर्म की अनुयायी थी। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और उसको शीघ्र ही तुर्की, अरबी तथा फारसी भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त उसने गणित, दर्शन तथा ज्योतिष शास्त्रों का भी अध्ययन किया। बाबर ने उसको सैनिक शिक्षा भी प्रदान की। युद्ध की व्यवहारिक शिक्षा उसने अपने पिता के विभिन्न युद्धों में प्राप्त की। वह उन समस्त युद्धों में सम्मिलित रहा जो बाबर ने भारतवर्ष में किये। उसने इन युद्धों में अपनी सैनिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। पानीपत के युद्ध में हुमायूं ने मुगल सेना के दक्षिण-पक्ष का संचालन किया। इसके उपरांत उसने आगरा विजय किया। उसने ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य को बुरी तरह परास्त किया तथा पूर्व में अफगानों का दमन किया। बाबर ने उसके कार्यों से प्रसन्न होकर उसको कोहनूर हीरा, बहुत सा धन तथा सम्भल की जागीर भेंट-स्वरूप प्रदान की। जब बाबर का युद्ध राणा सांगा से हुआ तो बाबर ने उसको बुलवाकर ...पेना के अतिरिक्त भाग का संचालन सौंपा। इसी समय बदख्शां में विद्रोह का

अन्त करने के लिए बाबर ने उसको वहां भेजा, किन्तु वहाँ कुछ विशिष्ट कारणों से उसको पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी समय बाबर का स्वास्थ्य गिरने लगा और उसके प्रधान मंत्री खलीफा ने हुमायूं को राज्यसिंहासन से हटाने के अभिप्राय से षड्यन्त्र रचा। इसका समाचार पाकर वह तुरन्त आगरे आया और उसके आगरे आने से षड्यन्त्र विफल हो गया। वह अपनी सम्भल की जागीर की उचित व्यवस्था करने के लिये वहां गया जहां वह बहुत बीमार हो गया, किन्तु बाद में वह स्वस्थ्य हो गया। इसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है कि किस प्रकार बाबर ने अपना जीवन बलिदान कर अपने पुत्र के जीवन की रक्षा की।

हुमायूं

हुमायूं का राज्यसिंहासन पर आसीन होना—बाबर ने अपने प्रिय तथा ज्येष्ठ पुत्र को अपने जीवन काल में ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। २३ दिसम्बर १५३० ई० को बाबर की मृत्यु हुई और हुमायूं ३० दिसम्बर १५३० ई० को राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। बाबर की मृत्यु होने पर हुमायूं को राज्यसिंहासन से हटाने का पुनः षड्यन्त्र रचा गया किन्तु षड्यन्त्र के कार्यान्वित होने से पूर्व ही उसका अन्त कर दिया गया और हुमायूं बिना किसी विरोध के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

हुमायूं की प्रारम्भिक कठिनाइयां

यद्यपि हुमायूं निर्विरोध राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ, किन्तु उसके सामने विशेष कठिनाइयां उपस्थित थीं जिनका सामना उसको करना पड़ा। वास्तव में जिस राज्य-सिंहासन पर हुमायूं आसीन हुआ वह फूलों की शैय्या न होकर कांटों की शैय्या थी।* उसकी कठिनाइयां निम्नलिखित थीं—

(१) साम्राज्य में सुदृढ़ता का अभाव—हुमायूं एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बना जिसमें मध्य एशिया के कुछ प्रदेश तथा उत्तरी भारत के मध्य तथा पश्चिमी प्रदेश सम्मिलित थे। बाबर को अपनी तथा विजय के कारण अपने विशाल नवविजित साम्राज्य की सुव्यवस्थित व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, जिसके कारण साम्राज्य में अराजकता के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे।† साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक अमीर तथा सरदार अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की ताक में थे और वे उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

(२) सुसंगठित शासन-व्यवस्था का अभाव—बाबर ने भारत की शासन-

* "The throne to which Humayun succeeded was not a bed of roses."

† "Babar had bequeathed to Humayun a congeries of territories uncemented by any bond of union or of common interest except that which had been embodied in his life. In a word where he died the Mughal dynasty like the Muhammadan dynasties which had preceded it, had sent down no roots into the soil of Hindustan." —Malleson.

व्यवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। उसने मुख्यतः वही शासन-व्यवस्था को स्वीकार किया जो भारत में लोदियों के समय में प्रचलित थी। बाबर ने लोदियों के समान जागीर-प्रथा की व्यवस्था की जो शिथिल दोषपूर्ण थी। इसके अतिरिक्त बाबर ने इस बात का प्रयत्न भी नहीं किया कि भारतवासियों को अपनी ओर आकर्षित कर इनके सहयोग को प्राप्त करे और एक सुदृढ़ तथा सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न करे।

> **हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ**
>
> (१) साम्राज्य में सुदृढ़ता का अभाव।
> (२) सुसंगठित शासन-व्यवस्था का अभाव।
> (३) रिक्त राजकोष।
> (४) अफगानों के विद्रोह।
> (५) गुजरात के सुल्तान की शक्ति में वृद्धि।
> (६) राजपूतों का शक्ति संगठित करना।
> (७) सम्बन्धियों का विश्वासघात।
> (८) बन्धुओं का असहयोग।
> (९) हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलतायें।

(३) रिक्त राजकोष—बाबर ने भारत विजय द्वारा जो धन प्राप्त किया था उसका उसने अपव्यय किया जिसके परिणाम-स्वरूप राजकोष प्रायः रिक्त सा हो गया। ऐसी परिस्थिति में शासन-व्यवस्था का उचित रूप से संचालन करना तथा दृढ़ व सुसज्जित सैनिक संगठन की स्थापना करना नितान्त असम्भव था। हुमायूँ ने अपनी आर्थिक समस्या का निराकरण करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, वरन् उसने भी धन का अपव्यय किया जिसका दुखद परिणाम उसको भोगना पड़ा।

(४) अफगानों के विद्रोह—यद्यपि अफगान पराजित हो चुके थे, किन्तु वे पुनः अपनी सत्ता की स्थापना की चिन्ता में थे। सौभाग्य से उनको शेरशाह जैसा योग्य तथा प्रतिभाशाली सेनानायक तथा नेता प्राप्त हुआ जिसने अफगानों की समस्त बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित तथा संगठित किया और मुगलों के विरुद्ध कई वर्ष तक भीषण संघर्ष किये और अन्त में मुगलों को भारत से निकालने में सफल हुआ।

(५) गुजरात के सुल्तान की शक्ति में वृद्धि—गुजरात पर मेवाड़ के राणा सांगा का बड़ा नियन्त्रण था। उसके कारण वह उत्तर की ओर न बढ़ पाया। इस समय गुजरात पर बहादुरशाह का आधिपत्य था जो बड़ा साहसी तथा महत्वाकांक्षी था। राणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त उसने अपनी शक्ति को दृढ़ किया और उत्तर की राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया। हुमायूँ के लिये यह एक नई समस्या उत्पन्न हो गई।

(६) राजपूतों का शक्ति संगठित करना—यद्यपि राणा सांगा को खनवा के युद्ध में (१५२७) पराजय होने से तथा उसकी मृत्यु के कारण राजपूतों की शक्ति को बड़ा भारी आघात पहुँचा, किन्तु वे शान्त नहीं हुए और उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित करना आरम्भ कर दिया था।

(७) **सम्बन्धियों का विश्वासघात**—हुमायूँ की सबसे बड़ी हानि अपने दुम्बियों तथा सम्बन्धियों से हुई। ये लोग अपने आपको मिर्जा के नाम से सम्बोधित करते थे। ये तैमूर वंशी होने के कारण बाबर से रक्त का सम्बन्ध स्थापित करते थे। इनमें सबसे प्रमुख (i) मुहम्मद जमाल मिर्जा था। वह हिरात के सुल्तान हुसैन बैंकरा का पोता था और हुमायूँ की सौतेली बहन मासूमा सुल्ताना बेगम का पति था। वह बड़ा योग्य तथा अनुभवी सैनिक था। उसने बाबर के युद्धों में अपनी सैनिक योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। वह बड़ा चंचल तथा उपद्रवी था और दिल्ली के राज्यसिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहता था। इन्हीं मे हुमायूँ का दूसरा प्रमुख विरोधी (ii) मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था। वह भी तैमूर का वंशज था और खुरासान के सुल्तान की कन्या का पुत्र था। वह भी भारत के राज्यसिंहासन पर अपना दावा समझता था और उसको प्राप्त करने का इच्छुक था। वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। इनमें तीसरा (iii) मीर मुहम्मद मेंहदी ख्वाजा था जो बाबर का बहनोई था। उसने हुमायूँ को पदच्युत करने के अभिप्राय से बाबर के प्रधान मन्त्री खलीफा से गठ-बन्धन कर एक षड्यन्त्र रचा था जिसमें उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन तीनों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रान्तीय सूबेदार तथा जागीरदार थे जो बड़े महत्वाकांक्षी थे और नये बादशाह से प्रतिद्वन्द्विता रखने के बड़े इच्छुक थे।'

(८) **बन्धुओं का असहयोग**—हुमायूँ को न केवल अपने सम्बन्धियों तथा महान् सेनानायकों का ही असहयोग प्राप्त हुआ, वरन् उसके भाइयों ने भी उसके साथ विश्वासघात किया और स्वयं राज्य पर अधिकार करने के प्रयत्न किये। बाबर ने अपनी मृत्यु के अवसर पर हुमायूँ को अपने भाइयों से सद्व्यवहार करने का आदेश दिया था जिसका अक्षरशः पालन हुमायूँ ने किया। बाबर की मृत्यु पर उसने अपने भाइयों में समस्त राज्य का विभाजन किया। उसने कामरान को काबुल तथा कन्धार के प्रदेश प्रदान किये। इतने पर भी उसकी सन्तुष्टि नहीं हुई और वह भारतीय राज्य को सदा लालायित दृष्टि से देखता रहा। उसने अपने भाई अस्करी को सम्भल तथा हिंदाल को अलवर के प्रदेश दिये। इन दोनों ने हुमायूँ के सामने उस प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न नहीं की जिस प्रकार की कामरान ने की, किन्तु फिर भी प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल के शब्दों में 'सदैव दुर्बल तथा कपटी अस्करी तथा हिंदाल केवल इस दृष्टिकोण से आपत्तिजनक थे, कि महत्वाकांक्षी व्यक्ति उनको अपना अस्त्र बनाकर हुमायूं के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे।' इन भाइयों ने हुमायूँ की कठिनाइयों तथा समस्याओं का निराकरण करने के स्थान पर उसके सामने भीषण समस्यायें उत्पन्न कर दीं। इनमें से कोई भी योग्य तथा प्रतिभाशाली न था और न इनमें चरित्रबल था। हुमायूँ ने उनके साथ सदा सद्व्यवहार किया, किन्तु उन्होंने हुमायूँ की कठिनाइयों मे विशेष योग प्रदान किया।

(९) **हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलतायें**—हुमायूँ स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु था। उसके चरित्र में विभिन्न दोष विद्यमान थे जिनके कारण वह अपनी कठिनाइयों तथा आपत्तियों पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहा। नव-स्थापित मुगल राज्य को

इस समय एक महान् व्यक्ति की सेवाओं की आवश्यकता थी जिसमें सैनिक योग्यता, कूटनीतिक पटुता, दृढ़ प्रतिज्ञता, कठोरता आदि गुण विद्यमान होते।* वही व्यक्ति इस समय सफल हो सकता था। हुमायूं यद्यपि शिक्षित तथा साहित्यज्ञ था किन्तु उसमें उक्त गुणों का सर्वथा अभाव था। (i) वह परिस्थिति का भली प्रकार अध्ययन नहीं करता था और न उससे लाभ उठाने की क्षमता तथा योग्यता ही रखता था। (ii) उसके जीवन में उचित परिस्थितियां आईं जिनका वह अपने चरित्र की दुर्बलताओं के कारण लाभ नहीं उठा सका और उसने उनको जाने दिया। (iii) वह नशे का दास था। (iv) वह भोग-विलास तथा रंग-रेलियों में अपना अधिकांश समय नष्ट कर देता था।† (v) वह पूर्ण रूप से एक शत्रु को परास्त न कर दूसरे की ओर चल देता था जिसके कारण वह किसी भी शत्रु का दमन करने में सफल नहीं हुआ और इस नीति से शत्रुओं को अपनी सेना सुसंगठित करने तथा अपनी स्थिति सुधारने का समय मिल जाता था इसका परिणाम यह हुआ कि उसको १५ वर्ष तक निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा जिसमें उसको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

उसकी कठिनाइयों के सम्बन्ध में श्रीमप्रकाश मालवीय का कथन है कि 'बाबर की असामयिक मृत्यु ने मुगल साम्राज्य को एक भयावह और डांवाडोल परिस्थिति में डाल दिया था। बाबर की सफलता एक सैन्य-विजयमात्र थी। उसका प्रत्यक्ष शासन केवल पंजाब तथा वर्तमान उत्तर-प्रदेश के ही भूखण्डों पर था। इन प्रदेशों में भी शक्तिशाली अफगान सरदार स्वतन्त्र होने का अवसर ढूंढ़ रहे थे। राजपूत सरदार भी अभी पूर्णरूप से दबाये नहीं जा सके थे। उधर गुजरात का शक्तिशाली शासक बहादुरशाह भी मुगलों का विरोधी हो गया था। इन बाह्य कठिनाइयों के अतिरिक्त हुमायूं के सामने आन्तरिक कठिनाइयां तथा समस्यायें भी थीं। उसके तीनों भाई कामरान, अस्करी और हिंदाल बड़े महत्वाकांक्षी थे और हुमायूं का बादशाह होना उनको स्वीकार नहीं था। अपनी सेना पर हुमायूं पूरी तरह भरोसा नहीं रख सकता था क्योंकि उसकी सेना में चगताई, उजबेग, मुगल, फारसी, अफगान और भारतीय आदि विभिन्न जातियों के सैनिक विभिन्न स्थानों से आये थे और अलग-अलग भाषा बोलते थे। इनका नेतृत्व भी इनके अपने-अपने कबीलों के सरदार करते थे। विभिन्न दलों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण सेना में एकता की भावना उत्पन्न नहीं हो पाई थी। समय-समय पर कबीलों के सरदार सेना में अकारण ही उत्तेजना पैदा कर दिया करते थे, जिससे राज्य को किसी भी समय खतरा पहुँच सकता था। दरबार में भी महत्वाकांक्षी सरदारों का अभाव नहीं था जो हुमायूं का विरोध करने की सोचते थे।"

हुमायूं की प्रारम्भिक विजयें

जिस समय हुमायूं राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ वह चारों ओर से आपत्तियों से घिरा हुआ था और साम्राज्य के चारों ओर काले बादल मण्डरा रहे

* "It was a situation that called for boundless energy and soldierly genius." —Lane-Poole.

† "By nature he was more inclined to ease than ambition. He could fight odds and show skill in devising methods of a difficult sort. But when a battle was won, he would sit down to consume the captured treasure." —Elphinston.

थे, किन्तु उसने बड़े धैर्य तथा साहस से इन आपत्तियों का अन्त करने का प्रयास किया जिससे वह नव-स्थापित मुगल-राज्य को भारत में सुदृढ़ तथा स्थायी रूप प्रदान करने में सफल हो सके। उनके प्रयासों का वर्णन निम्नलिखित है—

(१) कालिंजर पर आक्रमण—राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसका ध्यान कालिंजर की ओर आकर्षित हुआ। उसकी धारणा थी कि कालिंजर का राजा मुगलों के विरुद्ध अफगानों का समर्थक है। कालिंजर का दुर्ग बुन्देलखण्ड की एक पहाड़ी पर स्थित है। हुमायूँ ने बाबर के समय में भी कालिंजर पर आक्रमण किया था, किन्तु वह उस कार्य को बीच में छोड़कर आगरे चला आया था। इस बार भी उसने पूर्व के समान कालिंजर के दुर्ग को घेर लिया। युद्ध में राजपूतों की पराजय हुई, परन्तु हुमायूँ ने कालिंजर नरेश से बहुत अधिक धन प्राप्त कर उसको वहां का शासक रहने दिया। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की, किन्तु कालिंजर मुगल-साम्राज्य में विलीन नहीं किया गया।

> **हुमायूँ की प्रारम्भिक विजयें**
> (१) कालिंजर पर आक्रमण।
> (२) अफगानों पर विजय।
> (३) मुहम्मद जमाँ तथा सुल्तान मिर्जा के विद्रोहों का दमन।

(२) अफगानों पर विजय—कालिंजर के उपरान्त हुमायूँ ने अफगानों की शक्ति का अन्त करने का प्रयास किया जो पूर्व में सिकन्दर लोधी के नेतृत्व में अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे। अफगानों ने जौनपुर तथा उसके समीपस्थ प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया था। हुमायूँ शीघ्र ही उनके विद्रोह का दमन करने के लिये चल पड़ा। दोनों सेनाओं में अगस्त १५३२ ई० में दौहरिया नामक स्थान पर युद्ध हुआ। *युद्ध में अफगानों की बुरी तरह पराजय हुई और वे बिहार की ओर भाग गये।* इसके उपरान्त हुमायूँ ने चुनार के दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय चुनार पर शेरखां का अधिकार था। उसने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार की। हुमायूँ अपनी इन विजयों से बड़ा प्रसन्न हुआ और आगरे आकर उसने अपने अमीरों तथा सरदारों को एक भोज दिया और उनको बहुत से पारितोषिक भी दिये। उसने धन का अपव्यय किया। राजकोष पहले से ही रिक्त था, इस ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यहां उसने एक बड़ी भूल यह की कि उसने शेरखां के साथ कठोर व्यवहार के स्थान पर उदारता का व्यवहार किया। यदि इसी अवसर पर वह शेरखां का दमन कर देता तो वह आगे चलकर उसके लिये भीषण तथा गहन समस्या न बन जाता।

(३) मुहम्मद जमाँ तथा सुल्तान मिर्जा के विद्रोह का दमन—मुहम्मद जमाँ ने विद्रोह किया, किन्तु विद्रोह का दमन कर दिया गया और उसको बियाना के दुर्ग में बन्दी बनाया गया, किन्तु वह वहां से भागने में सफल हुआ और उसने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के दरबार में शरण ली। इसके बाद एक अन्य विद्रोह हुआ जिसका नेता मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था। विद्रोह का शीघ्र ही अन्त कर दिया गया। मुहम्मद सुल्तान मिर्जा अपने दो पुत्रों के साथ बन्दी बनाकर बियाना भेज दिया गया जहां उसको अन्धा कर दिया गया।

हुमायूं तथा बहादुरशाह

बहादुरशाह गुजरात का स्वामी था। उसने अपनी शक्ति का उचित संगठन कर पड़ोसी राज्यों की राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। उसने मालवा पर अधिकार किया। उसके दरबार में दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने वाले समस्त विद्रोहियों को शरण प्रदान की जाती थी। इस समय मुख्य विद्रोही जो उसके दरबार में थे उनमें इब्राहीम लोधी का चाचा आलम खां तथा महमूद जमां मिर्जा तथा मेंहदी ख्वाजा प्रसिद्ध थे। बहादुरशाह उनकी सहायता से दिल्ली के साम्राज्य को हस्तगत करना चाहता था। उसने १५३२ ई० में रायसिन के दुर्ग पर अधिकार किया तथा १५३३ ई० में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इसी समय हुमायूं ने उससे उन विद्रोहियों को मांगा जिन्होंने उसके दरबार में शरण प्राप्त की थी, किन्तु बहादुरशाह ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। हुमायूं को जब उसके विचारों का ज्ञान हुआ तो वह उससे सावधान हो गया और उसके दमन की तैयारी करने में संलग्न हो गया।

जब बहादुरशाह ने दूसरी बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया और वह उसका घेरा डाले पड़ा था तो हुमायूं उसका दमन करने के लिये चल पड़ा। इसी समय उसे विक्रमादित्य की माता कर्मवती का सहायतार्थ निमन्त्रण प्राप्त हुआ। वह चित्तौड़ की ओर गया, किन्तु वह सारंगपुर में रुक गया और वहां दो महीने तक आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करता रहा। इसी बीच बहादुरशाह ने चित्तौड़ को विजय कर लिया। यह हुमायूं की बड़ी भारी भूल थी। यदि वह इस समय राजपूतों की सहायता करता तो राजपूतों की सेवायें भविष्य में उसको प्राप्त हो जातीं, किन्तु उसने इस सुवर्ण अवसर को हाथ से जाने दिया। वह बहादुरशाह को उनकी सहायता से दमन करने में सफल हो सकता था। चित्तौड़ से बहादुरशाह को बहुत सा धन प्राप्त हुआ, जिससे उसकी शक्ति पहले से बहुत अधिक बढ़ गई। अब उसने हुमायूं से युद्ध करने का निश्चय किया। हुमायूं भी इसी उद्देश्य से मन्दसौर की ओर बढ़ा। बहादुरशाह ने रक्षात्मक स्थिति को अपनाया। हुमायूं ने उसके रसद आने के मार्गों पर अधिकार कर लिया। रसद के अभाव में सैनिकों को बहुत कष्ट का सामना करना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में बहादुरशाह अपने पांच स्वामिभक्त तथा हितैषी सेवकों के साथ १५ अप्रैल १५३६ ई० की रात्रि को अपना शिविर त्यागकर मांडू की ओर पलायन कर गया।

चम्पानेर तथा मांडू की विजय—जब बहादुरशाह की सेना को उसके भागने की सूचना प्राप्त हुई तो उसमें भी भगदड़ मच गई। मुगलों ने भागती हुई सेना का बड़े वेग से पीछा किया। उन्होंने शीघ्र ही मांडू का दुर्ग घेर लिया जहां बहादुरशाह ने शरण ली थी। मुगल सेना के आगमन का समाचार पाकर वह वहां से भी अपने कुछ साथियों के साथ गुजरात की ओर भाग गया। हुमायूं ने उसका वहां भी पीछा किया। खम्भात तक हुमायूं उसका पीछा करता रहा। अन्त में बहादुरशाह ने पुर्तगाली द्वीप ड्यू में जाकर शरण ली। हुमायूं वहां से चम्पानेर की ओर आया और उसने उसके दुर्ग पर अधिकार किया। हुमायूं की यह बड़ी भूल थी। उसको चम्पानेर प्रस्थान करने के पूर्व बहादुरशाह

का पूर्णरूपेण दमन करना चाहिये था। चम्पानेर तथा मांडू की विजयें बड़ी महत्वपूर्ण थीं किन्तु हुमायूं ने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने के स्थान पर आमोद-प्रमोद में अपना अमूल्य समय नष्ट कर दिया जिसका फल उसको भोगना पड़ा। हुमायूं ने अपने भाई अस्करी को गुजरात, पाटन मिर्जा यादगार नसीर को, भड़ौंच मिर्जा हिन्दू बेग को, चम्पानेर तार्दी बेग को और बड़ौदा कासिम हुसैन को प्रदान किये। यह अवस्था बड़ी दोषपूर्ण थी। उसको इन प्रदेशों पर अपना अधिकार रखना चाहिये था।

बहादुरशाह का गुजरात पर अधिकार करना—वहां से निवृत्त होकर हुमायूं दयू की ओर बढ़ा, किन्तु वह इस कार्य के करने में असफल हुआ; क्योंकि इसी समय मालवा से विद्रोह के समाचार आये। वह मांडू वापिस आ गया और आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करने लगा। इसी बीच गुजरात की परिस्थिति ने भीषण रूप धारण किया। बहादुरशाह पुर्तगालियों की सहायता से गुजरात पर अधिकार करने में सफल हुआ और अस्करी उसका सामना नहीं कर सका। वह चम्पानेर भागा और वहां से आगरे की ओर गया। बहादुरशाह ने चम्पानेर के दुर्ग को अपने अधिकार में किया और तार्दी बेग को दुर्ग छोड़ने पर बाध्य किया। इस प्रकार मुगलों के हाथ से गुजरात निकल गया। मालवा पर भी गुजरात का प्रभाव पड़ा और वहां भी मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। इधर से निराश होकर हुमायूं ने आगरे की ओर प्रस्थान किया, क्योंकि साम्राज्य के अन्य भागों से विद्रोह के समाचार उसको निरन्तर प्राप्त हो रहे थे। अपने भाइयों तथा सेवकों द्वारा विश्वासघात का परिणाम हुमायूं को *भोगना पड़ा क्योंकि उनके कारण ही इस प्रकार भारत के दो धनी प्रदेश उसके हाथ* में आकर निकल गये।

बहादुरशाह की मृत्यु—बहादुरशाह भी अपनी विजयों का सुख अधिक काल तक नहीं भोग सका। कुछ समय उपरान्त वह समुद्र में डूब कर मर गया जब वह गोआ के पुर्तगाली गवर्नर से भेंट कर वापिस आ रहा था।

हुमायूं और शेरखां

शेरखां की विजयें—गत पृष्ठों में यह बतलाया जा चुका है कि शेरखां ने हुमायूं की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उसका हृदय स्वच्छ नहीं था। वह अपनी शक्ति के विकास के लिये कुछ समय चाहता था और यह उसको हुमायूं की अकर्मण्यता तथा आमोद-प्रमोद लिप्सा के कारण पर्याप्त मात्रा में मिल गया। शेरखां ने दक्षिण बिहार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था तथा उसने बंगाल के शासक को भी दो बार युद्ध में परास्त कर दिया था। गुजरात से वापिस आने पर हुमायूं ने वास्तविकता का अध्ययन नहीं किया और एक वर्ष आगरे में आमोद-प्रमोद करता रहा।

हुमायूं का चुनार पर अधिकार—२७ जुलाई १५३७ को हुमायूं शेरखां के दमन के लिये चुनारगढ़ की ओर अपनी सेना लेकर चला। मुगलों ने चुनारगढ़ के दुर्ग को घेर लिया। इस समय इस दुर्ग का रक्षक शेरखां का पुत्र कुतुब खां था। पर्याप्त कठिनाइयों का सामना कर चुनारगढ़ पर मुगलों का अधिकार हुआ। इधर शेरखां ने गौड़ तथा रोहतास के दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। चुनार विजय कर

हुमायूं बनारस आ गया और शेरशाह ने सन्धि की वार्ता प्रारम्भ की। शेरखां हुमायूं को बिहार प्राप्त देने के लिये इस शर्त पर तैयार हुआ कि बंगाल पर उसका अधिकार स्वीकृत कर लिया जावे। शेरखां ने यह वचन दिया कि वह १० लाख रुपये प्रति वर्ष कर के रूप में देता रहेगा।

हुमायूं का बंगाल की ओर प्रस्थान—हुमायूं ने इसे स्वीकार किया, किन्तु इसी समय महमूद जो बंगाल का शासक था हुमायूं के पास आया और उसने शेरखां के विरुद्ध सहायता की याचना की। हुमायूं ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और बंगाल की ओर सेना लेकर चल पड़ा। शेरखां के पुत्र जलाल खां ने उसका रास्ता रोक लिया, किन्तु जब वह इस समाचार से अवगत हुआ कि उसके पिता ने गौड़ तथा राजकोष रोहतास भेज दिया है तो उसने मार्ग छोड़ दिया और अपने पिता शेरखां से जा मिला। हुमायूं बंगाल की ओर बढ़ा और १५ अगस्त १५३८ ई० को वह गौड़ पहुंच गया। यह वहां आठ महीने तक आमोद-प्रमोद तथा रंगरेलियां करता रहा।

शेरशाह

जब हुमायूं को यह समाचार मिला कि शेरखां ने ७०० मुगलों का वध कर दिया, तो उसने चुनार का घेरा डाल दिया और बनारस पर आक्रमण किया। शेरखां ने कन्नौज पर अधिकार करने के अभिप्राय से एक सेना भेज दी। इन विजयों के परिणाम-स्वरूप वह सेना आगरे की ओर बढ़ी।

इसी समय हुमायूं के भाई मिर्जा हिन्दाल ने हुमायूं की कठिनाइयों का लाभ उठाकर विद्रोह किया जिसका समाचार ज्ञात होते ही हुमायूं ने आगरे की ओर प्रस्थान किया और बंगाल की रक्षा का भार जहांगीर कुलीबेग को सौंप दिया।

चौसा का युद्ध—हुमायूं ने आगरा वापिस आने का मार्ग दक्षिणी बिहार को ग्रांड-ट्रंक रोड द्वारा पार करते जाने का निश्चय किया। यह हुमायूं की भूल थी क्योंकि इस प्रदेश पर शेरखां का बड़ा प्रभाव था। शेरखां को हुमायूं की सेना की गति-विधि का अपने जासूसों द्वारा ज्ञान हो गया। जब मुगल-सेना चौसा के समीप पहुंची तो हुमायूं को समाचार मिला कि उधर ही की ओर से शेरखां भी अपनी सेना सहित आ रहा है। उसके अधिकारियों ने शेरखां पर तुरन्त आक्रमण करने का परामर्श दिया किन्तु हुमायूं उनके विचार से सहमत नहीं हुआ। शेरखां को अपनी सेना को सुसंगठित करने का अवसर प्राप्त हुआ और उसने हुमायूं का सामना करने के लिये एक विशाल सेना का संगठन किया। हुमायूं को किसी भी ओर से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। तीन महीने तक दोनों सेनायें एक दूसरे के सामने डटी रहीं, किन्तु युद्ध किसी ओर से भी आरम्भ नहीं हुआ। अन्त में वर्षा ऋतु के आगमन पर शेरखां ने मुगल सेना पर आक्रमण किया। मुगलों को वर्षा के कारण बड़ी आपत्तियां उठानी पड़ीं। शेरखां ने आधी रात्रि के समय भीषण आक्रमण किया जिसको बेखबर मुगल सेना सहन न कर सकी। हुमायूं को शत्रुओं ने घेर लिया, किन्तु कुछ स्वामिभक्त सैनिकों ने उसकी रक्षा

ी और वह गंगा में कूद पड़ा। इस समय एक भिश्ती ने इसकी जान की रक्षा की। ह उसकी मशक पर बैठकर गंगा पार करने में सफल हुआ। शेरखां विजयी हुआ और सकी मान और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। इस युद्ध में बहुत से मुगल मारे गये।

कन्नौज का युद्ध—चौसा के युद्ध में परास्त होकर हुमायूं आगरे आया और उसने अपने भाइयों से इस भीषण परिस्थिति पर विचार-विमर्श किया, किन्तु कोई भी उसका साथ देने को तैयार नहीं था। उधर शेरखां विजयी होकर आगरे की ओर बढ़ा। उसने बिहार से लेकर कन्नौज तक के समस्त प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और अपने आपको 'शेरशाह' के नाम से विख्यात किया। बंगाल पर अधिकार कर शेरशाह कन्नौज में अपनी सेना में आ मिला। हुमायूं ने शीघ्र ही सेना का संगठन किया और शेरशाह का सामना करने के लिये चल पड़ा। कुछ समय तक दोनों सेनायें आमने-सामने डटी रहीं किन्तु किसी ने भी युद्ध नहीं किया। अन्त में १५ मई १५४० को दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। १७ मई को शेरशाह ने मुगलों पर भीषण आक्रमण किया। मुगल अपने तोपखाने का प्रयोग नहीं कर सके क्योंकि युद्ध एकाएक बहुत तेज तथा भीषण हो गया। मुगल शेरशाह के आक्रमण के सामने न ठहर सके और उनकी सेना अस्त-व्यस्त हो गई। अन्त में विजय की आशा का परित्याग कर हुमायूं आगरे की ओर भाग गया। शेरशाह विजयी हुआ और वह दिल्ली और आगरे की ओर हुमायूं का पीछा करते हुये बढ़ा। हुमायूं कुछ विश्वासपात्र सेवकों तथा अपने हरम के साथ आगरे से भाग निकला। तुरन्त ही शेरशाह ने आगरे तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

हुमायूं की असफलता के कारण

सन् १५३० ई० में हुमायूं अपने पिता बाबर की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली का शासक बना। १५४० ई० तक वह इस पद पर आसीन रहा, किन्तु कन्नौज के युद्ध में परास्त होने के कारण उसको भारत का परित्याग करने पर बाध्य होना पड़ा। गत पृष्ठों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि बाबर द्वारा नवसंस्थापित राज्य अव्यवस्थित तथा असंगठित था, अफगान अमीरों का पूर्णतया दमन न हो पाया था और बाबर ने राजकोष रिक्त कर दिया था, किन्तु यदि हुमायूं में बुद्धिमत्ता, योग्यता तथा दूरदर्शिता जैसे गुण विद्यमान होते तो वह नव-संस्थापित राज्य की रक्षा करने में सफल हो सकता था तथा उसको भारत से पलायन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु उसमें उन समस्त समस्याओं का समाधान करने की क्षमता तथा योग्यता का अभाव था जिसके कारण वह एक योग्य सम्राट न बन सका और उसको असफलता का सामना करना पड़ा। अतएव यह कहना उचित ही होगा कि हुमायूं ने स्वयं ऐसी परिस्थिति को जन्म दिया जिसके कारण उसको राज्यसिंहासन का परित्याग करने पर बाध्य होना पड़ा। उसकी प्रमुख भूलें तथा असफलता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **साम्राज्य का विभाजन**—अपने पिता बाबर का आदेश मानकर हुमायूं ने अपने भाइयों में साम्राज्य का विभाजन किया। इन भाइयों ने उसका साथ नहीं दिया वरन् वे स्वयं साम्राज्य को अपने अधीन करना चाहते थे। हुमायूं के लिये यह आवश्यक था कि वह समस्त राज्य एक सूत्र में संगठित कर उसकी सुव्यवस्था की ओर पूर्णरूपेण

प्रयत्न करता। इससे उसकी शक्ति का विकास होता और वह बहादुरशाह तथा शेरखां का सामना करने में सफल हो जाता। कामरान के अधिकार में पंजाब और काबुल का होना भी हुमायूं के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ। उसका उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और उसकी सेना में उपयुक्त तथा वीर सैनिकों का अभाव हो गया जिसने उसकी सैनिक-शक्ति को शिथिल कर दिया जो मध्य युग में साम्राज्य को स्थायी बनाने का प्रमुख आधार थी।

> **हुमायूं की असफलता के कारण**
>
> (१) साम्राज्य का विभाजन।
> (२) प्रजा का सहयोग प्राप्त न करना।
> (३) शेरशाह के प्रति हुमायूं की नीति।
> (४) बहादुरशाह तथा शेरशाह में गठबन्धन।
> (५) बहादुरशाह के प्रति हुमायूं की नीति।
> (६) समय का उचित प्रयोग न करना।
> (७) भाइयों तथा सम्बन्धियों का विश्वासघात।
> (८) धन का अपव्यय।
> (९) हुमायूं में नेतृत्व का अभाव।
> (१०) शेरखां के विरुद्ध अव्यवस्थित युद्ध।

(२) प्रजा का सहयोग प्राप्त न करना—हुमायूं ने भारतीयों को अपनी ओर आकर्षित करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यदि वह अपने शासन के आरम्भ से रचनात्मक कार्य करने की ओर आकर्षित होता तो उसको जनता का सहयोग प्राप्त होता और जनता उसकी प्रत्येक समय सहायता करने को उद्यत रहती। इसके विरुद्ध उसने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर राज्यसिंहासन प्राप्त करने के अगले वर्ष (१५३१ ई०) में ही कालिंजर के सुदृढ़ दुर्ग पर इसलिये आक्रमण किया कि वहाँ का शासक अफगानों का समर्थक समझा जाता था। वह दुर्ग को अपने अधिकार में करने में सफल नहीं हुआ यद्यपि वहाँ के शासक से उसको बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ। हुमायूं इस कार्य में कुशल नीति का अनुसरण करके सफलता प्राप्त कर सकता था।

(३) शेरशाह के प्रति हुमायूं की नीति—हुमायूं की शेरशाह सम्बन्धी नीति ने भी उसकी असफलता में बड़ा योग दिया। वह शेरशाह की शक्ति का ठीक अनुमान नहीं कर सका जिसका शेरशाह दिन प्रतिदिन विस्तार कर रहा था। उसकी धारणा थी कि शेरशाह की विशेष शक्ति नहीं है और उसका दमन शीघ्र किया जाना सम्भव है। हुमायूं यदि प्रारम्भ में शेरशाह से सतर्क हो जाता जब उसने १५३२ ई० में चुनारगढ़ का प्रथम घेराव किया था और उससे किसी प्रकार की सन्धि न करता और शीघ्र ही बंगाल तथा बिहार के अफगान सरदारों की शक्ति का अन्त कर देता तो साम्राज्य के लिये अफगानों के भय का सदा के लिये अन्त हो जाता। यदि इसके स्थान पर कोई दूरदर्शी तथा योग्य सम्राट होता तो वह ऐसा ही करता और उस समय उनकी शक्ति का सदा के लिये अन्त करना कोई विशेष कठिन कार्य नहीं था।

(४) बहादुरशाह तथा शेरशाह में गठबन्धन—हुमायूं इस बात से भी

[भि]न्न था कि गुजरात के बहादुरशाह और दक्षिणी बिहार के शेरखां में इस आशय का [सम]झौता हो गया है कि जब हुमायूं एक की शक्ति का दमन करने के लिये प्रस्थान करे [दू]सरा अपनी शक्ति का संगठन कर हुमायूं के विनाश की योजना का निर्माण करे। [इस]के अनुसार हुमायूं किसी ओर भी पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका और वह दोनों [मे]ं किसी का भी दमन करने में सफल नहीं हुआ। वास्तव में हुमायूं के लिये यह [भीष]ण परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी।

(५) **बहादुरशाह के प्रति हुमायूं की नीति**—हुमायूं ने जिस नीति का प्रयोग [बहा]दुरशाह के विरुद्ध किया वह उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई। सर्वप्रथम तो [उस]को बहादुरशाह पर उसी समय आक्रमण करना चाहिये था जिस समय वह चित्तौड़ [दु]र्ग का घेरा डाले हुए था, क्योंकि उसको उसके दमन में राजपूतों की शक्ति का भी [सह]योग मिल जाता और भविष्य में राजपूत उसकी महत्वाकांक्षी विचारधाराओं का [सम]र्थन करते रहते और वह उत्तरी भारत में सक्रिय भाग नहीं ले पाता। इसके उपरान्त [हुमा]यूं मालवा तथा गुजरात की विजयें करने में सफल हुआ किन्तु वहां उसने ऐसी नीति [को] अपनाया जिससे उसको न केवल अपने नव-विजित प्रदेशों से ही हाथ धोना पड़ा, वरन् [उस]के मान तथा प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। हुमायूं ने जो समय मांडू में [आ]मोद-प्रमोद में व्यतीत किया उसका लाभ बहादुरशाह ने उठाकर गुजरात के प्रदेश को [अप]ने अधिकार में किया। इसके अतिरिक्त असकरी ने हुमायूं के साथ विश्वासघात किया [औ]र वह गुजरात छोड़कर आगरे की ओर साम्राज्य पर अधिकार करने के अभिप्राय से [च]ल पड़ा।

(६) **समय का उचित प्रयोग न करना**—हुमायूं का एक बहुत बड़ा दोष यह [था] कि वह समय का प्रयोग उचित रूप से नहीं करता था। उसने अपने अधिकांश समय [को] आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया जिसका उपयोग वह अपने शत्रुओं के दमन करने में [क]र सकता था। उसने चुनारगढ़ की विजय में ६-७ महीने व्यर्थ गंवाये, क्योंकि चुनार का [को]ई बहुत महत्वपूर्ण स्थान किसी भी दृष्टि से नहीं था। उसने मांडू में भी ऐसा ही [कि]या। इससे शत्रु को अपनी सैनिक-शक्ति के संगठन तथा विकास के लिये पर्याप्त [अ]वसर प्राप्त हो जाता था।

(७) **भाइयों तथा सम्बन्धियों का विश्वासघात**—हुमायूं को अपने भाइयों [त]था सम्बन्धियों से सहायता के स्थान पर विश्वासघात मिला। उन्होंने उसके मार्ग को [क]ण्टकाकीर्ण बनाया जिसके कारण हुमायूं को भीषण परिस्थितियों का सामना करने के [लि]ये बाध्य होना पड़ा। उसका सबसे बड़ा शत्रु उसका भाई मिर्जा कामरान था जो [दि]ल्ली साम्राज्य को अपने अधिकार में करना चाहता था। उसने उस भीषण परिस्थिति [मे]ं भी हुमायूं की सहायता करना स्वीकार नहीं किया जब मुगल साम्राज्य का पतन [शे]रशाह द्वारा अवश्यम्भावी हो गया था और वह अपनी सेना सहित आगरे की ओर [प्र]स्थान कर रहा था। मिर्जाओं ने भी विद्रोह किया और उन्होंने बहादुरशाह के यहां [गु]जरात में शरण ली और उसको दिल्ली पर अधिकार जमाने के लिये प्रोत्साहित किया।

(८) **धन का अपव्यय**—राजकोष को बाबर ही अपनी दानशीलता से रिक्त

प्रयत्न करता। इससे उसकी शक्ति का विकास होता और वह बहादुरशाह तथा शेरखाँ का सामना करने में सफल हो जाता। कामरान के अधिकार में पंजाब और काबुल का होना भी हुमायूँ के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ। उसका उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और उसकी सेना में उपयुक्त तथा वीर सैनिकों का अभाव हो गया जिसने उसकी सैनिक-शक्ति को शिथिल कर दिया जो मध्य युग में साम्राज्य को स्थायी बनाने का प्रमुख आधार थी।

हुमायूँ की असफलता के कारण

(१) साम्राज्य का विभाजन।
(२) प्रजा का सहयोग प्राप्त न करना।
(३) शेरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति।
(४) बहादुरशाह तथा शेरशाह में गठबन्धन।
(५) बहादुरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति।
(६) समय का उचित प्रयोग न करना।
(७) भाइयों तथा सम्बन्धियों का विश्वासघात।
(८) धन का अपव्यय।
(९) हुमायूँ में नेतृत्व का अभाव।
(१०) शेरखाँ के विरुद्ध अव्यवस्थित युद्ध।

(२) प्रजा का सहयोग प्राप्त न करना—हुमायूँ ने भारतीयों को अपनी ओर आकर्षित करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यदि वह अपने शासन के आरम्भ से रचनात्मक कार्य करने की ओर आकर्षित होता तो उसको जनता का सहयोग प्राप्त होता और जनता उसकी प्रत्येक समय सहायता करने को उद्यत रहती। इसके विरुद्ध उसने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर राज्यसिंहासन प्राप्त करने के अगले वर्ष (१५३१ ई०) में ही कालिंजर के सुदृढ़ दुर्ग पर इसलिये आक्रमण किया कि वहाँ का शासक अफगानों का समर्थक समझा जाता था। वह दुर्ग को अपने अधिकार में करने में सफल नहीं हुआ यद्यपि वहाँ के शासक से उसको बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ। हुमायूँ इस कार्य में कुशल नीति का अनुसरण करके सफलता प्राप्त कर सकता था।

(३) शेरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति—हुमायूँ की शेरशाह सम्बन्धी नीति ने भी उसकी असफलता में बड़ा योग दिया। वह शेरशाह की शक्ति का ठीक अनुमान नहीं कर सका जिसका शेरशाह दिन प्रतिदिन विस्तार कर रहा था। उसकी धारणा थी कि शेरशाह की विशेष शक्ति नहीं है और उसका दमन शीघ्र किया जाना सम्भव है। हुमायूँ यदि प्रारम्भ में शेरशाह से सतर्क हो जाता जब उसने १५३२ ई० में चुनारगढ़ का प्रथम अभियान किया था और उससे किसी प्रकार की सन्धि न करता और शीघ्र ही बंगाल तथा बिहार के अफगान सरदारों की शक्ति का अन्त कर देता तो साम्राज्य के लिये अफगानों के भय का सदा के लिये अन्त हो जाता। यदि इसके स्थान पर कोई दूरदर्शी तथा योग्य सम्राट होता तो वह ऐसा ही करता और उस समय उसकी शक्ति का सदा के लिये अन्त करना कोई विशेष कठिन कार्य नहीं था।

(४) बहादुरशाह तथा शेरशाह में गठबन्धन—हुमायूँ इस बात से भी

भिज्ञ था कि गुजरात के बहादुरशाह और दक्षिणी बिहार के शेरखां में इस आशय का
मझौता हो गया है कि जब हुमायूं एक की शक्ति का दमन करने के लिये प्रस्थान करे
दूसरा अपनी शक्ति का संगठन कर हुमायूं के विनाश की योजना का निर्माण करे।
के अनुसार हुमायूं किसी ओर भी पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका और वह दोनों
से किसी का भी दमन करने में सफल नहीं हुआ। वास्तव में हुमायूं के लिये यह
षण परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी।

(५) बहादुरशाह के प्रति हुमायूं की नीति—हुमायूं ने जिस नीति का प्रयोग
हादुरशाह के विरुद्ध किया वह उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई। सर्वप्रथम तो
को बहादुरशाह पर उसी समय आक्रमण करना चाहिये था जिस समय वह चित्तौड़
दुर्ग का घेरा डाले हुए था, क्योंकि उसको उसके दमन में राजपूतों की शक्ति का भी
योग मिल जाता और भविष्य में राजपूत उसकी महत्वाकांक्षी विचारधाराओं का
न करते रहते और वह उत्तरी भारत में सक्रिय भाग नहीं ले पाता। इसके उपरान्त
ायूं मालवा तथा गुजरात की विजयें करने में सफल हुआ किन्तु वहां उसने ऐसी नीति
अपनाया जिससे उसको न केवल अपने नव-विजित प्रदेशों से ही हाथ धोना पड़ा, वरन्
के मान तथा प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। हुमायूं ने जो समय मांडू में
मोद-प्रमोद में व्यतीत किया उसका लाभ बहादुरशाह ने उठाकर गुजरात के प्रदेश को
ने अधिकार मे किया। इसके अतिरिक्त असकरी ने हुमायूं के साथ विश्वासघात किया
र वह गुजरात छोड़कर आगरे की ओर साम्राज्य पर अधिकार करने के अभिप्राय से
न पड़ा।

(६) समय का उचित प्रयोग न करना—हुमायूं का एक बहुत बड़ा दोष यह
कि वह समय का प्रयोग उचित रूप से नहीं करता था। उसने अपने अधिकांश समय
आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया जिसका उपयोग वह अपने शत्रुओं के दमन करने में
र सकता था। उसने चुनारगढ़ की विजय में ६-७ महीने व्यर्थ गंवाये, क्योंकि चुनार का
ई बहुत महत्वपूर्ण स्थान किसी भी दृष्टि से नहीं था। उसने मांडू में भी ऐसा ही
या। इससे शत्रु को अपनी सैनिक-शक्ति के संगठन तथा विकास के लिये पर्याप्त
वसर प्राप्त हो जाता था।

(७) भाइयों तथा सम्बन्धियों का विश्वासघात—हुमायूं को अपने भाइयों
या सम्बन्धियों से सहायता के स्थान पर विश्वासघात मिला। उन्होंने उसके मार्ग को
टकाकीर्ण बनाया जिसके कारण हुमायूं को भीषण परिस्थितियों का सामना करने के
लिये बाध्य होना पड़ा। उसका सबसे बड़ा शत्रु उसका भाई मिर्जा कामरान था जो
दिल्ली साम्राज्य को अपने अधिकार में करना चाहता था। उसने उस भीषण परिस्थिति
में भी हुमायूं की सहायता करना स्वीकार नहीं किया जब मुगल साम्राज्य का पतन
शेरशाह द्वारा अवश्यम्भावी हो गया था और वह अपनी सेना सहित आगरे की ओर
प्रस्थान कर रहा था। मिर्जाओं ने भी विद्रोह किया और उन्होंने बहादुरशाह के यहाँ
गुजरात में शरण ली और उसको दिल्ली पर अधिकार जमाने के लिये प्रोत्साहित किया।

(८) धन का अपव्यय—राजकोष को बाबर ही अपनी दानशीलता से रिक्त

कर गया था। हुमायूं ने भी अपने पिता की नीति का अनुसरण किया। धन के अभाव में शासन का सुचारु रूप से चलना असम्भव था। हुमायूं को धन का अभाव रहा, किन्तु वह दावतों, सरदारों को उपहार तथा भेंट आदि में बहुत धन व्यय करता था, जबकि मितव्ययिता की नीति का पालन करना अत्यन्त आवश्यक तथा वांछनीय था।

(९) हुमायूं में नेतृत्व का अभाव—यद्यपि बाबर के समय में हुमायूं को पर्याप्त सैनिक शिक्षा तथा अनुभव प्राप्त हो गया था, किन्तु उसमें एक योग्य सेनानायक तथा कुशल नेता के गुण तथा प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। उसका उसके अफसरों तथा सैनिकों पर अनुशासन और नियन्त्रण नहीं था और न वह अपने पिता के समान उ लोकप्रिय ही था। अनुशासन के अभाव में सैनिक कार्यवाही उचित रूप से नहीं सकती थी।

(१०) शेरखां के विरुद्ध अव्यवस्थित युद्ध—हुमायूं ने शेरखां के विरुद्ध जि भी युद्ध किये वे सब अव्यवस्थित युद्ध थे। चौसा के युद्ध में पराजय का कारण उस अव्यवस्था थी। वह शेरखां के धोखे में आ गया। जिस समय युद्ध हुआ उस समय व ऋतु प्रारम्भ हो गई थी और जिस स्थान पर सैनिक शिविर था वह स्थान नीची भू पर था। वर्षा के कारण वहां पानी भर गया जिसके कारण सैनिकों की द्रुत गति में ब बाधा उत्पन्न हुई। इस समय उसकी सेना भी पूर्णतया सुसज्जित नहीं थी, क्योंकि बंगा में मलेरिया के प्रकोप के कारण उसके बहुत से सैनिकों की मृत्यु हो गई थी जबकि शेरख को सेना पूर्णतया सुसज्जित तथा संगठित थी और उसके सैनिकों की संख्या में दि प्रति दिन वृद्धि हो रही थी।

हुमायूं का पलायन

कन्नौज के युद्ध में शेरशाह द्वारा हुमायूं १५४० ई० में परास्त हुआ। हुमायू तुरन्त आगरा आया और अपने कुछ निकटस्थ अधिकारियों को लेकर वह महल से भा निकला। वह भट्टा की ओर बढ़ा। उसने वहां के शासक शाह हुसैन से शरण मांगी, किन्त उसको निराश होना पड़ा। वहां से निराश होकर वह हिन्दाल से मिलने के लिये पतो गया जहां उसका हमीदा बानू से प्रेम हुआ और उसका इससे विवाह हो गया। हुमायू ने अब भट्टा तथा सहवान के दुर्ग पर अधिकार करने की योजना बनाई, किन्तु शाह हुसैन ने कूटनीति से यादगार मिर्जा को अपनी ओर मिला लिया और हुमायूं को अपनी योजनाओं में असफल होना पड़ा। वह मक्का जाने का विचार करने लगा। इसी समय उसे मारवाड़ के राजा मालदेव का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। हुमायूं ने इस सुअवसर का लाभ उठाने के लिये जोधपुर की ओर प्रस्थान करना आरम्भ किया, किन्तु जब वह उसकी राजधानी के समीप पहुँचा तो उसे ज्ञात हुआ कि मालदेव को शेरशाह ने अपनी ओर मिला लिया है। हुमायूं ने वापिस लौटने का निश्चय किया और अमरकोट की ओर प्रस्थान किया। उसके साथियों को मार्ग में बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अन्त में वह अमरकोट पहुँचा, जहां के राणा ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। उसने दक्षिणी सिंध को विजय करने के लिये धन तथा सैनिकों से सहायता की। जब ... के लिए चला तो केवल १५ मील का मार्ग तय करने पाया था कि

की स्त्री हमीदा बानू के एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम अकबर रक्खा गया। ही अकबर बाद में अकबर महान् के नाम से भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। हुमायूं ग्ध को विजय करने में सफल नहीं हो सका। अब हुमायूं ने कन्दहार की ओर प्रस्थान या। कामरान ने हुमायूं को बन्दी करने का प्रयत्न किया, किन्तु हुमायूं अपनी रक्षा रने में सफल रहा पर अकबर कामरान के हाथ में आ गया। इसके बाद हुमायूं ने न्दहार के स्थान पर फारस की ओर प्रस्थान किया। फारस के शाह ने हुमायूं का बड़ा दर-सत्कार किया। उसने निम्न शर्तों पर हुमायूं को सैनिक सहायता देने का वचन या—

(१) हुमायूं शिया-धर्म को स्वीकार करे
(२) भारतवर्ष में वह शिया-धर्म का प्रचार करे, तथा
(३) कन्दहार का प्रान्त फारस के शाह को दे।

हुमायूं ने परिस्थिति से बाध्य होकर फारस के शाह की तीनों शर्तों को स्वीकार या। फारस के शाह द्वारा प्राप्त की हुई सेना को लेकर हुमायूं ने कन्दहार की ओर थान किया। उसने अस्करी को युद्ध में परास्त कर कन्दहार को अपने अधीन किया। द में उसने अस्करी को मुक्त कर दिया और अपने वचन के अनुसार कन्दहार फारस शाह को दे दिया। जब फारस के शाह की मृत्यु हो गई तो हुमायूं ने पुनः कन्दहार अपने अधीन किया। इसके उपरान्त हुमायूं ने काबुल को अपने अधिकार में करने का त्न किया। शीघ्र ही काबुल पर उसका अधिकार हो गया जहां उसको अपना पुत्र बर भी मिल गया। कामरान काबुल का परित्याग कर गजनी गया और वहां से न्ध की ओर चला गया।

हुमायूं की आपत्तियां अभी समाप्त नहीं हुई थीं। सन् १५४६ ई० में कामरान कन्दहार को अपने अधिकार में किया और काबुल भी उसके अधिकार में आ गया। १५४७ ई० में हुमायूं ने काबुल पर आक्रमण किया और बड़ी सतर्कता से उसका ा डाला। कामरान काबुल का परित्याग कर भागा और हुमायूं की विजय हुई। १५४८ ई० में कामरान ने काबुल पर अधिकार करने प्रयत्न किया किन्तु उसको सफलता प्त नहीं हुई। अगले वर्ष १५४९ ई० मे काबुल पर कामरान का अधिकार हो गया। इसी मय उसे बदख्शां के शासक ने सहायता दी और उसकी सहायता से उसने काबुल पर अधिकार किया। कामरान बन्दी कर लिया गया और उसकी आंखें निकलवा दीं ं। इसके बाद कामरान ने मक्का की ओर प्रस्थान किया जहां १५५७ ई० में उसकी यु हो गई।

हुमायूं का पुनः भारत-राज्य प्राप्त करना

कुछ समय तक हुमायूं भारत की दशा का अध्ययन करता रहा। शेरशाह र उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह की मृत्यु होने पर अफगान-साम्राज्य का पतन ना आरम्भ हो गया। हुमायूं ने अफगान-साम्राज्य की दयनीय अवस्था का लाभ ठाने का विचार किया। १५५४ ई० में हुमायूं ने भारत-विजय की ओर प्रस्थान किया।

ओर चल दिया। लाहौर पर निर्विरोध हुमायूँ का अधिकार स्थापित हो गया। वहाँ से उसने पंजाब के कुछ प्रदेशों को अपने अधिकार में किया। अन्त में अफगानों और मुगलों में मच्छीवारा नामक स्थान पर भीषण युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ विजयी हुआ। इस विजय के परिणामस्वरूप हुमायूँ का अधिकांश पंजाब पर अधिकार हो गया। सिकन्दरशाह को जब इस पराजय का समाचार ज्ञात हुआ तो उसको बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं एक विशाल सेना सहित सरहिन्द की ओर मुगलों का सामना करने के लिये चल पड़ा। अफगानों और मुगलों में सरहिन्द के निकट एक भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुगल-सेना विजयी हुई और सिकन्दर को अपने प्राणों की रक्षा के लिये युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। २० जुलाई १५५५ ई० को हुमायूँ ने दिल्ली पर अधिकार किया। उसने अपने पुत्र अकबर को बैरम खाँ के साथ पंजाब में अफगान सरदारों का दमन करने के लिये भेजा। इस प्रकार हुमायूँ ने पुनः दिल्ली साम्राज्य को अपने अधीन किया। पन्द्रह वर्ष के उपरान्त वह पुनः दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन हुआ।

हुमायूँ की मृत्यु

हुमायूँ अपनी नव-विजयों का सुख अधिक काल तक नहीं भोग सका। उसकी भारत-विजय पूर्ण भी नहीं हो पाई थी कि एक संध्या को जब हुमायूँ अपने पुस्तकालय की छत पर बैठा हुआ विद्याध्ययन में तल्लीन था तो उसने मुल्ला की अजान की आवाज सुनी। तत्काल ही वह चल पड़ा और जब वह जीने की सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया और वह गिर पड़ा। वह तुरन्त ही महल में ले जाया गया और उपचार आरम्भ हो गया, किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। २६ जनवरी १५५६ ई० को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि "हुमायूँ जीवन भर लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाते-लड़खड़ाते ही उसकी मृत्यु हुई।"*

हुमायूँ का चरित्र और उसका मूल्यांकन

हुमायूँ के कार्यों तथा जीवन की समीक्षा के उपरान्त उसके चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके चरित्र का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विश्लेषण किया जा सकता है—

(१) हुमायूँ व्यक्ति के रूप में—हुमायूँ व्यक्ति के रूप में आदर्श था। इस विषय पर विद्वान् एक मत हैं और सभी उसको आदर्श व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। (i) आज्ञाकारी पुत्र—वह अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र था। उसने जीवन भर अपने पिता की आज्ञाओं का पालन किया। उसने इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि पिता की आज्ञापालन के कारण ही उसको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यहाँ तक कि उसको अपना साम्राज्य भी इसी बात के कारण त्यागना पड़ा। वह अपनी माता के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था। (ii) सम्बन्धियों से सद्व्यवहार—उसका अपने समस्त सम्बन्धियों से बड़ा अच्छा तथा प्रशंसनीय व्यवहार था। (iii) पत्नियों में अनुरक्त—उसके कई पत्नियाँ थीं, किन्तु उनके प्रति वह अपने कर्त्तव्यों का उचित पालन करता था। (iv) योग्य पिता—वह एक योग्य पिता भी था। उसका अपनी सन्तानों के प्रति प्रेम तथा अनुराग था। (v) सम्बन्धियों को क्षमा प्रदान—उसने

* "His tumbling in and tumbled out of life." —Lane-Poole.

अपने सम्बन्धियों के विद्रोह करने पर भी उनके साथ कठोर व्यवहार नहीं किया, वरन् उसने उनको सदा क्षमा प्रदान की। उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया। (v) उदार व्यक्ति—वह बड़ा उदार था। वह अपने सेवकों के साथ भी सद्व्यवहार करता था, पर वह आमोद-प्रमोद तथा नशे का दास था।

(२) हुमायूं विद्वान् के रूप में—(i) हुमायूं स्वयं शिक्षित था और वह विद्वानों का आदर करता था। (ii) उसको तुर्की तथा फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था। वह सत्संग का बड़ा प्रेमी था। (iii) वह धर्म सम्बन्धी तथा साहित्यिक चर्चा में विशेष आनन्द का अनुभव करता था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों की सहायता करने में अपना परम सौभाग्य समझता था। (iv) हुमायूं को गणित, दर्शन, ज्योतिष आदि के अध्ययन में विशेष रुचि थी। यहां इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि विद्वता में वह बाबर के समान नहीं था। वह कभी-कभी भाषा तथा युद्ध शब्दों के प्रयोग में भूल कर जाया करता था, किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि वह एक सुसंस्कृत व्यक्ति था।

(३) हुमायूं सच्चे मुसलमान के रूप में—हुमायूं निष्ठावान मुसलमान था। वह पक्का मुसलमान था और उसका इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास था, किन्तु वह धार्मिक मदांध नहीं था। उसका शियाओं से अच्छा व्यवहार था। उसने उनके साथ अनुदार नीति का व्यवहार नहीं किया। उसकी पत्नी हमीदा बानू बेगम तथा उसका विशेष कृपापात्र सरदार अमीर बैरम खां दोनों शिया थे, किन्तु जहां तक उसकी धार्मिक नीति का सम्बन्ध हिन्दुओं से था वह अपने समय के विचारों से ऊपर नहीं उठ पाया। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट किया और उनके साथ उसने बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। वह मुसलमानों का बड़ा पक्ष करता था। उसकी इस नीति के कारण उसको हिन्दुओं से सहायता प्राप्त नहीं हुई और न उसके लिये उनमें श्रद्धा ही जागृत हुई।

(४) हुमायूं सैनिक के रूप में—(i) हुमायूं में शारीरिक बल बहुत था। वह बड़े शानदार डीलडौल का था। वह बड़ा वीर तथा साहसी था। (ii) उसको युद्ध से भय नहीं था। वह भीषण आपत्तियों के समय में भी अपने साहस तथा धर्म का परित्याग नहीं करता था। (iii) वह कष्टों से विचलित नहीं होता था और उनको सरलतापूर्वक सहन कर लेता था। (iv) युद्ध-कला का उसको ज्ञान तथा अनुभव था, किन्तु वह अपने पिता के समान एक योग्य सेनापति तथा सैन्य संचालक नहीं था। (v) उसमें नेता के भी गुण विद्यमान नहीं थे। वह अपनी सेना को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाया। इसी कारण उसके अमीरों तथा सरदारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किये। वही सेना बाबर के नेतृत्व में सफल हुई जबकि हुमायूं के नेतृत्व में उसको असफलता का कटु अनुभव करना पड़ा। (vi) वह अपने विपक्षियों की आपत्तियों का लाभ उठाना नहीं जानता था। इसके विपरीत उसने उनको अपनी शक्ति संगठित करने के प्रयास के लिये अवसर प्रदान किया जो उसकी एक विशेष भूल थी।

(५) हुमायूं शासक के रूप में—(i) हुमायूं की गणना योग्य तथा कुशल

शासकों में नहीं की जाती। वास्तव में हुमायूँ में अपने पिता बाबर के समान रचनात्मक कार्यों के करने की क्षमता तथा प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। (ii) उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, बरन् राज्यसिंहासन की प्राप्ति के उपरान्त वह साम्राज्य-विस्तार के कार्य में संलग्न हो गया। (iii) उसने जनता की नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को उन्नत करने की ओर ध्यान नहीं दिया। (iv) उसने दूसरी बार भी शेरशाह द्वारा स्थापित सुदृढ़ शासन-व्यवस्था को जमाने की चेष्टा नहीं की। कुछ लोगों का यह कथन है कि वह समय के अभाव से ऐसा नहीं कर सका, किन्तु यह सत्य से बहुत दूर है। वास्तव में, उसमें इन कार्यों के करने की योग्यता ही नहीं थी।

अतएव हुमायूँ में सेनापति तथा कुशल शासक-प्रबन्धक के गुणों का सर्वथा अभाव था जो मध्यकालीन युग के सम्राटों की एक प्रमुख विशेषता थी। इसके अभाव में कोई भी शासक सफल नहीं हो सकता था और यदि हुमायूँ अपने जीवन-काल में सफलता प्राप्त नहीं कर सका तो इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। इसीलिये कहा जाता है कि हुमायूँ अभाग्यवान व्यक्ति था, यद्यपि हुमायूँ शब्द का शाब्दिक अर्थ 'भाग्यशाली' है।* वह शासक की दृष्टि से पूर्णतया असफल रहा। अधिकतर इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि हुमायूँ योग्य व कुशल शासक नहीं था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) अफगान और मुगलों में १५३० और १५४० के बीच भारतवर्ष का राज्य प्राप्त करने के लिये जो संघर्ष हुआ उसका वर्णन कीजिये और हुमायूँ की असफलता के कारण भी बताइये। (१९५२)

(२) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की हार के कारण बताइये। (१९५७)

(३) हुमायूँ को गद्दी पर बैठने के बाद किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन कठिनाइयों के लिये बाबर कहाँ तक उत्तरदायी था? (१९५८)

(४) हुमायूँ को अपने पिता की मृत्यु के बाद किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? क्या यह सत्य है कि उसकी बहुत सी कठिनाइयों के कारण उसके भाई थे? (१९६१)

राजस्थान—

(१) "ऐसा कहा जाता है कि हुमायूँ ने अपनी विजयों का पूर्ण प्रयोग नहीं किया।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? (१९५१)

(२) क्या हुमायूँ असफल रहा? हुमायूँ के शासन-काल की घटनाओं का उल्लेख करते हुए अपने कथन को स्पष्ट कीजिये। (१९५६)

---

* "Humayun means fortunate but no unfortunate king ever ascended the of Delhi."

य भारत—

(१) शेरशाह हुमायूं के साथ झगड़े का वर्णन करिये । हुमायूं की असफलता के कारण थे ? (१६५१)

(२) मुगल-अफगान संघर्ष का वर्णन करो । (१६५३)

३ शेरशाह तथा उसके उत्तराधिकारी

गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि सन् १५४० ई० में खां ने हुमायूं को कन्नौज के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया जिसके परिणामस्वरूप ायूं आगरा तथा दिल्ली का परित्याग करने पर बाध्य हुआ । शेरशाह दिल्ली तथा गरे की ओर बढ़ा और उसने तुरन्त उन दोनों महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर या । दिल्ली का सुल्तान बनने के उपरान्त उसके कार्यों की व्याख्या करने के पूर्व यह ति आवश्यक प्रतीत होता है कि उसके प्रारम्भिक जीवन पर भी प्रकाश डाला जाये ।

शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन

(१) बाल्यकाल—प्रारम्भ मे शेरशाह की स्थिति बड़ी साधारण थी और ह अपनी योग्यता के आधार पर ही एक दिन दिल्ली-साम्राज्य का स्वामी बनने में फल हुआ । उसका बचपन का नाम फरीद था । वह इब्राहीम-.सूर का पोता था जो ावर के समीप के पहाड़ी प्रदेश रोह का निवासी था । उसका व्यवसाय घोड़ों का य-विक्रय करना था । कुछ समय पश्चात् नौकरी की खोज में उसने भारत की ओर स्थान किया । उसने पंजाब में रहना उचित समझा । यहां इब्राहीम के पुत्र हसन खां पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम फरीद रक्खा गया । उसका जन्म ४७२ ई० में हुआ । कानूनगो के अनुसार उसका जन्म-वर्ष १४८६ बतलाया गया है । सन ने जमाल खां के यहां नौकरी की । जब वह जौनपुर गया तो हसन भी अपने रिवार को लेकर उसके साथ चला गया । जमाल ने उसको सहसराम की जागीर प्रदान । फरीद ने अपना बाल्यकाल सहसराम में व्यतीत किया ।

(२) शिक्षा—हसन की कई पत्नियाँ थीं । वह अपनी सबसे छोटी पत्नी से शेष प्रेम करता था जिसके कारण बाल्यकाल में फरीद को अनेक कष्टों का सामना रना पड़ा । अपने पिता तथा अपनी विमाता के व्यवहार से तंग आकर उसने अपने ता के गृह का परित्याग कर दिया । वह जौनपुर गया जो उस समय सभ्यता तथा संस्कृति ा केन्द्र समझा जाता था । वहां उसने अकथनीय परिश्रम द्वारा अरबी और फारसी ाहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । उसने शीघ्र ही फारसी के प्रमुख ग्रन्थों 'गुलिस्तां', बोस्तां' तथा 'सिकन्दरनामा' का अध्ययन किया । उसने अध्ययन में विशेष योग्यता था प्रतिभा का परिचय दिया जिसके कारण अफगानों का सुसंस्कृत समाज स्वतः

उसकी ओर आकृष्ट हो गया। जमाल खाँ भी उससे बड़ा प्रभावित हुआ और उसने पिता-पुत्र में समझौता करा दिया जिसके फलस्वरूप हसन उसको सहसराम लिवा लाया और अपनी जागीर का प्रबन्ध उसके हाथ में सौंप दिया।

> **शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन—**
>
> (१) बाल्यकाल।
> (२) शिक्षा।
> (३) सहसराम की जागीर का प्रबन्ध।
> (४) गृह छोड़ना तथा फिर वापिस आना।
> (५) बिहार का उप-गवर्नर।
> (६) पद से निवृत्ति।
> (७) पद का पुनः प्राप्त करना।
> (८) उप-गवर्नर के पद पर पुनः नियुक्ति।
> (९) बंगाल पर आक्रमण।
> (१०) चुनार पर अधिकार।
> (११) शेरखां का हुमायुं से संघर्ष।
> (१२) शेरखां का राज्यसिंहासन पर आसीन होना।

(३) सहसराम की जागीर का प्रबन्ध—फरीद ने अपनी पैतृक जागीर के प्रबन्ध में योग्यता का परिचय दिया। उसने समस्त अधिकारियों को कड़े नियन्त्रण में रक्खा और उसने उनके कार्यों की स्वयं देख-भाल करना प्रारम्भ किया। उसने अपनी समस्त जागीर में सुख और शान्ति की स्थापना की। उसने लगान-सम्बन्धी एक विशेष व्यवस्था की स्थापना की जिससे किसानों को बड़ा संतोष हुआ और उनकी आर्थिक व्यवस्था उन्नत हुई। सन् १५१८ ई० तक वह समस्त कार्यों को करता रहा।

(४) गृह छोड़ना तथा फिर वापिस आना—फरीद की विमाता उसकी योग्यता तथा कार्य-कुशलता के कारण उससे और भी अधिक डाह तथा ईर्ष्या करने लगी। उसने फरीद के विरुद्ध अपने पति के कान भरे जिसके कारण पिता और पुत्र में फिर मन-मुटाव हो गया और फरीद को पुनः गृह छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। वह दिल्ली गया और उसने सुल्तान इब्राहीम से सहसराम की जागीर मांगी किन्तु सुल्तान ने उसकी प्रार्थना की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसी समय हसन की मृत्यु हो गई और सुल्तान से सहसराम की जागीर फरीद को प्राप्त हो गई और वह अपनी जागीर की व्यवस्था करने सहसराम आ गया।

(५) बिहार का उप-गवर्नर—यहाँ आकर उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी भाई सुलेमान के कुचक्रों का सामना किया। उसने दक्षिण बिहार के शासक बहार खाँ लोहानी के यहाँ नौकरी की। उसने उसकी सेवा बड़ी लगन तथा तत्परता से की जिससे वह उससे बहुत प्रसन्न हो गया। उसने उसे 'शेरखां' की उपाधि से सुशोभित किया जब उसने एक दिन बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के एक शेर का वध किया। कुछ समय उपरान्त उसने उसको अपने छोटे पुत्र जलाल खां का शिक्षक नियुक्त किया और बाद में उसकी नियुक्ति बिहार के उप-गवर्नर के पद पर हो गई।

(६) पद से निवृत्ति—दक्षिण बिहार के अन्य अफगान सरदार शेरखां की उन्नति देखकर उससे ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने

बहार खां के कान भरे कि वह उसके विरुद्ध महमूद लोधी का समर्थक है। बहार खां पर इस षड्यन्त्र का प्रभाव पड़ा और उसने मुहम्मद खां को शेरखां तथा उसके भाई सुलेमान के झगड़े का निर्णय करने के लिये मध्यस्थ नियुक्त किया। शेरखां ने इसका विरोध किया। उसने इस पर शेरखां को सैनिक शक्ति द्वारा वहां से निकाल दिया और सुलेमान के अधिकार में समस्त जागीर आ गई।

(७) पद का पुनः प्राप्त करना—इस प्रकार अफगान अमीरों के कुचक्र तथा षड्यन्त्र के कारण शेरखां पुनः गृहविहीन हो गया। उसने अपनी जागीर पर अधिकार करने के लिये जौनपुर के मुगल-गवर्नर की सहायता प्राप्त की। इससे उसके मान तथा प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। किन्तु कुछ समय उपरान्त उसने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की और अफगानों में उसके मान की स्थापना हो गई। शेरखां बाबर से बड़ा प्रभावित हुआ था और उसने मुगलों के सैनिक संगठन का अध्ययन तथा उनकी युद्ध-प्रणाली की जानकारी प्राप्त करने के लिये आगरे की ओर जाने का निश्चय किया। १५२७ ई० में वह आगरा गया। वह बाबर को प्रभावित करने में सफल हुआ और उसने उसको अपने सेवकों में स्थान दिया। मुगलों की सैनिक व्यवस्था तथा संचालन का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शेरखां ने बाबर को बिहार आक्रमण के समय विशेष सहायता प्रदान की जिसके फलस्वरूप उसको उसकी जागीर सहसराम पुनः प्राप्त हुई। कुछ समय वहाँ रहकर उसने अफगानों को संगठित करने का निश्चय किया और वह दक्षिणी बंगाल के सुल्तान मुहम्मद के पास गया जिसने उसको जलाल खां का शिक्षक नियुक्त किया। सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त उसकी विधवा पत्नी ने शेरखां को अपना वकील नियुक्त किया। अब उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने सैनिक-संगठन की ओर भी ध्यान दिया। उसने उन समस्त दोषों का अन्त किया जो उस समय अफगानों में विद्यमान थे। उसने अपने समर्थकों के एक दल का भी निर्माण किया, किन्तु उसने अपने स्वामी की सेवा करने से हाथ नहीं खींचा। सन् १५२९ ई० में इब्राहीम लोधी का छोटा भाई महमूद बिहार आया। उसके नेतृत्व में अफगानी सरदारों ने सम्मिलित होकर एक सेना का संगठन मुगलों का विरोध करने के अभिप्राय से किया। प्रारम्भ में शेरखां इससे अलग रहा, किन्तु बाद में वह इसमें सम्मिलित हो गया। प्रारम्भ में अफगानियों को सफलता प्राप्त हुई, किन्तु जब उनको बनारस विजय के उपरान्त मुगल-सेना के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ तो वे भयभीत हो गये। अफगान सरदारों ने बाबर की आधीनता स्वीकार कर ली। बाबर ने जलाल खां को बिहार इस शर्त पर वापिस किया कि वह वार्षिक कर चुकाता रहेगा। शेरखां को भी उसकी जागीर वापिस मिल गई।

(८) उप-गवर्नर के पद पर पुनः नियुक्ति—शेरखां फिर बिहार का उप-गवर्नर नियुक्त हुआ। शेरखां ने बिहार की आर्थिक दशा को उन्नत करने का घोर प्रयत्न किया जो बाबर तथा महमूद के युद्ध के कारण बड़ी शोचनीय हो गई थी। जलाल खां की मां की मृत्यु होने पर शासन की समस्त सत्ता शेरखां के अधिकार में आ गई। उसने सेना का पुनर्संगठन किया और अपने विश्वासपात्रों को उच्च पदों पर आसीन किया।

इससे उसकी प्रतिष्ठा तथा मान में बड़ी वृद्धि हुई। अतः इस समय शेरखां ने जलाल खां के संरक्षक के रूप में स्वेच्छाचारी शासन कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

(९) बंगाल पर आक्रमण—१५२६ ई० में बंगाल के शासक नुसरतशाह ने अपनी शक्ति तथा साम्राज्य का विस्तार करने के अभिप्राय से दक्षिणी बिहार को अपने अधिकार में करने के लिये आक्रमण किया। वह शेरखां की बढ़ती हुई शक्ति को सहन नहीं कर सका। शेरखां नुसरतखां की महत्वाकांक्षाओं को भली प्रकार समझता था। वह युद्ध के लिये तैयार था। उसने नुसरतशाह की सेनाओं को दो बार युद्ध में परास्त किया। जलाल खां दक्षिणी बिहार से चला गया और शेरखां के हाथ में अब समस्त राजनीतिक सत्ता आ गई। वह दक्षिणी बिहार पर राजा के समान शासन करने लगा, किन्तु उसने अपने आपको किसी राजसी उपाधि से सुशोभित नहीं किया।

(१०) चुनार पर अधिकार—इसी समय १५३० ई० में शेरखां को चुनार पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। चुनार के शासक तथा उसके पुत्र में झगड़ा हो गया जिसमें पुत्र ने अपने पिता ताजखां का वध कर दिया। शेरखां ने ताजखां की विधवा पत्नि लाद मलिका से विवाह किया और चुनार को अपने अधीन किया। चुनार के उसके अधिकार में आ जाने के कारण शेरखां की सैनिक तथा आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ हो गई, क्योंकि यह दुर्ग बड़ा दृढ़ माना जाता था तथा वहां से उसको बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ। इन प्रारम्भिक विजयों के कारण शेरखां की महत्वाकांक्षाओं में बहुत वृद्धि हुई और वह स्वतन्त्र शासक बनने की कल्पना करने लगा।

(११) शेरखां का हुमायूं से संघर्ष—नुसरतशाह की मृत्यु के उपरान्त बंगाल का शासक उसका पुत्र महमूद हुआ। वह बिहार को अपने राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने कुतुब खां को बिहार भेजा। शेरखां ने उसे परास्त किया। अफगान सरदारों को इससे शान्ति प्राप्त नहीं हुई और उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ समय के पश्चात् उसने पुनः बंगाल की सेना को परास्त किया। इस युद्ध के कारण शेरखां को बहुत लाभ हुआ। १५३५ ई० में उसने पुनः बंगाल पर आक्रमण किया और उसको विशेष धन प्राप्त हुआ। १५३७ ई० में उसने एक बार फिर बंगाल को अपने अधिकार में किया। चुनार पर शेरखां का अधिकार हो जाने से हुमायूं को विशेष चिन्ता हुई। इसके बाद शेरखां ने रोहतास के दुर्ग पर अधिकार किया। शेरखां से युद्ध करने के लिये हुमायूं बिहार की ओर आया, किन्तु दोनों में एक सन्धि हो गई। शेरखां का चुनार पर पूर्ववत् अधिकार बना रहा। कुछ समय पश्चात् हुमायूं शेरखां की शक्ति का दमन करने के लिये फिर पूर्व की ओर आया। इस समय शेरखां बंगाल में था। हुमायूं भी बंगाल गया और वहां उसने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। शेरखां तुरन्त बंगाल छोड़कर बिहार चला आया और उसने मुगल-साम्राज्य के प्रदेशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। हुमायूं इस समाचार का ज्ञान प्राप्त होते ही बिहार की ओर आया। दोनों सेनाओं का चौसा नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें हुमायूं बुरी तरह परास्त हुआ और उसको अपनी रक्षा के लिए गंगा में

होना पड़ा। हुमायूं तुरन्त आगरे पहुँचा और एक सेना लेकर शेरखां का सामना करने के लिये आया। कन्नौज के स्थान पर दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ जिसमें हुमायूं को पुनः परास्त होना पड़ा। शेरखां की सेना ने हुमायूं का पीछा किया और दिल्ली तथा आगरे पर अपना अधिकार स्थापित किया। इस पर शेरखां दिल्ली और आगरे पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुआ।

(१२) शेरखां का राज्य-सिंहासन पर आसीन होना—शेरखां दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार करने के उपरान्त शेरशाह के नाम से राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने शीघ्र ही ऐसी योजना का निर्माण किया कि हुमायूं भारत में न रह सके।

शेरशाह की विजयें

हुमायूं के पलायन करने के उपरान्त शेरशाह ने पश्चिमोत्तर सीमा की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया जिसकी दशा इस समय बड़ी अव्यवस्थित थी। उसकी प्रमुख विजयें निम्नांकित हैं—

(१) खोखरों पर विजय—शीघ्र ही शेरशाह का ध्यान खोखरों के प्रदेश की विजय की ओर आकर्षित हुआ। यह प्रदेश झेलम और सिन्ध नदी के मध्य में है और दिल्ली के शासक के लिये इस स्थान का महत्व बहुत अधिक है। उसने इस प्रदेश पर आक्रमण किया और उसको बुरी तरह परास्त किया, किन्तु वह उनको पूर्णतया अपने अधिकार में करने में सफल नहीं हो सका। शेरशाह ने उस प्रदेश में एक दुर्ग का निर्माण करवाया और इसका नाम बिहार के विशाल दुर्ग के नाम पर रोहतास रखा और वहां ५,००० सैनिकों को योग्य सेनापतियों के नेतृत्व में दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त किया। इस प्रकार की सुव्यवस्था स्थापित कर वह दिल्ली वापिस चला गया।

> **शेरशाह की विजयें**
> (१) खोखरों पर विजय।
> (२) बंगाल-विजय।
> (३) मालवा-विजय।
> (४) रणथम्भौर-विजय।
> (५) रायसिन-विजय।
> (६) सिन्ध तथा मुल्तान-विजय।
> (७) राजपूताना-विजय।
> (क) मारवाड़।
> (ख) मेवाड़।
> (८) कालिंजर-विजय।

(२) बंगाल विजय—इसी समय शेरशाह को सूचना मिली कि खिज्रखां स्वतन्त्र होने का विचार कर रहा था। शेरशाह तुरन्त ही उसकी शक्ति का दमन करने के लिये बंगाल की ओर गया। उसने खिज्रखां को बन्दी बनाया और बंगाल में नये ढङ्ग के शासन-प्रबन्ध की स्थापना की जिससे भावी उपद्रवों से रक्षा हो सके। इस व्यवस्था द्वारा "प्रान्तीय शासन के सैनिक स्वरूप को एकदम बदल दिया, और प्राचीन व्यवस्था के स्थान पर एक नवीन व्यवस्था का जन्म हुआ, जो सैद्धान्तिक रूप से मौलिक और कार्य की दृष्टि से सुगम तथा सुविधाजनक थी।"

(३) मालवा-विजय—बंगाल से निश्चिंत होकर शेरशाह का ध्यान मालवा की ओर आकर्षित हुआ। इस समय मालवा पर कादिरशाह का अधिकार था जो स्वतन्त्र

शासक के रूप में शासन कर रहा था। शेरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया। कादिरशाह ने आत्म-समर्पण किया। इस प्रकार समस्त मालवा शेरशाह के अधिकार में आ गया। मालवा की उचित व्यवस्था कर उसने शुजात खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया।

(४) रणथम्भौर-विजय—मालवा विजय करने के उपरान्त शेरशाह रणथम्भौर की ओर बढ़ा। रणथम्भौर राजपूताने का एक सुदृढ़ तथा महत्वपूर्ण दुर्ग समझा जाता है। वहाँ के दुर्गपति ने बिना किसी विरोध के शेरशाह की सेना के सामने आत्म-समर्पण कर

दिया और इस दुर्ग पर शेरशाह का अधिकार बड़ी सरलता से हो गया।। अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिलशाह को दुर्ग के संरक्षक के रूप में नियुक्त कर वह आगरे चला गया।

(५) रायसिन-विजय—रायसिन मध्य भारत का राज्य था जिस पर चौहान राजपूत पूरनमल शासन कर रहा था। उसने १५४२ ई० में शेरशाह की अधीनता स्वीकार की। पूरनमल का मुसलमानों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। जब शेरशाह को यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने शीघ्र ही रायसिन को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया। रायसिन का दुर्ग घेर लिया गया। यह घेरा पर्याप्त समय तक पड़ा रहा और राजपूतों ने आत्म-समर्पण नहीं किया। अन्त में शेरशाह ने कुरान पर हाथ रखकर वचन दिया कि राजा और उसके परिवार को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया जायगा तो पूरनमल ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसको शेरशाह के समीप ही एक डेरे में ठहराया गया। शेरशाह ने अपने वचन के विरुद्ध राजपूतों पर आक्रमण कर उनका संहार करवा दिया यद्यपि राजपूतों ने अदम्य उत्साह तथा साहस का परिचय दिया। इस सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि समस्त पुरुष मौत के घाट उतार दिये गये। केवल कुछ स्त्रियां और बच्चे शेष रहे जिनको गुलाम बनाया गया। वास्तव में शेरशाह जैसे महान् शासक का यह कृत्य उचित नहीं था और उसके उच्च नाम पर यह एक बहुत बड़ा धब्बा है।

(६) सिन्ध तथा मुल्तान विजय—बंगाल के विद्रोह का समाचार पाकर शेरशाह को सिन्ध तथा मुल्तान-विजय का कार्य अपने सेनापति पर छोड़ना पड़ा किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। शेरशाह ने फिर हैबत खां निआमी को वहां का सूबेदार नियुक्त किया। उसने शीघ्र ही विद्रोहियों का दमन किया और मुल्तान पर अधिकार किया। शेरशाह उसकी विजय से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसको पुरस्कृत किया। सन् १५४१ ई० में सिन्ध प्रदेश पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया और उसने इस्माइल खां नामक एक स्थानीय सरदार को वहां का सूबेदार नियुक्त किया।

इस प्रकार सिन्ध और मुल्तान-विजय द्वारा तथा पंजाब से मुगलों का आधिपत्य समाप्त कर शेरशाह ने अपनी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुदृढ़ कर दिया।

(७) राजपूताना-विजय—उक्त विजयों के उपरान्त उसने राजपूतों की शक्ति का दमन करने के अभिप्राय से राजपूताने के राज्यों की ओर ध्यान दिया। राणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ राज्य का पतन हो गया और उसके स्थान पर मारवाड़-राज्य की शक्ति तथा प्रतिष्ठा का श्रीगणेश होना आरम्भ हुआ।

(क) मारवाड़—इस समय मारवाड़-राज्य का शासक मालदेव था और उसने राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही अपने साम्राज्य का विस्तार कर पड़ोसी राज्यों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया। इससे राजपूत उससे द्वेष करने लगे थे। वे शेरशाह से मिलकर उसकी शक्ति का दमन करना चाहते थे। इस सुअवसर का लाभ उठाने के लिये शेरशाह ने युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। सन् १५४४ ई० में शेरशाह एक विशाल सेना लेकर मारवाड़ की राजधानी जोधपुर की ओर बढ़ा। मालदेव भी अपनी विशाल तथा संगठित सेना लेकर शेरशाह की सेना का सामना करने के लिये चल पड़ा।

दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। राजपूतों ने बड़ी वीरता तथा साहस से युद्ध किया। शेरशाह बड़े असमंजस में पड़ गया और विकट परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने कूटनीति की शरण ली। उसने इस आशय के पत्र लिखवाकर कि राजपूत सरदार मालदेव को बन्दी करने का वचन देते हैं मालदेव के डेरे के पास डलवा दिये। मालदेव को जब ये पत्र प्राप्त हुये तो उसको बड़ा दुःख हुआ और उसने युद्ध न करने का निश्चय किया। कुछ सरदारों ने अपने को विश्वासघाती सिद्ध न होने देने के लिये अफगान सेना पर आक्रमण किया, किन्तु उनकी पराजय हुई। कुछ समय उपरान्त ही मालदेव को सत्य प्रगट हो गया किन्तु अब क्या हो सकता था। अन्त में शेरशाह की विजय हुई, किन्तु वह राजपूतों के शौर्य तथा वीरता से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। स्वयं शेरशाह ने कहा कि "एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये वह भारत का साम्राज्य खो बैठता।" शेरशाह ने मारवाड़ को दिल्ली-साम्राज्य में मिलाया और ईसा खां नियाजी को वहां का सूबेदार नियुक्त किया।

(ख) मेवाड़—इधर से निश्चित होकर शेरशाह मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ को अपने अधिकार में करने के लिये उधर बढ़ा। उसने चित्तौड़ पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया। मेवाड़ तथा चित्तौड़ शेरशाह के अधिकार में अधिक काल तक नहीं रह सके और वे शीघ्र ही स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार जैसलमेर और बीकानेर के अतिरिक्त समस्त राजपूताना कुछ समय के लिये शेरशाह के अधिकार में आ गया। शेरशाह ने राजपूत राजाओं को उनके राज्य वापिस कर दिये और केवल कुछ चौकियों की नियुक्ति की जिससे राजस्थान पर पूर्ण नियन्त्रण रखा जा सके। इस सम्बन्ध में डाक्टर कानूनगो का कथन है कि "शेरशाह ने हिन्दुस्तान के अन्य भागों के समान राजस्थान में स्थानीय राजाओं और शासकों को उनके स्थानों से विस्थापित करने और उन्हें नितान्त परवश बनाने की चेष्टा नहीं की। ऐसा करना उसने खतनाक और निरर्थक समझा। इन राजाओं की स्वतन्त्रता को बिल्कुल समाप्त कर देने की उसने चेष्टा नहीं की, बल्कि उसने कोशिश यह की कि इन राज्यों तथा रियासतों का राजनीतिक और भौगोलिक पृथक्करण ही रहे, जिससे यह अफगान स्वराज्य के प्रति संगठित होकर विद्रोह के लिये खड़े न हो जायें। संक्षेप में, यह मताधिकार उत्तर-पश्चिम के कबाइलियों पर ब्रिटिश शासन द्वारा किये गये उस अधिकार की तरह था, जिसमें मिलने-मिलाने को कुछ नहीं रखा था, किन्तु भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक था।"

(ग) कालिंजर विजय—राजस्थान से निश्चित होकर शेरशाह का ध्यान कालिंजर की ओर आकृष्ट हुआ। यह दुर्ग अभेद्य दुर्ग माना जाता था। इस समय वहाँ का शासक कीर्तिसिंह था। रीवां के राजा ने कालिंजर में शरण ली थी। शेरशाह ने कीर्तिसिंह से उसको मांगा, किन्तु उसने उनको देने से इन्कार कर दिया। इस पर शेरशाह ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और नवम्बर, १५४४ ई० में कालिंजर दुर्ग का घेरा डाला। एक-वर्ष लम्बा घेरा डाले रहने पर भी दुर्ग पर शेरशाह का अधिकार नहीं हो पाया। अन्त में, यह निश्चय किया गया कि दुर्ग की दीवारों को बारूद से उड़ाया जाय। २२ मई १५४५ को शेरशाह ने दुर्ग पर आक्रमण करने को

माज्ञा दी। संयोग से जब वह तोपखाने का निरीक्षण कर रहा था तो एक गोला नगर-द्वार से टकरा कर फट गया और तोपखाने में आग लग गई। शेरशाह बुरी तरह से घायल हुआ। उसने आक्रमण जारी रखने की आज्ञा दी। दिन छिपते-छिपते अफगानों का दुर्ग पर अधिकार हो गया। जब यह समाचार शेरशाह ने सुना तो उसके चेहरे पर प्रसन्नता तथा सन्तोष के चिन्ह प्रगट होने लगे। इस समाचार के मिलने के कुछ समय उपरान्त ही उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह की शासन-व्यवस्था

शेरशाह की महानता में जितना योग उसकी शासन-व्यवस्था ने दिया है उतना योग उसकी सैनिक विजयों ने प्रदान नहीं किया। वास्तव में वह बहुत ही उच्च कोटि का शासक था और उसके ही शासन-सम्बन्धी सुधारों पर अकबर एक दृढ़ शासन-व्यवस्था की स्थापना करने में सफल हुआ। उसके शासन प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य जन-साधारण के लिये सुख तथा शान्ति की व्यवस्था करना था। इस ओर उसने विशिष्ट रूप से ध्यान दिया और जो अराजकता पर्याप्त समय से देश में फैली हुई थी, उसका उसने पूर्णतया अन्त करने का प्रयास किया और उसमें उसको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई जिसकी प्रशंसा भारतीय तथा विदेशी इतिहासकारों ने मुक्त कण्ठ से की है। पाठकों की सुविधा का ध्यान रखकर उसकी शासन-व्यवस्था को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) राज्य का स्वरूप—शेरशाह के राज्य का स्वरूप लौकिक था। उसमें धार्मिक सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। यद्यपि वह स्वयं कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम की शिक्षाओं तथा सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण पालन करता था, किन्तु उसने राजनीति में धर्म को प्रविष्ट नहीं होने दिया। उसका हिन्दू तथा मुसलमान जनता के साथ समान व्यवहार था और उसके शासन-काल में दोनों को अपनी उन्नति तथा विकास करने का पूर्ण अवसर प्राप्त था। इस प्रकार वह दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों से भिन्न था जिनमें से अधिकांश की धार्मिक नीति अनुदार थी।

(२) सुल्तान—सुल्तान शासन का केन्द्र था और उसका शासन उसमें ही केन्द्रीभूत था। उसकी आज्ञायें विधि थीं और प्रत्येक के लिये मान्य थीं। वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं था। वह मध्यकालीन सम्राटों के समान स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक था, किन्तु उसकी गणना अन्यायी तथा अत्याचारी शासकों में नहीं की जा सकती। वह योरुप के Enlightened Despots के समान था जो अपनी शक्ति तथा अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित के लिये करते थे। वह अपनी प्रजा के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था और उसके सुख-दुख को अपना दुख-सुख समझता था। वह शासन की न्यूनतम बातों को भी ध्यान से देखता था। वह कर्मचारियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था और जब वे उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करते थे तो वह उनको कठोर दण्ड दिया करता था। इससे वे सदा सचेत रहते थे और अनुचित कार्य करने से बहुत डरते थे। उनको प्रत्येक समय शासक का भय बना रहता था। शेरशाह के काल में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण पद नहीं था। वास्तव में शेरशाह स्वयं अपना मन्त्री था और

वह स्वयं अपनी योग्यता तथा निर्णय के आधार पर समस्त शासन का संचालन किया करता था। समस्त शासन विभिन्न विभागों में विभक्त था जिनका वह स्वयं सर्वेसर्वा था। वह प्रधान सेनापति तथा न्यायाधीश था, अतः शासन की समस्त सत्ता उसके हाथों में थी।

(३) **साम्राज्य-विभाजन**—शेरशाह ने शासन की सुविधा एवं उचित शासन-व्यवस्था के लिये अपने समस्त विशाल साम्राज्य को ४७ भागों में विभक्त कर दिया था।

शेरशाह की शासन-व्यवस्था
(१) राज्य का स्वरूप।
(२) सुलतान।
(३) साम्राज्य-विभाजन।
(४) भूमि-व्यवस्था।
(५) अर्थ-व्यवस्था।
(६) सैनिक-व्यवस्था।
(७) पुलिस तथा गुप्तचर विभाग।
(८) यमनागमन के साधन।
(९) डाक-विभाग।
(१०) भवन-निर्माण।
(११) सामाजिक-कार्य।

प्रत्येक विभाग का शासन एक अफगान सरदार के हाथ में था जिसको अमीन या फौजदार कहते थे। वह शेरशाह के प्रति उत्तरदायी था और उसको उसकी आज्ञायें माननीय थी। उसका प्रमुख कर्त्तव्य अपने प्रान्त में शान्ति तथा सुरक्षा की व्यवस्था करना था। उसकी सहायता के लिये और भी बहुत से कर्मचारी होते थे। प्रत्येक प्रान्त कई सरकारों में विभक्त था। प्रत्येक सरकार में दो पदाधिकारी रहते थे, जिनको शिकदार-ए-शिकदारान (मुख्य शिकदार) तथा मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान (मुख्य मुन्सिफ) कहते थे। प्रथम का मुख्य कार्य शान्ति की स्थापना करना था जबकि द्वितीय का मुख्य कार्य न्याय-सम्बन्धी था। इनके अतिरिक्त प्रत्येक परगने में एक अमीन, एक खजांची और हिसाब लिखने के लिये एक हिन्दी और एक फारसी का क्लर्क होता था। पटवारी, चौधरी और मुकद्दम भी होते थे जो राज्य के कर्मचारियों की सहायता किया करते थे। शिकदार का पद सैनिक था। उसका मुख्य कार्य शाही आज्ञाओं के अनुसार आचरण करना तथा अमीन को आवश्यकता के समय सैनिक सहायता प्रदान करना था। अमीन का मुख्य कार्य लगान तय करना तथा उसका वसूल करना था। वह केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी था। उसके नीचे अन्य कई कर्मचारी कार्य करते थे। वह दीवानी तथा माल-सम्बन्धी मुकदमों का फैसला भी करता था। इन पदाधिकारियों को समय-समय पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेज दिया जाता था। शेरशाह इस बात का विशेष ध्यान रखता था कि एक कर्मचारी कई वर्षों तक एक स्थान पर कार्य नहीं करे। इसका कारण यह था कि किसी एक विशेष पदाधिकारी का प्रभाव एक स्थान पर अधिक न हो जाये जिससे उसके हृदय में जनता का सहयोग प्राप्त कर विद्रोह करने की भावना का उदय न हो जाये। प्रत्येक परगना गांवों में विभक्त था जहाँ पटवारी, मुकद्दम तथा चौधरी होते थे। मुखिया का पद विशेष महत्वपूर्ण था। उसका मुख्य कर्त्तव्य अपने क्षेत्रों में अपराधों का अन्त करना था। शेरशाह की यह आज्ञा थी कि यदि किसी के क्षेत्र में चोरी अथवा डाका पड़ता था तो उस क्षेत्र के मुखिया को चोर अथवा डाकू का पता लगाना अनिवार्य था। यदि उसका वह पता नहीं मालूम कर

ा था तो उसको क्षति-पूर्ति करनी पड़ती थी। इससे ये लोग बड़े सचेत रहते थे और र्यों तथा अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई।

(४) भूमि-व्यवस्था—शासन-सम्बन्धी सुधारों के इतिहास में शेरशाह की भूमि-स्था का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उसकी शासन-स्था भविष्य के लिये एक आदर्श थी जिसका अनुकरण पर्याप्त मात्रा में भविष्य में ा गया। आवश्यकता एवं समय के अनुसार उसमें परिवर्तन अवश्य किया गया किन्तु न्त वही माना गया। (i) शेरशाह ने समस्त कृषि-योग्य भूमि की नाप करवाई और कंदरी-गज का प्रयोग किया गया। नाप के लिये उसने रस्सी का प्रयोग किया। समस्त को बीघों में विभक्त किया गया। एक बीघे का क्षेत्रफल ३६० वर्ग गज निश्चित ा गया। (ii) लगान उपज के अनुमान पर निश्चित किया जाता था। किसान राज्य लगान के रूप में उपज का $\frac{1}{3}$ या $\frac{1}{4}$ भाग देते थे। राज्य की ओर से उनको यह धा प्राप्त थी कि वे लगान अनाज अथवा धन के रूप में दे सकते थे किन्तु राज्य ाज की अपेक्षा धन के रूप में लगान लेना अधिक पसन्द करता था। (iii) अमीन, दम, शिकदार, कानूनगो तथा पटवारी लगान वसूल करते थे। शेरशाह का कर्मचारियो यह आदेश था कि लगान निश्चित करने के समय नम्रता दिखलाई जावे किन्तु लगान ल करते समय कठोरता का व्यवहार किया जाये ताकि बकाया अगले वर्ष के लिये न रहे। (iv) उसने किसानों के अधिकार कबूलियत (पट्टे) द्वारा सुरक्षित किये। बूलियत राज्य और किसानों के बीच एक समझौता था। किसान को यह अधिकार प्त था कि वह स्वयं राजकोष में लगान जमा कर सके। इस प्रकार शेरशाह ने ह प्रयत्न किया कि किसान तथा राज्य का सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाये र बीच के व्यक्तियों का महत्व कम हो गया। (v) फसल खराब होने पर किसान गान से मुक्त कर दिये जाते थे। केवल इतना ही नहीं वरन् उनको राजकोष से र्थिक सहायता तकावी के रूप में भी दी जाती थी। उसका किसानों के साथ अच्छा व्यवहार था। (vi) उसका सैनिकों को यह आदेश था कि वे फसल को खराब न करें और यदि किसी अनिवार्य कारणवश फसल को सैनिकों द्वारा हानि हो जाती थी तो किसानों की क्षतिपूर्ति राज्य की ओर से की जाती थी। जब कभी शेरशाह अपने शत्रु के प्रदेश में प्रवेश करता था तो भी वह इस बात का ध्यान रखता था कि किसानों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचने पाये। उसके इन सुधारों से किसानों को बहुत बड़ा लाभ हुआ। वे स्वतन्त्रतापूर्वक कृषि का कार्य करने लगे और सरकारी आय में बड़ी वृद्धि हुई। इन सुधारों द्वारा भारत की आर्थिक अवस्था उन्नत हुई।

(५) न्याय-व्यवस्था—शेरशाह ने न्याय-व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया। उसकी धारणा थी कि जिस समय तक न्याय-व्यवस्था उन्नत न होगी उस समय तक साम्राज्य का स्थायी होना असम्भव होगा। वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उसकी न्याय-व्यवस्था विशेष कठोर न थी, वरन् उसने कठोर न्याय-व्यवस्था में उदारता का संचार किया। वह सत्यता की खोज करने का पूर्ण प्रयत्न करता था। अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड दिया जाता था। उसका छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, हिन्दू-

मुसलमान सबके लिये समान दण्ड-विधान था। इसमें वह किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता था। वह प्रधान न्यायाधीश था और बड़े-बड़े मुकदमों की अपील स्वयं सुनता था। फौजदारी के मुकदमों का निर्णय शिकदार-ए-शिकदारान तथा मालगुजारी के मुकदमों का निर्णय मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान किया करता था। इसके अतिरिक्त कुछ और भी न्यायालय थे। शेरशाह का आदेश था कि मुकदमों को अपने क्षेत्र के अपराधियों का पता लगाना होगा और यदि वे ऐसा करने में असमर्थ रहें तो उनको दण्ड दिया जावे। इस व्यवस्था के कारण अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई और जनता सुख और शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

(६) सैनिक-व्यवस्था—शेरशाह ने सैनिक-शक्ति के आधार पर ही दिल्ली साम्राज्य पर अधिकार किया। वह जानता था कि नव-स्थापित साम्राज्य की सुरक्षा उसके सैनिक संगठन पर ही अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। साम्राज्य-विस्तार के लिये भी उचित सैनिक-व्यवस्था का होना परम आवश्यक है। उक्त बातों को ध्यान में रखकर उसने सैनिक-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। (i) शेरशाह ने अलाउद्दीन खलजी के समान एक सुसंगठित सेना की व्यवस्था की और उसकी सैनिक व्यवस्था को आधार मानकर ही कार्य किया। (ii) उसने सैनिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जिसके कारण सैनिकों में उसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई और वे उसकी सेवा करने के लिये प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। (iii) उसने जागीर प्रथा का अन्त किया और समस्त साम्राज्य के लिये एक सेना का निर्माण किया जो केवल उसके अधीन थी और उसके प्रति ही उत्तरदायी थी। (iv) वह सैनिक व्यवस्था में इतनी अधिक दिलचस्पी लेता था कि स्वयं प्रत्येक सैनिक को भर्ती करता था और उसकी योग्यता तथा कार्य-कुशलता के अनुसार उसका वेतन निश्चित करता था। (v) वह वेतन सैनिकों को धन के रूप में देता था (vi) उसने इस सम्बन्ध में प्रान्तीय सूबेदारों के अधिकारों को सीमित कर दिया जिससे उनकी शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा और राज्य में विद्रोह की आशंका बहुत कम हो गई। उसने हिन्दुओं को भी सैनिक-सेवा करने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार के राष्ट्रीयकरण की ओर उसने बहुत महत्वपूर्ण कदम उठाया। (vii) साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर छावनियों की स्थापना की जहां सेना रक्खी जाती थी। प्रत्येक छावनी में एक फौजदार था जो उसके अधीन था और उसके प्रति ही उत्तरदायी था। उसने पुराने दुर्गों की मरम्मत करवाई और नये दुर्गों का निर्माण करवाया। (viii) उसकी सेना में १,५०,००० घुड़सवार, २५,००० पैदल थे जो अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित थे। उसकी सेना में हाथी तथा उच्च-कोटि का तोपखाना भी था। (ix) सेना के लिये अनुशासन का पालन करना अनिवार्य था। अनुशासन भंग करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। (x) उसने घोड़ों पर दाग लगाने की तथा सैनिकों व घोड़ों का हुलिया लिखने की परिपाटी चलवाई जिससे कोई बेईमानी न कर सके। वह स्वयं सेना का निरीक्षण किया करता था और हुलिया मिलाया करता था। उसका अपने सैनिकों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार था। वह हर समय उनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करता था। इस उच्च-

कोटि की सैनिक व्यवस्था के आधार पर ही वह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ।

(७) पुलिस तथा गुप्तचर विभाग—शेरशाह ने आंतरिक शांति तथा सुरक्षा के लिये पुलिस तथा गुप्तचर विभाग की सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। अपराधों को रोकना तथा अपराधियों का पता लगाने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्थानीय अधिकारियों के ऊपर था। यदि वे उनका पता लगाने में असमर्थ होते थे तो उनको क्षति-पूर्ति करनी पड़ती थी अथवा उनको दण्ड दिया जाता था। इससे अधिकारी वर्ग बहुत सचेत रहता था और जनता की जान-माल की सुरक्षा की व्यवस्था स्वतः हो गई। उसने साम्राज्य की बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये गुप्तचर विभाग की स्थापना की। मध्ययुग में इस विभाग का महत्व बहुत अधिक था, क्योंकि उस समय शासक की सत्ता के अन्त करने के अभिप्राय: से षड्यन्त्र हुआ करते थे। इसके अभाव में राज्य का स्थायी रहना असम्भव था। ये लोग भेष बदलकर सदा भ्रमण करते रहते थे और शासक को समस्त बातों से अवगत करते थे। इनके भय के कारण अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन बड़ी सतर्कता तथा निष्ठता से करते थे। इनके कारण आने-जाने के मार्ग सुरक्षित हो गए जिससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(८) गमनागमन के साधन—शेरशाह ने सार्वजनिक कार्यों की ओर भी विशेष ध्यान दिया। इस समय सड़कें बहुत कम थीं जिसके कारण यात्रियों तथा सैनिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने-जाने में विशेष कठिनाई का अनुभव करना पड़ता था और समय का भी दुरुपयोग होता था। भारत में शेरशाह प्रथम शासक था जिसने बड़े पैमाने पर सड़कों के निर्माण की ओर ध्यान दिया। इसके द्वारा साम्राज्य के प्रमुख नगर एक दूसरे से जुड़ गये और आने-जाने में विशेष सरलता का अनुभव होने लगा। उसने निम्न चार प्रमुख सड़कों का निर्माण करवाया—

(क) ग्रांड ट्रंक सड़क—कलकत्ते से पेशावर तक,
(ख) आगरे से बुरहानपुर तक,
(ग) आगरे से जोधपुर तक और फिर चित्तौड़ तक, और
(घ) लाहौर से मुल्तान तक।

इन सड़कों को अन्य सड़कों से भी मिलाया गया और मिलाने के लिये कुछ अन्य छोटी-छोटी सड़कों का भी निर्माण हुआ। उसने सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाये ताकि यात्रियों को चलने में सुविधा रहे। प्रत्येक सड़क पर दो-दो मील की दूरी पर सरायें बनवाईं। इनमें हिन्दुओं और मुसलमानों के ठहरने का अलग-अलग प्रबन्ध था। यात्रियों को उनके पद के अनुसार सराय में सामान मिलता था। प्रत्येक सराय में एक कुआं और एक मस्जिद होती थी। सरायों के आस-पास गाँवों का निर्माण किया गया। सराय डाक-चौकियों का काम करती थीं। प्रत्येक सराय में दो घुड़सवार रहते थे जो आस-पास के समाचार केन्द्र को भेजते थे।

(९) डाक विभाग—शेरशाह ने डाक विभाग को भी उन्नत किया। उसने व्यवस्था की कि डाक कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा सके। डाक

घोड़ों तथा पैदल हरकारों द्वारा भेजी जाती थी। सरायों से डाक-चौकियों का काम लिया जाता था। इससे समाचार शीघ्र प्राप्त हो जाता था।

(१०) भवन-निर्माण—शेरशाह को भवन-निर्माण करने का बड़ा चाव था। उसने दिल्ली के समीप एक नगर बनवाया तथा पंजाब में रोहतास नामक एक नगर का निर्माण करवाया। उसने सहसराम में अपना भव्य मकबरा बनवाया। उसका यह मकबरा भारत में स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना समझा जाता है। बाहर से इसकी शैली मुस्लिम है किन्तु अन्दर से हिन्दू है। उसने एक जामा मस्जिद तथा कई दुर्गों का निर्माण करवाया। उसने कन्नौज के पास शेरपुर नामक एक नगर की स्थापना करवाई।

(११) सार्वजनिक कार्य—शेरशाह ने सर्वसाधारण के हित के लिये बहुत से औषधालय, दानशालायें तथा सरायों का निर्माण किया। उसके भोजनालय में सहस्रों व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। वह बड़ा दानी था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों और धार्मिक व्यक्तियों को बहुत अधिक दान देता था। वह स्वयं बड़ा विद्वान् था और विद्वानों की हर सम्भव रूप में सहायता करने को तैयार रहता था। उसने शिक्षा की उन्नत करने की ओर ध्यान दिया। उसने अनेक पाठशालायें खुलवाईं। वह अच्छे तथा योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दिया करता था। उसने उच्च शिक्षा के प्रसार के लिये मदरसे खुलवाये। गरीब लोगों के लिये उसने नगरों की व्यवस्था की जहाँ उनको निःशुल्क भोजन मिलता था। शेरशाह ने मुद्रा को भी सुधारा।

इस प्रकार शेरशाह ने अपनी शासन-व्यवस्था में अनेक सुधार किये। ऐसा कोई भी विभाग नहीं था जिसमें उसने उचित व्यवस्था की ओर ध्यान न दिया हो। वास्तव में समस्त शासन-सम्बन्धी क्षेत्रों में उसने सुधार किये और उनके द्वारा उसकी योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण आभास प्राप्त होता है। उसके शासन-काल में समस्त साम्राज्य में सुख और शान्ति का राज्य था। दुर्भाग्य से वह केवल पांच वर्ष तक ही भारत की सेवा कर सका जिससे उसकी शासन-व्यवस्था को अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यदि वह कुछ समय तक और जीवित रहा होता तो वह भारत में ऐसी व्यवस्था की स्थापना करने में सफल हो जाता जिसकी नकल भविष्य में पूर्णतया की जाती, किन्तु इस अल्प काल में जो कुछ भी वह कर पाया वह अद्वितीय था और उसकी योग्यता का पूर्ण प्रतीक है।

शेरशाह का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन

उत्तरी भारत के मुसलमान शासकों में शेरशाह ही प्रथम मुसलमान सुल्तान था जिसका राज दरबार से कोई सम्बन्ध न था और वह राजकीय पद प्राप्त करने में सफल हुआ। उसको शासन-व्यवस्था की दीक्षा अपनी पितृ जागीर के प्रबन्ध द्वारा प्राप्त हुई और अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर वह दिल्ली का सुल्तान बना और उसकी गणना भारत के प्रमुख शासकों में की जाती है। जिस समय वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ उस समय उसकी अवस्था ६८ वर्ष की थी, किन्तु इतनी अवस्था होने पर भी उसने बड़े उत्साह तथा लगन के साथ कार्य किया। वह एक सफल सेनापति, दूरदर्शी

शासक तथा एक महान् राष्ट्रनिर्माता था। वह एक उच्च कोटि का संगठन-कर्त्ता था। इसी गुण के आधार पर वह अफगानों की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करने में सफल हुआ।

शेरशाह व्यक्ति के रूप में—शेरशाह में व्यक्तिगत आकर्षण न था। उसको जीवन भर कठिनाइयों तथा आपत्तियों का सामना करना पड़ा जिनके कारण उसका बाह्य रूप बड़ा शुष्क था। उसके पिता का उससे अच्छा व्यवहार नहीं था और विमाता के कारण उसको कई बार अपने गृह को त्यागना पड़ा। इस कारण वह एक आज्ञाकारी पुत्र नहीं बन सका, किन्तु माँ बेटे में हार्दिक प्रेम था क्योंकि दोनों को ही अपने अभिभावक के दुखों का समान रूप से सामना करना पड़ा। उसका अपने पुत्रों से भी बाबर के समान कोई विशेष प्रेम नहीं था। उसमें दाम्पत्य प्रेम का भी अभाव था। शेरशाह सुशिक्षित था। उसको अरबी तथा फारसी का अच्छा ज्ञान था, किन्तु उनकी गणना विद्वानों में नहीं की जा सकती। वह विद्वानों का आदर करता था और समय-समय पर उसका सत्संग भी किया करता था। उसके समय में कोई विशेष रचना नहीं हुई और न किसी कवि अथवा साहित्यकार को राज-दरबार में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। वास्तव में उसके पास इतना समय ही नहीं था कि वह इन सब बातों की ओर ध्यान देता। उसका तो अधिकांश समय शासन-सम्बन्धी कार्यों में व्यतीत हो जाता था। वह बड़ा परिश्रमी था। वह दिन भर में १६ घण्टे राज-कार्य में व्यतीत करता था। वह अपने समस्त कर्मचारियों के कार्य का स्वयं निरीक्षण करता था और उनको अलग-अलग आदेश दिया करता था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह उसको पूर्ण करने में सफल हुआ। वह बड़ा उदार तथा दानशील था। वह बहुत सा धन निर्धनों में वितरण कर दिया करता था। वह बड़ा कर्त्तव्यपरायण था और उनका पालन करने की विशेष कोशिश किया करता था। उसमें धार्मिक सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में थी और उसका *व्यवहार हिन्दू तथा मुसलमान जनता के साथ समान था।* वह अपने लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास करता था और उसके लिये सब कुछ करने को उद्यत रहता था। उसकी प्राप्ति में वह उचित अथवा अनुचित का ध्यान नहीं रखता था।

शेरशाह सैनिक के रूप में—शेरशाह का स्थान सैनिक के रूप में महान् था। यद्यपि वह व्यवसाय से एक सैनिक नहीं था, किन्तु शिक्षा तथा आवश्यकता ने उसको एक सैनिक बना दिया। वह एक उच्च कोटि का सैनिक था। वह बड़ा वीर तथा साहसी था। वह भयानक परिस्थितियों का सामना बड़ी वीरता तथा उत्साह से करता था। वह एक योग्य सेनापति था। उसकी प्रत्येक सैनिक कार्यवाही में उसकी श्रेष्ठ प्रतिभा तथा चातुर्य का पूर्ण परिचय मिलता था। वह सर्वप्रथम अपनी रक्षा की व्यवस्था की ओर ध्यान देता था। वह शत्रु पर सामने से आक्रमण नहीं करता था वरन् अचानक आक्रमण किया करता था। उसकी सैनिक कार्यवाहियाँ बड़ी द्रुत-गति से होती थीं जिसके कारण शत्रु अपनी सेना को सुसंगठित नहीं कर पाता था और वह शीघ्र ही तितर-बितर हो जाती थी। वह शत्रु की आपत्तियों का लाभ उठाना जानता था। कई बार उसने इसका लाभ उठाया। वह विजय प्राप्त करने के लिये नैतिकता व अनैतिकता

की ओर ध्यान नहीं देता था। वह अच्छे तथा बुरे समस्त साधनों का प्रयोग करने को उद्यत रहता था। उसका सैनिकों के साथ सद्व्यवहार था। वह उनके साथ सदा सुख तथा दुःख भोगने को तैयार रहता था और उनके समान समस्त काम करने को तैयार हो हो जाता था।

विजेता के रूप में—उसका स्थान विजेता के रूप में भी महान् था। वह बड़ा दूरदर्शी विजेता था। वह प्रदेशों की केवल विजय ही नहीं करता था वरन् विजित होने पर उन प्रदेशों की सुव्यवस्था की ओर ध्यान देता था। उसका विजित प्रदेश की जनता के साथ और विशेषकर कृषकों के साथ अच्छा व्यवहार रहता था। वह व्यर्थ रक्तपात करने का पक्षपाती नहीं था। उसने अपने बाहुबल से तथा सैनिक प्रति के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और उस पर सुव्यवस्थित शास किया। यह सत्य है कि उसकी मृत्यु होते ही साम्राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गय किन्तु उसका उत्तरदायित्व उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों पर है जिन्होंने उसके उच्च आदर्शों का परित्याग कर दिया।

शासक के रूप में—शेरशाह ने शासक के रूप मे विशेष सफलता प्राप्त की उसमें रचनात्मक प्रतिभा बहुत अधिक थी। उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत किया औ भारत में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जो पर्याप्त समय से भारत में विद्यमा नहीं थी। उसने प्रत्येक दिशा में सुधार किये। उसके शासन-प्रबन्ध की समस्त इतिहासकार ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उसने सदा प्रजा के हित का ध्यान रखा। उसके भूमि सम्बन्धी सुधारों के द्वारा किसानों को बहुत लाभ हुआ जिससे भारत को आर्थिक अवस्था उन्नत हुई। उसने आवागमन के मार्गों की सुरक्षा के लिये पुलिस तथा गुप्तचर विभाग को संगठित किया जिससे व्यापार तथा वाणिज्य को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने अपराधों का उत्तरदायित्व स्थानीय कर्मचारियों पर सौंपा जिसके कारण वे अपने कर्त्तव्यपालन में सदा सचेत रहते थे। वह किसानों के ऊपर किसी प्रकार का अन्याय सहन नहीं कर सकता था। फसल के खराब होने पर उनको तकावी दी जाती थी और लगान से मुक्ति मिलती थी। कोई उनकी फसल खराब नहीं कर सकता था। यदि सैनिक द्वारा ऐसा हो जाता था तो किसानों की क्षति-पूर्ति की जाती थी। उसने राजनीति में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया, यद्यपि वह स्वयं कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम के कानूनों का बड़ा पाबन्द था। अतः उसके शासन का स्वरूप लौकिक था। यद्यपि वह स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक था, किन्तु वह सदा अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित का ध्यान रखकर किया करता था। उसका भूमि-प्रबन्ध, उसकी कर-नीति, उसका न्याय-विधान, उसकी सेना का संगठन सभी उसकी अपूर्व प्रतिभा के द्योतक हैं और उसकी उच्च-कोटि की क्रियात्मक बुद्धि के परिचायक हैं। इस प्रकार यह कहना सत्य होगा कि वह एक दूरदर्शी शासक के साथ-साथ एक सफल शासक भी था।

शेरशाह राष्ट्र-निर्माता के रूप में—शेरशाह ही मुसलमान सुल्तानों में प्रथम शासक था जिसने भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने का प्रयत्न किया। उसका हिन्दुओं तथा मुसलमानों से समान व्यवहार था। उसने हिन्दुओं को भी उन्नति

ने के अवसर मुसलमानों के समान प्रदान किये। अतः उसने दोनों में भेद-भाव का त करने की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। दुर्भाग्य से वह केवल पांच वर्ष तक शासन कर पाया और उसकी नीति पूर्णतया कार्यान्वित नहीं हो पाई।

शेरशाह का मूल्यांकन

उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शेरशाह अपनी शासन-व्यवस्था तथा रन-बल के आधार पर इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उसकी तुलना सी भी मध्यकालीन शासक से की जा सकती है। पाठकों की सुविधा के लिये कुछ छ इतिहासकारों के मत निम्न पंक्तियों में अंकित किये जाते हैं—

कीन के अनुसार—"उसका (शेरशाह) सम्पूर्ण संक्षिप्त शासन एकता के दान्त पर आधारित था। वह दूरदर्शी व्यक्ति उन सभी व्यवस्थाओं का जन्मदाता जो मध्यकालीन भारतीय शासकों द्वारा अपनी प्रजा के हित के लिये की गई थीं। सी भी अन्य सरकार ने यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी उतनी बुद्धिमत्ता प्रकट हीं की जितनी इस पठान ने की है।"*

एर्सकाईन के अनुसार—"वह (शेरशाह) अपनी प्रतिभा के बल से राज्य-हासन पर आसीन हुआ और जिस उच्च पद पर वह आसीन हुआ उसने अपने पको उसके योग्य सिद्ध किया। बुद्धिमत्ता तथा अनुभव में, शासन तथा राजस्व के दन्ध में तथा सामरिक कौशल में वह भारत के सम्राटों में सबसे अधिक महान् है। समें जितना व्यवस्थापक तथा जनता के संरक्षण का भाव था उतना अकबर के पूर्व सी अन्य राजकुमार में नहीं था।"†

ऐल्फिन्सटन का मत—"शेरशाह बड़ी ही बुद्धिमत्ता तथा योग्यता का शासक तीत होता है। उसकी आकांक्षायें उसके सिद्धान्तों के लिये अत्यन्त प्रबल थीं। परन्तु पनी प्रजा के लिये की गई उसकी योजनायें जितनी ही क्रियात्मक रूप में तर्कपूर्ण थीं तनी ही अपने उद्देश्यों में उदार थीं।"‡

हेग के अनुसार—"वास्तव में शेरशाह उन महानतम शासकों में से एक था गो दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए। ऐबक से लेकर औरंगजेब तक किसी अन्य को

---

* "His brief career was devoted to the establishment of the unity which he had long ago perceived to be the great need of his country. Though a devoted Muslim he never opposed his Hindu subjects. No Government, not even the British has shown so much wisdom as this Pathan." —Keene

† "He rose to the throne by his own talents and showed himself worthy of the high elevation which he attained. In intelligence, in sound sense and experience, in his civil and financial arrangement and in military skill, he is acknowledged to have been by far the most eminent of his nation who ever ruled in India. Shershah had more of the spirit of the legislator and guardian of his people than any prince before Akbar." —Erskine.

‡ "Sher Shah appears to have been a prince of consumate prudence and ability. His ambition was always too strong for his principle... but towards his subjects. His measures were as benevolent in their intentions as wise in their conduct. Notwithstanding his short reign and constant activity in the field, he brought his territories into the highest order and he introduced many improvments in his civil government." —Elphinston.

न तो शासन के ब्यौरे का इतना ज्ञान था और न इतनी योग्यता तथा कुशलता के साथ किसी ने सार्वजनिक कार्यों पर इतना नियन्त्रण रखा जितना उसने।"*

कानूनगो के अनुसार—"शेरशाह के राज्यारोहण से उदार इस्लाम का वह युग आरम्भ हुआ जो औरंगजेब के काल की प्रतिक्रिया के आरम्भ होने के पहले तक चलता रहा। भारतीय राष्ट्र का प्रथम निर्माता बनने के लिये वह अकबर की प्रतिद्वन्द्विता कर सकता है। शेरशाह के शासन की व्यवस्था उसके वंश के साथ समाप्त नहीं हुई वरन् थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ सम्पूर्ण मुगल-काल में चलती रही। वह आधुनिक काल की शासन-व्यवस्था की आधारशिला है।"†

प्रोफेसर एस० आर० शर्मा के अनुसार—"यदि हम उसकी तुलना सामन्तों के प्रति व्यवहार में हेनरी अष्टम से, सैनिक संगठन तथा प्रशासन की ओर अधिक ध्यान देने में, प्रशिया के महानतम आन्तरिक शासक फ्रेडरिक विलियम प्रथम से, व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा सिद्धान्तों में कौटिल्य तथा मैक्यावली और उदार विचारों तथा प्रजा के सभी वर्गों के हित-चिन्तक में अशोक से करें तो उसमें अतिशयोक्ति न होगी।"

शेरशाह की सफलता के कारण

शेरशाह एक जागीरदार का पुत्र था और विमाता के कारण उसको कई बार अपने घर का परित्याग करने पर बाध्य होना पड़ा और अन्त में वह हुमायूँ को भारत-परित्याग कराने में सफल हुआ। उसकी यह सफलता वास्तव में बड़ी महान् थी। सफलता उसको किसी आकस्मिक घटना के कारण प्राप्त नहीं हुई बल्कि उसके कुछ विशेष कारण थे जिनका उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया जायेगा—

शेरशाह की सफलता के कारण
(१) सैनिक योग्यता।
(२) कूटनीतिज्ञता।
(३) भाग्य की प्रधानता।
(४) संगठन शक्ति।
(५) दृढ़ संकल्प।
(६) अनुशासन प्रेमी।
(७) कर्तव्य-परायणता।
(८) मितव्ययिता।

(१) सैनिक योग्यता—शेरशाह उच्च-कोटि का सैनिक तथा कुशल सेनापति था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक सैनिक में होने अनिवार्य थे। वह बड़ा वीर, साहसी तथा पराक्रमी था। वह भीषण परिस्थितियों से तनिक भी विचलित नहीं होता था वरन् उनका धैर्यपूर्वक सामना करने को तत्पर रहता था।

(२) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ—शेरशाह बड़ा कूटनीतिज्ञ था। अपनी

---

* "He was, however, the greatest Muslim ruler of India and was entirely free from and active in the correction of the faults usually associated with his race. At the same he was not the supreme authority, he was intimately acquainted with the details of civil government as no other Indian ruler, before or since had been." —Haig

† "The work of his administrative genius did not perish with his dynasty, but endured throughout the Moghal period. It forms the sub-structure of our present administrative system." —Qanungo.

कूटनीति के द्वारा ही वह बंगाल को पराजित कर सका और हुमायूँ को भारत से निकाल कर ही उसने चैन ली। वह समय का सदुपयोग करना जानता था। उसने केवल उस समय हुमायूँ से युद्ध किया जब उसने अनुभव कर लिया कि इस समय उसकी विजय अवश्य होगी, अन्यथा वह युद्ध को टालता रहा और समय आने पर हुमायूँ से सन्धि कर लेता था। उसने हुमायूँ के शत्रुओं को अपनी ओर मिलाया और गुजरात के शासक बहादुरशाह से गठबन्धन किया।

(३) लक्ष्य की प्रधानता—शेरशाह का लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास था। वह उसकी प्राप्ति के लिये सब कुछ करने को उद्यत रहता था। वह प्रत्येक साधन का प्रयोग करने से नहीं हिचकता था, चाहे नैतिक दृष्टि से वह ठीक हो या न हो।

(४) संगठन-शक्ति—शेरशाह में संगठन-शक्ति बहुत प्रबल थी। वह जानता था कि अफगानों को संगठित किये बिना वह मुगलों को भारत से बाहर निकालने में सफल नहीं हो सकता। उसने अफगानों को एकता के सूत्र में बाधकर मुगलों की शक्ति का विरोध किया। अफगानों को एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी शेरशाह ने पूर्ति की और शेरशाह को समर्थकों की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति अफगानों ने की।

(५) दृढ़ संकल्प—शेरशाह दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था वह जिस बात का निश्चय कर लेता था उसकी प्राप्ति के लिये वह प्रत्येक सम्भव उपाय को धारण लेता था।

(६) अनुशासन-प्रेमी—शेरशाह अनुशासन-प्रेमी था। यद्यपि वह सैनिकों तथा अपने अन्य कर्मचारियों के साथ सहृदयता का व्यवहार करता था, किन्तु वह उस समय उनको कठोर दण्ड देने में नहीं हिचकता था, जब उन्होंने अनुशासन भंग करने की चेष्टा की अथवा उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं किया।

(७) कर्त्तव्य-परायणता—शेरशाह में कर्त्तव्य-परायणता का गुण विशेष मात्रा में था। वह अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार समझता था और उनकी पूर्ति के लिये वह अनवरत अध्यवसाय करता था।

(८) मितव्ययिता—शेरशाह जानता था कि सेना के एकत्रित तथा संगठित करने के लिये धन की बहुत आवश्यकता है। उसके अभाव में सैनिक संगठन शिथिल पड़ जायेगा। इस कारण वह बहुत सोच-समझकर धन का व्यय करता था।

बाबर और शेरशाह की तुलना

समानता—बाबर और शेरशाह दोनों ही महान् व्यक्ति थे और उनका भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, दोनों में पर्याप्त समानतायें तथा विभिन्नतायें विद्यमान थीं। (i) दोनों ने अपने बाहुबल द्वारा भारत में एक नये साम्राज्य की स्थापना की और एक नये राजवंश के हाथ में शासन की सत्ता आई। बाबर ने मुगल वंश की और शेरशाह ने सूर वंश की स्थापना की। (ii) दोनों ही महान् सैनिक तथा योग्य सेनापति थे और दोनों को बाल्यकाल में विशेष आपत्तियों का सामना करना पड़ा जिनका समाधान दोनों ने बड़े धैर्य तथा साहस से किया। (iii) दोनों को कई बार अपने घर का परित्याग करना पड़ा। (iv) दोनों ही लक्ष्य प्राप्ति करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे और उसकी पूर्ति के लिये किसी भी प्रकार के साधन का प्रयोग करने से नहीं

दिखाते थे। (v) उनको धार्मिक तथा साहित्यिक का विशेष ध्यान नहीं रहता था। दोनों सच्चे मुसलमान थे और इस्लाम धर्म में बहुत श्रद्धा थी। (vi) दोनों को साहित्य तथा कला से अनुराग था और दोनों ही हिन्दुओं को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। दोनों ही उच्च कोटि के सिपाही थे।

विभिन्नता—इन समानताओं के होते हुए दोनों में अनेक विभिन्नतायें थीं। (i) बाबर राजवंश का था और उसके पूर्वज विजेताओं के रूप में प्रसिद्ध थे जबकि शेरशाह एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। (ii) बाबर के पिता ने अपने पुत्र को सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न किया और उसको उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान की, जबकि शेरशाह के पिता ने उसकी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था नहीं की। उसने स्वयं अपने परिश्रम द्वारा शिक्षा प्राप्त किया। शेरशाह की उसके पिता से सदा अनबन रही और अपनी विमाता के दुर्व्यवहार के कारण वह अपना घर-बार छोड़ने पर बाध्य हुआ। (iii) बाबर के साधन शेरशाह के साधनों की तुलना में बहुत अधिक थे। (iv) शेरशाह न केवल एक विजेता ही था वरन् वह एक उच्च कोटि का शासक भी था जबकि बाबर केवल एक विजेता ही था। शेरशाह ने विजित प्रदेशों की उचित व्यवस्था की जबकि बाबर ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। (v) शेरशाह का दृष्टिकोण बाबर की अपेक्षा बड़ा व्यापक था। उसका हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ समान व्यवहार था और उसने हिन्दुओं को उन्नति करने का अवसर प्रदान किया जबकि बाबर ने हिन्दुओं के विरुद्ध अपनी सेना में धार्मिक उत्साह का प्रचार किया और उनको जिहाद के लिये प्रोत्साहित किया। (vi) बाबर ने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया जबकि इस दिशा में शेरशाह ने महत्वपूर्ण कदम उठाया और देश में सुख और शान्ति की स्थापना की। शेरशाह का चरित्र बाबर के चरित्र से उज्ज्वल था। (vii) बाबर अनेक व्यसनों का दास था जबकि शेरशाह में कोई व्यसन नहीं था। (viii) बाबर में वात्सल्य प्रेम शेरशाह की अपेक्षा अधिक था। बाबर अपनी पत्नियों तथा अपने पुत्रों से विशेष प्रेम रखता था जबकि शेरशाह में इसका सर्वथा अभाव था। (ix) बाबर उच्च कोटि का लेखक था जबकि शेरशाह में यह गुण नहीं था। इतने पर भी दोनों महान् विभूतियाँ थीं और भारतीय इतिहास में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है।

शेरशाह और हुमायूँ की तुलना

शेरशाह और हुमायूँ एक दूसरे के समकालीन थे और दोनों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता थी। दोनों एक दूसरे के शत्रु थे और दोनों का पर्याप्त समय तक भीषण संघर्ष हुआ जिसमें शेरशाह को सफलता प्राप्त हुई और हुमायूँ को भारत छोड़ना पड़ा। इन दोनों में समानता केवल इतनी थी कि दोनों बड़े वीर तथा साहसी थे और दोनों को साहित्य तथा कला से अनुराग था। इसके अतिरिक्त उनमें असमानतायें बहुत अधिक थीं—(i) हुमायूँ को उत्तराधिकार में एक साम्राज्य प्राप्त हुआ था जबकि शेरशाह को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ था। हुमायूँ भारत के विजेता तथा दिल्ली सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र था जबकि शेरशाह एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। (ii) बाबर हुमायूँ को विशेष प्रेम करता था जबकि शेरशाह पिता के प्रेम तथा कृपा से पूर्णतया वंचित था। (iii) शेरशाह ने अपनी योग्यता

तथा प्रतिभा के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जबकि हुमायूँ ने अपने पिता द्वारा स्थापित साम्राज्य को गंवा दिया। (iv) शेरशाह में उच्च कोटि की शासन-सम्बन्धी प्रतिभा थी और उसने शासन-व्यवस्था को संगठित कर देश में शान्ति का

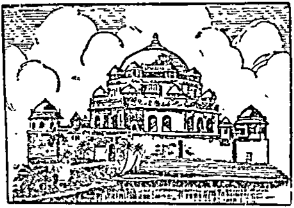

शेरशाह का मकबरा

साम्राज्य स्थापित किया जबकि हुमायूँ ने दस वर्ष के शासन-काल में इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। (v) शेरशाह उच्च कोटि का सेनानायक था और उसमें संगठन-शक्ति बहुत अधिक थी। हुमायूँ में इन गुणों का सर्वथा अभाव था। (vi) शेरशाह का चरित्र बहुत उज्ज्वल था। वह दुर्व्यसनों का दास नहीं था जबकि हुमायूँ आराम-तलब तथा नशे का दास था। (vii) शेरशाह अपने लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास रखता था और उसकी

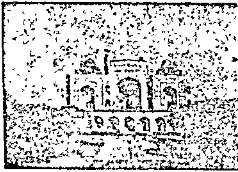

हुमायूँ का मकबरा

पूर्ति में सदा उद्यत रहता था। हुमायूँ ने अपना समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया। (viii) शेरशाह कूटनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी था। हुमायूँ में इन गुणों का पूर्णतया अभाव था।

(ix) शेरशाह की विजयें स्थायी थीं जबकि हुमायूं क्षणभंगुर विजयों से ही बड़ा प्रसन्न होता था। (x) शेरशाह शत्रु की दुर्बलताओं का लाभ उठाना जानता था और वह सुप्रवसर को हाथ से नहीं जाने देता था जबकि हुमायूं ने सुप्रवसरों को सदा खोया और उनका कोई लाभ नहीं उठाया। (xi) शेरशाह हुमायूं की अपेक्षा बहुत चालाक था। उसने हुमायूं को सदा धोखा दिया और उसको बेवकूफ बनाया। शेरशाह हुमायूं की अपेक्षा एक योग्य सैन्य-संचालक था। हैवल के शब्दों में—"The contrast between *Sher Shah and Humayun could not be better illustrated than it is in* the two great monuments which perpetuate their memory. Humayun's masoleum at Delhi portays in its polished elegance the facile charmeur and rather superficial dilettante of the Persian school, whose best title to fame is that he 'was the father of Akbar.' Sher Shah's at Sahesram, the stern, strong man, egotist and empire-builder, who trampled all his enemies under foot and ruled Hindustan with a rod of iron." —(E. B. Havell, Aryan Rule in India, Pages 448-449)

शेरशाह के उत्तराधिकारी

२२ मई १५४५ ई० को केवल पांच वर्ष भारत पर शासन कर शेरशाह की असामयिक मृत्यु कालिंजर में हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने उसके छोटे पुत्र जलाल खां को राज्यसिंहासन पर आसीन किया, यद्यपि शेरशाह अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गया था। वह इस्लामशाह की उपाधि धारण कर राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसका राज्याभिषेक कालिंजर में २७ मई १५४१ ई० को सम्पन्न हुआ।

इस्लामशाह—वह एक सुशिक्षित व्यक्ति था और फारसी का अच्छा कवि था। वह एक योग्य सैनिक तथा कुशल सेनापति था। राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पूर्व ही उसने अपनी सैनिक प्रतिभा का कई अवसरों पर पूर्ण परिचय दिया। उसने कालिंजर के राजा का बध करवाया और सेना का सहयोग प्राप्त करने के अभिप्राय से उसने सैनिकों को एक मास का वेतन पारितोषिक के रूप में दिया। इस्लामशाह अपने ज्येष्ठ भ्राता आदिल खां से सदा शंकित रहता था। उसने शीघ्र ही उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। षड्यन्त्र को पूर्ण करने के अभिप्राय से उसने उसको आगरे बुलाया। उसको षड्यन्त्र का कुछ आभास हो गया था और वह आगरे जाना अपने लिये हितकर नहीं समझता था, कुछ अमीरों के आश्वासन पर वह आगरे आया। यहां उसके बध करने का षड्यन्त्र रचा गया, किन्तु वह असफल रहा। अब अमीरों ने दोनों भाइयों में समझौता कराया। आदिल खां को बयाना का सूबेदार नियुक्त किया गया। आदिल खां तथा कुछ अफगान अमीर सुल्तान के इस व्यवहार से असन्तुष्ट हुए। उन्होंने विद्रोह किया जिसका तुरन्त दमन कर दिया गया। आदिल खां भाग कर पटना चला गया। फिर उसका कोई समाचार नहीं मिला। इस्लामशाह ने शीघ्र ही अन्य अमीरों का दमन किया और उनको कठोर दण्ड दिया गया।

शासन को दृढ़ करना—विद्रोहियों का दमन कर उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का प्रबन्ध किया। उसने उन अमीरों का वध किया जिन पर उसको जरा भी सन्देह था। इससे अमीरों में असन्तोष बढ़ गया और उन्होंने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह का नेतृत्व नियाजी लोगों ने किया। इस विद्रोह को भी शाही सेना दमन करने में सफल हुई। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के अन्य भागों में भी विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, किन्तु उन सबका दमन कठोरता से किया गया। इस समय तक हुमायूँ ने काबुल पर अधिकार कर लिया था। वह साम्राज्य की गिरती हुई दशा का लाभ उठाना चाहता था। वह एक सेना लेकर भारत की ओर बढ़ा और सिन्धु नदी पार करने में सफल हुआ। जब इस्लामशाह को हुमायूँ के आक्रमण का समाचार ज्ञात हुआ तो वह एक सेना लेकर उसका सामना करने के लिये चल पड़ा यद्यपि वह इस समय स्वयं बहुत बीमार था। उसकी तत्परता को देखकर हुमायूँ बिना युद्ध किये ही वापिस चला गया।

इस्लामशाह की मृत्यु—इस्लामशाह ग्वालियर चला गया जहाँ विक्षुब्ध अमीरों ने उसकी हत्या करने का षड्यन्त्र रचा जो भेद खुल जाने के कारण असफल रहा। इसके बाद बीमारी से ३० अक्तूबर १५५३ ई० को उसका देहान्त हो गया।

फीरोजशाह—इस्लामशाह की मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने उसके बारह वर्षीय पुत्र फीरोज को राज्यसिंहासन पर आसीन किया, किन्तु तीन दिन के उपरान्त ही उसके मामा मुबारिज ने उसका वध कर दिया और स्वयं आदिलशाह की उपाधि धारण कर राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

आदिलशाह—वह एक बिल्कुल निकम्मा तथा अयोग्य शासक था। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। उसको निम्न श्रेणी के लोगों में रहना अधिक रुचिकर प्रतीत होता था। उसके विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। (i) प्रथम विद्रोह ताजखाँ ने किया। विद्रोह का दमन कर दिया गया किन्तु ताजखाँ बिहार की ओर भाग गया। (ii) दूसरा विद्रोह इब्राहीम खाँ ने किया। उसने शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार किया। आदिलशाह ने दिल्ली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार दिल्ली आगरे के समीप के प्रदेशों पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया। (iii) इसी समय अहमद खाँ सूर ने अपने आपको पंजाब का स्वतन्त्र शासक घोषित किया। (iv) बंगाल में महमूद खाँ ने अपने को स्वतन्त्र घोषित किया। अतः इस समय समस्त अफगान राज्य चार भागों में विभक्त हो गया जिसके कारण शासन बड़ा शिथिल हो गया और एकता का अन्त हुआ। (v) कुछ समय उपरान्त लाहौर के शासक सिकन्दरशाह ने दिल्ली को अपने अधिकार में किया। इब्राहीम इटावे की ओर भाग गया।

हुमायूँ का दिल्ली पर अधिकार—इसी समय नवम्बर सन् १५५५ ई० में हुमायूँ ने पुनः भाग्य की परीक्षा के अभिप्राय से काबुल से भारत के राज्य पर अधिकार करने के लिये प्रस्थान किया। उसने सिन्ध नदी पार की और शीघ्र ही लाहौर को अपने अधिकार में किया। हुमायूँ के अधिकार में अफगानों के विरोध के बिना ही समस्त पंजाब

आ गया। जब मुगलों ने दिल्ली की ओर बढ़ना आरम्भ किया तो सिकन्दरशाह ने उनका सामना करने का निश्चय किया। दोनों सेनाओं में मच्छीवाड़ा नामक स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूं पूर्ण विजयी हुआ। मुगलों ने शीघ्र ही दिल्ली तथा आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार किया। इस पर भी अफगानों के पारस्परिक संघर्ष का अन्त नहीं हुआ। इब्राहीम और आदिलशाह में संघर्ष चलता रहा जिसमें आदिलशाह सफल हुआ। उसका बिहार तथा पंजाब पर अधिकार हो गया।

सूर साम्राज्य के पतन के कारण

सूर साम्राज्य की स्थापना शेरशाह जैसे योग्य तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति ने हुमायूं को परास्त कर सन् १५४० ई० में की। सन् १५५५ ई० में हुमायूं पुनः दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार करने में सफल हुआ। वास्तव में यह बात विशेष विचारणीय है कि १५ वर्षों के अन्दर ही इस विशाल तथा सुदृढ़ शासन का किस प्रकार अन्त हो गया। उसका कोई एक कारण नहीं था, वरन् बहुत से कारण थे जिन्होंने साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया। इसके पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(१) शेरशाह की असामयिक मृत्यु—शेरशाह १५४० ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ और केवल पांच वर्ष उपरान्त ही सन् १५४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इन पांचों वर्षों में उसने समस्त उत्तरी भारत की विजय की और समस्त साम्राज्य में सुदृढ़ शासन की व्यवस्था की, किन्तु वह अपने समस्त शत्रुओं का पूर्णतया दमन नहीं कर सका और उसके शासन की जड़ अधिक दृढ़ न हो पाई। थोड़ी सी आंधी के उठते ही शासन की जड़ें हिल गई और हुमायूं पुनः भारत पर अधिकार करने में सफल हुआ। यदि शेरशाह कुछ समय और जीवित रहता तो यह सम्भव था कि वह साम्राज्य की जड़ों को सुदृढ़ करने में सफल होता। शेरशाह इस काल में अपने साम्राज्य को दृढ़ तथा सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न करता।

(२) उत्तराधिकारी के नियम का अभाव—मुसलमानों में उत्तराधिकारी के नियम का अभाव था। शेरशाह अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खां को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गया था, किन्तु अमीरों ने उसके छोटे भाई जलाल खां को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। इससे अमीरों में कुछ असन्तोष उत्पन्न हुआ और उन्होंने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। यद्यपि विद्रोहियों का कठोरता से दमन किया गया, किन्तु इस पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण अफगानों की सैनिक शक्ति को बहुत आघात पहुँचा जिसने उनके साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया।

(३) शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी—शेरशाह के समान इस वंश में कोई भी योग्य शासक नहीं हुआ। इस्लामशाह में यद्यपि पर्याप्त योग्यता थी, किन्तु उसका अधिकांश समय अफगान अमीरों तथा उनके विद्रोह के दमन करने में व्यतीत हुआ। उसने अमीरों की शक्ति का दमन करने का घोर प्रयत्न किया जिससे अमीरों में असंतोष उत्पन्न होने लगा और उनकी राजभक्ति शिथिल हो गई। उसके वध करने के षड्यन्त्र रचे गये यद्यपि षड्यन्त्रकारियों को सफलता नहीं मिली। उसकी मृत्यु के बाद उसके बारह वर्षीय पुत्र फीरोज को राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया किन्तु उसके

सूरी वंश के शासकों की वंशावली

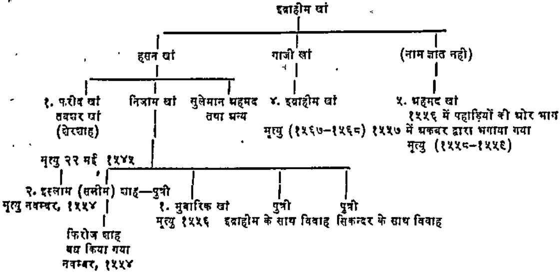

मामा ने ही उसका वध कर दिया और स्वयं राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। वह बिल्कुल निकम्मा और चरित्रहीन था। उसके समय में साम्राज्य में अराजकता फैल गई।

(४) साम्राज्य का विभाजन—आदिलशाह के शासन-काल में अमीरों की महत्त्वाकांक्षा बहुत बढ़ गई और उनमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का उदय हुआ। इस कारण समस्त सूर-साम्राज्य चार भागों में विभक्त हो गया। अन्त में सिकन्दर ने दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार किया। जब हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया उस समय अफगान सरदार पारस्परिक युद्ध में व्यस्त थे और उन्होंने हुमायूँ की ओर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप हुमायूँ ने बिना किसी विशेष विरोध के समस्त पंजाब को अपने अधिकार में कर लिया और वह दिल्ली की ओर बढ़ा जिस पर उसका सरलता से अधिकार स्थापित हो गया।

(५) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार—शेरशाह ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से अमीरों को तथा सैनिकों को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखा। उसका उनके साथ सद्-व्यवहार था जिसके कारण वे उसके लिये अपनी जान की बाजी तक लगाने से नहीं हिचकते थे। उनके साथ उनका सीधा सम्पर्क था और वह उनका विश्वासपात्र था। उसकी मृत्यु के उपरान्त अन्य अफगान शासकों ने अमीरों के साथ दुर्व्यवहार करना आरम्भ किया जिससे उनकी राजभक्ति कम होने लगी। वे इतने असन्तुष्ट हो गये कि वे साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने लगे जिसने नव-स्थापित साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया।

> **सूर वंश के पतन के कारण**
> (१) शेरशाह की असामयिक मृत्यु।
> (२) उत्तराधिकारी के नियम का अभाव।
> (३) शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी।
> (४) साम्राज्य का विभाजन।
> (५) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार।
> (६) राजकोष का रिक्त होना।
> (७) हेमू का अफगानों के साथ दुर्व्यवहार।
> (८) हुमायूँ को फारस के शाह की सहायता।

(६) राजकोष का रिक्त होना—शेरशाह बड़ा मितव्ययी था। वह धन का उचित प्रयोग करता था। बाद के शासकों ने धन का अपव्यय किया जिससे राजकोष रिक्त होने लगा। बिना धन के साम्राज्य की उचित व्यवस्था असम्भव थी।

(७) हेमू का अफगानों के साथ दुर्व्यवहार—हेमू आदिलशाह का मन्त्री, प्रधान सेनापति तथा उसका विशेष कृपापात्र था। वह नीच कुल का था और उसका अफगान सरदारों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। अफगानों में उसके व्यवहार के कारण असन्तोष उत्पन्न हो गया और वे उसके पतन के लिये प्रयत्न करने लगे।

(८) हुमायूँ को फारस के शाह की सहायता—हुमायूँ फारस के शाह की सहायता प्राप्त कर काबुल का राज्य प्राप्त करने में सफल हुआ और वहाँ से वह भारत ... नीति का अध्ययन कर सका। जब उसको वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसने

भारत पर आक्रमण किया और पुनः मुगल-साम्राज्य की भारत में स्थापना करने में सफल हुआ जिससे सूर-वंश का अन्त हुआ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर-प्रदेश—

(१) शेरशाह के शासन का संक्षिप्त विवरण दीजिये। उसने क्या सुधार योजनायें चलाईं ? वर्णन करो। (१६५१)

(२) शेरशाह सूरी को अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुये ? सविस्तार बतलाइये। (१६५४)

(३) शेरशाह के उत्तराधिकारी सूरी साम्राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल हुये ? (१६५५)

(४) शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध के गुण और दोष बताइये। (१६५६)

(५) "शेरशाह भारत के मुस्लिम शासकों में से एक है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये। (१६५६)

(६) शेरशाह की गणना हिन्दुस्तान के महान् शासकों में क्यों की जाती है ? कारण लिखिये। (१६६१)

(७) "शेरशाह मध्यकालीन भारत के महानतम् शासकों में से एक था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये। (१६६४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) शेरशाह ने अनजाने में अकबर की महत्ता की नींव की स्थापना की। विवेचना करो। (१६५३, १६५७)

(२) 'शेरशाह कई बातों में अकबर का अग्रगामी था, किन्तु भारतीय राष्ट्र के निर्माण में नहीं।' विवेचन कीजिये। (१६५५)

मध्य भारत—

(१) 'शेरशाह ने अकबर महान् के मार्ग का निर्देशन कर दिया था।' इस कथन पर प्रकाश डालिये। (१६५५)

(२) शेरशाह की जीवनी तथा शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये। (१६५७)

8 अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

अकबर का राज्यसिंहासन प्राप्त करना—गत अध्याय में इस विषय पर प्रकाश डाला जा चुका है कि हुमायूँ का १५५५ ई० में दिल्ली और आगरे के समीपस्थ प्रदेशों पर अधिकार स्थापित हो चुका था, किन्तु वह इस सुख को अधिक काल तक नहीं भोग सका। एक दिन जब वह अपने पुस्तकालय में बैठा हुआ विद्याध्ययन में तल्लीन था तो अज़ान की आवाज सुनकर वह शीघ्रता से चल पड़ा। जब वह सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया और उसको गहरी चोट लगी। कुछ समय पश्चात् इस भाग्य-हीन सम्राट का देहान्त हो गया।* इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि वह जीवन भर लुढ़कता रहा और लुढ़क कर ही उसकी मृत्यु हुई।† इस समय उसका पुत्र अकबर उसके पास न था। वह अपने संरक्षक तथा शिक्षक बैरम खाँ के साथ पंजाब का विद्रोह दमन करने के लिये गया हुआ था। जब हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पंजाब पहुँचा तो गुरदासपुर जिले में स्थित कलानोर के एक बाग में अकबर का राज्याभिषेक बड़ी सजधज तथा समारोह से १४ फरवरी सन् १५५६ ई० में सम्पन्न हुआ।‡ इस समय अकबर की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी।

महान् अकबर

अकबर का प्रारम्भिक जीवन—अकबर का पूरा नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर था। उसका जन्म १५ अक्टूबर सन् १५४२ ई० को अमरकोट नामक स्थान पर हुमायूँ की नव-विवाहित पत्नी हमीदा बानू बेगम के गर्भ से हुआ था। इस समय हुमायूँ एक शरणार्थी का जीवन व्यतीत कर रहा था और उसकी आर्थिक दशा शोचनीय थी। जब हुमायूँ को पुत्र होने का समाचार मिला तो उसने एक कस्तूरी के टुकड़े कर अपने साथियों

* "Humayun means fortunate but no unfortunate king has ever ascended the throne of Delhi "

† "He tottered in and totterd out of life." —Lane Poole.

‡ "When he went through the ceremony at Kalanor he could not be said to possess any kingdom. The small army *under the command of Bairam Khan* merely had a precarious hold by force on certain districts of the Punjab and that army itself was not to be trusted implicitly. Before Akbar could become Badshah in reality as well as in name he had to prove himself better than the rival claiments to the throne and at least to win back his father's lost dominions. It merely, registered the claim of Humayun's son to the throne."—Dr. V. A. Smith.

में बांटा और उसने यह आशा प्रकट की कि जिस प्रकार इस कस्तूरी की सुगन्ध कमरे में फैली हुई है उसी प्रकार इस पुत्र का यश विश्व में फैले। हुमायूं को भारत में सफलता प्राप्त नहीं हुई और उसने फारस की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। उसने अपने एक वर्षीय पुत्र अकबर को अपने भ्राता अस्करी के पास कन्धार छोड़ फारस की ओर प्रस्थान किया। फारस के शाह की सहायता से हुमायूं कन्धार विजय करने में सफल हुआ और १५ नवम्बर १५४५ ई० में वह काबुल को भी अपने अधिकार में कर सका। अकबर इस समय काबुल में ही था जो वहां कन्धार से ले आया गया था। यहां माता-पिता को अपना प्रिय पुत्र प्राप्त हुआ। इस समय अकबर की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी और ऐसा कहा जाता है कि उसने तुरन्त अपनी मा को पहचान लिया और उसकी गोद में चला गया।

हुमायूं की उक्त विजयें स्थायी न हो सकीं। अपने भाइयों के कारण उसको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। काबुल कई बार उसके हाथ में आया, किन्तु निकल गया। एक बार जब हुमायूं कन्धार पर आक्रमण कर रहा था तो कामरान ने बालक अकबर को किले की दीवार पर बैठा दिया, किन्तु इस भाग्यवान बालक का बाल भी बांका न हो सका।

शिक्षित करने का प्रयास—अकबर अब केवल पांच वर्ष का ही था तो हुमायूं ने उसको शिक्षित करने की व्यवस्था की, किन्तु अकबर का मन पढ़ने-लिखने में तनिक भी न लगता था। उसको तो खेल-कूद तथा शिकार से विशेष प्रेम था। उसके शिक्षकों का उसको शिक्षित करने का समस्त प्रयास असफल रहा और वह वर्णमाला का ज्ञान तक भी प्राप्त नहीं कर सका, किन्तु वह घुड़सवारी, तलवार चलाने आदि शौर्यपूर्ण कलाओं में शीघ्र ही दक्ष हो गया।

सन् १५५१ ई० में हुमायूं ने अस्करी की मृत्यु के उपरान्त अकबर को गजनी का सूबेदार नियुक्त किया। इस समय उसकी अवस्था केवल ९ वर्ष की थी। जिस समय हुमायूं भारत-विजय के लिये चला उस समय अकबर उसके साथ था और उसने सरहिन्द के युद्ध में महत्वपूर्ण भाग लिया। हुमायूं ने उसको युवराज घोषित किया और उसको लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया। इसी समय बैरम खां अकबर का संरक्षक नियुक्त किया गया था।* हुमायूं की मृत्यु होने पर अकबर का राज्याभिषेक कलानौर के बाग में हुआ और वह बादशाह घोषित कर दिया गया, किन्तु केवल घोषणामात्र से अकबर की स्थिति दृढ़ नहीं हो सकी। इससे केवल हुमायूं के पुत्र अकबर का केवल उत्तराधिकार भर ही प्रदर्शित हुआ। वास्तविक शासक का स्थान प्राप्त करने के लिये अकबर को अपने विरोधियों की अपेक्षा स्वयं को अधिक सुदृढ़ तथा योग्य सिद्ध करना पड़ा तथा अपने पिता की खोई हुई सत्ता को पुनः स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील होना पड़ा।

१५५६ में भारत की राजनीतिक स्थिति

जिस समय अकबर का राज्याभिषेक १५५६ ई० के फरवरी मास में कलानौर

* "It merely registered the claim of Humayun's son to succeed to the throne of Hindustan." —Dr. Smith V. A.

में हुआ उस समय वह पंजाब के केवल कुछ प्रदेश का नाम-मात्र का शासक था। बैरम खां के अधीन सेना का पंजाब के कुछ जिलों पर ही अधिकार था और वह सेना भी पूर्णतया विश्वसनीय नहीं थी। अकबर को वास्तविक शासन-सत्ता प्राप्त करने के लिये राज्यसिंहासन के प्रतिद्वन्द्वियों से युद्ध करना पड़ा और उसको यह सिद्ध करना पड़ा कि वह उनकी अपेक्षा अधिक योग्य और शक्तिशाली है और अन्त में वह अपने पिता के खोये हुए साम्राज्य को पुनः हस्तगत करे।*

(i) काबुल—काबुल पर अकबर के सौतेले भाई मुहम्मद हकीम का आधिपत्य था जो दिल्ली और पंजाब को अपने अधिकार में करने की ओर प्रयत्नशील था। (ii) पंजाब—पंजाब में शेरशाह का उत्तराधिकारी सिकन्दर सूर अपनी सत्ता स्थापित करने में प्रयत्नशील था। (iii) मुहम्मद आदिलशाह और इब्राहीम सूर भी सूर साम्राज्य की पुनः स्थापना का स्वप्न देख रहे थे और वे अकबर की सत्ता दिल्ली पर निर्विवाद स्थापित नहीं होने देना चाहते थे। हुमायूं की मृत्यु के तुरन्त उपरान्त ही मुहम्मद आदिलशाह के सेनापति तथा मन्त्री हेमू ने दिल्ली के पूर्वी प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और वह शीघ्र ही दिल्ली की ओर प्रस्थान करने वाला था। उसने पूर्ण तैयारी कर दिल्ली और आगरे के प्रदेशों से मुगल सत्ता का अन्त कर स्वयं 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण कर दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित किया। अतः सूर वंश के प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा अकबर का सबसे बड़ा शत्रु हेमू बन गया। (iv) बंगाल—इसके अतिरिक्त बंगाल पर अफगानों का अधिकार था और वह दिल्ली साम्राज्य से पूर्णतया अलग था। (v) राजपूतों का उत्कर्ष—राजपूतों ने खनवा की पराजय के पश्चात् अपनी शक्ति को दृढ़ किया। शेरशाह की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने अपनी शक्ति का पुनः संगठन किया। (vi) मालवा और गुजरात—मालवा और गुजरात भी पूर्णतया स्वतन्त्र थे। (vii) मध्य भारत तथा गोंडवाना—मध्य भारत तथा गोंडवाना का भी दिल्ली से कोई सम्बन्ध न था। (viii) दक्षिणी भारत—दिल्ली भारत के मुसलमान राज्यों का संघर्ष हिन्दू साम्राज्य विजयनगर से

१५५६ में भारत की राजनीतिक स्थिति

(१) काबुल
(२) पंजाब
(३) मुहम्मद आदिलशाह और इब्राहीम सूर का विरोध
(४) बंगाल
(५) राजपूतों का उत्कर्ष
(६) मालवा और गुजरात
(७) मध्य भारत तथा गोंडवाना
(८) दक्षिण भारत के मुसलमान तथा हिन्दुओं का विजयनगर राज्य

* "When he went through the ceremony at Kalanor, he could not be said to possess any kingdom. The small army under the command of Bairam Khan merely had a precarious hold by force on certain districts of the Punjab, and that army itself was not to be trusted implicitly. Before Akbar could become padshah in reality as well as in name, he had to prove himself better than the rival claimants to the throne, and at least to win back his father's lost dominions."
—Dr. V. A. Smith.

हो रहा था। इस प्रकार अकबर के राज्याभिषेक के समय भारत की राजनीतिक दशा अधोगति को प्राप्त हो चुकी थी और एक कुशल सेनापति तथा योग्य राजनीतिज्ञ के लिए भारत पर अधिकार स्थापित करने का स्वर्ण अवसर था।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जैसा उक्त वर्णन से स्पष्ट है अकबर के राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसको चारों ओर से कठिनाइयों ने घेर लिया। उसके सामने विभिन्न समस्यायें थीं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी—अकबर का राज्याभिषेक १४ फरवरी सन् १५५६ को सम्पन्न हो गया था, किन्तु उसके हाथ में कोई साम्राज्य नहीं था। इससे लाभ केवल इतना अवश्य हुआ कि वह भी साम्राज्य का एक दावेदार बन गया।* हुमायूं अफगानों की शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं कर पाया था। यद्यपि सिकन्दर सूर सरहिन्द नामक स्थान पर पराजित हो गया था, किन्तु वह शेरशाह द्वारा स्थापित राज्य की पुन: स्थापना करने की आशा में प्रयत्नशील था। पूर्व में अफगान अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे। उनका नेता आदिलशाह था जिसको अपने सुयोग्य मन्त्री हेमू पर अपार विश्वास था जो एक विशाल सेना के साथ दिल्ली और आगरे को अपने अधीन करने में सफल हुआ था। उसने अपने आपको 'विक्रमादित्य' की उपाधि से सुशोभित किया।

(२) मुगलों में विरोधात्मक भावना—मुगल भी सम्मिलित रूप से अकबर के समर्थक नहीं थे। उनके सरदारों में भी विभाजन था। इन सरदारों में सबसे प्रमुख अब्दुल माली था जो हुमायूं का विशेष कृपापात्र सैनिक तथा सरदार था।

(३) राजपूतों का व्यवहार—राजपूत जाति अपने आपको संगठित कर रही थी और वह खनवा के युद्ध की पराजय का बदला मुगलों से लेने के लिये कटिबद्ध थी। मारवाड़ का राजा मालदेव राजपूत जाति का प्राचीन गौरव पुनः स्थापित करना चाहता था और वह दिल्ली के साम्राज्य की अस्त-व्यस्त दशा को देखकर उस पर अधिकार स्थापित करने के लिये बड़ा लालायित था। यदि वह हुमायूं की मृत्यु का समाचार पाकर तुरन्त दिल्ली पर आक्रमण कर देता तो विजय उसकी अवश्यम्भावी थी और मुगलों के पैर फिर भारत में जमने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु कुछ विशेष

> **अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ**
> (१) साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी
> (२) मुगलों में विरोधात्मक भावना
> (३) राजपूतों का व्यवहार
> (४) भीषण आर्थिक संकट
> (५) संरक्षक की समस्या
> (६) भारतीयों का मुगलों को विदेशी समझना
> (७) साधनों का अभाव

* "It merely registered the claim of Humayun's son to succeed to the throne of Hindustan." —Dr. Smith.

कालान्तर वह ऐसा करने में असमर्थ रहा।

(४) शोचनीय आर्थिक संकट — अकबर के सम्मुख भीषण आर्थिक संकट था। हुमायूँ का राजकोष रिक्त था और उसने उसकी पूर्ति करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। धन के अभाव में सेना का पुनर्गठन तथा संगठित करना बड़ा दुष्कर कार्य था।

(५) सरदारों की समस्या — हुमायूँ अपने अन्तिम दिनों में बैरम खाँ को अकबर का संरक्षक नियुक्त कर गया था, किन्तु उसकी मृत्यु पर अन्य सरदार इस महत्वपूर्ण पद को प्राप्त करने के लिये लालायित हो गये। इस प्रकार सरदारों में आपसी स्पर्धा आरम्भ हो गई। इसके अतिरिक्त बैरमखाँ का व्यवहार अन्य सरदारों से अच्छा नहीं था। सबको वह घृणा और ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था। इससे अकबर को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(६) भारतीयों का मुगलों को विदेशी समझना — भारतीय जनता मुगलों को अभी तक विदेशी समझती थी जिसके कारण वे उनसे ईर्ष्या और घृणा के भाव थे। मुगलों को उनसे किसी प्रकार का समर्थन तथा सहयोग प्राप्त नहीं हो सका। बाबर तथा हुमायूँ को भारत में बहुत से युद्धों में तल्लीन होने के कारण भारतीय जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का अवसर तक प्राप्त नहीं हुआ था।

(७) साधनों का अभाव — अकबर के पास साधनों का भी अभाव था। काबुल तथा कन्धार पर उसका अधिकार नहीं था। उसके अधिकार में पंजाब प्रान्त के केवल कुछ जिले ही थे वहाँ से भी उसको विशेष सैनिक सहायता प्राप्त करना सम्भव नहीं था। उसके पास सुसज्जित तथा सुसंगठित सेना का भी अभाव था। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी सेना थी उसके विश्वसनीय होने का भी कोई प्रमाण न था, क्योंकि मुगल सरदारों में बड़ी भारी प्रतिस्पर्धा थी।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि जिस समय अकबर राज्यसिंहासन पर बैठा उसके चारों ओर विपत्तियों का पहाड़ था जिस पर अधिकार करना एक तेरह वर्षीय बालक के लिये असम्भव था, किन्तु अकबर का भाग्य बड़ा बलिष्ट था कि उसको बैरम खाँ जैसा सेनापति तथा स्वामीभक्त संरक्षक मिल गया जिसने मुगल साम्राज्य की स्थापना की और ऐसी विषम परिस्थितियों में अपने स्वामी के पुत्र की सहायता की। उसकी सहायता के अभाव में मुगल-साम्राज्य की स्थापना नितान्त असम्भव थी। अतः मुगल साम्राज्य की स्थापना का श्रेय बैरम खाँ को प्राप्त हुआ है।

अकबर और अफगान

सर्वप्रथम अकबर का ध्यान अफगानों की ओर आकर्षित हुआ। इसी समय उसने (i) सर्वप्रथम मुगल सरदार अब्दुल माली का दमन किया और उसको बन्दीगृह में डाल दिया। (ii) इससे निवृत्त होने पर बैरमखाँ सिकन्दर सूर का दमन करने के लिये सेना का संगठन कर रहा था, किन्तु इसी समय उसको सूचना मिली कि आदिलशाह के मन्त्री हेमू ने दिल्ली और आगरा को अपने अधिकार में कर लिया। इस समय दिल्ली पर मुगलों की ओर से तार्दी बेग नियुक्त था। वह युद्ध में परास्त हुआ और पंजाब की ओर

भागा। सरहिन्द में वह मुगल सेना से मिला। बैरमखाँ दिल्ली और आगरे का मुगलों के हाथ से निकलना सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और उसने बिना कुछ सोचे समझे तार्दी बेग को मौत के घाट उतार दिया। मुसलमान इतिहासकारों ने बैरमखाँ के इस कृत्य की बड़ी निन्दा की। उनके अनुसार बैरमखाँ का कृत्य व्यक्तिगत वैमनस्य का आधार था। अतः वह अनुचित और बुरा था, किन्तु जैसा डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है कि सेना में से निराशा तथा नाउम्मीदी की भावना निकाल कर उसमें पुनः विश्वास और साहस संचार के लिए यह कार्य आवश्यक था।* वास्तव में इसका परिणाम हितकर हुआ और मुगल सेना ने बड़े उत्साह तथा साहस से हेमू का सामना करने के लिए प्रस्थान किया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—यद्यपि हेमू का अधिकार दिल्ली और आगरे के समीपस्थ प्रदेशों पर स्थापित हो चुका था, किन्तु अभी उसको मुगलों की सेना का सामना करना था जिसने दिल्ली की ओर बड़े उत्साह तथा साहस से प्रस्थान करना आरम्भ कर दिया था। हेमू ने मुगलों की सेना का सामना करने के लिये पूर्ण तैयारी की और वह भी अपनी विशाल सेना लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा। दोनों सेनायें पानीपत के रणक्षेत्र में आ गईं जहां बाबर तथा इब्राहीम लोदी की सेनाओं में १५२६ ई० में भीषण संग्राम हुआ था। हेमू की विशाल सेना देखकर मुगल सेना भयभीत हो गई। उसने अपना तोपखाना मुगलों के प्रस्थान को रोकने के अभिप्राय से आगे भेज दिया था, किन्तु उस पर मुगलों ने अधिकार कर लिया। हेमू इससे निराश नहीं हुआ। उसने ५ नवम्बर सन् १५५६ ई० को मुगल सेना पर बड़ा भीषण आक्रमण किया और उनके पूर्व तथा दक्षिण पक्षों का बड़ी निर्दयता से संहार किया। जब हेमू मुगल सेना के मध्य भाग पर आक्रमण करने वाला था कि यकायक उसकी आंख में एक तीर लगा वह मूर्छित होकर अपने हाथी के हौदे में गिर पड़ा। उसकी सेना ने समझा कि हेमू की मृत्यु हो गई और उसमें भगदड़ मच गई और विजय मुगलों की हुई। इस प्रकार तीर लगने की घटना ने हेमू की विजय को पराजय में परिणत कर दिया। हेमू बन्दी बनाया गया और अकबर के सामने उपस्थित किया गया। बैरम खाँ ने अकबर से हेमू का बध करने को कहा। किन्तु बैरम खाँ के कथन को उसने मानने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर बैरम खाँ ने अपनी तलवार के वार से हेमू की गर्दन उड़ा दी। इस प्रकार इस वीर सेनापति का अन्त हुआ। मुसलमान इतिहासकारों तक ने उसकी वीरता तथा साहस की प्रशंसा की। बदाऊंनी के अनुसार 'हेमू ने एक ही आक्रमण में अकबर की सम्पूर्ण सेना को तितर-बितर कर दिया।' सैयद मुहम्मद लतीफ के अनुसार 'उसने (हेमू ने) पानीपत के मैदान में भी अपनी वीरता का अद्भुत परिचय दिया है।'' स्मिथ के शब्दों में हेमू एक योग्य सेनापति तथा मनुष्यों का नेता था।‡

* "The act was necessary to restore confidence in the army and to stamp out sedition." —Dr. A. L. Srivastava.

† "Hemu upset the whole army of Akbar at one charge." —Badauni.

‡ "He was conspicuous by his bravery even at Panipat." —Syed Mohammad Latif.

"Hemu was an able general and ruler of man." —Dr. V. A. Smith.

पानीपत के द्वितीय युद्ध का परिणाम—पानीपत का द्वितीय युद्ध प्रथम युद्ध के समान निर्णायक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के मुख्य परिणाम इस प्रकार हुए—

(i) **हेमू की पूर्ण पराजय**—हेमू की सेना पूर्णतया पराजित हुई, (ii) **अफगान-साम्राज्य की स्थापना पर तुषारापात**—अफगानों की साम्राज्य स्थापना की आशा पर तुषारापात हुआ। अफगान शक्ति का सदा के लिये अन्त हो गया, (iii) **भारत में मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना**—भारत में मुगल-साम्राज्य की स्थापना पुनः हुई, (iv) **मुगलों को पर्याप्त युद्ध-सामग्री तथा धन का प्राप्त होना**—मुगलों को पर्याप्त युद्ध सामग्री तथा धन प्राप्त हुआ। (v) **दिल्ली और आगरा पर अधिकार**—शीघ्र ही मुगलों ने दिल्ली तथा आगरे के प्रदेशों को अपने अधिकार में लिया और भारत-विजय की योजना का कार्य प्रारम्भ कर दिया। (vi) **अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी का अन्त**—हेमू की पराजय तथा उसके वध द्वारा अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हो गया।

बैरम खाँ का उत्थान

बैरम खाँ का प्रारम्भिक जीवन—बैरम खाँ के पिता का नाम सैफअली बेग था। उसका जन्म बदख्शाँ में हुआ था। वह शिया धर्म का अनुयायी था। जब उसकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी उस समय ही वह बाबर की सेना में भर्ती हुआ और सेना के उस भाग में काम करता था जिसका अध्यक्ष हुमायूँ था। बैरम खाँ ने भारत में मुगल-साम्राज्य की स्थापना के हेतु बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय सेवा तथा कार्य किया। अपने जीवन के प्रारम्भिक चरणों में उसने बाबर की, जीवन के मध्य में हुमायूँ की और जीवन के अन्तिम चरण में अकबर की महान् सेवायें कीं। वह सदा हुमायूँ के प्रति पूर्ण भक्त रहा और समस्त आपत्ति के समय उसके साथ रहा। चौसा तथा कन्नौज के युद्ध में उसने अपने साहस तथा वीरता का परिचय दिया। कन्नौज के युद्ध में वह *बन्दी बना लिया गया*। शेरशाह ने उसको अपनी ओर मिलाने की भरसक चेष्टा की और उसको विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दिये, किन्तु वह स्वामीभक्त सेवक अपनी बात से नहीं हिगा। परिणामस्वरूप वह बन्दीगृह में डाल दिया गया, किन्तु अवकाश पाकर वह बन्दीगृह से भागने में सफल हुआ और भीषण यातनायें सहन करता हुआ हुमायूँ की सेवा में पुनः उपस्थित हुआ। वह प्रत्येक समय हुमायूँ की परिस्थितियों में उसके साथ रहा और अन्त में वह हुमायूँ को दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन करने में सफल हुआ। हुमायूँ को बैरम खाँ द्वारा फारस के शिया शाह की सहायता प्राप्त करने में बड़ी मदद मिली। उसने उन समस्त युद्धों में भाग लिया जो हुमायूँ ने अपने प्रवास काल में किये। हुमायूँ उसको अपना सबसे विश्वसनीय सेवक समझता है। उसके अदम्य उत्साह तथा साहस और गुणों तथा सेवाओं से प्रभावित होकर हुमायूँ ने उसको 'खानखाना' की उपाधि से सुशोभित किया और अपने प्रिय पुत्र अकबर का संरक्षक नियुक्त किया। उसने अकबर के साथ बैरम खाँ को सूर-वंश के समर्थकों तथा पठानों के विद्रोह का दमन करने के लिये एक सेना सहित पंजाब भेजा। वह अपना कार्य पूर्णतया सम्पन्न भी न कर पाया था कि हुमायूँ की मृत्यु का दुःखद समाचार उसको प्राप्त हुआ।

कुछ समय तक उसने इस समाचार को गुप्त रखा और अकबर का राज्याभिषेक सम्पन्न कर दिया, जिसका वर्णन गत पंक्तियों में किया जा चुका है।

दिल्ली की ओर प्रस्थान—इसके उपरान्त बैरम खाँ ने भारत के साम्राज्य पर पुनः सत्ता की स्थापना करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। इसी समय कुछ अमीरों ने यह परामर्श दिया कि दिल्ली की ओर प्रस्थान के स्थान पर काबुल की ओर प्रस्थान करना अधिक उपयुक्त होगा। बैरम खाँ अमीरों तथा सरदारों के इस मत से सहमत नहीं हुआ और उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की तैयारी आरम्भ की। यदि इस समय उसका मत स्वीकार नहीं किया जाता तो मुगल-साम्राज्य भारत से सदा के लिए विलीन हो जाता।

पानीपत का युद्ध—पानीपत के द्वितीय युद्ध में बैरम खाँ ने अपनी वीरता तथा सैनिक प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन किया और यह कहना अतिरंजन न होगा कि इस युद्ध की विजय का समस्त श्रेय बैरम खाँ को था। इस प्रकार बैरम खाँ ने मुगलों की राजसत्ता भारत में स्थापित करने के लिये दो बार प्रयास किया और दोनों ही बार वह विजयी हुआ। इस विजय के उपरान्त मुगलों का शीघ्र ही दिल्ली और आगरे पर अधिकार हो गया।

साम्राज्य का विस्तार—इतना कार्य करने से ही बैरम खाँ को संतोष नहीं हुआ और उसने साम्राज्य-विस्तार की योजना का निर्माण किया। दिल्ली पर अधिकार करने के पश्चात् मुगल सेना ने मेवात पर आक्रमण किया। हेमू का पिता बन्दी बना लिया गया। उससे मुसलमान धर्म अंगीकार करने को कहा गया, किन्तु जब उसने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया तो उसका वध कर दिया गया। मेवात से मुगलों को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त सन् १५५७ ई० में सिकन्दर शाह सूर का दमन किया गया और उसने आत्म-समर्पण किया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु सन् १५५६ ई० में हो गई थी।

सन् १५५८–६० ई० के काल में अकबर के साम्राज्य में ग्वालियर तथा जौनपुर के प्रदेश सम्मिलित कर लिये गये। सन् १५५६ ई० में राजपूतों के सुदृढ़ दुर्ग रणथम्भौर पर मुगलों ने आक्रमण किया किन्तु वे उसको अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने में सफल नहीं हो सके। इसके पश्चात् मुगल-सेना ने मालवा पर आक्रमण किया, किन्तु सफलता प्राप्त करने के पूर्व ही मुगल-सेना वापिस चली आई, क्योंकि बैरम खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र आरम्भ हो गया था।

बैरम खाँ का पतन

बैरम खाँ ने अपनी योग्यता के आधार पर न केवल मुगल-साम्राज्य ही स्थापित किया, वरन् उसको दृढ़ता भी प्रदान की जिसके कारण वह पर्याप्त समय तक स्थायी रूप धारण करने में सफल हुआ। उसमें अनेक गुणों के साथ-साथ कुछ अवगुण भी थे जिन्होंने उसके पतन में बड़ा सहयोग प्रदान किया। अकबर बैरम खाँ के व्यवहार से असंतुष्ट हो गया। वह आखेट का बहाना कर बियाना गया और वहाँ से दिल्ली चला आया जहाँ शासन की समस्त बागडोर उसने अपने हाथ में ले ली और बैरम खाँ को

एक पत्र द्वारा समस्त समाचार से अवगत किया। इस पत्र में उसने बैरम खां को मक्का जाने के लिये कहा, जहां बहुत दिनों से उसके जाने की इच्छा थी। जब बैरम खां तथा उसके समर्थकों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उनको बड़ा दुःख हुआ। बैरम खां के कुछ समर्थकों ने उसको अकबर पर अधिकार करने तथा विद्रोह करने का परामर्श दिया परन्तु बैरम खां को उनकी यह सलाह उपयुक्त न जंची। वह अपने स्वामी-भक्त जीवन को इस प्रकार का निन्दनीय कार्य कर कलुषित नहीं करना चाहता था। बैरम खां ने अकबर के आदेशानुसार मक्का जाने का निश्चय किया और उसने मक्का के लिये प्रस्थान कर दिया। बैरम खां के विरोधियों को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अकबर के मन में बैरम खां के विरुद्ध भावना प्रज्वलित की। अकबर ने बैरमखां की चाल-ढाल का निरीक्षण करने के उद्देश्य से पीर मुहम्मद नियुक्त किया गया। उसके पास पर्याप्त सेना भी थी। जब बैरम खां को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसको बड़ा क्रोध आया और आवेश में आकर उसने पंजाब में विद्रोह किया। मुगल सेना ने बैरमखां को परास्त किया और बन्दी बनाकर सम्राट के सामने उपस्थित किया। बैरम खां अपने कृत्य से बहुत दुखी हुआ। उसने सम्राट से क्षमा याचना की। उसकी राज-भक्ति तथा पूर्व सेवाओं का विचार कर अकबर ने उसको क्षमा प्रदान की। बैरम खां ने मक्का की ओर प्रस्थान किया, किन्तु मक्का पहुँचने के पूर्व ही एक पठान ने पाटन नामक स्थान पर उसका वध कर दिया। इस प्रकार इस स्वामी-भक्त सेवक का दुःखद अन्त हुआ।

✓बैरम खां के पतन के कारण

बैरम खां के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) बैरम खां का अलोकप्रिय होना—यद्यपि बैरम खां योग्य सेनापति तथा स्वामिभक्त सेवक था किन्तु वह अन्य मुगल सरदारों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। उसमें घमण्ड उत्पन्न हो गया था और उसका अमीरों के साथ सद्व्यवहार नहीं था जो उसको ईर्ष्या तथा घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसके विरुद्ध अमीरों का एक दल स्वतः बनने लगा।

(२) कठोर और क्रोधी स्वभाव—वह बड़ा कठोर तथा क्रोधी स्वभाव का था। वह बहुत कठोर दण्ड देता था और इस बात को भूल जाता था कि वह किसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करता था। वह आवेश में आकर किसी का भी अपमान करने को उद्यत हो जाता था।

(३) बैरम खां का शिया होना—बैरम खां का धर्म भी उसके पतन का विशेष कारण था। वह शिया धर्म का अनुयायी था जबकि अधिकांश मुगल-अमीर तथा सरदार सुन्नी धर्म के अनुयायी थे। इस कारण भी वह अधिकांश अमीरों को अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपने दल में सम्मिलित करने में असफल रहा।

(४) अकबर का राज-काज में दिलचस्पी लेना—इस समय अकबर की आयु अठारह वर्ष के लगभग हो गई थी। उसने राज-काज में दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ कर दी थी और वह शासन-सत्ता पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित करना चाहता था।

(५) अकबर के सेवकों तथा परिवार के व्यक्तियों से बैरम खां का

दुर्व्यवहार—बैरम खां का अकबर के सेवकों तथा उसके परिवार के व्यक्तियों से भी बड़ा दुर्व्यवहार था। स्वयं अकबर को अपने निजी व्यय के लिये रुपया कम मिलता था जिसके कारण यह प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने के लिये बाध्य हो जाता था।

बैरम खां के पतन के कारण

(१) बैरम खां का अलोकप्रिय होना
(२) कठोर और क्रोधी स्वभाव
(३) बैरम खां का शिया होना
(४) अकबर का राज-काज में दिलचस्पी लेना
(५) अकबर के सेवकों तथा परिवार के व्यक्तियों से बैरम खां का दुर्व्यवहार
(६) अकबर पर हरम का प्रभाव
(७) तत्कालीन घटनायें

(६) अकबर पर हरम का प्रभाव—अकबर का बैरम खां के विरुद्ध करने में हरम का भी विशेष हाथ था। इस दल को अकबर की धाया महम अनगा का नेतृत्व प्राप्त था। उसने हर सम्भव रूप से अकबर के हृदय में ऐसी भावना जागृत की कि बैरम खां दिन प्रतिदिन अपनी शक्ति का विकास कर रहा है और उसमें राजभक्ति दिन-दिन क्षीण होने लगी है।

(७) तत्कालीन घटनायें—कुछ ऐसी तत्कालीन घटनायें घटीं जिन्होंने बैरम खां के पतन को शीघ्र ही समीप ला दिया। बैरम खां ने शेख गदाभी नाम के एक शिया को सदरे-सदूर के पद पर नियुक्त किया। इससे सुन्नी सरदारों में क्षोभ उत्पन्न हुआ। इसी समय जब अकबर हाथियों का युद्ध देख रहा था तो एक हाथी ने बैरम खां के खेमे के रस्सों को तोड़ डाला। बैरम खां को बड़ा क्रोध आया और उसने हाथी के महावत को दण्ड दिया। यद्यपि अकबर ने उसे यह समझाने की चेष्टा की कि इससे उसका अपमान करने का तनिक भी विचार नहीं था। इसी प्रकार की घटनाओं द्वारा अकबर और बैरम खां के बीच मत-भेद उत्पन्न हो गया और वह समस्त सत्ता को अपने अधीन करने के लिये विवश हो गया।

अकबर पर हरम का प्रभाव

उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि बैरम खां के पतन में हरम का प्रभाव बहुत अधिक था। इस दल की नेता अकबर की धाय महम अनंगा थी, जिसने अपने तथा परिवार के सदस्यों के स्वार्थ से वशीभूत होकर अकबर के हृदय में बैरम खा के विरुद्ध भावनायें जागृत कीं। बैरम खां के पतन के उपरान्त कुछ समय तक अकबर पर इस स्त्री का विशेष प्रभाव रहा।* कुछ ही समय उपरान्त अकबर को इन सबका प्रभाव असहनीय हो गया और वह इसके प्रभाव का अन्त करने के कार्य में संलग्न हो गया। वह चिरकाल तक स्वयं को रमणियों के प्रभाव में नहीं रख सकता था। उसने मुनीम खां के स्थान पर शम्सुद्दीन अतका को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। महम अनंगा तथा

* "Akbar shook off the tutelage of Bairam Khan only to bring himself under the monstrous regiment of unscrupulous women. He had yet another effort to make before he found himself and rose to the height of his essentially noble nature." —Dr. V. A. Smith.

उसके समर्थकों को अकबर का यह कार्य बहुत बुरा लगा। महम अनगा के पुत्र आधम खाँ ने प्रधान मन्त्री शमसुद्दीन का वध कर दिया। अकबर को उसका आचरण बहुत बुरा लगा। उसने उसका दुर्ग की मुण्डेर से नीचे फिकवा दिया, जिससे तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो गई। महम अनगा को अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु का बड़ा खेद हुआ और उसकी मृत्यु के ठीक चालीसवें दिन उसका भी देहान्त हो गया। इस प्रकार अकबर ने हरम के प्रभाव का अन्त किया और स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करने लगा।

महत्वपूर्ण प्रश्न

मध्य भारत—

(१) मुगल अफगान संघर्ष का वर्णन करो। (१९५३)

अन्य—

(१) बैरम खाँ के उत्थान और पतन का वर्णन करो।

(२) अकबर ने हरम के प्रभाव का अन्त किस प्रकार किया?

५ मुगलों का साम्राज्य-विस्तार

(क) अकबर

बैरम खाँ की संरक्षिता के समय में मुगल-साम्राज्य का विस्तार होना आरम्भ हुआ। उसके समय में मुगल-साम्राज्य के अन्तर्गत पंजाब, दिल्ली, आगरा तथा उसके समीपस्थ प्रदेश जौनपुर व ग्वालियर थे। बैरम खाँ के समय में रणथम्भौर तथा मालवा को भी हस्तगत करने का प्रयास किया गया, किन्तु इस दशा में मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। बैरमखाँ के पतन के उपरांत सन् १५६० से १५६२ ई० तक अकबर पर हरम का प्रभाव रहा और इस काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार करने की चेष्टा कार्यान्वित हुई। इस लघु काल में भी उसने उत्तरी भारत को विजय करने तथा भारत का वास्तविक सम्राट बनने की महत्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण किया। उसकी साम्राज्यवादी नीति के बीज इसी काल में बोये गये। अबुल फजल के अनुसार 'अकबर की विजय-नीति का उद्देश्य स्थानीय शासकों के निरंकुश शासन से पीड़ित प्रजा को सुख और शान्ति तथा सुरक्षा प्रदान करना था, किन्तु अकबर की प्रारम्भिक विजयों पर विचार करने से इस बात की असत्यता स्पष्ट प्रगट हो जाती है इस काल में उसकी विजय-लालसा के पीछे साम्राज्य की स्थापना तथा विजित देशों की सम्पत्ति तथा सत्ता प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा थी। इसी भावना के अन्तर्गत उसने अपने राज्य के समीपस्थ प्रदेशों को अपनी साम्राज्यवादी नीति का शिकार बनाया। उसकी नीति का

उद्देश्य तो उस समय बरसा अब अधिकांश उसरी भारतवर्ष पर उसका अधिकार स्थापित हो गया। इस समय वह भारत को एक राष्ट्रीय सूत्र में संगठित करने के लिये उद्यत हुआ और उसने प्रजा के हित की ओर ध्यान दिया।

अकबर की विजय

अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसने शीघ्र ही पास-पड़ोस के राज्यों को अपनी इस भावना का शिकार बनाना प्रारम्भ किया। उसकी मुख्य विजयें निम्नलिखित हैं—

(१) मालवा विजय—सर्वप्रथम अकबर की साम्राज्यवादी भावना का शिकार मालवा राज्य हुआ। इस समय मालवा पर बाजबहादुर का अधिकार था। वह बड़ा विलासी था और उसको संगीत-कला के प्रति विशेष अभिरुचि थी। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। उसके काल में शासन-व्यवस्था बड़ी शिथिल पड़ गई थी क्योंकि वह इस ओर से पूर्णतया उदासीन था। सन् १५६१ ई० में महम अनगा के पुत्र आधम खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने मालवा पर आक्रमण किया। बाजबहादुर परास्त हुआ। और उसकी प्रेयसी रूपवती बन्दी बना ली गई, किन्तु उसने अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए विषपान किया। आधम खां ने लूट की समस्त वस्तुओं को अपने अधिकार में किया और केवल थोड़े से हाथी तथा कुछ सम्पत्ति दिल्ली भेजी। अकबर को अधम खाँ के इस आचरण पर बड़ा क्रोध आया और उसको दण्ड देने के लिये वह स्वयं मालवा गया। अचानक अकबर बादशाह के आगमन पर आधम खां बड़ा भयभीत हुआ। महम अनगा के हस्तक्षेप के कारण आधम को दण्ड तो नहीं दिया गया किन्तु उसको वापिस भेज दिया गया। अकबर ने मालवा-विजय का भार पीर मुहम्मद को सौंप दिया। उसने शीघ्र ही बहुत से नगरों पर अधिकार किया, किन्तु कुछ समय उपरान्त उसको बाजबहादुर द्वारा मालवा से निकाल दिया गया। इस पर अकबर ने अब्दुल्ला खां उज़बेग को मालवा भेजा। मालवा की सेनायें उनका सामना न कर सकीं और मालवा पर मुगलों का पूर्णतया अधिकार हो गया।

(२) जौनपुर के विद्रोह का दमन और चुनार पर अधिकार—जिस समय मुगल सेनायें आधम खां के नेतृत्व में मालवा विजय करने में व्यस्त थीं उसी समय जौनपुर में मुहम्मद आदिल शाह सूर के पुत्र शेरखां के नेतृत्व में अफगानों ने अकबर के विरुद्ध एक भयंकर विद्रोह किया। वहां के शासक खान जमां ने विद्रोहियों का दमन करने में बड़ी वीरता तथा अदम्य साहस का परिचय दिया जिसके परिणामस्वरूप उसको विजय प्राप्त हुई। कुछ समय के उपरान्त उसमें विद्रोह करने की भावना प्रज्वलित हुई और उसने विद्रोहियों द्वारा प्राप्त समस्त सम्पत्ति हस्तगत की। अकबर उसके कार्य को सहन नहीं कर सका और १७ जुलाई १५६१ ई० को जौनपुर की ओर खान जमां को दण्ड देने के लिये चल पड़ा। इससे खानजमां तथा उसके समर्थकों में भय उत्पन्न हुआ और उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार की। बादशाह ने उसको क्षमा प्रदान की और उसको उसके पद पर रहने दिया। इसी समय एक सेना बिहार-स्थित प्रसिद्ध दुर्ग

गोंडवाना अपने अधीनस्थ करने का प्रयत्न किया। रानी दुर्गावती ने बड़ी वीरता तथा साहस से दो दिन तक मुगलों की सेना का सामना किया, किन्तु सेना की अधिकता के कारण उसको पराजित होना पड़ा। रानी ने आत्महत्या की और गोंडवाना अकबर की साम्राज्य लोलुपता का शिकार बना। रानी का पुत्र भी वीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया। आसफ खां के हाथ लूट का बहुत-सा माल आया।

(६) चित्तौड़ विजय—गोंडवाना की विजय से निश्चित होकर अकबर ने मेवाड़-राज्य को मुगल साम्राज्य में विलीन करने की योजना का निर्माण किया। यद्यपि इस राज्य की शक्ति राणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) की पराजय तथा मृत्यु के कारण बहुत कम हो गई थी, किन्तु वह राज्य फिर भी राजपूतों के राज्यों में अपनी प्रधानता रखता था। राणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त उसका अल्पवयस्क पुत्र राणा उदयसिंह मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ था। उसने अकबर के विरुद्ध मालवा के राजा बाज बहादुर को शरण दी थी। अकबर इस परिणाम पर पहुंचा कि भारत की उत्तरी विजय उस समय तक स्थायी नहीं हो सकती जब तक कि मेवाड़-विजय का कार्य सम्पन्न न कर लिया जाए।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अकबर ने चित्तौड़ पर सन् १५६७ ई० में आक्रमण किया और उसका घेरा डाल दिया। मुगलों के आगमन का समाचार पाकर उदयसिंह भयभीत हो गया और जंगलों में जाकर छिप गया। जयमल और उसका भाई फत्ता लगभग ८,००० वीर राजपूतों के साथ दुर्ग की रक्षा में जुट गये। राजपूतों ने मुगल सेना का अदम्य उत्साह तथा साहस से सामना किया यद्यपि उनको विजय की आशा बहुत कम थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनके पास मुगलों की सुसज्जित सेना का सामना करने के लिये पर्याप्त साधन नहीं थे। अकबर ने दुर्ग के घेरे को शिथिल नहीं किया, क्योंकि वह चित्तौड़ के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। जब उसने यह अनुभव किया कि राजपूत किसी भी दशा में नतमस्तक होने को तैयार नहीं हैं और उसकी सेना का दिन प्रति दिन विध्वंस हो रहा है तो उसने दुर्ग की दीवारों को उड़ाने का निश्चय किया और इसी उद्देश्य से उसने सुरंगें लगाईं जिनके कारण दुर्ग की दीवारें टूट गईं, किन्तु राजपूतों ने शीघ्र ही उनकी मरम्मत की व्यवस्था की और आक्रमणकारियों को पीछे की ओर धकेल दिया गया। संयोगवश एक रात्रि को जब जयमल दुर्ग की दीवारों की मरम्मत का आदेश दे रहा था तो बन्दूक की गोली लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से राजपूतों का उत्साह कम हो गया और राजपूत स्त्रियों ने जौहर कर अपने आपको अग्नि के समर्पित कर दिया। अब राजपूतों ने मुगलों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजपूतों ने मुगल सेना पर आक्रमण किया किन्तु मुगल सेना ने उनको पराजित किया। सैकड़ों राजपूत अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार स्थापित हो गया। राजपूतों की वीरता से अकबर इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने जयमल और फत्ता की प्रस्तर-मूर्तियों को दुर्ग के फाटक

घर लगाने का आदेश दिया। आसफ खां मेवाड़ का गवर्नर नियुक्त किया गया, किन्तु अधिकांश मेवाड़ पर राणा का आधिपत्य था।

(७) रणथम्भौर-विजय—चित्तौड़ पर अधिकार करने के उपरान्त अकबर के हृदय में राणा के एक अन्य दृढ़ दुर्ग रणथम्भौर को अपने अधिकार में करने की भावना बलवती हुई। इस दुर्ग पर बूंदी के हाड़ा राजपूत राजा सुर्जन का आधिपत्य था। किन्तु दुर्ग की विशेष ऊंचाई के कारण दुर्ग का घेरा सफल नहीं हो सका। इसके उपरान्त अकबर ने सुरंगें बिछवाईं और अग्नि-वर्षा करनी आरम्भ की, जिसके कारण दुर्ग की दीवारें टूटने लगीं। जब राजा सुर्जन ने यह अनुभव किया कि वह युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता तो उसने संधि करने का निश्चय किया। संधि करने के पश्चात् अकबर आगरे लौट आया।

(८) कालिंजर विजय—उक्त दोनों विजयों के कारण अकबर के मान-प्रतिष्ठा में चार चांद लग गये और समीप के राजा उसकी शक्ति से भयभीत हो गये। अकबर ने कालिंजर विजय की योजना बनाई। यह दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। इस समय इस दुर्ग पर रींवा के राजा रामचन्द्र का अधिकार था। सन् १५६९ ई० में मजनू खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने इस दुर्ग को विजय करने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। राजा रामचन्द्र चित्तौड़ और रणथम्भौर के आत्मसमर्पण के विषय में सुन चुका था। उसने थोड़ा-सा सामना करने के उपरान्त अकबर से सन्धि की। कालिंजर के दुर्ग पर अकबर का अधिकार स्थापित हो गया और राजा को इलाहाबाद के समीप एक जागीर भेंट-स्वरूप प्रदान कर दी गई।

(९) मारवाड़ का आधिपत्य स्वीकार करना—जब अकबर की विजयों का उल्लेख अन्य राजपूतों ने सुना तो वे भी अकबर की शक्ति से भयभीत हो गये और वे अपने आपको अरक्षित समझने लगे। नवम्बर १५७० ई० में अकबर नागौर गया, जहां बीकानेर तथा जोधपुर के राजपूत शासकों ने स्वयं ही अकबर की अधीनता स्वीकार की। इस समय बीकानेर का शासक कल्याणमल और जोधपुर का शासक प्रसिद्ध राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन था। शीघ्र ही जैसलमेर के राजा हरराय ने भी बीकानेर तथा जोधपुर के शासकों का अनुकरण किया। अकबर ने बीकानेर तथा जैसलमेर की राजकुमारियों से विवाह किया। इस प्रकार मेवाड़ के प्रसिद्ध राजपूत राज्य के अतिरिक्त समस्त राजपूत राज्यों पर अकबर का आधिपत्य सरलता से स्थापित हो गया और उत्तरी भारत का अधिकांश भाग उसके साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

(१०) गुजरात-विजय—उक्त विजयों के सम्पन्न हो जाने के उपरान्त अकबर इस स्थिति में पहुँचा कि वह अपने साम्राज्य का विस्तार समुद्र की ओर दोनों दिशाओं में कर सके। उसका प्रथम अभियान पश्चिम की ओर हुआ। पाठकों को विदित होगा कि गुजरात पर कुछ समय तक हुमायूं का आधिपत्य रह चुका था। अतः यह कहना उचित ही होगा कि यह प्रदेश मुगलों का एक खोया हुआ प्रदेश था। गुजरात धन-धान्य से पूर्ण था। इस समय वहां बड़ी अराजकता फैली हुई थी। यह

भारत के वाह्य व्यापार का भी केन्द्र था। इस समय गुजरात पर मुजफ्फरखां तृतीय शासन कर रहा था। वह एक लम्पट शासक था और शासन को उन्नत करने के प्रति उसका तनिक भी ध्यान नहीं था, जिसके कारण अमीरों और सरदारों में शक्ति की प्राप्ति के लिये भीषण संघर्ष निरन्तर चलता रहता था। एक दल के सरदार एतमाद खां ने अकबर को गुजरात-विजय के लिये आमन्त्रित किया। अकबर इस स्वर्ण अवसर को हाथ से खोने के लिये तैयार नहीं था और उसने तुरन्त ही खाने कलां के नेतृत्व में एक विशाल सेना इस अभियान के लिये भेज दी। मुगल सेना ने सरलतापूर्वक नवम्बर १५७२ ई० में अहमदनगर पर अधिकार किया। मुजफ्फर खां बन्दी बना लिया गया और अन्य अमीरों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने खम्भात की ओर प्रस्थान किया जहां पुर्तगाली व्यापारियों ने उसका बड़ा भव्य स्वागत किया। इसके बाद वह मिर्जाओं को दण्ड देने के लिए सूरत गया। मुगल-सेना ने शीघ्र ही सूरत पर अधिकार कर लिया। अकबर गुजरात-विजय सम्पन्न कर वापिस आगरे चला गया, किन्तु इसी बीच गुजरात में मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई। जब अकबर इस समाचार से अवगत हुआ तो वह शीघ्र ही विद्रोहियों को दण्ड देने के अभिप्राय से गुजरात पहुँचा। ऐसा कहा जाता है कि उसने ६०० मील की लम्बी यात्रा ११ दिनों में की। अकबर की आकस्मिक उपस्थिति से विद्रोहियों का हृदय टूट गया। अकबर ने बड़ी तत्परता दिखलाई और उसने शीघ्र ही विद्रोहियों पर आक्रमण किया। बहुत से विद्रोही हताहत हुये और गुजरात पर मुगल सत्ता स्थापित हो गई। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ (Vinsent Smith) ने द्वितीय गुजरात अभियान को इतिहास के अन्तर्गत द्रुतगामी आक्रमण के नाम से सम्बोधित किया,* जो वास्तव में बिल्कुल सत्य है। गुजरात का शासन व्यवस्थित करने की ओर अकबर ने ध्यान दिया। उसने आसफ खां को गुजरात का शासन सौंपा और टोडरमल को भूमि की नाप-तोल कर लगान निश्चित करने का कार्य।

गुजरात की विजय का महत्व—गुजरात विजय का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि (i) इस विजय के द्वारा अकबर के हाथ में एक सम्पन्न तथा समृद्धिशाली प्रदेश आ गया जिससे राजकीय आय में बड़ा विस्तार हुआ। (ii) टोडर मल को लगान सम्बन्धी नियमों को प्रयोगात्मक रूप देने का अवसर प्राप्त हुआ। (iii) अकबर का सम्बन्ध पुर्तगाली व्यापारियों से स्थापित हो गया तथा (iv) लौटते समय अकबर की भेंट शेख मुबारक से हुई तथा शेख ने अकबर को यह आदेश दिया कि साम्राज्य का शासकीय प्रधान बनने के साथ ही साथ वह आध्यात्मिक प्रधान भी बने।

(११) बिहार और बंगाल की विजय—गुजरात-विजय के उपरान्त अकबर का ध्यान बिहार और बंगाल की ओर साम्राज्य की प्राकृतिक सीमाओं के प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ, जो वास्तव में पूर्ण स्वाभाविक था। हुमायूं के शासन-काल में बिहार और बंगाल पर मुगलों का नाम-मात्र का अधिकार था, परन्तु उसके उपरान्त बिहार

* Smith described Akbar's second Gujrat expendition "as the quickest campaign on record."

और बंगाल अफगानों की शक्ति के केन्द्र थे। अकबर ने यद्यपि अफगानों की शक्ति का अन्त कर डाला था, किन्तु इस ओर के अफगान पूर्णतया पराजित नहीं हो पाये थे। सन् १५६८ ई० में सुलेमान करारानी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र दाऊद ने सन् १५७२ ई० में अपने आपको मुगल-सत्ता से मुक्त कर स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। अकबर उसके इस व्यवहार से असन्तुष्ट था किन्तु जब दाऊद ने जमानियाँ के दुर्ग का घेरा डाला तो अकबर उसके इस कृत्य को सहन नहीं कर सका। इस समय अकबर गुजरात में था। उसने जौनपुर के मुगल शासक मुनॅम खां को दाऊद को दण्ड देने का आदेश दिया। किन्तु उसको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके पश्चात् टोडरमल द्वारा बिहार पर मुगलों का अधिकार हो गया और १५७६–८० के बीच बंगाल पर भी उनका अधिकार स्थापित हुआ।

(१२) पुनः मेवाड़—उक्त विजयों के उपरान्त अकबर का ध्यान समस्त मेवाड़ की विजय की ओर आकर्षित हुआ। उक्त पंक्तियों में यह बतलाया जा चुका है कि अकबर का अधिकार मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर स्थापित हो चुका था। अकबर के मेवाड़-विजय के प्रयत्न के पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राणा उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका योग्य तथा देश-भक्त पुत्र राणा प्रताप मेवाड़ का राणा हुआ। ३ मार्च १५७२ ई० को राणा प्रताप का राज्याभिषेक हुआ। उसने मुगल सत्ता का मेवाड़-भूमि से अन्त करने का निश्चय किया। "अपने सीमित साधनों से घबराये बिना तथा अपने आदमियों के असन्तोष की—यहां तक कि अपने सगे भाई शक्तिसिंह की परवाह किये बिना उसने उस आदमी का सामना करने का निश्चय किया जो धरती के पर्दे पर सर्वाधिक सम्पन्न और समृद्धिशाली शासक गिना जाता था।"*

राणा प्रताप

"उन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये जो अतुल्य आदर्श रखा वह वास्तव में उन्हें श्लाघनीय पद प्रदान करता है। उनमें स्वाभिमान, देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी और इसी उद्देश्य के लिये उन्होंने मुगलपति अकबर से आजीवन युद्ध किया तथा अनेक कठिनाइयों का सामना किया तथापि उन्होंने मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता को बेचना स्वीकार नहीं किया।" राणा प्रताप ने राजपूतों की सेना संगठित की और अधिकांश प्रदेश पर उनका अधिकार स्थापित हो गया। डाक्टर विन्सेंट स्मिथ (Dr V. Smith) का कथन

*"Undaunted by his slender resources, defection in his rank, and the hostility of his own brother Shakti Singh, he resolved to fight the aggression of one was immeasurably the richest monarch on the face of the earth."
—Dr. A. L. Srivastava,

है कि "प्रताप का देश-प्रेम ही अकबर की दृष्टि में अपराध था।"* अतः उसने समस्त मेवाड़ को अपने अधिकार में तथा प्रताप की स्वतन्त्रता का सदा के लिये अन्त करने का दृढ़ संकल्प किया।

हल्दी घाटी के युद्ध का तत्कालीन कारण—राणा प्रताप को अपने अधीन करने के लिये अकबर ने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु अकबर के समस्त प्रस्तावों की ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसी समय एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना घटी जिसने अकबर के दृढ़ निश्चय को और भी दृढ़ किया। जब १५७६ ई० में राजा मानसिंह गुजरात से वापिस आ रहे थे तो वे राणा प्रताप से मिले। राणा ने मानसिंह का बड़ा आदर-सत्कार किया, किन्तु उनके साथ भोजन नहीं किया। मानसिंह ने आग्रह किया तो उन्होंने कहला भेजा कि उनके सर में दर्द है और अमरसिंह को मानसिंह के साथ भोजन करने का आदेश दिया। मानसिंह ने इसको अपना अपमान समझा और बिना भोजन किये ही उठ गये और क्रोध में कहा "मैं शीघ्र ही सिर दर्द की दवा लेकर आऊँगा।" इधर किसी ने कह दिया कि "अपने फूफा अकबर को भी अपने साथ लेते आना।" जब यह समाचार मानसिंह ने अकबर को सुनाया तो अकबर को बड़ा क्रोध आया और उसने शीघ्र ही राणा प्रताप पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

हल्दी घाटी का युद्ध—राजा मानसिंह तथा आसफ खां की अध्यक्षता में मुगल-सेना मेवाड़-विजय के लिये चल पड़ी। इधर राणा ने भी युद्ध की तैयारी की। मुगल-सेना हल्दी घाटी के मैदान में एकत्रित हुई। राणा भी अपने वीर राजपूतों को लेकर हल्दी घाटी के मैदान में पहुँच गये। राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुगल सेना का सामना किया। इसी समय राजपूतों की सेना में यह समाचार फैल गया कि स्वयं अकबर भी सेना लेकर आ रहा है। इस समाचार से राजपूतों का उत्साह कम हो गया। राजपूतों की पराजय हुई। अपने अमीरों तथा सरदारों का मत स्वीकार कर राणा को मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

इस विजय के परिणामस्वरूप भी समस्त मेवाड़ पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित नहीं हो पाया। "यह विचार गलत है कि अकबर ने अपने महान् प्रतिद्वन्द्वी राणा के प्रबल पराक्रम के प्रति श्रद्धाभाव के कारण ही शेष जीवन के लिए उसके साथ छेड़-छाड़ करनी बन्द कर दी थी। बल्कि सच तो यह है न कि उसने (अकबर ने) राणा को अपने वश में करने के लिये अपने प्रयत्नों में ढिलाई नहीं की।"† अकबर को अपने प्रयत्नों में सफलता प्राप्त नहीं हुई। राणा प्रताप ने पुनः अपनी शक्ति को संगठित किया और एक के बाद एक दुर्ग पर अधिकार करना आरम्भ किया। राणा प्रताप की मृत्यु के समय (१६ जनवरी १५९७) अधिकांश मेवाड़ पर केवल कुछ दुर्गों के अतिरिक्त उनका अधिकार था। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र अमरसिंह मेवाड़ का राणा हुआ।

* "Rana Pratap's patriotism was his offence." —Dr. Smith.

† "It is erroneously supposed that Akbar, moved by sentiments of chivalrous regard for his great adversary, left him unmolested for the rest of his life. The truth, however, is that Akbar did not relax his attempt to reduce the Rana." —Dr. A. L. Srivastava.

उसने भी अपने वंश की परम्परा को निभाया और अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की यद्यपि अकबर ने कई बार अपनी सेनायें अमरसिंह की शक्ति का दमन करने के लिये भेजीं।

(१३) काबुल पर अधिकार—भारतीय इतिहास में काबुल का महत्व बहुत अधिक है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि भारत पर उसी शासक का साम्राज्य स्थायी रूप ग्रहण कर सकता है जिसके अधिकार में काबुल का प्रदेश हो। इसका प्रमुख कारण यह है कि वहां से सैनिकों की भर्ती सरलतापूर्वक की जा सकती है। वह एक बहुत अच्छा रंगरूटों का भर्ती का केन्द्र (Recruiting centre) है। इसके अतिरिक्त काबुल का शासक भारत-साम्राज्य की ओर सदा ललचाई हुई दृष्टि से देखता है। अकबर ने भी काबुल-प्रदेश की महत्ता को समझा। हुमायुं को इस दिशा में पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अकबर के शासन-काल में उसका सौतेला भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम काबुल पर शासन कर रहा था। उसने कुछ समय उपरान्त स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया। वह नाम-मात्र के लिये ही अकबर की सत्ता को स्वीकार करता था। अकबर के असन्तुष्ट सरदारों के प्रभाव में आकर उसके हृदय में दिल्ली पर अधिकार करने की इच्छा बलवती हुई। इसी उद्देश्य से उसने १५८० ई० में पंजाब पर आक्रमण किया। उसने शीघ्र ही उसका सामना करने के लिये प्रस्थान किया। मिर्जा हकीम अकबर की शक्ति से भयभीत होकर काबुल वापिस चला गया। अकबर ने उसका पीछा काबुल तक किया। मिर्जा हकीम ने क्षमा याचना की। अकबर ने उसको क्षमा कर दिया और उसको पुनः काबुल का शासक बना दिया। मिर्जा हकीम की मृत्यु १५८५ ई० में हुई और काबुल मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया।

(१४) काश्मीर विजय—अभी तक कोई मुसलमान सुल्तान काश्मीर को अपने अधिकार में करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सका था। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण इस प्रदेश की विजय पर्याप्त कठिन थी। अकबर इन कठिनाइयों से तनिक भी विचलित नहीं हुआ वरन् उसकी साम्राज्यवादी नीति ने उसको काश्मीर विजय के लिये प्रेरित किया। सन् १५८६ ई० में अकबर ने राजा भगवानदास तथा कासिमखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना काश्मीर पर अधिकार करने के लिये भेजी। इस समय काश्मीर पर युसुफ खां का अधिकार था। मुगल सेना को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु यूसुफ खां मुगलों का सामना नहीं कर सका और उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। कुछ समय उपरान्त उसके पुत्र याकूब खां ने विद्रोह किया, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और काश्मीर मुगल-साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया गया। राजा मानसिंह को वहां का शासक नियुक्त किया।

(१५) सिन्ध विजय—इस समय तक सिन्ध प्रान्त के अतिरिक्त समस्त उत्तरी भारतवर्ष पर अकबर का अधिकार स्थापित हो चुका था। उसका ध्यान शीघ्र ही सिन्ध की ओर आकर्षित हुआ। उत्तरी सिन्ध पर मुगलों का आधिपत्य पहले ही स्थापित हो चुका था। अकबर ने दक्षिणी सिन्ध को अपने राज्य का हिस्सा बनाने के

उद्देश्य से १५९० ई० में बैरम खां के पुत्र अब्दुल रहीम खानखाना के नेतृत्व में ए विशाल सेना भेजी। इस समय दक्षिणी सिन्ध पर मिर्जा जानी का अधिकार था। उस मुगल सेना का डटकर सामना किया, किन्तु वह पराजित हुआ। अकबर ने उसके सा सद्व्यवहार किया और उसको सिन्ध का सूबेदार बनाया तथा उसको ३,००० क मनसबदार नियुक्त किया गया।

(१६) उड़ीसा विजय—अकबर ने बंगाल तथा बिहार के अफगान शास दाऊद को परास्त कर इन दोनों प्रान्तों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था इस समय अफगान अपनी शक्ति का संगठन उड़ीसा में कर रहे थे। अकबर इसक सहन नहीं कर सका। इस समय उड़ीसा पर कतलू खां नूहानी शासन कर रहा था उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र निसार खां राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। सन् १५९० ई में बंगाल के सूबेदार राजा मानसिंह ने अकबर के आदेशानुसार उड़ीसा पर आक्रम किया। निसार खां ने तुरन्त सन्धि कर ली। अकबर ने उसको वहां का सूबेदार नियु किया। शीघ्र ही उसमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना का उदय हुआ और उस विद्रोह किया। राजा मानसिंह ने पुनः उड़ीसा पर १५९२ ई० में आक्रमण किया औ उसने विद्रोहियों का दमन किया। तत्पश्चात् उड़ीसा के प्रदेश को बंगाल प्रान्त अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया।

(१७) बिलोचिस्तान विजय—सन् १५९५ ई० में अकबर ने मीर मासूम व अध्यक्षता में बिलोचिस्तान विजय के उद्देश्य से एक सेना भेजी। इस समय इस प्रदेश प अफगानों का अधिकार था। अफगानों ने मुगल सेना का बड़े उत्साह तथा साहस सामना किया किन्तु वे परास्त हुए और इस प्रदेश पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हुआ।

(१८) कन्दहार विजय—भारत के इतिहास में कन्दहार का महत्व बहु अधिक है क्योंकि यह मध्य एशिया का मुख्य व्यापारिक केन्द्र होने के साथ-सा राजनीतिक तथा सीमा की सुरक्षा के लिये भी अपना विशेष महत्व रखता है। कन्दह पर कभी फारस के शाह का अधिकार तथा कभी काबुल के शासक का अधिकार रह था। वास्तव में दोनों शासक ही उसको अपने अधिकार में करना चाहते थे। फारस शाह ने हुमायुं को काबुल-विजय करने के समय इस शर्त पर सहायता प्रदान की थी वह काबुल-विजय के उपरान्त कंदहार शाह को वापिस कर देगा, किन्तु हुमायुं ने अ प्रण तथा वचन का उल्लंघन किया। हुमायुं की मृत्यु होने पर फारस के शाह ने पर अपना अधिकार स्थापित किया। अकबर भी कन्दहार का महत्व समझता था उसने कन्दहार विजय के लिये ही बिलोचिस्तान तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश स्थित सामरिक प्रवृत्ति की जातियों का दमन किया। इनमें रोशनिया तथा युसुफज जातियां विशेष महत्वपूर्ण थीं। बड़ी कठिनता से अकबर उनका दमन करने में स हुआ। युसुफजाई जाति का दमन करते हुये राजा बीरबल की युद्ध में मृत्यु हुई। इ साथ बड़ी कठोरता तथा निर्दयता का व्यवहार किया गया। इधर से निश्चित होने अकबर ने कन्दहार विजय की योजना का निर्माण किया। उसको आक्रमण करने

के आक्रमणों के कारण बड़ा परेशान था। फारस की सेना कन्दहार की रक्षा न कर सकी और उस पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इन विजयों के द्वारा अकबर अपनी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने तथा उसको सुदृढ़ बनाने में सफल हुआ। उसने वैज्ञानिक सीमा (Scientific frontier) प्राप्त किया जिसको प्राप्त करने के उद्देश्य में अंग्रेजों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी उनको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

दक्षिण-विजय

जैसा उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी सम्राट तथा साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसकी विजय-लालसा उत्तरी भारतवर्ष को पदाक्रान्त कर पूर्ण न हो पाई थी। वह दक्षिणी भारतवर्ष को भी अपने साम्राज्य में विलीन करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने दक्षिणी भारत पर अधिकार करने की एक योजना का निर्माण किया। इससे पूर्व इस योजना पर प्रकाश डाला जाय यह उचित होगा कि दक्षिण भारत की राजनीतिक दशा का दिग्दर्शन कराया जाय।

दक्षिणी भारत की राजनीतिक दशा—दिल्ली सल्तनत के शासक-काल में बहमनी राज्य पांच भागों में विभक्त हो गया था और इनका संघर्ष विजयनगर राज्य से बराबर चलता रहता था। अहमदनगर राज्य का बरार राज्य पर और बीजापुर राज्य का बीदर राज्य पर अधिकार स्थापित हो चुका था। इस प्रकार अब केवल तीन राज्य—अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा शेष रह गये थे। खान देश का एक नया राज्य स्थापित हो चुका था। विजयनगर तालीकोट के युद्ध में बुरी तरह परास्त हो चुका था। मुसलमानी राज्यों में पारस्परिक संघर्ष और कलह अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर गये थे। अकबर ने इस दयनीय दशा का लाभ उठाने का स्वर्ण अवसर देखा। जब वह उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में सफल हो गया तो उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति का तांडव नृत्य दक्षिणी भारत में किया।

सन् १५९१ ई० में अकबर ने दक्षिण के चारों राज्यों के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वे उसकी अधीनता स्वीकार करलें। खानदेश के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्यों की ओर से उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। इस पर सम्राट को बड़ा क्रोध आया और उसने दक्षिण-विजय का निश्चय किया।

अहमदनगर—सर्वप्रथम अकबर का क्रोध अहमदनगर राज्य पर पड़ा क्योंकि वह भौगोलिक दृष्टि से इन सब राज्यों की अपेक्षा उत्तर में पड़ता था। इस समय अहमदनगर राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। सन् १५९५ ई० में वहां के शासक बुरहान निज़ामशाह द्वितीय की मृत्यु हुई और उसके स्थान पर उसका पुत्र इब्राहीम राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ, किन्तु उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। इस पर अमीरों तथा सरदारों के मध्य गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। जब अकबर ने अहमदनगर की ऐसी शोचनीय दशा देखी तो उन्होंने शीघ्र ही अहमदनगर पर आक्रमण किया। मुगलों का एक

दल से समझौता हो गया किन्तु दूसरे दल ने मुगलों की सत्ता का सामना करने का निश्चय किया। इस दल का नेतृत्व चाँदबीबी ने किया। मुगलों ने तुरन्त ही अहमदनगर के दुर्ग का घेरा डाला। चाँदबीबी ने मुगलों का सामना बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह से किया। उसने बड़ी वीरता से युद्ध का सचालन किया और मुगलों पर इतना भयंकर आक्रमण किया कि उनको विवश होकर पीछे हटना पड़ा। चाँदबीबी की वीरता तथा साहस को देखकर मुगल दंग रह गये और उनको विजय की आशा न रही किन्तु चाँदबीबी अहमदनगर राज्य की दुर्बलताओं के साथ-साथ मुगल शक्ति से भी भली-भाँति परिचित थी। उसने मुगलों से सन्धि करने में ही अपने देश का हित समझा। दोनों में सन्धि हो गई जिसके परिणामस्वरूप बरार का प्रदेश मुगलों को दे दिया गया और अहमदनगर की स्वतन्त्रता पूर्ववत् बनी रही। कुछ सरदारों ने इस सन्धि का घोर विरोध किया जिससे चाँदबीबी के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। उसने अपने आपको राजनीति से पृथक् कर लिया। अमीरों ने एक विशाल सेना का संगठन कर बरार को मुगलों से स्वतन्त्र करने के लिये आक्रमण किया। प्रारम्भ में अहमदनगर की सेना ने आक्रमण किया। प्रारम्भ में अहमदनगर की सेना को बड़ी सफलता प्राप्त हुई, किन्तु उनके सेनापति की मृत्यु होने के कारण सेना का अनुशासन शिथिल पड़ गया और उनमें भगदड़ मच गई, किन्तु मुगलों में भी इतनी शक्ति शेष न थी कि वे अहमदनगर की सेना का पीछा करते। इसी समय अकबर स्वयं दक्षिण में आया और अहमदनगर की सेना को परास्त कर उसने उनके राज्य पर अधिकार किया। चाँदबीबी की या तो हत्या कर दी गई अथवा उसने विषपान कर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर डाला। अहमदनगर का नवयुवक शासक बन्दी बनाकर ग्वालियर भेज दिया गया।

असीरगढ़ विजय—असीरगढ़ का दुर्ग खानदेश में स्थित था। दक्षिणी भारत के मार्ग में पड़ने के कारण वह दक्षिण का फाटक कहलाता था। बिना असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार किये दक्षिणी-भारत को विजय करना असम्भव था। जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि प्रारम्भ में खानदेश के शासक रजाअली खाँ ने अकबर का प्रस्ताव स्वीकार कर उसकी अधीनता स्वीकार करली थी किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र मीरन बहादुर खाँ ने स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और अपने आपको मुगलों से स्वतन्त्र घोषित किया। उसका विश्वास था कि मुगल असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार स्थापित करने में सफल नहीं हो सकेंगे। वह दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। इस समय अकबर को पूर्ण अवकाश था और उसने अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार करने के लिये प्रयोग किया। सन् १६०० ई० में मुगलों का अधिकार खानदेश की राजधानी बुरहानपुर पर बिना किसी विशेष विरोध के हो गया। मुगलों ने असीरगढ़ के दुर्ग का तुरन्त घेरा डाल दिया, किन्तु छह महिने तक उनको सफलता के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुए। यह अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट को मान तथा प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। जब अकबर इस निर्णय पर पहुँचा कि शक्ति तथा सैन्य बल के आधार पर असीरगढ़ पर अधिकार करना असम्भव है तो उसने कूटनीति की शरण ली। उसने मीरन बहादुर को धोखे से

इसकी किलाबन्दी इतनी दृढ़ थी कि [illegible] दुर्ग पर अधिकार नहीं हो सका। उसने फिर द्वार-रक्षकों को [illegible] दे कर के अपनी ओर कर लिया जिसके कारण उन्होंने दुर्ग के द्वार खोल दिये। मुगल सेना ने दुर्ग में प्रवेश किया और उसका शीघ्र ही दुर्ग पर अधिकार हो गया। यद्यपि अकबर अपने उद्देश्य में सफल हुआ किन्तु उसने इस राज्य को अपने अधीन करने के लिए ही निकृष्ट साधनों का प्रयोग किया। उसका यह कार्य उसके चरित्र पर बड़ा भारी कलंक है। चाहे कूटनीतिक दृष्टि से अकबर के इस कार्य का अनुमोदन किया जा सकता है किन्तु नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य घृणास्पद अवश्य था। [illegible] स्मिथ ने इसकी इस नीति का अनुमोदन तथा समर्थन निम्न तर्कों पर किया—

(१) इस समय अकबर की सैनिक प्रतिष्ठा दांव पर थी।

(२) दक्षिणी सुल्तानों तथा अपने पुत्र सलीम की विद्रोहपूर्ण भावना तथा व्यवहार के कारण अकबर इस घेरे को अनिश्चित काल तक नहीं चलाना चाहता था।

(३) अकबर को यह आशा थी कि मीरन बहादुर खां के बन्दी किये जाने के [illegible] हो जायेगा, किन्तु जब ऐसा नहीं [illegible]।

इस प्रकार [illegible] खानदेश के प्रदेश आ गये। [illegible] अकबर को प्रसन्न करने के लिये [illegible] राजकुमार दानियाल के [illegible] दिया। [illegible] किये गये और राजकुमार दानियाल इस [illegible] नियुक्त किया गया। यह व्यवस्था स्थापित कर अकबर सन् १६०२ ई० में [illegible]।

अकबर का साम्राज्य विस्तार

[illegible] अकबर का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ। [illegible] सन् १५५६ ई० से आरम्भ किया। सन् १५७६ ई० तक उसके [illegible] आ गया। १५८० ई० से १५९६ ई० तक वह [illegible] करने में संलग्न रहा जिससे मुगल-साम्राज्य पर बाह्य-आक्रमण न हो सके और उसने काबुल तथा कन्धार को अपने अधीन किया। १५९८ से १६०१ ई० तक वह दक्षिण की विजयों में उलझा रहा और वहां पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस प्रकार अकबर का साम्राज्य काबुल से बंगाल तक तथा काश्मीर से [illegible] तक विस्तृत था। उसका समस्त साम्राज्य निम्न [illegible] में विभक्त था—

(१) काबुल, (२) लाहौर, (३) मुलतान, (४) दिल्ली, (५) आगरा, (६) (७) इलाहाबाद, (८) अजमेर, (९) गुजरात, (१०) मालवा, (११) बिहार, (१३) खानदेश, (१४) बरार, (१५) अहमदनगर, (१६) उड़ीसा,

(१७) काश्मीर और (१८) सिन्ध कुछ विद्वानों के अनुसार उसका समस्त साम्राज्य १५ प्रान्तों में विभक्त था।

अकबर की विजय के कारण—अकबर ने शीघ्र ही समस्त उत्तरी भारतवर्ष तथा दक्षिण के कुछ राज्यों पर मुगल-पताका फहराई। उसकी विजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(1) सैनिक योग्यता—अकबर उच्चकोटि का सैनिक तथा योग्य सेनापति था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य सैनिक तथा योग्य सेनापति के लिये वांछनीय थे। वह बड़ा साहसी तथा अदम्य उत्साही था। वह युद्ध की भीषण

परिस्थितियों से कभी विचलित नहीं होता था। वह उनका सदा धैर्यपूर्वक सामना करने को उद्यत रहता था।

अकबर की विजय के कारण
(i) सैनिक योग्यता
(ii) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ
(iii) भाग्य की प्रधानता
(iv) सैनिक शक्ति
(v) दृढ़ संकल्प
(vi) अनुशासन-प्रेमी
(vii) कर्त्तव्य परायण
(viii) मितव्ययिता
(ix) राजपूतों की सहायता प्राप्त होना
(x) हिन्दू जनता के प्रति नीति
(xi) तोपों का प्रयोग
(xii) उचित युद्ध प्रणाली

(ii) उच्च-कोटि का कूट नीतिज्ञ—अकबर उच्च-कोटि का कूटनीतिज्ञ था। अपनी कूटनीति के कारण वह असीरगढ़ जैसे अभेद्य दुर्ग पर अधिकार करने में सफल हुआ जिसको वह लगभग ६ वर्ष का घेरा डालकर भी सफल नहीं हुआ।

(iii) भाग्य की प्रधानता—अकबर भाग्य की प्रधानता में विश्वास करता था। वह उसकी प्राप्ति के लिये समस्त साधनों का उपयोग करने को तत्पर रहता था। उसका विश्वास उचित साधन में नहीं था।

(iv) सैनिक शक्ति—अकबर की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी। प्रत्येक विजय के उपरान्त उसमें वृद्धि होती गई। उसको भाग्य से योग्य सैनिकों तथा सेनापतियों का निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहा। उन्होंने मुगलों के साम्राज्य विस्तार में बड़ी लगन के साथ सहायता की।

(v) दृढ़ संकल्प—अकबर का संकल्प बड़ा दृढ़ था। वह जिस बात का निश्चय कर लेता था उसकी प्राप्ति के लिये जी जान से प्रयत्नशील रहता था।

(vi) अनुशासन-प्रेमी—अकबर को अनुशासन से बड़ा प्रेम था। उसका यद्यपि अपने सैनिकों तथा कर्मचारियों से सहृदयता का व्यवहार था किन्तु अनुशासन भंग करने वाले व्यक्तियों को वह बड़ा कठोर दण्ड देता था। इससे सेना उसके पूर्ण नियन्त्रण में रहती थी और उसके आदेशों के अनुसार कार्य करने को उद्यत रहती थी।

(vii) कर्त्तव्य परायणता—अकबर में कर्त्तव्य परायणता का गुण विशेष मात्रा में विद्यमान था। वह अपने कर्त्तव्य का पालन उचित रूप से करता था और उनके सम्बन्ध में कभी भी उदासीन नहीं रहता था। वह हर समय अनवरत प्रयत्नशील रहता था।

(viii) मितव्ययिता—अकबर मितव्ययी था वह जनता था कि धन के अभाव में शासन मे शिथिलता उत्पन्न हो जाती है और ऐसा होने पर साम्राज्य का अन्त हो जाता है। वह बहुत सोच-विचार कर धन का व्यय करता था।

(ix) राजपूतों की सहायता प्राप्त होना—अकबर जानता था कि राजपूतों की सहायता के अभाव में दृढ तथा सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना सम्भव नहीं। उसने उनके साथ सद्व्यवहार किया। उनकी कन्याओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित

किये। उसको योग्य तथा कुशल सैनिक तथा सेनापति प्राप्त हुए।

(x) हिन्दू जनता के प्रति नीति—उसने हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार किया। उनको ऊंचे-ऊंचे पदों पर आसीन किया गया। हिन्दू उसको प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

(xi) तोपों का प्रयोग—अकबर ने भारत के विभिन्न राज्यों की विजय के लिये बन्दूकों और तोपों का प्रयोग किया। भारतीय इनके प्रयोगों से अनभिज्ञ थे। इनके द्वारा उसको समस्त युद्धों में सफलता प्राप्त हुई।

(xii) उचित युद्ध-प्रणाली—अकबर ने उचित युद्ध-प्रणाली को अपनाया। उसको युद्ध-कला का पूर्ण ज्ञान था जितना किसी भी भारतीय शासक को नहीं था।

अकबर के अन्तिम दिवस और उसकी मृत्यु

यह दुर्भाग्य है कि अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट तथा इतने विस्तृत साम्राज्य के संस्थापक के अन्तिम दिन कष्टमय व्यतीत हुये। इसका कारण उसके एकमात्र प्रिय पुत्र राजकुमार सलीम का दुर्व्यवहार था जो साम्राज्य-प्राप्ति के लिये विकल हो उठा था। जब असीरगढ़ के दुर्ग का घेरा अकबर डाले हुआ था तो सलीम ने इलाहाबाद में अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित किया। अकबर आगरा आया और पिता-पुत्र में मेल हो गया किन्तु यह मेल स्थायी न रह सका। दो वर्ष के बाद उसमे फिर विद्रोह की भावना बलवती हुई और उसने ओरछा के वीरसिंह बुन्देला द्वारा अबुल फजल का बध करवाया जो दक्षिण से वापिस आ रहा था। अकबर को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसको बड़ा दुःख हुआ और वह इस दुःख में कई दिनो तक विलाप करता रहा। अबुल फजल अकबर का बड़ा प्रिय दरबारी था। इस समय उसने कहा कि "यदि सलीम सम्राट ही बनना चाहता था तो वह अबुल फजल के स्थान पर मेरी हत्या कर डालता।" सम्राट ने अपने विद्रोही पुत्र के इस अपराध को भी क्षमा किया और पुनः दोनों मे मेल हो गया। अकबर ने उसको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया किन्तु सलीम तो शीघ्र ही सम्राट बनना चाहता था। उसको इससे सन्तोष नहीं हुआ और इलाहाबाद पहुँचते ही उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सम्राट को बड़ा दुःख हुआ किन्तु वह अपने पुत्र के प्रति कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता था।

इसी समय अकबर रोगग्रस्त हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके अन्तिम दिन समीप हैं। राजकुमार सलीम अपनी भूलों पर पछताया और उसने सम्राट से क्षमा-याचना की। इसी समय राजकुमार सलीम के विरोधियो ने उसको पदच्युत कराने का एक षड्यन्त्र रचा। इस षड्यन्त्र के प्रमुख नेता राजा मानसिंह तथा अजीज कोका थे। ये सलीम के पुत्र राजकुमार खुसरो को राजसिंहासन पर आसीन करना चाहते थे। खुसरो राजा मानसिंह का भानजा था और अजीज कोका का दामाद था। सलीम के आगरे आने पर यह षड्यन्त्र विफल हो गया। इन समस्त कुचक्रों के कारण सम्राट का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरने लगा। अन्त में १७ अक्तूबर १६०५ ई० को इस महान् सम्राट की मृत्यु हुई और उसका शव आगरे के पास सिकन्दरे में स्थित मकबरे में दफना दिया गया।

इस भवन का निर्माण स्वयं अकबर ने किया था।

अकबर का व्यक्तित्व तथा चरित्र

अकबर की गणना न केवल भारत के इतिहास में वरन् विश्व के इतिहास महान् शासकों में की जाती है। हम विद्वानों की इस धारणा से सहमत हैं कि भारत शासन करने वाले मुसलमान शासकों में वह सर्वोच्च था यद्यपि वह इस्लाम धर्म अनुयायी था किन्तु मुसलमान शासकों में वह ही एक ऐसा सम्राट था जो अपनी प्रजा को समान दृष्टि से देखता था और उनके साथ उसका व्यवहार उच्च-कोटि का था। उसने अपनी नीति द्वारा भारतीय जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया और वह अपने उद्देश्य में सफल हुआ क्योंकि उसके साम्राज्य को दृढ़ करने में तथा उसको विशालता का रूप प्रदान करने मे जितना हाथ मुसलमानों का था उससे किसी भी दशा में कम हाथ हिन्दुओं का और विशेषतया राजपूतो का नही था। उसके चरित्र की मुख्य विशेषतायें निम्न हैं—

अकबर का व्यक्तित्व तथा चरित्र

(१) शारीरिक गठन
(२) शारीरिक शक्ति
(३) वेश-भूषा
(४) अकबर का स्वभाव
(५) दिनचर्या
(६) अभिरुचि
(७) मानसिक शक्ति
(८) धार्मिक उदारता
(९) महान् सेनानायक
(१०) उच्च शासन-प्रबन्धक
(११) विलासी

(१) शारीरिक गठन—अकबर का शारीरिक गठन बहुत चित्ताकर्षक था। उसकी आकृति बड़ी सुन्दर थी। उसके अंग-प्रत्यंग से राजत्व टपकता था। उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था और उसको देखते ही प्रत्येक व्यक्ति उसको सम्राट समझ लेता था। जहाँगीर के शब्दों में 'अकबर का सौंदर्य उसके चेहरे की अपेक्षा उसकी शारीरिक गठन में था। उसकी शारीरिक गठन बड़ी ही सुदृढ़ थी। उसकी आकृति में सांसारिक बातें कम तथा दैवी आभा अधिक विद्यमान थी।* फादर मांसिरेट के अनुसार "चेहरे और शारीरिक गठन से वह राजकीय गौरव के ही योग्य था। हंसते समय आकृति विकृत हो जाती थी किन्तु गम्भीर मुद्रा में उसमें सुन्दर स्वभाव तथा बड़प्पन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। क्रोध की मुद्रा में उसकी आकृति अनुपम रूप धारण करती थी।"† अकबर का ललाट ऊंचा, उसकी भुजायें लम्बी, उसका कद मझला तथा उसके नेत्र दीप्ति-मान थे। उसका रंग गेहुँआ था और उसकी भौंहें काली थीं। उसका सीना चौड़ा और नाक सीधी और उसके नथुने फैले हुये थे। उसकी नाक की बाईं ओर आधे

---

* "His beauty was of form than of face and he was powerfully built. His whole air and appearance had little of the worldly being but showed rather divine majesty."
—Memoirs of Jahangir.

† "He was in face and stature fit for the dignity of king. When he laughs he is distorted but when he is tranquil serene, he has a noble mein and dignity. In his wrath, he is majestic."
—Father Monserrate.

गे बराबर एक मस्सा था जिसने उसकी सुन्दरता को और भी चित्ताकर्षक बना था। इस मस्से के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा है कि यह भाग्यशाली होने न्ह है। वह न बहुत मोटा और न बहुत पतला था। उसकी टाँगें कुछ भीतर की झुकी हुई थीं जिससे उसको घोड़े की सवारी में बड़ी सहायता मिलती थी। वह बाँये को रगड़ कर चलता था किन्तु वह लंगड़ा नहीं था। उसका हाथ तथा उसकी भुजायें बी थीं। उसकी आवाज बुलन्द तथा प्रभावशाली थी।

(२) शारीरिक शक्ति—अकबर बड़ा शक्तिशाली तथा बलिष्ट था। वह बिना राम किये घण्टों परिश्रम कर सकता था। वह युद्ध करने में नहीं थकता था। ऐसा कहा ता है कि एक बार वह एक दिन और एक रात्रि मे अजमेर से आगरा घोड़े पर आया, दूरी लगभग २५० मील है। वह अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर मस्त हाथियों ा घोड़ों को वशीभूत कर लेता था। उसका शरीर निरोग तथा स्वस्थ था।

(३) वेशभूषा—उसको सुन्दर रेशमी वस्त्र तथा आभूषण पहनने का चाव था। ह लम्बा रेशमी अंगरखा पहनता था जिस पर सोने का काम था। वह सर पर पगड़ी रण करता था जो अमूल्य रत्नों से सुसज्जित होती थी। वह सदा अस्त्र-शस्त्र से सज्जित रहता था। उसकी कमर मे सदा तलवार लटकती रहती थी। उसके साथ दैव सशस्त्र अंग-रक्षक रहते थे।

(४) अकबर का स्वभाव—अकबर का स्वभाव बहुत अच्छा था। उसका व्यवहार अमीरों तथा सरदारों से नम्र था। वह हास्य-विनोद का प्रेमी था और उसमें ल खोलकर भाग लेता था। साधारण जनता के प्रति भी उसके विचार सराहनीय थे। उसमें अहंकार तथा दम्भ का नाम भी नहीं था। वह बड़ा दयालु और कोमल स्वभाव ा था। जब उसको क्रोध उत्पन्न होता था तो वह कठिन से कठिन दण्ड तक देने में हीं हिचकता था किन्तु इस प्रकार के अवसर बहुत कम आते थे। उसका क्रोध भी शीघ्र शान्त हो जाता था।* वह अपने सम्बन्धियों तथा शुभचिन्तकों से प्रेम करता था और उनके अपराध को क्षमा कर देता था। उसने कई बार राजकुमार सलीम और मिर्जा हकीम को क्षमा प्रदान की। उसने अपने सम्बन्धियों को उच्च पदों पर आसीन किया। *उसको बीरबल तथा अबुल फजल की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ।*

(५) दिनचर्या—अकबर का जीवन बड़ा नियमित तथा संयमी था। वह व्यर्थ में अपना समय नहीं गंवाता था। वह अपना अधिकांश समय राज-कार्य की देख-भाल में व्यतीत करता था और जो समय शेष रहता था। उस समय वह शास्त्रार्थ, साहित्य-चर्चा आदि में तल्लीन रहता था। वह दिन में एक बार भोजन करता था, उसके खाने का समय निश्चित नहीं था। जब कार्य से उसको अवकाश प्राप्त होता था उसी समय वह भोजन कर लेता था। युवावस्था मे वह मांस तथा मदिरा का विशेष प्रयोग करता था,

* "The prince rarely loses his temper, but he should fall into a passion, it is impossible to say how great his anger may be, the good thing about it is that he presently regains his calmness and that his anger is short-lived, quickly passing from him, for in truth, he is naturally humane, gentle and kind."

किन्तु बाद में उसने इसका प्रयोग बड़ा सीमित कर दिया।

(६) अभिरुचि—अकबर को आखेट का बड़ा चाव था। वह जंगली तथा भयंकर पशुओं के शिकार खेलता था और उसमें उसको बड़ा आनन्द आता था। वह पशुओं से तनिक भी भयभीत नहीं होता था। उसको मस्त हाथियों का युद्ध देखने का बड़ा चाव था। अकबर एक उच्च-कोटि का घुड़सवार था तथा निशाना लगाने वाला था। ऐसा कहा जाता है कि उसका निशाना अचूक था।

(७) मानसिक शक्ति—अकबर में मानसिक शक्ति उच्च-कोटि की थी। यद्यपि वह विशेष शिक्षित नहीं था, किन्तु उसका मानसिक विकास पर्याप्त था जिसके आधार पर वह विद्वान् कहा जा सकता है। उसको इतिहास, दर्शन-शास्त्र तथा धर्म-शास्त्र के सुनने तथा उन पर वाद-विवाद करने का बड़ा शौक था। अकबर की स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। वह सुनकर ही इतना ज्ञान प्राप्त कर लेता था जितना अन्य व्यक्ति पढ़कर भी ज्ञान प्राप्त करने में अपने आपको असमर्थ पाते थे। कुछ लोगों की यह धारणा है कि उसकी स्मरण शक्ति दैवी थी। वह गम्भीर से गम्भीर प्रश्न सरलतापूर्वक समझ लेता था। उसके सुझाव उच्च-कोटि के होते थे जो योग्य तथा अनुभवी राज्य कर्मचारियों तक को अचम्भे में डाल देते थे। इस शक्ति के आधार पर वह महान् शासक बनने में सफल हुआ। उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि "यद्यपि अकबर उच्च-कोटि का विद्यार्थी नहीं था किन्तु वह कभी-कभी कविताओं की रचना करता था। उसका इतिहास सम्बन्धी ज्ञान अपूर्व था। वह मुसलमान इतिहासकारों तथा धर्मशास्त्रियों के ग्रन्थों से भली प्रकार परिचित था। उसका सम्पर्क एशिया के सामान्य साहित्य और विशेषतया सूफी विद्वानों के लेखों से विशेष रूप में था।*

(८) धार्मिक उदारता—अकबर की सबसे उच्च विशेषता यह थी कि उसमें धार्मिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। वह इस्लाम धर्म का अनुयायी था, किन्तु वह सब धर्मों तथा उनके अनुयायियों को आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। इस प्रकार उसका बड़ा व्यापक दृष्टिकोण था। वह नियमित रूप से नमाज पढ़ता था और सदा अपना ध्यान सत्य की खोज में लगाता था। उसको धार्मिक वाद-विवादों के सुनने का बड़ा चाव था। उसने दीन-इलाही धर्म के अन्तर्गत समस्त धर्मों की उच्च तथा महान् बातों का समावेश किया है। उसने मन्दिरों का विध्वंस नहीं कराया। उसके शासन-काल में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसको कट्टरता से बड़ी घृणा थी।

(९) महान् सेनानायक—अकबर उच्च-कोटि का सेनानायक था। वह युद्ध की भीषणता, भयंकरता तथा रक्तपात से तनिक भी विचलित नहीं होता था, वास्तव

* "Although Akbar was by no means an accomplished scholar, he sometimes wrote poetry and was well read in history. He was intimately acquainted with the work of Muslim historians and theologians, as well as with a considerable amount of general Asiatic literature, especially with the writings of Sufis or poets."

—Farishta.

। उसको युद्ध से प्रेम था। अकबर को सैन्य-संगठन तथा उसके सचालन का पूर्ण ज्ञान था।

(१०) उच्च शासन-प्रबन्धक—अकबर एक उच्च-कोटि का शासक था। उसकी शासन-निपुणता तथा नीतिमत्ता अद्वितीय थी। उसने प्रचलित शासन मे बहुत कुछ सुधार किये और उनको ऐसा रूप प्रदान किया कि वह उसकी निजी विशेषता बन गई। उसने इस्लाम धर्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का परित्याग किया और उनको राष्ट्रीय रूप दिया।

(११) विलासी—अकबर में उक्त समस्त गुणों के होते हुये भी कुछ दोष विद्यमान थे। अकबर का व्यक्तित्व उतना पूर्ण एवं मर्यादित नही था जितना कि उसके मित्र तथा दरबारी अबुल फजल ने चित्रित किया। वह बड़ा विलासी था किन्तु वह निपट व्यभिचारी, व्यसनी ही नहीं था, यद्यपि शासन के प्रारम्भिक काल में उसमें विलासिता की मात्रा पर्याप्त थी। इस क्षेत्र मे वह तात्कालिक स्तर से ऊपर नहीं उठ सका। ऐसा कहा जाता है कि उसके अन्तःपुर में ५०० स्त्रियां थीं। इसमें कुछ अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

अकबर का इतिहास में स्थान

अकबर का न केवल भारतीय इतिहास में ही उच्च स्थान है वरन् विश्व के इतिहास में भी उसका स्थान उच्च है। उसकी गणना उसके गुणों तथा कार्यों के कारण विश्व के प्रमुख तथा महान् सम्राटों मे की जाती है। इतिहासकारों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। पाठकों की सुविधा के लिये निम्न पंक्तियों में कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों के विचार प्रगट किये जाते हैं—

(१) कर्नल मेलेसन के अनुसार—"अकबर का महान् विचार एक सम्राट के अन्तर्गत समस्त देश की एकता स्थापित करना था। उसका विधान एक शासक तथा एक साम्राज्य-निर्माता के लिये सर्वश्रेष्ठ था। इसके वे ही नियम थे जिनके आधार पर पाश्चात्य शासक आज भी शासन कर रहे हैं।"* अकबर की ख्याति उसके अमर कार्यों पर आधारित है। अकबर द्वारा स्थापित साम्राज्य की नींव इतनी गहरी थी कि उसका पुत्र बहुत कुछ अपने पिता के समान न होते हुए भी राज्य को विधिवत् सम्भालने में समर्थ रहा। जब हम अकबर के कार्यकलापों पर, उसके युग पर तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु प्रयुक्त किये गये साधनों पर ध्यान देते हैं तो हमें यह विश्वास हो जाता है कि अकबर उन महान् व्यक्तियों में से था जिन्हें सर्व-शक्तिमान परमात्मा राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्र को शान्ति तथा सहिष्णुता के मार्ग पर ले आने के लिये भेजता है जिस पर

* Akbar's great idea was the union of all India under one head. His code was the grandest of codes for a ruler for the founder of an empire. They were the principles by accepting which his western successors maintain it at the present day." —Malleson.

मानवता का कल्याण निहित है।"*

(२) लॉरेंस बिनियन के अनुसार—"अकबर का सबसे महान् कार्य एक शासक के रूप में विभिन्न राज्यों, जातियों तथा धर्मों का एकीकरण था। इस लक्ष्य की प्राप्ति एक निश्चित संगठन द्वारा सम्पन्न हुई। किसी भी वस्तु का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने की अकबर में अद्भुत प्रतिभा थी। विदेशी होते हुए भी उसने विजित भारत के साथ पूर्ण आत्मीयता स्थापित की और उसकी अधिकांश पद्धति प्रायः स्थायीत्व धारण कर सकी। अकबर और उसके मन्त्रियों द्वारा प्रयुक्त नियम और व्यावहारिक कार्य बहुत सीमा तक अंग्रेजी शासन-प्रणाली में अपनाये गये। सबसे बढ़कर बात यह थी कि अकबर में मानवता थी।"†

(३) प्रो० के० टी० शाह के अनुसार—"अकबर बादशाह मुगल बादशाहों में सबसे महान् और यदि शक्तिशाली मौर्य शासकों के काल से नहीं तो कदाचित् १००० वर्ष तक के भारतीय शासकों में सबसे महान् था। अकबर की महानता का कारण यह था कि वह पूर्णतया भारतीय हो गया था। उसकी प्रतिभा ने हिन्दू और मुसलमान दो जातियों को एक विशाल साम्राज्य की समान सेवा तथा समान नागरिकता के बन्धनों द्वारा एक राष्ट्र के रूप में परिणत करने के कार्य की सम्भावना का अनुभव किया और उसके उत्साह ने यह कार्य सम्पादित किया। अकबर मनुष्यों का जन्मजात स्वामी था। दूसरे युग में नियमों अथवा दूसरे आदर्शों के दृष्टि-बिन्दु से उसकी आलोचना करना अनुचित होगा। एक तीव्रतम आलोचना की न्यायोचित सीमाओं के अन्तर्गत उसके जीवन, दृष्टिकोण तथा कार्यों में बहुत कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे वह स्वभावतया हमारी प्रशंसा

---

* "Akbar's great idea was the union of all India under one head...His code was the grandest of codes for a ruler for the founder of an empire. They were the principles, by accepting which his western successors maintain it at the present day. His reputation is built upon deeds which lived after him. The foundations dug by Akbar were so deep that his son, although so unlike him, was able to maintain the Empire which the principles of his father had welded together. When we reflect what he did, the age in which he did it, the methods he introduced to accomplish it, we are bound to recognise in Akbar one of those illustrious men whom Providence sends in the time of nation's trouble, reconduct it into those paths of peace and toleration which alone can assure the happiness of the millions." —Col. Malleson.

† His great achievement as a ruler was to weld the collection of different states, different races, different religions into a whole. It was accomplished by elaborate organisation. Akbar had an extraordinary genius for details, although a foreigner, he indentified himself with the India he had conquered. And much of his system was to be permanent. The principles and practice worked out by Akbar and his ministers were largely adopted into the English system of Government. He was above all the things humane." —Lawrence Binyon.

का पात्र बन जाता है।"*

(४) एडवर्ड्स तथा गैरेट के अनुसार—"अकबर ने विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में अपनी योग्यता एवं प्रतिभा का परिचय दिया। वह एक सैनिक, एक महान् सेनापति, योग्य शासन-प्रबन्धक, उदार शासक तथा उचित निर्णायक था। वह मनुष्यों का जन्मजात नेता था और इतिहास के शक्तिशाली सम्राटों में गिने जाने की क्षमता रखता था। पचास वर्ष के शासनकाल में अकबर एक ऐसे राज्य का निर्माण करने में सफल हुआ जो अपने समय का सर्वशक्तिशाली साम्राज्य था तथा एक ऐसे वंश की स्थापना की जिसकी शक्ति तथा आधिपत्य का लोहा लगभग एक शताब्दी तक समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को स्वीकार करना पड़ा। अकबर के शासन काल ने ही मुगलों को एक सैनिक आक्रमणकारियों की स्थिति से उठाकर एक स्थायी वंश-परम्परा में परिवर्तित कर दिया।"†

(५) इ० बी० हैवल के अनुसार—"अकबर के वैयक्तिक चरित्र पर समस्त धार्मिक सुधारकों के समान निस्सार तथा तर्कहीन प्रमाणों के आधार पर अनुचित दोषारोपण किया गया है। उसके उद्देश्यों को संदेहपूर्ण समझा गया तथा उसके कार्यों का रूप विकृत कर दिया गया। अकबर न तो एक परम्परागत तपस्वी था और न साधु ही, परन्तु पृथ्वी के महान् शासकों में से बहुत कम शासक अकबर के समान अधिक न्यायोचित कार्यों को कर सके हैं तथा मानवता को समर्पित कर अपने धार्मिक जीवन के आदर्शों को निरन्तर ऊंचा रख सके हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से अकबर का उद्देश्य धार्मिक होने की अपेक्षा राजनीतिक प्रतीत होता है परन्तु सर्वोच्च धार्मिक सिद्धान्तों को राज्य की नीति का शान्ति-स्रोत बनाने के अपने प्रयत्नों द्वारा अकबर ने भारतीय इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया एवं इस्लाम की राजनीतिक नैतिकता को पहले की अपेक्षा

* "Akbar was the greatest of the Mughals and perhaps the greatest of all Indian rulers for a 1000 years, if not ever since the days of the mighty Mauryas. Akbar was so great because he was so thoroughly Indianised. His genius perceived the possibilities and his courage undertook the task of welding the two communities into a Common Nation by universal bond of common service and equal citizenship of a magnificient empire. Akbar was a born master of men and bred an autocrat in an age of despotism. It would be unjust to criticise by the cannons of another age or from the standpoint of other ideals. Within the legitimate limits of a most searching criticism, there is not very much indeed—in his life and outlook and achievement which must demand our unstinted, unqualified admiration and little that could just merit."

—Prof. K. T. Shah.

† "Akbar has proved his worth in different fields of action. He was a soldier, a great general, a wise administrator, a benevolent ruler, a sound judge of character. He was a born leader of men and can rightly claim to be one of the mightiest sovereigns known to history. During a reign of 50 years, he built up a powerful empire which could view with the strongest and established a dynasty whose hold over India was not contested by any rival for about a century. His reign witnessed the final transformation of the Mughals from mere military invaders into the permanent India dynasty." —Edwards and Garret.

पर्याप्त उन्नत-स्तर पर लाकर रख दिया।"[1]

उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अकबर में वे समस्त गुण विद्यमान थे जो उसकी गणना विश्व के महान् सम्राटों में कराने में सहायक हैं। वह अपने समकालीन अन्य देशों के शासकों से बहुत उच्च-कोटि का था चाहे किसी भी दृष्टि से उसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया जाये। इसी आधार पर डाक्टर विन्सेन्ट स्मिथ का यह कथन नितान्त सत्य है कि "वह मनुष्यों का जन्मजात शासक था जिसकी गणना इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होनी नितान्त न्यायसंगत है।"[2]

(ख) जहाँगीर

अपने पिता अकबर की मृत्यु के उपरान्त नवम्बर १६०५ ई० में राजकुमार सलीम ३६ वर्ष की अवस्था में राजसिंहासन पर बैठा। यद्यपि उसमें वे समस्त गुण विद्यमान नहीं थे जो उसके पिता में थे, किन्तु उसका प्रारम्भिक काल उसकी योग्यता का परिचय देता है। इस काल में उसने अपने पिता की नीति अपनाई और जनता के साथ उचित व्यवहार किया। उसने उन व्यक्तियों को क्षमा-प्रदान की जिन्होंने अकबर के शासन काल में उसको पदच्युत कर उसके पुत्र राजकुमार खुसरो को राज्यसिंहासन पर आसीन करने का षड्यन्त्र रचा था।[3] उसने अपनी न्यायप्रियता प्रदर्शित करने के अभिप्राय से अपने महल के बाहर एक सोने की जंजीर लटकाई और उसमें एक घण्टा लगवाया। जब किसी को कोई शिकायत होती तो वह जंजीर खींचता था और बादशाह स्वयं उसकी फरियाद सुनता था।[4] उसने बाहर अध्यादेश जारी किये जो इस प्रकार है :—

---

1 "Akbar has shared the fate of all great reformers in having his personal character unjustly assailed, his motives impugned, and his actions distorted upon evidence which hardly bears judicial examination. He was neither an ascetic, nor against of the conventional type, but few of the great rulers of earth can show a better record for details of righteousness or more honourably and consistently maintained their ideals of religious life devoted to the service of humanity. In the western sense his mission was political rather than religious but in his attempts to make the highest religious principles the motive power of state policy, he won an imperishable name in Indian history and lifted the political ethics of Islam into a plane higher than they have reached before." —E. B. Havell.

2 "He was a born king of men, with a rightful claim to rank as one of the greatest sovereigns known to history." —Smith.

3 "Salim formally ascended the throne on October 24, 1605 with title of Jahangir, which according to the rules of Abjad incidently had the same value as Allah-O-Akbar. A grand coronation was held, and the event was celebrated with the release of a large number of prisoners, issue of new coins with new names and a declaration of general amnesty to all those who had ventured to oppose his succession." —Dr. R. P. Tripathi.

4 "He followed his father in his policy towards the Hindus and was equally tolerant towards Christians. He even bestirred himself to redress the grievances of the people—Witness his various measures and a chain and bell attached to his room of the palace, so that all who could appeal to him, could ring him up without running the gauntle of the officials." —Lane Poole.

(१) उसने अनेक प्रकार के कर बन्द कर दिये, कुछ दण्ड स्थगित कर दिये तथा कुछ मादक द्रव्यों का बनाना तथा उनकी बिक्री को अवैध घोषित किया।*

(२) उसने समस्त राज्य को चोरों तथा डाकुओं से सुरक्षित कर उसकी उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।

(३) लोगों को मृत सम्बन्धी की सम्पत्ति उत्तराधिकारी के रूप में प्रदान की जाने की आज्ञा प्रदान की।

(४) उसने सुरा व अन्य मादक द्रव्यों की बिक्री को नियन्त्रित किया।

(५) लोगों के घरों पर अधिकार करना तथा अपराधी की नाक कटवाने के नियम को बन्द करवाया।

(६) किसी की सम्पत्ति पर बलात् अधिकार नहीं किया जा सकता।

(७) चिकित्सालयों का निर्माण करवाना तथा उनमें रोगियों की चिकित्सा के लिये चिकित्सकों की नियुक्ति की व्यवस्था करना।

(८) वर्ष के कुछ दिनों पर पशुवध का निषेध।

(९) रविवार के दिन को विशेष आदर की दृष्टि से देखना।

(१०) मनसबदारों तथा जागीरदारों को स्थायित्व प्रदान करना।

(११) साम्राज्य की सम्पूर्ण आइमा भूमि की उचित व्यवस्था करना। आइमा भूमि धार्मिक कार्यों के लिये दी गई थी।

(१२) किले तथा अन्य कारागारों में राज्याभिषेक के उपलक्ष में मुक्त किया जाना।

जहांगीर की विजयें

यद्यपि जहांगीर एक विशाल तथा दृढ़ साम्राज्य का स्वामी बना, किन्तु वह इतने राज्य से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह भी अपने पिता के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था और उसने भी मुगल-साम्राज्य के विस्तार में सहयोग प्रदान किया, किन्तु उसका अधिकांश काल राजकुमार खुसरो, राजकुमार खुर्रम तथा महाबत खां के विद्रोहों के दमन में व्यतीत हुआ।

(१) मेवाड़ की विजय—यद्यपि अकबर के अधिकार में चित्तौड़ का दुर्ग आ गया था, किन्तु अधिकांश मेवाड़ पर राणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह का आधिपत्य था। अकबर अपने अन्तिम दिनों में मेवाड़-विजय की ओर विशेष ध्यान न दे पाया। यद्यपि एक-आध बार इस प्रदेश पर आक्रमण अवश्य किया गया था। अमरसिंह ने भी मुगलों का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया और वह मुगलों को सदा परेशान करता रहता था। जहांगीर ने मेवाड़-विजय करने का निश्चय किया और सन् १६०६ ई० में उसने अपने पुत्र परवेज के नेतृत्व में २०,००० अश्वारोहियों की एक विशाल सेना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भेजी। दबीर नामक स्थान में राजपूतों ने अदम्य उत्साह तथा साहस से मुगल-सेना का सामना किया

* "The Emperor commanded the abolition of Tarugha and Mir Bahri, prohibited the manufacture and sale of wine, abolished the practice of cutting of noses or ears of criminals." —Dr. R. P. Tripathi.

और उनके छक्के छुड़ा दिये। इसी समय राजकुमार खुसरो के विद्रोह के कारण आक्रमण में शिथिलता आ गई और सन् १६०८ ई० में महाबत खां के नेतृत्व में मेवाड़ विजय के लिये एक विशाल सेना पुनः भेजी गई। इस सेना ने राजपूतों को परास्त किया, परन्तु वह समस्त मेवाड़ पर अधिकार करने में सफल न हो सकी। जहांगीर ने महाबत खां के स्थान पर अब्दुल्ला खाँ को भेजा। कुछ समय बाद वह वापिस बुला लिया गया और राजकुमार खुर्रम और अजीज कोका को जो राजकुमार खुर्रम का ससुर था भेजा, किन्तु इन दोनों में नहीं बनी और अजीज कोका वापिस बुला लिया गया। अब मेवाड़ विजय का समस्त भार राजकुमार खुर्रम पर आ पड़ा। राजकुमार खुर्रम ने बड़ी योग्यता का परिचय दिया। उसने राजपूतों की सेना को चारों ओर से घेर लिया जिससे राजपूत बड़े संकट में पड़ गये। इसी समय अकाल तथा महामारी का प्रकोप हुआ। विवश

जहांगीर

होकर राजपूतों को सन्धि की वार्ता चलानी पड़ी। जहांगीर ने उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। अमरसिंह का पुत्र कर्ण पांच हजार का मनसबदार नियुक्त हुआ। राणा को मुगल दरबार में उपस्थित होने तथा अपनी बेटी बहन को शाही महल में भेजने के लिये बाध्य नहीं किया गया। राणा को चित्तौड़ का दुर्ग वापिस दे दिया गया, किन्तु उसको उसकी मरम्मत आदि करवाने का अधिकार नहीं दिया गया। इस प्रकार जहांगीर उस कार्य को करने में सफल हुआ जिस कार्य को अकबर नहीं कर सका था। इस विजय के परिणामस्वरूप मुगलों का गौरव तथा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। अब राजपूतों में कोई भी ऐसा नहीं रहा जो मुगल शक्ति का सामना करने की सामर्थ्य रखता था।

जहांगीर की विजयें

(१) मेवाड़-विजय

(२) अहमदनगर-विजय

(३) कांगड़ा-विजय

(२) अहमदनगर की विजय—उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर के अधिकार में समस्त खानदेश व अहमदनगर का कुछ भाग आ गया था। जहांगीर ने अहमदनगर के शेष भाग को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने के लिये एक योजना का निर्माण किया। उसने दक्षिण के सम्बन्ध में अकबर की नीति को अपनाया और उसके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिये संलग्न हो गया। इस समय अहमदनगर का शासन-भार मलिक अम्बर के हाथ में था जिसने अकथनीय परिश्रम द्वारा अहमदनगर की शक्ति को संगठित किया और उन प्रदेशों को अपने अधिकार में किया जिन पर मुगलों का

आधिपत्य स्थापित हो चुका था। उसकी शक्ति का दमन करने के लिये तथा उससे मुगल प्रदेश वापिस करवाने के हेतु जहांगीर ने सन् १६०८ ई० में बैरम खां के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी, किन्तु इस सेना को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। मलिक अम्बर ने मुगलों का बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया जिसके कारण मुगल पीछे हटने के लिये बाध्य हुये। जहांगीर इस पराजय से हतोत्साही नहीं हुआ। उसने शीघ्र ही अपने पुत्र परवेज को दक्षिण जाकर मुगल-सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का आदेश दिया। सन् १६१० ई० में उसने अदम्य उत्साह से मलिक अम्बर की सेना को परास्त करने का प्रयत्न किया किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके बाद सन् १६१६ ई० में जहांगीर ने राजकुमार खुर्रम को सैन्य-संचालन के लिये सेनापति बनाकर दक्षिण भेजा। राजकुमार खुर्रम ने अपनी योग्यता तथा कूटनीतिज्ञता का उज्ज्वल प्रमाण दिया। उसने बीजापुर के सुल्तान से सन्धि की जिसके कारण वह मलिक अम्बर से अलग हो गया। यह समाचार सुनकर मलिक अम्बर हतोत्साही हो गया और उसने यह अनुभव किया कि वह अकेला अहमदनगर की सेना के द्वारा मुगलों की दृढ़ तथा सुसज्जित सेना का सामना करने में असमर्थ होगा। अतः उसने परिस्थिति से विवश होकर मुगलों के साथ सन्धि की जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश अहमदनगर मुगलों के अधिकार में आ गया। इस विजय द्वारा राजकुमार खुर्रम की मान और प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई। जहांगीर ने उसका विशेष सम्मान किया और उसको शाहजहां की उपाधि से सुशोभित किया।

मुगल अधिक काल तक इस विजय का सुख नहीं भोग सके। शीघ्र ही सन् १६२० ई० में मलिक अम्बर ने संधि की शर्तों का उल्लंघन किया और खोये हुए प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। इस समाचार के प्राप्त होते ही जहांगीर ने राजकुमार खुर्रम को दक्षिण भेजा। मलिक अम्बर पुनः सन्धि करने के लिये बाध्य हुआ। इस प्रकार इस बार मुगलों को और भी अधिक प्रदेश प्राप्त हुये। मलिक अम्बर की मृत्यु के उपरांत (१६२६) अहमदनगर का पतन होना आरम्भ हो गया।

(३) कांगड़ा-विजय—कांगड़ा-विजय जहांगीर के शासन-काल की एक महत्वपूर्ण घटना है। कांगड़ा का प्रसिद्ध दुर्ग पंजाब प्रान्त में एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित है। इस प्रदेश पर राजपूतों का अधिकार था। अकबर ने भी इस पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था। किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। जहांगीर ने इस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिये लाहौर के गवर्नर मुर्तजा खां को आदेश दिया। उसने एक विशाल सेना द्वारा इस प्रदेश पर आक्रमण किया किन्तु राजपूतों ने अपने उत्साह तथा अदम्य साहस से मुगलों को परास्त कर दिया। मुर्तजा खां की मृत्यु होने पर जहांगीर ने राजकुमार खुर्रम को कांगड़ा-विजय के लिये जाने का आदेश दिया। उसने बड़ी दृढ़ता तथा तत्परता से दुर्ग का घेरा डाला और दुर्ग में रसद जाने के समस्त मार्गों पर अधिकार कर लिया। राजपूतों ने फिर भी लगभग एक वर्ष तक मुगलों का सामना किया, किन्तु ऐसा कितने समय तक करना सम्भव था। अन्त में निराश होकर उन्होंने मुगलों की

कन्धार का मुगलों के हाथ से निकलना

कन्धार के व्यापारिक तथा सामाजिक महत्व को समझकर ही अकबर ने प्रदेश को अपने अधिकार में किया था। उसके जीवन-काल में इस पर मुगलों आधिपत्य बना रहा, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त सन् १६०६ ई० में फारस के ने कन्धार पर अधिकार करने का असफल प्रयत्न किया। इसके बाद कुछ समय उसने जहाँगीर को भुलावे में डालने के लिये मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया और कई अपने राजदूत मुगल दरबार में बहुमूल्य भेंटों के साथ भेजे किन्तु वह सदा कन्धार अपना अधिकार रखना चाहता है। जब उसको मुगल साम्राज्य की आन्तरिक कमजो समाचार ज्ञात हुआ तो उसने १६२१ ई० में कन्धार-विजय के लिये एक विशाल भेजी। मुगल सेना इस आक्रमण के लिये तैयार नहीं थी और शीघ्र ही कन्धार पर का अधिकार स्थापित हो गया। जब जहाँगीर को यह समाचार प्राप्त हुआ उस समय काश्मीर में था। उसने राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) को कन्धार विजय करने का आ दिया। उसने जहाँगीर की आज्ञा का उल्लंघन किया और राज्य के विरुद्ध विद्रोह किय जहाँगीर इधर उलझ गया और कन्धार-विजय के लिये कोई सेना न भेज सका। प्रकार मुगलों का कन्धार पर से अधिकार समाप्त हो गया। फारस के शाह अब्बा एक पत्र द्वारा जहाँगीर को सूचित किया कि कन्दहार पर उसका अधिकार कर न्यायसंगत है। राजकुमार परवेज कन्दहार विजय के लिये भेजा गया, किन्तु उस सफलता प्राप्त नहीं हुई और वह निराश होकर वापिस लौट गया।

जहाँगीर की मृत्यु

जहाँगीर के अन्तिम दिनों में उसका स्वास्थ्य बहुत खराब रहने लगा और शास का समस्त कार्य उसकी प्रिय तथा सुन्दर बेगम नूरजहाँ के हाथ में आ गया जिसके कारण शाहजहाँ और महाबत खाँ ने विद्रोह किये। इनका प्रभाव भी जहाँगीर के स्वास्थ्य प बुरा पड़ा। सन् १६२७ ई० में जब जहाँगीर काश्मीर से लाहौर को ओर आ रहा था तो उसका देहान्त हो गया। इस समय राजकुमार खुर्रम दक्षिण में था। अपने पिता की मृत्यु का समाचार ज्ञात होते ही वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। इस बीच राजकुमार खुर्रम के ससुर आसफ खां ने खुर्रम के लिये राज्यसिंहासन सुरक्षित रखने के लिये राजकुमार खुसरो को अल्पवयस्क पुत्र दावरबख्श को राज्य सिंहासन पर आसीन किया। राजकुमार शहरयार ने लाहौर में अपने आपको बादशाह घोषित किया। आसफ खाँ ने लाहौर पर आक्रमण कर उसको परास्त कर दिया और उसकी आँखें निकलवा दीं। इसी बीच राजकुमार खुर्रम आगरे पहुंच गया और उसने दावरबख्श का वध कर आगरे के सिंहासन पर अधिकार किया। उसका राज्याभिषेक ६ फरवरी १६२८ ई० को सम्पन्न हुआ।

जहाँगीर का चरित्र

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि जहाँगीर विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। उसमें अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के तत्व विद्यमान थे। कभी वह अत्यन्त क्रूर और

आकर वह बड़े से बड़े क्रूर कृत्य करने में भी नहीं हिचकता था। जहाँगीर अपने मित्रों व सम्बन्धियों में प्रेम-भाव रखता था। जहाँगीर ने अपने मित्रों को उच्च पदों पर आसीन किया। यद्यपि उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया किन्तु जब उसको अपनी मूर्खता का आभास हुआ तो उसको बड़ा पश्चाताप हुआ। "राज्य-सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् उसने अपने दोष का संशोधन किया। वह अपने पिता की पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता रहा और विचार एवं वर्णन में उसके प्रति अति आदर का भाव प्रकट करता था। सिकन्दरे में निर्मित अकबर के स्मारक की वह पैदल यात्रा करता और समाधि-रज को शिरोधार्य करके अपने को प्रतिष्ठित करता।* वह अपनी पत्नियों से प्रेम करता था और उनको आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। नूरजहाँ का तो उसके ऊपर बहुत ही अधिक प्रभाव था। उसकी सलाह के बिना वह कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करता था।

वह उच्च कोटि का विद्वान् था। उसको फारसी तथा तुर्की भाषा का अच्छा ज्ञान था। उसको अन्य कलाओं से भी विशेष अभिरुचि थी। वह प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा उपासक था। उसको चित्र-कला तथा स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था। वह विद्वानों का उपासक था और कला विशेषज्ञों का आश्रयदाता था।

जहाँगीर के चरित्र का सबसे बड़ा दोष यह था कि वह बड़ा विलासी था और उसको मद्यपान का व्यसन था। इन दोनों के कारण वह शासन-सम्बन्धी कार्यों से उदासीन हो गया और शासन-भार अन्य व्यक्तियों के कन्धों पर आ गया जो अपने स्वार्थ-हित में रत रहे। जब तक वह इन व्यसनों का शिकार न बन पाया उस समय तक उसका शासन उच्च-कोटि का था।

वह एक योग्य सैनिक और कुशल सेनानायक था। अपने राजकुमार तथा सम्राट-काल में उसने कई महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उसका लक्ष्य अचूक था। जहाँगीर के धार्मिक विचार अपने पिता के समान थे। उसने हिन्दू तथा मुसलमान प्रजा के साथ समान व्यवहार किया।

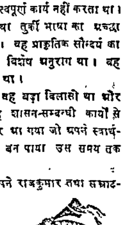
शाहजहाँ

(ग) शाहजहाँ

अपने पिता जहाँगीर की मृत्यु के उपरान्त राजकुमार खुर्रम शाहजहाँ के नाम से आगरे के राज्यसिंहासन पर ६ फरवरी सन् १६२८ ई० को बड़े ठाट-बाट से आसीन हुआ। शाहजहाँ के राज्यसिंहासन पर आसीन होने से नूरजहाँ बेगम राजनीति से बिलकुल पृथक् हो गई और लाहौर में निवास करने लगी। शाहजहाँ ने नूरजहाँ के साथ सद्-व्यवहार किया और उसकी दो लाख रुपये वार्षिक पेन्शन नियत की। सन् १६४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

* "Made amends after he was in possession of the throne. He cherished the loving memory of Akbar, and in thought and expression held him in great reverence. He would walk to his mausoleum at Sikandra and rub his forehead at its threshold."
—Dr. A. L. Srivastava.

शाहजहाँ की उत्तरी-पश्चिमी भारत की विजयें

शाहजहां भी अपने पिता तथा दादा के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था। शासन के प्रारम्भिक काल में उसको कुछ छोटी विजयें करना आवश्यक हुआ क्योंकि जहांगीर के अन्तिम दिनों में शासन में शिथिलता के चिन्ह दृष्टिगोचर हो गये थे। पारस्परिक गृह-कलह के कारण कुछ व्यक्तियों में विद्रोह की भावना जागृत होने लगी था। इन सबका दमन कर शाहजहां का ध्यान बड़ी विजयें करने की ओर आकर्षित हुआ।

कन्दहार विजय के प्रयास

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि जहांगीर के अन्तिम समय में कन्दहार पर फारस के शाह का अधिकार स्थापित हो गया था। शाहजहां के मन में कन्दहार-विजय की लालसा थी, किन्तु अपने शासन के प्रारम्भिक काल में वह विद्रोह का दमन करने तथा दक्षिण की गुत्थी सुलझाने में विशेष व्यस्त रहा। जब उसको उधर से अवकाश प्राप्त हुआ तो उसने अपना ध्यान कन्दहार-विजय की ओर आकर्षित किया। उसने काबुल के सूबेदार सईद खां को कन्दहार की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने की आज्ञा दी। इस समय कन्दहार पर अली मर्दान खां फारस के शाह के प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। जब उसको मुगलों के आक्रमण का आभास प्राप्त हुआ तो उसने शाह से सैनिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। किसी कारण-वश शाह को उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने कन्दहार के लिये एक सेना भेजी किन्तु उसको यह आदेश दिया गया कि वह अली मर्दाना खां को बन्दी कर फारस भेज दे। अली मर्दाना खां को शाह के इस व्यवहार से बड़ा दुःख हुआ और उसने काबुल के सूबेदार सईद खां को सूचित किया कि वह कन्दहार का दुर्ग मुगलों को देने के लिये उद्यत है। शाहजहां को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने शीघ्र ही सन् १६३८ ई० में कन्दहार पर आक्रमण किया। आसानी से कन्दहार पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया। अली मर्दान खां मुगलों की सेना में भर्ती हो गया। शाहजहां ने प्रथम तो उसको काश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया और बाद में पंजाब का।

कन्दहार पर फारस का अधिकार—मुगलों का कन्दहार पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रह सका। फारस का शाह कन्दहार को अपने अधिकार में करने के लिये स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह इस ओर सतत् प्रयत्नशील रहा। सन् १६४८ ई० में फारस के शाह ने कन्धार पर आक्रमण किया। मुगलों ने बड़ी वीरता तथा साहस से फारस की सेनाओं का सामना किया किन्तु वे पराजित हुये। शाहजहां ने इस समय दुर्ग की रक्षा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कन्दहार मुगलों के हाथ से निकलकर फारस के शाह के हाथ में आ गया।

कन्दहार पर मुगलों का असफल आक्रमण—शाहजहां को कन्दहार हाथ से निकल जाने का बड़ा दुःख हुआ। उसने सन् १६४९ ई० में अपने पुत्र औरंगजेब और सादुल्ला खां के नेतृत्व में कन्दहार के लिये सेना भेजी। वह स्वयं काबुल पहुँच गया। मुगल-सेना ने कन्दहार के दुर्ग को घेर लिया किन्तु ईरानी सेना ने बड़ी वीरता से उसका

सामना किया। वह घेरा ३½ महीने तक पड़ा रहा और मुगल सेना को तनिक भी विजय प्राप्त नहीं हुई। शीतकाल के आगमन पर मुगल-सेना ने घेरा उठा लिया और इस प्रकार मुगलों का यह आक्रमण पूर्णतया असफल रहा। कन्दहार शाह के अधिकार में रहा।

कन्दहार पर दूसरा असफल आक्रमण—उक्त पराजय के कारण औरंगजेब की प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। शाहजहां भी चिन्तित रहा। तीन वर्ष की तैयारियां करने के उपरान्त शाहजहां ने फिर एक सेना अपने पुत्र औरंगजेब तथा सादुल्ला खां की अध्यक्षता में कन्दहार विजय के लिये भेजी। इस सेना ने १६५२ ई० में पुन कन्दहार को घेर लिया। शाहजहां स्वयं युद्ध की गति-विधि का निरीक्षण करने काबुल गया, किन्तु इस बार भी फारस की सेना ने मुगलों के दांत खट्टे कर दिये और उनको निराश होकर लौटना पड़ा। इस पराजय के कारण औरंगजेब के मान को बड़ा आघात पहुँचा और वह अपने पिता की दृष्टि में गिर गया। उसको दण्ड स्वरूप दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया।

कन्दहार पर तीसरा असफल आक्रमण—मुगलों की लगातार पराजय से शाहजहां को बड़ा दुःख हुआ। उसने पुनः आक्रमण करने की योजना बनाई। इस बार सेना की अध्यक्षता राजकुमार दारा तथा उसके पुत्र सुलेमान शिकोह के हाथ में सौंपी गई। शाहजहां को इस बार विजय की पूर्ण आशा थी किन्तु उसकी आशा धूल में मिल गई। दारा ने चार बार कन्दहार पर आक्रमण किया किन्तु फारस वालों ने चारों बार उसको पीछे हटाने के लिये बाध्य कर दिया। इस बार कन्दहार का घेरा सात महा पड़ा रहा, किन्तु फारस वाले अपनी आन पर डटे रहे और वे टस से मस भी नहीं हुए। सात महा के असफल प्रयत्नों के पश्चात् मुगल सेना हताश तथा निराश होकर वापिस चली गई।

परिणाम—इस प्रकार शाहजहां कन्दहार-विजय करने के प्रयत्न में पूर्णतया असफल रहा। मुगलों की सेना की निर्बलता का पता चल गया और उनके सैनिक महत्व को बड़ा आघात पहुँचा। इन युद्धों में १२ करोड़ रुपये के लगभग व्यय हुआ और उसके हाथ में एक इंच भूमि नहीं आई। मुगल सेना को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। शाह के मान की बड़ी वृद्धि हुई और आगामी वर्षों में उसके हृदय में भारत-आक्रमण के विचार लहरें लेते रहे जिसके कारण मुगल सदा चिन्तित रहे।

दक्षिण की विजय

शाहजहां भी अपने पिता तथा दादा के समान साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। वह भी उनके समान दक्षिणी भारत को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। अतः उसने भी उनकी नीति का अनुकरण किया। उसने उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का निश्चय किया और दक्षिण के राज्यों के साथ दृढ़ नीति को अपनाया। अपने पिता के समय में उसको दक्षिण का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो चुका था। उसके ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अहमदनगर का बहुत सा भाग मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित किया गया था। सम्राट-पद पर आसीन होते ही उसने दक्षिण के राज्यों के प्रति उग्र

नीति को अपनाया ।

(१) अहमदनगर—सर्वप्रथम उसने अहमदनगर की ओर ध्यान दिया क्योंकि वह मुगल-साम्राज्य की सीमा से बिल्कुल लगा हुआ था । इस समय अहमदनगर राज्य की दशा बड़ा शोचनीय थी । योग्य और अनुभवी मन्त्री मलिक अम्बर का देहावसान हो चुका था । अहमदनगर के सुल्तान मुर्तजा द्वितीय मलिक अम्बर के पुत्र फतेह खाँ को अपना मन्त्री नियुक्त किया, किन्तु कुछ समय उपरांत ही उस पर से उसका विश्वास हट गया और वह उसको सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगा । सुल्तान ने उसको बन्दीगृह में डाल दिया । कुछ दिनों उपरान्त वह जेल से मुक्त हो गया । उसने सुल्तान के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और उसको बन्दी कर लिया । उसने शाहजहाँ के कहने पर सुल्तान को विष दे दिया और सुल्तान के दसवर्षीय पुत्र को राज्यसिंहासन पर आसीन किया और फतेह खाँ स्वयं संरक्षक के रूप में शासन करने लगा । इस समय शाहजहाँ खानेजहाँ लोधी के विद्रोह के सम्बन्ध में दक्षिण में था । उसने अहमदनगर की इस परिस्थिति का लाभ उठाने का निश्चय किया और महाबत खाँ के नेतृत्व में एक सेना अहमदनगर पर आक्रमण करने के हेतु भेजी । बिना किसी विशेष विरोध के मुगलों का अहमदनगर पर अधिकार हो गया । फतेहखाँ ने मुगलों के साथ भी विश्वासघात किया । उसने स्वयं दौलताबाद के दुर्ग पर अधिकार किया । महाबत खाँ ने दुर्ग का घेरा डाला और फतेह खाँ को धन का लालच देकर दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया । निजाम ग्वालियर भेज दिया गया और फतेह खाँ को मुगलों ने दौलताबाद का सूबेदार नियुक्त किया । इस प्रकार मुगलों के अधिकार में समस्त अहमदनगर आ गया ।

(२) गोलकुण्डा—अहमदनगर से निश्चिन्त होने के उपरान्त शाहजहाँ का ध्यान बीजापुर और गोलकुण्डा की ओर आकर्षित हुआ । शाहजहाँ ने इन दोनों राज्यों के शासकों के पास मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिये पत्र-व्यवहार किया । गोलकुण्डा के शासक ने मुगलों की अधीनता स्वीकार करली और वार्षिक कर देना स्वीकार किया । शाहजहाँ ने उसकी इन शर्तों को मान लिया और उसको स्वतन्त्र रूप से गोलकुण्डा पर शासन करने दिया । जब औरङ्गजेब द्वितीय बार सन् १६५२ में दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने गोलकुण्डा राज्य के विरुद्ध दृढ़ नीति का अनुकरण किया । उसकी स्वतन्त्रता उसको सदा खटकती थी । उसने उसकी स्वतन्त्रता का अन्त करने का निश्चय किया । उसको शीघ्र ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अवसर मिल गया । गोलकुण्डा के सुल्तान ने जो वार्षिक कर देने का वचन दिया था वह उसने नहीं दिया था । औरंगजेब ने शाहजहाँ की आज्ञा प्राप्त कर गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया । गोलकुण्डा का सुल्तान भयभीत हो गया और उसने बहुमूल्य उपहार देकर औरङ्गजेब से सन्धि का प्रस्ताव किया, किन्तु औरङ्गजेब ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । वह तो गोलकुण्डा की स्वतन्त्रता का अपहरण करने का निश्चय कर चुका था । जब युद्ध चल रहा था तो औरङ्गजेब को शाहजहाँ का युद्ध बन्द करने का आदेश प्राप्त हुआ । औरङ्गजेब ने बाध्य होकर युद्ध बन्द करने की घोषणा की । गोलकुण्डा के सुल्तान ने मुगलों को बहुत अधिक धन भेंट-स्वरूप प्रदान किया ।

(३) बीजापुर—जब शाहजहां की ओर से अधीनता स्वीकार करने का पत्र बीजापुर के सुल्तान को प्राप्त हुआ तो उसने उस पत्र की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। शाहजहां ने इसमें अपना अपमान समझा और उसने बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सन् १६३३ ई० में मुगल सेना बीजापुर आक्रमण के लिये चल पड़ी। उसने शीघ्र ही तीन ओर से बीजापुर को घेर लिया। बीजापुर की सेना ने बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया, किन्तु दिन प्रतिदिन उसकी शक्ति का ह्रास होता गया। अन्त में विवश होकर बीजापुर का सुल्तान सन्धि करने को उद्यत हो गया। इसके अनुसार उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की और वार्षिक कर देने का वचन दिया। कुछ समय के उपरान्त बीजापुर के योग्य तथा अनुभवी सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु हो गई। जिस समय औरङ्गजेब दूसरी बार दक्षिण का सूबेदार बना उस समय बीजापुर पर अली आदिलशाह द्वितीय शासन कर रहा था जिसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी और जिसको शासन का तनिक भी ज्ञान नहीं था। औरङ्गजेब ने इस परिस्थिति का लाभ उठाने का सुवर्ण अवसर समझकर बीजापुर के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद उसने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। बीजापुर की सेना में मुगलों का सामना करने की शक्ति नहीं थी। बीदर तथा कल्याणी पर मुगलों का अधिकार सरलता से स्थापित हो गया। इसी समय शाहजहां के हस्तक्षेप करने के कारण औरङ्गजेब को युद्ध बन्द करना पड़ा। मुगलों में और बीजापुर के सुल्तान में सन्धि हुई जिसके अनुसार मुगलों को बीदर, कल्याणी तथा परेन्दा के दुर्ग प्राप्त हुए और बीजापुर के सुल्तान ने डेढ़ करोड़ रुपया युद्ध-क्षति के रूप में मुगलों को दिया। औरंगजेब ने बिना किसी कारण के बीजापुर पर आक्रमण किया। यह उसकी साम्राज्यवादी नीति का परिचय देता है। नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य निन्दनीय था।

मध्य एशिया में साम्राज्य-विस्तार का प्रयास

शाहजहां अपने पूर्वजों के समान मध्य एशिया को अपने अधिकार में करना चाहता था और विशेषतया ट्रांसओक्सीयाना के प्रदेश को जो आक्सस नदी और हिन्दुकुश पर्वत के मध्य में था। इस प्रकार वह तैमूर और बाबर के पद-चिन्हों का अनुकरण करने के लिये प्रयत्नशील हुआ जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग इस प्रदेश को हस्तगत करने के लिये किया था। अकबर और जहांगीर इस ओर विशेष कुछ भी नहीं कर सके थे। सन् १६४५ में उसने बलख और बदख्शां में राजनीतिक सन्देश भेजे किन्तु उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। सन् १६४६ ई० में बलख में गृह-युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हुई जिसका पूर्ण लाभ उठाने का उसने प्रयत्न किया। उसने इस सुवर्ण अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। शाहजहां ने सर्वप्रथम आमेर के राजा जयसिंह के नेतृत्व में मुगल सेनायें भेजीं, किन्तु इस सेना को सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसके उपरान्त राजकुमार मुराद और अलीमर्दान खां वहां भेजे गये। बलख का बादशाह भाग गया और मुगलों को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, किन्तु मुराद वहां रहना नहीं चाहता था और शीघ्र ही भारत वापिस आ गया। तब औरङ्गजेब को वहां भेजा गया जिसने विभिन्न

कठिनाइयों को सहन कर बलख में प्रवेश किया। इसी समय अब्दुल अजीज ने मुगलों की सेना को घेर लिया। मुगलों के बहुत से सैनिक मारे गये और मुगलों को बाध्य होकर उसको बहुत सा धन देना पड़ा। शाहजहाँ का मध्य एशिया का अभियान पूर्णतया असफल रहा। डा० सरकार के मतानुसार "बलख का युद्ध एक बड़ी आपत्ति के साथ समाप्त हुआ। भारतीय राजकोष से ४ करोड़ रुपया व्यय हुआ जबकि विजय के उपरान्त उसको केवल २२½ लाख रुपया प्राप्त हुआ। भूमि का कोई अंश उसको प्राप्त नहीं हुआ और न वहाँ के राजकीय परिवार में कोई परिवर्तन हो सका। ५ हजार से अधिक सैनिक युद्ध में मारे गये और बहुत सा धन बलख के बादशाह नजर मुहम्मद और उसके पुत्रों को इसलिये दिया गया कि औरंगजेब को वापिस आने का मार्ग दें। इस प्रकार इस आक्रमणकारी साम्राज्यवाद द्वारा उत्तरी पश्चिमी सीमा पर जो युद्ध हुए उन्होंने भारत को बहुत अधिक धन व्यय करने के लिये सर्वदा बाध्य किया।"*

शाहजहाँ का चरित्र

शाहजहाँ की गणना भारत के उच्च कोटि के शासकों में की जाती है। कुछ विद्वानों ने उसके चरित्र की कटु-आलोचना की है और कुछ ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि उसका चरित्र बड़ा रहस्यमय था। कुछ क्षेत्रों में वह अपने पिता या पितामह का उत्तराधिकारी था और उसने उनके ही अनुसार आचरण किया, किन्तु कुछ क्षेत्रों में उसने प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाकर अपने पुत्र औरङ्गजेब के समान आचरण किया। उसका चरित्र निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) उद्यमी तथा परिश्रमशील—शाहजहाँ बड़ा उद्यमी तथा परिश्रमशील था। उसमें अदम्य उत्साह तथा साहस था और वह घोर आपत्तियों से तनिक भी विचलित नहीं होता था।

(२) महत्वाकांक्षी—वह बड़ा महत्वाकांक्षी सम्राट था। प्रारम्भ से ही उसकी आँख दिल्ली के तख्त पर थी और वह राजकुमार की अवस्था में भी उसके ऊपर अधिकार करना चाहता था। इसी कारण उसने अपने ज्येष्ठ भाई राजकुमार खुसरो का वध किया। वह साम्राज्यवादी भावना से पूर्णतया ओत-प्रोत था। उसने दक्षिणी भारत और उत्तरी-पश्चिमी सीमा के सम्बन्ध में पूर्ण साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण किया। दक्षिण में वह पर्याप्त सफलता प्राप्त करने में सफल हुआ, किन्तु उसकी उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति असफल रही।

(३) परिवार प्रेमी—शाहजहाँ को अपने परिवार से विशेष प्रेम था। वह अपनी पत्नी मुमताजमहल बेगम को अगाध प्रेम करता था। वह अपनी पुत्री जहाँनारा

---

* "The Balkh campaign ended disastrously. The Indian treasury spent 4 crores of rupees and realised from the conquered country only 22½ lakhs. Not an inch of territory was annexed, nor dynasty changed...More than 5000 perished in war and gold and much money was given to Nazar Mohammad and his sons and grandsons as price of letting Aurangzeb retreat. Such is the terrible price that aggressive imperialism makes India pay for wars across the North-West Frontier."
—J. N. Sarkar.

भी बहुत प्रेम करता था। यद्यपि वह अपने समस्त पुत्रों को प्यार करता था, किन्तु उसकी विशेष कृपा अपने ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह पर थी। परिस्थिति के वशीभूत होकर उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और अपने भाइयों तथा भतीजों का रक्त बहाया, किन्तु वह रक्त-पिपासु नहीं था। साम्राज्य की प्राप्ति के उपरान्त उसने ऐसे जघन्य कृत्य नहीं किये वरन् अपने शत्रुओं के साथ दया और सहानुभूति का व्यवहार किया।

(४) **कला प्रेमी**—शाहजहाँ को कला से बड़ा प्रेम था। उसने उच्च कोटि की समस्त कलाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया। उसको संगीत-कला, चित्रकला, स्थापत्य कला आदि से विशेष प्रेम था। इन समस्त क्षेत्रों में उसके काल में बड़ी प्रगति हुई और इसका समस्त श्रेय उसको ही प्राप्त है।

शाहजहाँ का चरित्र
(१) बड़ा उद्यमी तथा परिश्रम-शील
(२) महत्वाकांक्षी
(३) परिवार प्रेमी
(४) कला-प्रेमी
(५) उच्च कोटि का सैनिक
(६) न्यायप्रिय शासक
(७) साहित्य-प्रेमी
(८) धार्मिक असहिष्णुता
(९) आचरण

(५) **उच्च कोटि का सैनिक**—शाहजहाँ उच्च कोटि का सैनिक तथा सेनापति था, यद्यपि इसमें अकबर और बाबर के समान सामरिक योग्यता तथा प्रतिभा का अभाव था। वह बड़ा वीर, साहसी तथा उच्च-कोटि का योद्धा था और युद्ध की भीषणता से कभी भी नहीं विचलित होता था।

(६) **न्यायप्रिय शासक**—शाहजहाँ न्यायप्रिय शासक था। उसका अपनी प्रजा के साथ सद्व्यवहार था। वह प्रजा को अपने पुत्र के समान मानता था। वह न्याय को कभी हाथ से नहीं जाने देता था।

(७) **साहित्य-प्रेमी**—शाहजहाँ साहित्य-प्रेमी था। उसने उच्च-कोटि के साहित्यकारों को अपने दरबार में आश्रय प्रदान किया। उसने फारसी, हिन्दी, संस्कृत को बड़ा प्रोत्साहन दिया।

(८) **धार्मिक असहिष्णुता**—शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी-मुसलमान था। उसने अपने पिता और पितामह के समान धार्मिक क्षेत्र में उदार नीति का प्रयोग नहीं किया। उसका अन्य धर्म के अनुयायियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था, किन्तु उसके सम्बन्ध में यह अवश्य कहना होगा कि वह अपने पुत्र औरङ्गजेब के समान धर्मान्ध नहीं था और वह राजनीति को अपने धार्मिक विचारों द्वारा प्रभावित नहीं होने देता था।

(९) **आचरण**—कुछ विद्वानों ने उसके आचरण की कटु-आलोचना की है। उनके अनुसार वह अत्यन्त कामातुर, कामांध तथा पाशविक प्रवृत्ति का था। उसका बहुत-सी स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध था। मनूसी के अनुसार वह अपनी कामातुर इच्छाओं की पूर्ति के लिये स्त्रियों की खोज में रहता था। इन अभियोगों का कोई विश्वस्त प्रमाण प्राप्त नहीं है और इनको मिथ्या कहा जा सकता है। उसका अपनी

पत्नी में इतना अगाध प्रेम था कि वह कल्पना नहीं की जा सकती कि उसका अन्य स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध हो सकता है।

(घ) औरङ्गजेब

सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ बहुत बीमार हो गया। जब राजकुमारों को इस सूचना का समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने राज्यसिंहासन पर अधिकार करने के अभिप्राय से युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। इस उत्तराधिकार के युद्ध में औरङ्गजेब सफल हुआ और उसने अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों का अन्त कर दिया। २६ मई सन् १६५९ ई० में उसका राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ।

औरङ्गजेब की विजयें

औरङ्गजेब ने भी साम्राज्य-विस्तार की उसी नीति का अनुकरण किया जो उसके पूर्वजों ने की थी। यदि कंधार और मध्य एशिया की हानि को प्रलग कर दिया जाये जो शाहजहाँ के काल में हुई थी, साम्राज्य के अन्य भाग सुरक्षित थे और उस पर मुगलों का पूर्ण प्रभुत्व था।

आसाम-विजय—१६५८ ई० में कूंच-बिहार के अहोम राजा ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण कर कामरूप की राजधानी गोहाटी को अपने अधीन किया। उस समय मुगल उत्तराधिकार के युद्ध में व्यस्त होने के कारण, उस ओर ध्यान नहीं दे सके, किन्तु जब सन् १६६० ई० में मीर जुमला बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सन् १६६१ ई० में उसने एक विशाल सेना एकत्रित कर कूंच-बिहार पर आक्रमण कर कूंच-बिहार और आसाम को अपने अधिकार में किया। उसने अहोम राजा की राजधानी गढ़गांव को भी विजय किया। मुगलों को अपार धन प्राप्त हुआ, किन्तु वर्षा तथा महामारी के कारण मुगलों को बहुत अधिक क्षति उठानी पड़ी। इधर अहोमों ने उसका लाभ उठाकर मुगल सेना पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। मीर जुमला हतोत्साही नहीं हुआ। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर उसने अहोमों को बुरी तरह परास्त किया। राजा को बाध्य होकर मुगलों से सन्धि करनी पड़ी। सर जे. एन. सरकार

औरङ्गजेब

* "There remained on further obstacle in the path of Aurangzeb. He had already assumed to the insignia of royalty. He had indeed been hastily proclaimed Emperor in the garden of Sa'iman outside Delhi, in the last days of July 1658, without asserting the prerogatives of sovereignty, the Coinage and public prayer for the King. But on the 26th of May 1959, he had formally ascended the throne in a state." —Lane Poole.

के शब्दों में "सैनिक दृष्टि से मीर जुमला का आक्रमण सफल रहा।"* राजा ने मुगलों को क्षति के रूप में बहुत-सा धन दिया और उनको कुछ जिले भी प्राप्त हुए, किन्तु विजय बड़ी कठिनाइयों के पश्चात् प्राप्त हुई। बहुत से मुगल सैनिक मारे गये। ढाका वापिस लौटते समय मीर जुमला १६६३ ई० में मर गया। वह औरंगजेब का सबसे महत्वपूर्ण सेनापति था। उसकी यह विजय भी अधिक स्थायी न रह सकी। कुछ ही समय उपरान्त अहोम राजा ने कामरूप पर अधिकार किया। मुगल सेना का उससे निरन्तर युद्ध होता रहा, किन्तु मुगलों को कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। मीर जुमला की मृत्यु के उपरान्त बंगाल का सूबेदार शायस्ता खां नियुक्त हुआ। उसने पुर्तगालियों को परास्त कर बंगाल की खाड़ी में स्थित सोनदीप पर अधिकार किया। सन् १६६६ ई० में अराकान के राजा को परास्त कर मुगलों ने चटगांव पर अधिकार किया और वहाँ एक मुगल फौजदार की नियुक्ति की गई।

औरङ्गजेब और राजपूत

औरङ्गजेब की धार्मिक नीति के कारण हिन्दुओं में विद्रोहों की अग्नि प्रज्वलित हुई और उन्होंने मुगलों की सत्ता के विरुद्ध सर उठाया। सर्वप्रथम मथुरा के समीप निवास करने वाले जाटों ने गोकुल नामक एक जमींदार के नेतृत्व में विद्रोह किया। मुगल सेना ने विद्रोह का दमन किया और विद्रोहियों को कठोर दण्ड दिये गये। किन्तु इससे जाटों का पूर्णतया दमन न हो पाया। समय-समय पर वे विद्रोह करते रहे। इसी समय बुन्देलों ने छत्रसाल के नेतृत्व में विद्रोह किया। प्रारम्भ में उसको पर्याप्त सफलता मिली और वह एक राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ। मार्च १६७२ ई० में नारनौल के सतनामियों ने विद्रोह किया जिनका दमन मुगल सेना ने बड़ी कठोरता तथा निर्दयता से किया। औरङ्गजेब इन विद्रोहों का दमन करने में सफल हुआ।

उसकी नई नीति के कारण राजपूतों में भी असन्तोष की भावना उदय होने लगी। कुछ समय उपरान्त यह भावना विद्रोह के रूप में परिणत हो गई जिसके घातक परिणाम मुगलों को भोगने पड़े। राजपूतों ने मुगल-साम्राज्य की स्थापना करने में बड़ी सहायता पहुँचाई थी। औरङ्गजेब उनके महत्व को भूल गया और उसने उस नीति का परित्याग करना प्रारम्भ कर दिया जिसका शिलान्यास अकबर महान् ने किया था और जिसका पर्याप्त अनुकरण जहाँगीर और शाहजहां के शासन-कालों में होता रहा। सन् १६६७ ई० में आमेर का राजा जयसिंह जिसको औरंगजेब अपनी नई नीति के विरोध का नेता समझता था, दक्षिण में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इसके उपरान्त उसका ध्यान मारवाड़ राज्य की ओर आकर्षित हुआ। उसको वहां के राजा जसवन्तसिंह पर विश्वास नहीं था और उसको सदा यह भय बना रहता था कि कहीं वह उसकी नई धार्मिक नीति के विरुद्ध राजपूतों के विरोधी दल का नेतृत्व न करने लगे। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक दृष्टि से भी मारवाड़ का बहुत महत्व था क्योंकि मारवाड़ अहमदनगर तथा खम्भात के बन्दरगाह तक जाने वाली सड़क पर स्थित था।

* "Judged as a military exploit Mir Jumla's invasion of Assam was a success."
—J. N. Sarkar.

औरङ्गजेब को मारवाड़ पर अधिकार करने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। सन् १६७८ ई० में उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के विद्रोह का दमन करते हुये उसकी मृत्यु जामरूद नामक स्थान पर हुई। औरङ्गजेब ने इसका लाभ उठाया और उसने मुगल सेना को मारवाड़ पर अधिकार करने का आदेश दिया। राजपूत अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहे और शीघ्र ही मारवाड़ पर मुगलों का अधिकार हो गया। उसने वहां मुगल फौजदारों को नियुक्त कर दिया। मुगलों ने जसवन्तसिंह के एक सम्बन्धी को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया, जिसने राज्यसिंहासन प्राप्त करने के उपलक्ष में ३६ लाख रुपया मुगलों को भेंट किया। वह केवल एक नाम-मात्र का शासक था। शासन की समस्त सत्ता मुगल पदाधिकारियों के हाथ में थी।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होने लगा कि सम्राट की नीति मारवाड़ में सफल हो गई। मारवाड़ का पूर्णतया दमन नहीं हो सका और राजपूत अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति का अवसर खोजने लगे। जब मृतक राजा जसवन्तसिंह की रानियाँ वापिस आ रही थीं तो लाहौर में रानियों के दो पुत्र उत्पन्न हुये जिनमें से एक का तुरन्त देहान्त हो गया और एक जीवित रहा जिसका नाम अजीतसिंह था। राजपूतों ने औरंगजेब से अजीतसिंह को जोधपुर का राजा स्वीकार करने की प्रार्थना की। उसने उनकी प्रार्थना पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसने रानियों तथा अजीतसिंह को बन्दी करने का षड्यन्त्र रचा। राजपूतों ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। इस समय दुर्गादास राठौर ने अपने अदम्य उत्साह तथा साहस के बल पर रानियों को राजकुमार सहित जोधपुर भिजवा दिया और मुगलों से युद्ध करना आरम्भ किया। उसकी राजभक्ति ने उसका नाम भारत के इतिहास में अमर कर दिया। 'उसको न मुगलों का स्वर्ण जीत सका और न उनका सैनिक बल में उसको विजय कर सका। राजपूतों में केवल वही एक व्यक्ति था जिसमें राजपूत सैनिक की निर्बलता तथा वीरता और एक मुगल राजमन्त्री की योग्यता और कूट-नीतिज्ञता का सम्मिश्रण था।'* औरंगजेब ने मारवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और राजकुमार मुअज्जम, आजम तथा अकबर के नेतृत्व में तीन सेनायें जोधपुर को तीन ओर से घेरने तथा आक्रमण करने के लिये भेजीं। औरंगजेब स्वयं युद्ध का संचालन करने के अभिप्राय से अजमेर पहुँच गया। राजपूतों ने मुगल-सेनाओं का बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया किन्तु वे पराजित हुये और जोधपुर पर मुगलों का अधिकार हो गया।

औरंगजेब अधिक समय तक इस विजय का सुख नहीं भोग सका। अजीतसिंह की माता चित्तौड़ के प्रसिद्ध सिसोदिया वंश की थी। इस आपत्तिकाल में उसने मेवाड़ के राणा राजसिंह से सहायता की प्रार्थना की। राणा तुरन्त सहायता देने के लिये उद्यत हो गया, जिसके परिणामस्वरूप दोनों ने मुगलों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण

* "Mughal gold could not seduce, Mughal arms could not daunt that constant heart. Almost all alone among the Rathores he displayed the rare *combination of the dash* and reckless valour of a Rajput soldier with the tact, diplomacy and organising power of Mughal minister of state."
—Quoted from Advanced History of India, Page 503.

किया। युद्ध बड़ा भीषण हुआ। राजपूत परास्त हुये। मेवाड़ ने बाध्य होकर मुगलो से सन्धि करली। मारवाड़ से युद्ध चलता रहा। राजकुमार अकबर को युद्ध का भार सौंप औरंगजेब राजधानी वापिस चला गया। अकबर को मारवाड़ के युद्ध मे सफलता प्राप्त नहीं हुई जिसके कारण औरंगजेब की दृष्टि में वह गिर गया और दोनों में मनमुटाव रहने लगा। राजपूतों ने इस अवसर का लाभ उठाकर अकबर को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। वे अपने इस कार्य में सफल हुये और उन्होंने अकबर को वचन दिया कि अपनी शक्ति द्वारा उसको दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन करेंगे। अतः अकबर ने अपने आपको सन् १६८१ ई० में सम्राट घोषित कर दिया। यदि इस समय अकबर ने योग्यता तथा कूटनीति से कार्य किया होता तो उसको अपने उद्देश्य मे अवश्य सफलता प्राप्त होती, किन्तु उसने ऐसा नही किया। जब औरंगजेब इस समाचार से अवगत हुआ तो उसने बड़ी ही कूटनीति से काम लिया। उसने अकबर और राजपूतों में फूट डलवाने के उद्देश्य से एक षड्यन्त्र रचा। उसने अकबर को एक पत्र में बधाई भेजी कि उसने राजपूतों को खूब मूर्ख बनाकर अपने अधिकार में किया और अब मुगलो की विजय अवश्यम्भावी है। उसने पत्र को राजपूतों के डेरों के पास डलवा दिया। पत्र को पाकर राजपूतों का अकबर पर से विश्वास उठ गया। दुर्गादास ने अकबर को शम्भा जी के पास भिजवा दिया जहां से वह फारस चला गया, जहां १७०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुछ समय तक मुगलों और मारवाड़ के राजपूतों में संघर्ष चलता रहा, किन्तु जब औरंगजेब दक्षिण के युद्धों मे बुरी तरह ग्रस्त हो गया तो वह उनके विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी पुत्र बहादुरशाह ने सन् १७०९ ई० में अजीतसिंह को मारवाड़ का राणा स्वीकार किया जिससे मुगलों और राठौरों के युद्ध का अन्त हुआ।

औरंगजेब और दक्षिण

औरंगजेब समस्त दक्षिण को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इस समय मरहठों के अतिरिक्त बीजापुर और गोलकुण्डा के स्वतन्त्र राज्य दक्षिण मे थे। उसने उत्तरी भारत की समस्याओं से निवृत्त होकर सर्वप्रथम बीजापुर, फिर गोलकुण्डा और बाद में मरहठों के राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की।

बीजापुर—औरंगजेब की हार्दिक इच्छा थी कि वह बीजापुर राज्य को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करता। दक्षिण की सूबेदारी के समय भी उसने उसको मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने का अथक प्रयत्न किया था, किन्तु शाहजहां के हस्तक्षेप करने के कारण वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा और विवश होकर उसने उससे सन्धि की। सुल्तान होने पर उसने बीजापुर के प्रति कठोर नीति का अनुकरण किया। उसने राजकुमार आजम के नेतृत्व में बीजापुर के विरुद्ध मुगल सेना भेजी। मुगलों ने शोलापुर पर अधिकार किया किन्तु जब मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो बीजापुर वालों ने मुगलों का सामना बड़ी वीरता तथा साहस से किया जिसके

कारण मुगलों को वापिस लौटना पड़ा। इसके पश्चात् औरंगजेब ने राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में एक मुगल सेना १६८४ ई० में भेजी किन्तु उसको भी कोई सफलता नहीं मिली। औरंगजेब के क्रोध का कोई पारावार नहीं रहा। उसने सन् १६८५ ई० में बड़े वेग से बीजापुर पर आक्रमण किया। बीजापुर के सुल्तान ने गोलकुण्डा के सुल्तान तथा मरहठों से सहायता प्राप्त कर अपनी शक्ति को दृढ़ किया, किन्तु वे मुगलों का सामना नहीं कर सके जिसका नेतृत्व स्वयं औरंगजेब कर रहा था। बीजापुरिये आत्मसमर्पण करने पर बाध्य हुये। बीजापुर का सुल्तान सिकन्दर बन्दी बना लिया गया। उसको एक

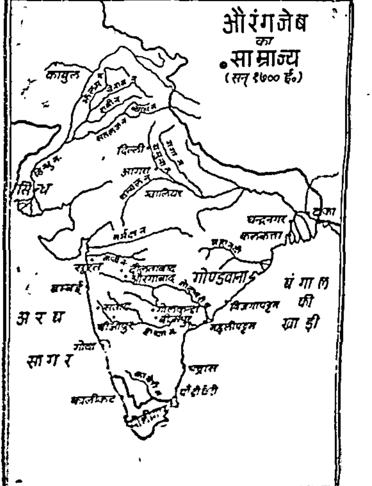

लाख रुपये की पेंशन देकर दौलताबाद के दुर्ग में बन्दी कर दिया गया और बीजापुर को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

गोलकुण्डा—बीजापुर से निश्चिन्त होने पर औरंगजेब ने गोलकुण्डा को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने की ओर अपना कदम उठाया। इस समय गोलकुण्डा पर अबुलहसन शासन कर रहा था जो बड़ा अयोग्य तथा लम्पट था। मुगल-सेना राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में गोलकुण्डा-विजय के लिये चल पड़ी। प्रारम्भ में मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई किन्तु कुछ ही समय उपरान्त सन् १६८५ ई० में उनका हैदराबाद पर अधिकार हो गया। अबुलहसन जिसमें योग्यता तथा सैनिक गुणों का सर्वथा अभाव था इस पराजय के कारण सन्धि करने पर विवश हुआ। उसने मुगलों को युद्ध-क्षति के रूप में बहुत अधिक धन देने का वचन दिया, किन्तु औरंगजेब को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह तो गोलकुण्डा राज्य का नामोनिशान ही मिटाने पर तुला हुआ था। अतः बीजापुर से निश्चिन्त होते ही सन् १६८७ ई० में वह स्वयं मुगल सेना का नेतृत्व कर गोलकुण्डा की ओर अग्रसर हुआ। मुगलों ने दुर्ग का घेरा डाला। यह घेरा आठ माह तक चलता रहा और मुगल दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सके। अब औरंगजेब ने सैनिक रण-चातुर्य की अपेक्षा कूटनीति का प्रयोग करना अधिक हितकर समझा। मुगलों ने अब्दुल्ला खां नामक पदाधिकारी को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया जिसने मुगलों के लिये दुर्ग के फाटक खोल दिए। मुगल तुरन्त दुर्ग में प्रवेश कर गये और गोलकुण्डा राज्य पर उनका अधिकार हो गया और वह मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार औरंगजेब ने दोनों शिया राज्यों को मुगल-साम्राज्य में विलीन कर मुगल-साम्राज्य का विस्तार सुदूर दक्षिण तक किया।*

औरंगजेब और मरहठे—बीजापुर के पतन के दो वर्ष उपरान्त शम्भू बन्दी बना लिया गया और उसका बड़ी नृशंसता से वध कर दिया गया। मुगलों के अधिकार में रायगढ़ आ गया। उसका भाई राजाराम भाग कर जिन्जी के दुर्ग में चला गया। शम्भू जी का समस्त परिवार बन्दी बना लिया गया। शम्भू जी के पुत्र साहू को ७,००० का मनसबदार घोषित किया गया और उसका लालन-पालन मुगल-राजकुमारों के समान मुगल-दरबार में किया जाने लगा। इसके दो वर्ष उपरान्त तंजौर और त्रिचनापली से भी कर वसूल किया गया।

---

* "Meanwhile the king had heard the shouts and groans, and knew that the hour was come He went into the haram and tried to comfort the women and then asking their pardon for his faults he bade them farewell and taking his seat in the audience chamber waited calmly for his unbidden guests. He would not suffer his dinner hour to be postponed for such a trifle as the Mughal triumph. When the officer of Aurangzeb appeared, he saluted them as being a king, received them courteously, and spoke to them in choice Persian. He then called for his horse and rode with them to Prince Azam who presented him to Aurangzeb The Great Maughal treated him with grave courtesy, as king to king, for the gallantry of his defence of Golkunda at once for many sins of his licentious past. Then he was sent a prisoner to Daulatabad, where his brother of Bijapur was already a captive and both their dynasties disappear from History. Aurangzeb appropriated some seven million sterling from the royal property of Golkuda." —Lane Poole.

इस प्रकार सन् १६६१ ई० तक औरंगजेब श्रेष्ठता की पराकाष्ठा को पहुँच गया क्योंकि उसका भारत पर अधिकार हो गया। वास्तव में यहीं से मुगल-साम्राज्य का पतन आरम्भ होता है।*

औरंगजेब के अन्तिम दिवस और उसकी मृत्यु

औरंगजेब के अन्तिम दिवस शान्त तथा सुखमय व्यतीत नहीं हुये। साम्राज्य में चारों ओर अराजकता और अव्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही थी। उसके पुत्र राज्य प्राप्त करने के लिये विद्रोह कर रहे थे। उसने उनको समझाया और उनको साम्राज्य-विभाजन का आदेश दिया। किन्तु किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसको मुगल-साम्राज्य डगमगाता हुआ दिखाई दे रहा था। शासन-व्यवस्था शिथिल हो रही थी। अपने पतन को तथा अन्तिम दिवसों के आगमन का अनुभव करते हुये उसने अपने पुत्र आजम को लिखा कि "मैं अकेला आया और अकेला जा रहा हूँ। मैंने देश के लिये कोई हित नहीं किया और न जनता के लिये ही और भविष्य में भी इसकी कोई आशा नहीं है।"† उसने अपने दूसरे पुत्र को लिखा कि "मैं अपने पापों का बोझ उठाये हुये हूँ और मुझे अपने दुष्कर्मों पर खेद है। जो कुछ भी मेरा होना है, होगा। मैं दूसरी दुनिया को जा रहा हूं।"‡ इस प्रकार उसका हृदय तथा शरीर बहुत दुःखी था। इसी शोचनीय अवस्था में ३ मार्च १७०७ ई० को उसका देहान्त हो गया।

औरंगजेब का चरित्र

औरंगजेब के चरित्र और उसकी नीति की कुछ विद्वानों ने बहुत अधिक कटु-आलोचना की है जितनी वास्तव में नहीं करनी चाहिये थी। वही एक मुगल राजकुमार न था जिसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और जिसने अपने सम्बन्धियों का वध कर राजसिंहासन प्राप्त किया। इससे पूर्व राजकुमार सलीम, राजकुमार खुसरो, राजकुमार खुर्रम ने भी ऐसा ही किया था। उसने तो वंश परम्परा को निभाया। उसको उत्तराधिकार के युद्ध के लिये भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तो अवश्यम्भावी

* "All seemed to have been gained by Aurangzeb now; but in reality all was lost. It was the beginning of his end. The saddest ane most hopeless chapter of his life now opened. The Mughal Empire had become too large to be used by one man or from one centre......His enemies rose on all sides, he could defeat but could ont crush them for ever.........Lawlessness reigned in many places of Northern and Central India. The old Emperor in the far-off Deccan lost all control over his officers in Hindustan and the administration grew slack and corrupt, chiefs and zamindars defied the local authorities and asserted themselves, filling the country with tumult.........The endless wars in the Deccan exhausted his treasury, the Government turned bankrupt, the soldiers, starving from arrears of pay, mutinied.........Napoleon I used to say, "It was the Spanish ulcer which ruined me." The Deccan ulcer ruined *Auranezeb* also."

—J. N. Sarkar—Studies in Mughal India—pp. 50—51.

† "Aurangzeb wrote to his son Azam, "I came alone and am going alone. I have not done well to the country and the people, and of the future there is no hope."

‡ To another son he wrote, "I carry away the burden of my sins and am concerned on account of my misdeeds. Come what may, I am launching my boat."

था क्योंकि कोई भी राजकुमार सिंहासन को छोड़ना नहीं चाहता था बरन् उस पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। दारा ने राजसिंहासन पर अधिकार सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया और तीनों अन्य राजकुमारों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। औरंगजेब अपने चातुर्य तथा कूटनीति में सफल हुआ, जबकि अन्य राजकुमारों की योजनायें पूर्णतः असफल रहीं। उसका शाहजहां के साथ किया गया व्यवहार निन्दनीय अवश्य था। किन्तु कम से कम उसके सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि उसने अपने पिता का वध नहीं किया जिसके उदाहरण भारतीय तथा अन्य देशों के इतिहास में मिलते हैं। औरंगजेब के चरित्र में कुछ विशेष गुण तथा दुर्बलतायें विद्यमान थीं। अपने गुणों के कारण ही वह मुगल-साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ और उसकी गणना महान् शासकों में की जाती है। उसमें कुछ दुर्बलतायें भी थीं जो मुगल-साम्राज्य को पतन की ओर ले गई और अयोग्य शासकों के हाथ में शासन-सत्ता के आने से वह दिन-प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर होता गया।

औरंगजेब के गुण—औरंगजेब के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं—

(१) वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति—औरंगजेब अपने समय का एक वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति था। उसमें सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने पिता के शासन-काल में ही उसने अपनी इस प्रतिभा का पूर्ण परिचय दक्षिण के युद्धों में दिया तथा उत्तराधिकार के युद्धों में उसकी सफलता का प्रमुख कारण यही था। उसमें अदम्य उत्साह, अटल धैर्य तथा अनुपम साहस था। वह भय से नहीं डरता था। भयंकर तथा भीषण युद्धों में भी वह कभी विचलित नहीं हुआ।*

(२) आदर्शवादी सम्राट—वह एक आदर्शवादी सम्राट था। उसका जनता के साथ सद्व्यवहार था। उसके सिद्धान्त बड़े उच्च थे। वह अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिये सब कुछ करने को उद्यत हो जाता था। प्रारम्भ में उसने अपने राजत्व सिद्धान्तों के विषय में पर्याप्त योग्यता का परिचय दिया।

(३) पवित्र तथा सादे जीवन का प्रेमी—औरंगजेब को पवित्र और सादे जीवन से बड़ा प्रेम था। उसका व्यक्तिगत चरित्र उच्चकोटि का था। उसका खानपान तथा वेष-भूषा बड़ी सादी थी। उसमें उन व्यसनों का सर्वथा अभाव था जो उस समय उच्च कोटि के लोगों में विद्यमान थे। उसके हरम में स्त्रियों की भरमार नहीं थी। वह भोग-विलास से घृणा करता था तथा चरित्र-भ्रष्ट लोगों को आदर की दृष्टि से नहीं देखता था। वह राजकोष को जनता की धरोहर मानता था और धन के व्यर्थ व्यय में उसका तनिक भी विश्वास नहीं था।

* "As a military generel he had established fame in youth and never was he more cool and self-possessed than in the heart of battle when he was surrounded by the enemies from all sides. During the Balkh campaign, he astonished friends and foes alike by his presence of mind, when [illegible] his horse on the battle-field against the advice of his fri[illegible] say the Zuhra prayers."
Ishwari Prasad.

(४) कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ शासक—वह बड़ा कर्मठ तथा कर्त्तव्य-निष्ठ शासक था। वह राजकाज बड़ी लगन से करता था और सदा उसी में व्यस्त रहता था। वह अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार समझता था और उसकी पूर्ति के लिये सदैव तैयार रहता था। शासन-सम्बन्धी कार्यों में वह पूर्ण दिलचस्पी लेता था।

औरंगजेब के गुण

(१) वीर सैनिक तथा उच्च कोटि का सेनापति
(२) आदर्शवादी सम्राट
(३) पवित्र तथा सादे जीवन का प्रेमी
(४) कर्मठ तथा कर्त्तव्य-निष्ठ शासक
(५) उच्च कोटि का विद्वान्
(६) कूटनीति का ज्ञाता
(७) न्यायप्रिय शासक
(८) व्यवहार-कुशल
(९) शारीरिक बल
(१०) धर्म-परायण
(११) दृढ़ प्रतिज्ञ

(५) उच्चकोटि का विद्वान्—वह उच्चकोटि का विद्वान् था। उसको अध्ययन से विशेष प्रेम था। अवकाश के समय वह इस्लामी धर्म-शास्त्रों की पुस्तकों का अध्ययन किया करता था। उसको फारसी का अच्छा ज्ञान था। उसका लेख बड़ा सुन्दर था। वह तुर्की तथा हिन्दी का भी ज्ञान रखता था और उसको वह अच्छी तरह बोल सकता था। वह शकिस्त तथा नसतालिक अच्छी तरह लिखने का अभ्यस्त था। उसके संरक्षण में 'फतवा-ए-आलमगीरी' नामक ग्रन्थ की रचना हुई जो इस्लामी कानून का एक उच्चकोटि का ग्रन्थ माना जाता है, किन्तु यह खेद का विषय है कि इतना उच्चकोटि का विद्वान् होते हुए भी उसने कला तथा साहित्य को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न नहीं किया।

(६) कूटनीति का ज्ञाता—औरंगजेब कूटनीति का पण्डित था। वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये समस्त प्रकार की कूटनीति का प्रयोग करता था। शत्रुओं को प्रलोभन देकर वह अपनी ओर मिला लेता था तथा शत्रुओं में फूट डाल देता था। राजपूतों में उसने इसी बल के आधार पर फूट डालकर अपने विस्तृत राज्य की रक्षा की क्योंकि वह उनकी सम्मिलित शक्ति का सामना नहीं कर सकता था।

(७) न्यायप्रिय शासक—वह उच्च-कोटि का न्यायप्रिय शासक था। उसके इस गुण की विदेशी लेखकों ने भी बड़ी प्रशंसा की है। न्याय करते समय वह किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं करता था। उसकी दृष्टि में अमीर तथा निर्धन सब समान थे। वह निर्णय न्यायपूर्ण करता था किन्तु आवेश तथा क्रोध के वशीभूत होकर वह कभी-कभी कठोर दण्ड दे डालता था।

(८) व्यवहार कुशल—औरंगजेब बड़ा व्यवहार-कुशल शासक था। इसी गुण के कारण अमीरों का एक दल उसका सदा समर्थन करता था और उसको हर सम्भव रूप से सहायता प्रदान करता था। उसको अपने व्यवहार तथा कर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण था जिसके कारण उसके विरोधियों की संख्या कम थी।

(९) **शारीरिक बल**—उच्च चरित्रवान होने के कारण औरंगजेब में शारीरिक बल अपार था। वृद्धावस्था तक भी उसकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्णतया सुचारु रूप से कार्य करती रहीं। वह कुछ कम अवश्य सुनने लगा था। जीवन के अन्तिम दिनों में भी उसने सैन्य संचालन का कार्य दक्षिण में किया।

(१०) **धर्म परायण**—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसका अपने धर्म पर अटूट विश्वास था और उसके समस्त आचरण धर्म के अनुकूल होते थे। वह पाँच समय नमाज पढ़ता था और रमजान का व्रत पूरे माह रखता था। उसने राजनीति को धर्म का अंग बना दिया जिसके कारण साम्राज्य का पतन हुआ। मुसलमान उसको जिन्दा पीर (Living Saint) आलमगीर के नाम से सम्बोधित करते थे। उसकी धर्म-परायणता में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। बलख के अभियान में जब भीषण युद्ध चल रहा था तो उसने घोड़े पर से उतर कर नमाज पढ़ी। इस समय वह खून से लथ-पथ था किन्तु उसने इसका तनिक भी ध्यान नहीं किया।

(११) **दृढ़ प्रतिज्ञ**—औरंगजेब दृढ़ प्रतिज्ञ था और अपनी प्रतिज्ञा को वह सदैव पूर्ण करने का प्रयत्न करता था। वह हर सम्भव उपाय की शरण उसकी पूर्ति के लिये ले सकता था।

औरंगजेब की दुर्बलतायें—यह नितान्त सत्य है कि औरंगजेब मे यद्यपि पर्याप्त गुण थे किन्तु वह एक सफल शासक न बन सका। इसका उत्तरदायित्व उसकी दुर्बलताओं पर है। वास्तव मे एक सफल शासक बनने के लिये कूटनीति तथा परिश्रम व अन्य गुण ही आवश्यक नहीं वरन् और भी अन्य बातों का होना भी आवश्यक है। औरंगजेब की मुख्य दुर्बलतायें निम्न थीं—

(१) **हृदय-हीनता**—औरंगजेब हृदय-हीन व्यक्ति था। उसके हृदय में उन उच्च गुणों का सर्वथा अभाव था जो लोगों को स्वतः अपनी ओर आकर्षित करने के लिये सहायक सिद्ध होते हैं। वह कठोर कर्त्तव्य को ही अपना सब कुछ समझे हुए था। उसमें दया, सहानुभूति तथा प्रेम का सर्वथा अभाव था।

औरंगजेब की दुर्बलतायें
(१) हृदय हीनता।
(२) पारिवारिक प्रेम का अभाव।
(३) सन्देहात्मक भावना।
(४) धार्मिक अन्धविश्वास।
(५) विशेष महत्वाकांक्षी।

(२) **पारिवारिक प्रेम का अभाव**—औरंगजेब को अपने परिवार से विशेष प्रेम नहीं था। वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सब कुछ करने को उद्यत हो जाता था। उसने अपने पिता को बन्दी किया। अपने भाइयों तथा भतीजों का वध किया। उसको अपनी संतान से भी विशेष प्रेम न था। उनको भी अपने अपराधों के कारण बन्दीगृह की यातनायें पर्याप्त समय तक भोगनी पड़ीं।

(३) **संदेहात्मक भावना**—औरंगजेब सबको संदेह की दृष्टि से देखता था। उसका कोई विश्वासपात्र नहीं था। इसी कारण शासन का समस्त भार उसने अपने ही

हाथों में रखा और वह इस बात में सफल रहा। उसने अपनी शक्ति का विभाजन नहीं किया। इसके बड़े दुष्परिणाम हुए।*

(४) धार्मिक असहिष्णुता—औरंगजेब अपने धार्मिक विचारों के कारण अन्य धर्मों तथा उनके अनुयायियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसने अपनी नीति के कारण हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं ने मुगलों की सत्ता का विरोध करना आरम्भ किया। राजपूत, जिन्होंने पूर्व काल में मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था, उसके विरोधी बन गए और उससे लोहा लेने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण साम्राज्य में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई जिसने मुगल-साम्राज्य का अन्त किया।†

(५) विजेता महत्त्वाकांक्षी—औरंगजेब विजेता महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसको उस राज्य से सन्तोष नहीं हुआ जो उसको उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ था। उसने अपने जीवन के अन्तिम २५ वर्ष दक्षिण के राज्यों को निर्मूल करने में व्यतीत किए जिनका उचित शासन-प्रबन्ध करना तत्कालीन साधनों के लिये असम्भव था। यदि वह उतने ही राज्य से सन्तोष करता जितना उसको उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ था और उसकी उचित शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान देता तो मुगल साम्राज्य का इतना शीघ्र पतन न होता। उसकी दक्षिण की विजय भी अधिक स्थायी न रह सकी। उसकी मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही मराठों की शक्ति का विस्तार हुआ और सम्पूर्ण दक्षिण उनकी उंगलियों पर नाचने लगा और बाद में मुगल सम्राट भी उनके हाथ की कठपुतली बन गए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) औरंगजेब की दक्षिण-विजय का हाल लिखिये। (१९५२)

(२) अकबर ने मेवाड़ राज्य पर क्यों चढ़ाई की थी? अकबर के समय में मेवाड़ और मुगलों के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। (१९५१)

(३) छत्रसाल बुन्देला के विषय में तुम क्या जानते हो? (१९६२)

(४) अकबर के शासन-काल में मुगल-साम्राज्य के क्रमिक विस्तार का वृतान्त लिखिये। (१९६४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) जहाँगीर के शासन का वर्णन करो और यह बतलाओ कि वह विरोधी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण था। (१९५५)

* "He had good reasons to know the danger of a son's rebellion, but his general habits of distrust were fatal to his popularity. Good Muslims have often extolled his virtues, but the mass of his courtiers and officers lived in dread of arousing his suspicion, and while they feared, resented his distrustful scheming. Aurangzeb was universally respected, but he was never loved." —Lane-Poole.

† "Aurengzeb's life had been a vast failure indeed, but he had failed grandly. His glory is that he could not force his soul, that he dared not desert the calories of his faith. The great puritan of India was of such stuff wins the martyer's crowd." —Lane-Poole.

मध्य प्रदेश—

(१) मुगलों ने दक्षिण में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये जो प्रयत्न किये उनको विस्तार सहित लिखो। (१९५९)

अन्य—

(१) अकबर ने किस प्रकार अपने साम्राज्य का विस्तार किया ?

(२) औरंगजेब और राजपूतों के विषय मे आप क्या जानते हैं ?

(३) शाहजहां की उत्तरी-पश्चिमी तथा कन्दहार नीति का वर्णन करो।

६ मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया सम्बन्धि नीति

उत्तरी-पश्चिमी सीमा का महत्व—भारत के इतिहास में उत्तरी-पश्चिमी सीमा का महत्व बहुत अधिक रहा है क्योंकि इधर से ही भारत में विभिन्न जातियों ने प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त भारत में आने का कोई अन्य सुगम मार्ग नहीं था। यहां पहाड़ियां अधिक ऊंची नहीं हैं और उनके बीच के दर्रों को पार कर फारस या अफगानिस्तान की जातियां सरलतापूर्वक सिन्ध और गंगा के मैदान में प्रवेश कर भारत के शांतिमय तथा सुखमय जीवन को अव्यवस्थित करती रहीं। भारत के प्रसिद्ध तथा शक्तिशाली सम्राटों का ध्यान सदा इस ओर आकर्षित होता रहा और उन्होंने इसको दृढ़ बनाने का घोर प्रयत्न किया, किन्तु जब-जब भारत की सत्ता दुर्बल तथा लम्पट व्यक्तियों के हाथ में रही वे इस ओर से उदासीन हो जाते थे और मध्य एशिया के महत्वाकांक्षी सम्राटों को अपने साम्राज्य का विस्तार करने का भारत में सुवर्ण अवसर प्राप्त हो जाता था। इस प्रदेश में निवास करने वाली जातियां स्वतन्त्रता-प्रिय थीं और उन्होंने कभी भी किसी राज्य की पूर्ण अधीनता स्वीकार नहीं की। जब विजित राजा की सेनायें इन प्रदेशों से वापिस हो जाती थीं तो ये अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर देते थे। पुस्तक के प्रथम भाग में स्पष्ट किया जा चुका है कि दिल्ली के सुल्तानों ने इसकी सुरक्षा के लिये घोर प्रयत्न किया, किन्तु उनको मंगोलों के आक्रमण सहन करने पड़े जिनके कारण दिल्ली के सुल्तान सदा बड़े चिन्तित रहते थे। मुगलों के समय में तो इसका महत्व और भी अधिक हो गया क्योंकि उनके हाथ में काबुल का समस्त प्रदेश था। इनके समय में कन्धार का महत्व बहुत बढ़ गया था क्योंकि यह एक बड़ा भारी व्यापारिक केन्द्र था और मध्य एशिया का समस्त व्यापार इसी मार्ग से होता था क्योंकि इस काल में समुद्र पर पुर्तगालियों का अधिकार स्थापित हो गया था। कन्धार पहाड़ियों तथा मरुस्थल के मध्य एक खुला हुआ और अच्छी प्रकार सींचा हुआ प्रदेश था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में १४ हजार माल से लदे हुए ऊंट भारत और फारस में आया करते थे।

प्रारम्भिक मुगलों की नीति

१६ वीं शताब्दी में कन्धार के प्रश्न पर मुगलों और फारस के शासकों में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। दोनों ही कन्धार के महत्व को समझकर उसको अपने अधिकार में करना चाहते थे। सन् १५२२ ई० में बाबर ने कन्धार को अपने अधिकार में किया। उसकी धारणा थी कि कन्धार पर अधिकार करके वह काबुल के राज्य को सुरक्षित करने में सफल हो सकता है। उसकी मृत्यु के उपरान्त उस पर उसके पुत्र कामरान का अधिकार हो गया। हुमायूं ने काबुल पर अधिकार करने के लिये फारस के शाह से मित्रता इस शर्त पर की कि यह कन्धार उसको वापिस कर देगा, किन्तु उसने काबुल विजय करने के उपरान्त कन्धार को अपने हाथ में रक्खा। इसके पश्चात् हुमायूं का दिल्ली पर अधिकार हो गया और उसकी मृत्यु के बाद अकबर शासक बना। अकबर अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों में इतना व्यस्त था कि वह कन्धार की ओर ध्यान न दे सका। उस पर हकीम मिर्जा का अधिकार था। फारस के शाह ने कन्धार पर आक्रमण करने का यह स्वर्ण अवसर समझ १५५८ ई० में उस पर आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया।

अकबर की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

अपने प्रारम्भिक जीवन मे अकबर भारत की गहन समस्याओं में इतना उलझा रहा कि उसने अपनी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ करने की ओर ध्यान नहीं दिया। इस समय काबुल पर उसके भाई मिर्जा हकीम का अधिकार था जो दिल्ली-साम्राज्य को अपने अधीन करना चाहता था। इसके अतिरिक्त काबुल पर उजबेगों का जोर पड़ रहा था जिसको हकीम सहन नहीं कर सका। उनके भारत आने तथा उसके दूसरे अभियानों का वर्णन पिछले पाठ में किया जा चुका है। सन् १५८५ ई० में हकीम की मृत्यु पर काबुल का समस्त प्रदेश अकबर के हाथ में आ गया। अब से उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ बनाने तथा स्वतन्त्र जातियों की विद्रोहात्मक भावना को कुचलने का दृढ़ निश्चय किया। वास्तव में मुगलो में अकबर ही प्रथम शासक था जिसने इस ओर विशेष ध्यान दिया और इस दिशा में एक कठोर तथा दृढ़ नीति का अवलम्बन किया।

स्वतन्त्र जातियों पर अधिकार—अकबर ने तुरन्त इन जातियों पर अपना अधिकार करने के लिये आक्रमण किया। उसने उजबेगो तथा रोशनियाइयों को बुरी तरह परास्त किया। इसके बाद यूसुफजाइयों का दमन करने के लिये राजा बीरबल और जैन खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने इन पहाड़ी प्रदेशों में प्रस्थान किया, किन्तु सेना-पतियों के पारस्परिक विरोध के कारण मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अफगानों ने उनको बुरी तरह परेशान किया और मुगलों की सेना के राजा बीरबल सहित बहुत से व्यक्ति खेत रहे। इसके उपरान्त अकबर ने राजा टोडरमल और राजकुमार मुराद के नेतृत्व में एक विशाल और सुसज्जित सेना भेजी जिसने इस जाति के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया और उनके बहुत से सैनिक बन्दी कर लिये गये। इस प्रकार कठोर नीति का अनुसरण कर अकबर इन जातियों का दमन करने में सफल हुआ।

कन्दहार पर अधिकार—अब अकबर ने कन्दहार को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया। इस समय कन्दहार पर उजबेगों के आक्रमण हो रहे थे जिसका सामना

कन्दहार का हाकिम हुसैन मुजफ्फर नहीं कर सका। उसने सन् १५९५
को अकबर के हाथ में सौंप दिया। इस प्रकार कन्दहार पर मुगलों का
हो गया। डा० सरकार और दत्त के शब्दों में, "अकबर की उत्तरी-पश्चिमी
के कारण साम्राज्य की वृद्धि हुई, महत्वपूर्ण सीमा पर उसकी स्थिति दृ
मान में बड़ी वृद्धि हुई।"* इसके उपरान्त अकबर ने काश्मीर, बिलोचि
को अपने साम्राज्य का भाग बनाया। गत पृष्ठों में इन विजयों का
चुका है।

जहाँगीर की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

फारस का शाह मुगलों का कन्दहार पर अधिकार सहन नहीं क
के शासन-काल में उसको कन्दहार पर अधिकार करने का अवसर प्रा
परन्तु वह उस पर अधिकार करने की ताक में सदा रहा। जब श
राजकुमार खुसरो ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया तो फारस के शाह
आक्रमण किया, किन्तु उसको मुगल किलेदार शाहबेग खाँ के कारण
सफलता प्राप्त नहीं हुई और फारस की सेना को निराश होकर वापिस
होना पड़ा। इधर जहाँगीर ने कन्दहार की ओर एक सेना भेज दी
के शाह अब्बास ने कूटनीति की शरण ली और उसने जहाँगीर से मि
अभिनय करना आरम्भ किया जिससे वह कन्दहार की सुरक्षा से उदा
उसने जहाँगीर को बहुत सी भेंट दी और उस पर अपना विश्वास दृ
परिणाम यह हुआ कि मुगल कन्दहार की सुरक्षा से उदासीन हो गये।
१६२२ ई० में शाह ने कन्दहार पर आक्रमण किया। इस समय जहाँ
काश्मीर में थे और उनको वहीं यह समाचार ज्ञात हुआ। उसने राज
एक विशाल सेना लेकर कन्दहार जाने का आदेश दिया, किन्तु राजकुमा
के व्यवहार से क्षुब्ध हो गया था और विद्रोह करने का विचार कर रहा
जाने में आनाकानी की क्योंकि उसको डर था कि नूरजहाँ उसको अनु
उत्तराधिकार से वंचित न कर दे। वह विद्रोही बन गया। इसके उप
शहरयार को मुगल सेना का सेनापति बनाकर कन्दहार विजय के लिये
उसका कोई परिणाम नहीं निकला। शाह अब्बास ने जहाँगीर को एक
किया कि कन्दहार पर उसका अधिकार रहना न्यायोचित है और क
उनके पारस्परिक सम्बन्धों में किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं होना च
को यह पत्र पाकर बड़ा दुख हुआ। उसने शाह पर धोखा देने का आरो
भारत की आन्तरिक स्थिति के कारण, जो शाहजहाँ के विद्रोह से उ
कन्दहार को अपने अधिकार में करने की ओर ध्यान नहीं दे सका
शाहजहाँ के विद्रोह की ओर आकर्षित हो गया और वह कन्दहार से उदा

---

* "Akbar's policy in the North-West brought territorial
empire secured its position in that important frontier and
prestige."
—Sarkar and Du

८/II/८ मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया सम्बन्ध

मुगलों की बलख तथा बुखारा की असफलता ने फारस के
प्रोत्साहित किया। शाह अब्बास द्वितीय, जो १६४२ ई० में फारस के र
आसीन हुआ था, ने अगस्त १६४८ को कन्दहार पर आक्रमण करने की
की। उसने हिरात में अपनी सेना एकत्रित की और १६ दिसम्बर को
लिया। ११ फरवरी १६४६ ई० को कन्दहार पर फारस का अधि
शाहजहां जब इस समाचार से अवगत हुआ तो उसने तुरन्त ही औरङ्गजे
खां को कन्दहार पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शाहजहां स्वयं क
किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। फारसवासियों ने अदम्य उत्सा
मुगलों का सामना किया। अन्त में बाध्य होकर मुगलों ने घेरा उठ
पश्चात् १६५२ ई० में फिर कन्दहार को मुगलों ने घेर लिया किन्तु इस
सफलता प्राप्त नहीं हुई। फिर सन् १६५३ ई० में दारा शिकोह ने क
डाला किन्तु इस बार भी मुगल असफल रहे। इस प्रकार मुगलों के
चला गया।

औरङ्गजेब की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

शाहजहां के शासन-काल में औरङ्गजेब ने इसी दिशा में बड़ा
उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई और उसके समस्त प्रयत्न असफल रहे।
उपरान्त उसने इस ओर विशेष दृढ़ नीति का अनुकरण किया। औ
एशिया-सम्बन्धी नीति शाहजहां की भांति आक्रमणकारी नहीं थी। उ
की शक्तियों के साथ सन्धि और मेल की स्थापना की। उसके ऐसा
कदाचित विदेशों में सम्मान प्राप्त करना था। उसने उन देशों में अ
और उन देशों के राजदूतों को अपने यहां स्थान दिया। उसने उनके
की भी स्थापना की। उसने मक्का, फारस, बलख, बुखारा, काशगर
बसरा के तुर्की गवर्नर और अबीसीनियां के शासक के साथ अच्छे सम्बन्ध
इस सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार का कथन है कि "प्रारम्भ में उसक
शासकों के नेत्रों में अपने राजदूतों तथा उनको मूल्यवान उपहार द्वारा
कर देने की तथा बाह्य मुस्लिम जगत को उसके उस व्यवहार को भुला
करने की थी जो उसने अपने पिता तथा भाइयों के प्रति किया था अ
उस सफल तथा कर्मठ व्यक्ति के प्रति भद्रता प्रदर्शित कराने की थी

---

no dynasty changed and no enemy replaced by an ally on the th
The grain stored in the Balakh fort worth five lakhs and the pro
forts as well, were all abandoned to the Balakhanians, besides Ra
presented to Nazar Muhammad's grandsons and Rs. 22,500 to
hundred soldiers fell in battle and ten times that number (i
followers) were slain by cold and snow on the mountains. Such
price that aggressive imperialism makes India pay for wars ac
western frontier."
—J. N

अवर्णनीय धन का स्वामी था और विशेषतः जब कि वह उस धन राशि के व्यय के लिये पूर्ण स्वतन्त्र था।"*

उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में निवास करने वाली जातियों पर मुगलों का अधिकार पूर्णतया स्थापित नहीं हो सका। मुगलों ने हर सम्भव उपाय तथा साधन से उनको अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६६७ ई० में युसुफजाई जाति के नेतृत्व में कुछ जातियों का संगठन हुआ। उन्होंने अपनी जाति के नेता भगू के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। मुगलों की एक सेना ने कामिल खां के नेतृत्व में युसुफजाइयों के विद्रोह का दमन किया। सन् १६७२ ई० में अफरीदी जाति ने अकमल खां के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। अकमल खां ने अपने आपको राजा घोषित किया और समस्त जातियों का संगठन करना प्रारम्भ किया। उसने खैबर दर्रे पर अधिकार किया। उसका दमन करने के अभिप्राय से अमीन खां को भेजा गया जिसको उन्होंने बुरी तरह परास्त किया। उसको भागकर पेशावर में शरण लेनी पड़ी। इसी समय खुशहाल खां खटक ने विद्रोह का झण्डा उठाया। प्रारम्भ में वह मुगलों की ओर था। किन्तु किसी कारणवश वह उनका शत्रु बन गया। अब अकमल खां तथा खुशहाल खां ने सम्मिलित होकर मुगलों को तंग करना प्रारम्भ कर दिया। *औरङ्गजेब ने विभिन्न समयों पर महावत खां, शुजावत खां तथा राजा* जसवन्तसिंह को उनके दमन के लिए भेजा, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में बाध्य होकर औरङ्गजेब स्वयं सीमाप्रान्त गया और उसने हर सम्भव उपाय से उनका दमन करने का प्रयास किया अन्त में उसको सफलता प्राप्त हुई और १६७२ ई० में वह राजधानी वापिस आया। सीमा-प्रान्त के प्रदेशों की रक्षा का भार राजकुमार मुअज्जम पर छोड़ा गया और अमीन खां को काबुल का सूबेदार नियुक्त किया गया।

अधिकांश जातियों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु खुशहाल खां ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। अन्त में अपने पुत्र के ही विश्वासघात के कारण वह बन्दी बनाया गया।

परिणाम—मुगलों को उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों में जो सफलता प्राप्त हुई उसका परिणाम राज्य के लिये हितकर सिद्ध नहीं हुआ वरन् वह राज्य के लिये घातक ही सिद्ध हुआ। (i) राजकोष से बहुत अधिक धन व्यय किया गया और उसके राजनीतिक प्रभाव उससे भी अधिक हानिकारक सिद्ध हुए। (ii) अफगानों का सहयोग मुगलों को राजपूतों के विरुद्ध प्राप्त नहीं हो सका। (iii) मुगल शिवाजी के विरुद्ध कठोर तथा दृढ़ नीति का पालन करने में असमर्थ रहे जिसके कारण शिवाजी की शक्ति का दिन-प्रति-दिन विकास होता रहा। (iv) अफगान और अफरीदियों ने औरंगजेब को दो क्षेत्रों में युद्ध

* "His policy at the beginning was to dazzle the eyes of foreign princes by the lavish gifts and of presents to them and their envoys, and induced the other Muslim world to forget his treatment of his father and brothers or at least to show courtesy to the successful man of action and master of India's untold wealth specially when he was free with his money." —J. N. Sarkar.

के लिए विवश कर अप्रत्यक्ष रूप से शिवाजी की सहायता की जो दक्षिण में पर्याप्त समय तक शक्तिशाली बना रहा।

महत्वपूर्ण प्रश्न

(१) मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया सम्बन्धी नीति का वर्णन करो। उसका क्या परिणाम हुआ ?

(२) मुगलों की उत्तरी पश्चिमी सीमा की स्वतन्त्र जातियों के प्रति नीति का विश्लेषण करो।

७ मुगलों की राजपूत-सम्बन्धी नीति

प्रारम्भिक सम्बन्ध—इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बेणी प्रसाद राजपूतों के सम्बन्ध में कहते हैं कि "विश्व की कोई भी जाति मध्य-कालीन भारत के राजपूतों के अधिक गौरवमय इतिहास, अधिक वीरतापूर्ण कृत्य, मान-मर्यादा तथा आत्म-सम्मान की उच्चतर भावना रखने का गर्व करने में असमर्थ है। राजपूतों की परम्परा पर दृष्टिपात करने से उनकी वीरता, त्याग तथा दूसरों के प्रति सम्मान की भावना के कारण मस्तक स्वयं श्रद्धा के कारण झुक जाता है।"* मध्यकालीन युग के भारतीय इतिहास में इस जाति ने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और उसने दिल्ली के शासकों की साम्राज्यवादी तथा लोलुपता-सम्बन्धी नीति का अदम्य उत्साह तथा साहस से सामना कर अपने आपको सदा के लिये अमर कर दिया। दिल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की राजपताका के अन्तर्गत राजपूतों की शक्ति का बड़ा विस्तार हुआ और वहां का राजा राणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) मध्य भारत की नीति में सफल होकर दिल्ली राज्य पर अपनी आंख लगाये हुए था। उस समय उसकी शक्ति का विस्तार बहुत हो चुका था और वह मुसलमानों राज्य का भारत से अन्त करने के लिये उपयुक्त अवसर की खोज में था। बाबर के दिल्ली पर अधिकार करने से वह अपने इस कार्य में सफल नहीं हुआ किन्तु जब तक बाबर राजपूत को बियाना के युद्ध में (१५२७) परास्त करने में सफल नहीं हुआ उस समय तक वह भारत के अपने साम्राज्य को सुनिश्चित नहीं समझता था। अतः दोनों में भीषण संघर्ष का होना अनिवार्य हो गया। इस युद्ध में पराजित होने के कारण राजपूतों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु उसकी शक्ति का पूर्णतया दमन किया जाना असम्भव था। हुमायूँ अपने साम्राज्य की पूर्वी तथा गुजरात की समस्याओं में इतना अधिक तल्लीन था कि वह राजपूतों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। जब

* "No community that ever existed can boast of a more romantic history, of more heroic exploits of a prouder sense of honour and respect than the Rajputs of medieval India. At one sight through Rajputs tradition, the mind staggers at the heights of valour, devotion and altruism to which humanity can soar." —Dr. Beni Prasad.

गुजरात के शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर भीषण आक्रमण किया तो रानी कर्णवती ने हुमायूं से सहायता की प्रार्थना की किन्तु वह समय पर राजपूतों की सहायता न कर सका। सहायता देर से आई और चित्तौड़ का दुर्ग बहादुरशाह के हाथों विध्वंस हो गया। यदि इस समय हुमायूं द्वारा समय पर सहायता प्राप्त हो गई होती तो हुमायूं और राजपूतों के सम्बन्ध बहुत अच्छे व घनिष्ट हो जाते और फिर राजपूत हुमायूं के लिए सब कुछ करने को उद्यत रहते और सम्भवतः हुमायूं को भारत से पलायन करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। शेरशाह भी अपने सैनिक बल के आधार पर राजपूतों का दमन नहीं कर सका। उसको छल-प्रपंच की शरण लेनी पड़ी। राजपूतों ने उसका भी बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया।

अकबर की राजपूत-सम्बन्धी नीति

अकबर एक दूरदर्शी शासक था। उसने प्रारम्भ से ही समझ लिया था कि भारत में उस समय तक मुगल साम्राज्य दृढ़ता तथा स्थायीपन प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वह हिन्दुओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं करता है। हिन्दुओं में से भी विशेषतः राजपूत जाति का सहयोग उसको प्राप्त करना अनिवार्य था क्योंकि यह जाति अपनी सामरिक शक्ति एवं बल के आधार पर मुगलों से लोहा लेने को सदा तत्पर रहती थी। अतः अकबर ने अपने मन में धारणा की कि राजपूतों को अपनी ओर मिलाया जाय और हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार किया जाय जिससे वे राज्य के विरुद्ध होने वाले विद्रोह में उसका साथ दें और विद्रोहियों से किसी प्रकार की सहानुभूति न रखें।* इसके निम्न कारण थे—

> **कारण**
> (१) पश्चिम से सैनिकों का मिलना असम्भव। उनकी पूर्ति के लिए राजपूतों का प्रयोग।
> (२) अकबर का स्वभाव।
> (३) राजपूतों के गुण।
> (४) विदेशी अमीरों का भय।
> (५) उजबेग तथा अफगानों के दमन में राजपूतों का प्रयोग।
> (६) राजस्थान का भौगोलिक महत्व।

(१) पश्चिम से सैनिकों का मिलना असम्भव, उनकी पूर्ति के लिए राजपूतों का प्रयोग—दिल्ली के सुल्तानों की सेना में अधिकांश सैनिकों की भर्ती उत्तर-पश्चिम के सीमान्त प्रदेशों तथा अफगानिस्तान से की जाती थी क्योंकि यहाँ के निवासी स्वभाव से सामरिक थे। उनको इस ओर से सहायता की कोई आशा नहीं रही। अतः उसके अभाव की पूर्ति करने के लिए एक ऐसी जाति की सहायता की आवश्यकता

* "There could be no Indian Empire without the Rajputs, social or political synthesis without their intelligent and active co-operation. The new body politic must consist of the Hindus and Muslims and must contribute to the welfare of both. The Emperor's lofty mind rose above the petty prejudices of his age, and after much anxious thought he decided to associate the Rajputs with himself on honourable terms in his ambitious enterprises."

थी जिसमें सामरिक गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हों और यह गुण राजपूतों मे पर्याप्त थे।

(२) **अकबर का स्वभाव**—अकबर का स्वभाव बड़ा उदार तथा सहनशील था। उसमे धार्मिक अन्ध-विश्वास तथा धर्मान्धता का सर्वथा अभाव था। उसने अपने व्यापक दृष्टिकोण के कारण उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। वह उनके हृदय पर विजय प्राप्त करना चाहता था न कि केवल युद्ध द्वारा उनके राज्यों को हस्तगत करना चाहता था।

(३) **राजपूतों के गुण**—राजपूतों मे अनेक गुण विद्यमान थे जिनसे अकबर न केवल परिचित ही था वरन् पर्याप्त मात्रा में प्रभावित भी था। राजपूत अपने वचन के पक्के होते थे। विश्वासघात तो उनमे लेश-मात्र भी न था। वे वीर थे और युद्ध मे उनको आनन्द प्राप्त होता था। ऐसी वीर जाति की सहायता प्राप्त कर साम्राज्य का विस्तार किया जा सकता है तथा उसको दृढ़ बनाया जा सकता है। उनको अपनी ओर करने से हिन्दुओं का समर्थन भी प्राप्त हो जायगा।

(४) **विदेशी अमीरों का भय**—इन दिनों दरबार में विदेशी अमीरों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। सम्राट को सदा इनका भय बना रहता था। उनके प्रभाव को कम करने के अभिप्राय से उसने एक शक्तिशाली देशीय दल की स्थापना करने का विचार किया जो राजपूतों द्वारा ही सम्भव था। इसी कारण उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया और एक ऐसे दल का निर्माण किया जिसकी उसमें अपार भक्ति तथा निष्ठा थी।

(५) **उजबेगों तथा अफगानों के दमन में राजपूतों का प्रयोग**—उजबेगों तथा अफगानों का दमन करना साम्राज्य के हित के लिये अनिवार्य था। इनका सामना सरल कार्य नहीं था। राजपूत ही ऐसे वीर थे जो दूरस्थ प्रदेशों में कठिनाइयों का सामना करते हुये इनको परास्त करने मे सफल हो सकते थे। अत. वह राजपूतों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ।

(६) **राजस्थान का भौगोलिक महत्व**—राजस्थान का भौगोलिक महत्व बहुत था। दिल्ली और आगरा राजस्थान के समीप है और उनसे प्रत्येक समय इन पर आक्रमण करने की सम्भावना हो सकती है। इसीलिये या तो राजपूतों की शक्ति का उन्मूलन कर दिया जाय अथवा उनको अपनी ओर मिला लिया जाय। इसके अतिरिक्त राजस्थान को यदि उसी परिस्थिति में छोड़ दिया जाय तो भारत के अन्य भागों की विजय सम्भव नहीं थी। अकबर सम्भवतः जीवन भर राजस्थान में ही उलझा रहता यदि वह उनकी ओर मैत्री का हाथ न बढ़ाता।

उपाय—इन्हीं कारणों से प्रभावित होकर अकबर ने उनके साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार किया और उनको उच्च पदों पर आसीन कर, उनसे वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना कर अपनी ओर आकर्षित किया। अकबर के इस सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर राजपूतों ने अपने रक्त से मुगल-साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया और वे उसके साम्राज्य के स्तम्भ बन गये। जब औरंगजेब ने अकबर की नीति का परित्याग कर

धर्मान्धता की नीति का अनुकरण कर उनकी राजनीति में व्यर्थ का हस्तक्षेप किया तो उसका परिणाम मुगल-साम्राज्य के प्रति हितकर सिद्ध न हुआ और साम्राज्य अधोगति को प्राप्त होने लगा और शीघ्र ही उसका अन्त हो गया।

अकबर ने निम्न उपायों का अनुकरण राजपूतों के प्रति किया—

(१) वैवाहिक सम्बन्ध—राजनीति में वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि इसकी स्थापना के फलस्वरूप दो राजवंशों में निकटतम सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है, किन्तु राजपूतों की कन्या प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं था क्योंकि उनमें जातीय गौरव तथा प्रतिष्ठा की मात्रा बहुत अधिक थी। अकबर जैसे दूरदर्शी तथा कूटनीतिज्ञ का ही कार्य था कि राजपूत राजाओं ने अपनी कन्याओं का विवाह मुगलों से किया।

> उपाय
> (१) वैवाहिक सम्बन्ध।
> (२) उच्च पदों पर राजपूतों को आसीन करना।
> (३) आक्रमणात्मक नीति।
> (४) अनाक्रमणात्मक नीति किन्तु प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार।

(i) आमेर से सम्बन्ध—सन् १५६२ ई० में अकबर ने अजमेर की यात्रा की। मार्ग में आमेर के कछवाह राजा बिहारीमल ने उससे भेंट की। अकबर ने उसके साथ बड़ा शिष्टतापूर्ण व्यवहार किया जिससे राजा बिहारी मल बहुत प्रसन्न तथा प्रभावित हुए। उसने आत्मसमर्पण किया और दोनों की मित्रता वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा और भी दृढ़ हो गई। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर से साभर नामक स्थान पर किया। इसी पुत्री ने जहांगीर को जन्म दिया। राजा बिहारी मल को ५,००० का मनसब प्रदान किया गया। उसके पुत्र भगवान दास और पौत्र मानसिंह को भी सेना में स्थान मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि आमेर के कछवाह राजपूतों ने साम्राज्य की बड़ी प्रशंसनीय सेवा की। डाक्टर बेणी प्रसाद के अनुसार "यह वैवाहिक सन्धि भारतीय राजनीति में एक नवीन युग का प्रतीक है। इसके द्वारा देश को प्रसिद्ध सम्राटों की वंश परम्परा प्रदान हुई। इसने चार पीढ़ियों तक मुगल सम्राटों को प्रमुख सेनापतियों तथा कूटनीतिज्ञों की सेवायें प्रदान कीं।"

(ii) जोधपुर और जैसलमेर से सम्बन्ध—इस विवाह के अतिरिक्त अकबर ने जोधपुर और जैसलमेर की राजकुमारियों से विवाह किया। बाद में उसने अपने पुत्र राजकुमार सलीम का विवाह राजा बिहारीमल की पोती और राजा भगवान दास की पुत्री से सम्पन्न किया जिसका पुत्र राजकुमार खुसरो था।

(२) उच्च पदों पर राजपूतों को आसीन करना—अब तक के मुसलमान शासकों ने राजपूतों को ही क्या और हिन्दुओं को भी उच्च पदों पर आसीन नहीं किया था। अकबर ही प्रथम सम्राट था जिसने इस बात का अनुभव किया कि हिन्दुओं को उच्च पदों पर आसीन किया जाना साम्राज्य के लिये हितकर होगा। उसने आमेर के राजा तथा उसके पुत्रों को सम्माननीय पद प्रदान किये। इसके अतिरिक्त राजा टोडरमल तथा राजा बीरबल भी उच्च पदों पर नियुक्त किये गये जिन्होंने अपने कौशल से साम्राज्य

की बडी सेवा की। टोडरमल का नाम उसके भूमि-सम्बन्धी सुधारों के कारण अमर हैं। राजा बीरबल एक कुशल सेनापति था। साधारणतः अकबर की नीति राजपूतों के साथ उदार रही। उसने हाडा जाति के सुर्जन को गढ कन्टक का दुर्गपति बनाया। अकबर ने अन्य राजपूत राजाओं से सन्धि की जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार की और उसकी साम्राज्यवादी नीति में सहयोग प्रदान किया।

(३) आक्रमणात्मक नीति—अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसने उन राजपूत राजाओं के साथ आक्रमणात्मक नीति का प्रयोग किया जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। चित्तौड़ के राजाओं ने उसकी अधीनता को नहीं अपनाया। उसने उनके विरुद्ध युद्ध किया। राणा उदयसिंह के समय में उसने चित्तौड़ पर अधिकार किया। राणा प्रताप से उसका संघर्ष उनके जीवन भर चलता रहा किन्तु उन्होंने कभी भी उसकी अधीनता को अङ्गीकार नहीं किया और जीवन भर उससे संघर्ष करते रहे।

(४) अनाक्रमणात्मक नीति किन्तु प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार—अकबर की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर कुछ राजाओं ने तो अपने आप ही उससे सन्धि कर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। चित्तौड़ की पराजय के उपरान्त रणथम्भौर तथा कालिंजर स्वयं उसके हाथों में आ गये। बीकानेर, जैसलमेर तथा जोधपुर के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार राजस्थान का अधिकांश प्रदेश उसके अधिकार में आ गया और वहां उसके प्रभाव क्षेत्र का पर्याप्त विस्तार हुआ। उसके पूर्व किसी अन्य मुसलमान शासक का प्रभाव राजस्थान तथा राजपूतों पर स्थापित नहीं हो पाया था।

अकबर की राजपूत नीति पर एक विहंगम दृष्टि

अकबर की राजपूत नीति का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि अकबर की राजपूत नीति उसकी अविचारणीय भावना का परिणाम नहीं था और न वह नीति राजपूतों की वीरता, साहस आदि गुणों द्वारा स्थापित की गई, वरन् वह अकबर की एक निश्चित नीति का परिणाम था जिसके कारण वह राजपूतों को अपना मित्र बनाना चाहता था ताकि वह उनकी सेवाओं को मुगल-साम्राज्य को दृढ़ करने में उपयोग कर सके। इसी कारण उसने किसी भी प्राचीन राजपूत राज्य का नष्ट नहीं किया वरन् उसने जयपुर और बीकानेर राज्यों को शक्तिशाली बनाया जिससे राजपूताने में सन्तुलन की स्थापना की जाय। उसको अपनी राजपूत नीति में पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई। उसने राजपूतों व मुसलमानों के साथ समान व्यवहार किया जिसके कारण उसको उनका सहयोग प्राप्त हुआ और प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय तथा उन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए। राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में बड़ी प्रगति हुई।* जब तक मुगल शासकों ने अकबर द्वारा प्रतिपादित नीति का अनुकरण किया उस समय तक

* "The Mughal Rajput co-operation, which continued in subsequent reigns affected not only government and the administration and army but also art, culture and ways of living."

मुगल-साम्राज्य दिन दूनी तथा रात चौगुनी उन्नति करता रहा, किन्तु जब इस नीति का परित्याग कर दिया गया तो उसका पतन होना प्रारम्भ हो गया।* अकबर का राजपूतों के समीप आने के कारण उसका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक हुआ और उसने धार्मिक समन्वय स्थापित करने के लिये घोर प्रयत्न किया और इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि वह एक राष्ट्रीय शासक था और उसकी हार्दिक इच्छा भारत को एक राष्ट्र में परिणत करने की थी। कुछ विद्वानों ने उसकी इस नीति को कूटनीतिज्ञता, स्वार्थपरता, अनैतिकता और कुछ अंशों में शक्ति का दुरुपयोग कहा है, किन्तु यह केवल उन्हीं व्यक्तियों की धारणा कही जा सकती है जिनमें साम्प्रदायिकता की भावना का बाहुल्य है। वास्तव में अकबर ने राजपूतों के गुणों का मान किया और उनकी धार्मिक भावना को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचाई। उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया और उनके साथ सदा सद्व्यवहार किया।

जहांगीर की राजपूत नीति

जहांगीर ने अपने योग्य तथा कर्मठ पिता अकबर की नीति को अपनाया। इसने उन राजपूतों के साथ सद्व्यवहार था जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उन राजपूतों के साथ जिन्होंने अपनी स्वतन्त्रता को प्रिय समझा और मुगलों की अधीनता में रहना उचित नहीं समझा, उसने उनके प्रति अकबर के समान आक्रमणात्मक नीति का अनुकरण किया। इसी कारण उसने राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही सन् १६०६ ई० में मेवाड़ पर एक विशाल तथा सुसज्जित सेना द्वारा आक्रमण किया। इस बार मुगलों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६०८ ई० में राणा के विरुद्ध दूसरा आक्रमण किया गया। पर्याप्त समय तक मुगलों ने राजपूतों को परास्त करने का प्रयत्न किया। किन्तु अन्त में सन् १६१५ ई० में मुगल राजकुमार खुर्रम के नेतृत्व में सफल हुए और राणा में और मुगलों में सन्धि हुई। डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में "यह सन्धि मेवाड़ और दिल्ली के बीच बड़ी महत्वपूर्ण है। सिसोदिया वंश के किसी भी सम्राट ने अभी तक मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इस सन्धि से एक बहुत बड़े तथा लम्बे युद्ध की समाप्ति हुई जो दोनों के बीच चल रहा था। सन्धि की शर्तें विशेष नम्र थीं जिसके कारण पर्याप्त समय तक दोनों राज्यों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।"†

---

* "It symbolised the dawn of a new era in Indian politics it gave the country a line of remarkable sovereigns, it secured to four generations of Mughal Emperors of some of the services of the greatest captains and diplomats that medieval India produced." —Dr. Beni Prasad.

† "The treaty is a landmark in the history of the relations between Mewar and Delhi No ruler of the Sisodia dynasty even before openly professed allegiance to any Mughal Emperor. The treaty of 1615 for the first time brought about the end of a long-drawn struggle between the two states—deserved credit for dictating extremely lenient terms—which proved useful to both parties." —Dr. A. L. Srivastava—pp. 241—242

शाहजहां की राजपूत नीति

अकबर और जहांगीर के शासन-काल में धर्म को राजनीति से सदा अलग रखा गया किन्तु शाहजहां के समय मे धर्म राजनीति का अङ्ग बनने लगा था। किन्तु इसके कारण उसने राजपूतो के साथ किसी नई नीति का प्रयोग नही किया। इस समय तक राजपूत पूर्णतया मुगलो के अधीन हो चुके थे। उसके शासन-काल में राजपूतों का वह महत्व नही रह गया था जो उसके पूर्वजों के शासन-काल मे था। वे अन्य अमीरों की अपेक्षा हेय समझे जाते थे। एक बार सन् १६५४ ई० में मेवाड़ के राणा ने चित्तौड़ के दुर्ग की मरम्मत करवाना आरम्भ किया। इसका जब समाचार शाहजहां को प्राप्त हुआ तो उसने सादुल्ला खां के नेतृत्व मे एक सेना भेजी। तुरन्त ही राणा ने क्षमा याचना की। दरबार मे अन्य अमीरों का महत्व बढने लगा था, किन्तु शासन के अन्तिम दिनों में राजपूतों के प्रभाव का विस्तार राजकुमार दारा के कारण होना आरम्भ हो गया था। उस समय भी जोधपुर के राणा जसवन्तसिंह तथा जयपुर के राणा जयसिंह का पर्याप्त मान तथा प्रभाव था।

औरंगजेब की राजपूत नीति

उत्तराधिकार के युद्ध मे राजपूतो ने राजकुमार दारा का साथ दिया था और औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध किया था। औरंगजेब की स्थिति जब तक सुदृढ़ न हो सकी उसने राजा जयसिंह तथा जसवंतसिंह के साथ अच्छा व्यवहार किया और उनको उच्च पदों पर आसीन रखा, किन्तु वह हृदय से उनको घृणा की दृष्टि से देखता था और किसी प्रकार उनकी उन्नति सहन नहीं कर सकता था। उसने धर्मान्ध नीति का अनुसरण कर अकबर और जहांगीर की उदार तथा सहिष्णुता की नीति का परित्याग किया। उसकी इस नीति के कारण हिन्दुओं में असन्तोष की भावना जागृत हो गई। उसने राजा जयसिंह को जो उसकी इस नीति का कट्टर विरोधी था, दक्षिण में विष दिलवा कर मरवा डाला। उसकी मृत्यु से उसका एक बहुत बड़ा विरोधी इस संसार से चला गया। ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को भी विष दिलवाकर उसका वध करवाया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसने जोधपुर पर अधिकार किया और उसकी रानियों तथा पुत्र को बन्दी करने का प्रयास किया जिसमे उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसकी इस नीति के परिणामस्वरूप जोधपुर के राजपूतों मे विद्रोह की भावना प्रज्वलित हो गई और उन्होने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा वीर राठौर सरदार दुर्गादास के नेतृत्व में की। इस युद्ध मे मेवाड़ ने जोधपुर का साथ दिया और मुगलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, जिसका विस्तृत वर्णन गत अध्याय मे किया गया है। इस प्रकार औरंगजेब की राजपूत नीति असफल रही और उसकी धर्मान्धता के कारण अकबर के राजपूतों के मिलाने के समस्त प्रयत्नों पर पानी फिर गया तथा राष्ट्रीय भावना को बहुत अधिक ठेस पहुँची। वह समन्वय जो दोनों जातियों में उत्पन्न होना आरम्भ हुआ था, समाप्त होना आरम्भ हो गया। वे मुगलों के शत्रु बन गये। उनके विरुद्ध युद्ध में मुगलों को अपार धन व्यय करना पड़ा। पर्याप्त समय तक औरंगजेब राजस्थान के दमन करने में लगा रहा जिसके कारण साम्राज्य के अन्य भागों में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई।

दक्षिण में शिवाजी को अपनी शक्ति का विस्तार तथा संगठन करने का स्वर्ण अ
प्राप्त हुआ। वास्तव में औरंगजेब की इस नीति के कारण मुगल-साम्राज्य का प
होना प्रारम्भ हो गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) अकबर की राजपूत नीति पर प्रकाश डालिये तथा परिणामों की विवेचना कीजिये।

(२) राजपूत रियासतों के प्रति अकबर बादशाह की नीति की आलोचनात्म व्याख्या कीजिये। (१९५३)

(३) औरंगजेब की राजपूत राजाओं के प्रति क्या नीति थी? (१९५८)

(४) अकबर ने हिन्दू-मुसलमानों में मेल कराने के लिए क्या प्रयत्न किया और वह कहाँ तक सफल रहा? (१९५९)

(५) अकबर की राजपूतों के प्रति क्या नीति थी? उसके और राजपूतों के सम्बन्ध की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कीजिये। (१९६०)

(६) औरंगजेब और राजपूतों के सम्बन्ध का उल्लेख कीजिये। उनके बीच संघर्ष के कारणों का वर्णन करो। (१९६१)

राजस्थान—

(१) अकबर की राजपूत नीति की औरंगजेब की राजपूत नीति से तुलना करो। (१९५६)

मध्य प्रदेश—

(१) 'औरंगजेब ने राजपूतों और प्रजा की वफादारी व सहायता बिल्कुल खो दी।' इस कथन की आलोचना करो। (१९५२)

(२) राजपूतों के साथ औरंगजेब के कैसे सम्बन्ध थे? उनका वर्णन करो। (१९५६)

८

मुगल और सिक्ख

सिक्ख जाति का प्रारम्भिक इतिहास—सिक्ख जाति की उत्पत्ति उस समय हुई जब दिल्ली सल्तनत का पतन हो रहा था। इस धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक थे जिनका जन्म सन् १४६९ ई० मे तलवन्डी नामक स्थान मे हुआ था। इस समय यह उनके नाम पर ननकाना के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान पाकिस्तान मे स्थित लाहौर से पैंतीस मील दक्षिण-पश्चिम में शेखुपुरा जिले में स्थित है। उन्होंने एक ऐसे धर्म की स्थापना की जिसमें जाति-पांति, धार्मिक आडम्बरों तथा बहुदेववाद आदि के लिये कोई स्थान नहीं था। उनके शिष्यों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती गई। गुरु नानक की मृत्यु के उपरान्त गुरु अंगद सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। उन्होंने अकथनीय परिश्रम द्वारा गुरु नानक के सिद्धान्तों का प्रचार किया जिसमें उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई। उन्होने गुरुलिपि का प्रचलन किया और उसी लिपि में गुरु नानक के उपदेशों का संकलन किया। उनकी मृत्यु के उपरान्त गुरु अमर दास सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। इनके समय मे उनके शिष्यों की संख्या मे बड़ी वृद्धि हुई और पंजाब के जाटो ने अपने आपको इस धर्म में दीक्षित किया। इस धर्म के उत्थान में उनका हाथ विशेष महत्वपूर्ण रहा। गुरु अमरदास के उपरान्त उनके दामाद सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। उनकी मुगल-सम्राट अकबर से बड़ी घनिष्टता थी। अकबर ने उनको अमृतसर के समीप कुछ भूमि प्रदान की जहाँ उन्होंने एक विशाल तालाब बनवाया और उसके मध्य स्वर्ण मन्दिर का निर्माण किया। उनके समय में अमृतसर सिक्खों का केन्द्र बन गया। इनके उपरान्त गुरु अर्जुन सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। इनके समय में गुरुओं के उपदेशो का संग्रह किया गया, जो 'ग्रन्थ साहब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सिक्खों की धार्मिक पवित्र पुस्तक है जिसको समस्त सिक्ख आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इनके समय में सिक्ख सम्प्रदाय ने विशेष उन्नति की और उसके अनुयायियों की संख्या में विशेष वृद्धि होनी आरम्भ हुई। उनके व्यक्तित्व तथा चरित्र का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। कुछ व्यक्तियों ने उनको बदनाम करना आरम्भ किया किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। उन्होंने साधु-वेषभूषा का परित्याग कर राजसी वेष-भूषा धारण करनी आरम्भ कर दी। सन् १६०६ ई० में

गुरु नानक

राजकुमार खुसरो ने अपने पिता जहांगीर के विरुद्ध विद्रोह किया जिसमें वह परास्त हुआ। उसने गुरु अर्जुन के पास शरण ली और वे राजकुमार की दीनावस्था से प्रभावित हुए और उन्होंने राजकुमार को आर्थिक सहायता प्रदान की। गुरु के शत्रुओं ने जहांगीर से शिकायत की कि गुरु अर्जुन ने विद्रोही राजकुमार को शरण दी है और विद्रोह करने में उसको प्रोत्साहन प्रदान किया है। उनके शत्रुओं का कुचक्र चल गया। जहांगीर ने उन पर ढाई लाख रुपया जुर्माना किया। जब उन्होंने जुर्माने की रकम अदा नहीं की तो उनको बन्दी बना लिया गया और उनका वध कर डाला।* जहांगीर का यह अन्याय था। उसने बिना विचार किये ही इतना अधिक दण्ड गुरु अर्जुन को दिया। वास्तव में गुरु अर्जुन का कोई हाथ खुसरो के विद्रोह में नहीं था। वास्तव में वह खुसरो के विद्रोह का समाचार सुनकर इतना परेशान हो गया कि उसको ज्ञान-शक्ति का लोप हो गया था। उसने उन समस्त व्यक्तियों को दण्ड दिया जिन्होंने राजकुमार की किसी प्रकार की भी सहायता की थी।

गुरु हरगोविन्द—जहांगीर का गुरु अर्जुन का वध कराना सिक्खों के इतिहास में एक विशेष घटना बन गई। इसी समय से सिक्खों का मुगलों से संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और सिक्ख एक सैनिक जाति के रूप में परिणत हो जाते हैं। गुरु अर्जुन के पश्चात् उनके पुत्र गुरु हरगोविन्दसिंह सिक्खों के गुरु हुए। उन्होंने मुगलों का विरोध करना प्रारम्भ किया, किन्तु अभी तक सिक्ख इतने शक्तिशाली तथा संगठित नहीं हो पाए थे कि वे मुगलों का सामना करने में सफलता प्राप्त करते। गुरु हरगोविन्द ने मुगलों की नौकरी स्वीकार की, किन्तु हिसाब की गड़बड़ी के कारण वे बन्दीगृह में डाल दिये गये। जहांगीर की मृत्यु के उपरान्त उनको मुक्त कर दिया गया और उन्होंने शाहजहां की नौकरी स्वीकार की, किन्तु उनकी उससे भी अनबन हो गई और उन्होंने मुगलों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में उनको कुछ सफलता प्राप्त हुई, किन्तु अन्त में उनको पंजाब का परित्याग करने के लिये बाध्य होना पड़ा। उन्होंने काश्मीर की पहाड़ियों में शरण ली जहां सन् १६४४ ई० में उनका देहान्त हो गया।

गुरु हरीराम तथा हरिकिशन—उनकी मृत्यु पर हरीराम सिक्खों के गुरु बने। वे शान्ति-प्रिय व्यक्ति थे जिसके कारण उनसे दिल्ली के सम्राटों का कोई

---

* "The occasion came when during his flight through the Punjab, Khusro the rebel prince met the guru, who is alleged to have congratulated him, put saffron mark on his forehead, gave him his blessing and some financial help. Khusro's rebellion had aroused violent irascibility in Jahangir and made his temper brutal. Arjan's plea in explanation that he had no other motive than showing kindness and gentleness to the grandson of the late Emperor, in his forlorn and miserable condition, did not carry any weight with Jahangir, who imposed a fine of two lakhs and a half on the guru. The guru refused on the ground that he had no money of his own, for all his money was for the poor, the friendless and the stranger. At this the Emperor ordered that the guru be imprisoned, his residence and children handed over to Farid Bukhari, his property confiscated, and he himself be put to death." —Dr. R. P. Tripathi.

विशेष संघर्ष नहीं हुआ। उत्तराधिकार के युद्ध में उन्होंने राजकुमार दारा का पक्ष लेकर औरंगजेब का विरोध किया किन्तु उनके क्षमा-याचना पर औरंगजेब ने उनको माफ कर दिया। उनके पश्चात् हरिकिशन सिक्खों के गुरु के पद पर आसीन हुए। वे अधिक समय तक सिक्खों का नेतृत्व नहीं कर सके और चेचक के निकलने के कारण उनका देहान्त गुरु की गद्दी प्राप्त करने के तीन वर्ष उपरान्त हो गया।

गुरु तेगबहादुर—गुरु हरिकिशन की मृत्यु के उपरान्त गद्दी के लिए पारस्परिक संघर्ष हुआ, क्योंकि उन्होंने किसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। अन्त में सिक्खों ने तेगबहादुर को अपना गुरु मान लिया। प्रारम्भ में गुरु तेगबहादुर ने मुगलों की नौकरी स्वीकार की और वे उनकी ओर से कई युद्धों में सम्मिलित भी हुए। इसके उपरान्त वे पंजाब आ गये और वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगे। उन्होंने वहाँ आकर सिक्ख जाति का सुदृढ़ संगठन करना आरम्भ किया और सच्चे बादशाह की उपाधि से अपने आपको सुशोभित किया। औरंगजेब भला कब इस प्रकार के व्यवहार को सहन कर सकता था। उसने तुरन्त गुरु तेगबहादुर को बन्दी करने का आदेश जारी किया जिसके परिणामस्वरूप वे बन्दी बना लिये गये और उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये कहा, किन्तु उन्होंने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया। इस पर औरंगजेब ने सन् १६७५ ई० में उनका वध करवाया। औरंगजेब के इस कार्य से सिक्खों को हार्दिक कष्ट तथा दुःख हुआ और वे मुगलों के पूर्ण विरोधी बन गये।

गुरु गोविन्दसिंह—गुरु तेगबहादुर ने अपने पुत्र गोविन्दसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। इस समय उनकी अवस्था केवल १५ वर्ष की थी। उसने गुरु की गद्दी स्वीकार करते समय निश्चय किया कि वे मुगलों से अपने पिता के वध का बदला अवश्य लेंगे। उन्होंने सिक्ख जाति को सैनिक स्वरूप प्रदान किया और प्रत्येक सिक्ख के लिए कुछ आदेशों का निर्माण किया जिनका पालन करना प्रत्येक सिक्ख के लिए अनिवार्य था। वे आदेश निम्न प्रकार के थे—

गुरु गोविन्दसिंह

(१) केश, कंघी, कच्छ, कृपाण और कड़ा प्रत्येक सिक्ख को धारण करना होगा।

(२) गुरु का आदेश मानना और उसके लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए उद्यत रहना।

(३) समस्त सिक्ख जाति में समानता का व्यवहार तथा पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध आदि का होना।

(४) सैनिक-शिक्षा अनिवार्य रूप से धारण करना तथा शत्रुओं से मैत्रीपूर्ण व्यवहार न करना।

(५) तम्बाकू का सेवन न करना।

(६) केवल झटके का मांस खाना।

(७) नाम के अन्त, में 'सिंह' का प्रयोग करना।

इस प्रकार इन नियमों तथा आदेशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अप जाति की रक्षा मुगलों की धर्मान्ध नीति से करने के लिये समस्त सिक्ख जाति सैनिक जाति में परिणत करने का प्रयत्न किया। वास्तव में उस समय उसक आवश्यकता थी अन्यथा समस्त पंजाब में हिन्दुत्व के स्थान पर इस्लाम धर्म की पताक फैल जाती। मुगलों की सैनिक शक्ति का सामना करने के लिये ऐसा करना नितान आवश्यक था। उनको बाध्य होकर ऐसा करना पड़ा अन्यथा सिक्खों का नाम-निशा ही समाप्त हो जाता। इसके उपरान्त उन्होंने मुगलों को तंग करना आरम्भ किया औ उनका कई बार मुगलो से संघर्ष हुआ। एक बार मुगलों के हाथ में उनकी स्त्री तथ दो पुत्र आ गये जिनके साथ मुगलों ने बड़ा ही निर्मम व्यवहार किया। ऐसा कहा जात है कि जब उन्होने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तो उनको जिन्दा ही दीवार में चिनवा दिया गया। बाद में मुगलों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिये जो युद्ध हुआ उसमें गुरु गोविन्दसिंह ने राजकुमार मुअज्जम की सहायता की। जब वह विजयी हुआ तो गुरु ने उसके यहां नौकरी कर ली। जब वे अगले वर्ष दक्षिण गये तो किसी पठान ने उनकी हत्या १७०८ ई० में कर दी।

बन्दा बैरागी

गुरु गोविन्दसिंह ने गुरु की परम्परा का अन्त किया जिसके कारण सिक्खों में अराजकता उत्पन्न हो गई और उन्होंने छोटे-छोटे राज्य तथा जागीरें पंजाब में स्थापित करनी आरम्भ कर दीं। इसी समय बन्दा बैरागी नामक व्यक्ति स्थल पर आया और उसने सिक्खों का नेतृत्व करना आरम्भ किया। उसका कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था और उसके आने से सिक्खों में उत्साह तथा वीरता का संचार हुआ। सिक्खों ने तुरन्त ही सरहिन्द पर आक्रमण किया और वहाँ के फौजदार वजीर खाँ का वध कर उसको पेड़ पर लटका दिया और मुसलमानों का नृशंसता से वध किया गया। उसके आस-पास के सभी प्रदेशों पर अधिकार किया। वह उत्तर प्रदेश को भी अपने अधिकार में करना चाहता था, किन्तु वह ऐसा न कर सका। मुगल सम्राट बहादुरशाह जब अपने भाई कामबख्श को पराजित कर उत्तर भारत आया तो सन् १७१० ई० में उसने सिक्खों का दमन करने के लिये एक विशाल सेना पंजाब भेजी। मुगलों ने समस्त पंजाब पर अधिकार कर लिया। पर्याप्त समय तक बन्दा बैरागी ने उनका सामना किया किन्तु अन्त में सन् १७१५ ई० में वह आत्म-समर्पण करने पर बाध्य हुआ। मुगलों ने उसके तथा उसके साथियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया। सन् १६१६ ई० में उसका वध कर दिया गया।

बन्दा बैरागी की मृत्यु के कारण सिक्खों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा किन्तु सिक्खों ने पुनः अपना संगठन करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद कपूर सिंह ने सिक्खों का नेतृत्व किया किन्तु उसको कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। विदेशी आक्रमणों के कारण मुगल शक्ति का ह्रास होना आरम्भ हुआ और सिक्खों को अपनी शक्ति को

उन्नत करने का अवसर प्राप्त हुआ। अहमदशाह अब्दाली द्वारा सिक्खों को बड़ी हानि उठानी पड़ी किन्तु उसके भारत से पलायन करने के उपरान्त सिक्खों ने पुनः पंजाब पर अधिकार किया। उनके सरदारों ने छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण किया और वे 'मिसलों' में विभाजित हो गये जिनका संगठन आगे चलकर राजा रणजीतसिंह ने किया।

सिक्खों के गुरुओं की अवली

१. गुरु नानक (१४६९–१५३८ ई०)
२. अंगद (१५३८–५२ ई०)
३. अमरदास (१५५२–७४ ई०)
|
पुत्री
बीबी भानी——४. रामदास (१५७४–८१)
|
५. अर्जुन (१५८१–१६०६)
६. हरगोविन्द (१६०६–४५)

गुरुदीत्ता
७. हरिराय (१६४५–६१ ई०)
८. हरिकिशन (१६६१–६४ ई०)

९. तेगबहादुर (१६६४–७५ ई०)
१०. गोविन्दसिंह (१६७५–१७०८ ई०)

महत्वपूर्ण प्रश्न

(१) गुरु गोविन्दसिंह पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५९)

(२) गुरु गोविन्दसिंह ने किस तरह सिक्खों के धार्मिक समुदाय को सैनिक समुदाय में बदल दिया? इस परिवर्तन का क्या परिणाम हुआ? (१९६१)

९ मुगल और मरहठे

मुगल साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु मरहठे थे जिन्होंने दो शताब्दी से अधिक भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और मुगल-साम्राज्य के पतन में विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया। मरहठा जाति को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित करने तथा मरहठा साम्राज्य का निर्माण करने में शिवाजी अवश्य सफल हुये, किन्तु यहाँ यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह भारतीय इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम था। इसको हम एक विघ्न घटना स्वीकार नहीं करते। मरहठा शक्ति के

उत्थान में विभिन्न कारणों ने योग दिया और वह दिन प्रति दिन अधिक बलवती बनती गई।

मरहठा शक्ति के उत्थान के कारण

उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि मरहठों के उत्थान के विभिन्न कारण थे जिनमें से मुख्य पर निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला जायेगा—

(१) महाराष्ट्र की प्राकृतिक दशा—मरहठों के उत्थान में उनके प्रदेश की प्राकृतिक दशा ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। मरहठा देश विन्ध्याचल पर्वत तथा सतपुड़ा पर्वत की शृङ्खलाओं तथा नर्मदा एवं ताप्ती नदियों से उत्तर तथा मध्य भारत से सुरक्षित है तथा उसके पश्चिम की ओर अरब सागर तथा पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ हैं। इस प्रकार वह पूर्व के अतिरिक्त सब ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है और कोई एक सेना वर्षों भर परिश्रम करने के उपरान्त भी उस प्रदेश पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त मरहठा प्रदेश पहाड़ी प्रदेश है जिसने उनकी बड़ी रक्षा की। मरहठों ने इन पहाड़ियों पर दुर्गों का निर्माण किया जिन पर अधिकार करना सरल नहीं था। कम वर्षा, उपजाऊ भूमि की अधिकता का अभाव आदि कारणों के द्वारा इस प्रदेश के निवासी बड़े परिश्रमी थे तथा उनमें वीरता और साहस की पर्याप्त मात्रा विद्यमान थी। प्राकृतिक गुणों के कारण वहाँ के निवासियों में विभिन्न गुणों का उदय हुआ।*

> **मरहठा शक्ति के उत्थान के कारण**
>
> (१) महाराष्ट्र की प्राकृतिक दशा।
> (२) धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव।
> (३) स्थानीय संस्थायें।
> (४) दक्षिण के राज्यों में हिन्दुओं का महत्व।
> (५) राजनीतिक स्थिति।
> (६) औरंगजेब की धार्मिक नीति।
> (७) एक भाषा।
> (८) शिवाजी का व्यक्तित्व।

(२) धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव—समस्त भारत में पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक क्रान्ति हुई जिससे महाराष्ट्र भी अछूता न रहा, वरन् यह कह सकते हैं कि महाराष्ट्र की धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव वहाँ के निवासी मरहठों पर तीव्र गति से हुआ। इस क्रान्ति का श्रेय किसी एक वर्ग को प्राप्त नहीं वरन् इस आन्दोलन में साधारण जनता ने बड़ा सहयोग दिया।† यह सर्वमान्य है कि राजनीतिक क्रान्ति के पूर्व धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्ति का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके द्वारा समाज तथा धर्म के

* "Nature compelled them to develop self reliance, courage, perseverance, a stern simplicity, a rough straightforwardness, a sense of social equality and consequently pride in the dignity of man as man." —Sir, J. N. Sarkar.

† "This religious revival was the work also of the peoples, of the masses, and not of the classes. At its head were saints and prophets, poets and philosophers, who sprang chiefly from the lower orders of society—tailors, carpenters, potters, gardeners, and even mahars (Scavengers), more often than Brahmans." —Ranade.

दोषों तथा उनके बाह्य आडम्बरों का विरोध किया जाता है तथा उनके संगठन में इसका बड़ा महत्व रहता है। ज्ञानेश्वर, हेमाद्र और चक्रधर से लेकर एकनाथ, तुकाराम, रामदास तक समस्त सन्तों ने जिस भक्ति सिद्धान्त पर बल दिया तथा जाति-पांति के भेद-भाव के अन्त का प्रचार किया उसके द्वारा समस्त महाराष्ट्र प्रदेश में एकता की भावना जागृत हुई और उनमें राष्ट्रीय चेतना उदय हुई। कुछ सन्तों ने जातीय रक्षा के पाठ की शिक्षा भी प्रदान की।

(३) स्थानीय संस्थायें—महाराष्ट्र की स्थानीय संस्थाओं का भी महाराष्ट्र के उत्थान में बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहा है। ग्राम संस्थाओं पर विदेशी प्रभाव नहीं पड़ पाया। प्रत्येक गांव में पंचायतों की व्यवस्था थी जो छोटे-छोटे मामलों का निर्णय करती थी। इस प्रकार स्वायत्त शासन की प्रथम इकाई इस प्रदेश में विद्यमान रही जिसके कारण वहाँ के निवासी स्वतन्त्रता प्रेमी रहे और उनको स्वतन्त्रता बड़ी प्रिय रही।

(४) दक्षिण के राज्यों में हिन्दुओं का महत्व—दिल्ली सल्तनत के कुछ महत्वपूर्ण सुल्तानों ने दक्षिण भारत को अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न किया किन्तु उनको सफलता स्थायी न हो सकी और कुछ समय के उपरान्त हो उनकी शासन-व्यवस्था के शिथिल होने पर दक्षिण में पुनः नये राजवंशों का उदय हुआ जिन्होंने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार दक्षिणी प्रदेशों पर मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति का उतना अधिक प्रभाव नहीं हो पाया जितना कि उत्तरी भारत के प्रदेशों पर हुआ। यद्यपि दक्षिण में मुसलमान बहमनी वंश की स्थापना अवश्य हुई किन्तु उस राज्य पर भी हिन्दुओं का विशेष प्रभाव था। उनकी सेना में पर्याप्त हिन्दू सम्मिलित थे और उनको अपनी रक्षा के लिये उन पर निर्भर रहना अवश्यम्भावी था। इनकी धार्मिक नीति उदार थी और उनका हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार था। दक्षिण के मुसलमान शासकों के हरम में हिन्दू स्त्रियां थीं जिनका शासकों पर बड़ा प्रभाव था। उन मुसलमानों का भी इन राज्यों में बड़ा प्रभाव था जिन्होंने किसी विशेष कारणवश इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उस समय की राजनीति में मरहठों का विशिष्ट स्थान था और वे उच्च पदों पर आसीन थे। मुरारीराय, मदन पंडित तथा राजराय परिवार के कई सदस्य गोलकुण्डा राज्य में दीवान के पद पर आसीन रह चुके थे। मरहठे राजनीति तथा कूट-नीति में भी दक्ष थे और इसी कारण प्रायः मरहठे पंडित राजदूतों के पद पर आसीन किये जाते थे।

(५) राजनीतिक स्थिति—दक्षिण की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने भी मरहठों के उत्थान में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। अहमदनगर पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। बीजापुर राज्यों पर मुगलों के आक्रमण निरन्तर हो रहे थे और उसकी दशा इन आक्रमणों के कारण बड़ी सोचनीय हो रही थी। बीदर तथा बरार के राज्यों का पहले से ही अन्त हो चुका था। गोलकुण्डा ने अतुल धन देकर कुछ समय तक अपनी रक्षा की किन्तु औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति के कारण वह भी अपनी अन्तिम सांस लेने लगा था। पुर्तगालियों की दशा शोचनीय थी। उनके पास अपनी रक्षा के लिये पर्याप्त साधनों का अभाव था। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शैशव काल

[illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

(६) [illegible]

भोंसला परिवार का संक्षिप्त परिचय

शाहजी—शिवाजी के पिता [illegible] भोंसले था। वे [illegible] के [illegible]। इनका जन्म १६ मार्च सन् १५९४ ई० में हुआ था। सन् १६०४ ई० में इनका विवाह जीजाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त सन् १६२० ई० से शाहजी ने निजामशाही वंश की सेवा करना आरम्भ कर दिया और कुछ ही समय बाद अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण इनके मान तथा प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और वे मलिक अम्बर के दाहिने हाथ समझे जाने लगे। कुछ विशेष कारणों से मलिक अम्बर से इनकी अनबन हो गई और इनको बाध्य होकर आदिलशाह वंश की सेवा करनी पड़ी, किन्तु मलिक अम्बर की मृत्यु के उपरान्त वे पुनः निजामशाही वंश की सेवा में आ गये। जब निजामशाह ने मराठों के साथ विश्वासघात करना आरम्भ कर दिया तो मराठों में उसके विरुद्ध असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित हुई और शाहजी ने उसके विरुद्ध मुगलों का समर्थन करना आरम्भ कर दिया, किन्तु यह अवस्था अधिक काल तक स्थायी नहीं हो सकी। महावत खाँ के आक्रमण के समय शाहजी ने फिर निजामशाही वंश की सेवा करना आरम्भ कर दिया और अहमदनगर की रक्षा के लिये उसने गोलकुण्डा और बीजापुर के शासकों का सहयोग प्राप्त किया। जिस समय शाहजहाँ ने अहमदनगर का अन्त करने के लिये तीन ओर से आक्रमण किया और बीजापुर और गोलकुण्डा को अपनी ओर मिला लिया तो शाहजी को बड़ी भीषण आपत्ति का सामना करना पड़ा। अहमदनगर के पतन के उपरान्त

शाहजी ने सन् १६३६ ई० में आदिलशाही वंश की सेवा करना आरम्भ किया। उन्होंने कर्नाटक की विजय में आदिलशाही वंश को बड़ा सहयोग प्रदान किया। वे बंगलौर में निवास करने लगे। इधर उनके योग्य तथा कर्मठ पुत्र शिवाजी ने बीजापुर के कुछ दुर्गों को अपने अधिकार में करने का कार्य आरम्भ किया, जिसके कारण बीजापुर का सुल्तान उनको तथा उनके पुत्र को सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगा। सन् १६४८ ई० में शाहजी बन्दी बना लिये गये, किन्तु आठ मास के उपरान्त वे बन्दीगृह से मुक्त कर दिये गये। सन् १६६४ ई० मे घोड़े से गिर कर उनकी मृत्यु हुई। उनकी सेवायें दक्षिण के लिये बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उनको जीवन भर मुगलो का सामना करना पड़ा। उन्होने मरहठा संस्कृति के प्रचार में बड़ा सक्रिय भाग लिया। दक्षिण की राजनीति मे उनका प्रमुख हाथ था।

शिवाजी—मरहठा जाति के इतिहास तथा मुगल-कालीन युग मे शिवाजी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वे एक राष्ट्र-निर्माता तथा स्वराज्य के संस्थापक थे। उन्होंने इन दोनों कार्यों के लिए जीवन पर्यन्त घोर परिश्रम किया और अनेक आपत्तियों तथा विपत्तियों का सामना अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ किया। उनका जीवन साधारणतया तीन भागों मे विभक्त किया जाता है—

शिवाजी मरहठा

(१) सन् १६२७ से १६५९ तक—यह काल उनके जन्म से अफजल खां की मृत्यु तक का है।

(२) सन् १६५९ से १६७४ तक—यह काल उनके मुगलो के साथ संघर्ष का काल था।

(३) सन् १६७४ से १६८० तक—इस काल मे शिवाजी के उन कार्यों का दिग्दर्शन होता है जो उन्होंने राज्याभिषेक के उपरान्त किये।

शिवाजी के जीवन का प्रथम काल (१६२७ से ५९ तक)

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन—यह निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जाता है—

(१) *जन्म तथा बाल्यकाल*—शिवाजी की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। कुछ विद्वानों ने इनकी जन्म-तिथि २० अप्रैल १६२७ बतलाई है और कुछ के अनुसार ९ फरवरी १६३० है। उनका जन्म शिवनेर के पहाड़ी दुर्ग में हुआ। उनके पिता का नाम शाहजी भोंसला था और माता का नाम जीजाबाई था। वह लखोजी जाधव राव की पुत्री थी। शाहजी ने एक और विवाह किया और वे अपनी नई पत्नी के साथ अपनी नई जागीर में चले गये और वे अपने पुत्र तथा प्रथम पत्नी जीजाबाई को ब्राह्मण दादाजी कोणदेव के संरक्षण में पूना छोड़ गये। इस प्रकार शेरशाह के समान शिवाजी भी पर्याप्त समय तक अपने जन्म के उपरान्त अपने पिता से अनभिज्ञ रहे। इस प्रकार शिवाजी पर उनकी माता तथा गुरु दादाजी कोणदेव का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी माता जी ने उनको रामायण तथा महाभारत के नायकों के कार्यों का

वर्णन कहानियों के रूप में सुनाया, जिनका शिवाजी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी उनके समान ही अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प किया। उनके हृदय में हिन्दू धर्म तथा गौ, ब्राह्मण आदि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अतः यह माननीय है कि जैसे अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में वैसे ही शिवाजी में विशिष्ट गुणों का समावेश करने का श्रेय उनकी माता जी जीजाबाई तथा दादा कोंणदेव को प्राप्त है।

(२) शिक्षा—शिवाजी को साहित्यिक शिक्षा प्राप्त नहीं थी जिस प्रकार हैदरअली अथवा रणजीतसिंह को प्राप्त नहीं हो पाई थी। उनके गुरु दादाजी कोंणदेव ने उनको घुड़सवारी, शस्त्र-विद्या तथा प्रासेट करना सिखलाया। इसके अतिरिक्त शासन-प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने की शिक्षा भी उनको प्राप्त हुई। दादाजी की गणना उच्च कोटि के प्रबन्धकर्त्ताओं में की जाती है। इस प्रकार माता जीजाबाई तथा दादा कोंणदेव के प्रभाव के कारण उनमें वे समस्त गुण विद्यमान हुए कि वे राष्ट्र का निर्माण करें और स्वतन्त्र राज्य की स्थापना पर हिन्दू धर्म, गौ, ब्राह्मण आदि की रक्षा करने में सफल हो सके।*

(३) धार्मिक गुरुओं का प्रभाव—शिवाजी पर धार्मिक गुरुओं का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे सन्त तुकाराम तथा सन्त रामदास से बहुत अधिक प्रभावित हुवे और वे उनको अपना वास्तविक धार्मिक गुरु मानते थे। रामदास की शिक्षाओं के द्वारा ही उनमें जाति तथा धर्म प्रेम की भावना का उदय विशिष्ट रूप से हुआ और उन्होंने अपना जीवन इसके लिये उत्सर्ग कर दिया।†

शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें—शिवाजी को जनता से सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर सन् १६४० ई० के उपरान्त प्राप्त हुआ जब वे बंगलौर की यात्रा कर महाराष्ट्र वापिस आये। इससे पूर्व भी वे दादा कोंणदेव के साथ सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहते थे। उन्होंने मवाला नवयुवकों से घनिष्ट सम्बन्ध की स्थापना की जिन्होंने शिवाजी के साथ अनेक साहसपूर्ण कार्य किये। प्रारम्भ में उन्होंने अपनी जागीर की उचित व्यवस्था की जहां अराजकता का साम्राज्य था। उन्होंने दुष्ट व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिया और अपनी समस्त जागीर में शान्ति की स्थापना की। उन्होंने कृषि को प्रोत्साहन दिया। इसके पश्चात् उन्होंने आस-पास के दुर्गों पर अधिकार करना आरम्भ किया।

(१) मवालों की आठ घाटियाँ—सर्वप्रथम शिवाजी ने मवालों की आठ घाटियों को अपने अधिकार में किया।

(२) सिंहगढ़ पर अधिकार—सन् १६४४ ई० में सिंहगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार हो गया और उन्होंने बीजापुर राज्य के विरुद्ध युद्ध करना आरम्भ किया।

---

* "There seems to be little doubt that his career was inspired by a real *desire to free his country form what he considered* to be a foreign tranny and not by a mere love of plunder." —Rawlinson, Page 30.

† "In the movement of Swaraj Shivaji is supposed to represent the physical and Ram Das the moral force of the Nation." —Sardesai.

(३) रोहिन्दा पर अधिकार—इसी वर्ष उन्होंने रोहिन्दा के दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया और रायगढ़ के दुर्ग का निर्माण करवाया।

(४) चकन पर अधिकार—उन्होंने शीघ्र ही चकन के दुर्ग को अपने अधिकार में किया।

(५) तोर्ण पर अधिकार—सन् १६४६ ई० में शिवाजी ने तोर्ण के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। यहां से शिवाजी को बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ।

(६) पुरन्दर पर अधिकार—इन विजयों के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने पुरन्दर के प्रसिद्ध दुर्ग को अपने अधिकार में करने की योजना बनाई। इस दुर्ग पर बीजापुर का अधिकार था और इसका अधिकारी मरहठा सरदार नीलो नीलकंठ था। सन् १६४८ ई० में शिवाजी ने बड़ी योग्यता तथा चालाकी से दुर्ग पर अधिकार किया। इस दुर्ग पर अधिकार स्थापित होने से शिवाजी का महत्व बहुत बढ़ गया और बीजापुर राज्य में खलबली मच गई।

(१) मवालों की भाठ घाटियों पर अधिकार
(२) सिंहगढ़ पर अधिकार
(३) रोहिन्दा पर अधिकार
(४) चकन पर अधिकार
(५) तोरण पर अधिकार
(६) पुरन्दर के दुर्ग पर अधिकार
(७) सूपा पर अधिकार
(८) जावली-विजय
(९) जावली-विजय का महत्व
(१०) मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष
(११) कोंकण की विजय
(१२) मरहठे और बीजापुर व अफजल खाँ की मृत्यु

बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी को बन्दी कर लिया। शिवाजी ने जब मुगलों की सहायता बीजापुर के विरुद्ध करने की घोषणा की तो बाध्य होकर शाहजी को मुक्त कर दिया गया।

(७) सूपा पर अधिकार—कुछ समय तक शिवाजी शान्त रहे, किन्तु कुछ समय उपरान्त उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया और सूपा के दुर्ग पर अधिकार किया। इस प्रकार लगभग दस वर्षों के अन्तर्गत शिवाजी का अधिकार अपनी जागीर के आस-पास के प्रदेशों के दुर्गों पर हो गया। शिवाजी ने इन समस्त प्रदेशों की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इस समय की शिवाजी की परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार सारदेसाई का मत है कि "शिवाजी ने मीरा तथा नीरा, पूना तथा शिखल के बीच के प्रदेश में अपनी सत्ता की स्थापना की जिसकी रक्षा के लिये चकन, पुरन्दर, सूपा तथा बारामती के प्रसिद्ध दुर्ग थे जिन पर बिना रक्त बहाये तथा बिना अधिक मूल्य चुकाये अधिकार कर लिया गया था।"

(८) जावली विजय—कुछ समय तक शान्त रहने के उपरान्त उसका ध्यान जावली की ओर आकर्षित हुआ जो सितारा जिले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थित था। इस पर मरहठा सरदार चन्द्रराव का आधिपत्य था जो शिवाजी के विस्तार को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। शिवाजी ने उससे मुक्ति पाने के अभिप्राय से एक षड्यन्त्र रचा। उसका वध कराया गया और शीघ्र ही शिवाजी ने आक्रमण कर दुर्ग पर अपना अधिकार

स्थापित किया। कुछ समय उपरान्त उसका [illegible] अधिकार हो गया और इस प्रकार जावली का प्रदेश उसके हाथ में आ गया। जावली विजय के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार का कथन है कि "शिवाजी की जावली-विजय जानबूझकर की गई हत्या एवं संगठित छल-कपट का परिणाम था। उस समय उनकी शक्ति बहुत कम थी और वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये विवेकपूर्ण साधनों को न अपना सका। उसके जीवन की इस घटना में प्रशंसा की केवल एक ही चिह्न है कि उसने जो अपराध किया वह पाखण्ड का ढोंग दिखाने के लिये नहीं किया। उसने इस बात की डींग नहीं मारी कि तीन मोरे भाइयों को हत्या हिन्दू 'स्वराज्य' की स्थापना के लिये अथवा उस विश्वासघाती शत्रु को रास्ते से हटाने के लिये की गई थी, जिसने उसकी उदार क्षमता का अनेक बार दुरुपयोग किया था।"*

(९) जावली विजय का महत्त्व—प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता सरदार [illegible] के शब्दों में "जावली की विजय शिवाजी के जीवन में एक उल्लेखनीय घटना थी क्योंकि इस विजय के बाद उनके राज्य के दक्षिण-पश्चिम में विस्तार के लिये द्वार खुल गये थे। दूसरे इस विजय से उनकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई क्योंकि सेना के कई हजार पैदल मावले सिपाही भी उनकी सेना में भर्ती हो गये। जावली के मिल जाने से शिवाजी मावल-प्रदेश का स्वामी बन गया। यह प्रदेश सेना में भर्ती के लिए बहुत ही उपयुक्त स्थान था। तीसरे, शिवाजी के हाथ वह खजाना लग गया जो मोरों ने कई पीढ़ी से जमा कर रखा था।"

(१०) मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष—मुगलों से शिवाजी का प्रथम संघर्ष सन् १६५७ ई० में हुआ जब मुगल साम्राज्य के दक्षिणी सूबेदार शाहजादा औरंगजेब ने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। शिवाजी ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा और कुछ शर्तों पर उसने अपनी सेवायें मुगलों को समर्पित करनी चाहीं, किन्तु जब मुगलों ने उनकी शर्ते मानने से इन्कार कर दिया तो उसने जुन्नार और अहमदनगर के मुगल जिलों को लूटना आरम्भ कर दिया। बाद में यहाँ से शिवाजी को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। औरंगजेब ने मराठों को इन प्रदेशों से निकाल दिया। कुछ समय पश्चात बीजापुर के सुल्तान ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की तो शिवाजी को भी अपने कार्य स्थगित करने पड़े। उसने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु उससे औरंगजेब को संतोष न हुआ। वह शिवाजी की शक्ति का अन्त करने के लिये सक्रिय कदम उठाना चाहता था किन्तु शाहजहाँ की बीमारी का समाचार प्राप्त होने के कारण उसको उत्तरी भारत को पलायन करना अनिवार्य हो गया और दक्षिण की स्थिति पूर्ववत् हो गई।

* "The conquest of Javli was the result of deliberate murder and organised treachery on the part of Shivaji. His power was then in its infancy, and he could not afford to be scrupulous in the choice of the means of strengthening himself..The only redeeming feature of his dark episode in his life is that the crime was not aggravated by hypocrisy......Shivaji never pretended that the murder of the three Mores was prompted by a desire to found a Hi d 'Swaraj' or to remove from his path a treacherous enemy who had repeatedly abused his generous leniency. —Sarkar.

(११) कोंकण विजय—उत्तरी भारत में शाहजहां के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार युद्ध होने के कारण शिवाजी को अपने राज्य के विस्तार करने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने शीघ्र ही जंजीरा के सिद्दियों पर आक्रमण किया जहां उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६५७ ई० के अन्त में उसने कोंकण पर आक्रमण कर कल्याण तथा भिवन्दी के दुर्गों को अपने अधिकार में किया और शीघ्र ही उन्होंने दक्षिण कोंकण पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण कोकण पर उनका अधिकार हो गया।

(१२) मरहठे और बीजापुर—अफजल खां की मृत्यु—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर राज्य भयभीत हो गया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने पर उसका अल्प-वयस्क पुत्र अली आदिलशाह बीजापुर के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। राज्य का समस्त कार्य उसकी माता करती थी। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को लिखा कि वह अपने पुत्र पर नियन्त्रण रखे, किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके पर ऊपर उनका कोई नियन्त्रण नहीं है। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर बीजापुर की ओर से शिवाजी के दमन करने के कार्य पर विचार होने लगा। अफजल खां ने यह कार्य अपने ऊपर लिया और यह घोषणा की कि वह शिवाजी को बिना अपने घोड़े से उतरे ही बन्दी बनाकर राजदरबार में उपस्थित करेगा। अफजल खां एक विशाल सेना जिसमें १२,००० सैनिक थे लेकर शिवाजी का दमन करने के अभिप्राय से चल पड़ा। उनको भयभीत करने के उद्देश्य से मार्ग में दुर्गों तथा मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ अफजल खां मरहठा प्रदेश में घुस गया। जब उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि शिवाजी जावली के जंगलों में प्रतापगढ़ में हैं तो अफजल खां प्रतापगढ़ की ओर बढ़ा और वहां उसने अपना वाई में घेरा डाला। जब अफजल खां ने शिवाजी के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करनी अपने हित में नहीं समझी तो उसने छल से शिवाजी पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने शिवाजी के पास कृष्ण जी भास्कर को अपना दूत बनाकर भेजा और उनको बुलाकर लाने की प्रार्थना की। इस पर शिवाजी ने अपने दूत पन्त जी गोपीनाथ को अफजल खां के विचार जानने के लिये भेजा। उनको अफजल खां के उद्देश्य का पता लग गया। अन्त में दोनों में मुलाकात होनी निश्चय हुई। एक पंडाल में दोनों की मुलाकात हुई। दोनों के साथ दो-दो शस्त्रधारी सैनिक थे। शिवाजी ने पंडाल में पहुँचकर झुककर सलाम किया और अफजल खां ने उनको गले लगाया। उसने शिवाजी का गला दबाया और खंजर से उनके प्राण लेने का प्रयत्न किया, किन्तु लोहे के कवच के कारण जिसको शिवाजी ने पहन रखा था उनके प्राण बच गये। शिवाजी ने शीघ्र ही बाघनख से अफजल खां पर आक्रमण कर उसकी आंतें निकाल लीं और बिछुवे को अफजलखां की कोख में घुसेड़ दिया। अफजल खां घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और कुछ समय के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई।

इतिहासकारों का इस संबंध में एक मत नहीं है कि आक्रमण पहले अफजलखां ने किया या शिवाजी ने अंग्रेज इतिहासकारों की यह धारणा है कि आक्रमण पहले शिवाजी ने किया, किन्तु भारतीय इतिहासकारों का यह मत है कि पहले आक्रमण

अफ़ज़ल खाँ ने किया और शिवाजी ने अपनी रक्षा के लिये शस्त्र का प्रयोग किया।

शिवाजी के जीवन का द्वितीय काल (१६५६ से ७४ तक)

अफ़जलखां की मृत्यु के उपरान्त शिवाजी के जीवन का द्वितीय काल प्रारम्भ होता है जो सन् १६५६ से १६७४ ई० तक का काल है जिसमें उनका मुगलों के साथ विशेष रूप में संघर्ष हुआ।

शिवाजी का मुगलों से संघर्ष

अफ़जलखां के वध के कारण बीजापुर में ही नहीं वरन् समस्त भारत में खलबली मच गई। शिवाजी की इस विजय ने उसके साहस तथा उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि की और उसका ध्यान मुगल-प्रदेशों पर लूट-मार तथा छापे मारने की ओर आकर्षित हुआ। जब औरङ्गजेब को यह सूचना प्राप्त हुई तो उसने उसका दमन करने का दृढ़ निश्चय किया।

शिवाजी के मुगलों से संघर्ष

(१) शिवाजी और शाइस्ता खां।
(२) सूरत की प्रथम लूट।
(३) शिवाजी और जयसिंह।
(४) पुरन्दर की संधि।
(५) शिवाजी की आगरा यात्रा।
(६) शिवाजी की मुक्ति।
(७) मुगलों से पुनः संघर्ष।

(१) शिवाजी और शाइस्ता खां—उत्तराधिकारी युद्ध से निवृत्त होने के उपरान्त औरङ्गजेब ने मरहठों की नव-स्थापित शक्ति का अन्त करने का आदेश अपने मामा शाइस्ता खाँ को दिया जो इस समय दक्षिण का वाइसराय था। उसने बीजापुर को अपनी ओर कर महाराष्ट्र प्रदेश पर दो ओर से आक्रमण करने का आयोजन किया। वह स्वयं अहमदनगर से मुगल सेना सहित सन् १६६० ई० में चल पड़ा। मार्ग के दुर्गों पर अपना अधिकार करता हुआ वह १६ मई को पूना पहुँच गया। विभिन्न दुर्गों के हाथ से निकल जाने के कारण शिवाजी की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। उसने अपने आपको मुगलों से खुलकर तथा डटकर सामना करने में असमर्थ पाया। इधर शाइस्ता खां ने वर्षा ऋतु पूना में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। आस-पास के प्रदेशों पर मुगलों ने अपना अधिकार कर लिया। शिवाजी बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मुगलों को तितर-बितर करने का एक अन्य उपाय सोचा। शाइस्ता खां उसी महल में ठहरा था जिसमें शिवाजी ने बचपन में निवास किया था। १५ अप्रैल १६६३ ई० की रात्रि के समय भेष बदल कर चुने हुये मरहठे सैनिकों ने महल पर आक्रमण किया। शिवाजी उसके सोने के कमरे में शीघ्र ही पहुँच गये। मरहठों के आक्रमण का समाचार सुनकर वह भागने लगा और उसका अंगूठा कट गया। मुगलों के बहुत से व्यक्ति मारे गये और उनकी सेना में खलबली मच गई। शिवाजी शीघ्र ही अपने सैनिकों को लेकर सिंहगढ़ भाग गये। इस कार्य से उनकी धाक जम गई और उनके मान प्रतिष्ठा में चार चांद लग गये। औरंगजेब शाइस्ता खां से अप्रसन्न हो गया और उसको बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

(२) सूरत की प्रथम लूट—इस विजय के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने साम्राज्य के सबसे समृद्धिशाली व्यापारिक नगर सूरत को लूटने

का निश्चय किया। उन्होंने अपनी इस योजना को पूर्णतया गुप्त रखा। १० जनवरी १६६४ को उन्होंने सूरत पर आक्रमण किया। वहां के गवर्नर ने शिवाजी से सन्धि करने की वार्त्तालाप चलाई, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। १६ जनवरी से २० जनवरी तक मरहठों ने सूरत नगर को खूब लूटा और लूट का माल लेकर मरहठे अपने प्रदेश वापिस चले गये, इस अभियान से मरहठों को अतुल धन हाथ लगा।

(३) शिवाजी और जयसिंह—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के कारण औरङ्गजेब बड़ा चिन्तित तथा भयभीत हुआ। उसने आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया और उसको शिवाजी को कुचलने का आदेश दिया। मिर्जा राजा जयसिंह अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों, कूटनीतिज्ञों तथा सेनापतियों में था। वह अपने उत्साह तथा साहस का परिचय भारत और मध्य एशिया के युद्धों में दे चुका था।

(४) पुरन्दर की सन्धि—उसने सन् १६६५ ई० में पूना पहुँच कर मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह से कार्य-भार संभाल कर शिवाजी के दमन करने की योजना का निर्माण किया। उसने आस-पास के सरदारों को मिलाकर एक संघ बनाया और शिवाजी के राज्य के पूर्वी भाग में सेना लेकर पड़ा रहा, जिससे बीजापुर राज्य से उसको कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सके। उसने शीघ्र ही शिवाजी के राज्य पर आक्रमण करना आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही पुरन्दर तथा रायगढ़ के दुर्गों को घेर लिया। शिवाजी में इतनी विशाल सेना तथा योग्य सेनानायक मिर्जा राजा जयसिंह का सामना करने की क्षमता नहीं थी। अतः सन्धि की वार्ता आरम्भ हो गई। दोनों अर्ध-रात्रि तक सन्धि की शर्तों के विषय में विचार करते रहे और अन्त में निर्णय पर पहुँचे। यह सन्धि १६६५ ई० में हुई जो पुरन्दर की सन्धि के नाम से विख्यात है।

इस सन्धि में निम्न शर्तें तय की गईं—

(क) शिवाजी ने २३ किले और उनमें लगे हुये प्रदेशों को मुगलों को समर्पण कर दिया। इनकी आय लगभग ४ लाख हून थी। ये प्रदेश मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर दिये गये।

(ख) रायगढ़ तथा उसके समीप के १२ दुर्गों पर शिवाजी का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। ये उस समय तक उसके अधिकार में रहेंगे जब तक वह मुगलों के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करता रहे।

(ग) शिवाजी को मुगल दरबार की उपस्थिति से मुक्त कर दिया गया, किन्तु उसके पुत्र शम्भु जी को ५,००० घोड़ों के एक दल के साथ मुगल-सम्राट की सेवा में रहना होगा और इस सेवा के उपलक्ष में उसको सम्राट की ओर से एक जागीर प्रदान की जायेगी।

(घ) शिवाजी को अपनी हानि की पूर्ति के लिये बीजापुर राज्य के कुछ जिले तथा प्रदेश चौथ और सारदेशमुखी वसूल करने के लिये मिले।

इस सन्धि के परिणामस्वरूप शिवाजी ने मुगलों की सहायता उस अभियान में की जो जयसिंह ने दक्षिण में बीजापुर के विरुद्ध किया। जयसिंह ने बीजापुर पर

आक्रमण किया, किन्तु उसको भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी ने पन्हाला पर आक्रमण किया, किन्तु उसको भी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(५) शिवाजी की आगरा यात्रा—जयसिंह यह चाहता था कि पुरन्दर की सन्धि स्थायी रहे। वह चाहता था कि शिवाजी और औरङ्गजेब में भेंट हो जाये। उसने शिवाजी को आगरे जाने के लिये तैयार किया और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया। शिवाजी ने बड़े संकोच के साथ आगरा जाना स्वीकार किया। अपने राज्य की सुव्यवस्था करने के उपरान्त शिवाजी अपने पुत्र शंभा जी को साथ लेकर आगरे की ओर चल पड़े। मई १६६६ ई० को शिवाजी ने आगरे पहुँच कर औरङ्गजेब से भेंट की।

शिवाजी ने दरबार में जो व्यवहार देखा उससे उनको बड़ा क्रोध आया। औरङ्गजेब ने उनसे बातचीत न कर उनका बड़ा अपमान किया और उनको पंच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। शिवाजी इस अपमान को सहन नहीं कर सके और वे पंक्ति से निकलकर एक ओर खड़े हो गये। औरङ्गजेब ने शिवाजी और उनके पुत्र को बन्दीगृह में डाल दिया और फिर औरङ्गजेब ने उनके मरवाने का निश्चय किया। शिवाजी बड़े असमंजस में पड़ गये और अपनी मुक्ति पर विचार करने लगे। अन्त में उनको एक बहाना मिल गया। उन्होंने घोषणा की कि वे बीमार हो गये हैं और मिठाई की टोकरियां ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तों के यहां भिजवाना आरम्भ किया।

(६) शिवाजी की मुक्ति—जब मिठाइयों की टोकरियाँ इस प्रकार जाने लगीं तो १९ अगस्त को शिवाजी और उसका पुत्र शम्भा जी दो टोकरियों में बैठकर बाहर निकल गये और उनके स्थान पर हीरोजी फरजंद जो उनकी आकृति से मिलता-जुलता था, को लेटा दिया गया। वे एक सुनसान स्थान में पहुँच गये। वहां उनके लिये घोड़े तैयार थे। उन्होंने संन्यासियों का भेष धारण कर मथुरा की ओर प्रस्थान किया। शम्भा जी को मथुरा छोड़ शिवाजी ने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान किया। गोंडवाना तथा गोलकुण्डा होते हुए शिवाजी २२ सितम्बर १६६६ को रायगढ़ पहुँच गये। शिवाजी का स्वास्थ्य खराब हो गया और वे लम्बे विश्राम के लिये विवश हुये। जयसिंह के स्थान पर जसवन्तसिंह दक्षिण के सूबेदार नियुक्त हुये। वे दक्षिण में व्यर्थ का युद्ध नहीं करना चाहते थे। अतः मरहठों तथा मुगलों में सन्धि हो गई और शिवाजी को 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई।

(७) मुगलों के साथ पुनः संघर्ष—यह सन्धि भी स्थायी न हो सकी क्योंकि औरङ्गजेब का हृदय शिवाजी के प्रति साफ नहीं था और शिवाजी भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये उनको मुगलों से अवश्य युद्ध करना होगा। उसने उन दुर्गों पर पुनः अधिकार करना आरम्भ किया जो पुरन्दर की सन्धि के कारण उसने मुगलों को दे दिये थे। उसने सिंहगढ़, पुरन्दर, कल्याण, भिवंडी, माहुली आदि दुर्गों पर अधिकार किया और मुगल प्रदेशों को लूटना आरम्भ किया। शिवाजी ने १३ अक्टूबर १६७० ई० को सूरत को दूसरी बार लूटा और शिवाजी के हाथ बहुत अधिक धन लगा। इसके उपरान्त शिवाजी ने बरार, बगलान और खानदेश पर आक्रमण

किया और विभिन्न प्रदेशों से चौथ वसूल की। उन्होंने सलहेर और मुलहेर पर अधिकार करने के उपरान्त उत्तरी कोकण पर आक्रमण किया। उनके अधिकार में जवाहर और रामनगर आये। बीजापुर ने मरहठों के विरुद्ध दो बार सेनायें भेजी किन्तु उनको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी का अधिकार सतारा और पन्हाला दुर्गों पर स्थापित हुआ। बाद में सन्धि हो गई। इस प्रकार शिवाजी ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

शिवाजी के जीवन का तृतीय काल (१६७४–८०)

शिवाजी के जीवन का तृतीय काल सन १६७४ ई० से १६८० तक का है। सन् १६७४ ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक किया और १६८० ई० में उनका देहान्त हो गया।

(१) शिवाजी का राज्याभिषेक—शिवाजी ने एक राज्य का निर्माण किया और उनके अधिकार में पर्याप्त प्रदेश आ गये थे। अतः उनके हृदय में राज्याभिषेक करने की इच्छा बलवती हुई। सन् १६७४ ई० में उन्होंने अपना राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट से किया, किन्तु शोक की बात यह है कि इस अपूर्व समारोह के बारह दिन उपरान्त ही उनकी माता जीजाबाई का स्वर्गवास हो गया। शिवाजी के राजा बनने से हिन्दू जाति में एक नई स्फूर्ति तथा आशा का संचार हुआ और उनके मन में यह भावना हिलोरें लेने लगी कि शीघ्र ही भारत में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन पुनः आयेगा। उधर औरंगजेब भी समझ गया कि मरहठों का दमन करना सरल कार्य नहीं है।

> **शिवाजी के जीवन का तृतीय काल**
> (१) शिवाजी का राज्याभिषेक।
> (२) शिवाजी की विजय।
> (३) सिद्दियों में संघर्ष।
> (४) कर्नाटक विजय।
> (५) शिवाजी के अन्तिम दिवस और मृत्यु।

(२) शिवाजी की विजयें—राज्याभिषेक में बहुत अधिक धन व्यय किया गया था। शिवाजी आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव करने लगे थे। अतः उन्होंने धन प्राप्त करने के लिये मुगलों के विरुद्ध युद्ध करना और नये प्रदेशों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। (i) शिवाजी ने मुगल सेनापति बहादुर खां के शिविर पर आक्रमण किया जहां से उनको लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ और बहुत से उच्च कोटि के घोड़े भी उनके हाथ लगे। (ii) इसके पश्चात् उसने बीजापुर राज्य के कोली प्रदेश पर आक्रमण किया। (iii) फिर बगलाना और खानदेश पर आक्रमण कर कई नगरों को लूटा। (iv) उन्होंने कोल्हापुर पर भी आक्रमण किया जहां से उनको पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। (v) इसके बाद उन्होंने बीजापुर तथा गोलकुण्डा के कुछ प्रदेशों पर तथा हैदराबाद नगर पर आक्रमण किया जहां से उनको पर्याप्त धन मिला। (vi) उधर मुगलों ने सन् १६७६ ई० में कल्याण पर आक्रमण किया, किन्तु मुगलों को मुंह की खानी पड़ी और पराजित तथा अपमानित होकर वापिस लौटना पड़ा। शिवाजी ने बीजापुर से

शक्ति थी। शिवाजी को भी साथ करने दिये, किन्तु वह अधिक अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी।

(३) जंजीरा के सिद्दियों से संघर्ष—शिवाजी अपने राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार कर समुद्रतट पर अधिकार करना चाहते थे। कुछ क्षेत्रों पर वे पूर्ण अधिकार कर चुके थे। सिद्दियों का जंजीरा पर अधिकार था जिसको अपने अधिकार में करना शिवाजी आवश्यक समझते थे, क्योंकि इस पर अधिकार किये बिना उनका कोंकण का प्रदेश सुरक्षित नहीं रह सकता था। सिद्दी भी इस प्रदेश का त्याग करना नहीं चाहते थे क्योंकि यह उनके जीवन-मरण का प्रश्न था क्योंकि यह भूमि उनके भोजन और आय का साधन थी। शिवाजी ने जंजीरा पर आक्रमण किया जिससे सिद्दियों का उत्साह भंग पड़ गया। उनके सरदार ने संधि करने का निश्चय किया अन्य सरदारों के विरोध के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। शिवाजी की मृत्यु (१६८०) तक मराठों और सिद्दियों में संघर्ष चलता रहा किन्तु कोई भी परिणाम नहीं निकला।

(४) कर्नाटक विजय—सन् १६७७ ई० में शिवाजी ने कर्नाटक को अपने अधिकार में करने के लिये आक्रमण किया। आक्रमण से पूर्व उसने गोलकुण्डा के सुल्तान से एक संधि की। उसने कर्नाटक में लूट-मार करनी आरम्भ की और वहाँ के प्रमुख नगरों पर अधिकार किया। इसके उपरान्त उसने तंजौर पर आक्रमण किया और वह विजयी हुआ। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर शिवाजी का अधिकार हो गया और वह स्वदेश वापस आया।

(५) शिवाजी के अन्तिम दिवस और मृत्यु—अपने पुत्र शम्भा जी के चरित्र, व्यवहार तथा आचरण के कारण शिवाजी के अन्तिम दिवस कष्टमय व्यतीत हुए। उसके अवगुणों के कारण उसको नजरबन्द किया गया, किन्तु वह वहाँ से निकल कर मुगलों में मिल गया। इस कारण शिवाजी बड़े दुःखी रहने लगे और वह अपनी विजयों तथा परिश्रम का परिणाम शांतिपूर्वक न भोग सके। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों में भी मतभेद हो गया था और दरबारी कुचक्र चलने लगे थे। वे २ अप्रैल १६८० को बीमार पड़े और १३ अप्रैल को उनका देहान्त हो गया।*

शिवाजी का साम्राज्य

शिवाजी की मृत्यु के समय उनका राज्य विशाल था। उनका राज्य पुर्तगाली और सिद्दियों के प्रदेश को छोड़ कर उत्तर में रामनगर से, दक्षिण में मालाबार तक विस्तृत था तथा पूर्व में बलगान, पूना, सितारा, कोल्हापुर का बहुत-सा भाग था। इन प्रदेशों पर तो उनका प्रत्यक्ष अधिकार था, किन्तु इनके अतिरिक्त कर्नाटक का भी पर्याप्त

* "On his return to the Ghats, after an absence of eighteen months, he compelled the Mughals to raise the seige of Bijapur, in return for large cessions on the part of the besieged government. Just as he was meditating still greater aggrandizement, a sudden illness put an end to his extraordinary career in 1680, when he was about quite fifty three of age." —Lan Poole.

भाग इनके हाथ में था। कुछ प्रदेशों से ये चौथ वसूल किया करते थे यद्यपि इन पर मुगलों का अधिकार था।

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

शिवाजी न केवल एक उच्च-कोटि का सेनानायक तथा विजेता ही था वरन् वह एक उच्च कोटि का प्रबन्धक भी था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य और कुशल शासक में होने चाहियें। उसकी तुलना सूर वंश के संस्थापक शेरशाह तथा नैपोलियन से की जा सकती है जिसने अपनी योग्यता का परिचय उच्च-कोटि की शासन-व्यवस्था में दिया। शासन पर शिवाजी का अधिकार था और समस्त शक्ति उसमें केन्द्रीभूत थी किन्तु उनके शासन को निरंकुश शासन या पूर्णतया सैनिक शासन कहना उनके साथ अन्याय करना होगा। यह सत्य है कि उनके शासन का आधार सेना थी किन्तु उनके राज्य में सामाजिक संस्थाओं का अभाव नहीं था।

(१) केन्द्रीय शासन—शिवाजी ने दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की और उस समय की परिस्थितियों में ऐसा करना नितान्त आवश्यक था, अन्यथा राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करना असम्भव था। शासन पर उसका सम्पूर्ण अधिकार था। उन्होंने शासन के कार्य में परामर्श और सहायता देने के लिये एक समिति का निर्माण किया जो अष्ट-प्रधान के नाम से विख्यात थी, क्योंकि उसके सदस्यों की संख्या आठ थी और प्रत्येक सदस्य एक विभाग का प्रधान था। मन्त्री उसके पूर्णतया अधीन थे।

उनके लिये उसके आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। वे केवल उसके प्रति उत्तरदायी थे। वह अपनी इच्छा से किसी भी समय उसको पदच्युत कर सकता था। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की सुव्यवस्था तथा सुसंचालन के लिये उत्तरदायी था। अष्ट प्रधान में पेशवा (प्रधान मन्त्री) का पद विशिष्ट महत्वपूर्ण था, किन्तु अन्य मन्त्री उसके अधीन नहीं थे। उसका स्थान वास्तव में समानों में प्रथम था। (He was the first among the equals)। उनकी नियुक्ति जीवन-पर्यन्त के लिये की जाती थी किन्तु यह पद पैतृक नहीं था। रानाडे ने अष्ट-प्रधान की तुलना भारत के वाइसराय की कार्यकारिणी से की, किन्तु वास्तव में यह समानता केवल बाह्य थी। वास्तव में शिवाजी फ्रांस के लुई चतुर्दश के समान स्वयं अपना प्रधान मन्त्री था और मन्त्री केवल सचिव के समान थे जिनका मुख्य कर्तव्य यह था कि वे उसको उस समय परामर्श दें जब उनसे मांगा जाये अन्यथा वे उसके आदेशों का अक्षरश: पालन करें। अष्ट-प्रधान में आठ मन्त्री थे—

(i) पेशवा (Prime minister),
(ii) आमात्य (Finance minister),
(iii) मन्त्री (Record-keeper),
(iv) सचिव (Superintendent),
(v) सामन्त (Foreign Secretary),
(vi) सेनापति (Commander-in-chief),
(vii) पण्डितराव और दानाध्यक्ष (Royal Chaplain and Almonar),
(viii) न्यायाधीश (Chief Justice)।

निम्न पंक्तियों में इनके कार्यों पर प्रकाश डाला जायेगा—

शिवाजी की शासन-व्यवस्था
(१) केन्द्रीय शासन।
(२) प्रान्तीय शासन।
(३) स्थानीय शासन।
(४) सैनिक व्यवस्था—
 (क) शिवाजी के सैनिक सुधार।
 (ख) दुर्गों की व्यवस्था।
 (ग) स्थायी सेना।
 (घ) रणनीति।
(५) आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व।
(६) चौथ और सरदेशमुखी।

(i) पेशवा—इसका मुख्य कार्य समस्त शासन की देख-भाल करना तथा राज्य की सुव्यवस्था और जनता की शान्ति व सुख की व्यवस्था करना था। राजा की अनुपस्थिति में शासन का समस्त उत्तरदायित्व उस पर रहता था।

(ii) आमात्य—इसका मुख्य कार्य राज्य के हिसाब की जांच-पड़ताल करना था तथा राज्य की आय-व्यय का लेखा इसको रखना था।

(iii) मन्त्री—इसका कार्य राजा के दैनिक कार्यों और दरबारों की कार्यवाही का विवरण रखना था।

(iv) सचिव—यह राजा के पत्र-व्यवहार की देख-भाल करता था। महत्वपूर्ण

बनाना तथा उनकी प्रतिलिपि करवाना उसका कार्य था।

(v) सामन्त—वह राजा को विदेशी राज्यों के विषय में सम्बन्ध स्थापित किये जाने की सलाह तथा परामर्श देता था। वह विदेशी राज्यों में अपने राज्य का गौरव बनाये रखता था।

(vi) सेनापति—उसका प्रमुख कार्य सेना की उचित व्यवस्था करना था। वह सेना का प्रधान होता था।

(vii) पंडितराव और दानाध्यक्ष—उसका मुख्य कार्य धार्मिक कार्यों का उचित रूप से करवाना तथा धार्मिक संस्थाओं को दान आदि देना था। उसका कार्य धार्मिक नियमों की व्याख्या करना तथा जनता का नैतिक स्तर उन्नत करना था।

(viii) न्यायाधीश—वह न्याय-विभाग का उच्चतम पदाधिकारी था। वह इस विभाग का निरीक्षण भी करता था।

यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि सेनापति के अतिरिक्त सभी मन्त्री ब्राह्मण होते थे और पंडितराव व दानाध्यक्ष तथा न्यायाधीश के अतिरिक्त समस्त मन्त्रियों को आवश्यकतानुसार युद्ध में सेना का नेतृत्व करना अनिवार्य था। इसी प्रकार मन्त्रियों को नागरिक कार्यों के साथ-साथ सैनिक कार्यों को सम्पन्न करना पड़ता था। उनको प्रति मास वेतन मिलता था। राज्य उनको जागीर प्रदान नहीं करता था। सबका वेतन निश्चित था। पेशवा को १५,०००, आमात्य को १२,००० तथा अन्य मन्त्रियों को १०,००० हून वेतन के रूप में मिलते थे।

(२) प्रान्तीय शासन—शिवाजी के अधिकार में पर्याप्त साम्राज्य था जिसको उन्होंने शासन की सुविधा का ध्यान रखकर चार भागों में विभक्त किया था। ये भाग प्रान्त कहलाते थे। वह प्रदेश जो सीधे शिवाजी के नियन्त्रण में था 'स्वराज्य' नाम से सम्बोधित किया जाता था इसका प्रबन्ध शिवाजी स्वयं करते थे। अन्य तीन प्रान्तों में प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था जिसकी नियुक्ति शिवाजी स्वयं करते थे और अपने पद पर वह उनकी इच्छा पर्यन्त कार्य कर सकता था। अतः उसकी नियुक्ति तथा निवृत्ति का अधिकार राजा के हाथ में था। उसकी सहायता के लिये आठ मन्त्री होते थे।

(३) स्थानीय शासन—समस्त प्रान्तों में ग्रामीण समुदाय थे जो पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थे। शिवाजी ने इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया और वह पूर्ववत् चलती रही। प्रारम्भ में इन स्वतन्त्र ग्रामों के समूहों पर देशमुख तथा देशपांडों की नियुक्ति की गई। इनका मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। कुछ समय उपरान्त इनका पद पैतृक हो गया और ये सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करने लगे। शिवाजी इस प्रकार की व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हुये क्योंकि इसके द्वारा सामन्तशाही को प्रोत्साहन प्राप्त होता था जो सगठित राजतन्त्र की विरोधी भावना थी। शिवाजी ने लगान वसूल करने के लिये अपने ही कर्मचारियों की नियुक्ति की और प्राचीन देशमुख तथा देशपांडों को शक्तिहीन करना प्रारम्भ कर दिया।

(४) सैनिक व्यवस्था—शिवाजी ने सैनिक बल पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना बड़ी भीषण परिस्थितियों में की। इस राज्य को स्थायी रूप देने के लिये

उनके लिये उसके आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। वे केवल उसके प्रति उत्तरदायी थे। वह अपनी इच्छा से किसी भी समय उसको पदच्युत कर सकता था। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की सुव्यवस्था तथा सुसंचालन के लिये उत्तरदायी था। अष्ट प्रधान में पेशवा (प्रधान मन्त्री) का पद विशिष्ट महत्वपूर्ण था, किन्तु अन्य मन्त्री उसके अधीन नहीं थे। उसका स्थान वास्तव में समानों में प्रथम था। (He was the first among the equals)। उनकी नियुक्ति जीवन-पर्यन्त के लिये की जाती थी किन्तु यह पद पैतृक नहीं था। रानाडे ने अष्ट-प्रधान की तुलना भारत के वाइसराय की कार्यकारिणी से की, किन्तु वास्तव में यह समानता केवल बाह्य थी। वास्तव में शिवाजी फ्रांस के लुई चतुर्दश के समान स्वयं अपना प्रधान मन्त्री था और मन्त्री केवल सचिव के समान थे जिसका मुख्य कर्त्तव्य यह था कि वे उसको उस समय परामर्श दें जब उनसे मांगा जाये अन्यथा वे उसके आदेशों का अक्षरशः पालन करें। अष्ट-प्रधान में आठ मन्त्री थे—

(i) पेशवा (Prime minister),
(ii) अमात्य (Finance minister),
(iii) मन्त्री (Record-keeper),
(iv) सचिव (Superintendent),
(v) सामन्त (Foreign Secretary),
(vi) सेनापति (Commander-in-chief),
(vii) पंडितराव और दानाध्यक्ष (Royal Chaplain and Almonar),
(viii) न्यायाधीश (Chief Justice)।

निम्न पंक्तियों में इनके कार्यों पर प्रकाश डाला जायेगा—

> **शिवाजी की शासन-व्यवस्था**
> (१) केन्द्रीय शासन।
> (२) प्रान्तीय शासन।
> (३) स्थानीय शासन।
> (४) सैनिक व्यवस्था—
> (क) शिवाजी के सैनिक सुधार।
> (ख) दुर्गों की व्यवस्था।
> (ग) स्थायी सेना।
> (घ) रणनीति।
> (५) आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व।
> (६) चौथ और सारदेशमुखी।

(i) पेशवा—इसका मुख्य कार्य समस्त शासन की देख-भाल करना तथा राज्य की सुव्यवस्था और जनता की शान्ति व सुख की व्यवस्था करना था। राजा की अनुपस्थिति में शासन का समस्त उत्तरदायित्व उस पर रहता था।

(ii) अमात्य—इसका मुख्य कार्य राज्य के हिसाब की जांच-पड़ताल करना था तथा राज्य की आय-व्यय का लेखा इसको रखना था।

(iii) मन्त्री—इसका कार्य राजा के दैनिक कार्यों और दरबारों की कार्यवाही का विवरण रखना था।

(iv) सचिव—यह राजा के पत्र-व्यवहार की देख-भाल करता था। मसविदा

बनाना तथा उनकी प्रतिलिपि करवाना उसका कार्य था।

(v) सामन्त—वह राजा को विदेशी राज्यों के विषय में सम्बन्ध स्थापित किये जाने की सलाह तथा परामर्श देता था। वह विदेशी राज्यों में अपने राज्य का गौरव बनाये रखता था।

(vi) सेनापति—उसका प्रमुख कार्य सेना की उचित व्यवस्था करना था। वह सेना का प्रधान होता था।

(vii) पंडितराव और दानाध्यक्ष—उसका मुख्य कार्य धार्मिक कार्यों का उचित रूप से करवाना तथा धार्मिक संस्थाओं को दान आदि देना था। उसका कार्य धार्मिक नियमों की व्याख्या करना तथा जनता का नैतिक स्तर उन्नत करना था।

(viii) न्यायाधीश—वह न्याय-विभाग का उच्चतम पदाधिकारी था। वह इस विभाग का निरीक्षण भी करता था।

यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि सेनापति के अतिरिक्त सभी मन्त्री ब्राह्मण होते थे और पंडितराव व दानाध्यक्ष तथा न्यायाधीश के अतिरिक्त समस्त मन्त्रियों को आवश्यकतानुसार युद्ध में सेना का नेतृत्व करना अनिवार्य था। इसी प्रकार मन्त्रियों को नागरिक कार्यों के साथ-साथ सैनिक कार्यों को सम्पन्न करना पड़ता था। उनको प्रति मास वेतन मिलता था। राज्य उनको जागीर प्रदान नहीं करता था। सबका वेतन निश्चित था; पेशवा को १५,०००, अमात्य को १२,००० तथा अन्य मन्त्रियों को १०,००० हून वेतन के रूप में मिलते थे।

(२) प्रान्तीय शासन—शिवाजी के अधिकार में पर्याप्त साम्राज्य था जिसको उन्होंने शासन की सुविधा का ध्यान रखकर चार भागों में विभक्त किया था। ये भाग प्रान्त कहलाते थे। वह प्रदेश जो सीधे शिवाजी के नियन्त्रण में था 'स्वराज्य' नाम से सम्बोधित किया जाता था इसका प्रबन्ध शिवाजी स्वयं करते थे। अन्य तीन प्रान्तों में प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था जिसकी नियुक्ति शिवाजी स्वयं करते थे और अपने पद पर वह उनकी इच्छा पर्यन्त कार्य कर सकता था। अतः उसकी नियुक्ति तथा निवृत्ति का अधिकार राजा के हाथ में था। उसकी सहायता के लिये आठ मन्त्री होते थे।

(३) स्थानीय शासन—समस्त प्रान्तों में ग्रामीण समुदाय थे जो पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थे। शिवाजी ने इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया और वह पूर्ववत् चलती रही। प्रारम्भ में इन स्वतन्त्र ग्रामों के समूहों पर देशमुख तथा देशपांडों की नियुक्ति की गई। इनका मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। कुछ समय उपरान्त इनका पद पैतृक हो गया और ये सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करने लगे। शिवाजी इस प्रकार की व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हुये क्योंकि इनके द्वारा सामन्तशाही को प्रोत्साहन प्राप्त होता था जो सगठित राजतन्त्र की विरोधी भावना थी। शिवाजी ने लगान वसूल करने के लिये अपने ही कर्मचारियों की नियुक्ति की और प्राचीन देशमुख तथा देशपांडों को शक्तिहीन करना प्रारम्भ कर दिया।

(४) सैनिक व्यवस्था—शिवाजी ने सैनिक बल पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना बड़ी भीषण परिस्थितियों में की। इस राज्य को स्थायी रूप देने के लिये

यह नितांत आवश्यक था कि सेना की व्यवस्था उच्च कोटि की हो तथा उसका संगठन दृढ़ हो। शिवाजी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और वे अपनी सेना को जितना भी अधिक उन्नत तथा सुसंगठित कर सकते थे उन्होंने उसके करने का भरपूर प्रयत्न किया और उनको इस दिशा में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। इसके द्वारा ही वे बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मुगल साम्राज्य की विशाल सेनाओं के मध्य तथा विरोध में राज्य की स्थापना कर सके।

(क) शिवाजी के सैनिक सुधार—शिवाजी प्राचीन सैनिक व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने उसमें कुछ आवश्यक सुधार किये। (i) शिवाजी ने स्थायी सेना की व्यवस्था की जिसमें सैनिकों को बारह माह कार्य करना पड़ता था। इसके पूर्व सैनिक छह महीने सेना में और छह महीने अपने खेतों में काम करते थे। (ii) उन्होंने मरहठा जाति में देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना जागृत की जिससे उन्होंने बड़े साहस और अदम्य उत्साह का परिचय दिया और जीवन कार्य करने के लिये वे सदा तत्पर रहे। (iii) उन्होंने जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन कर सैनिकों को वेतन देने की व्यवस्था की। (iv) घोड़ों पर दाग लगाने की व्यवस्था प्रारम्भ की गई और (v) सैनिकों की हुलिया रजिस्टर में लिखी जाने लगी ताकि किसी प्रकार का गोलमाल घोड़ों अथवा सैनिकों के सम्बन्ध में सम्भव न हो सके। (vi) सेना में भर्ती योग्यता के आधार पर होती थी। पद पैतृक नहीं थे। (vii) उन्होंने सेना को पूर्ण अनुशासन में रखा। अनुशासन-भङ्ग करने वाले सैनिक को कठोर दण्ड दिया जाता था। (viii) उनकी सेना में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के सैनिक थे।

(ख) दुर्गों की व्यवस्था—शिवाजी ने दुर्गों की व्यवस्था की और उनकी सुरक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया क्योंकि वे उनको सम्पूर्ण राज्य के केन्द्र समझते थे। शिवाजी ने पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई और नये दुर्गों का निर्माण करवाया। ज़िलों का शासन इन्हीं दुर्गों से होता था। दुर्गों में अधिक सेना नहीं रखी जाती थी। प्रत्येक दुर्ग के सम्बन्ध के लिये तीन कर्मचारी होते थे जिनका सामूहिक उत्तरदायित्व था। इसका लाभ यह था कि कोई भी कर्मचारी विश्वासघात नहीं करने पाये। तीनों कर्मचारियों का स्तर समान था। हवलदार के अधिकार में दुर्ग की कुंजियाँ रहती थीं और उसको राजकीय पत्र-व्यवहार करना पड़ता था। सरेनोवत पुलिस, चौकीदार तथा निकटवर्ती स्थानों का निरीक्षण करने का कार्य करता था। सबनिस इन दोनों के मध्य था और वह सैनिकों की उपस्थिति का कार्य करता था।

(ग) स्थायी सेना—शिवाजी की सेना उनकी मृत्यु के समय दक्षिण में सबसे अधिक शक्तिशाली थी। उसकी सेना में ४०००० घुड़सवार, एक लाख पैदल सिपाही, १२६० हाथी और ३,००० ऊंट थे। शिवाजी की सेना का प्रधान अंग घुड़सवार सेना थी जिसकी व्यवस्था की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इसमें दो प्रकार के सैनिक थे। एक तो वे जिनको राज्य की ओर से हथियार, घोड़े तथा निश्चित वेतन मिलता था, ... कहलाते थे। दूसरे वे जो घोड़े और हथियार अपने पास से क्रय करते थे। उनको ... भाग लेने के लिये निश्चित धन-राशि मिलती थी। प्रत्येक दस सिपाही के ऊपर

एक नायक और प्रत्येक २५ नायकों के ऊपर एक हवलदार, पांच हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार तथा दस जुमलादारों के ऊपर एक हजारी होता था। पैदल सेना भी कई विभागों में विभक्त थी। शिवाजी के पास पर्याप्त बन्दूकें और तोपखाना भी था। उनके अधिकार में जल सेना भी थी। उनके पास दो सौ के करीब जहाज थे।

(४) रण-नीति—शिवाजी की रण-नीति मुगलों की रणनीति के बिल्कुल विपरीत थी। उन्होंने गुरिल्ला युद्ध नीति (छापामार नीति) को अपनाया। वे आमने-सामने युद्ध करने के स्थान पर सहसा आक्रमण पर अधिक विश्वास करते थे। वे शत्रु की सेना पर छिपकर आक्रमण करते थे और लूट-मार मचाकर पहाड़ियों में छिप जाते थे। इसके लिये यह आवश्यक था कि सेना के पास कम सामान हो और घोड़े द्रुत गति के हों। देश की प्राकृतिक दशा ने भी उसकी इस नीति को सफल बनाने मे सहयोग प्रदान किया। इस नीति के कारण मुगल उस पर अधिकार करने मे सफल नहीं हो सके।

(५) आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व—शिवाजी ने आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व की ओर भी विशेष ध्यान दिया क्योंकि उनको जनता के हितों का भी पर्याप्त ध्यान था। राज्य की ओर से समस्त भूमि की पैमाइश (नाप-तोल) छड़ों द्वारा करवाई गई। २० वर्ग छड़ों का एक बीघा और १२० बीघे का एक चावर था। भूमि की औसत उपज मालूम कर उपज का $\frac{2}{5}$ भाग लगान के रूप मे राज्य लेता था। किसानों को यह सुविधा प्राप्त थी कि वह लगान अनाज के रूप में भी दे सकता था। राज्य की ओर से किसानों को बीज और पशु के लिये धन दिया जाता था जिसकी अदायगी वे किश्तों में करते थे। लगान सीधे किसान से लिया जाता था। जमींदारी प्रथा का पूर्णतया उन्मूलन कर दिया गया था। इस प्रकार उसके राज्य में रैयतवाड़ी व्यवस्था थी।

(६) चौथ और सारदेशमुखी—लगान तथा अन्य करों द्वारा राज्य को इतनी आय नहीं हो पाती थी कि उसका समस्त व्यय चल सके। इस कमी की पूर्ति करने के लिये उन्होंने चौथ और सारदेशमुखी को अपनाया जो पड़ोसी राज्यों के प्रदेशों से वसूल किये जाते थे। उनको अपनी आर्थिक आय के लिये सेना पर अधिक निर्भर रहना पड़ता था। ये कर प्रायः स्थायी रूप से वसूल किये जाते थे। चौथ निर्बलों द्वारा भेंट थी और उसके देने पर उनको अन्य शक्ति के आक्रमण से रक्षा की अनुमति प्राप्त हो जाती थी। यह सैनिक कर था जो लगान का $\frac{1}{4}$ भाग होता था। सारदेशमुखी १० वां भाग था। शिवाजी अपने आपको सम्पूर्ण महाराष्ट्र का पैत्रिक सारदेशमुख समझते थे और वे दसवां भाग वसूल करते थे। रानाडे के अनुसार यह सैनिक चन्दा नहीं था वरन् तीसरी शक्ति के विरुद्ध यह रक्षा के बदले कर था।

इतिहासकारों ने शिवाजी की शासन-व्यवस्था की बहुत अधिक प्रशंसा की है। ग्रांट डफ (Grant Duff) के अनुसार "शिवाजी के राज्य में सुख और सुव्यवस्था थी। आर्थिक क्षेत्र में राज्य की आय लगान अथवा चुङ्गी से इतनी नहीं थी जितनी कि वह चौथ और सारदेशमुखी से थी।" लेनपूल (Lane-Poole) के शब्दों में "Shivaji always strove to maintain the honour of the people in the territories. He persisted in rebellion, plundering carvans and troubling mankind

but he was absolutely guiltless of baser actions and was scrupulous of the honour of women and children of Muslims when they fall into his hands."

शिवाजी की सफलता के कारण

शिवाजी को अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई। वे एक राष्ट्र के निर्माण करने तथा स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने में सफल हुये, यद्यपि बीजापुर राज्य तथा दृढ़ व सुसंगठित मुगल-साम्राज्य की ओर से उनका दमन करने के लिये अकथनीय प्रयत्न किये गये। उनकी सफलता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति—शिवाजी की सफलता में महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति ने बहुत अधिक सहयोग प्रदान किया। महाराष्ट्र एक पहाड़ी प्रदेश है और पहाड़ियों की चोटियों पर दुर्ग बने हुये हैं जिन पर अधिकार करना सरल कार्य नहीं है। विशाल सेना द्वारा इस प्रदेश को आधीन करना कठिन था। इसके अतिरिक्त तीन ओर यह समस्त प्रदेश पहाड़ियों से घिरा हुआ है और चौथी ओर पहाड़ियां और समुद्र हैं। यह नितान्त सत्य है कि यदि महाराष्ट्र पहाड़ी प्रदेश न होकर मैदान होता तो मरहठों को सफलता मिलनी असम्भव थी। मुगल सेना समस्त मरहठा प्रदेश को रौंद डालती।*

सफलता के कारण
(१) महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति।
(२) मरहठों की विशेषतायें।
(३) दक्षिण के सुल्तानों की दुर्बलता।
(४) शिवाजी की गोरिल्ला रणनीति।
(५) शिवाजी का व्यक्तित्व।
(६) मुगलों के अवगुण।
(७) औरंगजेब की कठिनाइयां।

(२) मरहठा जातियों की विशेषतायें—पहाड़ी प्रदेश में रहने के कारण मरहठा जाति में अदम्य उत्साह तथा साहस था। वे परिश्रम करने से नहीं घबराते थे। उनकी आर्थिक अवस्था उन्नत नहीं थी। उसको उन्नत करने के लिये वे सब युद्ध करने को तत्पर रहते थे। धार्मिक गुरुओं ने मरहठों में देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन दिया। शिवाजी ने उनकी इस भावना का लाभ उठाकर उनको सुसंगठित किया। मरहठों को राजनीति का अच्छा अनुभव था और वे तत्कालीन परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित थे जिनका लाभ उन्होंने शिवाजी के नेतृत्व में उठाया।

* "The whole of the Ghats and the neighbouring mountains often terminate towards the top in a wall of a smooth road, the highest points of which, as well as detached portions on insulated hills from natural fortresses, where the only labour acquired is to get access to the level space, which generally lie on the summit. Various princes at different times have profited by these positions. They have cut flights of steps of winding roads up the rocks, fortified the entrance with a succession of gate-way, and erected tower to command the approaches and studded the whole region about the Ghats and their branches with forts, which, but, for frequent experience, would be deemed ."
—Elphinstone.

(३) दक्षिण के सुल्तानों की निर्बलता—शिवाजी के उत्कर्ष के समय दक्षिण के राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहे थे। इन दोनों का वैभव तथा प्रतिभा का दीपक बुझने के लिये टिमटिमा रहा था। एक ओर तो बीजापुर और गोलकुण्डा पर मुगलों के निरन्तर आक्रमण हो रहे थे और दूसरी ओर इनमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो राज्य की शक्ति बनाये रखता। राजा अयोग्य थे और दरबार में पारस्परिक मतभेद के कारण दलों का उदय होना आरम्भ हो गया था। शिवाजी ने इनकी निर्बलता का लाभ उठाया और अपनी शक्ति का विस्तार किया।

(४) शिवाजी की गोरिल्ला रणनीति—शिवाजी ने गोरिल्ला रणनीति को अपनाया और उसने आमने-सामने मुगल अथवा दक्षिण के सुल्तानों की सेना के विरुद्ध युद्ध नहीं किया। उसकी यह नीति पूर्णतया सफल हुई। यदि वह शत्रुओं की सेना का आमना-सामना करता तो उसको कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती। वास्तव में शिवाजी की शक्ति उनकी तुलना में कुछ भी नहीं थी।

(५) शिवाजी का व्यक्तित्व—शिवाजी का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक तथा चरित्र बहुत उन्नत था। इसने भी उनको विजयी बनाने में बड़ा सहयोग प्रदान किया। उन्होंने अपनी योग्यता से मरहठा राष्ट्र को संगठित किया और इनमें राष्ट्रीय भावना को सजग किया। प्रत्येक मरहठा उनके इशारे पर अपने प्राण न्यौछावर करने तक को उद्यत हो जाता था। 'उनमें मैजनी जैसा विश्वास, गैरीबाल्डी जैसा अदम्य उत्साह, कॅवूर की सी कूटनीति और विक्टर इमैनुअल का सा धैर्य और सहानुभूति थी।'

(६) मुगलों के अवगुण—मुगल जाति में पर्याप्त अवगुण उत्पन्न हो गये थे—(i) वीरता, साहस तथा उत्साह का अभाव—उनमें अब वह वीरता, साहस तथा उत्साह विद्यमान था न जो उनमें पूर्व के काल में विद्यमान था। (ii) विलासिता की मात्रा—उनमें विलासिता की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। (iii) सेना के साथ स्त्रियों तथा नर्तकियों का रहना—सेना के साथ स्त्रियाँ नर्तकी आदि जाती थीं और वे अपना अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगे थे। (iv) सेनापतियों में प्रतिद्वन्द्विता—सेनापतियों में प्रतिद्वन्द्विता के कारण सहयोग का अभाव था। (v) कर्त्तव्य परायणहीनता-उनमें कर्त्तव्यहीनता उत्पन्न हो गई थी। (vi) साम्राज्य की विशालता—मुगल साम्राज्य इतना विशाल हो गया था कि यातायात के अभाव में उसको संगठित रखना तथा उसको एक छत्र-छाया में फूलना-फलना असम्भव था। वास्तव में मुगल साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया था और उसके चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे थे।

(७) औरंगजेब की कठिनाइयाँ—औरंगजेब की कठिनाइयों ने भी शिवाजी की सफलता में बहुत सहयोग प्रदान किया। जिस समय शिवाजी उत्कर्ष की ओर अग्रसर हो रहा था उसी समय औरंगजेब उत्तरी समस्याओं के समाधान में इतना अधिक व्यस्त था कि वह शिवाजी की ओर ध्यान नहीं दे सका। दक्षिण के सूबेदारों पर राज्य के विशाल होने के कारण पूर्णतया नियन्त्रण रखना असम्भव था। इस नियन्त्रण के अभाव में वे अपना अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे। औरंगजेब की धार्मिक

नीति ने उन राजपूतों को भी उसका विरोधी बना दिया जिन्होंने अपने रक्त से मुगल-साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था।

शिवाजी का चरित्र

इतिहासकारों में शिवाजी के चरित्र तथा कार्यों के सम्बन्ध में जितना अधिक मत-भेद है उतना अधिक मत-भेद किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में नहीं है। यूरोपीय तथा मुसलमान लेखकों ने उनके चरित्र का कलुषित चित्रण करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है किन्तु आधुनिक अनुसन्धानों के आधार पर उनके चरित्र का कुछ दूसरा ही पहलू दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में वे एक राष्ट्र निर्माता थे और उनका इतिहास में बहुत उच्च स्थान है। उनके चरित्र की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) उच्च आदर्श—शिवाजी का व्यक्तिगत चरित्र बहुत उच्च था। वे एक आज्ञाकारी पुत्र, दयालु पिता तथा उत्तरदायी पति थे। उनका अपनी माता के प्रति अगाध प्रेम था और वे उसको देवी के समान मानते थे। उनमें उसकी आज्ञाओं का विरोध करने की शक्ति नहीं थी। वे अपने पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों को बड़ा प्रेम करते थे। उन्होंने शम्भा जी को क्षमा कर दिया जब उसने विद्रोही प्रवृत्तियों का प्रदर्शन किया। उनको उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई, जब शम्भा जी मुक्त होकर महाराष्ट्र आये। वे अपनी स्त्रियों से प्रेम करते थे। उनकी यद्यपि सात पत्नियां थीं; किन्तु वे सबको समान समझते थे।

> **शिवाजी का चरित्र**
> (१) उच्च आदर्श।
> (२) धार्मिक और सहिष्णु।
> (३) जन्मजात नेता।
> (४) उच्च कोटि का पारखी।
> (५) सैनिक प्रतिभा।
> (६) योग्य शासक।
> (७) महान् संगठनकर्त्ता।

(२) धार्मिक और सहिष्णु—शिवाजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। बाल्य-काल से ही उनको इस प्रकार की शिक्षा दी गई थी। वे भवानी के भक्त थे। उनको साधु तथा महात्माओं से अगाध प्रेम था। वे उनको आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनको धार्मिक ग्रन्थों के सुनने की रुचि थी। इसी कारण उनके आचरण में पर्याप्त पवित्रता तथा उदारता विद्यमान रही। धार्मिक प्रवृत्ति ने किसी भी समय उनके मस्तिष्क को कलुषित नहीं होने दिया और उनमे धार्मिक कट्टरता कभी उदय नहीं हुई। वे मुसलमान साधु-सन्तों तथा कुरान का भी बड़ा आदर करते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान समान थे। धर्म के नाम पर उन्होंने कोई अत्याचार तथा रक्त-प्रवाह नहीं किया। खफीखां ने उनकी सहिष्णुता की बड़ी प्रशंसा की। वह लिखता है कि "शिवाजी ने यह नियम बनाया था कि लूट के समय उनके सिपाही मस्जिदों, कुरान तथा स्त्रियों को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचायें। जब कभी कुरान की प्रति उसके हाथ आ जाती तो वह उसको सम्मानपूर्वक अपने मुसलमान अनुयायियों को दे दिया करता था। जब कोई हिन्दू या मुसलमान स्त्रियां उसके आदमियों द्वारा बन्दी बनाकर उसके

सामने उपस्थित की जाती थीं तो वह सावधानी से उनकी देख-भाल करता था और उनके सम्बन्धियों को उन्हें लौटा दिया करता था।"*

(३) जन्मजात नेता—शिवाजी एक जन्मजात नेता थे। उनका व्यक्तित्व इतना अधिक आकर्षक था कि जो कोई भी उनके संसर्ग में आया वह उनसे अवश्य प्रभावित हुआ। इसी गुण के कारण वह महाराष्ट्र की बिखरी हुई समस्त शक्तियों को एक ध्वजा के अन्तर्गत संगठित करने में सफल हो सके।

(४) उच्च कोटि का पारखी—वह मनुष्यों की परख करने की अद्वितीय शक्ति रखता था। उसने योग्य व्यक्तियों को ही पदों पर नियुक्त किया। उन्होंने अपने कर्मचारियों की नियुक्ति में कभी भूल नहीं की। इसी कारण उनकी राजनैतिक तथा सैनिक व्यवस्था उच्च-कोटि की रही।

(५) सैनिक प्रतिभा—शिवाजी में सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसी के आधार पर वे एक छोटे से जागीरदार के पद से राजा के पद पर आसीन हुए और भीषण परिस्थितियों में राज्य का निर्माण करने में सफल हुए। वे उच्च कोटि के सेनानायक थे।† उन्होंने जिस रणनीति को अपनाया वह मरहठों के लिये सर्वोत्तम थी। उनका गुप्तचर विभाग उच्च कोटि का था जो पहले से ही उनको समस्त समाचार दे देता था।

(६) योग्य शासक—शिवाजी में न केवल उच्च कोटि की सैनिक प्रतिभा ही थी वरन् उनमें योग्य शासक के पर्याप्त गुण भी विद्यमान थे।‡ उनकी शासन-व्यवस्था अनुपम थी और जब बाद में मरहठों ने उनके आदर्शों का परित्याग कर दिया तो वे पतन की ओर अग्रसर होने लगे।

(७) कूटनीतिज्ञ—शिवाजी एक उच्च-कोटि के कूटनीतिज्ञ थे। वे राजनीति की गहन चालों से पूर्णतया परिचित थे। यदि वे ऐसे न होते तो उनको सफलता प्राप्त होनी असम्भव थी। उन्होंने अपनी कूटनीति के आधार पर ही अपने शत्रुओं से लोहा लिया और उनको कभी अपने विरुद्ध संगठित नहीं होने दिया। अपनी कूटनीति द्वारा ही वे औरंगजेब के चंगुल से अपनी रक्षा करने में सफल हुए। उन्होंने समय को पहचाना और

* "He made it a rule that whenever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the Book of God or the women of any one. Whenever the copy of the sacred Quran came into his hands he treated it with respect and gave it to some of his Mussalman followers. When the women of any Hindu or Mussalman were taken prisoners by his men, he watched over them until their relations came with a suitable ransom to buy their liberty."

—Khafi Khan.

† "My foe (Shivaji) was a great Captain. My armies had been employed against him for nineteen years and nevertheless state has always been improving."

—Aurangzeb

‡ "Shivaji well merited the kingship which he adored by his valour and virtue. He was ambitious but ambition did not blind him to moral consideration."

—Dr. Ishwari Prasad.

यथेष्ट पूर्ण लाभ उठाया। कभी उन्होंने मुगलों से मित्रता का हाथ बढ़ाया और कभी उनके साथ संघर्ष किया। यही नीति उन्होंने बीजापुर राज्य के प्रति अपनाई।

(८) महान् संगठनकर्त्ता—शिवाजी महान् संगठनकर्त्ता थे। उनमें यह शक्ति अद्वितीय थी। इस गुण के कारण ही उन्होंने मरहठों को संगठित कर एक सुदृढ़ राष्ट्र में परिणत किया जिसने पर्याप्त समय तक भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लिया इसके कारण ही जब वे दस मास बन्दी रहने के उपरान्त दक्षिण वापिस आये तो उनको किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई न दिया और उनकी अनुपस्थिति में कार्य पूर्ववत् चलता रहा।

उक्त गुणों के कारण ही शिवाजी का स्थान भारतीय इतिहास में बहुत ऊँचा है।

क्या शिवाजी विश्वासघाती था ?—कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शिवाजी पर यह आरोप लगाया कि उसने जावली सरदारों के साथ तथा बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ के साथ विश्वासघात किया। वास्तव में उनका यह आरोप उचित नहीं क्योंकि आलोचक भूल जाते हैं कि यह काम सत्रहवीं शताब्दी का था जब राजा लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये इससे बहुत बड़े काम करने से नहीं हिचकते थे। इसके अतिरिक्त अफजलखाँ के वध का जहाँ तक प्रश्न है उसमें शिवाजी के साथ अफजलखाँ ने विश्वासघात करने का प्रयत्न किया। शिवाजी को तो अपनी रक्षा के लिये उसका वध करना पड़ा।

क्या शिवाजी लुटेरा था ?—कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शिवाजी को लुटेरा कहकर सम्बोधित किया है, किन्तु उन्होंने उसके सम्बन्ध में वास्तविकता का अध्ययन नहीं किया और ऊपर के तथ्यों को देखकर ही ऐसा कहने का साहस किया। वह एक जागीरदार का पुत्र था जिसका दक्षिण की राजनीति में पर्याप्त हाथ था। उसने अपने साहस, उत्साह तथा परिश्रम से मरहठा जाति का संगठन राष्ट्रीयता की भावना का विस्तार कर किया और उसकी ही सहायता के आधार पर वह एक साम्राज्य की स्थापना बीजापुर और मुगल-साम्राज्य के विरोध में करने में सफलता प्राप्त कर सका। वह महरठा जाति को बहुत अधिक संगठित करने में सफल हुआ और इसी के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु के उपरान्त भी इस जाति ने मुगलों से खूब डट कर युद्ध किया। मुगल-साम्राज्य के पतन पर मरहठा जाति ने अपना प्रभुत्व उत्तरी तथा दक्षिणी राजनीति में स्थापित किया। वह एक उच्च-कोटि का शासक तथा संगठनकर्त्ता था न कि लुटेरा।

क्या शिवाजी एक पहाड़ी चूहा था ?—कुछ इतिहासकारों ने उसको पहाड़ी चूहे की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार जिस प्रकार चूहा चोरी करके घर के समान का खाता है उसी प्रकार वह भी करता था, परन्तु वास्तविकता इससे बहुत दूर है। उसकी विजयें बड़ी शानदार होती थी। लूट में भी वह कठोर नियमों का पालन करता था। वह नारियों तथा बालकों पर हाथ नहीं उठाता था। उसका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था।

शिवाजी के उत्तराधिकारी

(१) शम्भा जी—शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र शम्भा जी २२ व की अवस्था में सन् १६८० ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। वह वीर और साह नवयुवक था, किन्तु उसमें अपने पिता के अन्य गुण विद्यमान् नहीं थे। वह विलासी था और मादक द्रव्यों का सेवन करता था। राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसने अपने विरोधियों का दमन करना आरम्भ किया और उनको बड़े कठोर दण्ड दिये जिनके

(१) शम्भा जी।
(२) राजाराम।
(३) शिवाजी द्वितीय।
(४) शाहू।

कारण शासन-व्यवस्था शिथिल होने लगी। उसका अपने पिता के स्वामी-भक्त सेवकों प से भी विश्वास उठ गया था। औरंगजेब के पुत्र राजकुमार अकबर ने राजपूतों से मिलक विद्रोह करने का प्रयत्न किया, किन्तु औरंगजेब की धूर्तता के कारण वह राजपूता छोड़ने पर बाध्य हुआ। उसने महाराष्ट्र में शम्भा जी के यहाँ शरण ली और शम्भा उसकी सहायता करने को तत्पर हो गये।

जब औरंगजेब को यह समाचार विदित हुआ तो उसने राजकुमार मुअज्ज और आजम को अकबर को बन्दी करने के लिये दक्षिण भेजा। उन्होंने मरहठों प आक्रमण किया किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। मुगलों को इतना लाभ अवश्य हुआ कि इन परेशानियों से भयभीत होकर अकबर फारस चला गया। शीघ्र ही मुगल ने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों का अन्त कर दिया। शम्भा जी ने इस सम उदासीनता की नीति अपनाई। उधर से निवृत्त होकर मुगलों ने मरहठों की शक्ति दमन करने की ओर ध्यान दिया। सन् १६८९ ई० में मुगलों ने शम्भा जी को उनके अन्य २५ साथियों के साथ संगमेश्वर नामक स्थान पर बन्दी कर लिया। औरंगजेब के सामने उपस्थित किये गये। औरंगजेब ने उनको कत्ल करवा दिया।

(२) राजाराम—शम्भा जी ने अपने सौतेले भाई राजाराम को रायगढ़ के में बन्दी कर दिया था, किन्तु जब शम्भा जी का वध औरंगजेब द्वारा करवा दिया ग तो मरहठा सरदारों ने राजाराम को बन्दीगृह से निकाल कर राज्य सिंहासन पर आसी कर दिया। शम्भा जी के वध के बाद औरंगजेब कुछ निश्चिन्त-सा हो गया था, कि जब मरहठों ने राजाराम को गद्दी पर बैठाया तो औरंगजेब ने अपनी कार्यवाही आर की। उसने शीघ्र ही रायगढ़ पर आक्रमण किया। राजाराम अपनी स्त्री तथा बच्चों साथ दुर्ग से निकल भागा। औरंगजेब ने रायगढ़ पर अधिकार किया। कुछ समय राजाराम महाराष्ट्र में रहा, किन्तु वहाँ की दशा देखकर वह कर्नाटक चला गया उसने जिंजी के दुर्ग में शरण ली। औरंगजेब ने शम्भा जी की स्त्री तथा उसके अल्पवय पुत्र शाहू को बन्दी किया। इस समय मरहठा जाति ने बड़ी योग्यता, साहस तथा उत्स का परिचय दिया और उन्होंने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। मुगलों ने समस्त दुर्गों अधिकार कर लिया और कर्नाटक में जिंजी पर आक्रमण किया और जिंजी दुर्ग का लिया। यह घेरा ९ वर्ष तक चलता रहा। राजाराम परिस्थिति से विवश हो गया।

अपने अधिकार क्षेत्र में शासन करने लगे। शम्भू जी द्वितीय कोल्हापुर और शाहू सतारा में शासन करते थे। इस समय मन्त्रियों तथा सेनापतियों में भी संघर्ष होना प्रारम्भ हो गया। सन् १७३१ ई० में पेशवा बाजीराव ने सेनापति त्र्यम्बकराव को पराजित किया और धीरे-धीरे पेशवा की शक्ति बढ़ती चली गई। शाहू की मृत्यु १५ दिसम्बर सन् १७४६ ई० को हुई और उसके बाद १७५० ई० में रामराजा छत्रपति हुआ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) राष्ट्रीय वीर शिवाजी के जीवन वृतातों का क्रमानुसार वर्णन संक्षेप में कीजिये और उनकी वीरता दर्शाइये। मुगल बादशाह के अन्ततः पतन के पथ बनवाने का कहां तक उनको श्रेय था? दिखलाइये। (१६५१)

(२) छत्रपति शिवाजी किन कारणों से अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए? (१६५६)

(३) शिवाजी महाराजा की शासन-व्यवस्था की व्याख्या कीजिये। (१६५०)

(४) शिवाजी की सफलता के कारण विस्तारपूर्वक लिखिये। (१६५८)

(५) "शिवाजी एक बड़ा वीर योद्धा एवं सफल शासक भी था।" इस कथन की व्याख्या कीजिये। (१६६०)

(६) शिवाजी की शासन-पद्धति का संक्षिप्त विवरण कीजिये। (१६६४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) शिवाजी के संघर्षों तथा सफलताओं का वर्णन करो। (१६५०)

(२) शिवाजी के व्यक्तित्व तथा चरित्र का मूल्यांकन करो। यह कहना कहां तक उचित होगा कि वह मरहठा राष्ट्र का संस्थापक था? (१६५२)

(३) शिवाजी के चरित्र और सफलताओं का मूल्यांकन करो। (१६५६)

मध्य भारत—

(१) शिवाजी के राज्य-काल में मरहठों की शक्ति का वर्णन करो (१६५२)

(२) देश में मरहठों के अभ्युदय के मुख्य कारणों का वर्णन करो। (१६५३)

(३) शिवाजी के उद्देश्यों और नीति का वर्णन करो (१६५४)

(४) शिवाजी की सफलता का क्या रहस्य था? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये। (१६५५)

(५) शिवाजी के समय के मरहठा राज्य के फौजी तथा दीवानी शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो। (१६५७)

१० मुगल और दक्षिण के मुसलमानी राज्य

जिस समय मुगल उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में तत्पर थे उस समय दक्षिण भारत में सात राज्य थे जिनके नाम इस प्रकार थे—

(१) खानदेश, (२) बरार, (३) बीजापुर, (४) अहमदनगर, (५) गोलकुण्डा (६) बीदर तथा (७) विजयनगर।

इन समस्त राज्यों में विजयनगर जो हिन्दू राज्य था सबसे शक्तिशाली था और उसका मुसलमान राज्यों से सदा संघर्ष रहता था और ये राज्य विजयनगर से ईर्ष्या करते थे। कई बार मुसलमानी राज्यों ने विजयनगर के विरुद्ध संघ बनाये, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। कई बार विजयनगर साम्राज्य किसी एक मुसलमानी राज्य के विरुद्ध अन्य राज्यों में मिल गया। यह परिस्थिति पर्याप्त समय तक रही। अन्त में सन् १५६४ ई० में विजयनगर साम्राज्य का अन्त करने के अभिप्राय से *मुसलमानी राज्यों ने सुदृढ़ संघ की स्थापना कर विजयनगर राज्य पर आक्रमण किया।* तालीकोट के प्रसिद्ध युद्ध-स्थल पर विजयनगर की सेनायें परास्त हुईं और मुसलमान अपने उद्देश्य में सफल हुए। इस राज्य की महानता लुप्त हो गई किन्तु इससे मुसलमानों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि विजय के कुछ ही समय उपरान्त मुसलमानी राज्यों में मनमुटाव हो गया और वे पारस्परिक युद्धों में तल्लीन हो गये।

अकबर और दक्षिण

उत्तरी भारत की विजयों से निवृत्त होकर अकबर का ध्यान दक्षिण की ओर आकर्षित हुआ। उत्तरी भारत तथा दक्षिण भारत में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसके दो उद्देश्य थे प्रथम, वह समस्त भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। वह नहीं देख सकता था कि दक्षिण में स्वतन्त्र राज्य बने रहें। द्वितीय वह दक्षिण पर अधिकार कर भारत-भूमि को पुर्तगालियों से मुक्त करना चाहता था। यद्यपि इस समय उसके उनसे सम्बन्ध अच्छे थे, किन्तु फिर भी उसको भय था कि वे किसी भी समय भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वाह्य व्यापार उनके हाथ में था और वे उसमें बहुत अधिक लाभ उठा रहे थे। अकबर ने बहुत दूरदर्शिता की बात सोची क्योंकि उस समय तक कोई भी राज्य सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह विदेशियों से मुक्ति प्राप्त न कर सके।

जब अकबर ने दक्षिण के अभियान का निश्चय किया तो इस समय केवल चार स्वतन्त्र राज्य दक्षिण में थे—(१) खानदेश, (२) अहमदनगर, (३) बीजापुर और (४) गोलकुण्डा। बरार को अहमदनगर ने और बीदर को बीजापुर ने क्रमशः अपने राज्यों में सम्मिलित कर लिया था। अकबर ने इन चारों राज्यों के सुल्तानों के नाम

पत्र लिखे कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें किन्तु खानदेश के अतिरिक्त सबने टाल-मटोल की। अकबर ने दक्षिण के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया।

(१) खानदेश

मुगल और खानदेश के सम्बन्धों का वर्णन करने से पूर्व खानदेश के पूर्व इतिहास का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होगा। मलिक अहमद ने खानदेश में फारुकी वंश की स्थापना की। बाद के सुल्तानों में आदिल खां द्वितीय बड़ा प्रसिद्ध शासक था। उसके समय में राज्य का बड़ा विस्तार हुआ और उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त १५०८ ई० में आदिलशाह तृतीय सुल्तान हुआ। उसके बाद मुहम्मद शाह सुल्तान हुआ। उसकी मृत्यु सन् १५३७ ई० में हुई। उसके बाद मुबारक शाह द्वितीय १५३७ ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसके शासन-काल में मुगलों ने खानदेश पर आक्रमण किया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ।

अकबर और खानदेश—१५६४ ई० में जब अकबर मांडू में कुछ समय तक रहा तो उसने खानदेश के मुबारकशाह से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रगट की। सुल्तान ने उसकी बात स्वीकार कर अपनी पुत्री अकबर को समर्पित कर दी। जब बहादुरशाह खानदेश का शासक हुआ तो उसने अपने राज्य को मुगलों से मुक्त करने का विचार किया। उसकी धारणा थी कि जब मुगल दक्षिण को विजय करने में सफल हो जायेंगे तो वे खानदेश को भी अवश्य अपने अधिकार में कर लेंगे। जब मुगलों ने १५६६ ई० में अहमदनगर के विरुद्ध उससे सहायता मांगी तो उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया। इसके उपरान्त उसने अपनी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया। अकबर उसके इस व्यवहार से बड़ा क्रोधित हुआ। उसने शीघ्र ही असीरगढ़ के दुर्ग का घेरा डाला और किलेदारों को लालच के जाल में फंसा कर असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। खानदेश के अन्य प्रदेशों पर भी मुगलों ने अधिकार किया और वह मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

(२) अहमदनगर

दक्षिण के राज्यों में अहमदनगर का राज्य उत्तरी भारत से सबसे निकट था। अतः सर्वप्रथम अकबर की साम्राज्यवादी-नीति का प्रहार इसी राज्य पर हुआ। अहमदनगर पर निजामशाही वंश के शासकों का अधिकार था।

अकबर और अहमदनगर—जब अहमदनगर की ओर से अकबर को सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो सन् १५६३ ई० में अब्दुल रहीम के नेतृत्व में अहमदनगर के विरुद्ध एक सेना भेजी गई। सन् १५६५ ई० में राजकुमार मुराद को भी दक्षिण में अब्दुल रहीम की सहायता करने के लिये भेजा गया। मुगलों ने अपनी कूटनीति से अहमदनगर में दो विरोधी दलों की स्थापना करवाई जिसके कारण अहमदनगर की शक्ति कम हो गई। यद्यपि चांदबीबी के नेतृत्व में बीजापुरियों ने मुगलों का डटकर सामना किया, किन्तु अन्त में उनको पराजित होना पड़ा और अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु मुगल अहमदनगर को पूर्णतया मुगल-साम्राज्य में विलीन न कर सके। अकबर के सामने इसी समय कुछ ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो गईं जिनके कारण वह

अहमदनगर के विरुद्ध दृढ़ नीति का पालन नहीं कर सका और अहमदनगर ने मलिक अम्बर के नेतृत्व में अपनी बिखरी हुई शक्ति को पुनः संगठित करना प्रारम्भ कर दिया और यह उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर के लिये एक दर्द-सर बन गया।

जहाँगीर और अहमदनगर—जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि अहमदनगर मलिक अम्बर के नेतृत्व में पुनः संगठित होने लगा। उसने अहमदनगर तथा बरार से मुगलों को भगाकर अहमदनगर के दुर्ग पर सन् १६०८ ई० में अधिकार किया। जहाँगीर ने कई बार मुगल सेनायें विभिन्न सेनापतियों के नेतृत्व में भेजीं किन्तु मलिक अम्बर के सामने उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में राजकुमार खुर्रम दक्षिण गया। इस बार मुगलों की सेना से भयभीत होकर मलिक अम्बर ने मुगलों से सन्धि की। शीघ्र ही मलिक अम्बर ने गोलकुण्डा और बीजापुर से सहायता प्राप्त कर सन् १६२० ई० में मुगलों से अहमदनगर को मुक्त कराने के अभिप्राय से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उसको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। बाध्य होकर राजकुमार खुर्रम पुनः दक्षिण भेजा गया। उसने इतनी तत्परता तथा योग्यता से सैन्य-संचालन किया कि मलिक अम्बर को बाध्य होकर सन्धि करनी पड़ी। शीघ्र ही राजकुमार खुर्रम ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया और मलिक अम्बर ने उसको सहायता देने का वचन दिया, किन्तु महावत खाँ के दक्षिण आने पर वे कुछ न कर सके। सन् १६२६ ई० में मलिक अम्बर की मृत्यु हो जाने से अहमदनगर को बड़ी क्षति हुई। अहमदनगर विजय करने में जहाँगीर पूर्णतया असफल रहा।

शाहजहाँ और अहमदनगर—शाहजहाँ ने अपने को राज्यसिंहासन पर सुदृढ़ कर अहमदनगर विजय की ओर ध्यान दिया। इस समय अहमदनगर की स्थिति आंतरिक कलह के कारण बड़ी शोचनीय हो रही थी। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ दक्षिण से भली-भाँति परिचित था। उसको शीघ्र ही अहमदनगर पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया। विद्रोही खानेजहाँ लोधी ने अहमदनगर में शरण ली। शीघ्र ही अहमदनगर पर मुगलों ने तीन ओर से आक्रमण किया। खानेजहाँ अहमदनगर से भाग गया। मुर्तजा की मृत्यु के बाद १० वर्षीय हुसैन अहमदनगर के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु कुछ समय उपरान्त अहमदनगर ने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर की सहायता प्राप्त कर पुनः युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। मुगलों ने विद्रोह का दमन किया। हुसैनशाह को बन्दी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया और इस प्रकार निजामशाही वंश का अन्त हुआ और अहमदनगर मुगल साम्राज्य में पूर्णतया विलीन कर लिया गया।

(३) बीजापुर

बीजापुर राज्य की स्थापना सन् १४६० ई० में यूसुफ आदिलशाह ने की। बीजापुर एक शक्तिशाली राज्य था और उसने बीदर पर अधिकार कर लिया था।

अकबर और बीजापुर—अकबर ने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह के पास ... सत्ता स्वीकार करने के लिये सन्देश भेजा, किन्तु उसने उसकी अधीनता स्वीकार ... यद्यपि उसने राजदूतों का अच्छा सम्मान किया तथा सम्राट को कुछ मूल्यवान

भेंट भी भेजीं। मुगलों ने उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम आदिलशाह के पास भी ऐसा ही सन्देश भेजा। उसने भी उसी प्रकार की नीति अपनाई। उसने तो उस समय अहमदनगर की सहायता भी की जब मुगलों ने अहमदनगर पर आक्रमण किया था। अकबर अपनी अन्य कठिनाइयों में इतना अधिक व्यस्त था कि उसने बीजापुर के विरुद्ध कोई अभियान नहीं किया।

जहाँगीर और बीजापुर—जब मुगलो का अहमदनगर से संघर्ष चल रहा था तो बीजापुर को अपनी शक्ति का विस्तार करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। उसने विभिन्न समयों पर अहमदनगर की सहायता की। वह चाहता था कि मुगलों और अहमदनगर का संघर्ष निरन्तर चलता रहे ताकि वे बीजापुर पर आक्रमण न कर सकें। वह मुगल राजदूतों का बड़ा सत्कार करता था और उसने एक बार दोनों के बीच मध्यस्थ का कार्य भी किया, किन्तु जब अहमदनगर ने मुगलों के साथ युद्ध करना आरम्भ किया तो अपनी निश्चित नीति के अनुसार उसने मुगलो के विरुद्ध अहमदनगर की सहायता की। कुछ समय उपरान्त जब मलिक अम्बर ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो उसने मुगलों के साथ सन्धि कर उसके विरुद्ध उनकी सहायता प्राप्त की।

शाहजहाँ और बीजापुर—शाहजहाँ के समय मे बीजापुर का सुल्तान आदिलशाह था। शाहजहाँ उसको अपनी ओर मिलाने मे सफल हुआ, किन्तु बीजापुर का एक दल मुगलो का विरोधी था और उसने मुगलों पर आक्रमण कर दिया। मुगलों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। सन् १६३३ ई० मे मुगलो ने अपनी पूरी शक्ति से बीजापुर पर आक्रमण किया और उसको तीन ओर से घेर लिया। बाध्य होकर सन् १६३६ ई० में बीजापुर ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की। जब औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने बीजापुर के विरुद्ध युद्ध कर उसको मुगल साम्राज्य में विलीन करने का निश्चय किया। बड़े जोर-शोर से मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया। उनके बहुत से दुर्गों पर मुगलो का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु शाहजहाँ के हस्तक्षेप के कारण युद्ध बन्द कर दिया गया। मुगलों और बीजापुर मे सन्धि हो गई। सन् १६५२ ई० में औरंगजेब फिर एक बार दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने शाहजहाँ से बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करने की अनुमति प्राप्त कर ली। मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया। बीदर पर उनका अधिकार हो गया। बीजापुरिये गुलबर्गे के युद्ध मे परास्त हुए। सन् १६५७ ई० मे जब वह बीजापुर का पूर्ण दमन करने को उद्यत था उसी समय उसको युद्ध बन्द करने का आदेश प्राप्त हुआ। शीघ्र ही युद्ध का अन्त हुआ और सन्धि की वार्तालाप प्रारम्भ हो गई। दोनों में सन्धि हो गई, किन्तु उसने शीघ्र ही सन्धि की शर्तों का पालन करने से इन्कार कर दिया।

औरङ्गजेब और बीजापुर—प्रारम्भ में औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध सहायता प्राप्त की, किन्तु वह शिवाजी का दमन नहीं कर सका। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी को अपनी ओर मिलाकर बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। सन् १६६६ ई० में जयसिंह के हाथ में बीजापुर के बहुत से दुर्ग आ गये किन्तु बीजापुरिये हतोत्साहो नही हुये। जब जयसिंह बीजापुर से केवल १२ मील दूर रह गया था तो

उनके द्वारा वह बुरी तरह परास्त हुआ। सन् १६४८ ई० में राजकुमार मुअज्जम बीजापुर-विजय के लिये दक्षिण भेजा गया किन्तु वह वहां के सुल्तान से मिल गया। १६८५ ई० में औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और स्वयं सेना का संचालन किया। बीजापुर की सेना मुगलों का सामना नहीं कर सकी और सन् १६८६ ई० में मुगलों का बीजापुर पर अधिकार हो गया। बीजापुर का सुल्तान बन्दी बनाकर दौलताबाद के दुर्ग में रखा गया जहां १७०० ई० में उसका देहान्त हो गया।

(४) गोलकुण्डा

गोलकुण्डा राज्य की स्थापना सन् १४८६ ई० में कुतुबुलमुल्क ने की। यह राज्य शीघ्र ही उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा और उसने बड़ी ख्याति पाई।

अकबर व जहांगीर और गोलकुण्डा—अकबर का गोलकुण्डा राज्य से केवल इतना-सा ही सम्पर्क था कि उसने वहां के सुल्तान को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने को कहा किन्तु उसने मुगलों की अधीनता तो स्वीकार नहीं की वरन् मुगल-सम्राट को भेंट-स्वरूप पर्याप्त धन दिया। उसने मुगलों के विरुद्ध अहमदनगर को सहायता पहुँचाई। जहाँगीर का भी गोलकुण्डा राज्य से कोई विशेष प्रयत्न सम्बन्ध नहीं रहा। गोलकुण्डा राज्य ने सदा अहमदनगर की सहायता की, किन्तु उसने युद्ध में कोई विशेष भाग नहीं लिया। वह अहमदनगर और बीजापुर राज्यों को इस उद्देश्य से सहायता करता रहता था जिससे मुगल उन्हीं राज्यों में उलझे रहें और उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करें।

शाहजहां और गोलकुण्डा—बीजापुर से निश्चिन्त होकर शाहजहां का ध्यान गोलकुण्डा की ओर आकर्षित हुआ। उसने गोलकुण्डा के साथ भी सन्धि कर ली, किन्तु वह अधिक काल तक नहीं चल सकी। मुगलों ने यह मांग की कि गोलकुण्डा में शिया रीति रिवाजों का पालन न किया जाये और वे शाहजहां को सम्राट स्वीकार करें। गोलकुण्डा के सुल्तान ने उसकी शर्तों को स्वीकार कर लिया। औरंगजेब जब दक्षिण का सूबेदार था तो गोलकुण्डा राज्य में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो गई और औरंगजेब ने उसका फायदा उठाना चाहा। उसको आक्रमण करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। सन् १६५६ ई० में मुगलों ने गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया। मुगल विजयी हुए और गोलकुण्डा का सुल्तान सन्धि करने को बाध्य हुआ। इसी समय फिर संघर्ष आरम्भ हो गया किन्तु शाहजहां के हस्तक्षेप के कारण युद्ध का अन्त हुआ। दोनों में पुनः सन्धि हो गई।

औरंगज़ेब और गोलकुण्डा—बीजापुर को मुगल साम्राज्य में विलीन करने के उपरान्त औरंगजेब ने गोलकुण्डा के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। सन् १६८७ ई० में मुगलों ने गोलकुण्डा की सेनाओं को परास्त किया किन्तु दुर्ग मुगलों के अधिकार में नहीं आया। अतः मुगलों ने धन का लालच देकर दुर्ग के द्वार खुलवाये और शीघ्र ही दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। इस प्रकार गोलकुण्डा का पतन हुआ और वह मुगलों के साम्राज्य में विलीन हो गया।

औरंगज़ेब की दक्षिण नीति के परिणाम—औरंगजेब की दक्षिण नीति

भी मुगल साम्राज्य के पतन मे विशेष उत्तरदायी सिद्ध हुई। उत्तर की समस्याओं का समाधान करने के उपरान्त उसने दक्षिण के राज्यो को मुगल-साम्राज्य मे विलीन करने के हेतु दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने दक्षिण में लगभग २५ वर्ष व्यतीत किये और इस सम्पूर्ण काल में वह अनवरत रूप से दीर्घकालीन युद्ध दक्षिण में करता रहा जिसके कारण साम्राज्य को बड़ा आघात पहुंचा। (i) युद्धों मे बहुत अधिक धन का व्यय हुआ जिसकी पूर्ति विजयो द्वारा नही हो पाई। इससे राजकोष खाली हो गया और जनता को अधिक करों का भार सहन करना पड़ा। (ii) इसके कारण उत्तरी भारत मे शासन में शिथिलता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। जनता पर कर्मचारियों की ओर से कठोर व्यवहार किया जाने लगा। (iii) इन युद्धो के कारण बहुत से व्यक्ति मर गये। (iv) उसके द्वारा गोलकुण्डा तथा बीजापुर राज्यों का अन्त करने से मरहठा शक्ति के उत्थान का अवसर प्राप्त हुआ। उनको आत्म-रक्षा के उद्देश्य से युद्ध करना पड़ा और जब उनको सफलता मिलती गई तो उन्होने उत्तरी भारत की ओर अपनी सेनाओं के साथ प्रस्थान करना आरम्भ किया। (v) उनको उन हिन्दू अफसरो तथा सामन्तों द्वारा भी सहयोग मिला जो औरंगजेब की अन्यायपूर्ण नीति के कारण उससे अप्रसन्न थे और साम्राज्य के पतन की बाट जोह रहे थे। (vi) मरहठों और राजपूतों मे मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही हिन्दू मुगल-साम्राज्य के शत्रु के रूप में भारतीय राजनीति में भाग लेने लगे। इन्हीं परिणामों से दक्षिण ने नासूर (Ulcer) का रूप धारण किया।

औरङ्गजेब की असफलता के कारण—औरंगजेब अपनी दक्षिण की नीति मे पूर्णतया असफल रहा। उसकी असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(१) औरङ्गजेब का धार्मिक कट्टरपन—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था जिससे प्रभावित होकर वह दक्षिण के मुसलमानी शिया राज्यों तथा मरहठो को अपना शत्रु समझता था। मरहठो को ये राज्य सहायता प्रदान करते थे जिससे वे मुगलों का सामना कर सकें।

(२) मरहठों का हिन्दुत्व—मरहठों में हिन्दुत्व की भावना पूर्णरूपेण विद्यमान थी जिसके कारण वे मुसलमानो का सामना करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

(३) औरङ्गजेब का अत्याचार—औरंगजेब ने धार्मिक अत्याचार बहुत अधिक मात्रा मे किया जिसके कारण उसको किसी भी क्षेत्र से सहायता प्राप्त नहीं हुई।

(४) औरङ्गजेब का स्वभाव—औरंगजेब किसी पर विश्वास नहीं करता था यहाँ तक कि उसको अपने पुत्रों पर भी विश्वास नहीं था जिसके कारण उसको दिल से कोई सहायता नहीं करता था।

(५) मुगलों की सैनिक दुर्बलता—मुगलों की सेना में पर्याप्त दुर्बलतायें विद्यमान थी जिसके कारण वह मरहठों का दमन ठीक प्रकार से नहीं कर सका। मरहठों ने समस्त जातियों के लोगों को अपने झण्डे के नीचे जमा किया और गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली से मुसलमानी सेना के दांत खट्टे कर दिये।

(६) औरङ्गजेब की अयोग्यता—औरंगजेब की यह एक विशेष भूल रही कि

उसने दक्षिण के समस्त राज्यों के विरुद्ध एक साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसके लिये यह आवश्यक था कि एक के साथ युद्ध करता और दूसरों के साथ मित्रता बनाये रखता उसको एक-एक कर समस्त राज्यों को अपने अधिकार में करना चाहिये था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मुगलों की दक्षिण नीति पर प्रकाश डालिये। (१९६८)

(२) औरंगजेब की दक्षिण के प्रति क्या नीति थी ? उसके परिणामों का उल्लेख करो। (१९६०)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगलों ने किस प्रकार दक्षिण को अपने अधिकार में किया ? (१९६५)

११ मुगलों की धार्मिक नीति

अधिकांश दिल्ली सल्तनत के शासकों की नीति धर्मान्ध थी। उनका हिन्दुओं के साथ बड़ा कठोर व्यवहार था, किन्तु इस काल में भी कुछ ऐसे शासक हुए जिन्होंने समय के स्तर से उठकर राजनीति और धर्म को एक दूसरे से पृथक् समझा और उन्होंने हिन्दुओं के साथ न्यायोचित व्यवहार किया। पर्याप्त समय तक हिन्दुओं और मुसलमानों में विशेष कटुता रही और वे एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु बहुत समय तक एक साथ रहने के कारण दोनों में सामीप्य उत्पन्न होने लगा और दोनों धर्मों के साधु-सन्तों ने एक-दूसरे को एक साथ तथा समीप लाने का घोर प्रयत्न किया। इस काल में भक्ति आन्दोलन का बड़ा महत्व रहा और उनका कार्य विशेष सराहनीय था। विश्व इतिहास में सोलहवीं शताब्दी धार्मिक जागृति और पुनरुत्थान का युग था। यदि भारत में मुगलों ने तो इङ्गलैंड में रानी एलिजाबेथ ने धार्मिक उदारता का परिचय दिया। दोनों ही ने अपने राष्ट्र के राष्ट्रीय शासक बनने की ओर कदम उठाया और विश्व में एक नये और महत्वपूर्ण युग का आरम्भ हुआ। डाक्टर सिन्हा के शब्दों में "सोलहवीं शताब्दी विश्व के इतिहास में धार्मिक पुनरुत्थान का युग है—भारत में भी एक नवीन जागृति हुई जिसके फलस्वरूप विकास का युग प्रारम्भ हुआ तथा राष्ट्रीय जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। इस जागरण का सबसे प्रधान तत्व ऐक्य तथा उदारता की भावना थी...हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को

इस भावना ने उच्च आदर्शों द्वारा इस प्रकार प्रभावित किया कि थोड़े काल के लिये वे जातीय वैमनस्य भूल गये।"*

मध्यकालीन और विशेषत: दिल्ली सल्तनत का इतिहास स्पष्ट कर चुका था कि हिन्दू अपने धार्मिक गौरव को समझते हैं और वे उसका बलिदान करने के लिये उद्यत नहीं किये जा सकते। राजनीति को धर्म से पूर्णतया पृथक् करना एक राष्ट्रीय तथा सुदृढ़ शासक के लिये आवश्यक है। शक्ति के आधार पर संस्थापित किया हुआ राज्य अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता। उनको जनता के विचार तथा मनोवृत्ति पर ध्यान अवश्य देना होगा क्योंकि वास्तव में राज्य का आधार शक्ति न होकर इच्छा।† धर्म के नाम पर हिन्दुओं का मुसलमान राज्य के विरुद्ध उठ खड़ा होना सम्भव था और धर्मान्ध धार्मिक नीति के अपनाने से यह अवसर शीघ्र आ सकता है।

बाबर की धार्मिक नीति

बाबर कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता था और रमजान के माह में व्रत रखता था, किन्तु वह उन कार्यों को भी करता था जिसकी अनुमति मुसलमान धर्म प्रदान नहीं करता था। वह शराब का सेवन करता था और बार-बार शपथ लेने पर भी उसका परित्याग नहीं हो सकता था। वह सुरा और सुन्दरियों में अपना जीवन व्यतीत करता था। वह भगवान से डरता था और समझता था कि भगवान की कृपा से ही उसकी विजय हुई। उसने मुसलमानों के धार्मिक उत्साह तथा जोश का लाभ उठाया, किन्तु वह धर्मान्ध नहीं था और न उसका इस्लाम धर्म के कार्य-कलापों पर दृढ़ विश्वास था। उसने जब फारस के शाह की सहायता माँगी तो उसने एक शिया स्त्री से विवाह किया और उसके पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसने शिया धर्म स्वीकार कर लिया था। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह समय के अनुसार अपने धार्मिक सिद्धान्तों में परिवर्तन कर सकता था। बाबर ने भारत में आने पर हिन्दुओं का धर्म के नाम पर रक्तपात नहीं किया।

हुमायूँ की धार्मिक नीति

हुमायूँ की धार्मिक नीति पूर्णतया अपने पिता बाबर के समान थी। अपनी माता के प्रभाव के कारण वह शिया धर्म की ओर विशेष रूप से प्रभावित था, किन्तु बाद में उस पर सूफी रहस्यवाद का विशेष प्रभाव पड़ा और वह धार्मिक आडम्बरों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। फारस के शाह के कहने पर उसने शिया धर्म को स्वीकार किया, किन्तु उसने धर्मान्ध नीति का कभी अनुकरण नहीं किया। उसके धार्मिक विचार

---

* "The sixteenth century is a century of religious revival in the history of the world ..India experienced an awakening that quickered her progress and vitalized her national life. The dominant note of this awakening was love and liberalism...With glorious ideals it inspired the Hindus and Muslims alike, and they forgot for a time the trivialities of their creed. To the Muslim and to the Hindu, it heralded the dawn of a new era, to the Muslim with the birth of the promised mahdi, to the Hindu with the realization of the all-adoring law of God." —Prof Sinha.

† "Will not force is the basis of state."

उदार थे। उसने कभी भी धर्म के नाम पर हिन्दुओं का रक्तपात नहीं किया और न इस कारण उसने किसी हिन्दू राजा के विरुद्ध आक्रमण किया तथा हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए बाध्य किया।

अकबर की धार्मिक नीति

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ और भारत में भी भक्ति-आन्दोलन ने दोनों सम्प्रदायों के लोगों में सद्भावना तथा प्रेम जाग्रत करने की ओर विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि दोनों सम्प्रदायों का समन्वय होना प्रारम्भ हो गया था और इस समय में उनमें वह कटुता, द्वेष, घृणा आदि न रह गई थी जो दिल्ली सल्तनत के काल में थी जिसमें एक वर्ग शासक और दूसरा वर्ग शासित के रूप में माना जाता था।

अकबर की धार्मिक नीति को उदार बनाने वाली बातें

अकबर इसी नये युग का प्रतिनिधि था।* उसके धार्मिक विचार इस नवीन धार्मिक विचार-धारा तथा लहर के अनुसार थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रभावशाली परिस्थितियां थी जिसने उनको विशेष रूप से प्रभावित किया। निम्न पंक्तियों में उनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायेगा—

अकबर की धार्मिक नीति को उदार बनाने वाली बातें

(१) पैतृक प्रभाव।
(२) शिक्षकों तथा संरक्षकों का प्रभाव।
(३) सूफी सिद्धान्तों का प्रभाव।
(४) राजपूतों का प्रभाव।
(५) भक्ति आन्दोलन का प्रभाव।
(६) धार्मिक आचार्यों का प्रभाव।
(७) राजनैतिक महत्वाकांक्षा।
(८) धार्मिक सत्ता पर अधिकार करने की भावना।
(९) धार्मिक तथा जिज्ञासु प्रवृति।

(१) पैतृक प्रभाव—अकबर के पैतृक प्रभाव से उसके हृदय तथा मस्तिष्क पर एक शुद्ध भावना जाग्रत हुई जिनके द्वारा उसके ऊपर समकालीन वातावरण का प्रभाव पड़ सका और जिसका उचित प्रदर्शन वह अपने जीवन में करने में सफल हुआ। तैमूर के वंशज और उसके उत्तराधिकारियों में धार्मिक कट्टरता तथा इस कारण भोली-भाली जनता का रक्त-पात करने की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था। बाबर और हुमायूं दोनों की ही धार्मिक नीति उदारता तथा सहिष्णुतापूर्ण थी। अकबर को उनके ये गुण उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुये। अकबर की माता हमीदाबानू बेगम भी बड़ी उदार तथा सहिष्णु महिला थी। उसके विचार सूफी मत से प्रभावित थे। श्री एन० सी० मेहता के अनुसार 'बाबर के आगमन से ही मुगल नीति सभी सूत्रों को एक सूत्र में बांधकर तथा विभिन्न मतावलम्बियों को

* "Akbar was the representative of the New Age."

एकता का रसास्वादन कराकर समस्त भारत को एक राष्ट्र के सूत्र में परिणत करने की थी।"*

(२) शिक्षकों तथा संरक्षकों का प्रभाव—अकबर पर शिक्षकों तथा संरक्षकों के विचारों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा जैसा कि प्रत्येक बालक पर होता है, क्योंकि बाल्यकाल में वह इनके ही अधिक सम्पर्क में अपना जीवन व्यतीत करता है। अकबर ऐसे ही सरक्षक तथा शिक्षक के सम्पर्क में आया जिसके धार्मिक विचार बड़े उदार तथा सहिष्णु थे। अकबर का शिक्षक अब्दुल लतीफ और उसके संरक्षक बैरमखाँ दोनों शिया धर्मावलम्बी थे और उनमें धार्मिक उदारता पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान थी और वे सूफी मत से विशेष प्रभावित थे।

(३) सूफी सिद्धान्तों का प्रभाव—अकबर सूफी सिद्धान्तों से बड़ा प्रभावित हुआ। इनके द्वारा उसके मस्तिष्क में उदार भावनाओं तथा उच्च आदर्शों का संचार हुआ और उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न होने लगी कि वह अनिर्वचनीय ईश्वरीय आनन्द का सुख प्राप्त करे। सूफी लोग धार्मिक आडम्बरों में विश्वास नहीं करते और चरित्र की पवित्रता तथा शुद्धता पर विशेष जोर देते हैं। अकबर के दरबार में शेख मुबारक तथा उसके दो पुत्र फैजी और अबुल फजल विद्यमान थे। ये बड़े विद्वान तथा सूफी सिद्धान्तों के अनुयायी थे। इनकी संगति का अकबर पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह इस्लाम की कट्टरता का विरोधी बनने लगा।†

(४) राजपूतों का प्रभाव—अकबर के धार्मिक विचारों को उदारता प्रदान करने में राजपूतों का प्रभाव विशेष रूप से था। अकबर का राजपूतों के साथ बड़ा निकटतम सम्बन्ध था। उसका जन्म राजपूतों की छत्रछाया में हुआ था। उसके बाद उसका राजपूत कन्याओं से विवाह हुआ और राजपूत उसकी सभा तथा सेना में कार्य करने लगे। उनकी उत्कृष्ट तथा बहुमूल्य सेवायें तथा संगति का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने अपने धर्म का परित्याग नहीं किया और जीवन भर उसके ही अनुसार आचरण करती रहीं।

(५) भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव—भारत के धार्मिक जागरण की लहर तीव्र गति से चल रही थी और बुद्धिमान व्यक्ति व्यर्थ के धार्मिक बाह्य आडम्बरों का विरोध कर पवित्र धर्म की ओर मानव का ध्यान आकर्षित करने की ओर प्रयत्नशील थे। इस समय के विचारों ने प्रेम और उदारता की शिक्षा दी और दोनों धर्मों के अनुयायियों में समन्वय उत्पन्न करने की ओर प्रयत्नशील हुये। जनता पर इसका प्रभाव पड़ा और इस प्रभाव से अकबर जैसा कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति भी प्रभावित होने से न बच सका।

---

*"The Mughal policy ever since the advent of Babar may justly be regarded as laudable attempt at welding the different elements present in the country into one harmonious whole and uniting the members of the different faiths into an Indian nation." —N. C. Mehta.

† "The doctrines of Sufism saturated his mind with liberal and sublime ideas carried him away from the path of Islamic orthodoxy and made him earnestly seek to attain the ineffable bliss of direct contact with Divine Reality."

(६) धार्मिक आचार्यों का प्रभाव—भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित होकर अकबर विभिन्न धार्मिक आचार्यों से प्रभावित हुआ जो उसकी संगति में आये। हिन्दुओं में वह पुरुषोत्तम तथा देवी से विशेष प्रभावित हुआ। उनके सत्संग के कारण उसके धार्मिक विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ। जैन आचार्यों में हरि विजय सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचन्द्र ने विशेष रूप से उसको प्रभावित किया। इनके प्रभाव में आकर वह अहिंसा के महत्व को समझ गया और उसने कुछ निश्चित दिनों के लिये मांस-भक्षण निषेध कर दिया तथा पशुओं का वध भी। अकबर पर ईसाई, सिक्खों तथा पारसी आदि के धार्मिक आचार्यों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा। पारसियों के प्रभाव में वह सूर्य की उपासना करने लगा। ईसाइयों का भी प्रभाव उस पर विशेष रूप से पड़ा। अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार अकबर इस धर्म से इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि वह उस धर्म को स्वीकार करने के लिये तैयार था किन्तु कुछ व्यक्तिगत कारणों से वह इस धर्म को अंगीकार नहीं कर सका।

(७) राजनीतिक महत्वाकांक्षा—अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह समस्त भारत को अपनी पताका के अन्तर्गत करना चाहता था। भारत की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन कर वह समझ गया कि उसकी यह महत्वाकांक्षा केवल उसी समय पूर्ण हो सकती है जब वह भारत में निवास करने वाले बहुसंख्यक हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार करे और उनके धर्म को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये। हिन्दू सब कुछ खो सकते हैं, किन्तु अपना धर्म नहीं। जब उसकी समझ में यह आ गया तो उसने धार्मिक उदारता की नीति को अपनाकर उनके साथ उचित व्यवहार करना आरम्भ किया और उनकी सेवायें साम्राज्य के लिये प्राप्त कीं। उन्होंने भी मुगल-साम्राज्य की नींव को दृढ़ करने में किसी प्रकार की कमी नहीं की।

(८) धार्मिक सत्ता पर अधिकार करने की भावना—अकबर धर्म की सत्ता पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। उस समय धर्म पर मुल्लाओं का विशेष अधिकार था और वे राजनीति में विशेष हाथ रखते थे। राजनीति और धर्म एक साथ चलते थे। अकबर को यह विचार उचित न जँचा क्योंकि इसके कारण सम्राट मुल्लाओं के हाथ की कठपुतली का रूप धारण कर लेता है। इसके अतिरिक्त मुल्लाओं में छोटी सी बातों के कारण तीव्र वाद-विवाद उत्पन्न हो जाता था जिसके कारण इस्लाम धर्म पर से उसका विश्वास कम होने लगा। मुल्लाओं की धार्मिक कट्टरता ने भी उनके हृदय में उनके प्रति घृणा उत्पन्न की।*

(९) धार्मिक तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति—अकबर की प्रवृत्ति बड़ी धार्मिक तथा जिज्ञासु थी। वह धार्मिक विषयों पर घोर चिन्तन किया करता था और स्वयं किसी

---

* "The learned men used to draw the sword of the tongue on the battlefield of mutual contradiction and opposition and antagonism of the sects reached such a pitch that they could call one another fools and heretics. The controversies used to pass beyond the differences of Sunni and Shia, of Hanafi and Shafi of lawyer and divine, and they would attack the very basis of belief."

—Badauni.

निष्कर्ष विशेष तक पहुँचने की ओर प्रयत्न करता था।* वह सत्य की खोज बराबर करता था और इसी उद्देश्य से सन् १५७५ ई० में उसने फतहपुर सीकरी में 'इबादतखाना' अर्थात् पूजा-गृह की स्थापना करवाई जहां धार्मिक वाद-विवाद हुआ करते थे जिनमें विभिन्न धर्मों के विद्वान भाग लेते थे। इसका लाभ सम्राट को यह हुआ कि वह समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्तों को समझने में सफल हुआ और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सब धर्मों में सत्य का अंश अवश्य है और मानव में धार्मिक कट्टरता उसकी अनुदार प्रवृत्ति के कारण जागृत होती है।

अकबर के धार्मिक विचारों का विकास

अकबर के धार्मिक विचारों में परिवर्तन किसी एक कारणवश नहीं अपितु विभिन्न परिस्थितियों के विभिन्न समयों पर उत्पन्न होने के कारण शनैः शनैः हुआ। अकबर जिज्ञासु था और सत्य की खोज में निरन्तर संलग्न रहता था। प्रारम्भ में उसने इस बात को जानने का प्रयत्न किया कि विश्व का कौन-सा धर्म सर्वोत्तम है और विभिन्न धर्मों के मध्य संघर्ष आदि के क्या कारण हैं। इन समस्त धर्मों में सत्य का अंश विद्यमान है और झगड़ों का कारण धर्म न होकर उनके अनुयायियों तथा आचार्यों में धार्मिक अन्धविश्वास की बहुलता है। अतः उसने एक नये धर्म 'दीनइलाही' का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा वह मानव में से धार्मिक अंध-विश्वास का अन्त करना चाहता था।

> **धार्मिक विचारों के विकास के तीन भाग**
> (१) १५५६ से १५७५ तक।
> (२) १५७५ से १५८२ तक।
> (३) १५८२ के बाद।

डाक्टर विन्सेंट स्मिथ ने अकबर के धार्मिक विचारों का विकास तीन भागों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं—

(१) सन् १५५६ से १५७५ ई० तक। इस काल में अकबर का व्यवहार सच्चे मुसलमान के समान था। वह इस्लाम धर्म के नियमों का पाबन्द था।

(२) सन् १५७५ से १५८२ तक। इस काल में अकबर अन्य धर्मों की ओर आकर्षित हुआ और उसका मन इस्लाम धर्म से फिरने लगा।

(३) १५८२ ई० से बाद। इस काल में उसने 'दीन इलाही' धर्म को चलाया जिसके कारण मुल्लाओं ने उसका विरोध किया और साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर उसके विरुद्ध विद्रोह हुए, किन्तु वह उनका दमन करने में सफल हुआ।

निम्न पंक्तियों में इन तीनों का संक्षिप्त वर्णन किया जायगा—

(१) सन् १५५६ से १५७५ ई० तक—इस काल में अकबर ने एक सच्चे मुसलमान के समान इस्लाम धर्म के नियमों तथा सिद्धान्तों का पालन किया। वह प्रतिदिन पाँच वक्त नमाज पढ़ता था, रमजान के महीने में रोजे रखता था तथा मुल्लाओं और मौलवियों

* "He would sit many a morning alone in prayer and melancholy, on a large flat stone of an old building near the palace in a lonely spot with his head bent over his chest and gathering the bliss of early hours. —Badauni.

को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। वह मुसलमान साधु-सन्तों का आदर करता था। वह दरगाहों का दर्शन करने जाता था। वह इस्लाम धर्म के विरोधियों को दण्ड देने में तनिक भी संकोच नहीं करता था। एक बार उसने मुल्लाओं के कहने से शेख मुबारक को उसके धार्मिक विचारों के कारण दण्ड देने की आज्ञा दी, किन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। अपने संरक्षक बैरम खाँ, अपनी माता हमीदाबानू बेगम तथा अपने गुरु अब्दुल लतीफ के कारण वह शिया सिद्धांतों की ओर आकर्षित होने लगा और उसमें धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता का अंकुर उत्पन्न होने लगा था। इस काल में उसका राजपूत कन्याओं से विवाह हुआ और वह राजपूत जाति के गुणों से परिचित हुआ जिसके कारण उसने उनको उच्च पदों पर आसीन कर उनका प्रेम और श्रद्धा प्राप्त की जिसने मुगल-साम्राज्य की बहुत सेवा की, जिसने हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करने के अभिप्राय से जजिया आदि करों को स्थगित कर दिया था। परन्तु इन सबसे उसके धार्मिक आचरणों में कोई विशेष अन्तर उत्पन्न नहीं हो पाया था। इस उदार नीति का सम्बन्ध उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा से था जिसके अन्तर्गत वह एक चिरस्थायी तथा संगठित शासन की स्थापना समस्त भारत में करने का विचार रखता था।

(२) सन् १५७२ से १५८५ ई० तक—अकबर के धार्मिक विचारों के विकास में वह द्वितीय काल था जिसका प्रारम्भ सन् १५७२ से हुआ और जिसका अन्त सन् १५८५ ई० में हुआ। इस काल में उसका हृदय इस्लाम धर्म की कट्टरता तथा बाह्य आडम्बरों से हटकर सत्य की खोज में अन्य धर्मों की ओर आकृष्ट हुआ और सब धर्मों की अच्छाइयों को सम्मिलित कर उसने एक नये धर्म का प्रचलन किया जो 'दीन इलाही' के नाम से विख्यात है।

(क) इबादतखाने या पूजा-गृह की स्थापना—जब अकबर ने इस्लाम धर्म द्वारा सत्य की खोज करने में अपने आप को असमर्थ पाया तो उसका ध्यान स्वाभाविक रूप से अन्य धर्मों की ओर आकर्षित होना प्रारम्भ हुआ। उसने १५७५ ई० में फतहपुर-सीकरी में 'इबादतखाने' का निर्माण करवाया। इसके निर्माण करने का उद्देश्य यही था कि समय-समय पर विभिन्न धर्मों के आचार्यों में इस स्थान पर वाद-विवाद कराया जाय और उनके वाद-विवाद के आधार पर सत्य की खोज की जाये। इस्लाम धर्म का नेतृत्व मखदूम-उल-मुल्क और शेख अब्दुलनबी ने किया था और विरोधी दल का नेतृत्व शेख मुबारक ने किया था। इससे शिया और सुन्नियों में बड़ी कटुता उत्पन्न हो गई और इन मत-भेदों तथा संघर्ष के कारण अकबर इस्लाम धर्म को संदेह की दृष्टि से देखने लगा। कुछ समय उपरान्त उसने इबादतखाने में धार्मिक वाद विवाद का आयोजन करवाना स्थगित कर दिया क्योंकि इससे लाभ के स्थान पर हानि अधिक होने लगी।

(ख) आत्म चिन्तन—अब सम्राट ने अपना ध्यान आत्म-चिन्तन की ओर लगाया जिसके कारण उसमें विशेष परिवर्तन हुये। उसको आखेट तथा मांसाहार करने से घृणा होने लगी। उसने केवल निश्चित दिन ही मांस खाना प्रारम्भ कर दिया और यह घोषणा करवाई कि केवल निश्चित दिन ही पशु वध करवाया जाय।

(ग) पुनर्विवाह की व्यवस्था—कुछ समय उपरांत अकबर इस निष्कर्ष पर

पहुँचा कि इस [illegible]

आचार्यों को भी [illegible]

दलों में विभक्त [illegible] ...ुल फजल ने 'आइने अकबरी' में ७७ वें

अकबर को [illegible] । इस धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित

को वाद-विवाद [illegible]

अकबर पर [illegible] पैगम्बर है।

उनके धर्म का [illegible] ...ों के लिये निषेध था।

किया। [illegible] के सामने सिजदा (साष्टांग प्रणाम) करना

और विवेक [illegible] ...दर और श्रद्धा प्रकट करने के लिये थी।

वास्तव में [illegible] ...ना करना अनिवार्य था।

सिद्धान्तों का [illegible] मछुओं, कसाइयों तथा इस प्रकार का उद्योग

परिवर्तन का [illegible] ...नही थी।

(क) [illegible] ...ा अपरिपक्व बालिकाओं के साथ सहवास

मुल्लाओं [illegible] ...-गाँठ के दिन प्रीतिभोज करना पड़ता था।

मुल्लाओं [illegible] ...ार को ही हो सकता था।

राज्य ... प्रति सम्पत्ति, जीवन, मान तथा धर्म का

में ... ...ा था।

करे। ... पूर्व की ओर और पैरों को पश्चिम की ओर

...ी संख्या १८ थी। राजा बीरबल, शेख मुबारक

...ो अपनाया। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि

...या में वृद्धि करने के लिये बड़ी उदार नीति को

... साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया।

... कि 'दीन इलाही' के अनुयायियों की संख्या कभी

...ही होती। जिन लोगों ने इस नवीन धर्म

...ि अकबर के हृदय में किसी प्रकार का

... अवश्य ही अनुयायियों को इस सीमित

... में उसकी आकांक्षा अनुयायियों के

... पारस्परिक सद्भावना की प्रवृत्ति का

उसके पश्चात् के अनेक लोगों ने सम्राट

... का निर्माण किये जाने के स्मरणार्थ

विश्लेषणात्मक दृष्टि

...इतकारों ने दीन-इलाही की कटु आलोचना

...। ने विशेष रूप से उसकी आलोचना की

... ने अमानुषिक व्यवहार किया और ऐ...

और 'इस्लाम-ए-आदिल' बनने का निश्चय किया जिसका मसविदा अब्दुल फज़ल ने तैयार किया। उसने एक अधिकार-पत्र (Infallibility decree) घोषित किया। यह इस्लाम धर्म के नेताओं के हस्ताक्षरों द्वारा प्रमाणित हुई। इस पर शेख मुबारक के साथ मखदूमउलमुल्क तथा अब्दुलनबी के भी हस्ताक्षर थे। इसके द्वारा अकबर के हाथ में धार्मिक सत्ता आ गई और उसका निर्णय अन्तिम हो गया।* कट्टर मुसलमानों को यह उचित न लगा और उन्होंने अकबर के विरुद्ध बहुत आरोप लगाए किन्तु अकबर इससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में डाक्टर स्मिथ का मत है कि इस आज्ञा से इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धान्तों का खंडन किया किन्तु वास्तविकता यह थी कि इसके द्वारा धार्मिक सिद्धांतों में परिवर्तन नहीं किया गया, वरन् परिवर्तन धार्मिक संगठन तथा प्रबन्ध में किया गया था। वह मुहम्मद साहेब में श्रद्धा तथा उनके प्रति आदर प्रदर्शित करने के कारण अजमेर गया किन्तु उसके आलोचकों ने उसको दिखावे का प्रदर्शन ही कहा है।

(ङ) नये धर्म की खोज—उक्त कार्यों के करने के उपरांत अकबर का ध्यान धार्मिक और राजनीतिक प्रधानता की विलोमता की ओर आकर्षित हुआ। वह विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ किन्तु अनेक कारणों से वह किसी एक धर्म को न अपना सका और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि एक ऐसे नवीन धर्म का प्रतिपादन किया जाय जिसको सब धर्म के अनुयायी सरलतापूर्वक अपना सकें। उसने दीन इलाही धर्म का प्रचलन किया जो ईसाई लेखक बारटोली के शब्दों में 'विभिन्न धर्मों के सम्मिश्रण से बना जिसमें कुछ सिद्धांत मुहम्मद साहेब की कुरान, कुछ ब्राह्मणों के धार्मिक ग्रंथों और कुछ ईसामसीह के धार्मिक ग्रंथ से लिये गये थे।'†

दीने इलाही धर्म

जैसा उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर ने दीने इलाही धर्म का प्रचलन धार्मिक और राजनैतिक प्रधानता का विलोम करने के कारण किया। इस धर्म की राजकीय घोषणा सन् १५८१ ई० में की गई।

---

* "This "Infallibility Decree" made Akbar the supreme arbiter in all cases spiritual and temporal, and thus it was laid down that should in future a religious question come unregarding which the opinions of the multahids are at variance, and His Majesty in his penetrating understanding and Pear wisdom be inclined to adopt for the benefit of the nation and as a political expedient, any of the conflicting opinions which exist on that point and should issue a decree to that effect, we do hereby agree that such a decree shall be binding on us and on the whole nation ; provided always that such order be not only in accordance with some verse of the Quran, but also of real benefit of the nation, and further, that any opposition on the part of his subjects to such an order passed by His Majesty shall involve domination in the world to come and loss of property and religious privileges in this "

—Quoted from Sarkar and Dutta's Modern History, Part I, pages 320-321.

† "A new religion out of various elements, taken partly from the Quran of Mohammad, partly from the scriptures of the Brahamans, and to a certain extent, as far as suited his purpose, from the Gospel of Christ."   —Bartoli.

दीने ईलाही धर्म के सिद्धांत—अब्बुल फजल ने 'आइने अकबरी' में ७७ वें आईन में दीन इलाही का विवरण दिया है। इस धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

(१) ईश्वर एक है और अकबर उसका पैगम्बर है।

(२) मांस-भक्षण इस धर्म के अनुयायियों के लिये निषेध था।

(३) इस धर्म के अनुयायियों को सम्राट के सामने सिजदा (साष्टांग प्रणाम) करना पड़ता था। यह प्रथा केवल सम्राट के प्रति आदर और श्रद्धा प्रकट करने के लिये थी।

(४) सबको सूर्य तथा अग्नि की उपासना करना अनिवार्य था।

(५) इसके अनुयायियों को बहेलियों, मछुओं, कसाइयों तथा इस प्रकार का उद्योग करने वालों के साथ भोजन करने की अनुमति नहीं थी।

(६) गर्भवती, वृद्ध, बाँझ स्त्रियों तथा अपरिपक्व बालिकाओं के साथ सहवास करना निषेध था।

(७) प्रत्येक अनुयायी को अपनी वर्ष-गांठ के दिन प्रीतिभोज करना पड़ता था।

(८) धर्म का परिवर्तन केवल रविवार को ही हो सकता था।

(९) प्रत्येक व्यक्ति को सम्राट के प्रति सम्पत्ति, जीवन, मान तथा धर्म का बलिदान करने के लिये उद्यत रहना पड़ता था।

(१०) मृतक देह के मस्तिष्क को पूर्व की ओर और पैरों को पश्चिम की ओर करके दफनाया नहीं जा सकता था।

सदस्य—नवीन धर्म के सदस्यों की संख्या १८ थी। राजा बीरबल, शेख मुबारक और उनके दोनों पुत्रों आदि ने इस धर्म को अपनाया। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि अकबर ने नये धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के लिये बड़ी उदार नीति को अपनाया। उसने किसी व्यक्ति के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया। सर वूल्जले हेग ने उचित ही कहा है कि 'दीन इलाही के अनुयायियों की संख्या कभी भी कुछ हजारों से अधिक पहुंची हुई प्रतीत नहीं होती। जिन लोगों ने इस नवीन धर्म को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया उनके प्रति अकबर के हृदय में किसी प्रकार का भेद-भाव न था। यदि अकबर चाहता तो वह अवश्य ही अनुयायियों की इस सीमित संख्या में वृद्धि कर सकता था। परन्तु वास्तव में उसकी आकांक्षा अनुयायियों में वृद्धि करने की न थी वरन् दीनइलाही में निहित पारस्परिक सद्भावना की प्रकृति का विस्तार करने की थी। उस समय के तथा उसके पश्चात् के अनेक लोगों ने सम्राट द्वारा-भिन्न तत्वों की सहायता से एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण किये जाने के स्मरणार्थ प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।'

दीन इलाही पर विवेचनात्मक दृष्टि

कुछ आधुनिक तथा तत्कालीन इतिहासकारों ने दीन-इलाही की कटु आलोचना की। तत्कालीन इतिहासकारों में बदायूँनी ने विशेष रूप से उसकी आलोचना की। उसके अनुसार 'मुसलमानों के साथ अकबर ने अमानुषिक व्यवहार किया और ऐसे

नियम घोषित किये जो इस्लाम धर्म के विरोधी थे ।'* आधुनिक इतिहासकारों में डाक्टर विन्सेंट स्मिथ ने दीन-इलाही की कटु-आलोचना की । उसके अनुसार "दीने इलाही अकबर के अज्ञान का कि उसकी बुद्धिमत्ता का सूचक था । यह समस्त योजना हास्यप्रद, अहंकार तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता की उपज थी ।"† वास्तव में यह आलोचना बहुत कटु है जिसकी सत्यता पर विश्वास करना अपने साथ तथा अकबर जैसे महान् सम्राट के साथ अन्याय करना होगा । वास्तव में सम्राट उचित तथा उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के कारण इस ओर आकर्षित हुआ । 'पारस्परिक विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद से प्रारम्भ होकर एक नवीन धर्म की उद्घोषणा की समस्त प्रणाली इस बात का सुनिश्चित प्रमाण है कि सम्राट की वास्तविक इच्छा अपनी प्रजा के लिये एक सामान्य धर्म को प्रारम्भ करने तथा इस प्रकार राजनैतिक एकता की वृद्धि करने की थी ।'

वास्तव में अकबर का दीने-इलाही उसकी अज्ञानता तथा अबुद्धि का सूचक न होकर उसके ज्ञान तथा बुद्धि का उज्ज्वल उदाहरण है । यह उसकी सार्वजनिक सहिष्णुता की नीति का परिणाम है और यही उसके राष्ट्रीय आदर्शवाद का प्रमाण है । डाक्टर ताराचन्द के शब्दों में, 'अकबर का दीने-इलाही एक निरंकुश शासक का क्षणिक उद्वेग नहीं था जिसके पास आवश्यकताओं से अधिक शक्तियाँ थीं वरन् उन तत्वों का परिणाम था जो भारत-भूमि में विकसित हो रहे थे तथा कबीर आदि की शिक्षाओं द्वारा व्यक्त किये जा रहे थे । परिस्थितियों ने उस प्रयत्न को विफल कर दिया परन्तु देश अब भी उसी लक्ष्य की ओर इंगित करता है ।'‡

बदायूंनी तथा जेसुइट पादरियों के इस कथन में कोई सार प्रतीत नहीं होता कि अकबर ने इस धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के उद्देश्य से रिश्वत दी तथा लोगों को बाध्य किया । यदि वह ऐसा करने पर उतारू हो जाता तो उसके सदस्यों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती । अकबर का व्यवहार हिन्दू और मुसलमानों के साथ समान रहा । यदि बदायूंनी द्वारा बतलाये गये नियमों को सत्य भी मान लिया जाए तो भी यह समझना भूल होगी कि वह इस्लाम को गिरी हुई दृष्टि से देखने लगा था । इसका कारण यह हो सकता है कि वह मुसलमानों को मुल्लाओं के चक्कर से निकालकर विशुद्ध मार्ग की ओर ले जाना चाहता था । वास्तव में

* "Beef was prohibited, wearing of beards discouraged, wearing of gold and silk dresses forbidden by the Shariat was made obligatory, public prayers abolished, fast of Ramzan, pilgrimage of Mecca prohibited, study of Arabic considered to be a crime, slaughter of cows was forbidden, etc." —Badauni.

† "The Din-e-Ilahi was the monument of Akbar's folly and not of his wisdom. The whole scheme was the outcome of ridiculous vanity, a monstrous growth of unrestrained autocracy." —Dr. Smith.

‡ "Akbar's Din-e-Ilahi was not an isolated freak of an autocrat who had more power than he knew how to employ, but an inevitable result of the forces which were deeply surging in India's breast and finding expression in the teachings of men like Kabir. Circumstances thwarted the attempt, but destiny still [illegible] —Dr. Tara Chand.

इस्लाम इस समय पतन की ओर अग्रसर होने लगा था और उसमें सुधारों की आवश्यकता थी। अकबर को अन्धविश्वास से घृणा थी और वह प्रत्येक बात को मानवीय तर्क की कसौटी पर कसना चाहता था। यह सम्भव हो सकता है कि इस प्रयत्न में 'अकबर इस्लाम धर्म के कुछ विश्वासों की भ्रांसीमाओं का उल्लंघन कर गया हो।' वास्तव में अकबर का अपनी प्रजा के साथ सदा सद्व्यवहार रहा और वह अपनी प्रजा को अपने पुत्र के समान मानता था।

दीन-इलाही का राजनीतिक परिणाम

दीन-इलाही का राजनीतिक परिणाम बड़ा महत्वपूर्ण तथा लाभप्रद रहा क्यो कि इसके द्वारा भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना उदय हुई जिसका अन्त पर्याप्त समय से हो चुका था किन्तु धर्म के रूप में उसको विशेष सफलता प्राप्त हुई। अकबर की मृत्यु होने पर उसका अन्त हो गया। 'अकबर ने जिस प्रकार एक नवीन साम्राज्य का निर्माण किया उसी प्रकार वह एक नये धर्म की स्थापना करना चाहता था। जिस प्रकार उसने विभिन्न प्रान्तों को मिलाकर विशाल साम्राज्य की स्थापना की उसी प्रकार वह विभिन्न धर्मों को एक सूत्र में बांधना चाहता था। परन्तु उसकी एक कमी यह हुई कि वह इस बात को नहीं समझ पाया कि धर्मों का निर्माण नहीं किया जाता तथा उसके तत्वों को एकत्रित कर एक सूत्र मे नहीं बाँधा जा सकता। धर्म के महान् प्रवर्तकों का उद्देश्य कभी भी एक धर्म की स्थापना करना नहीं रहा···उनके अनुयायियों ने अपने आपको समूहों मे संगठित नहीं किया तथा इस प्रकार सम्प्रदायों का आरम्भ हुआ। अकबर ने इसके बिल्कुल विपरीत ढग से कार्य किया। उसने उस बिन्दु से अपना कार्य आरम्भ किया जहाँ पर एक धर्म-प्रवर्तक का कार्य समाप्त होता है। आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित करने के उपरान्त उसने दीन-इलाही की विस्तृत योजना का निर्माण किया।"* फिर भी इस बात को अवश्य स्वीकार करना होगा कि इसके द्वारा जिज्ञासा की उदार भावना, जिसका जन्म इसके द्वारा हुआ, चलती रही और यदि इसका अन्त न हो पाया होता तो अन्धविश्वासों का अन्त हो जाता।

जहाँगीर की धार्मिक नीति

जहाँगीर कट्टर मुसलमान था किन्तु उसकी धार्मिक नीति उदार थी और उसमें सहिष्णुता की मात्रा पर्याप्त थी। उस पर भी उसके पिता के धार्मिक विचारों तथा नीति का विशेष प्रभाव पड़ा। अकबर द्वारा कुछ धार्मिक करों का अन्त कर दिया गया

* "Akbar wanted to found a new religion, just he founded an empire. He would piece together the different bits of every religion, and make a new one of them in a way he had conquered and annexed province of India and built up one great empire. In his folly he forgot that religions are never made, their elements are not borrowed and pieced together. The great founders of religion never meant to found them......It was their followers who formed themselves into groups and thus sects came into being. Akbar was doing just the other way, he began where religion ends. He planned and arranged the details of his Divine Faith after enunciating its basic principles."

—Journal of Indian History, 193[illegible]

था। जहांगीर ने उनका प्रथमन पुनः नहीं किया। उसने भी अकबर के समान राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को उच्चपदों पर आसीन किया। वह भी बहुत से हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार आचरण करता था। उसने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया, किन्तु इसके विपरीत उसके कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनके द्वारा यह संदेह उत्पन्न होता है कि उसमें उदारता की मात्रा कम थी। उसने उन व्यक्तियों के साथ सद्व्यवहार किया तथा उनको आर्थिक सहायता प्रदान की जिन्होंने इस्लाम धर्म को अंगीकार किया। उसने कुछ मुसलमान स्त्रियों को हिन्दू धर्म स्वीकार करने को रोका। उसने पुष्कर के बाराह मन्दिर को नष्ट कराया तथा जैनियों का साम्राज्य से बहिष्कार करने का आदेश प्रदान किया। उसने गुरु अर्जुन का इसलिये वध करवाया कि उसने राजकुमार खुसरो को आशीर्वाद दिया था। कुछ कार्य वास्तव में ऐसे अवश्य थे जिनसे यह प्रकट होता है कि उसमें कट्टरता किसी अंश तक विद्यमान थी, किन्तु वह समय की गति के कारण उसका खुलकर दिग्दर्शन नहीं कर सका। उसके शासन के अन्तिम दिनों में राजपूतों का प्रभाव कम होने लगा था। चाहे किसी कारण से भी, उसने धार्मिक उदारता की नीति को अपनाया और हिन्दुओं को ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया कि वे मुगल-साम्राज्य के विरोध में उठ खड़े हों।

शाहजहां की धार्मिक नीति

शाहजहां की धार्मिक नीति में उदारता तथा सहिष्णुता का पूर्णतया अभाव था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और अन्य धर्मों के अनुयायियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। तत्कालीन इतिहासकारों ने उसकी धार्मिक कट्टरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस पर मुल्लाओं और मौलवियों का विशेष प्रभाव था। उसने ईसाइयों का वध करवाया। उसने बहुत से मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसने दक्षिण के राज्यों का अन्त करने का निश्चय किया क्योंकि वे शिया धर्मावलम्बी थे। उसने बहुत से ऐसे नियमों की उद्घोषणा करवाई जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि उसने उदारता की नीति का पूर्णतया परित्याग कर दिया था।

औरङ्गजेब की धार्मिक नीति

भारत के इतिहास में औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता के लिये विख्यात है। उसकी धार्मिक नीति उसके धार्मिक आचार-विचारों पर आधारित थी। वह पक्का सुन्नी मुसलमान था और उनकी ही सहायता से वह वास्तव में राजसिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ और उदार दल का नेतृत्व करने वाले दारा को पराजित कर सका। उसने राजनीति और धर्म को सम्मिलित किया जबकि अकबर ने इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् कर मुल्लाओं की शक्ति का अन्त किया। औरंगजेब कुरान को धार्मिक ग्रन्थ के साथ-साथ राजनीति का पथ-प्रदर्शक समझता था। उसने उसी के अनुसार नियम बनाए और उन नियमों की समाप्ति कर डाली जो उसके विरोध में थे। वह मूर्ति-पूजा का कट्टर शत्रु था और इसी कारण उसने हिन्दुओं के अनेक भव्य मन्दिरों को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने धार्मिक उत्सवों पर कर लगाना

लिये मुगल-साम्राज्य में विलीन किया कि वे शिया धर्म के अनुयायी थे। उसने उन सब प्रदेशों पर जिहाद करवाया जहाँ हिन्दू अधिक संख्या में निवास करते थे जिससे वे इस्लाम धर्म को अंगीकार कर लें। उसने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी कुरान को आदेश माना। उसने आराम तथा भोगविलास से अपना हाथ खींच लिया और एक फकीर के समान जीवन व्यतीत करने लगा जिसके कारण वह 'जिन्दा पीर' के नाम से विख्यात हुआ। उसने हिन्दुओं पर वे कर लगाये जो उन पर इसलिये लगाये जाने चाहियें थे कि वे काफिर हैं। इन करों को हिन्दू बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन करों को लगाने के समय औरंगजेब ने उनकी धार्मिक भावनाओं की ओर तनिक भी ध्यान नहीं लिया। औरंगजेब के प्रारम्भिक काल में मिर्जा राजा जयसिंह और जोधपुर के राजा जसवंतसिंह महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे और वे हिन्दू हितों के रक्षक माने जाते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनसे मुक्ति पाने के लिये औरंगजेब ने उनकी मृत्यु में सहायता प्रदान की जिसके कारण राजपूत उसके विरोधी हो गये और उन्होंने खुलकर संग्राम करने का निश्चय किया।

औरंगजेब की आज्ञायें

औरंगजेब ने न केवल अपनी ही दिनचर्या को कुरान के अनुसार बनाया वरन् वह अपनी जनता को भी उसके अनुसार आचरण के लिये बाध्य करता था। उसने निम्न आज्ञायें निकालीं—

(१) उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बन्द कर दिया जिससे वे पवित्र शब्द विधर्मियों के स्पर्श से अपवित्र न हो जायें।

(२) उसने नौरोज का उत्सव बन्द कर दिया।

(३) उसने मुहतसिब (धार्मिक निरीक्षक) नियुक्त किये। इनका काम जनता को कुरान के नियमों को समझाना था तथा वे उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना आवश्यक बतलाते थे। सूबेदारों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को भी कुरान के अनुसार जीवन व्यतीत करने के आदेश दिये गये।

(४) भांग की उपज बन्द कर दी गई।

(५) पुरानी मस्जिदों की मरम्मत की व्यवस्था की गई।

(६) संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गायकों को दरबार से निवृत कर दिया।

(७) तुलादान बन्द कर दिया गया जो सम्राट की वर्षगांठ के दिन हुआ करता था। सम्राट सोने-चांदी से तोला जाता था।

(८) जहांगीर द्वारा आगरे के दुर्ग के द्वार पर रखी हुई हाथियों की पत्थर की मूर्तियां हटा दी गईं।

(९) अभिवादन करने की हिन्दू-प्रथा का अन्त कर दिया गया।

(१०) ज्योतिष-ज्ञाताओं पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

(११) जन्म-दिवस तथा राजतिलक सम्बन्धी उत्सवों का अन्त कर दिया गया।

(१२) रेशमी वस्त्र धारण करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

(१३) प्रजा-भवन से सोने और चांदी की छड़ें हटा दी गईं।

(१४) राजपूत राजाओं के माथे पर तिलक लगाने की प्रथा का अन्त कर दिया गया।

(१५) सम्राट ने झरोखे से दर्शन देना बन्द कर दिया।

(१६) स्त्रियों का साधुओं के पास आना-जाना बन्द कर दिया।

(१७) होली के उत्सव तथा मोहर्रम के जलूसों पर रोक लगाई गई।

(१८) सती-प्रथा को बन्द करने का प्रयास किया गया।

(१९) गुलाम प्रथा का अन्त करने का आदेश दिया गया।

उक्त नियमों द्वारा यह सिद्ध होता है कि वह जनता को कुरान के अनुसार नियमित रूप से जीवन व्यतीत करवाना चाहता था। उसने स्वयं भी अपने व्यक्तिगत जीवन को इसी प्रकार व्यतीत किया। उसका नैतिक स्तर उन्नत था। उसमें वे दोष विद्यमान नहीं थे जो उस समय के सम्राटों में थे। उसने जनता के नैतिक स्तर को उन्नत करने का प्रयास किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि 'ये नियम कट्टर धार्मिक भावनाओं के परिणाम थे और राजनीति के विरुद्ध थे। नैतिकता ऊपर नहीं लादी जा सकती, उसका सम्बन्ध आन्तरिक भावनाओं से है।' प्रारम्भ में इन नियमों के मनवाने में विशेष कठोरता दिखाई गई किन्तु कुछ समय उपरान्त उसमें पर्याप्त शिथिलता आ गई।

औरंगजेब का हिन्दुओं से सम्बन्ध

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसके शासन का आधार कुरान था। इस कारण उसने हिन्दुओं के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया तथा उसने उस नीति का परित्याग किया जिसको अकबर ने अपनाया और जिसके कारण वह मुगल-साम्राज्य की स्थापना करने में सफल रहा। औरंगजेब अपने धार्मिक उत्साह तथा अन्धविश्वास के कारण उस नीति की सराहना नहीं कर सका जिसने हिन्दू और मुसलमानों को बहुत समीप कर दिया था। उसने निम्न उपायों का अनुसरण हिन्दुओं के प्रति किया—

(१) हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करना—जिस समय औरंगजेब गुजरात का सूबेदार था उसी समय उसने हिन्दुओं के मंदिरों को नष्ट करने की नीति अपनाना आरम्भ किया।* उसने चिन्तामणि के मन्दिर को नष्ट करवाकर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया। राजसिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त उसने इस ओर विशेष रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया। उसने आदेश जारी किया कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को नष्ट कर दिया जाय। "मन्दिर तोड़ने के लिये नियुक्त किये गये सरकारी कर्मचारियों की इतनी अधिक संख्या थी कि उनको आदेश देने तथा देखभाल के लिये एक दरोगा की नियुक्ति करनी पड़ी थी। इसके आदेश के अनुसार

* "For religion he persecuted the Hindus and destroyed their temples, while he damaged the exchequer by abolishing the time-honoured tax on the religious fairs and fasts of the unbelievers." —Sarkar and Datta.

सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर तथा मथुरा का केशवराय का मन्दिर नष्ट कर दिये गये। धार्मिक उत्साह के कारण उसने मथुरा का नाम जो मन्दिरों का नगर है, बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। उसने बनारस के विश्वनाथ के मन्दिर के स्थान पर एक गगनचुम्बी मस्जिद का निर्माण करवाया। उसने उन हिंदू राजाओं द्वारा निर्मित मन्दिरों को तुड़वाया जो उसके मित्र थे। उसने अजमेर के बहुत से मन्दिरों को नष्ट करवाया। उसने यह भी आदेश दिया कि नये मन्दिरों का निर्माण न किया जाये और पुराने मन्दिरों की मरम्मत न करवाई जाये। उसने मन्दिरों की मूर्तियां तुड़वाई और जनता द्वारा उनको कुचलवाया गया। कुछ मन्दिरों में तो उसने गौ-वध की भी आज्ञा प्रदान की।

> **औरङ्गजेब का हिन्दुओं से सम्बन्ध**
> (१) हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करना।
> (२) हिन्दू विद्यालयों का अन्त।
> (३) जजिया कर लगाया जाना।
> (४) हिन्दुओं को सरकारी सेवाओं से वंचित करना।
> (५) धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देना।
> (६) हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध।

(२) हिन्दू विद्यालयों का अन्त—उसने हिन्दुओं के धर्म के साथ-साथ उनकी सभ्यता तथा संस्कृति पर भी आघात पहुँचाया। उसने आदेश निकाला कि हिन्दुओं के विद्यालयों का अन्त कर दिया जाये।* मुसलमान विद्यार्थियों को हिन्दू-विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और हिन्दुओं को आदेश दिया गया कि अपने विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा स्थगित कर दें।

(३) जजिया कर का लगाया जाना—औरंगजेब ने १२ अप्रैल सन् १६७९ ई० को काफिरों को नीचा दिखलाने के अभिप्राय से जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया जिसको वे बहुत ही घृणित समझते थे। यह कर हिन्दुओं पर इस्लाम धर्म स्वीकार करने के कारण लगाया जाता था। अकबर से लेकर शाहजहां तक यह कर माफ था। उसने इस कर को वसूल करने के लिये विशेष पदाधिकारियों की नियुक्ति की तथा उन्होंने विशेष तत्परता तथा कठोरता की नीति अपनाई।

(४) हिन्दुओं को सरकारी सेवाओं से वंचित करना—औरंगजेब ने सन् १६७० ई० में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की कि माल-विभाग के बेईमान कर्मचारियों को उनके पदों से निवृत्त कर दिया जाए। उनके पदों पर मुसलमान पदाधिकारी नियुक्त किये जायें। शीघ्र ही आज्ञा का पालन किया गया। बहुत से हिन्दुओं को उनके पदों

---

* "Orders in accordance with the organisation of Islam were sent to the Governors of the provinces that they should destroy all the schools and the practice of the religion of the Kafirs." —Maasir-e-Alamgiri.

से अलग कर दिया गया और उनके स्थान पर मुसलमान नियुक्त किये गये।* वास्तव में औरंगजेब का यह कहना कि बेईमानों को अलग किया जाये, बहाना मात्र था। वास्तव में वह हिन्दुओं को ही अलग करना चाहता था, क्योंकि कोई भी मुसलमान कर्मचारी अपने पद से मुक्त नहीं किया गया। जब बाद में उसको यह अनुभव हुआ कि हिन्दुओं के अभाव में विभाग का कार्य शिथिल पड़ गया तो उसने यह आदेश जारी किया कि एक हिन्दू के साथ एक मुसलमान भी होना चाहिये। यह नीति उसने सेना के सम्बन्ध में भी अपनाई। इसका प्रमुख कारण यह था कि उसका हिन्दुओं पर तनिक भी विश्वास नहीं था।

(५) धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देना—औरंगजेब चाहता था कि हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार करें। इसी कारण वह धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देता था। वह उनको प्रत्येक प्रकार के प्रलोभन देता था। ऐसे व्यक्तियों को उच्च पदों पर आसीन किया जाता था तथा उनको जागीरें आदि भी भेंट-स्वरूप दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त उसने बहुत से व्यक्तियों को बलात् इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। ऐसे उदाहरण पर्याप्त विद्यमान हैं जहां लोगों ने बाध्य होकर इस्लाम धर्म अंगीकार किया।

(६) हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध—औरंगजेब ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध लगाये जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

(क) राजपूतों के अतिरिक्त अन्य हिन्दुओं को हाथियों, पालकियों तथा अरबी घोड़ों पर चढ़ने के अधिकार से वंचित किया गया।

(ख) तीर्थ स्थानों पर मेला लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(ग) दीवाली तथा होली के उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

परिणाम—औरंगजेब की इस धार्मिक असहिष्णुता की नीति का प्रभाव साम्राज्य के लिये हितकर सिद्ध न होकर बड़ा घातक सिद्ध हुआ। आर्थिक क्षेत्र में राज्य की आय बहुत घट गई और इसके विपरीत राज्य को इस्लाम धर्म के प्रचार के लिये बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा।* राजनीतिक क्षेत्र में, हिन्दुओं ने साम्राज्य की सेवा से हाथ खींच लिया और विद्रोहों का होना आरम्भ हो गया। जाटों का विद्रोह, सतनामियों का विद्रोह, राजपूतों का विद्रोह तथा सिक्खों का विद्रोह उसकी इसी नीति के कारण हुए। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसकी धार्मिक नीति के कारण अकबर का कार्य अधूरा रह गया और पुनः हिन्दुओं और मुसलमानों में कटुता उत्पन्न हो गई और दोनों एक दूसरे के शत्रु बन गये।

---

* "A general order prohibiting the employment of Hindus was passed. This was particularly so with regard to the revenue department. The Hindus enjoyed a monopoly in the clerical establishments because most of the Muslims were reserved for the Royal army. Many Hindus changed their religion and thereby bought the security of the tenure of their office. Aurangzeb systematically followed the practice of appointing Muslims in place of Hindus in various [illegible]"

—Sarkar and Datta

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) किन कारणों से सम्राट अकबर एक 'राष्ट्रीय सम्राट' माना जाता है ? (१९५४)

(२) "दीने इलाही अकबर की बुद्धिमानी का सूचक है।" आलोचना कीजिये। (१९५६)

(३) अकबर को भारत का राष्ट्रीय सम्राट क्यों माना जाता है ? (१९५८)

(४) अकबर ने हिन्दू मुसलमानों में हेलमेल कराने का क्या प्रयत्न किया ? और वह कहां तक सफल रहा ? (१९५९)

(५) अकबर के सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों का वर्णन कीजिये। उनसे राज्य को और समाज को क्या लाभ हुआ ? (१९६१)

अजमेर—

(१) अकबर के स्वप्नों का वर्णन करो और बतलाओ कि उसने उनको किस प्रकार पूरा किया। (१९५०)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) "अकबर मुगल सम्राटों में महान् सम्राट था।" सिद्ध करो। (१९५२)

मध्य प्रदेश—

(१) अकबर की धार्मिक नीति का विवरण लिखो। (१९५६)

अन्य—

(१) औरंगजेब की धार्मिक नीति का वर्णन करो। उसका क्या परिणाम हुआ ?

(२) औरंगजेब का हिन्दुओं के प्रति क्या व्यवहार था ?

१२ मुगलों की शासन-व्यवस्था

मुगल-शासन-व्यवस्था की विशेषतायें

इससे पूर्व कि मुगलों की शासन-व्यवस्था का उल्लेख किया जाय उसकी विशेषताओं का अध्ययन करना अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अध्ययन द्वारा उसके स्वरूप का ज्ञान पूर्ण रूप से हो जायगा और उनके शासन को समझना भी सरल होगा। प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने मुगल-शासन की निम्न मुख्य विशेषतायें बतलाई हैं—

(१) **विदेशी प्रभाव**—मुगलों की शासन-व्यवस्था पर विदेशी प्रभाव था। मुगल मध्य-एशिया से भारत में आये। उनके शासन का आधार फारस और अरब का

शासन था। उन्होंने भारतीय परिस्थिति के अनुसार उसमें कुछ सुधार किये जिससे वे भारतीय जनता के अनुकूल बन सकें।

(२) सैनिक शासन—मुगलों के शासन का आधार सैनिक था। प्रत्येक राजकीय पदाधिकारियों को सैनिक कार्य करना पड़ता था और उसका सेना में भर्ती होना अनिवार्य था। वह मनसबदार होता था। उसके मनसब के अनुसार ही उस पद और वेतन निश्चित होता था।

मुगल-शासन-व्यवस्था की विशेषतायें

(१) विदेशी प्रभाव।
(२) सैनिक शासन।
(३) भूमिकर की प्राचीन व्यवस्था।
(४) राज्य उत्पादक के रूप में।
(५) केन्द्रीय निरंकुश शासन।
(६) न्याय तथा नियम आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध।
(७) सामाजिक कार्यों से राज्य का उदासीन होना।
(८) धर्म अप्रभावित शासन।
(९) उत्तराधिकार के नियम का प्रभाव।

(३) भूमिकर की प्राची व्यवस्था—मुगलों ने प्राचीन भूमि-व्यवस को अपनाया और उसी के अनुसार क लगाये, किन्तु अन्य करों के सम्बन्ध ऐसा नहीं था। अन्य कर शरियत के अनुसा लगाये गये।

(४) राज्य उत्पादक के रू में—राज्य सबसे बड़ा उत्पादक था। दारोगा के नियन्त्रण में कारखानों में विभिन्न प्रकार की वस्तुयें तैयार की जाती थीं।

(५) केन्द्रीय निरंकुश शासन—मुगल शासन में सम्राट का पद सर्वोच्च था। शासन की समस्त सत्ता उसमें निहित थी और उसकी शक्ति असीमित थी। साम्राज्य अधिक विस्तृत था जिसके कारण अधिकतर कार्य पत्र द्वारा किया जाता था।

(६) न्याय तथा नियम आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध—मुगल-सम्राटों की प्रवृत्ति न्याय तथा नियम सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध थी। देश में शान्ति की स्थापना तथा सुव्यवस्था को स्थापित करना आधुनिक राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य समझा जाता है। मुगल-शासन द्वारा ऐसी व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकी। उसने गांवों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जबकि इनकी संख्या बहुत अधिक थी। इतना तो मानना ही होगा कि मुगलों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों की अपेक्षा देश में शांति की स्थापना की ओर अधिक प्रयत्न किया।

(७) सामाजिक कार्यों से राज्य का उदासीन होना—राज्य की ओर से सामाजिक कार्यों के करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने समाज की उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया। राज्य ने शिक्षा को प्रोत्साहन देने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और न सामाजिक दोषों व कुरीतियों के अन्त करने की ओर ही। यदि किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न भी किया तो वह उसका व्यक्तिगत कार्य होता था न कि राज्य का।

(८) धर्म अप्रभावित शासन—मुगलों के शासन पर धार्मिक प्रभाव नहीं था।

...ारतीय परिस्थिति के अनुसार उसमें कुछ सुधार किये जिससे वे ...कूल बन सकें।

...शासन—मुगलों के शासन का आधार सैनिक था। प्रत्येक ...ों को सैनिक कार्य करना पड़ता था और उसका सेना में भर्ती होना अनिवार्य था। वह मनसबदार होता था। उसके मनसब के अनुसार ही उसका पद और वेतन निश्चित होता था।

(३) भूमिकर की प्राचीन व्यवस्था—मुगलों ने प्राचीन भूमि-व्यवस्था को अपनाया और उसी के अनुसार कर लगाये, किन्तु अन्य करों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं था। अन्य कर सुविधा के अनुसार लगाये गये।

(४) राज्य उत्पादक के रूप में—राज्य सबसे बड़ा उत्पादक था। दारोगा के नियन्त्रण में कारखानों में विभिन्न प्रकार की वस्तुयें तैयार की जाती थीं।

(५) केन्द्रीय निरंकुश शासन—मुगल शासन में सम्राट का पद सर्वोच्च था। शासन की समस्त सत्ता उसमें निहित थी और उसकी शक्ति असीमित थी। साम्राज्य ...सके कारण अधिकतर कार्य पत्र द्वारा किया जाता था।

...तथा नियम आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध—मुगल-सम्राटों की ...म सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध थी। देश में शान्ति की ...था को स्थापित करना आधुनिक राज्य का प्रमुख कर्तव्य समझा ...न द्वारा ऐसी व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकी। उसने गांवों की ... नहीं दिया जबकि इनकी संख्या बहुत अधिक थी। इतना ही ...मुगलों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों की अपेक्षा देश में शांति की

था। वही प्रान्त की समस्त सेना का प्रबन्ध करता था। किसानों और राज्य के कर्मचारियों के सम्बन्ध अच्छे न थे।*

(२) सरकार या जिला—प्रत्येक प्रान्त सरकार (जिलों) में विभाजित थे। 'सरकार' का सबसे बड़ा पदाधिकारी फौजदार कहलाता था। वह सरकार में सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था किन्तु उसको सूबेदार के अनुशासन में रहकर उसके आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। उसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट किया करता था। वह उच्च-कोटि का मनसबदार होता था। उसका मुख्य कार्य जिले में शांति तथा सुव्यवस्था की स्थापना करना था। वह जनता, जमींदारों आदि से सीधा सम्पर्क बनाये रखता था। उसके नियन्त्रण में एक छोटी सी सेना रहती थी जिसकी सहायता से वह चोरों तथा डाकुओं पर नियन्त्रण रखता था तथा छोटे-छोटे विद्रोहों का दमन किया करता था। इसके अतिरिक्त सरकार में एक आमिल होता था जिसका काम लगान वसूल करना था। प्रसिद्ध नगरों में कोतवाल होता था जिसका काम नगर में शान्ति की स्थापना करना था।

(३) परगना—प्रत्येक सरकार (जिला) परगनों में विभक्त थी। प्रत्येक परगने में एक शिकदार, एक आमिल और एक खजांची तथा कुछ अन्य कर्मचारी और होते थे। परगने का लगान वसूल करने का कार्य आमिल का था। शिकदार को परगने में शान्ति की व्यवस्था करनी पड़ती थी। उसके नियन्त्रण में सेना की एक छोटी-सी टुकड़ी रहती थी।

(४) नगर—नगर के प्रबन्ध के लिए एक कोतवाल होता था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। वह नगर की पुलिस का प्रधान होता था। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित थे—

(१) नगर की रक्षा करना।
(२) बाजार पर नियन्त्रण रखना।
(३) नगरवासियों की सम्पत्ति की उचित व्यवस्था करना।
(४) जनता के चरित्र को उन्नत करना।
(५) अपराधों को रोकना।
(६) सामाजिक कुरीतियों का अन्त करना।
(७) श्मशान, बूचड़खानों, कब्रिस्तान आदि का सुचारु प्रबन्ध करना।

उसका पुलिस तथा गुप्तचर विभाग पर नियन्त्रण रहता था और उनकी सहायता से वह समस्त ज्ञातव्य बातों की जानकारी प्राप्त कर लेता था। वह महत्त्वपूर्ण सूचनाओं से सरकार को अवगत कराता रहता था।

---

* "The contact, however, was not very intimate, and the villagers were left pretty much to their own devices, uninfluenced by indifferent to the Government at chief town of the province, so long as they paid the land-tax and did not disturb the peace."

(इ) सैनिक व्यवस्था

ा जा चुका है कि मुगलों के साम्राज्य का आधार सैनिक था।
ा था जब इसी आधार पर राज्य की सुरक्षा संभव थी।
ने की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक कर्मचारी को सैनिक
ा समयानुसार करना पड़ता था। अकबर ने सैनिक संगठन
: पर किया।

प्रथा—*मनसबदारी प्रथा भारत के लिये कोई नई बात नहीं*
ानत काल में भी हमे इस प्रथा के चिन्ह दिखलाई देते थे।
ी सेना में भी कुछ इसी प्रकार का श्रेणी विभाजन था।"
ानिक ढंग से संगठित किया। साधारणतः मनसब का अर्थ
। इस प्रकार मनसबदार वे व्यक्ति होते थे जो राज्य की
ी सेवाओं में कार्य करते थे। अकबर के समय मे मनसबदार
सबसे नीचे का मनसब १० का और सबसे ऊंचे का मनसब
५,००० के ऊपर के मनसब राजकुमारों को प्रदान किए जाते
ान्त ७,००० तक की मनसबदारी कुछ व्यक्तियों को उनकी
रखते हुए प्रदान कर दी गई थीं। सैद्धांतिक रूप मे प्रत्येक
निक रखने पड़ते थे जितनो का वह मनसबदार था। इनकी
था। यह आवश्यक नहीं था कि मनसबदार सर्वप्रथम सबसे
बनाया जाय। यह पद वंशानुगत नही था। मनसबदारो के
नुसार पद प्राप्त होता था। मनसबदारी को अपने पदो के
ड़े, खच्चर, गाड़ियां आदि रखनी पड़ती थीं किन्तु यह
: निश्चित पशु रखता था। इरविन के अनुसार 'प्रदर्शन तथा
ो यह स्वीकार करना होगा कि ऐसे मनसबदारों की संख्या
र रखते थे जितने के लिये उनको वेतन मिलता था।'* सन.त
ा भागों में किया गया था। १—वे जो दरबार में उपस्थित
तों में रहते थे।

५०० संख्या से आधी हो और तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत उनकी गणना की जाती थी यदि सवारों की संख्या जात की संख्या की आधी से भी कम हों। इस प्रकार बिना सवार का पद प्राप्त किये जात पद मिल सकता था किन्तु जात के बिना सवार पद नहीं मिलता था।

(३) सेना का विभाजन—समस्त मुगल सेना पाँच भागों में विभक्त थी—

(i) पैदल, (ii) घुड़सवार, (iii) तोपखाना, (iv) हाथी और (v) जलसेना।

निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायगा—

(i) पैदल—मुगलों के समय में पैदल सेना का विशेष महत्व नहीं था और इनको वेतन भी कम मिलता था। यह सेना दो भागों में विभक्त थी—

(क) अहशाम। (ख) सेहबन्दी।

इसके पास एक तलवार और छोटा भाला होता था।

(ii) घुड़सवार—मुगलों के समय में घुड़सवारों का विशेष महत्व था और मुगल सेना में इनकी ही बहुलता थी। घुड़सवार दो प्रकार के होते थे—(क) बरगीर-इनको साज का समस्त सामान सरकार से मिलता था और (ख) सिलेदार—जिनके अपने घोड़े तथा अस्त्र होते थे। इनका वेतन बरगीर के वेतन से अधिक था। सम्राट अकबर ने घोड़ों की भर्ती तथा सैन्य-प्रदर्शन के लिये कुछ नियम निश्चित कर दिये थे। वह घोड़ों का स्वयं निरीक्षण किया करता था।

(iii) तोपखाना—मुगलों के पास तोपखाना भी था। बाबर तथा हुमायूं ने भी अपने युद्धों में तोपों का प्रयोग किया। ये विभाग आतिश अथवा तोपखाने के दारोगा के अधिकार में था। इसके अन्तर्गत वे सिपाही भी सम्मिलित थे जिनके पास बन्दूकें होती थीं। बन्दूकें देश में भी बनाई जाती थीं तथा बाहर से भी मंगाई जाती थीं। मुगल गोलन्दाजी में विशेष निपुण नहीं थे। उनको रूमियों तथा योरोपीयनों से सहायता लेनी पड़ती थी। तोपखाना आलमगीर के समय में अकबर के समय से अधिक सुदृढ़ तथा बहुसंख्यक था।*

(iv) जल सेना—मुगलों की सेना का चौथा अंग जल-सेना थी। किन्तु वह विशेष प्रबल तथा शक्तिशाली नहीं थी। मुगलों ने पश्चिमी समुद्रतट की रक्षा का भार अबीसीनियों को तथा जंजीरा के सिद्दियों के अधिकार में दे दिया था, केवल पूर्वी बंगाल में नावों का एक बेड़ा था। नावों द्वारा आवश्यकता के समय हाथियों को चढ़ाकर ले जाया जाता था। नावों पर तोपें भी रखी जाती थीं। नदी पार करने के लिए नावों का पुल भी बनवाया जाता था और उनकी सुरक्षा की व्यवस्था इसी सेना द्वारा की जाती थी।

(v) हस्ति-सेना—मुगलों के पास हस्ति सेना भी थी। युद्ध में हाथियों का भी प्रयोग किया जाता था। बड़ी-बड़ी तोपें हाथियों द्वारा ले जाई जाती थीं। सेनापति हाथी पर बैठकर युद्ध करते थे तथा समस्त रण-क्षेत्र का निरीक्षण करते थे। मंत्रियों को चार

* "The artillery was much more perfect and numerous in Alamgir's reign than it was under his great grand father Akbar."
—[illegible]

क सिद्ध होते थे। इस सेना का प्रयोग शत्रु की पैदल शक्ति को
जाता था। इनको उस समय छोड़ा जाता था जब तोपों
क्योंकि तोपों की घड़घड़ाहट के कारण हाथी भयभीत हो जाते
नी सेना का ही संहार करना प्रारम्भ कर देते थे।
में दोष—मुगलों की सैनिक शक्ति पर्याप्त दृढ़ थी किन्तु उनकी
दोष विद्यमान थे जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—
न होना—मुगलों की सेना राष्ट्रीय नहीं थी, वरन् वह एक
में विभिन्न प्रकार के लोग सम्मिलित थे।
सम्राट के प्रति उत्तरदायी न होना—सैनिक सम्राटों के
रन् वे अपने को अपने मनसबदारों के प्रति उत्तरदायी समझते
रहता था।

(ई) आर्थिक व्यवस्था

है और भारत जैसे कृषि प्रधान देश में राज्य की आय का
है। मुगलों के शासन-काल में इसका महत्व बहुत अधिक
अन्य साधन-चुंगी, टकसाल, उत्तराधिकारी का नियम, लूट
।*

—बाबर और हुमायूं के शासन-काल में प्राचीन प्रथा के
थी। उन्होंने उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया।
थी। उन्होंने उसको ही अपनाया और बिना किसी प्रकार
ही उसको वसूल करवाना प्रारम्भ किया। शेरशाह ने
रवाये और उसको सुव्यवस्थित करने की ओर प्रयास किया
राज्य दोनों को पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ। यहाँ केवल इतना
उसने भूमि की नाप-तोल कराई और उपज का ध्यान रखकर
किन्तु उसकी मृत्यु के उपरांत भारत की दशा में अव्यवस्था
वस्था समाप्त हो गई। अकबर के राज्य-सिंहासन पर आसीन
भागों में विभक्त थी—(१) खालसा और (२) जागीर।
प्रकार से थी और वहाँ से राज्य कोषे कर में लगान वसूल
जागीरदारों तथा अमीरों का अधिकार था जो एक निश्चित

शासन-व्यवस्था का प्रचलन करवाया जिसने प्राचीन व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिये। अकबर ने इस विभाग को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया और उसको विशेष एवं अनुभवी व्यक्तियों की सेवायें प्राप्त हुईं जिनमें ख्वाजा अब्दुल मजीद, मुजफ्फर तुरबती और राजा टोडरमल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिस समय अब्दुल मजीद दीवान थे तो अनुमान के आधार पर विभिन्न सरकारों में लगान लगाया जाता था। किन्तु इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जब मुजफ्फर खां सन् १५६४ ई० में दीवान के पद पर आसीन हुये और राजा टोडरमल उनके सहायक हुये तो भूमि-कर के निश्चित करने का दूसरी बार प्रयास किया गया किन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सन् १५७३ ई० में अकबर के अधिकार में गुजरात आया और वहां उसने टोडरमल को भेजा। राजा टोडरमल ने वहां भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने भूमि की नाप-तोल करवाई और भूमि के क्षेत्रफल तथा उसकी उत्पादक-शक्ति का ध्यान रख भूमि का कर निश्चित किया। सन् १५८२ ई० में राजा टोडरमल दीवान के पद पर आसीन किये गये और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर इस ओर विशेष ध्यान दिया। उनके सम्मुख निम्न पांच समस्यायें थीं और उन्होंने उनका समाधान करने के उपायों पर बड़ी योग्यता के साथ विचार किया—

(१) कृषि योग्य भूमि की ठीक-ठीक नाप-तोल करवाना,

(२) कृषि योग्य भूमि का वर्गीकरण,

(३) प्रत्येक बीघे की औसत का ज्ञान प्राप्त करना,

(४) बीघे की उपज में राज्य के भाग को निश्चित करना, तथा

(५) राज्य के भाग का मूल्य निश्चित करना जिससे प्रजा लगान नकद रुपये के रूप में दे सके।

इन पांचों समस्याओं का राजा टोडरमल ने निम्न उपायों से समाधान किया—

(१) कृषि-योग्य भूमि की ठीक-ठीक नाप-तोल करवाना—अकबर ने जमीन की नाप-तोल सन की रस्सी के स्थान पर बांसों में लोहे के छल्ले डलवाकर जरीबों द्वारा करवानी आरम्भ की। सन की रस्सी गरम और ठण्डे मौसम में घट और बढ़ जाती थी। जरीबों द्वारा नाप-तौल में किसी प्रकार की गड़बड़ होने का भय नहीं रहा। यह नाप पटवारी के कागजों में लिख दी गई।

(२) भूमि का वर्गीकरण—कृषि-योग्य सम्पूर्ण भूमि चार श्रेणियों में विभक्त कर दी गई। इस विभाजन का आधार भूमि की किस्म अथवा उसका उपजाऊपन न होकर काश्त का होना था।

(क) पोलज—प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत भूमि पोलज कहलाती थी जिस पर सदैव काश्त होती थी और जो वर्ष में कभी भी परती नहीं छोड़ी जाती थी।

(ख) परौती—द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत भूमि परौती कहलाती थी। यह भूमि प्रथम श्रेणी की भूमि की अपेक्षा कम उर्वर थी। इस पर दो-तीन वर्ष निरंतर खेती करने के उपरांत एक-आध वर्ष के लिये परती छोड़ दी जाती थी जिससे भूमि पुनः अपनी उर्वरा-शक्ति प्राप्त कर सके।

(ग) चाचर—तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत चाचर भूमि थी। इसकी उत्पादन शक्ति द्वितीय श्रेणी की शक्ति से कम होती थी। यह भूमि उर्वरा-शक्ति प्राप्त करने के लिये तीन-चार वर्ष तक के लिये परती छोड़ दी जाती है।

(घ) बंजर—यह चौथी श्रेणी की भूमि के अन्तर्गत आती है। इसकी उत्पादन शक्ति बहुत ही कम होती है। उर्वर-शक्ति की प्राप्ति के लिये यह भूमि पांच-छह वर्ष तक परती छोड़ दी जाती है। इसको अपनी उर्वर-शक्ति की प्राप्ति के लिये पर्याप्त समय लगता है।

(३) औसत उपज का ज्ञान—प्रथम तीन श्रेणियां तीन भागों में विभक्त की जाती थीं। इन तीन श्रेणियों की भूमि की औसत पैदावार निकाल ली जाती थी और वह प्रत्येक प्रकार की भूमि की पैदावार मान ली जाती थी। पिछले दस वर्षों की पैदावार के आधार पर प्रत्येक फसल की प्रति बीघा पैदावार का औसत निकाल लिया जाता था।

(४) राज्य का विभाग निश्चित करना—औसत उपज निश्चित करने के उपरान्त राज्य उस औसत उपज का ⅓ भाग लगान के रूप में लेता था।

(५) मूल्य निश्चित करना—राज्य का भाग निश्चित करने के उपरान्त उसका नकद मूल्य निकाला जाता था क्योंकि राज्य लगान अनाज के रूप में नहीं वरन् नकद रुपये के रूप में वसूल करने की ओर प्रयत्नशील रहता था। दस वर्षों के औसत के आधार पर अनाज का मूल्य निश्चित कर उसको नकद रुपये के रूप में परिणत किया गया और वह पटवारी के कागजों में दर्ज कर दिया जाता था।

माल विभाग के पदाधिकारी—अकबर ने रैयतवाड़ी प्रथा को अपनाया और जमींदारी-प्रथा का अन्त कर दिया। इस प्रथा में राज्य का सीधा सम्पर्क एवं सम्बन्ध किसानों से होता है जो स्वयं कृषि करते हैं। उसने लगान वसूल करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति की। उसने मालगुजारी वसूल करने के लिये 'अमीन' नियुक्त किये और उनकी सहायता के लिए 'बितिक्ची', 'पोद्दार', 'कानूनगो' 'पटवारी', 'मुकद्दम' की नियुक्ति की गई। राज्य की ओर से कर्मचारियों को आदेश था कि वे जनता का ध्यान रखकर लगान वसूल करें। किसान को यह भी अधिकार था कि वह स्वयं राजकोष में धन जमा कर सकता था। निश्चित लगान से अतिरिक्त धन वसूल नहीं किया जाता था। जो कर्मचारी ऐसा करता था उसको राज्य की ओर से दण्ड दिया जाता था।

उक्त सुधारों का परिणाम—अकबर की राजस्व-व्यवस्था उच्च-कोटि की थी और इस विभाग को उन्नत करने में अकबर ने अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। इस व्यवस्था में किसान और राज्य दोनों को लाभ हुआ। राज्य की आय में बड़ी वृद्धि हुई और किसान का सीधा सम्पर्क राज्य से स्थापित होने के कारण वह ठेकेदारों तथा जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गया। किसान का भूमि पर अधिकार सुरक्षित हो गया। उससे न कर अधिक वसूल किया जा सकता था और न वह कम दे सकता था। प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर विन्सेंट स्मिथ ने भी अकबर की राजस्व व्यवस्था

की प्रशंसा की है। उसके अनुसार "अकबर की राजस्व-व्यवस्था प्रशंसनीय थी। उसके सिद्धान्त उच्च-कोटि के थे और वे आदेश जो राज्य की ओर से कर्मचारियों को दिये गये थ सन्तोषजनक थे।"* अकबर द्वारा स्थापित राजस्व-व्यवस्था पर्याप्त समय तक चलती रही और अंग्रेजों ने भी इसी व्यवस्था में कुछ सुधार कर इसको अपनाया। बाद में केन्द्रीय शासन के शिथिल होने के कारण इस व्यवस्था में कुछ दोष उत्पन्न हो गये किन्तु उस समय तक जब तक केन्द्रीय शासन सशक्त रहा यह व्यवस्था चलती रही। ऐसे उदाहरण हैं जब शाहजहां तथा औरङ्गजेब के शासन-काल में उन व्यक्तियों के साथ कठोर व्यवहार किया जिन्होंने घूंस लेना, भ्रष्टाचार करना प्रारम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त फसल आदि के नष्ट हो जाने पर किसानों को माफी मिल जाती थी और कभी-कभी राज्य की ओर से उनको तकावी भी दी जाती थी।

(उ) न्याय-विभाग

न्याय-विभाग शासन का प्रधान अंग होता है। सरकार को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही राज्य निर्बल व्यक्तियों की शक्तिशाली व्यक्तियों से रक्षा करता है। अकबर ने इस विभाग की ओर भी ध्यान दिया। समस्त मुगल-सम्राटों को अपनी न्याय-प्रियता पर गर्व था और वास्तव में वे जनता की फरियाद सुनने को प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। कुछ सम्राटों ने इसकी विशेष व्यवस्था की थी। जहांगीर ने तो एक सोने की जंजीर दुर्ग के बाहर लटकवाई थी जिसको खींचने का अधिकार प्रत्येक फरियादी को प्राप्त था। उसकी आवाज सुनते ही सम्राट फरियाद सुनता था और निर्णय किया करता था।

सम्राट न्याय का स्रोत था और साम्राज्य का उच्चतम न्यायाधीश था। प्रत्येक व्यक्ति को निम्न न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त था। महत्वपूर्ण मुकद्दमे सीधे सम्राट के न्यायालय में उपस्थित किये जाते थे। न्याय के लिये दिन निश्चित थे। सम्राट के नीचे सदर-ए-सदूर होता था जो माल तथा धन सम्बन्धी मामलों का निर्णय करता था। दूसरा काजी-उल-कुजात होता था। यह प्रधान काजी था। अधिकतर ये दोनों पद एक ही व्यक्ति के हाथ में रहते थे। उसके ऊपर ही समस्त न्याय का संचालन तथा उचित व्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व था। उसकी नियुक्ति सम्राट करता था और वह अपने पद पर उसी समय तक आसीन रह सकता था जब तक कि सम्राट का उस पर विश्वास हो। 'अब तक प्रमुख काजी की मुख्य योग्यता इस्लामी धर्मशास्त्र का ज्ञान तथा उसकी संकीर्ण धार्मिक विचार-धारा ही समझी जाती थी, किन्तु अकबर ने इस पद पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया, जिनके धार्मिक विचार उदार थे तथा सभी मत-सम्प्रदायों के लोगों के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी।'†

---

* "The system was an admirable one, the principles were sound and the practical instructions of the official all that could be desired."

—Dr. Smith : Akbar pp. 367—368

† 'Originally the chief Qazi's main qualification used to be his knowledge of Islamic theology and his narrow sectarian views But Akbar appointed to this most men of liberal religious out-look and broad sympathies towards all sections of the people.

—Dr A. L. Srivastava : The Mughal Empire, Page 203.

प्रधान काजी सम्राट की अनुमति से प्रान्तों, जिलों और नगरों में काजियों की नियुक्ति करता था। प्रत्येक न्यायालय में एक काजी, एक मुफ्ती और एक मीर अदल होता था। काजी का कार्य मामले की जाँच करना, मुफ्ती का कार्य कानून की व्याख्या करना तथा मीर अदल का कार्य फैसला सुनाना था। इनको राज्य की ओर से यह आदेश था कि वे निष्पक्ष निर्णय करें *किन्तु ऐसा कम होता था क्योंकि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था*। साधारणतः कुरान के नियमों के अनुसार न्याय किया जाता था, किन्तु हिन्दुओं के मामलों में उनके रीति-रिवाज आदि का ध्यान रखा जाता था। दण्ड-व्यवस्था कठोर थी। अंग-भंग का दण्ड भी दिया जाता था और जुर्मानों की धन-राशि बहुत अधिक होती थी। विद्रोह तथा कत्ल सम्बन्धी मुकदमों में फांसी की सजा तथा जेल की सजा भी दी जाती थी। गांव में न्याय की उचित व्यवस्था नहीं थी। वहाँ के लोग अपने *मामलों को अपनी पंचायतों में ही निर्णय कर लिया करते थे।*

औरंगजेब ने न्याय-व्यवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय से दो लाख रुपये व्यय करके इस्लाम धर्म के आधार पर संहिता (Code) का निर्माण करवाया जिससे काजियों को विशेष कठिनाई का अनुभव न करना पड़े। यह 'फतुवाए-आलमगीरी' के नाम से प्रसिद्ध है। वह उनकी नियुक्ति के समय निष्पक्ष रहने का आदेश देता था और उनसे शीघ्र न्याय की आशा करता था।

न्याय-व्यवस्था में दोष—मुगलों की न्याय-व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष *यह था कि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था। वे धन के लालच में आकर न्याय का गला* घोंटते थे, यद्यपि उनसे निष्पक्ष होने की आशा की जाती थी। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। न्यायालयों का संगठन भी उन्नत नहीं था। मुकदमों की लिखा-पढ़ी की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। इससे काजियों को मनमानी करने का अवसर प्राप्त हो जाता था। दण्ड-विधान बड़ा कठोर था और गांवों के लिये न्याय की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। न्याय-विधान का भी सर्वदा अभाव था। काजी के ऊपर ही सब कुछ निर्भर *रहता था। अधिकतर इस्लाम के कानूनों के अनुसार निर्णय करने की व्यवस्था थी।*

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की व्याख्या करो। (१९५२)

(२) अकबर के समय की मालगुजारी प्रथा का विवरण लिखिये। उसका कृषकों की आर्थिक अवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा? (१९५३)

(३) मुगलों के राजस्व-प्रबन्ध (मालगुजारी व्यवस्था) का वर्णन कीजिये। उसका कृषक वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ा। (१९५६)

(४) मुगलों ने केन्द्रीय शासन की व्यवस्था किस तरह की थी? (१९६०)

(५) टोडरमल के भूमि-कर सुधारों का वर्णन करो। (१९६२)

(६) मुगल राज्य में प्रान्तीय राज्यों का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता था? (१९६२)

(७) मुगल युग की मनसबदारी प्रथा पर संक्षिप्त नोट लिखिये, तथा उसके गुणों और दोषों की विवेचना कीजिये। (१९६४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगलों की शासन-व्यवस्था का वर्णन करो। (१९५३)

मध्य भारत—

(१) अकबर की राज्य-व्यवस्था का वर्णन कीजिये। (१९५१)

(२) मुगलों के भूमि-कर प्रबन्ध का विवरण कीजिये। (१९५३)

१३ मुगलकालीन समाज

मुगलकालीन राजनीतिक घटनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त तत्कालीन समाज का अध्ययन करना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि किसी देश अथवा काल की राजनीतिक घटनाओं से ही उसके इतिहास का ज्ञान पूर्णतया नहीं जाना जाता। वास्तव में समाज का अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक है और उसके द्वारा ही मानव को उस समय की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है। मुगलों ने न केवल भारत को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित करने का प्रयास ही नहीं किया वरन् उनके शासन-काल में सुख-शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना भी हुई, जिसके कारण साधारण सामाजिक जीवन उन्नत हुआ और भारत ने बहुँमुखी उन्नति की जो इस काल की मुख्य विशेषता है। दिल्ली सल्तनत के शासकों के समय में भारत में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना न हो सकी और इस युग में विद्रोहों की प्रधानता रही तथा शासकों को बाह्य आक्रमणों का विशेष भय रहा। वे उत्तरी-पश्चिमी सीमा के आक्रमणों द्वारा सदा सशंकित रहते थे जिसके कारण वे प्रजा के हितों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके।

मुगल-समाज के ज्ञान के सम्बन्ध में स्रोतों का अभाव है। उसका ज्ञान केवल यूरोपीय तथा अन्य यात्रियों द्वारा होता है जो विभिन्न समयों पर भारत में आये। इनके अतिरिक्त तत्कालीन इतिहासकारों ने फारसी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी इस पर प्रकाश डाला है।

समाज का विभाजन

मुगल-कालीन समाज आधुनिक युग के समाज से बहुत से अर्थों में समानता रखता है। समाज तीन वर्गों में विभक्त था—

(१) उच्च वर्ग—उच्च वर्ग के अन्तर्गत सम्राट और उसके उच्च-कोटि के मनसब थे। इनका जीवन-स्तर बहुत उन्नत था और इन्हें राज्य की ओर से विशेष

अधिकार-प्राप्त थे । इनकी आर्थिक स्थिति उन्नत थी और ये धन-धान्यपूर्ण था । धन की बहुलता के कारण ये अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे । मुगलों का नियम था कि मृत्यु के उपरान्त प्रत्येक राजकीय पदाधिकारियों की सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था और उसके उत्तराधिकारियों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता था । इससे प्रत्येक पदाधिकारी अपना समस्त धन अपने जीवन-काल में व्यय करना ठीक समझता था । ये बड़े भव्य भवनों में निवास करते थे और मदिरा और स्त्रियों में अपना समस्त धन फूंक देते थे । सम्राट और अमीरों के हरमों में सैकड़ों स्त्रियां निवास करती थीं । उनमें घमण्ड विशेष होता था और वे

> **समाज का विभाजन**
> (१) उच्च वर्ग ।
> (२) मध्य वर्ग और
> (३) निम्न वर्ग ।

साधारण जनता के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते थे । वे उनको हेय दृष्टि से देखते थे और उनका अनादर करने में उनको तनिक भी सङ्कोच नहीं होता था । स्त्रियां केवल भोग-विलास की ही वस्तु समझी जाती थीं । मुगल सम्राटों की भी ऐसी धारणा थी । अकबर के हरम में पांच हजार स्त्रियां थीं जिनका प्रबन्ध करने के लिये एक अलग विभाग स्थापित किया गया था । पैल्सर्ट का कथन है कि 'अमीरों के महलों में सजधज विशेष रूप से विद्यमान रहती थी और वे व्यभिचार के केन्द्र थे ।'* इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इनके जीवन में भोगविलास के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं । ये वीर, कुशल शासन-प्रबन्धक, दानशील, विद्या तथा कला-प्रेमी भी होते थे और इनके संरक्षण में तथा प्रोत्साहन द्वारा विद्या और कला ने विशेष प्रगति की । ये उत्तम भोजन करते तथा सुन्दर वस्त्र धारण करते थे । इस पर इनका बहुत अधिक व्यय होता था । इनको आभूषण धारण करने का भी चाव था । इनको संगीत तथा नाचने-गाने से विशेष प्रेम था । ये लोग फल बुखारा आदि से मंगवाते थे । मदिरा का प्रयोग अधिक मात्रा में था ।

(२) मध्य वर्ग—मध्य वर्ग के अन्तर्गत व्यापारी या मध्यम श्रेणी के राजकीय पदाधिकारी थे । इनका जीवन सरल और सादा था । इनकी आर्थिक अवस्था उन्नत थी किन्तु ये लोग उच्च वर्ग के लोगों के समान अधिक ठाट-बाट या भोग-विलास का जीवन व्यतीत नहीं करते थे । इनका जीवन अनुचित नहीं था और ये लोग अधिक मात्रा में मदिरा सेवन नहीं करते थे । पश्चिमी समुद्रतट के व्यापारियों का जीवन अन्य व्यापारियों के जीवन की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा ठाट-बाट का था । क्योंकि उनको वाह्य व्यापार से पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था । उनमें वे कुछ व्यसन विद्यमान थे जो उच्च कुल के व्यक्तियों में पाये जाते थे ।

(३) निम्न वर्ग—निम्न वर्ग के अन्तर्गत मजदूर, छोटे व्यापारी और छोटे

---

* "That the mahals of the rich were adorned internally with lascivious sensuality, wanton and reckless festivity, superfluous pomp, inflated pride and ornamental daintiness." —Pelsaert.

कर्मचारी प्राते हैं। इनका जीवन बहुत ही साधारण था और इनको आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव था। वास्तव में इनका जीवन नारकीय जीवन के समान था। इनके जीवन को तुलना दासों के जीवन से की जा सकती है। ये अपनी परिस्थिति तथा आर्थिक दयनीय अवस्था से बाध्य होकर इस जीवन को व्यतीत करते थे। इनका समाज में कोई स्थान नहीं था और न वे आदर और श्रद्धा को दृष्टि से देखे जाते थे। इनके पास पर्याप्त वस्त्र और न भोजन था। ये नगे पांव रहते थे और मिट्टी तथा फूंस के मकानो मे अपना जीवन व्यतीत करते थे। मजदूरी की दर बहुत कम थी और उनको बेगार पर ही कार्य करना पड़ता था। वास्तव मे उनकी दयनीय अवस्था के कारण ही मुगल भव्य भवनों का निर्माण करने मे सफल हो सके। ये लोग भाग्यवादी थे जिसके कारण इन्होंने कभी भी राज्य के विरुद्ध विद्रोह नही किया। साधारण समय मे इनको दोनों समय पेट भर भोजन अवश्य मिल जाता था। डाक्टर सरकार तथा दत्त के शब्दों में, "श्रमिकों को बहुत कम वेतन मिलता था। सामन्त तथा राजकीय अधिकारी वर्ग उनका शोषण करता था और वे बेगार करने पर बाध्य किये जाते थे। इसके बदले में उनको बहुत कम मजदूरी मिलती थी अथवा कुछ भी नही मिलता था। उनका भोजन बड़ा साधारण था और वे दिन मे केवल एक बार ही भोजन करते थे। भोजन में चावल मे मिली हुई हरी दाल की थोड़ी सी खिचड़ी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता था। उनके घर मिट्टी के बने थे, उनके छप्पर फूंस के होते थे, उनके पास कुछ मिट्टी के बर्तनो तथा बिछौने के लिये उनके पास कुछ न होता था। चपरासी और नौकर बहुत सख्या में मिलते थे। उनका वेतन कम था, परन्तु उनको दस्तूरी बराबर मिलती था और उनमें से उनकी सख्या बहुत कम थी जो ईमानदारी से अपने स्वामी की सेवा करते हों।"*
मजदूरों की अपेक्षा दूकानदारों की स्थिति उन्नत थी किन्तु कर्मचारियों के आतंक तथा भय के कारण वे भी अपना जीवन गरीबी में व्यतीत करते थे।

अन्य श्रेणियों मे वे दुर्व्यसन नही पाये जाते थे जो उच्च कुल के व्यक्तियों में विद्यमान थे। वे कभी मदिरापान नही करते थे और उनका भोजन भी सात्विक था। लोगों का व्यवहार विदेशियों के साथ साधारणतः शिष्टतापूर्ण था।

स्त्री-समाज—मुगल-काल में स्त्री समाज उन्नत नहीं था। उच्च कुल के लोग उनको केवल भोग-विलास की वस्तु समझते थे। वे अपने पति की इच्छा पर आश्रित थीं। उनको किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। उनका समस्त समय मकान को

* "The workmen received low wages, they were subject to the oppressions of the nobles and the royal officers and were sometimes forced to work for them receiving insufficient remuneration or nothing at all in return. They lived on poor food, and took one meal a day for which they got nothing but a little Khichri made of green pulse mixed with rice. Their houses were built of mud with thatched roofs and contained no furniture at all, except some earthen-pots and their humble beds. Peons or servants were available in large numbers. They received low wages but were allowed the customary commission for desturi, and very few of them served their masters honestly."
—Dr. Sarkar and Dutta : Modern Indian History, Part I. p.p 289-290

चाहरदीवारी में सीमित था। उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थी। पर्दा-प्रथा का रिवाज था। मुसलमानों में तलाक की व्यवस्था थी। तलाक के उपरान्त उनका जीवन बड़ा कलुषित हो जाता था। एक-एक सामन्त तथा पदाधिकारी के घर में सैकड़ों स्त्रियां रहती थीं। समाज में वेश्यावृत्ति थी। हिन्दुओं में सती प्रथा का प्रचलन था। अकबर ने इस प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु वह इस कुप्रथा को रोकने में सफल नहीं हो सका। उस समय बाल-विवाह की प्रथा के साथ-साथ दहेज प्रथा भी विद्यमान थी। कन्याओं का विवाह माता-पिता की इच्छा पर निर्भर था। सारांश यह है कि इनका समाज में आदर नहीं था। इस काल में कुछ स्त्रियां ऐसी हुई हैं जिन्होंने पर्याप्त उन्नति की ओर जो अपने पतियों को उनके कार्यों में सहायता प्रदान करती थीं तथा विशेष सुशिक्षित तथा सभ्य थीं। उनमें अकबर की माता हमीदाबानू बेगम, उसकी दाई महामअनगा, नूरजहां आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ स्त्रियों ने अपनी जान जोखिम में डालकर अपने सतीत्व की रक्षा की। बहु-विवाह की विशेष प्रथा थी।

सम्राटों का हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार—सम्राटों का साधारणतः हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सद्व्यवहार था जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के पर्याप्त समीप आ गये और उनमें उस प्रकार की ईर्ष्या तथा वैमनस्य नहीं था जो दिल्ली सुल्तानों के युग में विद्यमान था। दोनों एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। राजपूतों और मुगलों में वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। औरंगजेब की असहिष्णुतापूर्ण नीति ने हिन्दू और मुसलमानों में खाई तो अवश्य उत्पन्न कर दी किन्तु वे एक दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं हो सके। मुसलमानों ने हिन्दुओं के साहित्यिक तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा उनका फारसी भाषा में अनुवाद करवाया।

सामाजिक दोष—हिन्दू और मुसलमानों में सामाजिक दोष विद्यमान थे। इनमें धार्मिक अन्धविश्वास पर्याप्त मात्रा में था। इनका पीरों, फकीरों, साधुओं में बड़ा विश्वास था। ये जादू-टोना में भी विश्वास करते थे। इनका ज्योतिष में भी विश्वास था। धार्मिक यात्राओं में भी समान विश्वास था। मदिरापान तथा व्यभिचार का बोलबाला था। शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था जिसके कारण लोगों का नैतिक तथा मानसिक विकास नहीं हो पाया। हिन्दुओं में सती, बाल विवाह तथा दहेज की कुप्रथायें विद्यमान थीं।

इस प्रकार यह कहना ठीक ही होगा कि मुगलों के काल में भारत की सामाजिक स्थिति उन्नत नहीं थी और उसका मानसिक तथा नैतिक पतन हो चुका था। लोगों की मनोभावनायें पतित तथा कलुषित जीवन की ओर अधिक आकर्षित थीं और सम्राटों ने इसको उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

मुगलकालीन आर्थिक दशा

बाबर और हुमायूं के समय की आर्थिक दशा का बहुत कम उल्लेख मिलता है। जितना भी उल्लेख प्राप्त है उसके आधार पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि वस्तुओं के दाम अधिक नहीं थे और साधारण जनता का जीवन अधिक सुखमय नहीं था। शेरशाह ने आर्थिक सुधार किये जिन्होंने *साधारण जनता* की हीन अवस्था में कुछ

परिवर्तन अवश्य कर दिया। इसके शासन-काल में व्यापार और कृषि के क्षेत्र में उन्नति हुई किन्तु अन्तिम सूर-वंश के शासकों के समय में शासन में शिथिलता उत्पन्न हो जाने के कारण व्यापार और कृषि को बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु अकबर ने अपनी नीति से देश में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना कर व्यापार और कृषि को प्रोत्साहन प्रदान करने का भागीरथ प्रयत्न किया। उसके प्रयत्नों का फल उसके उत्तराधिकारी जहांगीर और शाहजहाँ ने भोगा जिनका काल विशेष गौरवमय था किन्तु समस्त गौरव सम्राट तथा उच्च कुल के व्यक्तियों तथा बड़े-बड़े पदाधिकारियों तक ही सीमित था। औरंगजेब के शासन-काल में उसकी नीति ने जनता में असन्तोष का प्रचार किया जिसके कारण उसके समय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई और साम्राज्य का अधिकांश धन युद्धों में व्यय किया गया और जनता की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी प्रयास नहीं किया। उत्तर-कालीन मुगल-सम्राटों के समय में आर्थिक दशा का दिन प्रति दिन ह्रास होना प्रारम्भ हो गया। आर्थिक दृष्टि से भारत की जनता को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत—सम्राट, उच्च पदाधिकारी,

(२) द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत—बड़े व्यापारी तथा मध्य वर्गीय कर्मचारी,

(३) तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत—छोटे राजकीय कर्मचारी तथा छोटे दूकानदार,

(४) चौथी श्रेणी के अन्तर्गत—मजदूर, कारीगर, किसान आदि हैं।

निम्न पंक्तियों में उनकी आर्थिक अवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा—

(१) प्रथम श्रेणी—इस श्रेणी के अन्तर्गत स्वयं सम्राट, राजपूत राजा जिन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी और जो उच्चतम पदों पर आसीन थे तथा अन्य उच्च पदाधिकारी तथा मनसबदार थे। इन सबकी आर्थिक अवस्था बहुत उन्नत थी। सम्राट की आय का तो कोई ठिकाना ही नहीं था और इसी कारण वे बहुत ही शान-शौकत तथा ठाठ-बाट का जीवन व्यतीत करते थे। राजपूत राजा अपनी आय का कुछ भाग राजकोष में जमा करते थे। उनका उनकी प्रजा से अधिक अच्छा व्यवहार नहीं था। वे मनमाने ढंग से उनसे कर वसूल करते थे। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से वे उच्च पदों पर आसीन थे और उनका वेतन बहुत अधिक था। वे अपना समस्त धन आमोद प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यय करते थे। वे बचाने का तनिक भी प्रयत्न नहीं करते थे क्योंकि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी समस्त सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था।

(२) द्वितीय श्रेणी—इस श्रेणी के अन्तर्गत बड़े व्यापारी तथा मध्य वर्ग के राजकीय कर्मचारी होते थे। मुगल काल में व्यापार की पर्याप्त उन्नति होने के कारण व्यापारी वर्ग की आर्थिक स्थिति उन्नत थी। मध्य वर्ग के राजकीय कर्मचारियों का वेतन भी पर्याप्त था। अच्छे जीवन-स्तर के लिये उनके पास धन का अभाव नहीं था, किन्तु जब वे अपने से ऊंची श्रेणी के व्यक्तियों का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देते थे तो उनको आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था, किन्तु साधारणतः उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। व्यापारी वर्ग धन का प्रदर्शन पसन्द नहीं करता था। केवल कुछ

हो व्यक्ति शान-शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। मुल्ला और मौलवी भी इसी श्रेणी
आते थे। उनकी आय भी पर्याप्त थी।

(३) तृतीय श्रेणी—इस श्रेणी के अन्तर्गत छोटे राजकीय कर्मचारी तथा छ
दूकानदार थे। इस श्रेणी के व्यक्तियों को आय साधारण जीवन व्यतीत करने के लि
पर्याप्त थी। राज्य में कुछ ऐसे स्थान थे जहां रिश्वत आदि लेने का अवकाश मि
सकता था। ऐसे लोगों की आय पर्याप्त हो जाती थी किन्तु राजकर्मचारियों के स्य
उच्च-कोटि का जीवन व्यतीत नहीं करते थे।

(४) चौथी श्रेणी—इस श्रेणी के अन्तर्गत मजदूर, कारीगर और किसानों
गणना होती थी। इनकी स्थिति अच्छी न थी। मजदूरों की बहुत अधिकता थी जिस
कारण उनको उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता था और बहुधा उनको बेगार करने के लि
बाध्य किया जाता था। साधारण समय में किसानों की दशा अच्छी थी, किन्तु अका
आदि के समय उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती थी और उनको अनेक प्रकार
कष्टों का सामना करना पड़ता था। मुगल-काल में कई भीषण अकाल विभिन्न समय
पर पड़े जिनके कारण किसानों को असह्य दुःख उठाने पड़ते थे। मुगल-सम्राटों ने इनक
सामना करने का प्रयास किया और किसानों को कुछ सहायता देने का भी प्रयत्न किया
किन्तु इन सबसे उनको विशेष सांत्वना तथा संतोष प्राप्त नहीं होता था। क्योंकि
सहायता अधिकतर उस समय पहुँचती थी जब सैकड़ों या हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो
जाती थी। शेरशाह तथा अकबर ने किसानों की स्थिति को उन्नत करने का भरसक
प्रयास किया, किन्तु सिंचाई के उपयुक्त साधन तथा दैवी प्रकोपों के सामने उनके सुधा
बहुत शिथिल पड़ जाते थे।

उद्योग-धन्धे—भारत की अधिकांश जनता राजकीय सेवा के अतिरिक्त कुछ अन्
उद्योग-धन्धे भी करती थी जिनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) कृषि—भारत एक कृषि प्रधान देश था और इस कारण भारत की
अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर रहती थी। यह लोगों का मुख्य उद्यम था। बाबर और
हुमायूं को अपने जीवन-काल मे कृषि की उन्नति करने का अवकाश प्राप्त नहीं हुआ और
उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। शेरशाह इस युग में प्रथम शासक थ
जिसने किसानों के साथ सद्व्यवहार किया और उनकी दशा को उन्नत करने का प्रयास
किया। अकबर ने भी इस ओर विशेष ध्यान दिया और उसके उत्तराधिकारियों ने भी
उसकी ही नीति के अनुसार आचरण किया, किन्तु भारतीय किसान अपने पुराने औजार
से प्राचीन प्रथा के अनुसार ही कार्य करता था जिससे भूमि की उत्पादन शक्ति मे
कोई विशेष अन्तर नहीं हो पाया। सिंचाई के पर्याप्त साधनों के अभाव में तथा दैवी
प्रकोपों के कारण बहुधा अकाल पड़ते रहते थे और किसानों को अनेक कष्टों का सामना
करना पड़ता था। किसान गेहूं, जौ, बाजरा, मक्का, गन्ना, ज्वार, तिलहन, कपास,
नील, दाल आदि को उत्पन्न करता था। बंगाल और बिहार में चावल, नील, गन्ना आदि
अधिकतर उत्पन्न किये जाते थे। गमनागमन के साधनों के अभाव में माल एक स्थान

से दूसरे स्थान को बहुत कम भेजा सकता था जिसके कारण अकाल-ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता उतनी नहीं हो पाती थी जितनी होनी चाहिये थी।

(२) व्यापार—मुगलों के समय मे व्यापार मे बड़ी उन्नति हुई। इस समय भारत का विदेशों से भी व्यापार था तथा आन्तरिक व्यापार भी उन्नत अवस्था मे था। बाह्य व्यापार के कारण पश्चिम के नगरों ने विशेष उन्नति की। इनमे सूरत विशेष प्रसिद्ध था। भारत से अन्य देशों को सूती और रेशमी वस्त्र, नील, काली मिर्च तथा अन्य मसाले भेजे जाते थे और दूसरे देशों से सोना, चांदी, तांबा, बहुमूल्य पत्थर आदि मगाये जाते थे। इसी व्यापार के कारण योरुप की कुछ जातियों ने भारत मे अपनी कोठियों की स्थापना की। मुगलों ने व्यापार की वृद्धि के उद्देश्य से सड़कों की सुरक्षा की ओर भी ध्यान दिया। सड़कों पर वृक्ष लगवाये और उन पर अनेकों सराय भी बनवाई जिनमे यात्री रात्रि के समय ठहर सकते थे। इस व्यापार के कारण विभिन्न उद्योगों मे बड़ी वृद्धि हुई और भारत में अच्छे से अच्छा सामान तैयार किया जाने लगा। इससे कारीगरों तथा व्यापारी वर्ग के साथ-साथ राजकीय आय में बड़ी वृद्धि हुई और देश समृद्धिशाली बन गया। भारत मे बहुत अच्छा धातु का तथा लकड़ी का काम होता था।

समृद्धिशाली और औद्योगिक नगर—व्यापार तथा उद्योग-धधों की वृद्धि के कारण औद्योगिक नगरों का महत्व बहुत बढ गया और वे समृद्धिशाली हो गये। सूर वंश के शासन-काल मे लाहौर बडी उन्नत अवस्था मे था। एरिस्कन (Erskine) के अनुसार शेरशाह और इस्लामशाह के समय मे 'लाहौर एक बड़ा और सम्पन्न व समृद्धिशाली नगर था। वह व्यापार का बहुत बडा केन्द्र था और वहां प्रत्येक उपयोगी वस्तु तथा लाभप्रद वस्तु सरलता से प्राप्त हो सकती थी।'* सन् १५८५ ई० मे फिच (Fitch) ने लिखा है कि "आगरा और फतहपुर दो बड़े नगर हैं। दोनों ही नगर अलग-अलग लन्दन नगर से बहुत बड़े और अधिक आबादी वाले है। आगरा और फतहपुर के मध्य बारह मील दूरी है और समस्त रास्ते में रसद और अन्य वस्तुओं से परिपूर्ण बाजार हैं, ऐसा ज्ञात होता है कि मनुष्य एक नगर मे है और अधिक व्यक्तियों के कारण ऐसा पता चलता है कि मनुष्य अभी भी बाजार मे है।"† टैरी (Tarry) का कथन पंजाब के सम्बन्ध मे मे इस प्रकार है कि "यह अत्यन्त बड़ा तथा उपजाऊ प्रदेश है। इसका प्रधान नगर लाहौर है जिसमे मनुष्य तथा धन की बहुलता है। यह नगर व्यापारिक केन्द्र है और व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक है।"‡ लाहौर के अतिरिक्त खानदेश मे

* "Lahore was a large and flourshing city, the centre of rich trade, and amply flourished with every useful and costly production of the time."

—Erskine, Vol. II pp. 469–70

† "Agra and Fatehpore are two very great cities, either of them much greater than London and very populous. Between Agra and Fatehpore are twelve miles and all the way is a market of rituals and other things as full as though a man were still in a town, and so many people as if a man were still in a market."

—Fitch, page 98.

‡ "A large province, and most fruitful. Lahore is the chief city and very large and abounds both in people and riches, one of the principal cities for trace in all India."

—Tarry

बुरहानपुर भी एक प्रसिद्ध नगर था। अहमदाबाद की प्रशंसा अबुल फज़ल ने की है। उसके अनुसार यह नगर उच्च कोटि का तथा समृद्धिशाली है। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत में बनारस, पटना, राजमहल, बर्दवान, ढाका विशेष उल्लेखनीय समृद्धिशाली नगर थे। काबुल भी इस समय उन्नत अवस्था में था क्योंकि यह मध्य एशिया और भारत के व्यापार का केन्द्र था।

वस्तुओं का मूल्य—मुगलों के समय में वस्तुओं का मूल्य कम था और इसी कारण साधारण व्यक्ति साधारण समय में अपनी आवश्यकताओं की वस्तुयें सरलता से जुटाने में सफल हो सकता था। यह सत्य है कि निम्न वर्ग की आर्थिक अवस्था अधिक उन्नत नहीं थी और उनको कठिनाई का सामना करना पड़ता था, किन्तु भूखों की संख्या का अभाव सा था। अबुलफज़ल ने मजदूरों के वेतन को बहुत कम-बतलाया है। उसके साथ-साथ उसने वस्तुओं के मूल्य की एक विस्तृत सूची भी दी है। दोनों पर ध्यानपूर्वक विचार कर इस परिणाम पर अवश्य पहुँचना होगा कि साधारणतया जीवन सुखमय था। साधारण मजदूर को प्रतिदिन २ दाम (आधुनिक ½ आने) मिलते थे और कुशल मजदूर को ७ दाम (आधुनिक २ आने) मिलते थे। वस्तुओं के भाव निम्नलिखित तालिका के अनुसार थे—

क्रम	वस्तुयें	प्रति मन	मूल्य (दामों में)
१	गेहूँ	,,	१२
२	गेहूँ का आटा	,,	२२
३	मोटा आटा	,,	१५
४	जौ	,,	८.
५	जौ का आटा	,,	११
६	बाजरा	,,	६
७	बढ़िया धान	,,	१००
८	साठी (मोटा चावल)	,,	२०
९	ज्वार	,,	१०
१०	चना	,,	१६½
११	सरसों	,,	१०
१२	तिल्ली	,,	६
१३	घी	,,	१०५
१४	मूंग	,,	१८
१५	तेल	,,	८०
१६	दूध	,,	२१
१७	दही	,,	१८
१८	बढ़िया गुड़	,,	६

इनके अतिरिक्त सब्जी, गोश्त, पशु, आदि का मूल्य भी पर्याप्त कम था। इस प्रकार साधारण जनता की आय भी कम थी और मूल्य भी कम थे। कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि उस समय के साधारण व्यक्ति का जीवन आज के साधारण व्यक्ति

अच्छा था, किन्तु मोरलैंड के अनुसार साधारण जनता दुखी थी क्योंकि बहुत कम थी।

गजेब के उपरान्त भारतीय आर्थिक स्थिति—औरंगजेब के शासन-काल र्णों में ही भारतीयों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने लगी थी। उसका यह था कि साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति, कलह, एवं विद्रोह फैल गया भाव भारत के उद्योग-धन्धों पर विशेष रूप से पड़ा। उसकी मृत्यु के न्त तो स्थिति और भी भयंकर हो गई। साम्राज्य में बहुत से युद्ध हुए।* नादिरशाह र अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने स्थिति को और भी गम्भीर कर दिया। दिरशाह भारत से अतुल धन लेकर गया। इधर मरहठों ने उत्तरी भारत में आक्रमण ने प्रारम्भ कर दिये। इन सबका प्रभाव बहुत बुरा हुआ और जनता का अत्यधिक त्र किया गया। बंगाल में ठेकेदारी की व्यवस्था के कारण किसानों को बहुत अधिक टों का सामना करना पड़ा। बाद में वारेन हेस्टिंग्ज तथा लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल दशा को उन्नत करने का अवश्य प्रयास किया, किन्तु स्थिति कुछ विशेष उन्नत नहीं पाई।

धार्मिक अवस्था—साधारणत मुगल सम्राटों ने औरंगजेब के अतिरिक्त धार्मिक हारता की नीति को अपनाया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्त हुई। इस समय हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन का जोर होने लगा जिसका प्रारम्भ ल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनों में प्रारम्भ हो गया था। इस काल में मीराबाई, रदास आदि सन्तों ने कृष्ण की उपासना की शिक्षा दी तथा तुलसीदास ने राम की पासना का पाठ पढ़ाया। उनके अनुसार मानव केवल भक्ति के आधार पर ही मोक्ष प्त कर सकता है, उसको ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, क्षिण में एकनाथ इस मार्ग का साधारण जनता में प्रचार कर रहे थे। कुछ महात्माओं आडम्बरों का खण्डन करने के लिये प्रयत्न किया। अकबर स्वयं अपने युग के विचारों बड़ा प्रभावित हुआ और वह कट्टर पंथियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। उसने पने विचारों को 'दीने-इलाही' धर्म के रूप में परिलक्षित किया जिसके द्वारा वह दोनों र्मों के अनुयायियों की कटुता का अन्त करने का विचार रखता था। अकबर के समान हांगीर की भी धार्मिक नीति बहुत उदार थी और धार्मिक व्यवस्था पूर्ववत् चलती ही। शाहजहां ने धार्मिक नीति में उलट-फेर करना प्रारम्भ किया। उसके शासन-काल में नये मन्दिरों के बनाने के लिये निषेध कर दिया गया और जो उस समय बन रहे थे उनको भ्रष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया। औरंगजेब पक्का कट्टर मुसलमान था। उसने शाहजहां की नीति को और आगे बढ़ाया और धार्मिक अत्याचार का युग प्रारम्भ हुआ। उसने न केवल हिन्दुओं के साथ वरन् शिया मुसलमानों तथा ईसाइयों के साथ कठोर

* "The incessant wars of the reign, bankruptcy of the administration and exhaustion of the exchequer, made maintenance of peace and order impossible, and consequently agriculture, industries and trade were so badly affected that for sometime trade came almost to a stand-still."

—An Advanced History of India, Page 576.

व्यवहार किया। उसने अनेकों मन्दिरों को नष्ट कर उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने हिन्दुओं को बाध्य कर इस्लाम-धर्म में दीक्षित करवाया। उसने उनकी पाठशालाओं को बन्द कर दिया। उसने उनके ऊपर जजिया कर लगवाया जिसको हिन्दू लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसकी यह नीति मुगल-साम्राज्य को अधोपतन की ओर ले गयी और उसके उत्तराधिकारियों को इसका दुःखद परिणाम भोगना पड़ा।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर-प्रदेश—

(१) मुगलकालीन समाज का वर्णन करो। (१९५१)

(२) १६वीं और १७वीं शताब्दी के प्रमुख धार्मिक नेताओं तथा सन्तों के कार्य तथा प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करो। (१९५१)

(३) मुगलकालीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिये। (१९५२)

अजमेर—

(१) मुगलकालीन समाज का दिग्दर्शन कराओ। (१९५१)

मध्य भारत—

(१) मुगल काल में भारत की जनता की सामाजिक और आर्थिक दशा का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

१४ मुगलकालीन सभ्यता और संस्कृति

मुगल-काल दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा बहुत उन्नत था। इस काल के शासकों के समय में भारत ने सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। अधिकांश मुगल शासक शिक्षित थे और वे विद्वानों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और प्रत्येक समय उनके द्वार उनके लिए खुले रहते थे। वे उनके आश्रयदाता थे और उनकी सहायता करने में अपना गौरव समझते थे।

शिक्षा

मुगल-काल में शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त था यद्यपि इस समय कोई शिक्षा-विभाग नहीं था जो शिक्षा के प्रसार के लिये उचित व्यवस्था का संचालन करने का प्रबन्ध करता, किन्तु फिर भी इनकी ओर से विद्यालयों को पर्याप्त धन सहायतार्थ प्राप्त होता था। राज्य के उच्च पदाधिकारी भी इनकी सहायता समय-समय पर करते थे। प्रत्येक मस्जिद में एक मकतब (पाठशाला) होती थी जिसमें समीप के बालक बालिकाएं विद्याध्ययन करते थे।

बाबर और हुमायूं—बाबर स्वयं अरबी, फारसी और तुर्की भाषा का पर्याप्त ज्ञान रखता था। उसके समय का पब्लिक वर्क्स विभाग (शोहरते आम) का अन्य कार्यों के अतिरिक्त यह भी काम था कि वह विद्यालयों के भवनों का निर्माण करे। हुमायूं को विद्या से बड़ा प्रेम था। वह स्वयं बहुत अध्ययन किया करता था और उसका पुस्तकालय उच्च कोटि के ग्रंथों से पूर्ण था। वह अपने साथ सदा कुछ चुनी हुई पुस्तकें रखता था। उसने दिल्ली में मदरसे का निर्माण करवाया तथा एक पुस्तकालय का शिलान्यास किया।

अकबर—अकबर के समय में विद्या का प्रसार करने का विशेष प्रयत्न किया गया यद्यपि वह स्वयं विशेष शिक्षित नहीं था। 'विद्यालयों में शिक्षा देने की परिपाटी की दृष्टि से अकबर का शासन-काल नवयुग माना गया है।'* उसने केरिकुलम (पाठ्यक्रम) में पर्याप्त संशोधन किये जिससे शिक्षा अधिक उन्नत हो पाई। उसने शिक्षा-प्रणाली को उन्नत करने का प्रयत्न किया, जिसका प्रभाव बड़ा अच्छा हुआ। उसने फतहपुर सीकरी, आगरा तथा अन्य कुछ स्थानों पर विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में हिन्दू भी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

जहांगीर—जहांगीर एक शिक्षित व्यक्ति था। उसको विद्या तथा साहित्य से अनुराग था। वह फारसी और तुर्की भाषा का पर्याप्त ज्ञान रखता था। उसके आदेशानुसार घोषित किया गया कि उच्च पदाधिकारियों की मृत्यु पर उनकी समस्त सम्पत्ति का प्रयोग शिक्षा-प्रसार के लिये किया जायेगा यदि उनका कोई उत्तराधिकारी न हो। राज्य-सिंहासन पर आसीन होते ही उसने उन मदरसों का जीर्णोद्धार किया जो पर्याप्त समय से बेकार पड़े हुये थे और जिनमें जङ्गली पशुओं ने अपना निवास-स्थान बना लिया था।

शाहजहां—शाहजहां भी विद्या-प्रेमी था। उसने भी शिक्षा का प्रसार किया और इसी उद्देश्य से वह विद्वानों को अतुल धन देता था। उसने दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना की और बहुत से पुराने स्कूल और कालिजों का उद्धार किया और उनको आर्थिक सहायता प्रदान की। उसका ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह बड़ा विद्वान तथा साहित्यकार था। वह अरबी, फारसी तथा संस्कृत का विद्वान था। उसने हिन्दुओं के कई ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया। उसने स्वयं कुछ ग्रन्थों की रचना भी की।

औरङ्गजेब—औरंगजेब यद्यपि विद्वान था, किन्तु उसने शिक्षा के प्रसार के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया यद्यपि उसने मुसलमानों के विद्यालयों को पर्याप्त धन दिया और उनके लिये ही कुछ स्कूल तथा विद्यालय स्थापित किये। इसके विपरीत उसने हिन्दुओं की पाठशालाओं को बन्द करवा दिया और वह सहायता देना भी रोक दिया जो उनको पहले से मिलती थी।

उत्तर-काल—उत्तर-काल के मुगलों को इस ओर ध्यान देने का बहुत कम अवकाश मिला किन्तु फिर भी कुछ सम्राटों ने इस ओर कुछ प्रयास अवश्य किया। बहादुर' तथा मुहम्मदशाह ने स्कूल और मदरसे खोले। इनके अतिरिक्त प्रान्तीय सूबेदारों ने भी शिक्षा-प्रसार कार्य में सहयोग प्रदान किया और इन्होंने कई मदरसों तथा कालिजों

* "Akbar's reign marks a new epoch for the system introduc d for imparting education in schools and colleges."

की स्थापना की। महमूद गवां ने बीदर में एक कालिज की स्थापना की। जौनपुर उस समय शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था।

स्त्री-शिक्षा

मुगलों ने स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी शिक्षा के लिये अलग कालिज तथा स्कूल की व्यवस्था नहीं थी। उच्च-कुल की स्त्रियां अवश्य कुछ शिक्षित होतीं थीं। उनकी शिक्षा घर पर ही होती थी। राजपरिवार की स्त्रियों की शिक्षा की अवश्य व्यवस्था थी। गुलबदन बेगम, सलीम बेगम, नूरजहां, जहांनारा बेगम तथा जेबुन्निसा पर्याप्त शिक्षित तथा सुसंस्कृत थीं, किन्तु साधारण स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था का सर्वथा अभाव था।

साहित्य

मुगलों के शासन-काल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई।* समस्त मुगल-शासक विद्वानों तथा साहित्यकारों के आश्रयदाता थे और इसी कारण इस काल मे उच्च-कोटि के साहित्य की रचना हुई।† बाबर ने तुर्की भाषा में अपनी "आत्म-कथा" की रचना की। हुमायूं विद्वान् था और उसको लिखने का भी कुछ शौक़ था। उसकी बहन गुलबदन बेगम ने "हुमायूं नामा" नामक ग्रन्थ की रचना की। हुमायूं के एक सेवक जौहर ने "तजकिराते वाकयात" नामक ग्रन्थ की रचना की। शेरशाह स्वयं बड़ा शिक्षित था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों का आश्रयदाता था और उनको आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसके शासन-काल में भी साहित्य के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई।

अकबर—अकबर यद्यपि स्वयं सुशिक्षित नहीं था, किन्तु उसने विद्वानों तथा साहित्यकारों को अपने यहां आश्रय दिया। वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करता था। अकबर की संरक्षिता में भारत में साहित्य का बड़ा विकास हुआ। अकबर के काल में एक अनुवाद-विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग के अन्तर्गत संस्कृत, अरबी तथा योरोपीय भाषाओं में रचित ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया गया। इसके अतिरिक्त उसके काल में ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई तथा फारसी भाषा में उच्च-कोटि का साहित्य रचा गया। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग प्रकाश डाला जाएगा—

(क) अनुवादित ग्रन्थ—जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है कि इस काल में विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाने के लिये एक अनुवाद-विभाग की स्थापना की गई। अनुवादकों में अब्दुलरहीम खानखाना, बदायूंनी, अबुलफ़ज़ल, फैजी, नकीब खां, इब्राहीम सरहिन्दी विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल में अधोंकित ग्रन्थो का अनुवाद हुआ—

* "As far as literature of different languages is concerned, it attained to the highest point during the Mughal period."

† "The Timurid rulers of India were patrons of literature and gave a considerable impetus to its development in different branches. Many scholars flourished and wrote interesting and important work under the patronage of Akbar." —Majumdar.

(१) महाभारत—समस्त अनुवादकों द्वारा
(२) रामायण—बदायूँनी द्वारा
(३) अथर्ववेद—बदायूनी तथा इब्राहीम सरहिन्दी द्वारा
(४) लीलावती—फैजी द्वारा
(५) ताजक—मुकम्मल खा गुजराती द्वारा
(६) राजतरंगिणी—मौलाना शाह मुहम्मद शाहाबादी द्वारा
(७) नल-दमयन्ती—फैजी द्वारा
(८) कालीयदमन—अबुलफजल द्वारा
(९) तुजके बाबरी—अब्दुल रहीम खानखाना द्वारा
(१०) तारीखे रशीदा—बदायनी द्वारा
(११) बाइबिल—
(१२) कुरान—

(ख) ऐतिहासिक ग्रन्थ—अकबर के शासन-काल में ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी पर्याप्त रचना हुई। ऐतिहासिक ग्रन्थों के रचयिताओं में अबुल फजल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण है।

(१) अबुल फजल का अकबर नामा,
(२) अबुल फजल का आइने अकबरी,
(३) बदायूँनी की मुन्तखबउततवारीख,
(४) मुल्ला दाऊदी तथा अन्य की तारीखे अलफी,
(५) निजामुद्दीन अहमद की तबकाते अकबरी,

उक्त ग्रन्थों में अबुल फजल द्वारा रचित ग्रन्थ 'अकबर नामा' अपना विशेष स्थान रखता है। इसकी भाषा बड़ी अलंकृत तथा प्रभावोत्पादक है। इसमें भारतवासियों के रीति रिवाजों का बड़ा सुन्दर तथा विशद् वर्णन किया गया है। 'आइने अकबरी' में अबुल फजल ने राजनैतिक तथा सैनिक व्यवस्था का विशद् वर्णन किया है। इसके साथ-साथ इसके अन्तर्गत तत्कालीन साहित्य और दर्शन का भी बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ उस समय के विश्व के ग्रन्थों में सबसे उत्कृष्ट था। इस ग्रन्थ के उपरान्त दूसरा ग्रन्थ बदायूँनी का है। यह गुप्त रीति से लिखा गया था क्योंकि लेखक सम्राट की धार्मिक नीति का विरोधी था। यह ग्रन्थ अकबर की मृत्यु के उपरान्त प्रकाश में आया। इसमें अन्य बातों के साथ अकबर की धार्मिक नीति की कटु आलोचना मिलती है। अतः इससे विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ग) फारसी के मूल ग्रन्थ—इस काल में ऐसे लेखकों तथा विद्वानों ने भी जन्म लिया जिन्होंने फारसी भाषा में मूल ग्रन्थों की रचना की। इस भाषा के कवि भी पर्याप्त मात्रा में थे। अबुल फजल के अनुसार दरबार सैकड़ों कवियों से सुशोभित रहता था जिनमें गिजाली तथा फैजी का नाम विशेष उल्लेखनीय था। अकबर के समय में निम्न कवि विशेष प्रसिद्ध थे—

(१) गिजाली—यह राजकवि था। इसकी प्रसिद्ध रचनायें मिरातुल कायनात,

नक्दे वार्दाद, इसरारे मकतूब हैं।

(२) फैजी—यह शेख मुबारक का पुत्र और अबुल फजल का भाई था। यह अरबी तथा फारसी भाषा का बड़ा विद्वान् था। उसकी प्रमुख रचनायें मसनवी नलोदमन मरकजे अदवार, मेवारिदुलकलाप, सवातुलइल्हाम आदि हैं।

(३) मुहम्मद हुसैन नाजिरी—ये उच्च-कोटि की गजलें लिखते थे।

(४) शीराज का सैयद जमालुद्दीन उर्फी—ये कसीदा की रचना उच्चकोटि की करते थे।

जहाँगीर—जहाँगीर सुशिक्षित तथा बड़ा विद्वान् था। उसने भी अपने पिता के समान साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। उसने स्वयं अपनी आत्म-कथा लिखी जिसका नाम 'तुजुके जहाँगीरी' है। नूरजहाँ और जहाँगीर को कविता करने का शौक था, किन्तु उनकी कवितायें उच्च-कोटि की नहीं थीं। उसके समय के प्रसिद्ध विद्वान् ग्यासबेग, नकीब खाँ, मुतामिद खाँ, न्यामतउल्ला तथा अब्दुल हक देहलवी थे। उसके शासन-काल में कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी रचना हुई। जिनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—

(१) ख्वाजा कामगार द्वारा रचित मआसिरे जहाँगीरी,

(२) मोतमिद खाँ द्वारा रचित इकबालनामा-ए-जहाँगीरी,

(३) मुहम्मद कासिम फरिश्ता द्वारा रचित तारीखे फरिश्ता।

शाहजहाँ—शाहजहाँ के काल में भी साहित्य की बड़ी प्रगति हुई। वह स्वयं सुशिक्षित तथा विद्वान् था और विद्वानों को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। इसके शासन-काल में ऐतिहासिक ग्रन्थों की, अनुवादों की, काव्यों की तथा दर्शन-शास्त्रों की रचना हुई। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायेगा—

(क) ऐतिहासिक ग्रन्थ—शाहजहाँ के समय के प्रमुख ग्रन्थ तथा इतिहासकार इस प्रकार थे—

(१) अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा रचित पादशाहनामा,

(२) इनायत खाँ द्वारा रचित शाहजहाँनामा,

(३) मिर्जा अमीन कजवीनी द्वारा रचित पादशाहनामा,

(४) मुहम्मद सालिह द्वारा रचित अमल सालिह,

(५) मुहम्मद सादिक द्वारा रचित शाहजहाँनामा,

(६) मुहम्मद ताहिर आशना द्वारा रचित मुलख् खास,

(७) जलालुद्दीन तबतबाई द्वारा रचित पादशाहनामा।

(ख) अनुवादित ग्रन्थ—शाहजहाँ के समय में कुछ धार्मिक ग्रन्थों का उसके सुशिक्षित पुत्र दाराशिकोह द्वारा अनुवाद सम्पन्न करवाया गया। उसके संरक्षण में भगवद्गीता, योग वशिष्ठ तथा उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा में करवाया गया।

(ग) काव्य—प्रसिद्ध साहित्यकार तथा कवि भी उसके शासन-काल में उत्पन्न हुए हैं, जिनमें अबू तालिब, कलीम, हाजी मुहम्मद जान, विशेष उल्लेखनीय थे।

(घ) धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ—शाहजहाँ के काल में धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना हुई। राजकुमार दाराशिकोह तथा मोहसिन फानी ने अनेक धार्मिक ग्रन्थों की रचना की जिनकी उस समय पर्याप्त ख्याति तथा प्रसिद्धि थी।

औरंगजेब—औरंगजेब स्वयं विद्वान् था। वह फारसी का बड़ा ज्ञाता था, किन्तु उसने साहित्य के प्रोत्साहन में तनिक भी योग नहीं दिया, किन्तु फिर भी गुप्त रूप से कुछ व्यक्तियों ने साहित्य की वृद्धि की। कुछ लोगों ने ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी रचना की जब कि इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना पर निषेध लगा दिया गया था। इनमें खाफीखाँ का नाम उल्लेखनीय है जिसने मुंतखब उल्लुबाब नामक ग्रन्थ की रचना की। औरंगजेब ने अन्य ग्रन्थों की सहायता से फतवा-ए-आलम-गीरी नामक ग्रन्थ का संकलन कराया।

हिन्दी साहित्य की प्रगति—मुगलों के समय में हिन्दी साहित्य ने बड़ी प्रगति की। भक्ति आन्दोलन द्वारा जन-साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १५४० ई० में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पद्मावत्' की रचना की जिसमें मेवाड़ की रानी पद्मनी के जीवन का वर्णन है। हिन्दी जगत में इसका स्थान पर्याप्त उच्च है। ये शृंगार रस के तथा रहस्यवादी कवि थे। स्वयं अकबर हिन्दी कविता से प्रेम करता था और हिन्दी के कवियों को उसने आश्रय दिया। राजा भगवानदास मानसिंह तथा बीरबल की गणना अच्छे कवियों में की जाती थी। सम्राट ने राजा बीरबल को कविप्रिय की उपाधि से सम्मानित किया। अब्दुलरहीम खानखाना उच्च कोटि के कवि थे। उनके दोहे आज भी आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखे और पढ़े जाते हैं। उक्त कवियों के अतिरिक्त अकबर के दरबार में करन, हरिनाथ गंग आदि कवि भी थे।

भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर कुछ साधु तथा सन्तों ने भी रचनायें कीं जिनकी हिन्दी साहित्य में बहुत प्रतिष्ठा है और जिनका स्थान बहुत श्रेष्ठ है। इस काल में भक्ति आन्दोलन दो शाखाओं में विभक्त हो गया था, एक राम मार्गी और दूसरा कृष्ण मार्गी। इन्हीं की प्रशंसा में उन्होंने काव्यों की रचनायें कीं। कृष्ण मार्गी कवियों में सूरदास और राम मार्गी कवियों में तुलसीदास का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। सूरदास ने अपने काव्य में कृष्ण भगवान् की बाल-लीला, कृष्ण और राधा के प्रेम को विशेष रूप से चित्रित किया है। उन्होंने ब्रज भाषा में 'सूर सागर' की रचना की। इसके बाद नन्द दास, विट्ठल दास, परमानन्द दास तथा रसखान का नाम आता है जिन्होंने कृष्ण की जीवन-लीला के सम्बन्ध में अपने काव्यों की रचना की। तुलसीदास राममार्गी थे। उनकी रचित 'रामचरित मानस' उनकी अमर कृति है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि काव्यों की रचना की। उनका ग्रन्थ 'रामचरित मानस' आज भी बड़ी श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वे कवि के साथ-साथ समाज-सुधारक तथा एक बड़े विचारक तथा दार्शनिक भी थे। इनके उपरान्त केशव का स्थान है जो संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी भाषा विशेष क्लिष्ट है जिसके कारण वह आसानी से समझ में नहीं आती। इनकी रचित 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया', 'रसिक प्रिया' आदि हैं। ये प्रधानतः शृंगार

रस के कवि थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी हुए हैं जिनमें सेनापति, सुन्दर, भूषण, देव तथा बिहारी हैं। सेनापति कृष्ण के भक्त थे। इनकी मुख्य रचना 'कवित्तरत्नाकर' है। भूषण राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण थे। उनकी प्रसिद्ध रचनायें 'शिवा बावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' हैं। बिहारी की 'सतसई' बड़ी प्रसिद्ध है। ये प्रधानतः शृंगार रस के कवि थे। औरंगजेब की असहिष्णुतापूर्ण नीति के कारण उसके शासन में हिन्दी साहित्य का विकास उस तीव्र गति से नहीं हो पाया जितना उसके पूर्व के सम्राटों के शासन-काल में हुआ था। मुगलों के समय में बंगला साहित्य का भी विकास हुआ।

कला

मुगल-सम्राटों को कला से भी विशेष प्रेम था। इनके संरक्षण में समस्त कलाओं का विकास हुआ और कलाकारों को राज्य की ओर से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। औरंगजेब अवश्य एक ऐसा मुगल-सम्राट हुआ जिसने कला के विकास में प्रोत्साहन देने के स्थान पर उसका अन्त करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। वास्तव में उसमें कलात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था। मुगलों के समय में निम्न कलाओं ने विशेष प्रगति की—

(१) स्थापत्य कला

(२) चित्र कला

(३) संगीत कला

निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग प्रकाश डाला जायेगा।

(१) स्थापत्य कला—मुगलों को स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था और उनके काल में इस कला को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ किन्तु इस काल की स्थापत्य कला न तो पूर्णतया मुगल-स्थापत्य कला ही कही जा सकती है और न पूर्णतया भारतीय ही। इसका कारण यह है कि इस स्थापत्य कला में मध्य एशिया, दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा भारतीय स्थापत्य कला का समन्वय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस बात की पुष्टि श्री हैवेल, सरकार तथा दत्त तथा डाक्टर ईश्वरी प्रसाद करते हैं, किन्तु कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि मुगलकालीन स्थापत्य कला विदेशी है और उस पर भारतीय कला का कोई प्रभाव नहीं था। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपना मत निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "निष्पक्ष भाव से देखने पर यह ज्ञात होता है कि अपनी विशालता के कारण वास्तव में कोई एक शैली विशेष रूप से नहीं अपनाई गई। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया। बाबर के काल में भारतीय कला एवं विदेशी कला का प्रभाव पड़ा जो अकबर के शासन काल में इसी प्रकार चलता रहा, किन्तु उसके उपरान्त वह भारतीय कला में इतना अधिक घुल-मिल गया कि उसके पृथक् अस्तित्व का पता लगाना कठिन प्रतीत होता है।"* वास्तव में यह मत अधिक सत्य है।

बाबर की स्थापत्य कला—बाबर को स्थापत्य कला से बड़ा अनुराग तथा प्रेम था और वह उच्चकोटि का पारखी था। उसको तुर्कों और अफगानों द्वारा बनवाये

* "History of Muslim Rule in India —Dr. Ishwari Prasad, Page 660.

हुये भवन चित्ताकर्षक नहीं हुये। वह ग्वालियर की शिल्प कला से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसने आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर, अलीगढ़ में इमारतों के निर्माण करने के लिये सैकड़ों कारीगर लगाये थे, किन्तु उसके द्वारा बनवाई हुई अधिकतर इमारतें समय के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गईं। इस समय उसकी बनवाई हुई केवल दो इमारतें ही शेष हैं, एक मस्जिद पानीपत में और दूसरी मस्जिद रुहेलखण्ड के सम्भल नामक नगर में है। इन दोनों मस्जिदों का निर्माण १५२६ ई० में हुआ था।

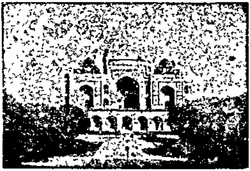

हुमायूं का मकबरा

हुमायूं की स्थापत्य कला—हुमायूं का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ जिसके कारण वह भवनों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका यद्यपि उसको भी स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था। उसने भी कुछ मस्जिदों का निर्माण करवाया। उनमें से एक फतेहबाद (हिसार) में अब भी विद्यमान है जो कला की दृष्टि से देखने योग्य है। इसकी खपरैलों पर फारसी ढंग से मीनाकारी की गई थी।

शेरशाह की स्थापत्य कला—शेरशाह को भी स्थापत्य कला से प्रेम था। उसने भी बहुत सी इमारतें बनवाईं जिनमें उसका सहसराम स्थित मकबरा विशेष

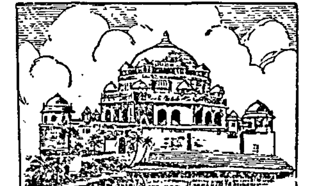

शेरशाह का मकबरा

दर्शनीय है। इसका बाह्य रूप मुसलमानी ढंग का है किन्तु इसका भीतरी भाग तोड़ों तथा हिन्दू ढंग के खम्भों से सुसज्जित है। "शेरशाह का यह मकबरा स्थापत्य कला के विकास के इतिहास में तुगलक सुल्तानों के समय की भारी तथा भद्दी इमारतों और शाहजहाँ की बनवाई हुई सुन्दर इमारतों के बीच की कड़ी है।"*

अकबर की स्थापत्य कला—अकबर को स्थापत्य कला से बड़ा अनुराग था। उसके शासन-काल में सुख और शान्ति की स्थापना हुई और चारों ओर सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना हो रही थी। उसने स्थापत्य कला में भी समन्वय करना प्रारम्भ किया। इसी कारण उसकी इमारतों में फारसी तथा भारतीय शैलियों का समन्वय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आगरे के दुर्ग में जहाँगीर महल तथा सीकरी की बहुत सी इमारतों के देखने से ऐसा जान पड़ता है मानों इन्हें किसी राजपूत राजकुमार ने बनवाया है। साम्राज्य में शान्ति की स्थापना होने पर उसने भव्य भवनों के निर्माण की आयोजना बनाई। अकबर के शासन-काल के प्रथम वर्षों में दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा बना जो १५६१ ई० में बनकर तैयार हुआ था। इसका ऊपरी भाग फारस की शैली के अनुसार था, जबकि इसका निम्न भाग भारतीय था। अकबर ने फतहपुर सीकरी

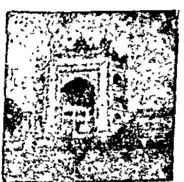

बुलन्द दरवाज़ा, फतहपुर सीकरी

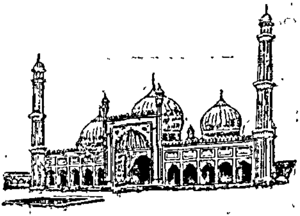

दिल्ली की जामा मस्जिद

* "Critics are of opinion that it is intermediate between the austerity of the Tughlak buildings and the feminine grace of Shahjahan's master piece."
Dr. A. L. Shrivastava — The Mughal Empire, page 535.

मे अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया । फतहपुर सीकरी की इमारतो मे जोधाबाई का महल विशेष दर्शनीय है। १५७६ ई० में गुजरात विजय के उपलक्ष मे उसने बुलन्द

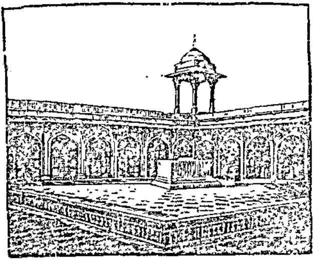

अकबर का मकबरा

दरवाजे का निर्माण करवाया । सीकरी में स्थित दीवाने खास भी विशेष दर्शनीय है जिसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इसका निर्माण भारतीय शैली के आधार पर किया गया था। इसके हिन्दू विचार के अनुसार मध्य में कमल के फूल के आकार का सिंहासनस्तम्भ है। पंच-महल भी देखने योग्य है। इसमें बौद्धकालीन कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। वहा की जामा मस्जिद भी एक सुन्दर इमारतो में है। फतहपुर

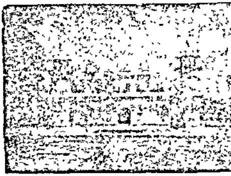

एतमाउद्दौला का मकबरा

(Furgueson) ने इसको 'Romance in stone' के नाम से सम्बोधित किया है। फतहपुर सीकरी के भवनों के अतिरिक्त उसने आगरे के समीप सिकन्दरा में अपने मकबरे की प्रयोजना अपने जीवन-काल में ही की थी। यह भी फतहपुर सीकरी में स्थित पंच-महल के ढंग का है। उसने इलाहाबाद में एक दुर्ग का निर्माण करवाया जो लगभग ४० वर्ष में बनकर तैयार हुआ।

दिल्ली का लाल किला

जहाँगीर की स्थापत्य कला—जहाँगीर को अपने पिता के समान स्थापत्य

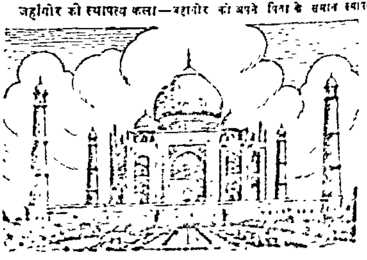

ताजमहल

कला से विशेष प्रेम नहीं था और इसके द्वारा निर्मित इमारतें उसके पिता द्वारा निर्मित इमारतों की अपेक्षा कम दर्शनीय हैं, फिर भी उसके समय के दो भवन सिकन्दरा में अकबर का मकबरा तथा आगरे में एतमाद-उद-दौला का मकबरा विशेष महत्वपूर्ण हैं। अकबर का मकबरा १६१३ ई० में बनकर तैयार हुआ। उसका प्लान अकबर ने अपने जीवन में ही बनवा दिया था। एतमाद-उद-दौला का मकबरा नूरजहां ने अपने पिता की स्मृति में बनवाया था। यह स्वच्छ सफेद संगमरमर का है और बहुमूल्य पत्थरों से अलंकृत है। यद्यपि यह आकार में बहुत छोटा है किन्तु बड़ा मनोहर है। इसके द्वारा नूरजहां के स्थापत्य कला के प्रेम का दिग्दर्शन होता है।

शाहजहाँ की स्थापत्य कला—मुगल सम्राटों में शाहजहां को इमारतों के बनवाने का सबसे अधिक चाव था। उसने अपने शासनकाल में बहुत सी इमारतों का विभिन्न नगरों में निर्माण किया। उसने इनके निर्माण में बहुत अधिक धन व्यय किया

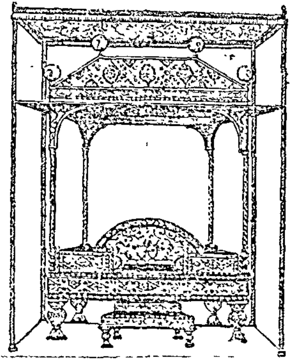

तख्ते ताऊस

जिसका सही अनुमान लगाना बड़ा कठिन है। शाहजहां द्वारा निर्मित इमारतों में उतनी अधिक भव्यता तथा मौलिकता नहीं है जितनी कि अकबर द्वारा निर्मित

इमारतों में विख्यात है किन्तु उसके महलों में कोमलता, सुन्दरता तथा सजावट अकबर के महलों से अधिक दिखाई देती है। शाहजहाँ ने अनेकों महल, दुर्ग, एवं मस्जिदों आदि का निर्माण आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, कंधार, अजमेर, अहमदाबाद आदि स्थानों में करवाया। उसने दिल्ली का लाल किला बनवाया। उसमें दीवाने आम तथा दीवाने खास विशेष दर्शनीय हैं। उनकी सुन्दरता बहुत अधिक है और यह उसकी खबर दुनियाँ में गिनी जाती है। दीवाने खास की दीवार पर उसने अंकित करवाया था कि 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है।"

"Agar fardaus barru-yi zamin ast
Hamin ast, u hamin ast, u hamin ast
If on earth be an Eden of bliss
It is this, it is this, none but this."

शाहजहाँ ने आगरे के दुर्ग में मोती मस्जिद का निर्माण करवाया जो स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। वहाँ पर उसने एक मस्जिद का निर्माण किया जो मस्जिदे-जहाँ नामा के नाम से विख्यात है। उसकी सब इमारतों में उत्कृष्ट तथा दर्शनीय ताजमहल है जो उसने अपनी प्रिय पत्नि मुमताज महल की यादगार में बनवाकर तैयार किया। अपनी सुन्दरता तथा भव्यता व विशालता के कारण वह विश्व में अनोखी वस्तुओं में अपना स्थान रखता है। इसके ऊपर ५० लाख रुपये से भी अधिक धन व्यय किया गया था। इसका निर्माण २२ वर्ष में हुआ था। उसने लाहौर में जहाँगीर का मकबरा बनवाया जो कला का उत्कृष्ट नमूना है। उसने तख्ते-ताऊस का निर्माण १ करोड़ रुपये से भी अधिक रुपये व्यय कर ७ साल में करवाया। यह सिंहासन मोर के समान आकृति में बनवाया गया था जो सात फीट चौड़ा, ७ फीट लम्बा और १५ फीट ऊंचा था। इसके ऊपरी भाग पर लाल, हीरे, जवाहिरात, पन्ने आदि जड़े हुए थे और यह भाग बारह खम्भों पर आश्रित था और प्रत्येक खम्भे पर रत्न जड़ित मोर बने हुए थे। ऐसा कहा जाता था कि इसको देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। फारस का बादशाह नादिरशाह इसको अपने साथ फारस ले गया, किन्तु दुर्भाग्य से वह आज कहीं भी नहीं मिलता। न मालूम उसका क्या हुआ।

औरंगजेब की स्थापत्य कला—औरंगजेब कला के प्रति पूर्णतया उदासीन था। उसको इस दिशा में तनिक भी अभिरुचि नहीं थी। उसने कला को तनिक भी प्रोत्साहन नहीं दिया, वरन् हिन्दुओं के कुछ भव्य मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर कला के उत्कृष्ट नमूनों को सदा के लिये जगत से विलीन कर दिया। उसके समय में कुछ मस्जिदों का अवश्य निर्माण किया गया है जैसे दिल्ली के दुर्ग की मस्जिद तथा लाहौर की मस्जिद, किन्तु वे बहुत सादी हैं।

औरंगजेब के समय से स्थापत्य कला का पतन होना आरम्भ हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य में अराजकता के उत्पन्न होने के कारण मुगल-सम्राटों को इस ओर विशेष ध्यान देने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

चित्रकला

मुगल-सम्राटों को चित्रकला से भी अनुराग था, यद्यपि कुरान में इसका निषेध था। प्रारम्भ में मंगोलों ने फारस में चित्रकला का प्रारम्भ किया। इस कला पर विभिन्न कलाओं का प्रभाव पड़ा और बाद के राजाओं ने इसको संरक्षता प्रदान की।

बाबर—बाबर को चित्रकला से प्रेम था। जब बाबर हिरात में आया तो उसको फारस की चित्रकला का ज्ञान हुआ और उसने उसका संरक्षण किया। उसने अपनी आत्मकथा को चित्रित करवाया। जीवन संघर्षमय व्यतीत करने के कारण वह इस ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाया।

हुमायूं—हुमायूं स्थापत्य कला की अपेक्षा चित्रकला में अधिक रुचि तथा अनुराग रखता था। जब वह अपना निर्वासन काल फारस में व्यतीत कर रहा था तो उसको इस कला के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। इसी समय उसका परिचय फारस के उच्च-कोटि के कलाकारों से हुआ जिनमें से दो को वह अपने साथ भारत ले आया। इनमें से एक का नाम मीर सैयद अली था जो हिरात के प्रसिद्ध कलाकार बिहजाद का शिष्य था और दूसरा ख्वाजा अब्दुल समद था। हुमायूं और अकबर ने इनसे चित्रकला सीखी। इन्होंने सुप्रसिद्ध फारसी ग्रन्थ दास्ताने-अमीर-हमजा को चित्रित किया। ये दोनों अनेक भारतीय चित्रकारों के साथ कार्य करते थे और इसी समय से फारसी और भारतीय चित्रकला का समन्वय आरम्भ होता है।

अकबर—अकबर की भी अपने पिता के समान चित्रकला की ओर रुचि थी। उसने भी प्रसिद्ध फारसी चित्रकारों से शिक्षा ग्रहण की थी। उसके शासन-काल में इस कला का विदेशीपन समाप्त होने लगा और अन्त में उसका रूप भारतीय हो गया। 'दास्ताने अमीरहमजा', 'तारीखे-खानदानी-तैमूरिया' और पटने की खुदाबख्श लाइब्रेरी में रखे हुए 'बादशाह नामा' के चित्रकारों की चित्रकारी देखकर मुगल चित्रकला के क्रमिक विकास का पता सरलता से लग जाता है। अकबर ने फतहपुर सीकरी के महलों की दीवारों पर उत्तम चित्र अंकित करवाये थे। अकबर के दरबार में बहुत से चित्रकारों को आश्रय मिला जिनमें अधिक हिन्दू थे तथा अन्य चित्रकारों की अपेक्षा अधिक योग्य थे। कुछ फारसी चित्रकार भी थे। इनमें भी पर्याप्त योग्यता थी। सब कलाकारों में सत्रह कलाकार बहुत योग्य थे, जिनमें से १ हिन्दू और ४ मुसलमान थे। हिन्दुओं में प्रमुख दसवन्त, बसावन, सांवलदास, ताराचन्द, जगन्नाथ विशेष प्रसिद्ध थे। अकबर ने चित्रकला की उन्नति तथा विकास के लिये अब्दुल समद की अध्यक्षता में एक विभाग की स्थापना की जिसने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया।

जहांगीर—जहांगीर को चित्रकला से बड़ा अनुराग था और वह स्वयं बड़ा पारखी था। उच्च कोटि के चित्रों के लिये वह बहुत अधिक धन व्यय करने को उद्यत हो जाता था। वह स्वयं उच्च कोटि का चित्रकार था। वह चित्र देखकर चित्रकारों का नाम बता दिया करता था। उसने स्वयं लिखा है कि "यदि एक चित्र कई कलाकारों द्वारा बनाया गया है तो भी मैं प्रत्येक कलाकार की चित्रकारी अलग-अलग बता सकता हूं।" उसके दरबार में बहुत से चित्रकार थे जिनमें हिरात के आगा रजा और उसका

पुत्र अब्दुल हसन, समरकन्द के मुहम्मद नादिर और मुहम्मद मुराद तथा उस्ताद मंसूर प्रसिद्ध थे। हिन्दू चित्रकारों में बिशनदास, मनोहर, माधव, तुलसी और गोवर्धन अधिक प्रसिद्ध थे।

शाहजहाँ—शाहजहाँ को चित्रकला की अपेक्षा स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था किन्तु उसने इस कला को प्रश्रय दिया, किन्तु उतना नहीं जितना अकबर और जहाँगीर ने प्रदान किया था। इसके समय में चित्रकला की अवनति होने लगी। दरबार में चित्रकारों की संख्या भी कम कर दी गई। उसके समय में फकीर उल्ला, मीर हाशिम इत्यादि दरबारी कलाकार थे। साधारण कलाकारों की दशा शोचनीय हो गई। उसका पुत्र दारा शिकोह चित्रकला का बड़ा प्रेमी था और उसके ही कारण कुछ चित्रकार दरबार में आश्रय पाते रहे, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त इस कला के विकास को बड़ा आघात पहुँचा।

औरंगजेब—औरंगजेब जैसा कट्टर सुन्नी मुसलमान इस कला को कैसे प्रोत्साहन प्रदान कर सकता था जब कि यह कुरान के विरुद्ध है। उसने दरबार से समस्त चित्रकारों को अलग कर दिया और इस अनुपम कला की पूर्ण अवनति होने लगी। इन कलाकारों को अन्य स्थानों में प्रश्रय अवश्य मिला और वे इधर-उधर चले गये। उसने चित्रकला के कुछ उत्कृष्ट नमूनों का अन्त कर उनमें सफेदी भरवा दी।

उसकी मृत्यु के उपरांत चित्रकला को संरक्षण प्रान्तीय सूबेदारों द्वारा प्राप्त हुआ और उसका विकास होना आरम्भ हुआ। राजपूतों में इस कला की विशेष प्रगति हुई और यह शैली राजपूत शैली के नाम से प्रसिद्ध है। लखनऊ और पटना के दरबारों में भी इस कला को संरक्षण प्राप्त हुआ।

संगीत कला

मुगल-सम्राटों को औरंगजेब के अतिरिक्त अन्य कलाओं के साथ-साथ संगीत-कला से भी विशेष अनुराग तथा प्रेम था। उन सबने इस कला की उन्नति तथा विकास में बड़ा सहयोग प्रदान किया।

बाबर और हुमायूं—बाबर स्वयं इस कला का बड़ा ज्ञाता था और उसने इसकी एक पुस्तक की रचना भी की। हुमायूं को भी इस कला से अपने पिता के समान रुचि थी। वह सोमवार तथा बुद्धवार को बड़े प्रेम से संगीत सुना करता था। उसके दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया जाता था। मांडू विजय के बाद कैदियों में से उसने बच्चू नामक संगीतज्ञ को बुलवाया और वह उसके संगीत से इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसको मुक्त कर दिया और दरबार में उसको स्थान दिया। सूर वंश के शासकों को भी इस कला से अभिरुचि थी।

अकबर—अकबर को संगीत से बड़ा प्रेम था और वह उसका बड़ा पारखी था। वह संगीत पर विशेष ध्यान देता था और वह अच्छे संगीतज्ञों की बहुत सहायता करता था। वह स्वयं एक उच्च कोटि का गायक था और उसका नक्कारों पर प्रदर्शन बड़ा कलात्मक होता था। उसने इस कला का बड़ा अभ्यास किया। वह अन्य प्रदेशों से भी प्रसिद्ध गायकों को बुलाकर अपने दरबार में आश्रय देता था। अबुल फजल के अनुसार

अकबर के दरबार में गायकों की संख्या बहुत अधिक थी और इनमें हिन्दू, ईरानी, तुरानी और काश्मीरी, स्त्री और पुरुष सभी सम्मिलित थे। ये सात विभागों में विभक्त थे। प्रत्येक विभाग सप्ताह के एक दिन सम्राट का मनोरंजन किया करता था। उसके दरबार में ३६ प्रसिद्ध गायक थे जिनमें तानसेन और मालव का शासक बाजबहादुर विशेष प्रसिद्ध थे। अब्बुल फजल के अनुसार तानसेन के समान हजार वर्षों से कोई गायक नहीं हुआ। वास्तव में वह अपनी इस कला में अद्वितीय था। इस समय के अन्य गायक बाबा रामदास, बैजूबावरा तथा सूरदास विशेष प्रसिद्ध थे। उनके प्रयत्नों के कारण इस कला का बड़ा विकास हुआ।

जहाँगीर—जहाँगीर को भी संगीत कला से प्रेम था। उसके दरबार में उच्च-कोटि के गायकों को आश्रय प्रदान किया जाता था। उसके दरबार में बहुत से पुरुष तथा स्त्रियाँ गायिका थी जो सम्राट, उसके पदाधिकारियों तथा बेगमों का मनोरंजन अपने संगीत से किया करते थे। उसके दरबार में ६ प्रसिद्ध गायक थे।

शाहजहाँ—शाहजहाँ भी संगीत कला का प्रेमी था। दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय मिलता था। रात्रि के समय होने से पूर्व वह गायन सुना करता था। वह स्वयं संगीत का ज्ञाता था और उसकी आवाज बड़ी सुरीली तथा चित्ताकर्षक थी। उसके दरबार में रामदास तथा महापात्र दो प्रधान गायक थे। ऐसा कहा जाता है कि वह एक बार संस्कृत राजकवि जगन्नाथ के गायन से इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसको पारितोषिक के रूप में उसके वजन के बराबर सोना प्रदान किया।

औरंगजेब—शासन के प्रारम्भिक काल मे औरंगजेब को भी गायन विद्या का चाव था और वह उसको दरबार में आश्रय दिया करता था किन्तु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ने लगी उसको इससे विरक्ति हो गई। उसने गायन सुनना बिल्कुल बन्द करवा दिया और गायकों का संरक्षण करना बंद कर दिया। इससे इस विद्या के विकास को बड़ा आघात पहुंचा। ऐसा कहा जाता है कि संगीतज्ञों ने संगीत की एक अर्थी निकाली। औरंगजेब ने उनसे इसका कारण पूंछा। उन्होंने उत्तर दिया कि संगीत को राज्य का आश्रय न मिलने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। इस पर औरंगजेब ने उत्तर दिया कि उसको खूब गहरा गाड़ना जिससे वह पुनः जीवित न हो सके। संगीतज्ञ अन्य प्रदेशों की ओर चले गये। कुछ को बड़े-बड़े पदाधिकारियों व राजा-महाराजाओं ने आश्रय दिया जिसके कारण उसका पूर्णतया अन्त न हो पाया और वह कुछ फलती-फूलती रही।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मुगल शासकों के समय में भारत संस्कृति के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिये। (१९५१)

(२) मुगल-साम्राज्य की भारत को क्या देन है? (१९५२)

(३) मुगलकालीन भारत में साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिये। (१९५३)

(४) मुगल राज्यकाल में भारतीय साहित्य या कला के विकास पर प्रकाश डालिए। (१९५४)

(५) सविस्तार बतलाइये कि अकबर ने कला और विद्या के विकास के लि क्या-क्या कार्य किये ? (१६५

(६) "मुगल-राज्य कला अथवा विद्या का संरक्षक था।" इसकी व्याख कीजिये। (१६१

(७) मुगल वास्तुकला की विशेषताओं का वर्णन करो। अपने उत्तर में कति प्रसिद्ध इमारतों का उल्लेख करो। (१६६

अजमेर—

(१) मुगलकालीन सांस्कृतिक जीवन का दिग्दर्शन कराओ। (१६६१

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगल-कालीन कला और साहित्य का वर्णन करो। (१६५३

मध्य प्रदेश—

(१) मुगल काल में कला, साहित्य व्यापारों तथा व्यवसाय की दशा का उल्ले करो। (१६५२

१५ मुग़लकालीन अन्य ज्ञातव्य बातें

गत अध्यायों में मुगलों की विभिन्न नीतियों का दिग्दर्शन कराने के उपरान्त कुछ विषय इस काल में ऐसे रह जाते हैं जिनका वर्णन नितान्त आवश्यक है। इनके वर्णन के अभाव में कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मुगलों का अध्ययन कुछ अधूरा सा रह गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस अध्याय का लिखना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। जिन घटनाओं का इस अध्याय के अन्तर्गत वर्णन किया जायगा उन्होंने मुगलकालीन इतिहास पर विशेष प्रभाव डाला है जिसके कारण उनका अध्ययन करना परमावश्यक है। ये निम्न विषय इस प्रकार हैं—

(क) अकबर के नवरत्न,
(ख) जहाँगीर के पुत्र राजकुमार खुसरो का विद्रोह और उसका अन्त,
(ग) नूरजहाँ,
(घ) क्या शाहजहाँ का काल स्वर्ण युग था ?
(ङ) उत्तराधिकारी युद्ध (१६५८)।

निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग प्रकाश डाला जायगा—

(क) अकबर के नवरत्न

अकबर यद्यपि सुशिक्षित नहीं था किन्तु प्रकृति की ओर से उसमें अनेक गुणों का समावेश था जिसके कारण उसने उन समस्त व्यक्तियों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि

से देखा जो विशेष योग्य तथा प्रतिभापूर्ण व्यक्ति थे। उसका दरबार योग्य व्यक्तियों से सदा भरा रहता था। उसके दरबार के नवरत्न प्रसिद्ध हैं जो इस प्रकार हैं—

१. मुल्ला दो प्याजा,
२. हकीम हुमाम,
३. अब्दुर्रहीम खानखाना,
४. अब्दुल फजल,
५. शेख फैजी,
६. तानसेन,
७. राजा मानसिंह,
८. राजा टोडरमल और
९. राजा बीरबल।

इन नव-रत्नों के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला जायेगा—

(१) मुल्ला दो प्याजा—इनका निवास-स्थान अरब था। ये हुमायूं के समय में भारत आये थे। ये अपनी वाक-पटुता तथा बुद्धिमानी के कारण प्रसिद्ध हुए और अकबर को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। धीरे-धीरे इन्हीं गुणों के कारण ये अकबर के विशेष कृपा-पात्र बन गये और उसने इनको अपने नवरत्नों में स्थान प्रदान किया। इनको मांस में प्याज बहुत अच्छी लगती थी और इसी कारण उनको दो प्याजा की उपाधि प्रदान की गई।

(२) हकीम हुमाम—ये सम्राट के रसोईघर के प्रधान पदाधिकारी थे। उन का राज-दरबार में बहुत अधिक प्रभाव था और मे अकबर के अंतरंग मित्रों में माने जाते थे।

(३) अब्दुर्रहीम खानखाना—आप बैरमखां के पुत्र थे जो अकबर के प्रारम्भिक काल में उसके संरक्षक के पद पर आसीन थे और जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की स्थापना में सक्रिय भाग लिया। बैरमखां की मृत्यु के समय अकबर ने उसको अपनी संरक्षिता प्रदान की और उसके ऊपर उसकी सदा विशेष कृपा बनी रही। इसी कारण उनमें विशेष प्रतिभा का उदय हुआ। वह फारसी, तुर्की तथा हिन्दी भाषा का विद्वान था। उसने बाबर की आत्मकथा 'बाबरनामा' का तुर्की भाषा से फारसी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत से दोहों की रचना की। ये बड़े शिक्षाप्रद हैं और आज भी बड़े चाव से उनका अध्ययन किया जाता है। उनकी गणना उच्चकोटि के सेनापतियों तथा सेनानायकों में की जाती है। उन्होंने साम्राज्य के विकास में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने गुजरात, दक्षिण तथा सिन्ध के अभियानों में भाग लेकर अपनी कीर्ति की स्थापना की। उनकी अद्भुत प्रतिभा तथा योग्यता से प्रभावित होकर अकबर ने उनको 'खानखाना' की पदवी प्रदान की। जहांगीर के समय में उनके मान की क्षति हुई। उनका देहान्त १६२७ ई० में हुआ।

(४) अब्दुल फजल—आप शेख मुबारक के पुत्र थे जो बड़े विद्वान् तथा शिया धर्म के अनुयायी थे। इनका जन्म १५५१ ई० में हुआ था। इन पर अपने पिता के

विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा जिसके कारण इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे। ये बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इनका सम्पर्क सम्राट से १५७३ ई० में हुआ। अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर ये शीघ्र ही सम्राट के कृपा-पात्र बन गये। कट्टर मुसलमान इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इनका सम्राट पर विशेष प्रभाव था और उसके धार्मिक विचारों में उदारता लाने का पर्याप्त श्रेय इनको ही प्राप्त है। सम्राट इनको अपना परम मित्र तथा हितैषी समझते थे। इनको साहित्य से विशेष प्रेम था। ये उच्च कोटि के विद्वान् थे। 'अकबर नामा' तथा 'आइन-ए-अकबरी' इनके प्र ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं जिनसे अकबर के समय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। ये उ कोटि के सेना-नायक भी थे। इन्होंने दक्षिण के अभियानों में भाग लिया। जब दक्षि अभियान से ये वापिस आ रहे थे तो जहांगीर के षड्यंत्र के कारण बुन्देला सर वीरसिंह देव ने इनका वध १६०२ ई० में कर दिया। इनकी मृत्यु का शोकमय समाच सुनकर सम्राट अकबर को बड़ा दुःख हुआ।

(५) शेख फ़ैज़ी—शेख फ़ैज़ी अबुल फ़ज़ल के ज्येष्ठ भ्राता थे। सन् १५ ई० के समीप आप सम्राट अकबर के सम्पर्क में आये। ये उच्च कोटि के कवि त साहित्यकार थे। अकबर ने इनको विद्वत्ता के कारण इनको राजकवि के पद सुशोभित किया। इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे और इनका भी सम्राट पर विशे प्रभाव था। आपने 'लीलावती' का अनुवाद फारसी में किया। इनका देहान्त १५६५ ई में हुआ।

(६) तानसेन—तानसेन ग्वालियर के निवासी थे। इनको गायन तथा संगीत विशेष प्रेम था। ये अपने समय के सर्वोत्कृष्ट गायक थे। ये रीवां के राजा रामचन्द्र दरबार में थे। १५६० ई० में उनके गायन की प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने उनको अप दरबार में बुलाया और उनका बड़ा आदर-सत्कार किया गया। बाद में इन्होंने इस्ला धर्म अंगीकार कर लिया था। इनको कविता करने का भी चाव था। सन् १५८६ ई में इनका देहान्त हो गया और ये ग्वालियर में दफनाये गये। आज भी उनके मजार प प्रतिवर्ष एक मेला लगता है।

(७) राजा मानसिंह—आप राजा भगवानदास के दत्तक पुत्र थे जो आमेर के राजा थे। सन् १५६१ ई० में इन्होंने सम्राट अकबर की सेवा में प्रवेश किया। इस वंश का सम्राट तथा राजकुमार सलीम से वैवाहिक सम्बन्ध था जिसके कारण दरबार में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। इन्होंने मुगल-साम्राज्य के विस्तार में अकथनीय परिश्रम किया। उनके ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं को जजिया तथा अन्य करों से मुक्ति मिली। ये उच्च कोटि के सेनानायक तथा सेनापति थे। इन्होंने महाराणा प्रताप को हल्दीघाटी के युद्ध में परास्त किया। इन्होंने अफगानों को परास्त किया। ये बंगाल, बिहार तथा काबुल के सूबेदारों के पद पर आसीन हुये। ये राजकुमार ...रो को अकबर के उपरान्त सम्राट बनाना चाहते थे, किन्तु षड्यंत्र में असफल हुए। ...ने इनको क्षमा कर दिया और इनको बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। सन्

१६११ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। जहाँगीर के समय में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत कम हो गई थी।

(८) राजा टोडरमल—इनका जन्म मोलहपुर गांव में हुआ था। ये जाति के खत्री थे। आपने शेरशाह को भूमि-व्यवस्था में बड़ी सहायता प्रदान की थी। अकबर के शासन-काल में ये लेखक पद पर आसीन हुये किन्तु धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आप 'वकील' के पद पर आसीन हुए। आपको माल-विभाग से जानकारी थी। सन् १५७३ ई० में गुजरात में जो भूमि-सुधार अकबर ने किये वे उनकी ही योजना पर आधारित थे। यहीं से उनकी उन्नति होनी प्रारम्भ हुई। १५७७ ई० में वजीर, १५८२ ई० में वकील के पद पर आसीन हुए। उन्होंने वकील के पद पर रहकर जो भूमि-व्यवस्था की उसने उनके नाम को अमर कर दिया। ये उच्च कोटि के सेनानायक तथा सेनापति भी थे। इन्होंने बहुत से युद्धों में भाग लिया। सन् १५८९ ई० में इनका देहान्त हो गया। राजा टोडरमल बड़े ही चरित्रवान तथा धर्म-परायण व्यक्ति थे। मुस्लिम दरबार में रहकर भी इन्होंने अपने धर्म के आचार-व्यवहारों को निभाया और सम्राट का इतना बड़ा कृपा-पात्र होने पर भी इन्होंने दीने-इलाही को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यद्यपि अब्दुल फजल उनको धार्मिक कट्टरता तथा गर्वशीलता के कारण पसन्द नहीं करता था परन्तु उनके साहस, उनके शासन-कौशल तथा उनकी निर्लोभिता की उसने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

(९) राजा बीरबल—इनका जन्म कालसी में सन् १५२८ ई० में हुआ था। इनका बालकपन का नाम महेशदास था। ये जाति के ब्राह्मण थे। राजा भगवानदास ने इनका दरबार में प्रवेश कराया। ये अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। इनकी वाक्पटुता प्रसिद्ध है। अपने गुणों के कारण ये सम्राट अकबर को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। ये धीरे-धीरे उनके कृपा-पात्र बनते गये और बाद में उनके अंतरंग मित्र बन गये। अकबर ने इनको 'कविराज' की पदवी प्रदान की। ये सेनापति भी थे। कई युद्धों में इन्होंने भाग लिया। १५८६ ई० में अफगान जातियों का दमन करते हुए इनकी मृत्यु हो गई। अकबर ने उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया। इनके लतीफे आज भी मनोविनोद का साधन प्रस्तुत करते हैं। सम्राट ने उनके लिये फतहपुर सीकरी में एक भव्य भवन बनवाया। उन्होंने दीने-इलाही को स्वीकार किया था।

(ख) जहाँगीर के पुत्र राजकुमार खुसरो का विद्रोह तथा उसका अन्त

राजकुमार खुसरो बड़ा होनहार तथा लोकप्रिय था। वह बड़ा सुन्दर, शक्तिशाली तथा चरित्रवान था। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण था। उसका व्यवहार बड़ा सुन्दर तथा प्रशंसनीय था। अकबर उसके गुणों से बड़ा प्रभावित था और वह उसको बड़ा प्रेम करता था। वह आमेर के राजा मानसिंह का भानजा था और दरबार के एक प्रसिद्ध सरदार अजीज कोका का दामाद था। उसको इन दोनों महान् व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त था। अकबर की मृत्यु के समय इन दोनों महान् व्यक्तियों ने जहाँगीर के स्थान पर राजकुमार खुसरो को सम्राट बनाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में दोनों में मेल हो गया, किन्तु राजकुमार खुसरो की राज्य

प्राप्ति की आकांक्षा का अन्त नहीं हुआ और जहांगीर के हृदय में खुसरो के प्रति शंका बनी रही। जहांगीर ने उसको आगरे के किले में नजरबन्द कर लिया। उसके ऊपर कड़ा पहरा रहता था।

सन् १६०६ ई० में खुसरो आगरे के दुर्ग से अपने कुछ अश्वारोहियों के साथ एक रात्रि को अकबर के मकबरे का दर्शन करने के लिए निकल गया। वह मथुरा गया और वहां से कुछ सेना लेकर उसने लाहौर की ओर प्रस्थान किया। पानीपत के स्थान पर लाहौर का दीवान खुसरो से मिल गया और उसने उसका पक्ष लेने का निश्चय किया। वह सिक्खों के गुरु अर्जुनसिंह से तरन-तारन नामक स्थान पर मिला। वह भी राजकुमार खुसरो के प्रभावशाली व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसको आशीर्वाद दिया और धन से भी उसकी सहायता की। इसके पश्चात् वह लाहौर गया, किन्तु लाहौर के गवर्नर दिलावर खां ने उसका विरोध किया और उसको नगर में प्रवेश नहीं करने दिया। उसने लाहौर का घेरा डाला, किन्तु इसी समय शाही सेना के आगमन के कारण वह उस पर अधिकार नहीं कर सका। एक सप्ताह उपरान्त उसको जहांगीर के आगमन का समाचार मिला। इस समाचार के प्राप्त होते ही उसने उत्तर-पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। जहांगीर उसके इस कार्य से बड़ा चिन्तित हुआ। उसने खुसरो को बुलाने के लिये पत्र-व्यवहार किया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। जहांगीर ने बाध्य होकर उसका पीछा करने का निश्चय किया। दोनों सेनाओं में भारोवाल नामक स्थान पर भीषण संग्राम हुआ। जहांगीर विजयी हुआ। जब वह (खुसरो) काबुल की ओर भाग रहा था तो वह बन्दी बना लिया गया और जहांगीर के सामने उपस्थित किया गया। जहांगीर ने उसको कारावास में डाल दिया।

खुसरो के विद्रोह के परिणाम—खुसरो बन्दीगृह में डाल दिया गया और उसके समर्थकों को कठोर दण्ड दिया गया। गुरु अर्जुन पर दो लाख रुपये जुर्माना किया गया और उनकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उनको कारावास में डाल दिया गया और बाद में उनको प्राण-दण्ड दिया गया। इस कार्य से सिक्खों और मुगलों में वैमनस्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने सैनिक जाति का रूप धारण किया। अन्य कुछ भागों में भी विद्रोह हुए जिनको दबाने में धन व्यय करना पड़ा। इस विद्रोह ने फारस के शाह को कन्धार विजय करने के लिये प्रोत्साहन प्रदान किया और उसने शीघ्र ही उस पर अधिकार कर लिया।

खुसरो का अन्त—सम्राट जहांगीर के आदेशानुसार राजकुमार खुसरो को अन्धा कर बन्दीगृह में डाल दिया गया किन्तु कुछ समय उपरांत सम्राट में वात्सल्य प्रेम के उमड़ने के कारण उसने खुसरो की आंखों का इलाज करवाना प्रारम्भ किया जिससे वह आंशिक दृष्टि प्राप्त करने में सफल हुआ। जहांगीर ने प्रतिदिन उसको अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी। दिन प्रति-दिन भेंट के कारण दोनों में प्रेम बढ़ने लगा। इससे राजकुमार खुसरो के विरोधियों में ईर्ष्या का उदय हुआ। नूरजहां राजकुमार खुर्रम की समर्थक थी और जब बाद में उसने अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार शहरयार से किया तो वह उसकी समर्थक बन गई। अतः उसने राजकुमार खुसरो का घोर विरोध

किया। उसके तथा उसके अन्य समर्थकों के कारण सम्राट जहांगीर और राजकुमार खुसरो के सम्बन्ध खराब होने लगे और जहांगीर का हृदय उसकी ओर से फिर गया। १६१६ ई० में वह आसफ खां (नूरजहां का भाई और राजकुमार खुर्रम का श्वसुर) को सौंप दिया गया और १६२० ई० में वह अपने सबसे बड़े शत्रु तथा प्रतिद्वन्दी राजकुमार खुर्रम के अधिकार में दे दिया गया। १६२२ ई० में बुरहानपुर दुर्ग में उसकी मृत्यु हो गई। जब जहांगीर को उसकी मृत्यु का समाचार विदित हुआ तो उसे बड़ा दुख हुआ। इस प्रकार इस लोकप्रिय राजकुमार का दुःखद अन्त हुआ। उसकी मृत्यु में राजकुमार खुर्रम का हाथ था। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उसको इस अभियोग से मुक्त करने का प्रयत्न किया।

(ग) नूरजहां

भारत के इतिहास में नूरजहां की गणना उन महान् रमणियों में की जाती है जिन्होंने अपने समय के इतिहास तथा राजनीति पर विशेष प्रभाव डाला।* वह अत्यन्त रूपवती, हृष्ट-पुष्ट, वीर तथा अन्य गुणों से परिपूर्ण थी। जहांगीर के शासन-काल में उसका विशेष प्रभाव था और उसके बहुत से कार्यों का उत्तरदायित्व उस पर ही था।† इसलिये उसके जीवन तथा कार्यों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

नूरजहां का प्रारम्भिक जीवन—नूरजहां ग्यासबेग की पुत्री थी जो तेहरान के निवासी शरीफ का पुत्र था जो खुरासान के शासक का वजीर था। पिता की मृत्यु के बाद ग्यासबेग को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसके कारण उसने भारत की यात्रा का निश्चय किया। इस समय उसकी स्त्री गर्भवती थी। यात्रा की कठिनाइयों का सामना करता हुआ वह कन्धार पहुंचा जहां उसके एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम मेहरुनिसा रखा गया। वह एक कारवां के साथ भारत की ओर चल पड़ा और भारत आया। इस कारवां के नेता ने ग्यासबेग की बड़ी सहायता की और उसको दरबार में एक साधारण नौकरी दिलवाने में सफल हुआ। अपनी योग्यता तथा कार्यकुशलता के कारण वह शनैः शनैः उन्नति करने लगा। कुछ समय उपरान्त वह काबुल का दीवान बना दिया गया। १७ वर्ष की अवस्था में मेहरुनिसा का विवाह एक उच्च कुल के व्यक्ति शेर अफगन के साथ हो गया। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि

*"Few women in the world's history have displayed such masterful qualities of courage and statesmanship as his extraordinary woman, who helped her husband in leading strings and dominated the state for a number of years."

—Dr. Ishwari Prasad.

† "No figure in medeval Indian History has been shrouded in romance as the name of Nurjahan calls to the mind. No incident in the reign of Jahangir has attracted such attention as his marriage with Nurjahan. For full fifteen years that celebrated lady stood forth as most striking and most powerful personality in the Mughal Empire. No wonder that round her early life there has gathered a thick fog of myth and fable".

—Dr. Beni Prasad.

जहांगीर नूरजहां से प्रेम करता था और वह उससे विवाह करना चाहता था, किन्तु अकबर इस विवाह के लिए तैयार नहीं हुआ, किन्तु इस प्रेम का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। जब जहांगीर सम्राट बना तो उसने शेर अफगन को बंगाल भेज दिया। कुछ समय उपरान्त जहांगीर को यह समाचार प्राप्त हुआ कि शेर अफगन विद्रोह करना चाहता है। उसने बङ्गाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन को आदेश दिया कि वह शेर अफगन को दरबार में भेजे किन्तु कुतुबुद्दीन ने उसको बन्दी करने का प्रयत्न किया जिसके कारण दोनों में झगड़ा हो गया। शेर अफगन ने कुतुबुद्दीन का वध किया और उसके आदमियों ने शेर अफगन का वध कर दिया। मेहरुन्निसा दरबार में लाई गई और उसको राजमाता सलीमा बेगम के संरक्षण में रखा गया। छ वर्ष उपरान्त सन् १६११ ई० में जहांगीर ने उसके साथ विवाह किया और उसको नूरमहल की उपाधि से सुशोभित किया, बाद में उसको 'नूरजहां' की उपाधि प्रदान की गई।

नूरजहां का जहांगीर पर प्रभाव—सन् १६११ ई० में जहांगीर ने नूरजहां से विवाह किया। इस समय नूरजहां की अवस्था ३५ वर्ष की थी और जहांगीर की अवस्था ४२ वर्ष की थी। जहांगीर में विलासिता की मात्रा पर्याप्त हो गई थी और नूरजहां ने भी शासन सत्ता को अपने अधिकार में लाने के उद्देश्य से जहांगीर की विलासिता में वृद्धि करने में और भी अधिक सहयोग दिया। वह बड़ी महत्वाकांक्षी थी और शासन पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए उसने समस्त उपायों का प्रयोग किया। उसने जहांगीर को अपने प्रेम-पाश में ऐसा बांधा कि जहांगीर उससे न निकल सका और शासन पर नूरजहां की सत्ता स्थापित हो गई।

शेर अफगन के वध में जहांगीर का हाथ—यह प्रश्न आज भी विवादग्रस्त है कि शेर अफगन के वध में जहांगीर का हाथ था। डाक्टर बेणीप्रसाद ने अपने अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि शेर अफगन की मृत्यु में जहांगीर का कोई हाथ नहीं था जबकि डाक्टर ईश्वरी प्रसाद का मत इसके विरुद्ध है। दोनों के प्रमाणों के अध्ययन करने के उपरान्त हम डाक्टर बेणीप्रसाद के मत को मान्यता प्रदान करते हैं और इस बात को स्वीकार करते हैं कि जहांगीर का हाथ शेर अफगन की मृत्यु में नहीं था। कुतुबुद्दीन की मूर्खता के कारण घटना-चक्र ऐसा चला कि शेर अफगन की मृत्यु हो गई। जब नूरजहां राजप्रासाद में निवास करने लगी थी उस पर जहांगीर की दृष्टि पड़ी और वह उसको प्रेम करने लगा और शीघ्र ही उसने उसके साथ विवाह किया।

नूरजहां का गुट—नूरजहां ने अपने गुट का निर्माण किया। उसके सम्बन्धियों ने उसको बड़ी सहायता की। उसके माता-पिता, उसके भाइयों तथा राजकुमार खुर्रम उसके दल के प्रमुख सदस्य थे। उसके माता-पिता का उसके ऊपर नियन्त्रण था जिन्होंने उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत अधिक बढ़ने नहीं दिया। उसके पिता ग्यासबेग ने जिनको बाद में एतमादउद्दौला की उपाधि से सुशोभित किया गया था उसकी बड़ी सहायता की। नूरजहां के भाई आसफ खां ने भी नूरजहां की बड़ी सहायता की। वह एक योग्य कूटनीतिज्ञ था और दरबार के दाव-पेचों की उसको पूर्ण जानकारी थी। नूरजहां के कारण राजकुमार खुर्रम का विवाह आसफ खां की पुत्री अर्जुमन्दबानू बेगम

के साथ सन् १६१२ ई० में सम्पन्न हुआ। वह अपने समस्त भाइयों में योग्य था और वह जहांगीर का वास्तविक उत्तराधिकारी समझा जाता था क्योंकि जहांगीर और राजकुमार खुसरो के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। शासन की समस्त सत्ता पर इन्हीं व्यक्तियों का अधिकार था और दस वर्ष तक इस गुट ने बड़ी योग्यता और प्रतिभा के साथ शासन किया। इस वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि जहांगीर राज्य-कार्य से इस काल में पूर्णतया उदासीन रहा। उसने कई बार इस गुट की नीति का घोर विरोध किया। वास्तव में यह गुट जहांगीर की इच्छाओं के अनुसार ही शासन-कार्य करता था।

नूरजहां का शासन पर प्रभाव—नूरजहां के प्रभाव काल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम काल सन् १६११ से १६२२ तक और द्वितीय काल १६२२ से १६२७ तक का है। प्रथम काल में जहांगीर शासन के कार्यों में पूर्ण भाग लेता था। नूरजहां के माता-पिता दोनों जीवित थे जो उसकी महत्वाकांक्षा पर विशेष प्रतिबन्ध रखते थे। नूरजहां और राजकुमार खुर्रम के सम्बन्ध अच्छे थे और हर सम्भव प्रकार से नूरजहां ने अन्य राजकुमारों की अपेक्षा उसको उन्नति करने का अवसर दिया। उन्होंने अपने सम्बन्धियों तथा समर्थकों को उच्च पदों पर आसीन किया जिससे वे अपनी मनोकामना सिद्ध करने में सफलता प्राप्त कर सकें। राजकुमार खुर्रम का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा और जहांगीर ने उसको विशेष आदर तथा सम्मान प्रदान किया। उसने भी साम्राज्य की बड़ी सेवायें कीं किन्तु इस दल का विरोध धीरे-धीरे बढ़ने लगा। विरोधी दल का नेता महाबत खां था जो राजकुमार खुर्रम के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण उससे ईर्षा और द्वेष करने लगा। वह साम्राज्य का बहुत बड़ा स्तम्भ था और उसको अपनी राजपूत सेना पर विशेष गर्व था। उसने जहांगीर को समझाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि वह नूरजहां के प्रेम-पाश में बुरी तरह फंस चुका था। विरोधियों ने राजकुमार खुसरो का पक्ष लेकर उसको राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया। जब नूरजहां तथा उसके गुट के सदस्यों को विरोधियों के विचार का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उन्होंने राजकुमार खुसरो को प्रारम्भ में आसफ खां को तथा बाद में राजकुमार खुर्रम की हिरासत में भेजा जहां उसका वध सन् १६२२ ई० में कर दिया गया। यह गुट अधिक काल तक नहीं रह सका क्योंकि नूरजहां राजकुमार शहरयार की ओर अधिक आकर्षित हो गई क्योंकि वह उसका दामाद था। उसने अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह जो उसके शेर अफगान से हुई थी कर दिया था। वह राजकुमार खुर्रम के गर्व तथा महत्वाकांक्षा से भली प्रकार परिचित थी। वह जान गई कि शासन की सत्ता उसके हाथ में नहीं रह सकती यदि शाहजहां सम्राट हो गया। जहांगीर का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन खराब रहने लगा था और उसकी किसी भी समय मृत्यु हो सकती थी। उसके माता और पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी थी और उसके ऊपर से नियन्त्रण हट गया था। अब उसको अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने इनकी पूर्ति के लिये जो कार्य किये वे साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुये। उसके कारण प्रथम विद्रोह

राजकुमार खुर्रम ने किया और बाद में महाबत खां ने और फिर दोनों एक दूसरे के सहायक बन गये और इन्होंने नूरजहां का विरोध किया।* जहांगीर की मृत्यु पर उत्तराधिकारी युद्ध हुआ जिसमें शाहजहां सफल हुआ और नूरजहां तथा उसका दामाद शहरयार परास्त हुये। नूरजहां राजनीति से अलग हो गई। शाहजहां ने उसको दो लाख रुपया वार्षिक पेंशन नियत कर दी। १८ वर्ष तक शोकयुक्त जीवन व्यतीत कर सन् १६४५ ई० को उसका देहान्त हो गया और उसको लाहौर में जहांगीर के मकबरे के समीप दफना दिया गया।

नूरजहां का चरित्र—नूरजहां का सौन्दर्य तथा रूप अद्वितीय था। जिस समय उसका विवाह जहांगीर से हुआ उस समय उसकी अवस्था ३५ वर्ष की थी, किन्तु उस समय भी वह अनुपम सुन्दरी थी। अपनी सुन्दरता के कारण ही वह मुगल सम्राट जहांगीर के हृदय को पराजित करने में सफल हुई। उसके मुख पर एक अद्भुत आभा तथा ज्योति थी जिसके कारण वह बड़ी प्रभावशाली थी।† उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। शारीरिक बल तथा साहस तो उसमें कूट-कूट कर भरा था। उसको शिकार करने का बहुत शौक था। वह जहांगीर के साथ घोड़े पर चढ़कर आखेट करती थी। भयानक शेरों तथा चीतों का शिकार करने में वह अनुपम आनन्द लेती थी। उसमें धैर्य की मात्रा बहुत अधिक थी और उसने उसको कभी अपने हाथ से विशेष संकट के समय भी नहीं जाने दिया। वह बड़ी योग्य तथा बुद्धिमान स्त्री थी। उसको फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था और कविता करने का भी उसको चाव था। वह राजनीति के गूढ़ प्रश्नों को भली प्रकार समझ लेती थी और शीघ्र ही निश्चय पर पहुँच जाती थी। उसको कला से भी प्रेम तथा अनुरक्ति थी। वह बड़ी दानी थी। उसने सैंकड़ों असहाय बालिकाओं को सहायता प्रदान की और उनके विवाह करवाये। वह बड़ी उदार थी। उसने अपने सम्बन्धियों के साथ सदा अच्छा व्यवहार किया। वह अपने शत्रुओं के साथ कठोर व्यवहार करने से नहीं हिचकती थी और उनको पददलित करके ही चैन लेती थी। वह बड़ी परिश्रमी थी और कार्य से कभी भी नहीं घबराती थी। उसने शासन को अपने अधिकार में करने के लिये जहांगीर को अत्याधिक विलासी बनाया। वह लोगों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। जितने भी षड्यन्त्र या विद्रोह जहांगीर के काल में हुए

---

* "This gifted woman aided by her subtle brother Asaf Khan practically ruled the empire during greater part of Jahangir's reign much to his satisfaction, but although at first her influence kept him straight and benefitted the empire but her over-wearing power, covetousness and unscrupulous favouritism aroused bitter jealousies and to the resulting intrigues were due to the troubles that darkened the closing days of that self-indulgent empire, the weakening of the old martial spirits of the Mughals, the corruption and cupidity of the court, and the rebellion of Jahangir's son." —Lane-Poole.

† "No gift of nature seemed to be wanting in her. Beautiful with the rich beauty of Persia, her soft features were lighted up, with a sprightly vivacity and supper loveliness. Painters exerted their utmost skill in transmitting the lineaments of her person to posterity. Her name calls up at once a slim slender frame, an oval face, apple for head, large blue eyes, close lips." —Dr. Beni Prasad.

उन सब का उत्तरदायित्व उस पर ही था। इसी कारण उसका राजनीतिक प्रभाव साम्राज्य के लिये हितकर सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि मुगल दरबार में गुट बन्दियाँ हो गईं। मुगलों की बाह्य नीति असफल रही। कन्धार पर फारस के शाह का अधिकार हो गया। राजकुमार खुर्रम तथा महाबत खाँ के विद्रोह उसकी ही नीति तथा महत्वाकांक्षा के कारण हुए। सारांश में नूरजहाँ के कारण मुगल-साम्राज्य को बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

(घ) क्या शाहजहाँ काल स्वर्ण युग था ?

इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् शाहजहाँ के काल को *स्वर्ण युग* मानते हैं और कुछ इसका *विरोध* करते हैं। जो इतिहासकार इस मत का विरोध करते हैं उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) शाहजहाँ का व्यक्तित्व उन्नत न था। उसने अपने पिता के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया। उसने राजकुमार खुसरो का वध किया तथा अन्य भाइयों तथा सम्बन्धियों का वध कर डाला। वह दारा शिकोह तथा जहाँनारा से अन्य पुत्रों तथा पुत्रियों की अपेक्षा अधिक प्रेम करता था जिसके कारण उत्तराधिकारी युद्ध हुआ जिससे साम्राज्य की बड़ी क्षति हुई। उसका व्यक्तिगत चरित्र भी उन्नत न था। वह बड़ा क्रोधी, कामातुर तथा विलासी था। वह निर्दयी, धोखेबाज तथा बेईमान था।

(२) उसकी मध्य-एशियाई तथा सीमान्त नीति असफल रही। यद्यपि दक्षिण की ओर वह मुगल-साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ। किन्तु उसका परिणाम राज्य के लिये हितकर सिद्ध नहीं हुआ। उसकी सेनायें विशाल थीं, किन्तु वे श्लाघनीय कार्य करने में सफल न हो सकीं।

(३) उसकी न्याय-व्यवस्था बड़ी कठोर थी। उसने स्वेच्छाचारी तथा वैदेशिक शासक के समान कार्य किया। उसमें दया लेशमात्र भी न थी।

(४) उसके शासन-काल में जनता की दशा अच्छी न थी। उसने भव्य भवनों के निर्माण में बहुत अधिक धन व्यय किया जिसका भार निर्धन जनता पर पड़ा। राजकोष प्रायः खाली हो गया था। जनता पर अधिक कर लगे।

(५) उसकी धार्मिक नीति अनुदार थी। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया और उनको बाध्य होकर इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। उच्च पदों पर अधिकांश में मुसलमान ही नियुक्त किये जाते थे।

जिन विद्वानों ने उसके काल को स्वर्ण युग स्वीकार किया है उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) शाहजहाँ ने जो व्यवहार अपने पिता तथा भाइयों व अन्य सम्बन्धियों के साथ किया वह समय के अनुकूल था। वह स्वभाव से रक्त-पिपासु नहीं था। परिस्थितियों से वशीभूत होकर वह रक्त-पात करने के लिये बाध्य हुआ। उसका अपने परिवार के सदस्यों के प्रति प्रेम तथा अनुराग था। उत्तराधिकारी के युद्ध का कारण उसकी दुर्बलता न होकर *उसके पुत्रों की महत्वाकांक्षायें थीं तथा उत्तराधिकारी के नियम का अभाव था।* उसका जहाँनारा तथा दारा पर विशेष प्रेम था जो होना स्वाभाविक था क्योंकि ये उसकी ज्येष्ठ सन्तान थीं। वह व्यभिचारी नहीं था।

(२) उसके काल में शान्ति व सुव्यवस्था थी। कुछ विद्रोह अवश्य हुये जिनका कारण विद्रोहियों की महत्वाकांक्षा थी न कि राज्य की अव्यवस्था। पुर्तगालियों का दमन कठोरता से किया गया क्योंकि उन्होंने बड़े अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये थे।

(३) उसके काल में किसी विदेशी ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। यद्यपि उसकी मध्य एशिया सम्बन्धी नीति असफल रही और कन्धार पर फारस के शाह का अधिकार हो गया, किन्तु इन दोनों का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। राज्य की सीमायें पूर्ववत् बनी रहीं।

(४) उसके काल में व्यापार तथा वाणिज्य की बड़ी वृद्धि हुई जिसके द्वारा राज्य की आय बडी विकसित हुई। भूमि द्वारा भी राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। बहुत अधिक धन व्यय करने पर भी राजकोष में पर्याप्त धन था।

(५) उसने अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया जिनके कारण उसके शासन का महत्व तथा गौरव में बड़ी वृद्धि हुई। तख्ते-ताऊस तथा ताजमहल ही उसके राज्य को स्वर्ण युग बनाने के लिये पर्याप्त थे।

(६) उसके शासन-काल में साहित्य तथा कला की भी विशेष प्रगति हुई। उच्च-कोटि के साहित्य की रचना हुई तथा समस्त कलाओं का विकास हुआ।

(७) वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। विदेशी लेखकों ने भी उसके न्याय की बड़ी प्रशंसा की है। वह योग्य व्यक्तियों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करता था।

इस प्रकार दोनों पक्षों के तर्कों का सुगम अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट प्रतीत होता है कि वास्तव में उसका काल स्वर्ण युग था।

(ङ) उत्तराधिकारी का युद्ध

शाहजहाँ के समय में उसके चारों पुत्रों में साम्राज्य प्राप्ति के लिये भीषण संग्राम हुआ जिसका प्रभाव मुगल-साम्राज्य पर विशेष रूप से पड़ा। इसके पूर्व कि इस युद्ध का वर्णन किया जाये यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि उसकी सन्तानों के विषय में कुछ बतला दिया जाय जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया। शाहजहाँ के एकाएक बीमार पड़ जाने पर (१६५८) उसके तीन पुत्रों औरंगजेब, मुराद तथा शुजा ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित किया। दारा शाहजहां के पास था। इस समय इन चारों पुत्रों के अतिरिक्त इसके जहांनारा तथा रोशनआरा दो पुत्रियां भी थीं। जहांनारा, दारा तथा रोशनआरा, औरंगजेब की ओर अधिक प्रभावित थीं।

दारा शिकोह—शाहजहां के सबसे बड़े पुत्र का नाम दारा था। उसका जन्म १६१५ ई० में हुआ था। वह बड़ा शिक्षित विद्वान तथा दार्शनिक था। उसकी सूफी धर्म की ओर अधिक रुचि थी। उसने अन्य धर्मों के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। वह वेदों का बड़ा आदर करता था। उसने उपनिषदों का अनुवाद किया। वह सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखता था। जिसके कारण उसके धार्मिक विचार बड़े उदार थे। उसको कट्टर सुन्नी मुसलमान घृणा की दृष्टि से देखते थे। शाहजहां का उस पर विशेष अनुराग था और वह अधिकांश समय उसको अपने समीप ही रखता था। उसको विभिन्न कलाओं से प्रेम था। वह योरोपवासियों का आश्रयदाता था। उसका दरबारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था जिसके कारण वे उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसका व्यक्तित्व बड़ा

आकर्षक था। वह एक उच्च-कोटि का सेनापति नहीं था और न उसको शासन-प्रबन्ध का विशेष अनुभव था। शाहजहाँ के लाड-प्यार ने उसमें कुछ दोष उत्पन्न कर दिये थे।

शुजा—शाहजहाँ का दूसरा पुत्र शुजा था जिसका जन्म १६१६ ई० में हुआ था। वह बड़ा साहसी, वीर, बुद्धिमान तथा दृढ़-संकल्प था। वह षड्यन्त्र रचने में बड़ा निपुण था और अमीरों तथा सरदारों को घूस देकर अपनी ओर मिला लेता था। वह शिया धर्म का अनुयायी था और ऐसा कहा जाता है कि उसने शिया सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से ऐसा किया। उसमें दुर्गुणों की कमी नहीं थी। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद में व्यतीत करता था। उसको नारी और संगीत एवं नृत्य से विशेष प्रेम था। सन् १६४२ से १६५८ ई० तक वह बंगाल का सूबेदार रहा जहाँ की जलवायु ने उस पर विशेष प्रभाव डाला। उसका स्वास्थ्य खराब हो गया तथा आलसी, उदासी तथा कर्तव्यहीन हो गया। इन्हीं कारणों से वह उत्तराधिकारी युद्ध में सफल नहीं हो सका।

औरंगजेब—शाहजहाँ के तीसरे पुत्र का नाम औरंगजेब था जिसका जन्म १६१८ ई० में हुआ था। वह अपने अन्य भाइयों में सबसे योग्य था। वह बड़ा साहसी, वीर तथा कूटनीतिज्ञ था। उसको विशेष आपत्तियों तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसके कारण वह बड़ा दृढ़ प्रतिज्ञ व कर्तव्य-निष्ठ बन गया। वह एक योग्य सेनापति था। उसने अनेक युद्धों में अपनी योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था जिसके कारण मुसलमानों का उसको समर्थन प्राप्त हुआ था। वह मनुष्यों का बड़ा पारखी तथा उनसे काम लेना जानता था। उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल था। वह अपने गुणों के कारण ही उत्तराधिकारी युद्ध में सफल हुआ।

मुराद—शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र मुराद था जिसका जन्म १६२४ ई० में हुआ था। वह गुजरात तथा मालवा का सूबेदार था। उसमें विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। वह बड़ा वीर तथा साहसी था परन्तु बड़ा विलासी था। वह बड़ा निर्भीक तथा साहसी था परन्तु वह उच्च-कोटि का सेनापति नहीं था। उसमें उत्तेजना के साथ-साथ भद्रता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। उसमें साम्राज्य पर अधिकार करने की आकांक्षा थी किन्तु उसमें उसको पूर्ण करने की योग्यता का सर्वथा अभाव था। उसके सम्बन्ध में लेनपूल ने लिखा है कि "शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र साहसी था। वह शेर के समान बहादुर तथा दिन की भाँति स्पष्ट था किन्तु राजनीति में मूर्ख था। राज्य के कार्यों में वह निराला था और रक्तास्त्र में दृढ़ विश्वास रखता था। वह रण-क्षेत्र में विकराल था और मद्य-पान में भी मस्त रहता था। भिड़न्त युद्ध में किसी अन्य व्यक्ति पर इतना विश्वास नहीं किया जा सकता था परन्तु सम्मति में उससे बड़ा मूर्ख और व्यभिचार में उससे बड़ा प्रमत्त भी कोई नहीं होता था। मद्यपान का वंशानुगत व्यसन जो बाबर के समय से चला आ रहा था इस वीर दुर्जन में भी पाया जाता था। सारांश यह है कि वह विचार-शून्य व्यक्ति था।"

जहाँनारा—शाहजहाँ की सबसे बड़ी पुत्री का नाम जहाँनारा था जिसका जन्म १६१४ ई० में हुआ था। वह शाहजहाँ की अत्यन्त प्रिय पुत्री थी। उसमें मानसिक प्रतिभा

तथा अलौकिक सौन्दर्य था। मुगल दरबार में उसका बड़ा प्रभाव था। वह दीन-दुखियों तथा असहायों की सदा सहायता करने को उद्यत रहती थी। वह शाहजहाँ के प्रति अनुपम अनुराग तथा श्रद्धा रखती थी। अन्य भाइयों में वह दारा की ओर अधिक अनुरक्ती रखती थी। शाहजहाँ के शासनकाल में वह साम्राज्य की अग्रगण्य महिला थी। उसकी मृत्यु १६८१ ई० में हुई।

रोशनआरा—शाहजहाँ की छोटी पुत्री रोशनआरा थी जिसका जन्म १६२१ ई० में हुआ था। वह अपनी बहिन के समान योग्य तथा प्रतिभाशाली नहीं थी किन्तु वह षड्यंत्र रचने में बड़ी कुटिल थी। वह औरंगजेब की ओर विशेष आकृष्ट थी। उसकी मृत्यु १६७० ई० में हुई।

उत्तराधिकारी के युद्ध का आरम्भ—शाहजहाँ दारा को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था और इसी कारण वह उसको अपने पास दरबार में रखता था। उसका उसके प्रति अनन्य प्रेम था जिसके कारण अन्य राजकुमार सदा सशंकित रहते थे। ६ सितम्बर १६५७ ई० को शाहजहाँ एकाएक बीमार हो गया। वैद्यों तथा हकीमों ने बहुत प्रयास किया किन्तु उसकी दशा में सुधार नहीं हुआ। उसके पुत्रों ने उसका अन्तिम समय समझकर उत्तराधिकारी के युद्ध की तैयारियां करनी आरम्भ कर दीं। यद्यपि उसकी अवस्था सुधरने लगी, परन्तु उत्तराधिकारी का युद्ध नहीं टल सका। ५ दिसम्बर १६५७ ई० को मुराद ने अपने को सम्राट घोषित किया। औरंगजेब जानता था कि कोई भी राजकुमार अकेला दारा को परास्त नहीं कर सकता था। अतः उसने मुराद से गठ-बन्धन किया और दोनों में साम्राज्य के विभाजन का निश्चय हुआ। मुराद अपनी समस्त तैयारियां करने के उपरान्त १४ अप्रैल १६५८ को औरंगजेब के साथ अपनी सेना लेकर मिल गया। इसी समय औरंगजेब ने मीर जुमला को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार औरंगजेब को एक बड़े योग्य तथा अनुभवी सेनापति का सहयोग प्राप्त हुआ। इधर दारा ने भी अपने भाइयों की सेना का सामना करने के लिये विशाल सेना का निर्माण किया जिसको उसने राजा जसवंतसिंह तथा कासिम खाँ के नेतृत्व में दक्षिण की ओर भेजा।

धरमत का युद्ध—दोनों सेनाओं में उज्जैन से १४ मील उत्तर-पश्चिम की ओर धरमत में बड़ा घमसान युद्ध हुआ। प्रारम्भ में शाही सेना को सफलता हुई। कासिम खाँ के विश्वासघात करने पर राजपूती सेना भागने के लिये विवश हुई। विरोधी सेनाओं ने बड़े अदम्य उत्साह के साथ शाही सेना को बुरी तरह परास्त किया। शाही सेना में भगदड़ मच गई और विरोधियों की सेना को सफलता प्राप्त हुई।

सामुगढ़ का युद्ध—धरमत के युद्ध में विजयी होकर औरंगजेब और मुराद ने आगरे की ओर बढ़ना आरम्भ किया। दारा ने उस सेना का सामना करने के लिये सामुगढ़ नामक स्थान पर घेरा डाला। २८ मई १६५८ को औरंगजेब तथा मुराद भी वहाँ आ गये। दोनों सेनाओं में अगले दिन युद्ध हुआ। युद्ध में दारा की सेना ने बड़ी वीरता का परिचय दिया। इसी समय दारा अपने हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हुआ जिसका प्रभाव अच्छा नहीं हुआ। सेना में अफवाह हो गई कि राजकुमार दारा मारा

गया। इस समाचार के फैलने के कारण सेना में भगदड़ मच गई। दारा आगरे की ओर भाग गया। इस प्रकार विरोधियों को सफलता प्राप्त हुई।

शाहजहाँ का बन्दी होना—दारा आगरे गया और शीघ्र ही अपने परिवार को लेकर वह दिल्ली भाग गया। औरंगजेब तथा मुराद की सेनाओं ने आगरे का दुर्ग घेर लिया। विवश होकर शाहजहाँ ने आत्म-समर्पण किया। उससे सम्राट के समस्त अधिकार छीन लिये गये और वह बन्दी कर लिया गया।

मुराद का अन्त—औरंगजेब ने आगरे पर अधिकार करने के उपरान्त दारा का पीछा किया किन्तु उसे यह समाचार मिला कि मुराद उसका विरोध करने को तैयार हो रहा है। औरंगजेब ने चालाकी से मुराद को मद्यपान कराकर बन्दी किया और उसको नशे की हालत में ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी कर दिया जहाँ तीन वर्ष उपरान्त उसका वध कर दिया गया।

दारा का अन्त—दारा ने दिल्ली आकर एक सेना का संगठन किया किन्तु वह शीघ्र ही लाहौर भाग गया। औरंगजेब उसका पीछा करता हुआ लाहौर गया। दारा मुल्तान की ओर भाग गया और वहाँ से सक्कर गया। औरंगजेब दिल्ली वापिस आ गया किन्तु उसके सेनापति दारा का पीछा करते रहे। सक्कर से दारा सेहवान और फिर पट्टा पहुँचा, किन्तु वहाँ से वह गुजरात चला गया। राजपूतों की सहायता से उसने फिर युद्ध किया, किन्तु पराजित हुआ। वहाँ से वह दादर गया किन्तु उसने दारा को बंदी कर औरंगजेब के सुपुर्द किया। औरंगजेब ने दारा को एक नंगे हाथी पर बैठाकर नगर में घुमाया और उसके उपरान्त उसका वध करवाया। उसके ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह का भी वध कर दिया गया।

शुजा का अन्त—शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शुजा ने बंगाल में अपने आपको सम्राट घोषित किया और विशाल सेना के साथ बनारस की ओर चल पड़ा। दारा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह तथा मिर्जा राजा जयसिंह की अध्यक्षता में एक सेना शुजा के विरुद्ध भेजी। १४ फरवरी १६५८ को शुजा परास्त हुआ। शुजा भाग कर मुंगेर चला गया। जब सुलेमान शिकोह को धरमत की पराजय का समाचार विदित हुआ तो वह शीघ्र आगरे आया। इसी बीच में शुजा ने सेना का संगठन किया और पटना से चल पड़ा। औरंगजेब ने इसी सेना को खजवाह नामक स्थान पर परास्त किया। शुजा युद्ध क्षेत्र से भाग गया। मीर जुमला ने उसका पीछा किया। वह अराकान भाग गया और वहाँ उसका वध कर दिया गया।

उत्तराधिकारी के युद्ध का परिणाम—इस युद्ध का भारतीय इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा जो निम्नलिखित है—

(१) समस्त शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई।
(२) धन तथा जन की अपार क्षति हुई।
(३) शाहजहाँ को कारागार का जीवन व्यतीत करना पड़ा।
(४) राज्य पर योग्यतम राजकुमार का अधिकार हुआ।

(५) दक्षिण के राजा कुछ समय तक मुगलों की साम्राज्यवादी नीति से बच गये।

औरंगजेब की सफलता के कारण—औरंगजेब की सफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति—औरंगजेब अपने समय का एक वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति था। उसमें सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने पिता के शासन-काल में उसने अपनी इस प्रतिभा का पूर्ण परिचय दक्षिण के युद्धों तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त के युद्धों में दिया था। उसमें अदम्य उत्साह, अटल धैर्य तथा अनुपम साहस था। वह भय से नहीं डरता था और भयंकर तथा भीषण परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर तनिक भी विचलित नहीं होता था।

(२) कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ—वह बड़ा कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ था। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति को सर्वोपरि समझता था और सदा उसी की पूर्ति में व्यस्त रहता था। वह अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार समझता था उसके लिये हर सम्भव रूप से प्रयत्नशील रहता था।

(३) कूटनीति का ज्ञाता—औरंगजेब कूटनीति का प्रगाढ़ पण्डित था। वह अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिये समस्त प्रकार की कूटनीति का प्रयोग कर सकता था। शत्रुओं को प्रलोभन देकर वह उनको अपनी ओर मिला लेता था तथा शत्रुओं में फूट डाल देता था। मुराद को मिला लेना उसकी कूटनीति का उज्जवल उदाहरण है क्योंकि वह भली प्रकार जानता था कि वह अकेला शाही सेना का सामना करने में असमर्थ होगा।

(४) व्यवहार-कुशल—औरंगजेब बड़ा व्यवहार-कुशल था। इसी कारण अमीरों का एक दल उसका सदा समर्थन करता था और उसको हर सम्भव रूप से सहायता प्रदान करता था तथा उसका पक्षपात करता था। उसका अपने व्यवहार तथा कार्यों पर पूर्ण नियन्त्रण था, जिसके कारण उसके विरोधियों की संख्या कम थी।

(५) धर्म परायण—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसका अपने धर्म पर अटूट विश्वास था और उसके समस्त आचरण धर्म के अनुकूल होते थे और इसी कारण उसको कट्टर मुसलमानों का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) क्या यह कथन सत्य है कि शाहजहाँ का राज्य-काल मुगल-साम्राज्य का स्वर्ण युग है ? सविस्तार विवेचना कीजिये। (१९५५)

(२) नूरजहाँ के जीवन और कृत्यों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५७)

(३) शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकारी युद्ध का वर्णन कीजिये। औरंगजेब को उसमें क्यों सफलता मिली ? (१९५९)

(४) अब्दुल फजल पर एक टिप्पणी लिखो।

(५) राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) के विद्रोह का वर्णन करो। नूरजहाँ उसके लिये कहाँ तक उत्तरदायी है ? (१९६२)

(६) जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ के प्रभुत्व का क्या प्रभाव पड़ा और उसके क्या परिणाम हुए ? (१९६३)

मध्य भारत—

(१) शाहजहाँ का शासन-काल मुगल-शासन का स्वर्ण-युग कहा जाता है, इस कथन पर विचार प्रगट कीजिये। (१९५१)

(२) नूरजहाँ के चरित्र और व्यक्तित्व का निरूपण कीजिये और राज्य के कार्यों में उसका क्या प्रभाव था, बतलाइये। (१९५४)

(३) शाहजहाँ के पुत्रों का चरित्र-चित्रण कीजिये तथा सिंहासन प्राप्त करने के हेतु उनके संघर्ष का वर्णन कीजिये। (१९५७)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) "शाहजहां का काल मुगल-शासन में स्वर्ण युग था।" विवेचना करो। (१९५१, १९५५)

१६ उत्तरकालीन मुग़ल सम्राट

उत्तराधिकार युद्ध

औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके तीन पुत्र जीवित थे जिनमें एक का नाम मुअज्जम, दूसरे का नाम आजम और तीसरे का नाम कामबख्श था। उसके दो पुत्र मुहम्मद और अकबर का देहान्त उसके जीवन-काल में ही हो चुका था। जिस समय औरंगजेब की मृत्यु हुई उस समय उसके तीनों पुत्र विभिन्न प्रान्तों में थे। मुअज्जम काबुल में, आजम गुजरात में और कामबख्श बीजापुर में सूबेदार था। औरंगजेब ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपने तीनों पुत्रों में साम्राज्य का विभाजन एक वसीयत द्वारा किया था, किन्तु इस वसीयत का ज्ञान उसकी मृत्यु के उपरान्त ही हुआ। उसकी यह योजना सफल न हुई और उत्तराधिकार के प्रश्न का समाधान युद्ध द्वारा ही हुआ। औरंगजेब के मरने का समाचार सर्वप्रथम आजम को प्राप्त हुआ जिसने अपने आपको तुरन्त ही सम्राट घोषित कर दिया और आगरे पर अधिकार करने के लिये उत्तर की ओर चल पड़ा। मुअज्जम ने अपने आपको काबुल में सम्राट घोषित किया और वह भी आगरे पर अधिकार करने के लिये चल पड़ा। लाहौर के सूबेदार मुनीम खां से मुअज्जम को बड़ी सहायता प्राप्त हुई। उसका आगरे पर शीघ्र ही अधिकार हो गया और तैमूरी कोष

उसके हाथ लगा। कामबख्श ने भी बीजापुर में अपने आपको सम्राट घोषित किया किन्तु उसने उत्तर की ओर प्रस्थान नहीं किया। मुअज्जम की हार्दिक इच्छा थी कि भाइयों में पारस्परिक युद्ध न हो। उसने आजम को साम्राज्य-विभाजन करने के लिये पत्र लिखा किन्तु आजम ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और सेना लेकर आगरे के समीप जजऊ नामक स्थान पर आ डटा। मुअज्जम भी युद्ध करने के लिए तैयार था। वह भी आजम का सामना करने के लिये रण-क्षेत्र में आ डटा। दोनों सेनाओं में बड़ा घमासान युद्ध हुआ जिसमें मुअज्जम विजयी हुआ और आजम अपने दो पुत्रों के साथ युद्ध में मारा गया। अब मुअज्जम ने कामबख्श से सन्धि करने की वार्ता चलाई, किन्तु उसका भी कोई परिणाम नहीं निकला। मुअज्जम ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने कामबख्श को हैदराबाद के समीप बुरी तरह परास्त किया। कामबख्श बुरी तरह घायल हुआ और उसी रात्रि को उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार मुअज्जम उत्तराधिकारी युद्ध में सफल हुआ और बहादुरशाह की उपाधि धारण कर राज्य-सिंहासन पर १७०७ ई० में आसीन हुआ।

बहादुरशाह

औरंगजेब के जीवित पुत्रों में बहादुरशाह सबसे अधिक योग्य तथा उदार प्रकृति था। उसने उत्तराधिकारी के युद्ध में अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। उसने बड़े धैर्य से काम लिया और लाहौर के सूबेदार मुनीम खां को अपना मित्र बनाया जिसकी सहायता से उसका आगरे पर शीघ्र ही अधिकार स्थापित हो गया। उसने अपने व्यवहार द्वारा सेना का भी समर्थन प्राप्त किया।

बहादुरशाह की कठिनाइयाँ और उनका निवारण—जिस समय बहादुरशाह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ उसके सामने कई कठिनाइयाँ थीं। औरंगजेब की नीति के कारण राजपूतों ने विद्रोह किया, पंजाब में सिक्ख बन्दा बैरागी के नेतृत्व में विद्रोह कर रहे थे तथा मरहठे स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। निम्न पंक्तियों में इनका अलग-अलग वर्णन किया जायेगा—

(१) बहादुरशाह और राजपूत—आजम को परास्त कर बहादुरशाह ने राजपूतों की ओर ध्यान दिया। उत्तराधिकारी के युद्ध से लाभ उठाकर अजीतसिंह ने, जो मारवाड़ का स्वतन्त्र राजा बन गया था, अजमेर के मुगल प्रदेश पर आक्रमण कर दिया था। बहादुरशाह शीघ्र ही आमेर पहुंचा और वहाँ के उत्तराधिकारी के प्रश्न का समाधान कर विजयसिंह को आमेर का राजा घोषित किया। इसके उपरान्त वह जोधपुर गया। उसने अजीतसिंह को परास्त किया। उसने उसके साथ उदारतापूर्ण नीति बरताई। उसका अपराध क्षमा कर दिया गया और उसने उसको जोधपुर का राजा स्वीकार कर ३,५०० की मनसबदारी प्रदान की। जब वह अपनी सेना सहित कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहा था तो अजीतसिंह, दुर्गादास आदि ने आमेर के राजा विजयसिंह को परास्त कर राज्य पर अधिकार किया। बहादुरशाह को राजपूतों का दमन करने के लिये राजपूताना जाना पड़ा, किन्तु शीघ्र ही उसने उनसे सन्धि कर उनको अपने राज्यों में जाने की अनुमति प्रदान की।

(२) **बहादुरशाह और सिक्ख**—उत्तराधिकारी के युद्ध से लाभ उठाकर पंजाब में सिक्खों ने मुगलों की सत्ता उखाड़ने के अभिप्राय से विद्रोह करना आरम्भ किया। विद्रोहियों का नेता बन्दा बैरागी था जो गुरु गोविन्दसिंह की आकृति से बहुत कुछ मिलता था। उसने मुगलों को बहुत तंग करना आरम्भ किया और उसने बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। राजपूतों से सन्धि करने के उपरान्त सन् १७१० ई० में बहादुरशाह पंजाब गया और सिक्खों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ हो गया। सिक्खों को भारी क्षति उठानी पड़ी। मुगलों ने बन्दा को कई स्थानों पर परास्त किया। बाध्य होकर उसको जम्मू की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। बहादुरशाह की मृत्यु होने के कारण मुगलों ने सिक्खों के विरुद्ध अपना कार्य शिथिल कर दिया।

(३) **बहादुरशाह और मरहठे**—बहादुरशाह ने शम्भा जी के पुत्र शाहू को १७०७ ई० में मुक्त कर दिया और उसको दक्षिण में छह प्रान्तों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्रदान किया। उसके इस कार्य में कूटनीति की झलक स्पष्ट दिखलाई देती है। उसकी यह धारणा थी कि शाहू के दक्षिण पहुंचने पर मरहठे दो दलों में विभक्त हो जायेंगे और उनके गृह-युद्ध से लाभ उठाकर मुगल उनके प्रदेशों पर अधिकार करने में सफलता पायेंगे। उसका यह मन्तव्य पूर्ण हुआ और महाराष्ट्र में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया और उनका मुगल साम्राज्य की ओर से ध्यान हट गया।

बहादुरशाह की मृत्यु—बहादुरशाह ने अपनी उदार नीति के कारण भारत में शान्ति की स्थापना करने का प्रयास किया। वह केवल पांच वर्ष तक ही शासन कर सका। सन् १७१२ ई० में ६६ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। यदि वह कुछ समय तक और जीवित रहता तो सम्भवतः वह मुगल-साम्राज्य की रक्षा करने में सफल होता और यह इतनी शीघ्र छिन्न-भिन्न न होने पाता।

जहांदारशाह

बहादुरशाह के चार पुत्र थे—(१) मुईजुद्दीन, (२) अजीमुश्शान, (३) रफीउश्शान और (४) जहानशाह। अपने पिता बहादुरशाह की मृत्यु के अवसर पर ये चारों भाई उसके पास लाहौर में ही थे। इन चारों भाइयों में अजीमुश्शान सबसे योग्य था, किन्तु मुईजुद्दीन को असद खां के पुत्र जुलफिकार खां का समर्थन प्राप्त हुआ जिसका साम्राज्य में बड़ा प्रभाव था और जो ईरानी दल का नेता था। उसने कूटनीति द्वारा अजीमुश्शान के विरुद्ध अन्य तीन भाइयों का गठबन्धन करवाया। युद्ध में अजीमुश्शान पराजित हुआ और १७ मार्च १७१२ ई० को वह युद्ध में मारा गया। इसके उपरान्त तीनों भाइयों में युद्ध हुआ जिसमें मुईजुद्दीन विजयी हुआ और अन्य दोनों भाई युद्ध में परास्त हुये। २९ मार्च १७१२ ई० को वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

जहांदारशाह की उपाधि धारण कर, उसने शासन करना आरम्भ किया किन्तु वह बिल्कुल अयोग्य, निकम्मा और लम्पट था। यद्यपि इस समय उसकी अवस्था ५१ वर्ष की थी। उसने जुल्फिकार खां को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। २२ जून को वह लाहौर से दिल्ली आया। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगा। उसकी विशेष अनुरक्ति लाल कुमारी नामक वेश्या में थी। उसका

मुअज्जम पर बहुत अधिक प्रभाव था जिसके कारण उसके सम्बन्धियों को उच्च पदों पर आसीन किया गया जिसके लिये वे पूर्णतया अयोग्य थे। शासन में भ्रष्टाचार फैल गया और वह पतन की ओर अग्रसर होने लगा। लाल कुमारी के सम्बन्धियों का व्यवहार अन्य अमीरों के साथ अच्छा नहीं था जिसके कारण उनमें असन्तोष की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अजीमुश्शान के द्वितीय पुत्र फर्रुखसियर ने अपने आपको अप्रैल १७१२ को सम्राट घोषित किया। इस समय वह बंगाल का सहायक सूबेदार था और उसकी अवस्था १० वर्ष की थी। उसको पटना के सहायक सूबेदार सैयद हुसैन अली खाँ की और इलाहाबाद के सहायक सूबेदार अब्दुल्ला खाँ का समर्थन और सहायता प्राप्त हुई। सैयद हुसैन अली खाँ और अब्दुल्ला खाँ दोनों भाई थे। ये दोनों "सैयद भाइयों" के नाम से इतिहास में विख्यात हैं और बाद में शासक निर्माताओं (King-makers) के नाम से विख्यात हुये। इनका समर्थन तथा सैनिक सहायता प्राप्त कर फर्रुखसियर १० अक्तूबर सन् १७१२ ई० को पटना से चला। जहाँदारशाह ने राजकुमार अजीजउद्दीन को उसका सामना करने के लिये भेजा किन्तु वह पराजित हुआ और विजयी सेना शीघ्र ही उसके खजाने तथा शिविर को अपने अधिकार में किया। बाद में १० जनवरी सन् १७१३ ई० को जहाँदारशाह भी फर्रुखसियर द्वारा परास्त हुआ। वह आगरे से भाग कर दिल्ली असदखाँ के पास पहुंचा जिसने उसको फर्रुखसियर को सौंप दिया ११ फरवरी सन् १७१३ ई० को उसका वध करवा दिया गया।

फर्रुखसियर

११ जनवरी सन् १७१३ ई० को फर्रुखसियर सैयद भाइयों की सहायता द्वारा राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। वह भी बड़ा ही अयोग्य शासक था। उसमें सम्राट बनने के योग्य कोई भी गुण विद्यमान न थे। उसमें न बुद्धि थी और न चरित्र-बल ही था। शीघ्र ही उस पर सैयद भाइयों का प्रभाव बढ़ गया और वह उनके हाथ की कठपुतली बन गया। जिसके कारण शासन की वास्तविक सत्ता इन दोनों भाइयों के हाथों में आ गई। अब्दुल्ला खाँ प्रधान मन्त्री और सैयद अली खाँ सेनापति के पद पर नियुक्त किये गये। इसके परिणामस्वरूप दरबार में षड्यन्त्र होने लगे जिसमें फर्रुखसियर भी भाग लेता था। सैयद भाइयों ने मुगल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने का घोर प्रयत्न किया।

राजपूत—उन्होने सर्वप्रथम राजपूताने की ओर ध्यान दिया। मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण कर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। हुसैन अली विशाल सेना लेकर राजपूताना गया और उसने राजपूतों को बुरी तरह परास्त किया। बाध्य होकर अजीतसिंह ने अपने पुत्र को दरबार में भेजना तथा अपनी पुत्री का विवाह सम्राट फर्रुखसियर के साथ करना स्वीकार किया। हुसैन अली को शीघ्र लौटना पड़ा क्योंकि सम्राट अब्दुल्ला खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा था। हुसैन अली के आने पर सम्राट झुक गया। उसने हुसैन अली को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया।

सिक्ख—बहादुरशाह ने पंजाब में सिक्खों का दमन करने के लिये भरसक प्रयत्न किया और यह बन्दा बैरागी को जम्मू की पहाड़ियों में खदेड़ने में सफल हुआ किन्तु उसकी

मृत्यु के उपरान्त उन्होंने अपना संगठन कर अपनी शक्ति का पर्याप्त विकास किया और मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने लगे। बन्दा ने सिधौरा के समीप एक दुर्ग का निर्माण कर आसपास के प्रदेशों पर शासन करना आरम्भ किया। मुगलों ने सिक्खों का दमन करने का निश्चय किया। लाहौर के सूबेदार अब्दुल समद खां ने सिधौरा के दुर्ग को घेर लिया। सिक्खों ने बड़े साहस तथा उत्साह से मुगल-सेना का सामना किया किन्तु उनको दुर्ग छोड़ना पड़ा। सिक्खों ने लोहगढ़ की ओर प्रस्थान किया। मुगलों ने इसका भी घेरा डाला और बाध्य होकर बन्दा पुनः पहाड़ियों में चला गया और उसने वहाँ के मुगल-प्रदेशों को लूटना प्रारम्भ किया। सन् १७१५ ई० में बन्दा को मुगलों ने गुरदासपुर में घेर लिया और बाध्य होकर उसने आत्म-समर्पण किया। दिल्ली लाकर बन्दा का, उसके ७४० अनुयायियों के साथ, वध कर डाला गया।

जाट—जाटों ने दिल्ली और आगरे के पास अपनी शक्ति का विस्तार किया। इनका नेतृत्व चूरामन कर रहा था। यद्यपि बहादुरशाह ने उसको बड़ा पद प्रदान कर अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया था, किन्तु वह आगरे के समीप बहुधा छापे मारा करता था। जयपुर का राजा जयसिंह जाटों के दमन करने के लिये भेजा गया, किन्तु वह जाटों का दमन नहीं कर सका। अन्त में दोनों में सन्धि हुई और चूरामन को ५० लाख रुपया मिला और उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की।

फर्रुखसियर का अन्त—फर्रुखसियर को राज्यसिंहासन सैयद भाइयों की सहायता द्वारा प्राप्त हुआ था, किन्तु शीघ्र ही फर्रुखसियर अपने आपको उनके चंगुल से मुक्त करना चाहता था। उसने उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ किये। हुसैन अली ने मरहठों की सेना के साथ फरवरी १७१९ ई० में दिल्ली पर आक्रमण किया और उसका उस पर अधिकार हो गया। फर्रुखसियर को बन्दी बना लिया गया और दो माह पश्चात् उसका अन्त करवा दिया। इससे सैयद भाइयों की शक्ति बहुत बढ़ गई और शासन पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया। फर्रुखसियर उन सब सम्राटों में निकम्मा तथा अयोग्य था जितने शासक बाबर के वंश के राज्यसिंहासन पर आसीन हुए।

रफीउद दरजात

फर्रुखसियर का वध कर सैयद भाइयों ने रफीउद दरजात को जो रफीउश्शान का पुत्र था २८ फरवरी १७१९ ई० को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। इस समय उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी, किन्तु वह क्षय रोग का शिकार था। शासन की समस्त सत्ता पर सैयद भाइयों का आधिपत्य था। वह तो केवल नाम-मात्र का शासक था। ४ जून १७१९ को वह राज्यसिंहासन से च्युत कर दिया गया और इसके एक सप्ताह के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

रफीउद्दौला

रफीउद दरजात को राज्यसिंहासन पर से उतार कर सैयद भाइयों ने उसके बड़े भाई रफीउद्दौला को शाहजहां द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठाया। पेचिश की बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद सैयद भाइयों ने जहांनशाह के पुत्र रोशन अख्तर को मुहम्मदशाह के नाम से राज्यसिंहासन पर आसीन किया।

मुहम्मदशाह

सैयद भाइयों द्वारा २८ सितम्बर सन् १७१९ ई० में मुहम्मदशाह राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। इसके शासन-काल की सबसे प्रमुख घटना सैयद भाइयों का पतन था। इस समय मुगल अमीर सैयद भाइयों के व्यवहार तथा नीति से अप्रसन्न हो गये थे। इन विरोधी दलों का नेतृत्व निजाम-उल-मुल्क ने किया जिसको मुहम्मदशाह ने गद्दी पर बैठने के समय मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। उसने १७२० ई० में खानदेश पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। खानदेश सैयद हुसैन अली खां के अधिकार-क्षेत्र में था। जब उनको यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने दक्षिण में दिलावर अली खां के नेतृत्व में एक विशाल सेना निजाम से युद्ध करने के लिए भेजी। इसी काल में निजाम ने असीरगढ़ तथा बुरहानपुर पर भी अधिकार कर लिया था। निजाम ने दिलावर अली खां को परास्त किया और उसका वध कर दिया। इस पर सैयद हुसैन अली ने अपनी सेना तथा सम्राट को साथ ले दक्षिण की ओर निजाम का दमन करने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में ही हुसैन अली खां का वध करने का षड्यन्त्र रचा गया और उसका वध कर दिया। फिर सम्राट ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। अब्दुल्ला खां ने शाही सेना को परास्त करने के लिए सेना एकत्रित की किन्तु बिलोचपुर के समीप वह हार गया और बन्दी बना लिया गया।

सैयद भाइयों के पतन के उपरांत तथा नये मन्त्री मुहम्मद अमीन खां की मृत्यु के बाद निजाम-उल-मुल्क को मन्त्री पद पर आसीन किया गया। वह दरबार की दशा का वास्तविक अध्ययन कर परेशान हो गया क्योंकि उसको समस्त शासन में शिथिलता दिखलाई दी। उसने शासन में अनुशासन स्थापित करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। ८ दिसम्बर १७२३ ई० को शिकार का बहाना कर वह दक्षिण की ओर चल दिया। सम्राट ने उसके पलायन करने पर अमीर खां के पुत्र कमरुद्दीन खां को मन्त्री बनाया।

निजाम की कूटनीति—निजाम-उल-मुल्क दक्षिण जाकर ६ सूबों पर स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करने लगा। मुगल-सम्राट ने उसका दमन करने के लिए दक्षिण सेना भेजी किन्तु निजाम ने उस सेना को परास्त कर दिया। उसको शांत करने के उद्देश्य से सम्राट ने उसे आसफजाह की उपाधि से सुशोभित किया। निजाम ने मरहठों से अपने राज्य की रक्षा करने के उद्देश्य से मरहठों से एक सन्धि की ओर पेशवा बाजीराव के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपना ध्यान उत्तरी भारत की ओर आकर्षित करे और उसी ओर अपने साम्राज्य का विस्तार करने की ओर ध्यान दे।

मुगल और मरहठे—बाजीराव ने निजाम के प्रस्ताव को स्वीकार किया। सन् १७३४ ई० में मरहठों ने हिंडौन पर आक्रमण किया जो आगरे से ७० मील दक्षिण में स्थित था। उस पर वे अधिकार करने में सफल हुए। मुगलों के विरोध के कारण उनको वहां से हटना पड़ा। उन्होने सांभर पर आक्रमण किया। मुगल भयभीत हो गये और उन्होने (मुगलों) मरहठों को प्रसन्न करने के लिये उनके पेशवा को मालवा का सूबेदार

ीकार किया किन्तु मरहठों को इससे सन्तोष नहीं मिला। उन्होंने अपनी माँगें मुगलों सामने रखीं जिनको मुगलों ने स्वीकार नहीं किया। मुगलों ने उनका सामना करने के ए सेना भेजी, किन्तु मरहठों ने शाही सेना को धोखे में डालकर दिल्ली के समीप क्रमण किया। सम्राट ने भीषण परिस्थिति के समय निजाम-उल-मुल्क को दक्षिण से ल्ली बुलाया। मरहठों ने निजाम की सेना को परास्त किया और उसको १७ जनवरी सन् १७३८ ई० को मरहठों के साथ एक सन्धि करनी पड़ी। इसके द्वारा उसको नर्मदा से चम्बल नदी तक के समस्त प्रदेश मरहठों को देने पड़े और उसने उनको ५० लाख रुपये भी भेंट-स्वरूप प्रदान किये।

अवध का स्वतन्त्र होना—शासन की शिथिलता से लाभ उठाने का प्रयत्न महत्वाकांक्षी अमीरों ने करना आरम्भ कर दिया। ६ सितम्बर १७२२ को सम्रादत खां बुरहान उल-मुल्क अवध का सूबेदार नियुक्त किया गया था। वह बड़ा वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसको शीघ्र ही मुगलों की दयनीय दशा का ज्ञान हो गया। उसने अवध में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और नाम-मात्र के लिए ही उसने दिल्ली से अपना सम्बन्ध रखा अन्यथा स्वतन्त्र शासक के समान शासन करता था।

बंगाल का स्वतन्त्र होना—इसके शासन-काल में बंगाल ने भी अपना सम्बन्ध मुगल-साम्राज्य से विच्छेद किया। १२ मई १७४० ई० को बिहार के सहायक सूबेदार अलीवर्दी खां ने बंगाल के सूबेदार सरफराज खां को परास्त कर बंगाल पर अधिकार किया। सम्राट ने उसको बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का सूबेदार स्वीकार कर लिया। उसने अपनी स्वतन्त्र-सत्ता की स्थापना की। वह भी नाम-मात्र के लिये दिल्ली से अपना सम्बन्ध रखता था।

नादिरशाह का आक्रमण—मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहा था उसी समय उस पर एक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। सन् १७३९ ई०मे ईरानी वीर नादिरशाह ने आक्रमण किया। वह काबुल, कन्धार पर अधिकार करता हुआ भारत-भूमि में आ गया। उसने बड़ी सरलता से लाहौर पर अधिकार कर लिया। मुगल अभी तक नादिरशाह के आक्रमण का कोई महत्व नहीं समझते थे, किन्तु जब वह लाहौर से आगे बढ़ने लगा तो सम्राट चिन्तित हुआ और नादिरशाह का सामना करने के लिए सेना लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा। दोनों सेनाओं में करनाल के समीप घमासान युद्ध हुआ जिसमें नादिरशाह विजयी हुआ और मुगलों को मुंह की खानी पड़ी। मुगल नादिरशाह को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिए २ करोड़ रुपये की भेंट करने को तैयार हो गये, किन्तु नादिरशाह को इतने धन से सन्तोष नहीं हुआ और उसने २० करोड़ रुपये की मांग की। अन्त में यह निश्चय हुआ कि नादिरशाह को दिल्ली ले जाकर धन दिया जाय। दिल्ली में नादिरशाह का भव्य स्वागत हुआ, किन्तु संयोग से २२ मार्च को नगर में दंगा हो गया। नादिरशाह ने कत्लेआम की आज्ञा दे दी, जिसके परिणामस्वरूप ३०,००० नागरिकों का वध कर डाला गया। ८ घण्टों तक कत्लेआम चलता रहा और अन्त में मुहम्मदशाह की प्रार्थना पर कत्लेआम की आज्ञा उठा ली गई। १५ मई तक

नादिरशाह दिल्ली में रहा। वहां से वह अतुल धन राशि के साथ शाहजहां द्वारा निर्मित मयूरआसन (तख्ते-ताऊस) अपने साथ ले गया।

मरहठों के उत्तरी भारत पर आक्रमण—नादिरशाह के आक्रमण से मुगलों की प्रतिष्ठा को बहुत आघात पहुँचा और सबको उनकी दयनीय दशा का ज्ञान हो गया, किन्तु शक्ति को सुसंगठित करने के लिये कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मरहठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उनके आक्रमण बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मालवा, गुजरात और बुन्देलखण्ड के उत्तरी प्रदेशों तक होने लगे। सम्राट उनको नहीं रोक सका।

रुहेलखण्ड का स्वतन्त्रता प्राप्त करना—इस परिस्थिति से लाभ उठाकर अली मुहम्मद खाँ रुहेलखण्ड ने कटेर पर अपना अधिकार स्थापित किया। उसके नाम से ही यह प्रदेश रुहेलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मदशाह ने उस पर आक्रमण किया। अली मुहम्मद बन्दी बनाया गया किन्तु बाद में उसको स्वतन्त्र कर दिया गया और उसका रुहेलखण्ड पर पुनः अधिकार हो गया।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण—*नादिरशाह की मृत्यु सन् १७४७ ई० में हुई। अहमदशाह अब्दाली ने १७४८ ई० में अफगानिस्तान को अपने अधिकार में किया।* राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही पंजाब के सूबेदार शाहनवाज खां के निमन्त्रण पर अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। लाहौर पर अधिकार करने के उपरांत उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया, किन्तु मुहम्मदशाह के पुत्र राजकुमार अहमद ने उसको परास्त किया और बाध्य होकर उसे काबुल लौटना पड़ा।

मुहम्मदशाह की मृत्यु—२६ अप्रैल सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। वह बड़ा अयोग्य शासक था। वह अपना समस्त समय आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यतीत किया करता था। इसी कारण वह 'मुहम्मदशाह रंगीला' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसके शासन में मुगल प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुंचा और साम्राज्य का विच्छेद होने लगा। शासन के प्रत्येक विभाग में शिथिलता उत्पन्न हो गई। *महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने मुगल सम्राट की नाम-मात्र की सत्ता स्वीकार कर* अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। मरहठों ने भी उसका लाभ उठाकर उत्तरी भारत को अपने अधिकार-क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया।

अहमदशाह

मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अहमदशाह सन् १७४८ ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने १७५४ ई० तक शासन किया। उसके शासन-काल में बहुत से उपद्रव हुए और उसको बाध्य होकर मरहठों से सहायता लेनी पड़ी। सन् १७४९ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर दूसरा आक्रमण किया और पंजाब के सूबेदार को १४ हजार रुपया वार्षिक कर देने के लिए बाध्य किया। उसने तीसरा आक्रमण भारत पर १७५२ ई० में किया। उसने समस्त पंजाब को अपने अधिकार में किया। उसके शासन-काल में एक बड़ा गृह-युद्ध हुआ। एक दल का नेता नवाब सफदरजंग और दूसरे दल का नेता निजाम-उल-मुल्क का पुत्र गाजीउद्दीन था। गृह-युद्ध

मे गाजीउद्दीन को सफलता प्राप्त हुई और उसने शासन पर अधिकार कर लिया। वह अहमदशाह का मन्त्री बना। उसने शीघ्र ही अहमदशाह को सिंहासन से उतार कर जहांदारशाह के द्वितीय पुत्र अजीजउद्दीन को आलमगीर द्वितीय के नाम से १७५४ ई० मे राज्यसिंहासन पर आसीन किया।

आलमगीर द्वितीय

वह १७५४ ई० मे गद्दी पर बैठा। उसका अधिकांश समय कारागृह की चाहरदीवारी के अन्दर व्यतीत हुआ था। इस समय उसकी अवस्था ५५ वर्ष की थी। वह न योग्य शासक था और न योग्य सेनापति। वास्तव में कारागृह मे रहने के कारण उसको इनका तनिक भी अनुभव नही था। शासन की समस्त-सत्ता पर गाजीउद्दीन का अधिकार था। कुछ समय उपरान्त उसने अपने आपको मन्त्री के हाथों से मुक्त करने के लिये षड्यन्त्र रचा, किन्तु अनुभवहीन होने के कारण उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। गाजीउद्दीन ने पंजाब पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार मे किया। उसके इस कार्य से अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तृतीय आक्रमण सन् १७५७ ई० में किया। दिल्ली, मथुरा आदि प्रदेशों को लूटता हुआ वह अफगानिस्तान वापिस चला गया। गाजीउद्दीन ने सन् १७५६ ई० मे सम्राट का बध कर उसके पुत्र शाहआलम को सम्राट घोषित किया।

शाहआलम द्वितीय

सन् १७५६ ई० में वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। शासन की सत्ता पर गाजीउद्दीन का प्रभुत्व था। गाजीउद्दीन की नीति के कारण दिन प्रतिदिन उसका उसका विरोध बढ़ने लगा जिससे भयभीत होकर उसने मरहठों की सहायता प्राप्त की। मरहठों को साम्राज्य की नीति में हस्तक्षेप करने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। उन्होने दिल्ली में प्रवेश किया और पंजाब पर भी अधिकार किया। मरहठों के प्रभाव को बढ़ता देख मुसलमान अमीरों ने अहमदशाह अब्दाली को भारत आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया और उसको सहायता करने का वचन दिया। सन् १७६१ ई० मे उसने आक्रमण किया। मरहठों ने बड़ी वीरता से पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में उसका सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए। इस पराजय से मरहठों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। अहमदशाह अब्दाली ने शाहआलम को दिल्ली का सम्राट स्वीकार किया। बंगाल की ओर से अंग्रेज अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। सन् १७६४ ई० मे वे बक्सर के युद्ध में विजयी हुए। अगले वर्ष सन् १७६५ ई० मे अंग्रेजों को बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा से दीवानी वसूल करने का अधिकार मिला। अंग्रेजों ने इलाहाबाद और कड़ा के जिले सम्राट को दिए और उसको २६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में देना प्रारम्भ किया जो सन् १७७१ ई० में बन्द कर दी गई क्योंकि सम्राट मरहठों की संरक्षिता तथा प्रभाव क्षेत्र मे आ गया था। सन् १७८८ ई० में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर शाहआलम को गद्दी से उतार दिया। वह अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। सन् १८०६ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई।

अकबर द्वितीय

शाहआलम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। वह केवल नाम-मात्र का शासक था। अंग्रेज इसको वार्षिक पेंशन देते थे।

बहादुरशाह द्वितीय

अकबर की मृत्यु होने पर सन् १८३७ ई० में उसका पुत्र बहादुरशाह राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह मुगल वंश का अन्तिम सम्राट था। सन् १८५७ ई० तक अंग्रेज उनको वार्षिक पेंशन देते रहे, किन्तु जब उसने सन् १८५७ ई० की क्रान्ति में अंग्रेजों का विरोध किया तो उन्होंने उसको बन्दी कर रंगून भेज दिया जहां उसका सन् १८६२ ई० में देहान्त हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

उत्तरकालीन मुगलों के इतिहास का अध्ययन करने के उपरान्त मुगल-साम्राज्य के पतन के कारणों पर दृष्टि-पात करना आवश्यक है। यह प्रकृति का नियम है कि जिसकी उन्नति होती है उसका एक दिन पतन भी अवश्य होता है। इसी नियम के अनुसार मुगलों का भी पतन हुआ जिन्होंने पर्याप्त समय तक भारत पर राज्य किया। इन पतन के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी मुगल वंश का अन्तिम प्रसिद्ध सम्राट औरंगजेब आलमगीर था। उसकी नीति के कारण जनता में साम्राज्य के प्रति विद्रोह की भावना बलवती हुई और उन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर साम्राज्य के पतन में सहयोग दिया। इनके अतिरिक्त कुछ और अन्य कारण भी थे जिनके कारण मुगल-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ। इन सब कारणों के विषय में निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला जायगा—

> **मुगलों के पतन के कारण**
>
> (१) औरंगजेब की धार्मिक नीति।
> (२) औरंगजेब की दक्षिणी नीति।
> (३) अयोग्य उत्तराधिकारी।
> (४) मुगल सरदारों का चरित्र भ्रष्ट होना।
> (५) सैनिक कुव्यवस्था।
> (६) उत्तराधिकारी के निर्णय करने वाले नियम का अभाव।
> (७) जागीर प्रथा का प्रारम्भ।
> (८) बाह्य आक्रमण।
> (९) मुगलों की आर्थिक दुर्बलता।
> (१०) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना।

(१) औरङ्गजेब की धार्मिक नीति—औरङ्गजेब की धार्मिक नीति बड़ी पूर्वाग्रहपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण थी। जिस धार्मिक समन्वय के आधार पर अकबर हिन्दुओं की ओर विशेषतया राजपूतों की सहायता प्राप्त करने में सफल हुआ औरंगजेब ने उस एकता के आधार का परित्याग कर हिन्दुओं का न केवल समर्थन ही खोया वरन् उनको अपने शत्रु के रूप में परिणित कर लिया। उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया जिसको वे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे और जिसका अन्त अकबर के समय में ही चुका था। उसने उनके पवित्र मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया जिससे उनकी

आत्मा को बड़ा आघात पहुँचा। हिन्दू-जाति सब कुछ सहन कर सकती थी किन्तु अपने धर्म पर कुठाराघात नहीं। इसके अतिरिक्त औरङ्गजेब ने शिया मुसलमानों के साथ भी अन्यायपूर्ण एवं कठोर व्यवहार किया जिससे वे भी उसको घृणा की दृष्टि से देखने लगे। औरंगजेब ने दक्षिण के शिया-राज्य बीजापुर और गोलकुण्डा का दमन तथा अन्त इसी धार्मिक भावना के अन्तर्गत किया जिसका परिणाम मुगल-साम्राज्य के लिए घातक हुआ क्योंकि उनके पतन के कारण मरहठा शक्ति पर दक्षिण से प्रतिबन्ध हट गया और उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित कर मुगल-साम्राज्य की नीति का विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण उत्तरी भारत की सैनिक जातियों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। राजपूतों ने सम्मिलित रूप से विद्रोह किया। बुन्देलों, जाटों तथा सतनामियों ने भी ऐसा ही किया। औरंगजेब अपनी सैनिक शक्ति के आधार पर इनका दमन करने में सफल हुआ, किन्तु वह उनके हृदयों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफलता प्राप्त नहीं कर सका। जब उनको अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने पुनः अपने स्वतन्त्र राज्य प्राप्त किये। पंजाब में औरंगजेब के अत्याचारों के कारण सिक्ख सैनिक जाति के रूप में संगठित हुए और उन्होंने मुगलों पर भीषण आक्रमण कर पंजाब से उनके राज्य का अन्त कर डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि वह इन वीर जातियों का सहयोग मरहठों के विरुद्ध प्राप्त नहीं कर सका। शिवाजी मरहठों को दृढ़ तथा सुसंगठित करने में सफल हुए।

(२) औरंगजेब की दक्षिणी नीति—औरंगजेब की दक्षिणी नीति भी मुगल-साम्राज्य के पतन में विशेष उत्तरदायी सिद्ध हुई। उत्तर की समस्याओं का समाधान करने के उपरान्त उसने दक्षिण के राज्यों को मुगल-साम्राज्य में विलीन करने के हेतु दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने दक्षिण में लगभग २५ वर्ष व्यतीत किये और इस सम्पूर्ण काल में वह अनवरत रूप से दीर्घकालीन युद्ध दक्षिण में करता रहा जिसके कारण साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचा। (i) युद्ध में बहुत अधिक धन का व्यय हुआ जिसकी पूर्ति विजयों द्वारा नहीं हो पाई इससे राजकोष खाली हो गया और जनता को अधिक करों का भार सहन करना पड़ा। (ii) इसके कारण उत्तरी भारत में शासन में शिथिलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। जनता पर कर्मचारियों की ओर से कठोर व्यवहार किया जाने लगा। (iii) इन युद्धों के कारण बहुत से व्यक्ति मर गये। (iv) उसके गोलकुण्डा तथा बीजापुर राज्यों का अन्त करने से मरहठा शक्ति को उत्थान करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनको आत्म-रक्षा के उद्देश्यों से युद्ध करना पड़ा और जब उनको सफलता मिलती गई तो उन्होंने उत्तरी भारत की ओर अपनी सेनाओं के साथ प्रस्थान करना प्रारम्भ किया। (v) उनको उन हिन्दू अफसरों तथा सामन्तों द्वारा भी सहयोग मिला जो औरंगजेब की अन्यायपूर्ण नीति के कारण उससे अप्रसन्न थे और साम्राज्य के पतन की बाट जोह रहे थे। (vi) मरहठों और राजपूतों में मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही हिन्दू मुगल-साम्राज्य के शत्रु के रूप में भारतीय राजनीति में भाग लेने लगे।

(३) अयोग्य उत्तराधिकारी—औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त किसी भी

मुगल-सम्राट में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह इतने विस्तृत व विशाल साम्राज्य का संचालन योग्यता तथा सुव्यवस्थित रूप से करता। उसके उत्तराधिकारी निकम्मे और भोग-विलासी थे, जिनमें योग्यता का सर्वथा अभाव था। कुछ सीमा तक इसके लिये औरंगजेब उत्तरदायी था। उसका शासन-काल इतना अधिक लम्बा था कि उसके पुत्र तथा पौत्रों की अवस्था बहुत अधिक हो गई थी, जिसके कारण न उनमें शक्ति ही रह गई थी और न महत्वाकांक्षा ही। इसके अतिरिक्त औरंगजेब बड़ा शक्की था और वह किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं करता था। इससे उनमें योग्यता का अभाव हो गया। वे अपने मन्त्रियों की सलाह पर निर्भर रहते थे। 'औरंगजेब के उत्तराधिकारियों ने तो राजकुमारों को और भी अधिक निकम्मा बना दिया क्योंकि वे इनको दरबार में ही रखते थे और उनको शासन-व्यवस्था का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने का, कूटनीति के प्रयोग का तथा सुदूर प्रान्तों में युद्ध करने का अवसर तक नहीं देते थे।' इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि उनमें योग्यता का सर्वथा अभाव रहा और वे अपने महत्वाकांक्षी सरदारों तथा अमीरों के हाथ की कठपुतली बने रहे और शासन की सत्ता पर से उनका अधिकार समाप्त हो गया और समस्त सत्ता मन्त्रियों के हाथ में आ जाने के कारण दरबार दलबन्दी का अखाड़ा बन गया। कुछ मन्त्री तो इतने अधिक शक्तिशाली हो गये थे कि वे अपनी इच्छा से सम्राट बनाने लगे। कुछ सम्राट तो अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में ही व्यतीत करने लगे और राज्य के कार्यों में पूर्णतया उदासीन हो गए।

(४) मुगल सरदारों का चरित्र भ्रष्ट होना—ऐसा कोई भी राज्य अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता है जिसके कार्यकर्त्ता भ्रष्टाचारी हों या जिनके चरित्र का नैतिक पतन हो जाये। प्रारम्भिक काल के मुगल सरदारों का चरित्र उज्ज्वल एवं उन्नत था और विशेषतया उनका जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की स्थापना तथा उसको दृढ़ करने में विशेष सहयोग प्रदान किया। इनमें बैरम खां, मुनीम खां, अब्दुल रहीम खानखाना, महावत खां, आसफ खां आदि विशेष महत्वपूर्ण थे, किन्तु जब मुगल-सम्राटों का चरित्र भ्रष्ट हो गया तो उसका प्रभाव उनके सरदारों पर भी बहुत पड़ा। मुगल-सरदार तथा उच्च पदाधिकारी भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद का जीवन व्यतीत करने लगे थे और वे राज्य-कार्य से उदासीन से हो गये थे। उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में शिथिलता उत्पन्न होने लगी और उनके अधीन कर्मचारी मनमानी करने लगे। वे उन प्रदेशों से भारत आये थे जहाँ उनको भोग-विलास के साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न थे, किन्तु जब वे भारत आये और उनको प्राय पर्याप्त हुई तो उनका ध्यान स्वाभाविक रूप से इस ओर आकर्षित हुआ और वे उनमें लिप्त हो गये। अन्तिम मुगल-सम्राटों के काल में तो इनका चरित्र और भी गिर गया। वे कर्त्तव्य भ्रष्ट हो गये और उनकी राज्य भक्ति केवल दिखावटी रह गई। वे राज्य-कार्य की अपेक्षा अपने स्वार्थों की ओर विशेष ध्यान देते थे और उनमें पद-प्राप्त करने की प्रतिद्वन्दिता उत्पन्न हो गई जिससे राज्य कार्य उचित रूप से न हो सका।

(५) सैनिक कुव्यवस्था—मुगलों के पतन में उनकी सैनिक कुव्यवस्था भी

विशेष उत्तरदायी थी। मुगलों के सैनिक संगठन में मौलिक दोष विद्यमान थे। मनसबदारी प्रथा के कारण समस्त सेना विभिन्न टुकड़ियों मे विभक्त रहती थी। मनसबदार अपनी सेना को नियन्त्रण मे रखते थे और उनके सैनिक अपने को उसके अधीन समझते थे। उनमे राज्य के प्रति भक्ति के स्थान पर मनसबदार के प्रति भक्ति होती थी। जब तक केन्द्रीय शक्ति सशक्त रही उस समय तक मनसबदारों पर नियन्त्रण रहा, किन्तु बाद में उन पर नियन्त्रण रखना असम्भव हो गया। औरंगजेब के शासन-काल में ही मनसबदार न तो निश्चित सैनिक और न निश्चित घोड़े ही रखते थे और न वे सैनिक कार्यों में विशेष दिलचस्पी से कार्य करते थे। सैनिक का राज्य से कोई सीधा सम्बन्ध न होने के कारण वे भी युद्ध से उदासीन रहते थे। राज्य की कोई स्थायी सेना नहीं थी जिस पर सम्राट का अधिकार हो। वह मनसबदारों पर ही निर्भर रहता था। मनसबदारों मे परस्पर ईर्ष्या थी जिसके कारण सम्मिलित रूप से कार्य नहीं हो पाता था। सैनिक अनुशासन भी शिथिल हो गया था। सैनिकों तथा सेनापति के साथ उनकी पत्नियाँ, प्रेमिकायें भी युद्ध-क्षेत्र में जाया करती थीं। रात्रि के समय सैनिक भोग-विलास मे लिप्त रहते थे और दिन के समय युद्ध करते थे। इस परिस्थिति मे युद्ध में सफलता का प्राप्त होना असम्भव ही रहता था।

(६) उत्तराधिकारी के निर्णय करने वाले नियम का अभाव—मुसलमानों मे उत्तराधिकारी के निर्णय करने वाले नियम का अभाव था जिनके कारण राजकुमार राज्य को प्रगति के लिये सदा ही विद्रोह करने के लिये उद्यत रहते थे। इसके अतिरिक्त एक सम्राट की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकारी के निर्णय के लिये गृह-युद्ध का होना अनिवार्य था। इसके कारण साम्राज्य को बड़ी हानि उठानी पड़ी। हुमायूँ और अकबर के समय में भी राजकुमारों ने विद्रोह किए, किन्तु जहाँगीर के समय से तो इन्होंने बहुत उग्र रूप धारण किया। जहाँगीर के समय में राजकुमार खुसरो तथा बाद मे राजकुमार खुर्रम ने विद्रोह किया जिसके कारण मेवाड़-विजय तथा कन्धार-अभियान निश्चित समय पर नहीं हो सका। शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य की प्राप्ति के लिये उत्तराधिकारी युद्ध उस समय ही प्रारम्भ हो गया जब शाहजहाँ की मृत्यु भी नहीं हुई थी। इसने साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचाया। उसके बाद तो गृह युद्धों ने और भी भीषण रूप धारण कर लिया। इन पारस्परिक संघर्षों तथा युद्धों के कारण मुगलों की सैनिक शक्ति दिन प्रति दिन दुर्बल होती चली गई और अन्य शक्तियों को संगठित होने तथा अपनी शक्ति का विकास करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(७) जागीर प्रथा का प्रारम्भ—अकबर ने जागीर प्रथा का उन्मूलन कर किसानों का सम्बन्ध राज्य से सीधा स्थापित कर दिया था जिससे किसान जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गये। किन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने इस प्रथा को समाप्त कर जमींदारी प्रथा को प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त मुगल-साम्राज्य जागीरों में विभक्त हो गया, और प्रत्येक प्रान्तीय सूबेदार छोटे-छोटे राजा हो गये और शासन के शिथिल होने पर उन्होंने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर पड़ोसियों पर आक्रमण कर अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया।

(८) बाह्य आक्रमण—मुगल-साम्राज्य अधोगति को प्राप्त हो ही रहा था कि उसी समय फारस के शाह नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया और वह यहाँ से अतुल धन लेकर वापिस चला गया। उसके कुछ ही समय उपरान्त अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों के कारण गिरते हुए मुगल-साम्राज्य का और भी तीव्रगति से पतन होना प्रारम्भ हो गया।

(९) मुगलों की आर्थिक दुर्बलता—औरंगजेब के शासन-काल में ही मुगल राज-कोष रिक्त होने लगा था। उसके उत्तराधिकारियों के समय में आर्थिक व्यवस्था और भी शोचनीय हो गई। साम्राज्य में अशान्ति तथा कुव्यवस्था की स्थापना के कारण उद्योग-धन्धे चौपट हो गये। आर्थिक संकट के निवारण के लिये विलासी मुगल सम्राटों ने अधिक कर का भार जनता पर थोपा जिससे उनकी अवस्था पहले से भी अधिक शोचनीय हो गई। इस परिस्थिति में स्वभावतः जनता परिवर्तन चाहने लगी और जब ऐसी भावना का उदय जनता में हो जाता है तो राज्य किसी भी दशा में स्थायी नहीं रह सकता।

(१०) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना—प्रारम्भ में इस कम्पनी की स्थापना व्यापार के उद्देश्य से की गई थी, किन्तु भारत की अव्यवस्था तथा शोचनीय परिस्थितियों के कारण इसने राज्य की प्राप्ति करना प्रारम्भ कर दिया। मुगल इस जाति का सामना न कर सके और उसने लगभग १०० वर्षों में समस्त भारत पर अपना अधिकार स्थापित किया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) औरंगजेब की नीति मुगल-साम्राज्य के पतन का कहाँ तक कारण हुई? (१९५३)

(२) सैयद हुसैन अली खाँ के विषय में तुम क्या जानते हो? (१९५२)

अजमेर—

(१) मुगल-साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख करो? (१९५०,१९५४)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) 'औरंगजेब को दक्षिणी नीति मुगल-साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी थी।' विवेचना कीजिये।

(२) मुगलों के पतन के कारणों का उल्लेख करते हुये बतलाओ कि औरंगजेब मुगल-साम्राज्य के पतन के लिये कहाँ तक उत्तरदायी था? (१९५४)

अन्य—

(१) उत्तरकालीन मुगल सम्राटों का संक्षेप में वर्णन करो।

(२) सैयद भाइयों के ऊपर टिप्पणी लिखो।

प्रथम छह मुगल-सम्राटों की वंशावली

१. जहीरउद्दीन बाबर
मृत्यु १६३०

- २. मुहम्मदशाह हुमायूं, मृत्यु १५५६
  - ३. जलालुद्दीन अकबर, मृत्यु १६०५
    - ४. सलीम-जहाँगीर, मृत्यु १६२७
      - खुसरो
      - परवेज
      - ५. खुर्रम (शाहजहाँ), गद्दी से उतारा गया १६५८ ई०, मृत्यु १६६६ ई०
        - दारा शिकोह
        - शुजा
        - ६. औरंगजेब, मृत्यु १७०७
        - मुराद
      - शहरयार
    - मुराद
    - दानियाल
  - मिर्जा हकीम
- कामरान
- हिंदाल
- अस्करी

उत्तरकालीन मुगल सम्राटों की वंशावली

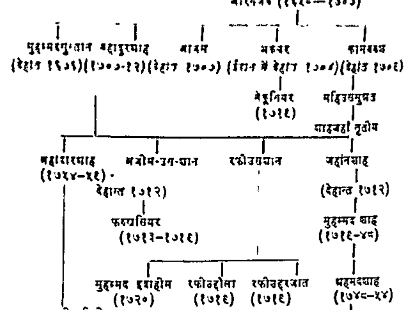

१७ मरहठों का उत्थान

(१७०७–१७७२ तक)

छत्रपति शाहू

गत अध्यायों में इस विषय में प्रकाश डाला गया है कि औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र बहादुरशाह ने अपने सेनापति जुल्फिकार खां के कहने पर मई १७०७ ई० को शाहू को मुक्ति प्रदान की, जिसको औरंगजेब ने सन् १६८६ ई० को बन्दी बनाया था। शाहू अपने कुछ साथियों सहित दक्षिण की ओर चल पड़ा और महाराष्ट्र पहुँचा जहां उसका बड़ा भव्य स्वागत हुआ। कुछ मरहठा सरदारों का उसको समर्थन प्राप्त हुआ। उसकी ओर से शीघ्र ही एक सेना का संगठन किया गया, जिसने सतारा को घेर लिया। ताराबाई शासन-सत्ता का परित्याग करना नहीं चाहती थी और उसने शीघ्र ही घोषणा की कि शाहू पाखण्डी है और उसका मरहठा राज्य पर कोई अधिकार नहीं है, शम्भा जी ने अपने राज्य को खो दिया। राज्य की पुनःस्थापना राजाराम ने की। अतः उसका पुत्र शिवाजी द्वितीय ही शासन का वास्तविक उत्तराधिकारी है। उसने यह भी कहा कि शिवाजी महाराज अपने राज्य को शम्भाजी को न देकर उसके पति राजाराम को ही देना चाहते थे। उसने शाहू का सामना करने के लिये धानाजी जादव के नेतृत्व में सेना भेजी, किन्तु धानाजी युद्ध के पूर्व ही शाहू की ओर हो गया और उसने ताराबाई के पक्ष का परित्याग कर दिया। ताराबाई की शेष सेना को शाहू ने १७०७ ई० में खेद नामक स्थान पर परास्त किया। शाहू ने शीघ्र ही सतारा पर अधिकार किया। २२ जनवरी १७०८ ई० के दिवस शाहू का राज्याभिषेक सतारा में हुआ। कुछ समय तक ताराबाई इधर-उधर भटकती रही, किन्तु अन्त में शासन सत्ता उसके हाथ से निकल कर राजाराम की दूसरी पत्नी रजसबाई के हाथ में आ गई जिसने ताराबाई और उसके पुत्र को बन्दी किया और अपने पुत्र शम्भाजी को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। वह कोल्हापुर में निवास करने लगा और शाहू के विरुद्ध निजाम-उल-मुल्क की सहायता से षड्यंत्र करने लगा। शाहू ने उसको परास्त किया और उसको एक संधि करने पर बाध्य होना पड़ा। यह संधि वार्ना की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इससे यह निर्णय हुआ कि वार्ना नदी के दक्षिण प्रदेश पर शम्भाजी का और उत्तरी-प्रदेश पर शाहू का अधिकार रहेगा। दोनों वंश शांतिपूर्वक अपने-अपने प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करेंगे।

बालाजी विश्वनाथ

बालाजी विश्वनाथ ने शाहू की ताराबाई के विरुद्ध बड़ी प्रशंसनीय सेवा की, जिसके परिणामस्वरूप उसने १७१३ ई० में कुछ समय उसकी परीक्षा करने के उपरांत

उसको अपना पेशवा (प्रधान मन्त्री) नियुक्त किया। पेशवा पद पर आसीन होने के बाद बालाजी विश्वनाथ ने सर्वप्रथम राज्य में शान्ति की स्थापना का प्रयास किया जिसका अन्त शासन की शिथिलता तथा मुगलों के आक्रमण तथा पारस्परिक गृह-युद्ध के कारण हो गया था। इसके उपरान्त उसने समस्त मरहठा सरदारों को नियन्त्रण में रखने की ओर पग उठाया। उसने समस्त सरदारों को एकता का पाठ पढ़ाया जिसका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे पारस्परिक वैमनस्य त्याग कर शाहू के अधीन हो गये। इससे मरहठों की शक्ति का बहुत विकास हुआ। जिन सरदारों ने शाहू की अधीनता स्वीकार नहीं की उनकी शक्ति का अन्त किया गया और उनको बाध्य होकर शाहू की शरण में आना पड़ा। इस समय दिल्ली की राजधानी में बड़ी उथल-पुथल मच रही थी।

मरहठों और सैयद हुसैनअली में सन्धि—सैयद भाई फर्रुखसियर को राज्य-सिंहासन पर आसीन करने में सफल हुये, किन्तु उसने उनके विरुद्ध कुछ ही समय उपरान्त षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। सैयद हुसैन अली दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। जब उसको यह समाचार ज्ञात हुआ कि फर्रुखसियर उसके भाई अब्दुल्ला खां के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा है तो उसने मरहठों से सहायता की याचना की। मरहठों ने उसकी सहायता करने का वचन दिया और दोनों पक्षों में निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) शाहू का उन समस्त प्रदेशों तथा दुर्गों पर अधिकार सम्राट को मानना होगा जो शिवाजी के स्वराज्य के अन्तर्गत थे।

(२) शाहू को वे प्रदेश प्राप्त होंगे जिन को मरहठों ने खानदेश, बरार, गोंडवाना, हैदराबाद और कर्नाटक में जीता है।

(३) मरहठों को छः प्रान्तों से चौथ और सारदेशमुखी वसूल करने का अधिकार होगा।

(४) चौथ के बदले में शाहू १५,००० व्यक्तियों की सेना सम्राट की सहायता के लिए देगा।

(५) सारदेशमुखी के बदले में शाहू दक्षिण में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेगा।

(६) शाहू कोल्हापुर राज्य का आदर करेगा।

(७) शाहू मुगल सम्राट को १०,००० रुपये वार्षिक कर के रूप में देगा।

(८) सम्राट शाहू की माता, अन्य सम्बन्धियों तथा उनके सेवकों को मुक्त कर देगा।

जब हुसैन अली ने दक्षिण से उत्तर की ओर प्रस्थान किया तो मरहठों के १५००० जवान बालाजी विश्वनाथ और खाण्डेराव धभाड़े के नेतृत्व में उसके साथ थे। सैयद भाई फर्रुखसियर को सिंहासन से उतारने में सफल हुये और नये सम्राट ने सन्धि की शर्तों को स्वीकार किया। यह सन्धि बालाजी विश्वनाथ की महानता का परिचय देती है। जब वह वापिस आया तो उसका भव्य स्वागत किया गया।

१२ अप्रैल सन् १८२० ई० को बालाजी विश्वनाथ का देहान्त हो गया और उस के स्थान पर उसका पुत्र बाजीराव पेशवा नियुक्त किया गया। जिसकी चर्चा इस

समय केवल १९ वर्ष की थी। बालाजी विश्वनाथ के सम्बन्ध में उसके कार्यों का मूल्यांकन करते हुए सर रिचर्ड टैम्पल ने कहा है कि "वह भावी उत्तराधिकारियों की अपेक्षा अधिक आदर्श ब्राह्मण था। उसका मस्तिष्क शांत एवं क्रियाशील था। उसका मस्तिष्क शांत एवं क्रियाशील था। उसका प्रबन्ध कल्पनाशील तथा उत्साहवर्धक था। वह अपने चरित्रबल से नीचों को वश में कर सकता था। वह एक अच्छा कूटनीतिज्ञ और कुशल अर्थशास्त्री था। राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने के कारण उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उसको अनेक बार मौत की धमकी दी गई किन्तु उसने अवसर आने पर उनका दृढ़तापूर्वक सामना किया। उसके भय तथा तर्क से मुगलों ने शाहू को मरहठों का छत्रपति स्वीकार कर लिया। वह अपनी सभी कूटनीतिक चालों में विजयी रहा। यद्यपि उसकी मृत्यु असमय में हो गई थी, किन्तु उसे इस बात का अभिमान था कि वह मुसलमानी शासकों के खण्डहरों पर हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना कर सका था और उस साम्राज्य में उसकी वंश-परम्परा का प्रधान मन्त्रित्व सुरक्षित हो गया था।"*

बाजीराव

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के उपरान्त शाहू ने उसके पुत्र बाजीराव को सन् १७२० ई० में पेशवा के पद पर नियुक्त किया, यद्यपि उसकी नियुक्ति पर अन्य सरदारों द्वारा प्रबल विरोध किया गया। उस समय बाजीराव की अवस्था २० वर्ष की भी नहीं थी किन्तु उसकी योग्यता, साहस तथा प्रतिभा से प्रभावित होकर ही शाहू ने उसको इतने अधिक महत्वपूर्ण पद पर आसीन किया। उसने भी अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि वह अपने पद के लिये सर्वथा योग्य है। बाजीराव समय, परिस्थिति तथा वास्तविकता को खूब पहचानता था। वह मुगल साम्राज्य की गिरती हुई अवस्था से लाभ उठाकर मरहठा-साम्राज्य का विस्तार उत्तरी भारत की ओर करना चाहता था। कुछ सरदारों ने उसकी इस नीति का विरोध किया किन्तु अकाट्य तर्कों के आधार पर वह छत्रपति शाहू की अनुमति प्राप्त करने में सफल हुआ।

बाजीराव की विजयें

(1) मालवा पर अधिकार—बाजीराव ने शीघ्र ही अपना ध्यान नर्मदा नदी के उत्तरी मुगल प्रदेशों पर अधिकार करने की ओर आकर्षित किया। उसने मालवा पर आक्रमण किया और वह सरलता से उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुआ।

---

* "He was more like a typical Brahman than any of his successors. He had a calm, comprehensive and commanding intellect, an imaginative and aspiring disposition, an appetite for ruling rude nature by moral force, a genious for diplomatic combination and a mastery of finance. His political destiny propelled him into affairs wherein his misery must have been acute. More than once, he was threatened with death for which he doubtless prepared himself with all the stoicism of his race when a ransom opportunity arrived. He wrung by power menace ond arguments from the Mughals, a recognition of Maratha sovereignty. He carried victoriously all his diplomatic points and sank into premature death with the consciousness that Hindu empire had been created over the ruins of Muhammadan power and that of this empire the hereditary chiefship had been secured for his family."
—Oriental Experience—p. p. 369—90.

राजपूतों से उसने मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने मरहठों का तनिक भी विरोध नहीं किया। सन् १७२४ ई० में उसका मालवा पर अधिकार स्थापित हो गया। वह अपने सेनापतियों को मालवा छोड़कर पूना चला गया।

(ii) गुजरात पर अधिकार—इसके बाद उसका ध्यान गुजरात की ओर आकर्षित हुआ। उसने शीघ्र ही उस पर अधिकार किया और वहाँ की प्राय सेनापति धाँडेराव दामाडे के नाम कर दी। उसके सहायक गायकवाड़ ने बड़ौदा में राजवंश की स्थापना की और उसके भतीजे पिलाजी गायकवाड़ ने गुजरात पर अधिकार कर सूरत से पचास मील दूर सोनगढ़ नामक स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया।

(iii) बाजीराव और निजाम—निजाम की ओर से मरहठों को सदा भय रहता था और वास्तव में यह मरहठों के लिये सबसे बड़ी समस्या थी। सैयद भाइयों के पतन के उपरान्त उसका प्रभाव मुगल-साम्राज्य में बहुत बढ़ गया। उसने उस सन्धि को अस्वीकार किया जो १७१९ ई० में मरहठों और मुगल सम्राट में हुई थी। बाजीराव ने शीघ्र ही युद्ध का निश्चय किया, किन्तु शाहू निजाम की शक्ति से भयभीत होकर शान्तिमय उपायों से इस समस्या का समाधान करना चाहता था। निजाम ने बहुत से मरहठा सरदारों तथा शम्भाजी में विरोध की भावना जागृत कर दी और वह उसको सदा भड़काता रहता था कि वह समस्त महाराष्ट्र को अपने अधिकार में करने की चेष्टा करे। शाहू विभिन्न समयों पर तीन बार निजाम से मिला, किन्तु इसका कोई खास परिणाम नहीं निकला। जब निजाम उत्तर की राजनीति से ऊब कर दक्षिण की ओर आया तो उसके प्रतिनिधि ने उसका विरोध किया किन्तु वह विजयी हुआ और निजाम के हाथ में दक्षिण की सूबेदारी आ गई।

(iv) बाजीराव का कर्नाटक पर आक्रमण—बाजीराव ने निजाम से मिल कर कर्नाटक पर आक्रमण करने की बात तय की। सन् १७२५ और १७२६ ई० के मध्य बाजीराव ने दो बार कर्नाटक पर आक्रमण किया, निजाम ने उसकी सहायता न की वरन् इसके विपरीत उसने स्वयं अपनी सेना को कर्नाटक विजय के लिये भेजा। इस समय जब बाजीराव कर्नाटक में था तो निजाम ने महाराष्ट्र की राजनीति में कुचक्र चलाया और बहुत से मरहठा सरदारों के साथ शम्भाजी को अपनी ओर मिलाया। शाहू डर गया और उसने इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से निजाम से वार्तालाप चलाया। सधि होने वाली थी कि बाजीराव अपने सैन्य बल के साथ महाराष्ट्र में आ गया। निजाम ने पुन: सधि वार्ता स्थगित कर दी।

पालखेद का युद्ध—शाहू भी निजाम से सचेत हो गया और उसने बाजीराव को निजाम के विरुद्ध अभियान करने की अनुमति प्रदान की। पेशवा बाजीराव ने युद्ध की तैयारियां कर पालखेद नामक स्थान पर निजाम को उसकी सेना सहित घेर लिया। निजाम ने बाध्य होकर सन्धि करने का प्रस्ताव किया। यह सन्धि मुंगेश गांव की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है जो ६ मार्च १७२८ ई० में शाहू और निजाम के मध्य हुई।

मुंगेश गांव की संधि—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें निश्चित हुईं—

(१) निजाम को चौथ तथा सारदेशमुखी का शेष धन शाहू को देना पड़ा।

(२) उसको उन समस्त व्यक्तियों को रखना पड़ा जो मरहठों ने कर वसूल करने के लिये नियुक्त किये।

(३) निजाम को शाहू को सम्पूर्ण महाराष्ट्र का स्वामी मानना पड़ा।

(४) निजाम ने शम्भा जी को पनहाला भेजना स्वीकार किया।

मुंगेश गाँव की सन्धि का परिणाम —मरहठों के इतिहास में इस सन्धि का बड़ा महत्व है क्योंकि इस सन्धि के अनुसार निजाम ने १७१६ की सन्धि में दिये गये मरहठों के अधिकार को नियमपूर्वक स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त यह भी लाभ हुआ कि निजाम ने शम्भा जी की सुरक्षा न करने की प्रतिज्ञा की, जिसके कारण शाहू के प्रतिद्वन्द्वी की शक्ति क्षीण हो गई। इस सन्धि के कारण बाजीराव की प्रतिष्ठा में बहुत विस्तार हुआ।

निजाम इस सन्धि को अपमानजनक समझता था। उसने मरहठों के विरुद्ध पुनः षड्यन्त्र रचे, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने बाजीराव को युद्ध में ही परास्त करने का निश्चय किया, किन्तु स्वयं पराजित हुआ। उसने बाजीराव से सन्धि की जिसमें निश्चय हुआ कि निजाम चौथ और सारदेशमुखी मरहठों को देगा और मरहठे उसके राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे।

(v) **मालवा पर पुनः अभियान** –बाजीराव ने पुनः मालवा पर आक्रमण किया। इस समय मुगलों की ओर से राजा गिरधरसिंह मालवा में सूबेदारी के पद पर नियुक्त था। वह बड़ा योग्य अफसर था। मरहठों ने मालवा पर आक्रमण किया। अमेझरा के भीषण युद्ध में वह और उसका चचेरा भाई दयाबहादुर मारे गये। मालवा पर मरहठों ने सन् १७२८ ई० में पूर्ण अधिकार किया।

(vi) **बुन्देलखण्ड पर आक्रमण**—मालवा से निवृत्त होकर बाजीराव ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इसी समय बुन्देला सरदार छत्रसाल ने बाजीराव को आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया। बाजीराव स्वयं मरहठा सेना लेकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने के लिये चल पड़ा। उसने बुन्देलखण्ड को मुगलों से मुक्त किया। इस कार्य से प्रसन्न होकर छत्रसाल ने बाजीराव को अपने दो पुत्र भेंटस्वरूप दिये और अपने राज्य का एक बड़ा भाग भी दिया। इससे मरहठे दोआब और आगरे के सम्पर्क में आ गये।

(vii) **दाभाड़ों का पतन**—बाजीराव ने १७३१ ई० में गुजरात के सूबेदार मारवाड़ के राजा अभयसिंह के साथ सन्धि की। इस बीच शाहू के सेनापति त्रिम्बकराव दाभाड़े और पेशवा बाजीराव में संघर्ष आरम्भ हो गया। बाजीराव की यह धारणा थी कि दाभाड़े निजाम से मिला हुआ है और उसका बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों में डभोई नामक स्थान पर संघर्ष हुआ जिसमें पेशवा विजयी हुआ और त्रिम्बक राव का वध कर दिया गया। अब पेशवा का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा।

(viii) **दिल्ली पर आक्रमण**—सन् १७३७ ई० में बाजीराव ने यमुना नदी पार कर उत्तरी भारत पर आक्रमण करने की योजना का निर्माण किया। उसके सरदारों ने दोआब के विभिन्न भागों पर आक्रमण किया और उसने बड़ी तेजी से दिल्ली के आसपास

के प्रदेशों को लूटा और दिल्ली पर आक्रमण किया। शीघ्र ही वह मुगल सेना को परास्त करता हुआ ग्वालियर वापिस आया।

(ix) निजाम और पेशवा का पुनः युद्ध—मुगल सम्राट मरहठों के दिल्ली अभियान से बहुत भयभीत हुआ। उसने शीघ्र ही निजाम को बुलाया कि केवल वह ही *मरहठों से मुगल-साम्राज्य की रक्षा कर सकता है। निजाम मुगल-सम्राट का आमन्त्रण* पाकर शीघ्र ही दिल्ली पहुंचा। मरहठों का दमन करने के लिये निजाम ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। बाजीराव ने उसको सेना को भोपाल के स्थान पर घेर लिया। *निजाम ने बाध्य होकर १७ जनवरी १७३८ ई० को दुराह सराय की सन्धि की।* इस सन्धि के अनुसार (i) मरहठों का मालवा पर अधिकार हो गया तथा (ii) नर्मदा और चम्बल नदी के मध्य के प्रदेश मरहठों के अधिकार में आ गये और उसने वचन दिया कि (iii) वह इस सन्धि का अनुमोदन सम्राट से भी करवा देगा। इस सन्धि का महत्व बहुत अधिक है। इसके द्वारा मरहठों की धाक भारत में जम गई।

(x) कोंकण—बाजीराव का ध्यान कोंकण की ओर आकर्षित हुआ। यह प्रदेश पश्चिमी घाट की पहाड़ियों और समुद्र के मध्य का उपजाऊ प्रदेश है। यहां तीन शक्तियां, आंग्रे, पुर्तगाली तथा सिद्दी थीं। इनमें पारस्परिक संघर्ष था। पुर्तगाली मरहठों के विरोधी थे और पुर्तगाली सूबेदार ने पेशवा का अपमान किया। बाजीराव ने अपमान का बदला लेने के अभिप्राय से अपने भाई चिमन जी को भेजा। उसने शीघ्र ही १७३७ ई० में थाना पर अधिकार किया। सालसट पर भी मरहठों का अधिकार हो गया किन्तु मरहठे बेसीन को अपने अधिकार में नहीं कर सके। अंत में सुरंग लगाई गई जिससे भयभीत होकर पुर्तगालियों ने आत्मसमर्पण किया। इसके पश्चात् उसने जंजीरा के सिद्दियों की शक्ति का अन्त किया और आंग्रे परिवार के झगड़े का निबटारा किया। इस प्रकार कोंकण पर मरहठों का अधिकार हो गया।

बाजीराव की मृत्यु और उसका मूल्यांकन—अप्रैल सन् १७४० ई० में इस महान् पेशवा की अल्प आयु में मृत्यु हो गई। बाजीराव एक उच्च-कोटि का सेनानायक था। उसमें योजनाओं के बनाने की अपूर्व योग्यता थी और उनको कार्यरूप में परिणत करने की पूर्ण क्षमता थी। उसकी ही योग्यता के आधार पर मरहठों की धाक समस्त भारत में फैल गई। उसने निजाम जैसे योग्य मुगलों के स्तम्भ को युद्ध में परास्त किया, *दिल्ली पर अभियान किया और अधिकांश प्रदेशों को रौंद डाला।* उसने उत्तरी भारत की ओर मरहठों का ध्यान आकर्षित किया जिससे मुगलों का पतन होना आरम्भ हो गया। सर रिचर्ड टेम्पुल के शब्दों में "बाजीराव सबसे अच्छा घुड़सवार था। *काम करने में सबसे आगे रहता था और आवश्यकता पड़ने पर कठिनाइयों का सामना करने के लिये* आग में कूद पड़ने के लिए तैयार रहता था। वह सब प्रकार के कष्टों को सहन कर सकता था और उसे इस बात का गौरव था कि वह अपने सैनिकों के समान ही कष्ट-सहिष्णु है और *उनके समान ही उनके रूखे-सूखे भोजन से सन्तुष्ट हो सकता है।*" परन्तु बाजीराव में कुछ दुर्गुण भी विद्यमान थे। वह उग्र प्रकृति का था और उसमें पर्याप्त विद्यमान था। उसने युद्ध में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त किया किन्तु वह उनको

अपनी ओर आकर्षित करने में सफल नहीं हो सका। उसने सामन्तशाही पद्धति को प्रोत्साहन दिया और अपने सेनापतियों तथा सरदारों को अपने प्रभाव-क्षेत्र को विस्तृत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया। जब तक पेशवा शक्तिशाली रहे ये सरदार उनके अधीन कार्य करते रहे, किन्तु उनके दुर्बल होते ही इन्होंने अपने प्रदेशों में स्वेच्छा से शासन करना प्रारम्भ कर दिया और इस कारण मरहठा संघ का शासन शिथिल हो गया। डॉ० डिघे के अनुसार "उसकी समस्त सफलताओं के होने पर भी उसमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था और उसको शिवाजी की कोटि में स्थान नहीं दिया जा सकता। उसने राज्य की राजनीतिक संस्थाओं में कोई परिवर्तन अथवा सुधार नहीं किया जिससे जनता को लाभ प्राप्त हो सके।" किन्तु इतना अवश्य मानना होगा कि उसने मरहठा-साम्राज्य की उन्नति की भरपूर चेष्टा की और अपने कार्यों में सफलता प्राप्त की। अतः उसको मरहठा-साम्राज्य का द्वितीय संस्थापक कहा जा सकता है।

बालाजी बाजीराव

बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त शाहू ने उसके ज्येष्ठ पुत्र बालाजी को पेशवा नियुक्त किया यद्यपि उसकी नियुक्ति पर कुछ सरदारों की ओर से पर्याप्त विरोध किया गया था। किन्तु शाहू ने उन सबकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अतः ४ जुलाई सन् १७०० ई० को वह पेशवा के पद पर आसीन हुआ। वह नाना साहेब तथा बालाजी बाजीराव के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय उसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। यद्यपि उसमें अपने पिता बाजीराव के समान योग्यता और प्रतिभा नहीं थी, किन्तु उसने अपने पिता के निरीक्षण तथा संरक्षता में सैन्य-संचालन तथा कूटनीति की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली थी।

पेशवा और मालवा—बालाजी ने मालवा को अपने अधिकार में करने के लिये एक योजना का निर्माण किया। जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि निज़ाम ने बाजीराव को मालवा देने की प्रतिज्ञा की थी। बालाजी अपने चचा चिमनाजी के साथ मालवा गया किन्तु उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण वह पूना वापिस आ गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। पेशवा बालाजी मई १७४१ में धौलपुर पहुँचा और राजा जयसिंह के साथ एक समझौता किया जिसमें निम्न बातें तय हुईं—

(१) पेशवा और जयसिंह एक दूसरे के मित्र रहेंगे और एक दूसरे की सहायता करने को सदा उद्यत होंगे।

(२) मरहठे मुगलों के प्रति स्वामी भक्त रहेंगे।

(३) मालवा की सूबेदारी छह माह के अन्तर्गत पेशवा को मिल जायेगी।

इस समझौते के होने के उपरान्त पेशवा पूना चला गया। राजा जयसिंह के प्रयत्नों से मुगल-सम्राट के एक फरमान द्वारा पेशवा को मालवा का नायब सूबेदार घोषित किया गया और उस प्रदेश पर मुगलों का न्यायानुकूल अधिकार स्थापित हो गया।

कर्नाटक-विजय—बाजीराव के समय में ही रघुजी कर्नाटक की विजय के कार्य में संलग्न था। रघुजी ने कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को परास्त किया और उसके पुत्र सफदरअली को सन्धि करने पर बाध्य किया। १७४१ ई० में उसने दोस्तअली के दामाद

चान्दा साहिब को परास्त कर बन्दी बनाकर सतारा भेज दिया। इसके उपरान्त उसका ध्यान पांडेचेरी की ओर आकर्षित हुआ जो फ्रांसीसियों के अधिकार में था, किन्तु कुछ विशेष कारणों से उसने अपना विचार स्थगित कर दिया और वह पूना लौट आया।

पेशवा और रघुजी—रघुजी शाहू का विश्वस्त सरदार था। वह शिवाजी प्रथम का चाचो भाई व्यंकोजी का वंशज था। उसकी इच्छा यह थी कि पेशवा अधिक शक्तिशाली न हो क्योंकि ऐसा होने पर छत्रपति के समस्त अधिकारों पर उसका नियन्त्रण हो जायगा। इसी कारण वह अपने पक्ष का पेशवा बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त बनाना चाहता था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस कारण वह बालाजी से वैमनस्य रखता था। पेशवा ने उसको बंगाल आदि प्रदेशों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। रघुजी ने बंगाल पर आक्रमण किया। वहाँ के सूबेदार अलीवर्दी खाँ को बाध्य होकर सन्धि करनी पड़ी और वह चौथ देने को तैयार हो गया। कुछ समय उपरान्त उसका संघर्ष पेशवा से हुआ जिसमें पेशवा विजयी हुआ। अन्त में शाहू के हस्तक्षेप के कारण दोनों में फिर मेल हो गया और दोनों की अधिकार सीमायें निश्चित हो गईं।

पेशवा और राजपूत—सन् १७४३ ई० मे आमेर के राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई। उसके पुत्र ईश्वरसिंह तथा माधव सिंह थे। जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त राज्य पर अधिकार रखने के लिये दोनों पुत्रों में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। उदयपुर के राणा जगतसिंह ने माधवसिंह का पक्ष लिया और ईश्वरसिंह ने रानोजी सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर की सहायता प्राप्त की। ईश्वरसिंह ने अपने समर्थकों की सहायता से माधोसिंह को सन् १७४५ ई० में परास्त किया किन्तु कुछ समय उपरान्त रानोजी सिंधिया की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र जयप्पा और मल्हारराव होल्कर मे रुपये के वितरण के सम्बन्ध मे झगड़ा हो गया। अब माधोसिंह ने होल्कर को धन का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार मरहठा सरदारों में युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। इसी समय पेशवा ने इस युद्ध को टालने के अभिप्राय से हस्तक्षेप किया और समझौता करवाने में सफल हुआ, किन्तु पेशवा के लौटते ही स्थिति पुनः भयंकर हो गई, क्योंकि ईश्वरसिंह ने समझौते की शर्तों को ठुकरा दिया। अब होल्कर ने माधवसिंह का पक्ष लिया और उसको समझौते को मानने के लिये बाध्य किया। १७५० ई० मे पेशवा ने सिंधिया और होल्कर को ईश्वरसिंह से चौथ वसूल करने का आदेश दिया, किन्तु इस समय उसकी आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी और वह रुपया देने मे असमर्थ था। मरहठों ने जयपुर पर आक्रमण किया। वह उनके व्यवहार से इतना दुखी हुआ कि उसने आत्म-हत्या कर ली। इसके उपरान्त माधवसिंह गद्दी पर बैठा किन्तु वह भी मरहठों के व्यवहार से असन्तुष्ट हो गया। उसने उनसे बदला लेने का निश्चय किया। उसने बहुत से मरहठों का वध कर डाला जिससे मरहठे उसके शत्रु हो गए। संयोग से इस समय होल्कर और सिंधिया दोनों वहाँ पर नहीं थे।

पेशवा और निजाम—सन् १७४८ ई० में निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु हो गई और १७४६ ई० मे शाहू की भी मृत्यु हो गई। इस घटना से पेशवा का शासन पर पूरा अधिकार हो गया। निजाम की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिये संघर्ष

होना आरम्भ हो गया। पेशवा ने निजाम के छोटे पुत्र सलावत जंग के विरुद्ध बड़े भाई गाजीउद्दीन खाँ का पक्ष लिया। सलावत जंग ने फ्रांसीसियों की सहायता प्राप्त कर पेशवा की सेना को कई स्थानों पर परास्त किया। इसी समय निजाम की सेना में विद्रोह हो गया और वह सेना शीघ्र बुला ली गई। गाजीउद्दीन की मृत्यु पर युद्ध का अन्त हो गया। सलावत जंग ने पेशवा से तंग आकर उससे एक सन्धि की जिससे पेशवा को २ लाख वार्षिक आय के प्रदेश प्राप्त हुये। उसको कर्नाटक तथा हैदराबाद से चौथ वसूल करने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। इनके बदले में पेशवा ने उसको सहायता करने का वचन दिया, किन्तु कुछ समय के उपरान्त दोनों में पुनः कटुता उत्पन्न हो गई। निजाम ने पेशवा पर १७५८ ई० में आक्रमण किया किन्तु परास्त हुआ। निजाम की शक्ति दिन प्रतिदिन कम होने लगी। १७५६ ई० में सदाशिव राव भाऊ ने अहमदनगर के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। १७६० में मरहठों ने निजाम की सेना को उदगिर नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। निजाम को बाध्य होकर मरहठों से सन्धि करनी पड़ी। निजाम ने मरहठों को बीजापुर और बीदर का आधा भाग तथा औरंगाबाद के कुछ प्रदेश दिये तथा दौलताबाद, असीरगढ़, बीजापुर, अहमदनगर और बुरहानपुर के दुर्ग भी मरहठों को प्राप्त हुये। इस प्रकार दक्षिण भारत में मरहठों की धाक जम गई और निजाम की शक्ति क्षीण हो गई। सदाशिव राव भाऊ की कीर्ति बहुत बढ़ गई।

मरहठों का उत्तर की ओर प्रसार—जिस समय मरहठे दक्षिण में व्यस्त थे उस समय उत्तरी भारत की अवस्था बड़ी शोचनीय हो रही थी। अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये थे। मरहठे भी चम्बल नदी तक आक्रमण कर रहे थे। १७५२ ई० में मरहठों और मुगलों में एक सन्धि हुई जिससे मुगल-सम्राट मरहठों को ५० लाख रुपया देगा तथा मरहठे उसको उसके शत्रु से रक्षा करेंगे। किन्तु सम्राट ने उसको स्वीकार नहीं किया। रघुनाथ राव के नेतृत्व में १७५४—५६ में मरहठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। १७५७—५८ में उसने दूसरा आक्रमण किया तथा दिल्ली पर भी आक्रमण किया। उसने नजीब-उद-दौला को परास्त कर सन्धि करने के लिये बाध्य किया। रघुनाथ राव अपने मित्र इमादउल-मुल्क को वजीर बनाकर वापिस आ गया। इसके बाद उसने मल्हारराव होल्कर के साथ पंजाब पर आक्रमण किया। इस समय पंजाब पर अहमदशाह अब्दाली का अधिकार था और उसका पुत्र तिमूरशाह वहाँ शासन कर रहा था। मरहठों का सामना तिमूर शाह न कर सका और उन्होंने शीघ्र ही सरहिन्द और लाहौर पर अपना अधिकार स्थापित किया और वह मई १७५८ ई० में पूना चला गया। उसके पंजाब छोड़ने के उपरान्त अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण कर मरहठों को परास्त किया और उसने मरहठों की शक्ति का अन्त करने के अभिप्राय से एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया जिसमें जाट और राजपूत भी सम्मिलित थे। उसने १७५६ ई० में दत्ता जी सिंधिया को परास्त किया और दिल्ली पर पुनः अपना अधिकार स्थापित किया।

जब मरहठों को दत्ता जी के वध का समाचार विदित हुआ तो पेशवा ने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ को एक विशाल सुसज्जित सेना के साथ अहमदशाह

अब्दाली का सामना करने के लिये भेजा । आगरे के समीप मल्हारराव होल्कर जन-कोजी भाऊ से मिले और इसके पश्चात् मरहठों ने भरतपुर के जाट राजा सूरजमल से मुहम्मदशाह अब्दाली के विरुद्ध सहायता मांगी। वह शीघ्र ही तैयार हो गया। अब मरहठे दिल्ली पर अधिकार करने के लिये चल पड़े । २ अगस्त सन् १७६० ई० में मरहठों ने बड़ी सरलता से दिल्ली पर अधिकार किया।

अब मरहठों ने अन्य देशी राजाओं से अब्दाली के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी समय युद्ध की नीति के सम्बन्ध में सूरजमल जाट और मरहठों में वाद-विवाद हो गया। सूरजमल अपनी सेना लेकर भरतपुर चला गया। इससे मरहठों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। कई महीने तक भाऊ दिल्ली में रहा। वह वहाँ भोजन की कमी का अनुभव करने लगा और उधर अब्दाली को भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। समझौते की कुछ बातचीत आरम्भ हुई किन्तु नजीबुद्दौला के कठिन दृष्टिकोण के कारण समझौता नहीं हो सका। दोनों सेनाओं से कई प्रारम्भिक युद्ध हुए किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला।

पानीपत का युद्ध—भाऊ को अन्न संकट बड़ा परेशान कर रहा था। अतः उसने अब्दाली से युद्ध करने का निश्चय किया और वह प्रसिद्ध युद्ध-क्षेत्र पानीपत में अपनी सेना को लेकर आ डटा। उसने युद्ध का संचालन किया और आक्रमण करना प्रारम्भ किया। १४ जनवरी सन् १७६१ ई० को यह युद्ध हुआ। अब्दाली की सेना में ६० हजार सैनिक थे और भाऊ की सेना में ४८ हजार सैनिक थे। मरहठों ने ९ बजे शत्रु पर आक्रमण किया। कई घंटों तक बड़ा घमासान युद्ध होता रहा। लगभग दो बजे पेशवा का सबसे बड़ा पुत्र विश्वासराव मारा गया। भाऊ को जब यह समाचार मिला तो वह पागल के समान शत्रु की सेना में घुस कर युद्ध करने लगा, किन्तु वह भी वीर-गति को प्राप्त हुआ। इन दो महान् व्यक्तियों की मृत्यु हो जाने के कारण मरहठों को बड़ा आघात पहुँचा और उचित नेतृत्व के न होने के कारण सेना में भगदड़ मच गई। मरहठों की भगोड़ी सेना का अफगानों ने पीछा किया। उन्होंने उनके शिविर को लूट लिया और इस प्रकार पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में मरहठों की भीषण पराजय हुई और अब्दाली विजयी हुआ। ऐसा कहा जाता है कि "पानीपत के युद्ध ने मरहठों की रीढ़ तोड़ दी। महाराष्ट्र में कोई ऐसा घर नहीं बचा था जिसका कोई लाल इस युद्ध में काम न आया हो।"* वास्तव में मरहठों की एक समस्त पीढ़ी का इस युद्ध में अन्त हो गया।

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम—पानीपत का यह तृतीय युद्ध भारत के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके परिणाम के सम्बन्ध के इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। महाराष्ट्र के सभी आधुनिक लेखक इस विषय में एक मत हैं कि मरहठों को केवल ७५००० व्यक्तियों की हानि उठानी पड़ी किन्तु इससे उनके लक्ष्य को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई। इतिहासकार सरदेसाई लिखते हैं कि "इस युद्ध-क्षेत्र में मरहठा

---

* "It was, in short, a nation wide-disaster like Flodden Field; there was not a home in Maharashtra that had not to mourn the loss of a member, and several houses lost their very heads." —Sir J. N. Sarkar.

जन-शक्ति का महाविनाश अवश्य हुआ। किन्तु यह विनाश उनकी शक्ति का अन्तिम निर्णायक नहीं था। वास्तव मे इस युद्ध के लम्बे अर्से के बाद महान् जाति के प्रसिद्ध पुरुष नाना फड़नवीस और महादजी सिंधिया को चकमा दिया था जो कि प्रलयकारी दिन बड़ी आश्चर्यजनक रीति से मृत्यु से बचकर निकल गये थे और जिन्होने मरहटों के पूर्व गौरव को फिर से जीवित कर दिया था। पानीपत के इस युद्ध मे हुआ मरहठो का विनाश दैवी प्रकोप के समान था। इसने मरहठों की जीवन-शक्ति को नष्ट कर दिया किन्तु इससे उनके राजनैतिक जीवन का अन्त नहीं हो पाया। यह मान लेना कि पानीपत के विनाश ने मरहटों की सार्वभौमिकता के प्रिय स्वप्न को सदा के लिये नष्ट कर दिया था, परिस्थिति को ठीक-ठीक न समझना है जैसा कि तत्कालीन लेखों से ज्ञात होता है।" महान् इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार का इस विषय में विभिन्न मत है। वे कहते हैं कि "इतिहास के पक्षपात रहित अध्ययन से ज्ञात होगा कि मरहठों का यह जोरदार दावा कितना निर्मूल है। इसमें सदेह नहीं कि मरहठा सेना ने निर्वासित मुगल-सम्राट को १७७२ ई० में अपने पूर्वजो के सिंहासन पर फिर से आसीन किया था किन्तु वे उस समय न तो राज्य-निर्माता हुए और न मुगल-साम्राज्य के वास्तविक शासक ही, वरन् उनकी स्थिति तो नाम-मात्र के मंत्रियों तथा सेनापतियों जैसी ही थी। इस प्रकार का गौरवपूर्ण पद तो केवल १७८० में महादजी सिंधिया और १८०३ मे अंग्रेज प्राप्त कर पाये थे।"* दूसरा मत युक्तियुक्त और सत्य है। इस युद्ध में पराजित होने से मरहठों की बड़ी हानि हुई। युद्ध के परिणाम निम्नलिखित हुए :—

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम

(१) मरहठों की अपार जन-क्षति।
(२) पेशवा के प्रभुत्व का अन्त।
(३) उत्तरी भारत से मरहठों के प्रभाव का अन्त।
(४) पराजय का नैतिक प्रभाव।
(५) अंग्रेजों का उत्कर्ष।
(६) मुसलमानों की शक्ति का पतन।
(७) नैतिक परिणाम।

(१) मरहठों की अपार जन-क्षति—मरहठों की इस युद्ध में बहुत अधिक जन-क्षति हुई जो लगभग ४५००० के आंकी जाती है। एक लाख से अधिक व्यक्तियों मे से केवल कुछ हजार ही महाराष्ट्र वापिस पहुंच सके। वास्तव में इस युद्ध के कारण मरहठों की एक पीढी का अन्त हो गया।

(२) पेशवा के प्रभुत्व का अन्त—इस युद्ध के कारण पेशवा के प्रभुत्व का अन्त हो गया जिससे मरहठो की एकता विलीन होने लगी। मरहठों में संघर्ष और

* "A dispassionate survey of Indian history will show how unfounded this (Maratha) chauvinistic claim is. A Maratha army did, no doubt, restore the exiled Mughal emperor to the capital of his fathers in 1772, but they came then not as king makers, not the dominators of the Mughal 'Empire and the real master of his nominal ministers and generals. That proud position was secured by Madadji Sindhia only in 1789 and by the British in 1803."

—Sir. J. N Sarkar: Fall of the Mughal Empire. Vol. II. p. 260.

कलह तीव्रगति से होने लगे जिससे महाराष्ट्र-संघ को बड़ा आघात पहुँचा । प्रसिद्ध सरदारों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये और पेशवा को उनको अपने नियन्त्रण में रखने का घोर प्रयत्न करना पड़ा । इस कारण पेशवा की शक्ति दिन प्रतिदिन कम होने लगी और कुछ समय उपरान्त वह इन सरदारों के हाथ में कठपुतली के समान खेलने लगा ।

(३) उत्तरी भारत से मरहठों के प्रभाव का अन्त—मरहठों के अधिकार से पंजाब, दोआब आदि प्रदेश निकल गये । इन पर कभी मरहठों का अधिकार हो जाता था और कभी मुसलमानों का ।

(४) पराजय का नैतिक प्रभाव—अब तक मरहठा सेना अजेय समझी जाती थी किन्तु इस पराजय के कारण उनके मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुंचा उनकी मित्रता का कोई मूल्य नहीं रह गया ।

(५) अंग्रेजों का उत्कर्ष—मरहठों की पराजय से अंग्रेजों के उत्कर्ष का मार्ग खुल गया । अब भारत में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं रही जो उनके बढ़ते हुए साम्राज्य की गति को रोकने में सफल हो सकती । इसके उपरान्त भारत में अंग्रेजी शक्ति का विस्तार होना आरम्भ हो गया ।*

(६) मुसलमानों की शक्ति का पतन—इस युद्ध के कारण मुसलमानों की शक्ति का भी पतन होना आरम्भ हो गया और उनमें इतनी सामर्थ्य तथा शक्ति न रही कि वे अंग्रेजों का सामना करने में सफल होते ।

(७) नैतिक परिणाम—इस पराजय का नैतिक परिणाम भी हुआ । भारतीय नरेशों को ज्ञात हो गया कि वास्तविक संकट के अवसर पर मरहठों की दोस्ती विशेष लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकती । उनकी किसी भी समय पराजय सम्भव है ।

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु और उसका मूल्याङ्कन—लगभग दो महीने तक बालाजी विश्वनाथ को पानीपत से कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ जिससे उसको चिन्ता होने लगी । वह अपनी सेना को लेकर उत्तर की ओर अग्रसर हुआ, किन्तु इस समय उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था । जब वह २४ जनवरी को भेलसा पहुँचा तो उसको मरहठों की पराजय का विस्तारपूर्वक ज्ञान प्राप्त हुआ जिसको सुनकर उसका हृदय बड़ा दुखी हुआ । वहां से वह और आगे को बढ़ा और जब उसको समस्त समाचार प्राप्त हुये तो उसका हृदय चीत्कार कर उठा । वह इस दुःख को सहन नहीं कर सका । वह पूना वापिस आ गया जहां उसका २३ जून १७६१ को देहान्त हो गया ।

बालाजी विश्वनाथ की गणना महान् शासकों में की जाती है । इसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मरहटों ने न केवल दक्षिण भारत में वरन् पंजाब से बंगाल तक अपनी धाक जमा दी । उसकी सेना अजय मानी जाती थी । उसने मरहठा-शासन को सुदृढ़

* "If Plassey had sown the seeds of British supremacy in India Panipat afforded time for their maturing and stricking roots. When the Marathas again tried to check the supremacy of the English in India the latter had been able to effect an immense improvement in their position."

—Quoted from 'An Advanced History of India,' page 551.

करने की ओर भी ध्यान दिया। उसने निजाम की शक्ति और मुगल-साम्राज्य का अन्त कर डाला। मुगल-साम्राट उसकी इच्छा पर आश्रित था, किन्तु वह अपने पिता बाजीराव के समान न कूटनीतिज्ञ ही था और न अपने पितामह के समान कुशल सेनानायक ही। उसमें इन गुणों का अभाव था। उसको सैन्य संचालन के लिये अन्य सरदारों पर आश्रित रहना पड़ता था जो वास्तव में उसमें एक बड़ी भारी कमी थी यद्यपि उसको अपने भाई सदाशिवभाऊ जैसे योग्य सेनापति की सहायता प्राप्त थी। वह अपने सरदारों तथा सेनापतियों को भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण में नहीं रख सका जिसके कारण मरहठों में एकता का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। उसने राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं के साथ उदारता का व्यवहार नहीं किया जिसके कारण वे उसके विरोधी हो गये। उसने छापामार नीति के स्थान पर खुले युद्ध का आरम्भ किया जिसका मरहठों को विशेष अनुभव प्राप्त नहीं हो पाया था। यदि मरहठे पानीपत के तृतीय युद्ध में इसी प्रणाली के अनुसार कार्य करते तो वे अवश्य विजयी होते। पेशवा में विलासिता आमोद-प्रमोद की मात्रा अधिक थी। वह अपना पर्याप्त समय नर्तकियों तथा आमोद-प्रमोद आदि में व्यतीत करता था। यद्यपि उसके काल में मरहठा साम्राज्य तथा उसके प्रभाव का पर्याप्त विस्तार हुआ, किन्तु उसके पतन के लिये भी वह उत्तरदायी था।

माधव राव प्रथम

बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त उसका १६ वर्षीय पुत्र माधव राव पेशवा राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसकी अल्प आयु होने के कारण उसका चचा रघुनाथ राव संरक्षक नियुक्त किया, किन्तु वह अपने पद का लाभ उठाकर शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में लेना चाहता था। माधव राव ने अपने कुछ समर्थकों द्वारा अपने आपको उससे मुक्त किया और स्वयं शासन-भार संभाला। वह बड़ा योग्य तथा प्रतिभाशाली था और उसके शासन के अन्तर्गत मरहठों ने पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त की।

मरहठे और निजाम—पानीपत में मरहठों के पराजित होने के कारण निजाम ने मरहठों के विरुद्ध एक गुट का निर्माण किया। उसने बहुत से मरहठा सरदारों को अपनी ओर मिला लिया और उसने अंग्रेजों की भी सहायता प्राप्त की। एक विशाल सेना के साथ उसने पूना की ओर प्रस्थान किया किन्तु उसकी हिन्दू विरोधी नीति के कारण मरहठों ने उसका परित्याग किया। मरहठों ने सन् १७६६ ई० में निजाम को बुरी तरह परास्त किया और उसको संधि करने पर बाध्य किया। सन्धि की शर्तें रघुनाथ के कारण विशेष कठिन न थीं। इससे पेशवा को बड़ा क्षोभ हुआ। पेशवा को रघुनाथ राव पर बड़ा क्रोध आया वह निजाम की शरण में चला गया, किन्तु बड़ी चालाकी से पेशवा ने फिर उसको अपनी ओर मिला लिया। मरहठों ने निजाम की सरकार पर आक्रमण किया। उसने निजाम से सहायता की प्रार्थना की। निजाम ने पुनः पूना की ओर प्रस्थान किया। पेशवा ने तुरन्त हैदराबाद पर आक्रमण किया। बाध्य होकर निजाम को वापिस जाना पड़ा। १० अगस्त को मरहठों ने निजाम को राक्षस भुवन नामक स्थान पर परास्त कर उसको संधि करने के लिये बाध्य किया। इन युद्धों

द्वितीय खंड

(१७०७—१८१८)

१

भारत में योरोपीय जातियों का आगमन

The Coming of the Europeans in India

मध्यकालीन युग से निकलकर योरुप की जातियों ने भौगोलिक खोजो द्वारा विभिन्न देशों का पता लगाना प्रारम्भ कर दिया था। भारत योरुप का व्यापार पर्याप्त समय से होता चला आ रहा था, और उसका बनाया हुआ माल योरुप के समस्त बाजारों में बिकता था। यह व्यापार तीन मार्गों से होता था जो इस प्रकार हैं—(१) उत्तरी मार्ग जो ओक्सस से केस्पियन तथा काले सागर तक, (२) मध्य मार्ग जो सीरिया से होता हुआ भूमध्य सागर तक और (३) दक्षिण का सामुद्रिक मार्ग। मध्य एशिया की उथल-पुथल तथा कुस्तुनतुनियां पर तुर्कों का अधिकार हो जाने के कारण समस्त व्यापारिक मार्गों पर तुर्क लोगों का आधिपत्य हो गया जिसके कारण भारत के पूर्वी व्यापार की गति पर विशेष प्रतिबन्ध लग गया। योरुप के लोगों ने भारत के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से जल-मार्ग की खोज करनी आरम्भ की। २७ मई सन् १४९८ ई० को वास्को-डी-गामा (Vasco-de-gama) केप आफ गुड होप (Cape of Good Hope) होकर भारत आगमन में सफल हुआ और कालीकट के प्रसिद्ध बन्दरगाह पर पहुंचा। इससे पूर्व कि वास्कोडिगामा के विषय मे भी अधिक उल्लेख किया जाय इस बात पर प्रकाश डालना अधिक उचित प्रतीत होता है कि मुगलों की ओर से समुद्र की रक्षा की ओर कोई प्रयत्न नहीं किया गया था जबकि विदेशी इस मार्ग द्वारा भी भारत में प्रवेश कर सकते थे। मुगलों ने केवल उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ करने के लिये ही विशेष प्रयत्न किए। उत्तरकालीन मुगल शासकों के काल में उत्तरी-पश्चिमी सीमा भी अरक्षित हो गई थी और वहाँ से भारत पर आक्रमण होने प्रारम्भ हो गये थे। मरहठों ने समुद्र की रक्षा करने की ओर कुछ प्रयत्न अवश्य किए। भारत में सर्वप्रथम आने वाली योरुप की पुर्तगाल जाति थी। निम्न पंक्तियों में पुर्तगालियों के विषय में कुछ प्रकाश डाला जायगा:—

पुर्तगाल जाति
(The Portuguese)

जैसे उक्त पंक्तियों में उल्लेख किया गया है वास्कोडीगामा २७ मई १४९८ ई० को कालीकट पहुँचा। वहाँ के हिन्दू राजा जमोरिन ने उसका बड़ा आदर तथा सत्कार किया। वहाँ से वह कनानोर गया जहाँ के राजा ने उसके साथ मित्रता प्रदर्शित करते हुए एक सन्धि की। अपने जहाजों को भेंट तथा अन्य भारतीय सामानों से लादकर और कुछ समय भारत में रहने के उपरान्त वास्कोडीगामा सन् १४९९ ई० में वापिस पुर्तगाल चला गया। इसके उपरान्त पुर्तगाली व्यापारियों ने भारत के साथ व्यापार करना आरम्भ

किया। ९ मार्च १५०० ई० को पेड्रो प्रलवरेजकेब्रल (Pedro Alvarez Cabral) ने पुर्तगाल से भारत-यात्रा प्रारम्भ की। वह अपने साथ १३ जहाजों का एक बेड़ा अपने व्यापार की सुरक्षा तथा पूर्वी सागर पर अधिकार करने के उद्देश्य से लाया। कालीकट के राजा जमोरिन ने इस बेड़े का बड़ा भव्य स्वागत किया। इस समय समुद्री व्यापार पर अरब जाति का पूर्ण अधिकार था। अतः पुर्तगालियों का अरब वालों से संघर्ष होना अनिवार्य था, क्योंकि उन्होंने उनके व्यापार को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। पुर्तगालियों ने कालीकट के बन्दरगाह पर अपनी एक कोठी का निर्माण कर लिया था। उन्होंने कालीकट के बन्दरगाह में अरब के एक जहाज को लूट लिया और इस कारण उन्होंने पुर्तगालियों की कोठी को नष्ट कर दिया। इस पर केब्रल ने अरब वालों के दस जहाजों को नष्ट कर दिया और उसने कोचीन की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुँच कर पुर्तगालियों ने कोचीन के राजा को जमोरिन के विरुद्ध सहायता का आश्वासन देकर उससे कुछ व्यापारिक सुविधायें प्राप्त कीं। वहां भी उन्होंने अपनी कोठी की स्थापना की। उनकी इस नीति के कारण जमोरिन पुर्तगालियों से अप्रसन्न हो गया। केब्रल (Cabral) के जाने पर डी नोवा (De Novo) भारत आया और उसने कालीकट में अरबवासियों के जहाजों को लूटा और वे अरब सागर पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की ओर प्रयत्न करने लगे। इसके उपरान्त वास्कोडीगामा दूसरी बार १५०२ ई० में भारत आया। उसने मालाबार के तट के कुछ बन्दरगाहों पर अपनी कोठियों की स्थापना की।

अल्मीड़ा (Almeida)—सन् १५०३ ई० में एलफेन्जो-डि-एलबुकर्क (Alfenso de Albuquerque) एक जहाजी बेड़े का कमाण्डर बनकर भारत आया। उसने अपने कार्य को बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया और अरबवासियों के व्यापार को बड़ा आघात पहुँचाया। इस समय तक पुर्तगाली भारत में कई कोठियों की स्थापना कर चुके थे। उनकी ओर से अल्मीड़ा (Almeida) भारत आया और उसने पुर्तगाल के राजा से प्रार्थना की कि उस समय तक हमारी सफलता का कोई महत्व नहीं होगा जिस समय तक हमारा समुद्र पर पूर्ण नियन्त्रण व अधिकार स्थापित न होगा। उसने इस ओर ध्यान दिया और शीघ्र ही उसने एलबुकर्क को एक विशाल बेड़े का सेनानायक बनाकर लाल सागर, अरब सागर तथा हिन्द महासागर को अपने नियन्त्रण में करने के अभिप्राय से भेजा और उसने उसको पुर्तगालियों के प्रतिद्वन्द्वियों को शीघ्रातिशीघ्र विनाश करने का आदेश दिया। वह अपने कार्य में पूर्ण सफल हुआ और जब वह भारत आया तो अल्मीड़ा ने कार्य-भार उसको सौंप दिया और वह पुर्तगाली गवर्नर के रूप में कार्य करने लगा। ५ मार्च १५०९ को उसने स्पेन के लिये प्रस्थान किया किन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई।

एलबुकर्क (Albuquerque)—अल्मीड़ा के उपरान्त एलबुकर्क पुर्तगाली बस्तियों का गवर्नर नियुक्त हुआ। वह साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था। उसका उद्देश्य भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की स्थापना करना था और उसने अपने पद पर आसीन होते ही अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उसका

उद्देश्य भारत में पुर्तगाली व्यापार की वृद्धि करना था और इसके द्वारा वह भारत में राज्य की स्थापना करना चाहता था। (i) उसने शीघ्र ही १५१० ई० में गोवा पर अधिकार किया और उसको पुर्तगाली भारत-साम्राज्य की राजधानी घोषित किया। (ii) उसने सन् १५११ ई० में मलक्का पर अधिकार किया। इससे पुर्तगालियों का पश्चिमी हिन्द महासागर पर पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया। इससे अरब शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा। उसने उन प्रदेशों में उचित शासन-व्यवस्था की स्थापना की जिससे उसको जनता का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त हुआ, किन्तु उसकी धार्मिक नीति में उदारता का तनिक भी अंश नहीं था। वह बलात् लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षा दिलवाता था। उसकी इस नीति का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। जनता पुर्तगालियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगी।

पुर्तगालियों का उत्कर्ष तथा पतन (Rise and Fall of the Portuguese Power)—धीरे-धीरे पुर्तगाली शक्ति का उत्कर्ष होना प्रारम्भ हुआ। उसकी इस काल मे किसी भी योरोपीय शक्ति से प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। उन्होंने १५१८ ई० में कोलम्बो पर अधिकार किया और कुछ समय के उपरान्त उनका समस्त लंका द्वीप पर अधिकार हो गया। सन् १५३४ ई० मे उनका अधिकार बसई तथा १५३७ ई० में उनका अधिकार दीव पर हो गया। यहां यह स्मरणीय है कि पुर्तगालियों ने भारत के आन्तरिक भागों मे घुसने का प्रयत्न नहीं किया। पुर्तगालियों की शक्ति का विस्तार दिन प्रतिदिन होता गया और उनका सामुद्रिक व्यापार पर एकाधिकार निश्चित बना रहा। भारत के किसी भी शासक ने उनका तीव्र विरोध नहीं किया और न उनकी ओर विशेष ध्यान ही दिया। वे उनको केवल व्यापारियों के रूप मे ही मानते थे। उन्होंने अपने उपनिवेश ड्यु, डामन, सालसेट, बेसीन, चोल तथा बम्बई, मद्रास के समीप सेन्ट टोम और बंगाल मे हुगली में स्थापित किये। जब पुर्तगालियों ने बंगाल की जनता को ईसाई धर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ कर दिया तो मुगल सम्राट शाहजहां का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इस समय तक उन्होने हुगली की किलेबन्दी भी कर ली थी। इसी समय उन्होंने मुमताजमहल बेगम की दो दासियों को बन्दी कर लिया था जिससे शाहजहां को बड़ा क्रोध आया और उसके आदेश पर कासिम अली ने हुगली पर अधिकार किया। १७१६ ई० में मरहठों ने सालसिट तथा बेसीन पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त उसके अधिकार में केवल गोवा, डामन, ड्यु द्वीप रह गये, जिन पर सन् १९६१ ई० में भारत का अधिकार स्थापित हुआ।

पुर्तगाली शक्ति के पतन के कारण (Causes of the downfall of the Portuguese Power)—पुर्तगाली शक्ति के पतन के बहुत से कारण थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) पुर्तगालियों की धार्मिक नीति (Religious Policy of the Portuguese)—पुर्तगालियों की धार्मिक नीति बड़ी अनुदार थी। वे भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते थे। उन्होंने लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध ईसाई धर्म में दीक्षित

करना प्रारम्भ किया। इसके कारण भारतीय जनता उनको घृणा की भावना से देखने लगी। उन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों तथा मुसलमानों की मस्जिदों को नष्ट-भ्रष्ट किया।

(२) दोषपूर्ण शासन (Defective Administration)—पुर्तगाली शासन दोषपूर्ण था। बाद के आने वाले गवर्नरों ने शासन को उन्नत करने की ओर ध्यान नहीं दिया। वे अपने निजी स्वार्थों में इतने अधिक लिप्त हो गये कि उन्होंने अपने देश के हितों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं रखा। उन्होंने हर सम्भव रूप से अधिक से अधिक धन प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त उनकी न्याय-व्यवस्था तथा दण्ड-विधान भी पक्षपातपूर्ण था। चारों ओर भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी फैली हुई थी। उन्होंने विजित प्रदेशों में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना की ओर तनिक भी प्रयास नहीं किया। उनका मुख्य उद्देश्य अत्यधिक धन प्राप्त करना था चाहे वह किसी भी साधन द्वारा प्राप्त किया जा सके। इस परिस्थिति में उनको जनता का सहयोग प्राप्त करना असम्भव था। जनता उनके शासन में बड़ी दुखी थी।

पुर्तगालियों के पतन के कारण

(१) पुर्तगालियों की धार्मिक नीति।
(२) दोषपूर्ण शासन।
(३) उचित सामुद्रिक शक्ति का अभाव।
(४) स्थलीय शक्ति का न होना।
(५) मुगलों तथा मरहठों की नीति।
(६) अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार।

(३) उचित सामुद्रिक शक्ति का अभाव (Absence of competent sea-power)—उन्होंने विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, किन्तु उसको सुरक्षित रखने के लिये सामुद्रिक शक्ति का होना अनिवार्य था जिसका उनके पास अभाव था। उन्होंने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब तक उनकी प्रतिद्वन्द्विता पूर्वी राज्यों से हुई वे सफल सिद्ध हुए, किन्तु जब उनको पश्चिमी देशों का सामना करना पड़ा तो उनको पराजित होना पड़ा। वास्तव में उनके पास न अच्छा समुद्री बेड़ा ही था और न उनका सैनिक संगठन ही उच्च-कोटि का था।

(४) स्थलीय सेना का न होना (Absence of Land power)—पुर्तगालियों ने कभी भी देश के आन्तरिक भागों को अपने अधिकार में करने की चेष्टा नहीं की जिसके कारण वह स्थलीय शक्ति न बनकर केवल समुद्री शक्ति ही बनी रही। उस समय उनके सामने कोई चारा नहीं रहता था जब समुद्र की ओर से कोई शक्ति उन पर आक्रमण कर दे। उनको शरण लेने के लिए कोई स्थान न था और विवश होकर उनको आत्मसमर्पण करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त समुद्री शक्ति को सब भी सहन नहीं होता था। जिस समय पुर्तगालियों पर कोई संकट आता होता तो उनके प्रदेशों की जनता उनकी परेशानियों से लाभ उठाने के लिए विद्रोह कर उनके सामने और भी भीषण परिस्थिति तथा समस्या उत्पन्न कर देती थी।

(५) मुगलों तथा मरहठों की नीति (*Policy of the Mughals and the Marathas*)—मुगलों तथा मरहठों की शक्ति के प्रबल होने के कारण पुर्तगालियों को

दशा शोचनीय होने लगी। जब तक इनका उदय नहीं हो पाया था उस समय तक पुर्तगालियों को विशेष भय नहीं था। मरहठों ने सालसट तथा बेसीन पर अधिकार किया और मुगलों ने उनको बंगाल से बाहर खदेड दिया। इसके अतिरिक्त बाद में डच और अंग्रेजों ने भी इस ओर अपना-अपना प्रसार करना प्रारम्भ किया जिनका सामना पुर्तगाली नहीं कर सके, क्योंकि इनकी सामुद्रिक शक्ति पुर्तगालियों की सामुद्रिक शक्ति की अपेक्षा बहुत उन्नत थी।

(६) अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार (Portuguese were immoral and corrupt) – पुर्तगालियों में नैतिकता का पूर्णतया अभाव था। उन्होंने हर सम्भव उपाय से धन प्राप्त करना प्रारम्भ किया। उन्होंने अन्य देशों के व्यापारिक जहाजों को लूटा और वास्तव में वे समुद्री लुटेरों के समान आचरण तथा व्यवहार करने लगे। उनका जनता के साथ भी ऐसा ही व्यवहार था। चारों ओर भ्रष्टाचार का नग्न नृत्य हो रहा था।

डच जाति
(The Dutch)

जब डच जाति को पुर्तगालियों के पूर्व के व्यापार का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उनके मन में भी पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। ये लोग समुद्र के अधिक निकट निवास करने के कारण अच्छे नाविक थे। सन् १५८१ ई० में इनको स्पेन की पराधीनता से मुक्ति प्राप्त हुई और ये स्वतन्त्र हो गये। सन् १५९२ ई० में ने डच जाति के कुछ व्यापारियों ने पूर्व के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से एक कम्पनी की स्थापना की। अप्रैल सन् १५९५ ई० में डचों का एक जहाजी बेड़ा मलाया द्वीप-समूह पहुँचा और उसने वहाँ के लोगों के साथ व्यापार करना प्रारम्भ किया। वह १५९७ ई० को जहाजी बेड़ा लेकर स्वदेश वापिस पहुँचा। इनकी व्यापारिक सफलताओं को देखकर डच जाति के अन्य व्यापारियों के हृदय में भी पूर्वीय देशों के साथ व्यापार करने की इच्छा बलवती हुई। पूर्वी देशों से व्यापार करने वाली समस्त कम्पनियों को मिलाकर सन् १६०२ ई० में एक संयुक्त कम्पनी की स्थापना संयुक्त ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के नाम से हुई।

डच जातियों का पुर्तगालियों से संघर्ष (Conflict between the Dutch and the Portuguese)—डच जाति उस समय तक अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती थी जिस समय तक वह पुर्तगालियों के साथ संघर्ष न करें, क्योंकि इस समय समस्त व्यापार पर उनका ही एकाधिकार था। सन् १६०५ ई० में डच जाति ने पुर्तगालियों को युद्ध में परास्त कर अम्बोयना पर अधिकार किया और धीरे-धीरे पूर्वी द्वीप समूहों पर उनका अधिकार होना प्रारम्भ हो गया। इससे पुर्तगाली व्यापार को बड़ी चोट पहुंची। १६१९ ई० में उन्होंने बटाविया को अपनी राजधानी बनाया तथा बाद में लंका और मलक्का पर अधिकार किया। १६६४ ई० तक उन्होंने पुर्तगालियों को विभिन्न युद्धों में परास्त कर उनके केन्द्रों पर अधिकार कर लिया। उन्होंने भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तट पर बंगाल तथा गुजरात में भी अपने व्यापारिक केन्द्रों की

स्थापना की। उनके मुख्य केन्द्र पूलीकट, सूरत, चिन्सुरा, कासिमबाजार, पटना, बलासोर बरानगर, नागपाटन और कोचीन थे। यहाँ से व्यापार कर डच लोगों का व्यापार दिन प्रति दिन बहुत बढ़ गया।

डच जाति का अंग्रेजों से संघर्ष (Conflict between the Dutch and the English)—डच जाति के कारण पुर्तगालियों के व्यापार तथा शक्ति को बहुत आघात पहुँचा और डच जाति की उन्नति दिन प्रतिदिन होने लगी, किन्तु कुछ ही समय उपरान्त उनका संघर्ष अंग्रेजों से होना आरम्भ हुआ। सत्रहवीं शताब्दी में इन दोनों जातियों में बड़ी भारी व्यापारिक स्पर्धा होनी प्रारम्भ हो गई। सन् १६१८ ई० में अंग्रेज और डचों में संघर्ष हुआ जिसमें डचों की विजय हुई और उन्होंने अंग्रेजों का बहुत बड़ी संख्या में वध कर डाला। इसके उपरान्त दोनों जातियों में बड़ा वैमनस्य तथा शत्रुता आरम्भ हो गई। अंग्रेजों ने पूर्वी द्वीप समूहों से अपना ध्यान हटाकर भारत की ओर लगाया। यहाँ भी उनका संघर्ष अंग्रेजों से हुआ जिसमें अंग्रेज सफल हुए और डचों को पूरी तरह पराजित होना पड़ा। इस प्रकार अंग्रेजों के एक प्रतिद्वन्द्वी का प्रायः अन्त-सा हो गया।

फ्रेन्च कम्पनी
(The French Company)

पुर्तगाली, डच तथा अंग्रेजों की व्यापारिक सफलता को देख सन् १६६४ ई० में फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना हुई, यद्यपि इससे पूर्व भी फ्रांसीसियों की ओर से पूर्वी देशों से व्यापार करने के प्रयत्न किये गये थे। सन् १६६४ ई० में फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी (Compagnie des India Orientales) की स्थापना की गई। यद्यपि इसकी स्थापना राज्य की ओर से की गई थी परन्तु उसको प्रारम्भ में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई उन्होंने १६६८ ई० में सूरत में तथा १६६९ ई० में मसूलीपट्टम में अपनी कोठियों की स्थापना की। सन् १६७३ ई० में उन्होंने पांडिचेरी पर अधिकार किया जो बाद में फ्रांसीसी बस्तियों की राजधानी बनी। फ्रांसीसियों ने सन् १६९०–९२ ई० में बंगाल में चन्द्रनगर नामक स्थान में एक कोठी की स्थापना की। योरुप में फ्रांसीसियों और डचों का युद्ध होने के कारण भारत में भी यह युद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसने फ्रांसीसियों की स्थिति भारत में शोचनीय कर दी। डचों ने पांडिचेरी पर अधिकार किया, किन्तु १६९७ ई० की रिजविक की सन्धि (Treaty of Ryswick) होने पर वह फ्रांसीसियों को वापिस लौटा दिया गया।

अंग्रेजी कम्पनी
(The English Company)

सोलहवीं शताब्दी में अंग्रेजों में भी पूर्वी व्यापार करने की इच्छा बलवती हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) की स्थापना १६०० ई० में हुई और उस समय से इस कम्पनी ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया। इससे पूर्व भी कुछ अंग्रेज भारत आये थे, किन्तु उनको कोई विशेष व्यापारिक सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अंग्रेजी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी पहली

संस्था थी। जिसने व्यक्तिगत प्रयत्न के बल पर भारत के साथ व्यापार किया। अन्य समस्त संस्थाओं को अपने राज्यों का संरक्षण प्राप्त था।

इस कम्पनी की स्थापना भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इसी कम्पनी के द्वारा भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई जिसका सुख अंग्रेजों ने पर्याप्त समय तक भोगा। व्यापारियों ने बड़े उत्साह के साथ काम करना प्रारम्भ किया। उसको व्यापारी वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था जिसके कारण इस कम्पनी की स्थिति अन्य कम्पनियों की स्थिति से कुछ अच्छी थी। उन्होंने अधिक श्रम तथा अध्यवसाय से कार्य किया जबकि सरकारी संस्थाओं में इस बात का अभाव रहता था।

अंग्रेजी कम्पनी के प्रारम्भिक प्रयत्न (Primary efforts of the English Company)—१३ फरवरी १६०१ ई० को कम्पनी की ओर से एक जहाजी बेड़ा, जिसमें पांच जहाज थे और जिसका नेता जेम्स लंकास्टर था, सुमात्रा के अचिन नामक स्थान पर पहुँचा। उसने वहाँ के बादशाह से व्यापारिक सुविधायें प्राप्त कीं। उसने बेंटम में एक कारखाने की स्थापना की। सन् १६०३ ई० के सितम्बर मास में वह मूल्यवान वस्तु से भरा हुआ एक जहाज लेकर इंगलैंड की ओर चल पड़ा। इसके उपरान्त एक दूसरा बेड़ा मिडल्टन के नेतृत्व में बेंटम, अम्बोयना, टरनेट और टिडोर पहुँचा वहाँ उसका डचों से संघर्ष हुआ। इसके पश्चात् सन् १६०८ ई० में केप्टिन हॉकिंस (Captain Hawkins) भारत आया और उसने मुगल-सम्राट जहाँगीर से भारत में बसने की अनुमति प्राप्त की, किन्तु पुर्तगालियों के विरोध के कारण जहाँगीर ने अपनी अनुमति वापिस ले ली। हॉकिंस ने पुनः सम्राट की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में निराश होकर जनवरी १६१२ ई० में वह इङ्गलैंड के लिये वापिस चल पड़ा। उसके अनुभवों का अंग्रेजों ने पर्याप्त लाभ उठाया।

अंग्रेजों का पुर्तगाली और डचों से संघर्ष—अंग्रेज जाति को यद्यपि प्रारम्भिक काल में भारत में पैर जमाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उन्होंने अपना साहस नहीं छोड़ा। अंग्रेज सूरत में रहकर व्यापार अवश्य कर रहे थे किन्तु डच और पुर्तगाली उनको भारत-भूमि से बाहर निकालने के षड्यन्त्र रच रहे थे। सन् १६११ ई० में एक पुर्तगाली बेड़े ने सर हेनरी मिडिल्टन (Sir Henry Middleton) को ताप्ती नदी के मुहाने में प्रवेश करने से रोका, किन्तु अगले ही वर्ष कॅप्टिन बैस्ट (Best) ने पुर्तगालियों को परास्त किया, जिससे उनके सामुद्रिक प्रभुत्व का अन्त हो गया और मुगल-साम्राज्य की स्थापना ने उनकी भू-सेना के महत्व को पूर्णतया समाप्त कर दिया। इन विजयों ने परिस्थिति में कुछ अन्तर अवश्य उत्पन्न कर दिया और अंग्रेजों को सूरत में स्थायी रूप से अपना कारखाना खोलने की अनुमति मुगल-सम्राट जहाँगीर ने प्रदान कर दी। शीघ्र ही कारखाना खोल दिया गया और थामस आल्डवर्थ (Thomas Aldworth) के शब्दों में "यह कारखाना हिन्द-द्वीप समूह के सब से अधिक मूल्यवान और सर्वश्रेष्ठ व्यापार को खोलने वाली एक मात्र कुंजी थी।" इसके उपरान्त अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत के

आन्तरिक भागों से भी व्यापार करना आरम्भ कर दिया और उन्होंने विभिन्न प्रदेशों में अपनी एजन्सियों की स्थापना की।

सर टामस रो का भारत आगमन (The Advent of Sir Thomas Roe)— मुगल-दरबार से और अधिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये १६१५ ई० में इङ्गलैंड के राजा जेम्स प्रथम ने सर टामस रो को इङ्गलैंड का राजदूत बनाकर भारत भेजा। सर टामस रो बड़ा विद्वान, गम्भीर, तीव्र-बुद्धि, प्रसन्न प्रान्त उद्यमी तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति था। प्रारम्भ में उसको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि राजकुमार खुर्रम, पुर्तगालियों का समर्थक था। इस समय उसका प्रभाव मुगल दरबार में उच्चतम पराकाष्ठा पर था। रो इस परिस्थिति से निराश नहीं हुआ और बराबर अपने कार्य के करने में संलग्न रहा। उसने नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ द्वारा जहाँगीर को अपनी ओर आकर्षित किया। उसको मुगल-साम्राज्य के कुछ नगरों में अंग्रेजी फैक्टरियाँ स्थापित करने की आज्ञा प्राप्त हुई। सर टामस रो १६१९ में इङ्गलैंड चला गया।

कम्पनी के संचालकों ने शीघ्र ही भारत के विभिन्न नगरों में कोठियों की स्थापना करनी प्रारम्भ की। भारत के पूर्वी समुद्र-तट पर १६११ ई० में कैप्टिन हिप्पन (Captain Hippan) कृष्णा नदी के डेल्टे में पतापोली नामक स्थान पर उतरा। उसने शीघ्र ही मसुलीपट्टम में एक कोठी की स्थापना की, किन्तु डचों के विरोध के कारण उसको कारखाना बन्द करना पड़ा, किन्तु बाद में उसका पुनरुद्धार किया गया। सन् १६४० ई० में मसुलीपट्टम की कौंसिल के एक सदस्य ने मसुलीपट्टम के दक्षिण में २३० मील की दूरी पर एक साधारण हिन्दू राजा से भूमि का एक टुकड़ा ले लिया और वहाँ एक कारखाना खोला। वहाँ उसने सेंट जार्ज (St. George) के नाम से एक किलेबन्द कारखाना स्थापित किया। कुछ ही वर्षों के उपरान्त उसके चारों ओर मद्रास नगर बस गया।

इसी बीच अंग्रेजों ने उड़ीसा और बंगाल में अपनी व्यापारिक बस्तियों की स्थापना की। सन् १६५१ ई० में अंग्रेजों ने हुगली में एक फैक्ट्री की स्थापना की, किन्तु इन प्रदेशों के मद्रास से अधिक दूरी पर होने के कारण वहाँ कार्य नियमानुसार नहीं चलता था।

इङ्गलैंड के गृह-युद्ध (Civil War in England) के कारण कम्पनी की अवस्था कुछ डाँवाडोल होने लगी क्योंकि उसको राज्य की ओर से कोई विशेष सहायता प्राप्त नहीं हो सकी, किन्तु चार्ल्स द्वितीय के राज सिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त राज्य की सहायता कम्पनी को प्राप्त होने लगी, जिसके कारण उसकी अवस्था में परिवर्तन हो गया। १६६१ से १६८३ ई० तक के आज्ञापत्रों द्वारा कम्पनी को विशेष अधिकार दिये गये। इसके द्वारा उसको सिक्के ढालने, किलेबन्दी करने, 'युद्ध' व सन्धि करने वाले अंग्रेजों को दण्ड देने का अधिकार मिला और गैर ईसाई जातियों के साथ युद्ध, अथवा सन्धि स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया। चार्ल्स ने कम्पनी को बम्बई का बन्दरगाह सन् १६६८ ई० में १० पौंड वार्षिक किराये पर दे दिया था जिसको

पुर्तगाली राजकुमारी कैथरीन के साथ विवाह करने के उपलक्ष में दहेज में प्राप्त हुआ था। यह बन्दरगाह आगे चलकर पश्चिमी प्रेसीडेंसी की राजधानी बना और जिसने शीघ्र ही सूरत का स्थान प्राप्त कर लिया। इसके सम्बन्ध में गोवा के पुर्तगाली वाइसराय ने कहा था कि जिस दिन अंग्रेज बम्बई में बस जायेंगे उसी दिन भारत पर हमारे अधिकार का अन्त हो जायगा।'

सत्तरहवीं शताब्दी के द्वितीय अर्धांश में कम्पनी की स्थिति कुछ उन्नत होनी प्रारम्भ हो गई और उसको भारतीय परिस्थिति के कारण अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। अब तक कम्पनी का ध्यान मुख्य रूप से व्यापार की ओर लगा हुआ था किन्तु अब उसने राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करना भी आरम्भ कर दिया। इस समय भारत की स्थिति में भी कुछ परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। उसने अपनी सुरक्षा की ओर ध्यान दिया और सैनिक किले-बन्दी करना प्रारम्भ कर दिया। शिवाजी ने दो बार सूरत को लूटा जिसका वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है और वह अपनी कर्नाटक विजय के लिये अपनी सेना के साथ मद्रास के पास से निकला। इसी समय सूरत के प्रेसीडेन्ट ने कम्पनी से प्रार्थना की कि अब ऐसा अवसर आ गया है कि उसको अपने व्यापार की रक्षा तलवार के आधार पर करनी होगी। कम्पनी के संचालकों ने उसकी नीति को स्वीकार किया।'

मुगलों से संघर्ष (Conflict with the Mughals)—इसी समय अंग्रेजों का मुगलों से संघर्ष होना प्रारम्भ हो गया। सन् १६५१–५२ में कम्पनी को बगाल के सूबेदार राजकुमार शुजा ने यह आज्ञा पत्र प्रदान किया कि वह ३,००० रुपये वार्षिक देने पर बिना कर दिये व्यापार कर सकते हैं। सन् १६५६ ई० में उनको कुछ और सुविधायें प्राप्त हुईं। इनके कारण उनका उत्साह बहुत बढ़ गया। अंग्रेजी कम्पनी के कर्मचारियों ने अपना निजी व्यापार भी इन्हीं सुविधाओं के अन्तर्गत करना प्रारम्भ कर दिया। बाद के मुगल अफसरों ने उनकी सुविधाओं को कम करने का प्रयत्न किया जिसके कारण उनका मुगलों से संघर्ष होना अनिवार्य हो गया। कम्पनी के संचालकों ने भी निश्चय किया कि वे अपने व्यापार की रक्षा शस्त्रों द्वारा करेंगे। कम्पनी ने चटगाँव पर अधिकार करने का प्रयास किया किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। भारत के पश्चिमी समुद्र-तट पर सर जौन चाइड (Sir John Chide) ने १६८८ ई० के दिसम्बर माह में मुगलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर ताप्ती नदी के मुहाने पर अधिकार कर मुगलों के जहाजों को पकड़ लिया और मक्का जाने वाले जहाजों को लूटा। जब मुगल सम्राट औरंगजेब को यह समाचार विदित हुआ तो उसने उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही आज्ञा दी कि मुगल-साम्राज्य में अंग्रेजों की जितनी भी कोठियाँ हैं उन सब पर मुगलों का अधिकार कर लिया जाए। तैलिंगाना में बहुत से अंग्रेज बन्दी कर लिए गए और बम्बई पर मुगलों ने अपना अधिकार स्थापित किया। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अंग्रेजों ने औरंगजेब से क्षमा याचना की। औरंगजेब ने यह समझ कर कि अंग्रेजों के व्यापार से साम्राज्य को बड़ा लाभ हो रहा है उसने उनको क्षमा प्रदान की और उनसे दो लाख रुपये युद्ध क्षति-पूर्ति के लिये प्राप्त किये। अंग्रेजों ने इस समय यह आश्वासन

दिया कि वे "भविष्य में कभी इस प्रकार के अपमानजनक कार्यों में भाग न लेंगे" और "यह अपमान करने वाले मि. चाइल्ड का सर्वथा परित्याग कर देंगे।" इस पर कम्पनी को पुनः व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो गई। कम्पनी को ओर से बंगाल में सुतानटी नामक स्थान पर कोठी की स्थापना करने का अधिकार मिला और इस प्रकार भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य में भविष्य की राजधानी कलकत्ता की नींव की स्थापना हुई। इस समय बंगाल के बर्दवान जिले के जमींदार ने विद्रोह किया और उन्होंने अपनी कोठी की किले-बन्दी करनी आरम्भ कर दी। मुगल-सम्राट अज़ीम-उश-शान ने अंग्रेजों को तीन गांवों की जमींदारी खरीदने की आज्ञा प्रदान की। १,२०० रुपये देकर अंग्रेजों ने कालीघट, कलकत्ता और गोविन्दपुर की जमींदारी खरीद ली। इस किले बन्द कोठी का नाम फोर्ट विलियम इंगलैंड के सम्राट विलियम तृतीय के नाम पर रखा गया और सर्वप्रथम सर चार्ल्स आकर यहाँ का प्रेसीडेन्ट और गवर्नर नियुक्त हुआ।

नई कम्पनियों की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बढ़ती हुई शक्ति तथा व्यापार के कारण इंगलैंड के बहुत से व्यापारी उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने हर प्रकार से इस कम्पनी को बदनाम करने का प्रयत्न किया, किन्तु इङ्गलैंड की सरकार ने कम्पनी को १६६१ ई० में एक नया आज्ञा-पत्र प्रदान किया। इसके दिलवाने में सर जोन चाइड (Sir John Chide) का विशेष हाथ था। उसने डाइरेक्टरों को बहुत अधिक धन घूंस के रूप में प्रदान कर उनका मुंह बन्द कर दिया। इससे व्यापारियों को सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने इङ्गलैंड की सरकार से व्यापार करने के लिये एक आज्ञापत्र सन् १६६८ ई० में प्राप्त किया। सम्राट को इस समय धन की बड़ी आवश्यकता थी और इसी कारण वह नई कम्पनी की स्थापना तथा उसको पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने का आज्ञापत्र देने को सहमत हो गया। अब भारत के साथ नई और पुरानी दोनों कम्पनियां व्यापार करने लगीं।

अंग्रेजी कम्पनियों में पारस्परिक संघर्ष—दोनों कम्पनियों ने भारत के साथ व्यापार करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया, किन्तु शीघ्र ही उन दोनों में संघर्ष होने लगा। नई कम्पनी के कर्मचारियों तथा संचालकों ने हर सम्भव रूप से पुरानी कम्पनी को नीचा दिखलाने तथा उसके प्रयत्नों को असफल करने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। नई कम्पनी की ओर से सन् १७०१ ई० में सर विलियम नोरिस (Sir William Norris) औरंगजेब के दरबार में व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करने के उद्देश्य से उपस्थित हुआ किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। अपनी इस पराजय पर वह बड़ा क्षुब्ध और दुखी हुआ। मार्ग में स्वदेश लौटते हुए उसकी मृत्यु हो गई। व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण दोनों कम्पनियों में से किसी को भी वास्तविक लाभ नहीं हो पाया और दोनों ओर से यह विचार प्रकट किया जाने लगा कि दोनों कम्पनियों को मिलाकर एक कर दिया जाय। सन् १७०८ ई० में अर्ल आफ गोडोल्फिन (Earl of Godolphin) के निर्णय के अनुसार दोनों कम्पनियां सम्मिलित कर दी गईं और सम्मिलित कम्पनी का नाम 'युनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी' रक्खा गया।

कम्पनी की प्रगति (Expansion of the Company)—इस सम्मिलित

कम्पनी की प्रगति शीघ्र होने लगी। देश में तथा इङ्गलैंड की पार्लियामेंट में उसके समर्थकों की सख्या में विकास हुआ। उसको व्यापार में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होने लगी। सन् १७११ ई० में इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने कम्पनी के व्यापार करने की अवधि सन् १७६३ ई० तक कर दी और बाद में १७३० के अधिनियम द्वारा इस अवधि को बढ़ाकर सन् १७६६ तक कर दिया गया।

औरङ्गजेब की मृत्यु के उपरान्त भारत में अशान्ति तथा अव्यवस्था का काल आरम्भ हो गया। इससे कम्पनी को लाभ हुआ और उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास करना आरम्भ किया। कभी-कभी उसको प्रान्तीय सूबेदारों अथवा स्थानीय पदाधिकारियों द्वारा कुछ असुविधाओं का सामना अवश्य करना पड़ा। इस समय कम्पनी की स्थिति पर्याप्त उन्नत थी। इसी समय १७१५ ई० में नया फरमान प्राप्त करने के लिए जोन सुरमन (John Surman) तथा एडवर्ड स्टिफिनसन (Edward Stephanson) कलकत्ते से दिल्ली भेजे गये। उसके साथ डाक्टर हैमिल्टन (Dr. Hamilton) भी दिल्ली गये। डाक्टर हैमिल्टन ने सम्राट फर्रुखसियर का इलाज किया जिससे वह अच्छा हो गया। उसके इस कार्य से सम्राट उससे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इलाज के उपलक्ष में कम्पनी को कलकत्ता और मद्रास के समीप कुछ गांव भेंट-स्वरूप प्रदान किए और उनको अन्य कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त हुईं जिससे कम्पनी की स्थिति बहुत उन्नत हो गई।*

अंग्रेजों के पश्चिमी समुद्र-तट के व्यापार को मरहठों तथा पुर्तगालियों के संघर्ष के कारण अवश्य हानि हुई किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों से समुद्री डाकुओं से बम्बई की रक्षा करने के लिए सन् १७१५ और १७२२ के बीच में उसके चारों ओर एक दीवार बनाई और बहुत से लड़ाकू जहाजों का निर्माण किया। अंग्रेजों ने मरहठों से सन् १७३६ ई० में एक सन्धि की जिसके द्वारा उनको मरहठा राज्य में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ। पेशवा की सहायता से उन्होंने आंगरे (Angre) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। सन् १७५० ई० में कामेडोर जेम्स (Commodore James) ने स्वर्ण दुर्ग पर अधिकार किया और सन् १७५७ ई० में वाटसन और क्लाइव ने घेरिया पर अधिकार

* "This embassy marks a turning point in the history of the English East India Company in India. It secured for it important privileges for which the historian Orme afterwards rightly described it as the "Magna Charta of the company." The concession for settling in certain villages near Madras and Calcutta made the company an "integral part of empire of the Mughals." and the right of coining and issuing money from the Bombay mint was an "extraordinary privilege." The firman exempting the company's trade from dues immensely contributed towards the growth of its commerce and influence in India. Moreover, the English came to have some knowledge through their invoys about the rotten state of the Mughal Empire in India. Though hamered occasionally here and there by the evils accompanying the break up of the Mughal Empire the privileged trade of the company entered upon a period of progress and prosperity. No doubt some disturbing influences appeared but these were sufficiently overcome and more than balanced by the favourable circumstances." —Dr. Sarkar and Dutta : Modern History, Vol. II, page 24.

किया। पूर्वी व्यापार की अवस्था भी उन्नत हो गई। अंग्रेजों ने मद्रास के समीप के कुछ गाँव प्राप्त किये। बंगाल में शान्ति तथा सुव्यवस्था थी जिसके कारण उनका व्यापार इस प्रदेश में बहुत उन्नतिशील हो गया। इस प्रकार अंग्रेजों की शक्ति तथा व्यापार सुदृढ़ अवस्था को प्राप्त हुआ और उनके अधिकार में भारत-भूमि के कुछ प्रदेश भी आ गये। कम्पनी के अधिकार में बम्बई, मद्रास और कलकत्ता आ गया था। कलकत्ते की उन्नति वहाँ के व्यापार की प्रगति के कारण होनी आरम्भ हो गई। दक्षिण की राजनीति में विशेष उथल-पुथल मची हुई थी जिससे वहाँ कम्पनी को विशेष लाभ नहीं हो पाया था, किन्तु इस बीच कम्पनी ने कर्नाटक तथा हैदराबाद राज्यों से कुछ सुविधायें अवश्य प्राप्त कर ली थीं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर-प्रदेश—

(१) सर टॉमस रो पर एक टिप्पणी लिखो। (१६५६)

राजस्थान—

(१) भारत में पुर्तगालियों के उद्देश्यों का वर्णन करो। वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल हुये। (१६५१)

अन्य—

(१) डच कम्पनी का प्रारम्भिक इतिहास संक्षिप्त में लिखो।

(२) अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक काल का वर्णन करो।

२. अंग्रेजों और फ्रांसीसियों का संघर्ष

Conflict between the English and the French

भारत में जिन योरपीय जातियों ने व्यापार किया उनमें से दो—पुर्तगाली और डचों—की शक्ति प्रारम्भ में ही बहुत कम हो गई थी जिसका उल्लेख गत अध्याय में किया जा चुका है, किन्तु शेष दो—अंग्रेज और फ्रांसीसी—भारत के साथ व्यापार करते रहे और उन दोनों की शक्ति पर्याप्त दृढ़ थी। योरप में भी इन दोनों जातियों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता थी जिसके कारण भारत में भी यह प्रतिद्वन्द्विता बनी रही। अठारहवीं शताब्दी के द्वितीय अर्द्धांश में इन दोनों जातियों में बड़ा संघर्ष हुआ जिसका भारतीय इतिहास पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इन युद्धों तथा संघर्षों द्वारा सिद्ध हो गया कि अंग्रेज जाति अधिक शक्तिशाली तथा दृढ़ थी और वह कालान्तर में भारत भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुई। इससे पूर्व कि इन दोनों जातियों के कार्यों

तथा युद्धों का वर्णन किया जाये, तत्कालीन भारतीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना अधिक उचित होगा।

भारत की दशा
(Condition of India)

औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही मुगलों का दक्षिण पर से अधिकार प्राय: समाप्त सा ही हो गया था। मरहठे पेशवाओं के नेतृत्व में अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहे थे। आसफजहा निजाम-उलमुल्क ने अपने आपको मुगल-सम्राट से स्वतन्त्र कर स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया था। उसको सदा मरहठों से भय बना रहता था। तामिलनाड (कर्नाटक) पर १७४० ई० तक मुगलों का अधिकार था। उस पर नवाब शासन कर रहा था जो केवल नाम-मात्र को दक्षिण के सूबेदार आसफजहा के आधीन था, किन्तु वास्तव में वह अपने स्वामी के समान ही स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगा था।

तामिलनाड (कर्नाटक) का संक्षिप्त इतिहास
(A short history of Tamilnad or Carnatak)

तामिलनाड (कर्नाटक) का संक्षिप्त इतिहास का परिचय पाठकों को लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि इसी प्रदेश पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में आगे होने वाला संघर्ष हुआ। तामिलनाड के तटीय प्रदेश पर योरुप की तीन जातियों ने अपनी कोठियों की स्थापना की थी। इनके अतिरिक्त प्रदेश पर मुसलमान और हिन्दू राजाओं का अधिकार था। सन् १७१० ई० में मुगल-सम्राट बहादुरशाह ने सग्रादत खाँ को वहाँ का नवाब घोषित किया, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरांत उसका भतीजा दोस्तअली कर्नाटक का नवाब फ्रांसीसियों की सहायता द्वारा हुआ, जिसको मुगल-सम्राट ने स्वीकार कर लिया। कर्नाटक के नवाब ने त्रिचनापली पर सन् १७३७ ई० अधिकार कर लिया था, किन्तु वह तंजौर को अपने अधिकार में नहीं कर सका। कर्नाटक के धन-धान्य से प्रभावित तथा लालायित होकर मरहठे भी इस प्रदेश को अपने अधिकार में करना चाहते थे। उन्होंने सैयद भाइयों (Saiyyad Brothers) द्वारा कर्नाटक से चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त किया। इसको वसूल करने के लिए उन्होंने सन् १७४० ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया। कर्नाटक के नवाब दोस्तअली की मृत्यु युद्ध-क्षेत्र में हुई। मरहठों से दोस्तअली के पुत्र सफदरअली ने सन्धि की और उनको एक करोड़ रुपया देने का वचन दिया। अगले वर्ष मरहठों ने त्रिचनापली पर आक्रमण कर चांदा साहब को बन्दी कर लिया। कर्नाटक के नवाब सफदरअली का वध कर उसका चचेरा भाई मुर्तजाअली सन् १७४२ ई० में कर्नाटक का नवाब बना, किन्तु उसको कर्नाट की जनता का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और वह वहां से भाग गया। उसके उपरांत सफदरअली के अल्पवयस्क पुत्र को कर्नाटक का नवाब घोषित किया गया। दक्षिण के सूबेदार ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और उसने अनवरुद्दीन नामक व्यक्ति को उसका संरक्षक घोषित किया। कुछ समय उपरांत उसके हृदय में कर्नाटक का नवाब बनने की भावना बलवती हुई। उसने अल्पवयस्क नवाब का वध कर शासन पर अपना अधिकार स्थापित किया, किन्तु वह अपनी

सत्ता को सुदृढ़ करने में सफल नहीं हो सका। सन् १७४४ ई० तक दोनों कम्पनी अपने

व्यापार में संलग्न थीं और उन्होंने वहाँ की राजनीति में किसी प्रकार का सक्रिय भाग नहीं लिया जिस समय तक उसने उनके व्यापार को प्रभावित नहीं किया।

कर्नाटक का प्रथम युद्ध—१७४४–१७४८
(First Carnatak War—1744–1748)

जब दक्षिण तथा कर्नाटक भीषण परिस्थितियों में से गुजर रहा था तब योरुप की दो जातियों—अंग्रेज और फ्रांसीसियों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। योरुप में आस्ट्रिया साम्राज्य के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर इङ्गलैण्ड और फ्रांस में युद्ध प्रारम्भ हुआ। डूप्ले जो इस समय पांडेचेरी का गवर्नर था फ्रांस की सामुद्रिक शक्ति की निर्बलता समझता था। उसने अंग्रेजों के साथ सन्धि करने की बातचीत चलाई किन्तु अंग्रेजों ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। यद्यपि भारत में काम करने वाले अंग्रेज युद्ध करना नहीं चाहते थे। इसी समय अंग्रेजों ने पांडिचेरी पर आक्रमण किया, किन्तु उनको पराजित होकर लौटना पड़ा। पांडिचेरी के गवर्नर डूप्ले ने मॉरीशस द्वीप से ला बूंदोने (La Boundonnais) को आमन्त्रित किया। उसको फ्रांसीसी सरकार से यह आदेश प्राप्त हो चुका था कि वह भारतवर्ष के अंग्रेजी व्यापारियों तथा उपनिवेशों पर आक्रमण करे। ला बूंदोने तुरन्त पांडिचेरी पहुँचा और उसने १७४६ ई० में अंग्रेज सेनापति पेटन (Peyton) को परास्त किया। पेटन पराजित होकर हुगली की ओर चला गया। इसके बाद ला बूंदोने ने मद्रास पर आक्रमण किया। अंग्रेज उसके आक्रमण का सामना

नहीं कर सके। मद्रास पर फ्रांसीसियों का अधिकार स्थापित हो गया। मद्रास के प्रश्न को लेकर डूप्ले और ला बूंदोने के बीच पारस्परिक मत-भेद हो गया। बूंदोने की इच्छा थी कि वह अंग्रेजों से ४ लाख पौंड वसूल कर मद्रास उनको वापिस कर दे, किन्तु डूप्ले मद्रास पर अधिकार रखना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि मद्रास के उपरान्त वह फोर्ट सेंट डेविड (Fort St. David) को अपने अधिकार में कर समस्त पूर्वी तट पर फांसीसी पताका फहरा देगा और उसके उपरान्त वह बंगाल से अंग्रेजों को निकालने में सफल होगा जिससे चन्द्रनगर एक सुरक्षित फ्रांसीसी बस्ती बन जायेगी।* ला बूंदोने पर डूप्ले की प्रार्थना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने ४ लाख पौंड अंग्रेजों से लेकर उनको मद्रास वापिस कर दिया। इसका डूप्ले को बड़ा दुःख हुआ, किन्तु वह बेचारा कर ही क्या सकता था। कुछ समय उपरान्त ला बूंदोने फ्रांस वापिस चला गया। उसके वापिस चले जाने के उपरान्त डूप्ले ने सन्धि की शर्तों का परित्याग कर मद्रास पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण किया। अंग्रेज अफसर लारेंस (Lawrence) की रण-कुशलता के कारण डूप्ले को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने इसके उत्तर में पांडेचेरी पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उनको पराजित होकर वापिस आना पड़ा। अंग्रेजों को बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ी। यह डूप्ले की बड़ी भारी सफलता थी और अंग्रेजों की भारी पराजय थी। दोनों ओर युद्ध की भीषण तैयारियाँ हो रही थीं कि इसी समय समाचार मिला कि योरुप में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में एलाशापल (Aix la Chapple) की सन्धि १७४८ ई० में हो गई और युद्ध की समाप्ति हो गई। भारत में भी युद्ध का अन्त कर दिया गया। इसके अनुसार मद्रास अंग्रेजों को वापिस मिल गया और अमरीका में फ्रांसीसियों को लुईसबर्ग वापिस मिल गया। इस सन्धि ने डूप्ले के कार्यों पर पानी फेर दिया।

युद्ध के परिणाम
(Results of The War)

इस प्रथम कर्नाटक युद्ध के बड़े भीषण परिणाम हुये जो इस प्रकार हैं—

(i) यद्यपि देखने में दोनों कम्पनियों की स्थिति पूर्ववत् हो गई परन्तु आने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध किया कि वास्तविक स्थिति में पर्याप्त अन्तर उत्पन्न हो गया है।

(ii) दोनों कम्पनियों ने व्यापार की उपेक्षा करके अपनी सुरक्षा के लिए सैनिक दल संगठित करने की ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ कर दिया।

(iii) इन्होंने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

---

* Dupleix adopted that policy even then connected by genius, the policy of Alexander, of Hannibal, of Gustavus, to carry the war into the enemy's country, and to use the means, which had been so wonderfully, so expectedly, placed at his disposal, to crush him atonce and forever. Madras in his hands, Fort St. David could scarcely hold out and then secure of the Coromandal coast, it might be possible to despatch a fleet to Bengal to destory the colony which had rivalled and was threatening to supress his own tenderly nursed settlement of Chandranagar."

—Malleson : History of the French in India, p. 106.

(iv) फ्रांसीसियों को इस युद्ध से यह लाभ हुआ कि उनके बल तथा शक्ति प्रभुत्व देशी राज्यों पर जम गया। देशी नरेशों ने अपनी प्रान्तरिक तथा घरेलू समस्या के समाधान करने में इनकी सहायता प्राप्त करनी प्रारम्भ कर दी और उनको भी जोड़-तोड़ दिखाने तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने का उचित अवसर प्राप्त हो गया। इस युद्ध के सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर डोडवेल (Prof. Dodwell) का कथन है कि "प्रा आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध (War of Austrian Succession) से बाह्य रूप से कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, वे पूर्ववत् ही बनी रहीं किन्तु उसके कारण भारतीय इतिहास में एक नवयुग का सूत्रपात हुआ। इसके द्वारा बुद्धिमानी से सचालित समुद्री शक्ति के महान् प्रभाव का दिग्दर्शन हुआ तथा इस बात पर प्रकाश पड़ा कि यूरोपीय युद्ध-प्रणाली भारतीय युद्ध-प्रणाली की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। इसके द्वारा भारतीय राजनीति के पतन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ और यूरोपीय शक्तियों के मन में भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने की भावना बलवती हो गई। सारांश में, इसने डूप्ले के प्रयोगों के लिए तथा क्लाइव के कार्यों के लिये एक मंच तैयार कर दिया।*

द्वितीय कर्नाटक युद्ध १७४८–१७५४
(The Second Carnatak War 1748–1754)

प्रथम कर्नाटक युद्ध की समाप्ति पर दोनों जातियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना न हो पाई। भारत में स्थित फ्रांसीसी यह विचार कर दुखी हुए कि उनके हाथ से विजय का अवसर समाप्त हो गया और अंग्रेज यह सोचते रहे कि भाग्य ने उनकी पराजय से रक्षा की। इसके उपरान्त अंग्रेजों ने तंजौर में होने वाले उत्तराधिकार युद्ध में एक प्रार्थी का समर्थन किया और वे उसको तंजौर के राज्य पर बैठाने में सफल हुये। डूप्ले ने इस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया, किन्तु उसने भी अंग्रेजों के समान अपनी नीति निश्चित कर ली तथा उसने अवसर की खोज करना आरम्भ कर दिया जब वह राज्यों के पारस्परिक झगड़ों में भाग लेकर फ्रांसीसी कम्पनी की स्थिति को उन्नत कर सके।

हैदराबाद में उत्तराधिकारी युद्ध
(War of Succession in Hydrabad)

सन् १७४८ ई० में दक्षिण के सूबेदार आसफजहाँ निज़ामुलमुल्क की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों और पोतों में राज्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष होना आरम्भ हो गया। डूप्ले ने आसफजहाँ निज़ामुलमुल्क के पोते मुजफ्फ़र जंग के पक्ष का समर्थन किया। यद्यपि आसफजहाँ निज़ामुलमुल्क का पुत्र नासिरजंग राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

* "The War of Austrian Succession, though in appearance it achieved nothing and left the political borders of India unaltered yet marks an epoch in Indian History. It demonstrated the overwhelming influence of seapower when intelligently directed, it displayed the superiority of European methods of war over those followed by Indian armies, it revealed the political decay that had eaten into the heart of the Indian state system and its conclusion illustrated the resultant tendency of European traders to intrude into a world that had previously altogether ignored them in, short, it set the stage for the experiments of Dupleix and accomplishments of Clive."
—Cambridge History of India, Vol. V, p. 125.

कर्नाटक में उत्तराधिकारी युद्ध
(War of Succession in Carnatak)

कर्नाटक पर इस समय अनवरुद्दीन का अधिकार था। चांदा साहेब जो दोस्त अली का दामाद था कर्नाटक पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। फ्रांसीसियों ने उसको कर्नाटक का नवाब बनाने का निश्चय किया।

डूप्ले ने मुजफ्फरजंग तथा चांदा साहेब दोनों से एक गुप्त सन्धि की। इसके अनुसार डूप्ले की यह योजना थी कि कर्नाटक का नवाब और दक्षिण का सूबेदार दोनों ही उसके हाथ में हो जायेंगे और 'दोनों ही अपने राज्याधिकार को फ्रांस की देन समझकर' उनको विशेष सुविधायें प्रदान करेंगे। वास्तव में डूप्ले की महत्वाकांक्षा बहुत अधिक थी और यदि वह अपने कार्यों में सफल हो जाता तो वास्तव में फ्रांसीसियों की शक्ति बहुत बढ़ जाती और अंग्रेजों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचता। प्रारम्भ में उसको अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, किन्तु बाद में उसकी सफलता असफलता में परिणत हो गई।

युद्ध की प्रगति—जैसा हमने उक्त पंक्तियों में बतलाया है कि फ्रांसीसियों, मुजफ्फरजंग और चांदा साहेब तीनों में एक गुप्त सन्धि हुई और इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि तीनों संयुक्त प्रयत्न कर चांदा साहेब को कर्नाटक के नवाब के पद पर आसीन करेंगे। इस निश्चय के अनुसार फ्रांसीसियों की सहायता से मुजफ्फरजंग और चांदा साहेब की सम्मिलित सेनाओं ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और वहां के नवाब अनवरुद्दीन को अम्बर नामक स्थान पर परास्त किया और शीघ्र ही उसका वध कर दिया। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अनवरुद्दीन का पुत्र त्रिचनापली भाग गया और उसने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। अंग्रेजों ने उसको सहायता प्रदान करना स्वीकार किया। अम्बर के युद्ध में विजयी होने पर कर्नाटक पर चांदा साहेब का अधिकार हो गया। चांदा साहेब ने फ्रांसीसियों को पांडेचेरी के समीप के ८० गांव भेंट-स्वरूप प्रदान किये। इस महान् विजय के उपरान्त डूप्ले की हार्दिक इच्छा त्रिचनापली पर आक्रमण करने तथा दक्षिण के नवाब नासिरजंग के विरुद्ध भी अभियान करने की हुई, किन्तु वह देशी नरेशों को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित नहीं कर सका। चांदा साहेब ने तंजोर पर आक्रमण किया। यह आक्रमण पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि नासिरजंग ने कर्नाटक पर एक विशाल सेना के साथ आक्रमण किया। अंग्रेजों ने भी नासिरजंग की सहायता की और उसकी सेना में मेजर लारेंस (Major Lawrance) के नेतृत्व में ६०० मनुष्यों का एक अंग्रेज दल सम्मिलित हो गया। मुजफ्फरजंग आत्मसमर्पण के लिए बाध्य हो गया और चांदा साहेब को त्रिचनापली का घेरा उठाना पड़ा। इस भीषण परिस्थिति के उत्पन्न होने पर डूप्ले का सितारा गिरने लगा और अंग्रेजों का सितारा चमकने लगा। इस समय डूप्ले ने अदम्य उत्साह, धैर्य तथा शान्ति से काम लिया। उसके प्रयत्नों के कारण परिस्थिति में शीघ्र ही परिवर्तन हो गया। इसी समय फ्रांसीसियों ने मसलीपट्टम, तिवादी और जिंजी पर अधिकार किया। सन् १७५० ई० के दिसम्बर मास में नासिरजंग का वध कर दिया गया। शीघ्र ही फ्रांसीसियों ने मुजफ्फरजंग को मुक्त कर उसको पांडिचेरी में दक्षिण का सूबेदार घोषित

किया। प्रोफेसर राबर्ट्स (Prof. Roberts) के शब्दों में 'फ्रांसीसियों को दिवि और मछलीपट्टम के नगर और बहुत-सा धन दिया। ५०,००० पौंड कम्पनी को दिए गए। इतना ही धन सेनाओं को मिला और कहा जाता है कि डूप्ले को २००,००० पौंड नकद और १०,००० पौंड की वार्षिक आय की एक जागीर 'वलदावुर गांव' प्राप्त हुई। नये सूबेदार ने डूप्ले का अभिनन्दन 'कृष्णा नदी से कन्या कुमारी तक फैले हुए दक्षिण भारत के अधिपति' के रूप में किया। इस अस्पष्ट और शानदार पदवी (जैसी कि प्राय: कहा जाता है) का यह अर्थ न था। यद्यपि मैकाले और कई लेखकों ने यह अर्थ लगाया है कि इस समय से "डूप्ले लगभग सम्पूर्ण सत्ता का स्वामी होकर तीन करोड़ मनुष्यों पर हकूमत करने लगा"। इस पदवी से डूप्ले को उस प्रदेश पर शासन करने का कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं दिया गया था जिसमें तंजौर, मदूरा और मैसूर के प्रदेश सम्मिलित थे। उन राजाओं ने तो कभी 'दक्षिण' के सूबेदार को भी अपना अधिपति न माना था। अतः दक्षिण के सूबेदार को यह अधिकार न था कि वह किसी व्यक्ति को इन प्रदेशों का अधिपति बना दे।* इससे इतना तो अवश्य हुआ कि देसी नरेशों की दृष्टि में डूप्ले का मान और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उसने भारतीय नरेशों के समान शानदार जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया और उसको ऐसा करने का अधिकार भी मिल गया।

नये सूबेदार मुजफ्फरजंग को फ्रांसीसी सेनापति बुसी (Bussy) लेकर औरंगाबाद के लिए चल दिया, किन्तु वहां कुछ असन्तुष्ट पठान सरदारों ने उसका वध कर दिया। इस समय बुसी ने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया। उसने मुजफ्फरजंग के अल्प-वयस्क पुत्रों को गद्दी पर आसीन करने के स्थान पर मृतक आसफजाह निजामुलमुल्क के तृतीय पुत्र सलावत जंग को राज्य-सिंहासन पर आसीन किया और उसकी स्थिति सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से वह सात वर्ष तक हैदराबाद में रहा। 'इस अवधि में उसने सलावतजंग की नीतियों का निर्देशन किया, उसे राज्य के असंख्य भीतरी शत्रुओं से बचाया और उस राज्य पर हमला करने वाली बाहरी शक्तियों को भी हराया।'

डूप्ले

* "Then he made over to the French the towns of Divi and Masulipattam and added large pecuniary grants. A sum of £ 50,000 was given to the company and a like amount to the troops while Dupleix it is said, received 200,000 £, and a Jagir consisting of the village Valdavur with 10,000 £, a year. The new Subedar hailed Dupleix as suzerain of Southern India from the Kistna to Cape Camorin. The vague and magnificent title, as it has been described, by no means meant, as Macaulay and many other writers have supposed that Dupleix hence forward ruled thirty millions of people with almost absolute power. It gave him no direct right of administration over the region indicated which embraced the territories of Tanjor, Madura and Mysore Those kingdoms had never even acknowledged the suzerainty of the Subedar of the Deccan and that ruler had no power to delegate the sovereignty over them." —Roberts P. E: History of British India, p. 108.

इस प्रकार डूप्ले १७५१ ई० में अपने सौभाग्य के उच्चतम शिखर पर था क्योंकि दक्षिण का सूबेदार सलावतजंग और कर्नाटक का नवाब चांदा साहेब उसके पूर्ण नियन्त्रण में थे तथा उसके आश्रित थे, किन्तु इस समय से उसके भाग्य ने पलटा खाया। अंग्रेजों को अपनी इस दयनीय स्थिति के कारण क्षोभ उत्पन्न होने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये वे फ्रांसीसियों का अधिकार सहन नहीं कर सकते थे; क्योंकि इनके द्वारा उनका समस्त व्यापार समाप्त हो जाता। उन्होंने मुहम्मदअली के पक्ष का समर्थन करने का निश्चय किया।

अर्काट का घेरा (Siege of Arcot)—चांदा साहेब जब अंग्रेजों के विचारों से अवगत हुये तो उसने शीघ्र ही त्रिचनापली का घेरा डाला। त्रिचनापली पर चांदा साहेब का अधिकार होना अवश्यम्भावी था कि इसी समय क्लाइव की असाधारण प्रतिभा और योग्यता के कारण उसकी रक्षा का उपाय निकल आया। वह कम्पनी का एक सैनिक था, जो क्लर्क के रूप में भारत आया था। उसने मद्रास के गवर्नर के सामने अपनी योजना रखी। उसकी यह योजना थी कि शीघ्र ही चांदा साहेब की राजधानी अर्काट पर आक्रमण किया जाय, चांदा साहेब अवश्य अर्काट की रक्षा करने के लिये त्रिचनापली से अर्काट आवेगा और फिर मुहम्मद अली की सहायता करना तथा उसको मुक्त करना सरल कार्य हो जायगा। मद्रास के गवर्नर ने उसकी योजना स्वीकार कर उसको अर्काट पर आक्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। शीघ्र ही कुछ अंग्रेज तथा भारतीय सैनिक लेकर क्लाइव अपने सैनिकों को सैनिक प्रशिक्षण देता हुआ अर्काट की ओर अग्रसर हुआ और उसने शीघ्र ही अरक्षित अर्काट को अपने अधिकार में किया। जब यह समाचार, चांदा साहेब को त्रिचनापली में विदित हुआ तो उसने अपने पुत्र रजा साहेब के नेतृत्व में अर्काट की रक्षार्थ अपनी आधी सेना भेजी। क्लाइव ने इस सेना का बड़े साहस, धैर्य तथा वीरता से सामना किया और ५३ दिन तक यह युद्ध चलता रहा। अन्त में क्लाइव ने आक्रमणकारियों को मार भगाया। फ्रांसीसी जनरल लॉ बड़ा दुखी हुआ और उसने भागकर श्रीरंगम नामक टापू में शरण ली। क्लाइव के कहने पर अंग्रेजों ने इस टापू पर आक्रमण किया। लॉ और फ्रांसीसी सैनिक बन्दी बना लिए गए। अर्काट का यह घेरा भारतीय इतिहास में तथा ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है और इसके द्वारा क्लाइव एवं अंग्रेजों की ख्याति बहुत बढ़ गई तथा फ्रांसीसियों का मान बहुत कम हो गया।

क्लाइव

मोहम्मदअली की मुक्ति (Release of Muhammad Ali)—इसके उपरान्त अंग्रेजों ने शीघ्र ही त्रिचनापली से मुहम्मदअली को मुक्त करने का प्रयत्न किया। शीघ्र ही त्रिचनापली पर आक्रमण किया गया। फ्रांसीसी सेना ने आत्म-समर्पण किया और डूप्ले

समय के उपरान्त चांदा साहब ने तंजौर के राजा के सेनापति के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। चांदा साहब को बन्दी कर उसका शीघ्र ही वध कर दिया गया। उसकी हत्या में अंग्रेजों का भी हाथ था। उसकी मृत्यु होने पर मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब घोषित किया गया।

फ्रांसीसियों की पराजय (Defeat of the French)—डूप्ले ने इस संकटमय स्थिति का डटकर सामना करने का निश्चय किया। उसने अंग्रेजों के मित्र-नरेशों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे और मरहठों की सहायता भी प्राप्त करने का निश्चय किया, किन्तु उसकी समस्त योजनाओं को अंग्रेज सेनापति लारेंस ने निष्फल कर दिया। सन् १७५२ ई० तक अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। फ्रांसीसियों के पास केवल जिंजी और पांडिचेरी ही शेष रह गये। १७५३ के अन्त में परिस्थितियों से विवश होकर डूप्ले ने अंग्रेजों से सन्धि की वार्ता चलाई, किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ।

डूप्ले की वापसी (Return of Duplelx)—फ्रांस में उक्त असफलताओं के कारण डूप्ले के मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। १७५४ ई० में फ्रांस ने गोडहू (Godheau) को भेजा गया कि वह डूप्ले का स्थान प्राप्त करे और घटनाओं की पूरी जांच करे। अगस्त १७५४ ई० में वह पांडिचेरी आया और उसने अंग्रेजों से सन्धि की वार्ता करनी आरम्भ की। अन्त में १७५५ ई० में दोनों में पांडिचेरी की सन्धि हुई।

डूप्ले ने इस सन्धि का विरोध किया। उसका कथन था कि "गोडहू ने एक ऐसे सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं जिसमें उसके देश का सर्वनाश और उसके राष्ट्र का अपमान निहित है (He had signed the ruin of the country and the dishonour of the nation)।" इसके उपरान्त डूप्ले फ्रांस चला गया और ९ वर्ष जीवित रहकर वहीं उसका देहान्त हो गया।

इस सन्धि द्वारा फ्रांस को बड़ी हानि उठानी पड़ी क्योंकि अब इनका कर्नाटक पर प्रभाव समाप्त सा हो गया और फ्रांसीसियों की भारत में राज्य स्थापित करने की भावना का सदा के लिये लोप हो गया। यह सन्धि अधिक काल तक स्थायी न रह सकी क्योंकि यूरोप में सप्त वर्षीय युद्ध (Seven years' war) १७५६ ई० में आरम्भ हो गया और इससे भारत में भी दोनों कम्पनियों के मध्य युद्ध हुआ।

हैदराबाद में बुसी (Bussy in Hydrabad)—उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि बुसी ने मुज़फ्फरजंग की मृत्यु के उपरान्त निज़ामुल्मुल्क आसफजहाँ के तृतीय पुत्र को दक्षिण का सूबेदार बना उसका राज्याभिषेक करवाया। उसने फ्रांसीसियों को बहुत अधिक धन भेंट-स्वरूप प्रदान किया। हैदराबाद में फ्रांसीसी शक्ति को बढ़ते हुए देख मरहठों को चिन्ता होने लगी क्योंकि उनको भय था कि इससे निज़ाम की शक्ति बढ़ जायगी और वह उनका प्रतिद्वन्द्वी बन सकता था। पेशवा बालाजी बाजीराव ने सलावत जंग के स्थान पर निज़ामुल्मुल्क आसफजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र गाज़ीउद्दीन को जो इस समय दिल्ली में था और जिसने उत्तराधिकार के युद्ध में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया था, राज्य-सिंहासन पर आसीन करने का निश्चय किया। मरहठों ने शीघ्र

ही निजाम के राज्य पर आक्रमण किया। उन्होने अंग्रेजों से इस कार्य में सहायता करने की प्रार्थना की किन्तु अंग्रेजों ने उनकी कोई सहायता नहीं की। मरहठों के आक्रमण से बुसी तथा सलावतजंग दोनों बड़े भयभीत हुए। बुसी सलावतजंग के साथ मछलीपट्टम की ओर भागने की योजना का निर्माण कर रहा था कि इसी समय उन्हें गाजीउद्दीन की मृत्यु का समाचार मिला। उसकी मृत्यु के कारण मरहठों का पक्ष दुर्बल हो गया। बुसी ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर मरहठों से सन्धि की जिसके अनुसार सलावतजंग निजाम के पद पर आसीन रहा। उसने फ्रांसीसियों को मछलीपट्टम के समीप कोंडविड का एक जिला भेंट किया।

फ्रांसीसियों के सामने नया संकट (New Problem before the French)—फ्रांसीसी अपनी स्थिति पूर्णतया सुदृढ़ भी करने नहीं पाए थे कि उनको एक नई आपत्ति ने आ घेरा। निजाम के दरबार में लश्कर खां के नेतृत्व में एक नये दल का निर्माण हुआ जो फ्रांसीसियों की बढ़ती हुई शक्ति का विरोध था। इसके विरोध का कारण यह था कि फ्रांसीसी अपनी शक्ति का विस्तार करने के उद्देश्य से बहुत अधिक धन व्यय कर रहे थे तथा फ्रांसीसी सेना पर प्रचुर मात्रा में धन व्यय किया जा रहा था। धीरे-धीरे लश्कर खां के समर्थकों की संख्या में बड़ा विस्तार हो गया। इसी समय बुसी बीमार था और वह मछलीपट्टम चला आया था। बुसी की अनुपस्थिति के कारण लश्कर खां का उत्साह बहुत बढ़ गया था। उसने अंग्रेजों से भी अपने कार्य में सहायता देने के लिये वचन प्राप्त कर लिया था जब यह समाचार डूप्ले को प्राप्त हुआ तो उसने सेनापति बुसी को हैदराबाद जाने की अनुमति दी और उससे यह कहा कि वहाँ जाकर वह समस्त कार्य अपने हाथ में ले ले। उसने डूप्ले के आदेशानुसार कार्य किया। निजाम बुसी का विरोध करने की शक्ति नहीं रखता था। इससे फ्रांसीसियों का प्रभुत्व हैदराबाद में पुन. स्थापित हो गया। बुसी ने फ्रांसीसी सेना के व्यय के लिये निजाम से कुछ प्रदेश ले लिये और उसने निजाम को बाध्य किया कि वह अपनी रक्षा के लिये अपने समीप एक फ्रांसीसी दल रक्खे और वह भविष्य में कर्नाटक से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न न करे।

फ्रांसीसियों का दक्षिण में प्रभुत्व (French influence in the South)—इस प्रकार फ्रांसीसी दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए, किन्तु पांडिचेरी की सन्धि ने फ्रांसीसियों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचाया। इसका वर्णन पिछले पृष्ठों मे किया जा चुका है। सन् १७७२ ई० में फ्रांसीसियों की शक्ति दृढ़ करने का एक स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। निजाम ने मैसूर-राज्य से मुगल-सम्राट का प्रतिनिधि होने के कारण कर मांगा। इस समय मरहठों ने मैसूर राज्य पर आक्रमण कर दिया था जिसके कारण मैसूर की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। वह फ्रांसीसियों का मित्र था। इस समय सेनापति बुसी ने बड़ी योग्यता तथा बुद्धिमानी का कार्य किया। उसने निजाम और मरहठों में सन्धि कराई और मैसूर राज्य को बाध्य कर निजाम को उचित कर दिलवाया। इसी समय दरबार के कुछ व्यक्तियों के प्रभाव में आकर निजाम सलावतजंग ने बुसी को पदच्युत कर दिया। यह घटना १७५६ ई० की है। बुसी शीघ्र हैदराबाद

पहुँच कर युद्ध की तैयारी करने में व्यस्त हो गया। सलाबतजंग उसकी तैयारियों का समाचार सुनकर बड़ा भयभीत हुआ। उसने अपनी आत्म-रक्षा के लिये अंग्रेजों से सहायता की याचना की, किन्तु अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण उन्होंने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। निजाम ने बाध्य होकर बुसी को पुनः उसके पद पर नियुक्त किया इससे पुनः फ्रांसीसियों की धाक हैदराबाद में जम गई।

डूप्ले का चरित्र और उसकी पराजय के कारण

(Character of Dupleix and the causes of his defeat)

डूप्ले की गणना उच्च-कोटि के कूटनीतिज्ञों तथा चतुर शासकों में की जाती है उसकी योग्यता तथा प्रतिभा का सामना करने की क्षमता कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता था। मैलेसन (Malleson) के शब्दों में "डूप्ले एक कुशल शासक और संगठन-कर्ता था। उसमें अदम्य उत्साह, साहस तथा देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह तत्कालीन परिस्थिति का बड़ा ज्ञाता था और उनसे सदा लाभ उठाने का उसने प्रयत्न किया।" वह बहुत दूरदर्शी था। वह भारत में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना करना चाहता था और इसी कारण उसने भारत की राजनीति में सक्रिय भाग लेकर फ्रांस की मान और प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ाया। वह अपनी योग्यता के आधार पर ही हैदराबाद में मुजफ्फरजंग और बाद में सलाबतजंग को तथा कर्नाटक में चांदा साहब को राज्य-सिंहासन पर आसीन करने में सफल हुआ। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह अंग्रेजों को भारत से निकाल दे और समस्त भारतीय व्यापार पर फ्रांसीसियों का आधिपत्य स्थापित हो। प्रारम्भ में उसको अपने उद्देश्यों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, किन्तु बाद में कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई और उनको विशेष आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वास्तव में वह राजनीति में इतना अधिक उलझ गया कि वह व्यापार की ओर उतना अधिक ध्यान नहीं दे सका जितना कि आवश्यक था। इसके अतिरिक्त उसने फ्रांस की सरकार को अपने पक्ष में लेने का प्रयत्न नहीं किया और न कभी उसको वास्तविक परिस्थिति से अवगत कराया जिसके कारण उनका उस पर से विश्वास उठ गया।

डूप्ले की नीति के दोष

(Defects in Dupleix's policy)

डूप्ले की नीति में कुछ प्रमुख दोष विद्यमान थे जो इस प्रकार थे—

(१) उसने देशी राजाओं व नवाबों की सहायता कर लम्बे-लम्बे उपहार ग्रहण किये जिनका परिणाम अन्य पदाधिकारियों पर भी पड़ा। वे पथ-भ्रष्ट हो गये और उन्होंने कम्पनी के प्रति अपने कर्त्तव्यों को तिलांजलि दे दी। वे भी स्वार्थी हो गये और उन्होंने भी भेंट लेना स्वीकार किया। उसको विभिन्न युद्धों में भाग लेना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप—

(२) कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। यदि इन युद्धों के कारण कम्पनी को लाभ हुआ होता और कम्पनी का राजकोष धन से परिपूर्ण होता तो कम्पनी के अधिकारी उसकी नीति का विरोध नहीं करते वरन् उसकी वे अत्यधिक

सहायता करने के लिये सदा तत्पर रहते। डूप्ले को यह आशा थी कि वह विजित प्रदेशों की आय से कम्पनी के धन की पूर्ति करने में सफल होगा, किन्तु उसकी यह धारणा ठीक न निकली।

> **डूप्ले की नीति के दोष**
> (१) उपहार ग्रहण करना।
> (२) कम्पनी की शोचनीय आर्थिक स्थिति।
> (३) धन का अधिक व्यय।
> (४) जहाजी बेड़े का शक्तिहीन होना।

(३) उसने पांच वर्षों में ६० लाख रुपया व्यय कर दिया और विजित प्रदेशों से उसको इतनी अधिक आय नहीं हो पाई।

(४) इसके अतिरिक्त डूप्ले ने कभी भी इस बात का विचार नहीं किया कि फ्रांसीसियों का जहाजी बेड़ा अंग्रेजों के जहाजी बेड़े के सामने शक्तिहीन है और इस दशा में फ्रांसीसियों का भारत में प्रभुत्व स्थापित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

डूप्ले का मूल्यांकन (Estimate of Dupleix)—कुछ इतिहासकारों ने उसको घमण्डी, अवसरवादी, चरित्रहीन तथा षड्यन्त्रकारी कहा है, किन्तु वास्तव में जितना कलुषित चरित्र इन्होंने उसका चित्रण किया है उसमें सत्य का अंश बहुत कम है। वास्तव में वह बड़ा दूरदर्शी, साहसी तथा देशभक्त था जिसने अपने देश के लिये भीषण परिस्थितियों का बड़े धैर्य तथा योग्यता के साथ सामना किया। वास्तव में गृह-सरकार उसके कार्यों का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाई और उसकी उदासीनता के कारण ही वह असफल रहा और उसकी नीति जिसका सुन्दर ढङ्ग से सचालन हुआ था और साथ ही जो फांसीसियों के हितों को पूर्ण तरह ध्यान में रखकर निर्मित की गई थी, सफलीभूत नहीं हो सकी। उसमें कुछ ऐसी भूल थी जिनके कारण वह सफल नहीं हो सका। सर्वप्रथम तो यह कि वह इस बात को नहीं समझ सका कि जिस कार्य को वह कर रहा है यदि उसी कार्य को अंग्रेजों ने करना प्रारम्भ कर दिया तो उससे अंग्रेजों के मान और प्रतिष्ठा की बड़ी वृद्धि होगी। यदि वह इस बात को समझ लेता तो वह मुहम्मद अली की शक्ति का पूर्णतया पतन करने में सफल हो जाता और अंग्रेजों को उसकी सहायता तथा चाँदा साहेब की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। यदि चांदा साहेब का त्रिचनापली पर शीघ्र अधिकार हो जाता तो परिस्थिति में एकदम परिवर्तन हो जाता। इसके अतिरिक्त डूप्ले के पास बुसी के अतिरिक्त कोई अन्य सेनापति होता तो उसको अवश्य सफलता प्राप्त होती। यदि युद्ध १ ५१ के प्रारम्भ में अथवा उसके अन्त होने तक समाप्त हो जाता तो वह भारत में फ्रांस के साम्राज्य का संस्थापक स्वीकार किया जाता; किन्तु वह अयोग्य सेनापतियों के कारण ऐसा करने में असमर्थ रहा जिसके कारण उसको दुर्दिनों का सामना करना पड़ा।

तृतीय कर्नाटक युद्ध—१७५६–६३
(The Third Carnatik War-1756-63)

पांडेचेरी की सन्धि पूर्णतया कार्यान्वित भी न होने पाई थी कि योरोप में सन् १७५६ ई० में सप्त वर्षीय युद्ध (Seven Years' War) इङ्गलैण्ड और फ्रांस के मध्य

आरम्भ हो गया और उसके परिणामस्वरूप भारत में भी युद्ध का श्रीगणेश हुआ। द्वितीय कर्नाटक युद्ध के कारण फ्रांसीसियों की शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा था जिसका वर्णन उक्त पृष्ठों में किया जा चुका है। इस समय मद्रास और पांडेचेरी के पास युद्ध के लिये पर्याप्त सेनायें नहीं थीं। बुसी हैदराबाद में परेशान था, किन्तु उसने अपनी योग्यता के कारण वहाँ अपनी आर्थिक स्थिति को उन्नत किया। इसके उपरान्त उसने आंध्र प्रदेश पर फ्रांसीसियों के अधिकार को निश्चित करने की ओर ध्यान दिया। उधर क्लाइव बंगाल की राजनीति में बुरी तरह उलझा हुआ था। उसने चन्द्रनगर पर अधिकार किया और शीघ्र ही बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में परास्त किया।

काउन्ट लैली का भारत आगमन (The Advent of Count Lally India)—फ्रांसीसी सरकार ने फ्रांस से लैली (Lally) नाम के एक वीर, योग्य व साह व्यक्ति को भारत भेजा कि वह वहाँ जाकर भारत से अंग्रेजों को सदा के लिए बा निकाले तथा वह साम्राज्य-विस्तार की ओर प्रयत्न करे। जिस कार्य के लिये वह भे गया था उस कार्य के लिये लैली (Lally) सर्वथा अयोग्य था, क्योंकि वह बड़ा हठी अ क्रोधी था जिसके कारण उसका व्यवहार कम्पनी के कर्मचारियों के साथ अच्छा न रहा उसने भारत-आगमन पर भ्रष्टाचार का अन्त करने का प्रयास किया जिससे बहुत कर्मचारी उसके विरोधी हो गये और उन्होंने उसकी सहायता पूर्ण रूप से नहीं की। व शीघ्र ही उनमें अप्रिय हो गया। यदि वह थोड़ी योग्यता और कुशलता से कार्य करत तो वह कम्पनी के कर्मचारियों का समर्थन प्राप्त कर अंग्रेजों के साथ दृढ़ नीति क पालन करने में सफल होता। इस प्रकार लैली जिसमें यद्यपि पर्याप्त गुण विद्यमान थे अप ही दोषों के कारण सफलता प्राप्त नहीं कर सका।

दक्षिण में युद्ध (War in The South)—उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि लैली के आगमन पर अंग्रेजों ने अपनी शक्ति को पर्याप्त दृढ़ कर लिया था। बंगाल में उन्होंने सिराजुद्दौला को परास्त कर मीर जाफर को नवाब बनाया और पुर्तगालियों की समस्त कोठियों और बस्तियों पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार होने के कारण वे उस देश के पर्याप्त साधनों का प्रयोग करने में सफल हुए। लैली ने पांडेचेरी आने पर सेंट डेविड (St. David) के दुर्ग पर आक्रमण किया और बिना किसी विशेष प्रतिरोध के २ जून १७५८ के दिन उस पर फ्रांसीसियों का अधिकार हो गया। इसके उपरान्त वह अंग्रेजों के द्वितीय प्रसिद्ध गढ़ मद्रास पर आक्रमण करना चाहता था, किन्तु धन के अभाव और फ्रांसीसी कर्मचारियों के असहयोग के कारण उसको अपनी योजना में परिवर्तन करना पड़ा। उसने धन की कमी की पूर्ति करने के उद्देश्य से तंजौर के राजा पर आक्रमण करने का निश्चय किया जिस पर फ्रांसीसियों का ५६ लाख रुपया था जिसके देने का वचन उसने बहुत पहले तथा फ्रांसीसियों से घेरा उठाने के समय दिया था। लैली (Lally) को अपने इस अभियान से सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने सेनापति बुसी को हैदराबाद से बुला लिया जिसका उसकी सत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि बुसी के चले जाने पर वहाँ फ्रांसीसी प्रभाव कम होने लगा और अंग्रेजों ने वहाँ अपना प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। तंजौर के

राजा को अंग्रेजों ने सहायता दी। फ्रांसीसियों को कारीवल के युद्ध में अंग्रेजों ने परास्त किया।

मद्रास पर आक्रमण (Capture of Madras)—सन् १७५८ ई० में फ्रांसीसियों ने मद्रास पर आक्रमण किया। क्लाइव ने मद्रास की रक्षा के लिये कलकत्ते से कर्नल फोर्ड (Colonel Forde) को भेजा। यद्यपि कौंसिल ने उसका विरोध किया था। वह विजयनगरम् के राजा आनन्दराज की सहायता के लिये भेजा गया था जिसने फ्रांसीसियों के विरुद्ध विद्रोह कर उनकी कोठी पर अधिकार किया। कर्नल फोर्ड ने फ्रांसीसी सेना को कोंडोर नामक स्थान पर परास्त किया और अगले वर्ष अप्रैल में उसने मछलीपट्टम पर अधिकार स्थापित किया। उसने शीघ्र ही निजाम सलाबतजंग से सन्धि की जिसके अनुसार निजाम ने फ्रांस की मित्रता का परित्याग किया और मछलीपट्टम के समीप के कुछ प्रदेश उसने अंग्रेजों को भेंट-स्वरूप प्रदान किए, जिससे फ्रांस की शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा और उनका हैदराबाद से प्रभाव उठ गया।

अंग्रेजों को सहायता मिलना (The English received help)—मद्रास का घेरा चलता रहा, किन्तु लारेंस (Lawrence) की योग्यता तथा कुशलता के कारण फ्रांसीसियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में उनको यह घेरा उठाना पड़ा। इसी समय बम्बई से अंग्रेजी जहाजी बेड़ा आ गया था, जिसके आगमन से फ्रांसीसी हतोत्साही हो गये।

फ्रांसीसियों की पराजय (Defeat of The French)—इस प्रकार लैली की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। एक ओर तो उसको सेनापति बुसी का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि दोनों की नीतियों में विशेष मत-भेद था, दूसरी ओर पाडेचेरी की कौंसिल ने उसको धन की सहायता प्रदान न की तथा गृह-सरकार से भी उसको पर्याप्त सहायता तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इसी बीच अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में कई स्थानों पर युद्ध हुआ और अन्त में सर आयर कूट (Sir Eyre Coote) के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना वाडेवश के युद्ध में बुरी तरह परास्त हुई। यह युद्ध सन् १७६० ई० में हुआ। फ्रांसीसी सेनापति बुसी बन्दी बना लिया गया और फ्रांसीसी सेना पराजित और अपमानित होने पर पाडेचेरी की ओर भागी। इस पराजय से फ्रांसीसियों का उत्साह बहुत शिथिल पड़ गया। इसी समय लैली के मन में हैदरअली (मैसूर का शासक) से सहायता प्राप्त करने की भावना उदय हुई। उसने उससे सहायता की प्रार्थना की। हैदरअली अपनी शक्ति का विस्तार करना चाहता था। उसने फ्रांसीसियों की सहायता करने का वचन दिया और उसने उनकी सहायता के लिये सेना भेजी, किन्तु जब उसको यह समाचार विदित हुआ की फ्रांसीसियों की शक्ति अंग्रेजों की शक्ति की अपेक्षा बहुत कम है तो उसने अपना इरादा बदल दिया और अपनी सेना को वापिस बुला लिया।

अंग्रेजों का त्रिचनापली पर आक्रमण (The English invades Trichanopoli)—इससे लैली का हृदय टूट गया और उसकी स्थिति पूर्णतया निराशाजनक हो गई। अंग्रेजों ने उसकी इस दयनीय दशा का लाभ उठाने के अभिप्राय से

त्रिचनापल्ली पर आक्रमण किया। फ्रांसीसियों ने प्रारम्भ में बड़ी दृढ़ता, साहस तथा वीरता से अंग्रेजों का सामना किया, किन्तु अन्त में धनाभाव, फौज, धन आदि के प्रभाव के कारण वे आत्म-समर्पण करने के लिये बाध्य हुये। फ्रांसीसियों का ही पतन हुआ और उनके समस्त प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गए। लैली बन्दी कर लिया गया और उसको बन्दी के रूप में फ्रांस भेज दिया गया जहाँ उस पर अभियोग चलाया गया और उसको १७६६ ई० में मृत्यु-दण्ड मिला। यह उसके साथ अन्याय था क्योंकि न वह कायर था और न देशद्रोही था।

पैरिस की सन्धि (The Treaty of Paris)—तृतीय कर्नाटक युद्ध का अन्त पैरिस की सन्धि होने पर हुआ। यह सन्धि १७६३ ई० में हुई। इस सन्धि के अनुसार (i) फ्रांसीसियों को पांडेचेरी मिल गया, किन्तु उसको उनकी किले-बन्दी करने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। (ii) भारत के पूर्वी तट पर सैनिकों की संख्या सीमित कर दी गई। (iii) बंगाल मे फ्रासीसियों को केवल व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ और वहाँ से उनकी राजनीतिक शक्ति का पूर्णतया अन्त हो गया। (iv) मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब स्वीकार किया गया। (v) सलावतजंग को निजाम स्वीकार किया गया, किन्तु वहाँ से फ्रांसीसी प्रभाव का एकदम अन्त कर दिया गया।

सन्धि का प्रभाव (Result of The Treaty)—इस प्रकार इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों ने भारत से फ्रांसीसी प्रभाव को समाप्त किया यद्यपि कुछ फ्रासीसियों ने विभिन्न समयों पर अंग्रेजों के विरुद्ध देशी नरेशों से मिलकर कार्य किया, किन्तु उनको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। उनकी महत्वाकांक्षाओं का अन्त सन् १८१८ ई० में हुआ जब लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत में अंग्रेजी प्रभुता पूर्णतया स्थापित कर दी।

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण
(Causes of the Defeat of the French)

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण
(१) आर्थिक।
(२) राजनैतिक।
(३) सैनिक।
(४) सामाजिक।
(५) धार्मिक।

फ्रांसीसियों ने भारत में फ्रासीसी राज्य की स्थापना के लिये घोर प्रयत्न किया। और वे अपने व्यापार को भी बढ़ाना चाहते थे, किन्तु वे अपने दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सके। सौभाग्य से उनको योग्य पदाधिकारी भी प्राप्त हुये, किन्तु फिर भी उनकी अंग्रेजों के सामने एक न चली और उनको असफलता का मुँह देखना पड़ा। उनकी पराजय के अनेक कारण थे जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) आर्थिक कारण (Economic Causes)—फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। वह एक प्रकार की दिवालिया कम्पनी थी। (i) उसका व्यापार उन्नत अवस्था में नहीं था और उसको भारतीय व्यापार से विशेष लाभ नहीं था। (ii) जब डूप्ले ने फ्रांसीसी व्यापार की ओर से ध्यान हटाकर भारत में राज्य-स्थापना के उद्देश्य से भारतीय नरेशों के संघर्षों में

पड़ना प्रारम्भ कर दिया, तब तो कम्पनी की आर्थिक दशा और भी अधिक शोचनीय हो गई। (iii) कम्पनी के संचालकों तथा भागीदारों में विशेष मत-भेद उत्पन्न हो गया और उसकी ओर से कम्पनी के कार्यों में सहयोग नहीं मिला। इसका प्रभाव यह हुआ कि न तो कम्पनी को आर्थिक लाभ ही हुआ और न कम्पनी राज्य-स्थापना के उद्देश्य में ही सफलता प्राप्त कर सकी। (iv) डूप्ले की नीति के कारण कम्पनी को बहुत अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी और डूप्ले ने बहुत अधिक धन व्यय कर दिया जिस भार को कम्पनी सहन करने में असमर्थ थी। इसी कारण कम्पनी ने उसकी नीति का समर्थन नहीं किया। डूप्ले में उत्साह पर्याप्त था और इसी कारण उसको प्रारम्भिक सफलतायें भी प्राप्त हुई। (v) आर्थिक दशा के शोचनीय होने के कारण हर समय रुपये की आवश्यकता बनी रहती थी जिससे युद्ध उचित रूप से सचालित नहीं हो पाया और न युद्ध सम्बन्धी सामग्री ही पर्याप्त मात्रा में एकत्रित तथा संग्रहित की जा सकी। (vi) इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी की आर्थिक अवस्था उन्नत थी। उनका व्यापार फ्रांसीसियों की अपेक्षा बड़ा विस्तृत था और उनके पास बहुत अधिक साधन थे। उत्तरी प्रदेशों और विशेषत: बंगाल में अंग्रेजी व्यापार अधिक उन्नत था। फ्रांसीसियों का अधिकार दक्षिण पर था जो व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं था।

(२) राजनीतिक कारण (Political Causes)—फ्रांसीसी कम्पनी की असफलता में राजनीतिक कारणों का भी स्थान प्रमुख था। (i) फ्रांस की गृह सरकार भारत स्थित फ्रांसीसी कम्पनी के प्रति विशेष दिलचस्पी नहीं लेती थी। वह वास्तव में इससे उदासीन हो थी क्योंकि व्यय बहुत अधिक हो रहा था और आय कम थी। प्रति वर्ष डूप्ले कार्य-संचालन के लिये गृह-सरकार से रुपया लिया करता था। (ii) फ्रांस का ध्यान उपनिवेशों की स्थापना के लिये आकर्षित नहीं हो पाया था। वह भारत में राज्य-स्थापना की अपेक्षा व्यापार पर विशेष महत्व देना चाहती थी, जबकि डूप्ले (Dupleix) का ध्यान राज्य-स्थापना की ओर विशेष रूप से था। इससे दोनों में सहयोग की भावना उदय नहीं हो पाई। (iii) इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी के संचालक व्यापार और राज्य-स्थापना के लिये पर्याप्त सहयोग तथा सहायता करने को सदा उद्यत रहते थे। इसके विपरीत फ्रांस में १५ वें लूई का शासन था और उसके मन्त्री आदि अपने समय को भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे और राज्य के प्रति अपने कर्तव्य से उदासीन रहते थे जबकि इङ्गलैंड का प्रसिद्ध ज्येष्ठ पिट (Pitt the Elder) एक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ तथा युद्ध मन्त्री था जिसने इंगलैंड को उन्नत करने के लिये भरसक प्रयत्न किया। इन मन्त्रियों के भेद तथा दोनों देशों की दशा के कारण ही यूरोप में फ्रांसीसी परास्त हुये और इङ्गलैंड को सफलता प्राप्त हुई। इसका प्रभाव भारत पर विशेष रूप से पड़ा। (iv) इंगलैंड ने फ्रांस को योरुप के युद्धों में इतना अधिक व्यस्त कर दिया कि वह भारत की ओर विशेष ध्यान [illegible]। समस्त युद्धों का निर्णय भारत में न होकर योरुप में हुआ। [illegible] विजय हुआ वही विजयी माना गया। योरुप में अंग्रेज [illegible] में भी उनकी विजय मानी गई। (v) [illegible] के अधीन थी।

उसकी नीति का निश्चय करना फ्रांस की सरकार के हाथ में था और उसका निर्णय फ्रांस की अपनी निजी नीति पर अवलम्बित था। इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी इंगलैंड की सरकार के नियन्त्रण से मुक्त थी। उसकी नीति का संचालन कम्पनी के संचालक अपने तथा कम्पनी के हितों का ध्यान रखकर किया करते थे और उन्होंने भारतीय पदाधिकारियों के कार्यों में सहयोग प्रदान किया और समय पर उनकी भरसक सहायता की। (vi) फ्रांस की सरकार ने भारतीय पदाधिकारियों के साथ सद्‌व्यवहार नहीं किया जिसके कारण कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी के कार्यों से उदासीन होकर पथ-भ्रष्ट हो गये और वे अपने कार्यों की ओर विशेष दिलचस्पी नहीं लेने लगे। डूप्ले तथा लैली के प्रति फ्रांस की सरकार का व्यवहार उचित नहीं था। ये दोनों देश-भक्त थे और अपने देश की उन्नति के लिये इन्होंने भरसक प्रयत्न किया और फ्रांस की सरकार ने उनको पारितोषिक दिया कि लैली को प्राण-दण्ड तथा डूप्ले का अनादर आदि। इसके विपरीत अंग्रेजों ने अपने महान् कार्यकर्त्ताओं का सम्मान किया और वे उनको विशेष आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इससे सरकारी कर्मचारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे जी जान से कम्पनी के कार्यों को करने के लिये सदा तत्पर रहते थे। (vii) इसके साथ-साथ फ्रांसीसी कर्मचारियों में पारस्परिक सहयोग की भावना का नितान्त अभाव था। डूप्ले और लाबूर्दोने दोनों में सहयोग न था और बुसी ने भी उस समय सहायता प्रदान नहीं की जिस समय उसकी विशेष आवश्यकता थी। इसके कारण फ्रांसीसी कम्पनी को विशेष हानि उठानी पड़ी। (viii) बाद में डूप्ले की नीति का परित्याग कर दिया गया और उसको भारत से वापिस बुला लिया गया। यदि फ्रांस की सरकार उसकी नीति का समर्थन करती और उसको समय पर आर्थिक तथा सैनिक सहायता प्राप्त होती रहती तो सम्भव था वे विजयी हो जाते।

(३) सैनिक कारण (Military causes)—सैनिक कारणों ने भी फ्रांसीसियों की पराजय में बड़ा सहयोग प्रदान किया। (i) योरुप की जातियों की सैनिक शक्ति का आधार जल-सेना थी। व्यापार पर उसी राज्य का एकाधिकार स्थापित हो सकता था जिसकी सामुद्रिक शक्ति प्रबल हो क्योंकि व्यापारिक मार्ग पर अधिकार करना इसके लिये अत्यन्त आवश्यक था। फ्रांसीसी कम्पनी की अपेक्षा अंग्रेजों का समुद्र पर अधिक अधिकार था और उनकी सामुद्रिक शक्ति बहुत उन्नत थी। इसका सबसे बड़ा लाभ यह था कि अंग्रेजी कम्पनी का व्यापार अबाध तथा तीव्र गति से चलता रहता था और उसको समय-समय पर इङ्गलैंड से सहायता प्राप्त हो जाती थी। लाबूर्दोने को मद्रास का घेरा इसलिये उठाना पड़ा कि मद्रास के समीप अंग्रेजों की जो सेना का आगमन हो चुका था। उसके आगमन के कारण उनमें भय उत्पन्न हो गया। (ii) फ्रांसीसियों ने इस ओर ध्यान न देकर स्थल-सेना की ओर ध्यान दिया जिसमें भी वे अंग्रेजों की अपेक्षा कम सुसज्जित तथा व्यवस्थित थे। अंग्रेजों को आवश्यकता के समय बंगाल तथा बम्बई की ओर से आवश्यक सहायता बिना किसी रोकटोक व कठिनाई के प्राप्त हो सकती थी किन्तु फ्रांसीसी इस परिस्थिति में बिल्कुल भी नहीं थे। (iii) [illegible]

सहायता मिल सकती थी, किन्तु मोरीशिस से सहायता पाकर भारत में साम्राज्य की स्थापना को सम्भव रूप देना असम्भव था।

(४) **सामाजिक कारण (Social causes)**—फ्रांसीसी कर्मचारियों में एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना का नितान्त अभाव होने के साथ-साथ कुछ अन्य दुर्बलतायें भी विद्यमान थी। सर्वप्रथम तो यह कि फ्रांसीसियों में योग्य नेताओं का अभाव था। केवल डूप्ले, बुसी तथा लैली ही योग्य व्यक्ति थे और उनमें भी कुछ व्यक्तिगत कमियाँ विद्यमान थीं। उदाहरण के लिये, डूप्ले उच्च संगठन-कर्त्ता तथा शासक था किन्तु उसमें सैनिक प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। बुसी उच्च-कोटि का सेनानायक था किन्तु वह बड़ा स्वार्थी था और उच्च-कोटि का शासक न था। लैली देश-भक्त तथा ईमानदार था, किन्तु वह बड़ा क्रोधी तथा हठी था। वह किसी की बात नहीं मानता था और अपने विचारों की ही मान्यता रखता था। इन सब व्यक्तिगत दोषों का दुष्परिणाम उनको भोगना पड़ा। इसके विपरीत अंग्रेजों में पर्याप्त योग्य नेता थे। क्लाइव की प्रतिभा के सामने सबकी प्रतिभा मन्द थी।

(५) **धार्मिक कारण (Religious causes)**—फ्रांसीसियों की धार्मिक नीति बड़ी कठोर थी। उन्होंने भारतीय जनता को बाध्य कर ईसाई धर्म स्वीकार करवाया जिससे वे भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त नहीं कर सके, जबकि अंग्रेजों की धार्मिक नीति उदार थी और उन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार के लिये विशेष प्रयत्न नहीं किया।

उक्त कारणों के फलस्वरूप फ्रांसीसियों की भारत-विजय का स्वप्न पूर्ण न हो पाया जबकि अंग्रेज अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुये।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) कर्नाटक तथा दक्षिण में डूप्ले की क्या नीति थी तथा वह क्यों असफल रहा? (१९४७)

(२) डूप्ले की नीति की व्याख्या करो और उसकी असफलता के कारण बताइये। (१९५१)

(३) डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिये और बताइये कि क्या यथार्थ में फ्रांस की सरकार के असहयोग के कारण ही वह असफल हुआ? (१९५४)

मध्य भारत—

(१) 'डूप्ले अपने अन्तिम पतन होने पर भी भारतवर्ष के इतिहास में महान और चमकता हुआ व्यक्ति है', आलोचना कीजिये। (१९५१)

(२) "अपने राजा तथा देशवासियों द्वारा समर्थन न प्राप्त होने से डूप्ले की महान् प्रतिभा अंग्रेजों के सुव्यवस्थित राष्ट्रीय प्रयत्न के समक्ष कुछ न कर सकी।" आलोचना करो। (१९५४)

(३) "यद्यपि डूप्ले की अन्तिम असफलता हुई, पर फिर भी वह भारतीय इतिहास में एक प्रमुख तथा प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये। (१९५५)

(४) डूप्ले की साम्राज्य योजना की असफलता के कारण लिखिये। (१९५७)

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) 'डूप्ले अपने अन्तिम पतन होने पर भी भारतवर्ष के इतिहास में महान् और चमकता हुआ व्यक्ति है।' इस कथन की आलोचना कीजिये। (१९५०)

(२) अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज और फ्रांसीसी संघर्ष का वर्णन करो। (१९५०)

(३) डूप्ले के उद्देश्यों तथा नीति का साम्राज्य स्थापना के सम्बन्ध में वर्णन करो। (१९५१)

(४) 'डूप्ले को अपने चरित्र तथा कार्यों में वह प्रशंसा प्राप्त नहीं हुई जिसके लिये वह योग्य था।' विवेचना करो। (१९५२)

(५) डूप्ले की महत्वाकांक्षाओं का वर्णन करो। उसकी अस्थायी असफलता तथा स्थायी पतन के कारणों का उल्लेख करो। (१९५३)

(६) कर्नाटक युद्धों में अंग्रेजों की सफलता अपने प्रतिद्वन्दी फ्रांसीसियों के ऊपर क्यों हुई? (१९५४)

(७) सन् १७४० से १७५६ तक अंग्रेजी शक्ति के विकास का वर्णन करो। (१९५६)

O

३

बंगाल में नवाबी का अन्त

(The Abolition of Nawabi in Bengal)

अंग्रेजों का राज्य भारत में बंगाल की ओर से स्थापित हुआ। योरोपीय जातियों ने अपनी कोठियों की स्थापना बंगाल में मुगलों के समय में ही स्थापित कर ली थीं। अंग्रेजों की कोठियाँ कलकत्ते तथा कासिम बाजार में, फ्रांसीसियों की चन्द्रनगर तथा डचों की चिन्सुरा में थीं। जब तक मुगल-साम्राज्य दृढ़ तथा शक्तिशाली रहा उस समय तक योरोपीय जातियों का ध्यान व्यापार की ओर था और उन्होंने व्यापारिक प्रवृत्ति ही की ओर ध्यान दिया, किन्तु मुगल-सत्ता के पतन होने पर जब बंगाल के सूबेदारों ने स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया और उनकी शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई तो योरोपीय निवासियों ने और मुख्यतः अंग्रेजों ने बंगाल में बड़ी लूट-खसोट आरम्भ की। उनके केन्द्र व्यापारिक केन्द्रों के साथ-साथ सैनिक केन्द्र भी बन गये और उन्होंने उनकी किलेबन्दी करनी आरम्भ कर दी। उस समय के योरोपीय लोग जिस दृष्टि से भारत को देखते थे, उनका परिचय एक अंग्रेज सैनिक कर्नल मिल (Colonel Mill) के उदाहरण

से मिल जायेगा जो उसने जर्मनी के फ्रेंसिस को सन् १७४६ ई० में लिखा था। वह इस प्रकार है कि "मुगल साम्राज्य सोने और चांदी से भरपूर है। वह साम्राज्य सदा निर्बल और रक्षा रहित रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि सामुद्रिक शक्ति रखने वाले किसी योरोपीय राजा ने बंगाल को जीतने का प्रयत्न नहीं किया। एक ही मार में अनन्त धनराशि प्राप्त की जा सकती है जिसके सामने ब्राजील और पेरु की खानें मात पड़ जायेंगी।" वास्तव में उसके कथन में पर्याप्त सत्यता थी। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि थोड़े से ही प्रयत्न के कारण अंग्रेज प्लासी के युद्ध में सफल हुए और उनका अधिकार भारत के धनिक तथा धन सम्पन्न प्रान्त पर स्थापित हो गया और धीरे-धीरे उनका समस्त भारत पर अधिकार हो गया।

बंगाल के प्रान्तीय सूबेदार
(Provincial Governors of Bengal)

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त बंगाल के सूबेदारों ने भी स्वतन्त्र रूप से शासन करना प्रारम्भ कर दिया। दिल्ली के मुगल-सम्राटों की सत्ता बंगाल के सूबेदारों पर नाम-मात्र की थी और वे उसका प्रयोग केवल उसी समय किया करते थे जब वे उससे कोई लाभ निकलता हुआ समझते थे। अतः उन पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं था।

मुर्शिद कुली खां (Murshid Kuli Khan)—फर्रुखसियर के समय में मुर्शिद कुली खां सन् १७१३ ई० में बंगाल का नवाब बना। इससे पूर्व वह वहां का दीवान था, किन्तु बंगाल के सूबेदार से झगड़ा होने के कारण उसने आधुनिक मुर्शिदाबाद में निवास करना प्रारम्भ कर दिया जो उस समय मुकसाबाद के नाम से विख्यात था। उसने ही इस नगर का नाम सन् १७०४ ई० में मुर्शिदाबाद रखा। वह एक योग्य शासक था और उसने अपने विरोधियों के साथ कठोरता का व्यवहार किया और उनको सर उठाने का अवसर प्रदान नहीं किया।

> **बंगाल के प्रान्तीय सूबेदार**
> (१) मुर्शिदकुली खां।
> (२) शुजा खां।
> (३) सरफराज खां।
> (४) अलीवर्दी खां।

अलीवर्दी खां (Alivardi Khan)—मुर्शिदकुली खां की मृत्यु सन् १७२५ ई० में हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका दामाद शुजाखां बंगाल के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। सन् १७३९ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके ही समय में बिहार पर भी बंगाल का अधिकार हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र सरफराज खां बंगाल का नवाब बना। अलीवर्दी खां, जो बिहार का नायब-नाजिम था, अपनी शक्ति को संगठित कर रहा था। उसने सन् १७४० ई० में सरफराज खां का वध कर अपने आपको बंगाल का शासक घोषित किया। मुगल-सम्राट ने बाद में उसको बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा का नवाब स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अलीवर्दी खां ने बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा पर अपना अधिकार स्थापित किया।

अलीवर्दी खां बड़ा योग्य तथा सशक्त नवाब था। उसने शासन को उन्नत करने

की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने जमींदारों की शक्ति कम की और चोर डाकुओं का दमन कर उसने प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह दूरदर्शी शासक न था। उसके समय में मरहठों ने बंगाल पर आक्रमण किया। उसने शीघ्र ही उनको धन देकर तथा उड़ीसा का सूबा देकर वापिस कर दिया।

अलीवर्दी खां तथा योरोप की जातियां (Allivardi Khan and the Europeans)—अलीवर्दी खां योरोपीय जातियों की दक्षिण तथा कर्नाटक में हुई सरगर्मी को बड़े ध्यान से देख रहा था और उसकी धारणा हो गई थी कि जब तक इन पर उचित अंकुश नहीं रखा जायेगा उस समय तक भारतीयों के अधिकार में शासन नहीं रहेगा। वह उनके प्रत्येक कार्य को सन्देह तथा शंका की दृष्टि से देखता था और उनसे सदा सचेत रहता था। उसने अपने शासन-काल में उनको पूर्ण नियन्त्रण में रखा। परन्तु उसने उनके व्यापार में कोई बाधा उत्पन्न नहीं की, क्योंकि उससे राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। वह उनको "मधु-मक्खी के समान समझता था जिनसे मधु प्राप्त किया जा सकता है परन्तु उनके छेड़ने पर वे डक भी मार सकती हैं।"* जब उसको अपने गुप्तचरों से यह समाचार विदित हुआ कि अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने क्रमशः कलकत्ता और चन्द्रनगर में किलेबन्दियां करनी प्रारम्भ कर दी हैं तो उसने शीघ्र ही आदेश दिया कि तुरन्त समस्त किले-बन्दियां स्थगित कर दी जायें। वह उनसे कहा करता था कि तुमको किले-बन्दियां करने की आवश्यकता नहीं है। तुम मेरे संरक्षण में हो, तुमको किसी भी शत्रु से भय नहीं खाना चाहिये। उसका आदेश पाकर इन्होंने किलेबन्दी स्थगित कर दी। सन् १७५२ ई० में अलीवर्दी खां ने अपने धेवते सिराजउद्दौला को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, जिसके कारण अन्य दो धेवते उससे शत्रुता करने लगे और उसके विरुद्ध उन्होंने षड्यन्त्र रचा। राजबल्लभ को जो विरोधियों का नेता था, अंग्रेजों ने शरण दी जिसके कारण सिराजउद्दौला के हृदय में यह शंका उत्पन्न हो गई कि अंग्रेज उसके विरोधी हैं और वे विरोधियों के पक्ष का समर्थन कर रहे हैं। इस कारण सिराजउद्दौला अंग्रेजों का शत्रु अपने नाना अलीवर्दी खां के समय में ही बन गया था सन् १७५६ ई० में अलीवर्दी खां की मृत्यु हो गई। भारत के दुर्भाग्य से उसका अन्त ऐसे समय में हुआ जब उस जैसे योग्य व्यक्ति की भारत को विशेष आवश्यकता थी। सम्भव था यदि वह कुछ समय और जीवित रहता तो भारत को दुर्दिनों का सामना नहीं करना पड़ता और अंग्रेजों को अपनी राजनीतिक चालों में सफलता प्राप्त नहीं होती। अपनी मृत्यु को समीप आते देख अलीवर्दी खां ने अपने उत्तराधिकारी नवयुवक सिराजउद्दौला को निम्न शब्दों में आदेश दिया—

"योरोप की जातियों की गतिविधि पर सदा दृष्टि रखना। यदि मेरा जीवन लम्बा होता तो मैं तुम्हें इस डर से मुक्त कर देता—अब तो बेटा यह कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा। तैलिंग देश में उनकी लड़ाइयों और चालों के विषय में सचेत रहना।

* "To a hive of bees that was a source of profit to its owner when undisturbed, but a cause of danger and embarrasment if rashly interfered with."
—P. E. Roberts: History of British India, pp. 129-130

बादशाहों को आपसी लड़ाइयों के बहाने से उन्होंने हमारे सम्राट के प्रान्तों पर अधिकार कर उनको आपस में बाँट लिया है और वहां की सम्पत्ति को अपने लोगों में वितरित कर डाला है। तीनों को एक साथ निर्बल करने का विचार मत करना। इन तीनों में अंग्रेज सबसे अधिक सशक्त हैं। पहले उनका अन्त करो और अन्य तुमको विशेष कष्ट नहीं देंगे। बेटा उनको दुर्ग या सेना में आगे बढ़ने मत देना। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो देश तुम्हारे हाथ से निकल जायगा और उस पर उनका अधिकार हो जायगा।"

अलीवर्दी खां का यह आदेश पूर्णतया उपयुक्त था। वह परिस्थिति को भली प्रकार समझता था और वह अंग्रेजी कूटनीति से अपने जीवन काल के अन्तिम दिनों में बहुत परेशान हो गया था। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसने अपनी मृत्यु के समय अपने नवयुवक उत्तराधिकारी को यह आदेश दिया।

सिराजउद्दौला (Sirajuddaulah)—अपने नाना अलीवर्दी खां के उपरान्त नवयुवक सिराजउद्दौला राज्यसिंहासन पर बिना किसी विरोध के सन् १७५६ ई० के अप्रैल माह में आसीन हुआ। अंग्रेजों ने उसके चरित्र का बड़ा कलुषित चित्रण किया है और उन्होंने उसको राक्षस के रूप में चित्रित किया। कुछ भारतीय इतिहासकारों ने उसमें पर्याप्त गुण देखे और उसको उच्च-कोटि का शासक बतलाते हुये एक भोला शिकार सिद्ध करने का प्रयत्न किया, किन्तु वास्तविकता इन दोनों के मध्य में है। वह न अंग्रेजों की विचारधारा के अनुसार पूर्ण राक्षस था और न भारतीयों की विचारधारा के अनुसार निरा एक भोला शिकार ही था। हम सर शफात अहमद खां (Sir Shafat Ahmad Khan) के विचारों से सहमत हैं कि "सिराजउद्दौला अदूरदर्शी, हठी और दृढ़ था। उसको बूढ़े अलीवर्दी खां के लाड़-प्यार ने बिल्कुल बिगाड़ दिया था। गद्दी पर बैठने पर भी उसमें कोई सुधार न हुआ। वह झूठा था, कायर था, नीच और अकृतज्ञ था। उसमें अपने पूर्व पुरुषों के कोई गुण न थे और अपने जो गुण थे, उनको प्रयोग में लाने की शक्ति नहीं थी।" सिराजउद्दौला में पर्याप्त गुण भी थे और पर्याप्त दोष भी विद्यमान थे। परन्तु तीन कारणों ने उसके गुणों को निकम्मा बना दिया। (i) वह अपने नाना की मोहो गोद में पला था, (ii) जिस समय वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ उस समय वह निरा बालक था, (iii) वह अनुभवहीन था और उसकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। उसको गद्दी पर बैठते ही भयानक परिस्थितियों तथा सशक्त शत्रुओं का सामना करना पड़ा जिसका सामना करने की योग्यता व क्षमता उसमें नहीं थी। वह भी अंग्रेजों कुटिल नीति का उसी समान शिकार बना जिसके शिकार दक्षिण के कुछ राजा तथा अन्य नवाब और राजा बने।

सिराजउद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण

(Causes of the Conflict between Sirajuddaulah and the English)

इससे पूर्व की सिराजउद्दौला और कम्पनी के मध्य युद्ध का वर्णन किया जाए यह अति आवश्यक होता कि इन दोनों के संघर्ष के कारणों का ज्ञान प्राप्त किया जाय। इसके प्रमुख कारण अग्रलिखित थे—

(१) अंग्रेजों का सिराजउद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र (Plot of the English against Sirajuddaulah)—हम बतला चुके हैं कि बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां ने अपने धेवते सिराजउद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया, जिसके कारण कुछ असंतोष उत्पन्न हो गया था। अंग्रेजों ने उन मुसलमानों को अपनी ओर मिलाया जो नवाब बनना चाहते थे तथा उन हिन्दू-व्यापारियों का समर्थन प्राप्त किया जिनको अंग्रेजों ने विश्वास दिलाया था कि वे उनको विशेष सुविधायें प्रदान करेंगे यदि शासन की सत्ता उनके हाथ में आ गई। उन्होंने विरोधी दल के नेता राजवल्लभ तथा उसके पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में शरण दी, जबकि उस पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने घसीटा बेगम के खजाने को छिपा लिया था। उन्होंने शौकत जंग को गुप्त रूप से सहायता की। फिर भला सिराजउद्दौला किस प्रकार उनका मित्र बन सकता था।

> **सिराजउद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण**
>
> (१) अंग्रेजों का सिराजउद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र।
> (२) अंग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग।
> (३) किले-बन्दी करना।
> (४) कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार।
> (५) कलकत्ते की कोठी पर अधिकार।

(२) अंग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग (Misuse of trade Concessions by the English)—फर्रुखसियर ने अंग्रेजों को सन् १७१७ ई० में बिना चुंगी व्यापार करने की सुविधा प्रदान कर दी थी। उन्होंने इस सुविधा का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। यह सुविधा केवल कम्पनी को प्रदान की गई थी, किन्तु इस सुविधा का प्रयोग कम्पनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार में भी प्रयोग कर विशेष लाभ उठाते थे। इतना ही नहीं वरन् वे अपने 'दस्तक' देकर भारतीय व्यापारियों को भी इस प्रकार से बिना चुंगी दिये व्यापार करने को प्रोत्साहन देते थे। इससे राज्य की आय को बहुत अधिक धक्का लगा और कम्पनी के कर्मचारी धनवान होने लगे।

(३) किले बन्दी करना (Fortifications)—इसी समय सिराजउद्दौला को समाचार मिला कि योरोपीय जातियों ने अपनी बस्तियों की किलेबन्दी करना प्रारम्भ कर दिया था। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने इसका कारण योरुप में होने वाले युद्ध को बतलाया है, किन्तु वास्तव में किलेबन्दी का कारण बंगाल में अपनी दृढ़ सत्ता की स्थापना करना था। इस समाचार का ज्ञान प्राप्त होते ही उसने कलकत्ते के अंग्रेज अधिकारियों को इस आशय का पत्र लिखा कि "आप लोगों को अलग किलेबन्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि देश में शान्ति की स्थापना रखने का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है और मैं अपने उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार समझता हूँ। मैं आपके इस कार्य को किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता।" इसी आशय का पत्र उसने फ्रांसीसी के अधिकारियों को भेजा। फ्रांसीसियों ने उसके आदेश को स्वीकार

किया, किन्तु अंग्रेजों ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अपना कार्य पूर्ववत् करते रहे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने नवाब के दूत का अपमान भी किया और उससे बड़े अपमानजनक शब्द कहे जो वास्तव में बंगाल के नवयुवक नवाब के लिये सहनीय नहीं थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही राजमहल से १ जून १७५६ ई० को मुर्शिदाबाद आया।

(४) कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार (Control of the factory in Cassim Bazar)—अंग्रेजों के असहनीय व्यवहार से नवाब सिराजउद्दौला बड़ा क्रोधित हुआ और उसने यह परिणाम निकाला कि अंग्रेज बातचीत तथा समझाने-बुझाने से नहीं मानेंगे। उसने शीघ्र ही ४ जून १७५६ को अंग्रेजों की कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार करने के लिये एक सेना भेजी। अंग्रेज नवाब की सेना के आगमन का समाचार सुनकर बड़े भयभीत हुए। वे युद्ध के लिये बिल्कुल भी तैयार नहीं थे, अत: उनमें भगदड़ मच गई और उन्होंने आत्म-समर्पण करने में ही अपना हित समझकर ऐसा किया।

(५) कलकत्ते की कोठी पर अधिकार (Control of the Calcutta factory)—कासिम बाजार की कोठी को अपने अधीन कर उसने शीघ्र ही १६ जून १७५६ को अंग्रेजों की कलकत्ते की कोठी पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने यद्यपि पर्याप्त तैयारी कर ली थी, किन्तु नवाब की सेना के आगमन पर उनका उत्साह मन्द हो गया। वहाँ का गवर्नर ड्रेक तथा कुछ प्रसिद्ध अंग्रेज कोठी छोड़कर भाग गए। उन्होंने अपने जहाजों में शरण ली। २० जून को उसका फोर्ट विलियम पर अधिकार हो गया। इसके बाद कलकत्ते पर नवाब का अधिकार हो गया और कुछ अंग्रेजों को उसने बन्दी किया।

ब्लैक होल (Black Hole) की वास्तविकता—कासिम बाजार और कलकत्ते पर नवाब का अधिकार होने पर वह बंगाल को अंग्रेजों से बिल्कुल मुक्त करने में सफल हो सकता था, किन्तु उसने इस समय उनके प्रति उदार नीति का प्रयोग किया। वास्तव में नवाब सिराजउद्दौला उनको एक पाठ सिखाना चाहता था कि वे बंगाल की राजनीति में किसी प्रकार का भाग न लें और अपना सम्बन्ध केवल व्यापार तक ही सीमित रखें। अंग्रेजों ने कलकत्ता विजय के साथ एक काल्पनिक घटना घड़ी। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस घटना का वर्णन तत्कालीन फारसी के साहित्य तथा इतिहास में नहीं मिलता। वास्तव में यह केवल हॉलवाल (Holwal) की मनघड़न्त कहानी थी जिसके द्वारा वह चाहता था कि अंग्रेज सिराजउद्दौला के विरुद्ध कार्य कर उसको नवाबी से हटा दें और कोई ऐसा व्यक्ति नवाब बनाया जाय जो उनको मनमानी करने दे। यह कहानी इस प्रकार है—

कलकत्ते पर जिस समय नवाब का अधिकार हुआ उसने बहुत से अंग्रेजों को बन्दी कर लिया था। इन सबका नेता हॉलवाल था। रात्रि के समय जब नवाब सिराजउद्दौला आराम करने चला गया तो १४६ बन्दियों को एक कोठरी में बन्द कर दिया गया जिसका क्षेत्रफल २०० वर्गफीट के लगभग था। पहरेदारों ने जबरदस्ती इन

व्यक्तियों को कोठरी में धकेल कर दरवाजा बन्द कर दिया । गर्मी का मौसम था और कोठरी में कुछ ऊँचाई पर केवल एक खिड़की थी। अंग्रेजों को रात्रि भर इस कोठरी में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा । सुबह जब कोठरी का दरवाजा खोला गया तो केवल २२ व्यक्ति जीवित निकले, अन्य १२४ व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी।

अंग्रेज लेखकों ने इस घटना को लेकर अनेक ग्रन्थों की रचना की। मैकाले ने इस घटना का वर्णन करने में 'अंग्रेजी भाषा का निन्दात्मक शब्दों का कोष ही समाप्त कर दिया है।" पर्याप्त समय तक लोग इसको सत्य मानते रहे, किन्तु जब इस सम्बन्ध में गहरी छान-बीन की गई तो उसकी असत्यता पूर्णरूप से प्रकट हो गई और लोगों में यह विश्वास उत्पन्न हो गया कि इस घटना की रचना समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिये की गई थी। वास्तव में इस घटना का वर्णन तत्कालीन अंग्रेजी पत्रों तथा लेखों में भी नहीं मिलता। 'सबसे महत्त्वपूर्ण युक्ति यह है कि प्लासी के युद्ध के पूर्व क्लाइव (Clive) या वाटसन (Watson) ने नवाब को जो पत्र भेजे उनमें भी ब्लैक होल का निर्देश नहीं किया गया।' इसके अतिरिक्त ओर्मे के कहने पर भी क्लाइव ने उन व्यक्तियों को दण्ड नहीं दिया जो घटना के लिए उत्तरदायी थे। क्लाइव ने ओर्मे की बात को क्यों नहीं माना? वास्तव में इसका कारण यह था कि वह उसकी असत्यता को पूर्णतया जानता था। इस प्रकार अंग्रेजों ने नवाब को इस मनगढ़न्त अपराध के लिए दोषी ठहराया जिसमें उसका तनिक भी हाथ नहीं था। इसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि अंग्रेजों के हृदय में प्रतिशोध लेने की भावना जागृत हो जाए। यह सम्भव हो सकता है कि कुछ बन्दियों को कारागृह में डाल दिया गया हो और उनका नवाब के कर्मचारियों से कुछ झगड़ा हो गया हो जिसमें दो-चार की मृत्यु हो गई हो, किन्तु कमरे का आकार, बन्दियों की संख्या तथा मृतकों की संख्या पर तनिक भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

कलकत्ते पर अंग्रेजों का अधिकार (Capture of Calcutta by the English)—नवाब सिराजुद्दौला मानिक चन्द को किलेदार नियुक्त कर कलकत्ते से अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद चला गया। कलकत्ते पर नवाब का आधिपत्य स्थापित होने के कारण अंग्रेजों की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। उन्होंने फुल्टा नामक द्वीप में शरण ली। इसी बीच सिराजुद्दौला ने अपने एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी शौकत जंग का अन्त किया। इस प्रकार सिराजुद्दौला अपने तीन शत्रुओं का थोड़े समय में दमन करने में सफल हुआ। उसने कुछ सन्तोष की सांस ली, परन्तु अभी उसके सामने भीषण कठिनाइयों का पहाड़ खड़ा था। नवाब को इससे सचेत होना चाहिए था। जब अंग्रेजों को कलकत्ता पराजय तथा कल्पित ब्लैक होल का समाचार मद्रास पहुँचा तो अंग्रेजी जनता में नवाब से प्रतिशोध लेने की प्रबल भावना तीव्रगति से जागृत हुई जिसके कारण वहाँ की जनता में बड़ी उत्तेजना फैल गई। उन्होंने शीघ्र ही निश्चय किया कि कलकत्ते पर शीघ्र अधिकार करने का प्रयत्न किया जाए। अतः उन्होंने कलकत्ते को वापिस प्राप्त करने के लिए एक योजना का निर्माण किया। नवाब की ओर एक जल सेना एडमिरल वाटसन (Admiral Watson) के नेतृत्व में और स्थल सेना क्लाइव (Clive) के नेतृत्व में कलकत्ते के लिए भेजी गई। क्लाइव की अधीनता में ९०० अंग्रेज और १५००

भारतीय सिपाही थे। वह १६ अक्तूबर सन् १७५६ ई० को कलकत्ता विजय करने के लिए मद्रास से चला। शीघ्र ही उसने कलकत्ता तथा हुगली पर अपना अधिकार स्थापित किया और कलकत्ते पर अंग्रेजी पताका फहराने लगी। यद्यपि किलेदार मानिक चन्द के पास सेना थी और बड़ी सरलता से अंग्रेजों का सामना कर उनको परास्त करने में सफलता प्राप्त कर सकता था, किन्तु एक छोटी-सी लड़ाई के बाद उसने हथियार डाल दिये और २ जनवरी १७५७ को कलकत्ते पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। अंग्रेजों ने शीघ्र ही कलकत्ते की रक्षा का सुचारु प्रबन्ध किया। जब नवाब को यह समाचार विदित हुआ तो उसने हुगली नदी को पार किया, किन्तु छोटा-सा युद्ध होने के पश्चात् ही अंग्रेजों और नवाब में सन्धि होगई। यह सन्धि ६ फरवरी १७५७ ई० में हुई। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मानिक चन्द ने नवाब के साथ विश्वासघात किया और ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अंग्रेजों ने उसको बड़ी रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। ६ फरवरी १७५७ की सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को उनके समस्त प्रदेश प्राप्त हुए। कलकत्ते पर उनका अधिकार पूर्ववत् रहा और उनको कलकत्ते की किलेबन्दी करने का अधिकार प्राप्त हो गया। उनको जो व्यापारिक सुविधायें प्राप्त थीं वे पूर्ववत् बनी रहीं। उनको सिक्के ढालने का अधिकार प्राप्त हुआ।

चन्द्रनगर पर अधिकार (Capture of Chandranagar)—इस सन्धि से कम्पनी की ख्याति बहुत बढ़ गई तथा उसकी शक्ति बड़ी सुदृढ़ हो गई, किन्तु यह सन्धि अधिक काल तक स्थायी न रह सकी। वास्तव में क्लाइव अपनी तैयारियाँ करने के लिये कुछ समय चाहता था। 'यद्यपि ऊपर से देखने में अंग्रेजों की स्थिति प्रबल दिखलाई देती थी किन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। इसी कारण क्लाइव नवाब से सन्धि करने पर बाध्य हुआ। उसने कम्पनी की स्थिति को सुदृढ़ करने के अभिप्राय से कार्य करना आरम्भ किया। उसको यह भय सदा बना रहता था कि फ्रांसीसी अंग्रेजों के विरुद्ध नवाब को सहायता देंगे और उसका यह सब किया हुआ कार्य निष्फल हो जायेगा। नवाब इस समय फ्रांसीसी जनरल बुसी (Bussy) से पत्र-व्यवहार कर रहा था। इसी समय अंग्रेजों को योरुप में होने वाले सप्तवर्षीय युद्ध (Seven Year's War) का समाचार प्राप्त हुआ। अतः अंग्रेजों ने फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। २३ मार्च सन् १७५७ ई० को अंग्रेजों ने चन्द्रनगर पर अधिकार कर लिया जिससे फ्रांसीसी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। इधर क्लाइव ने सिराजउद्दौला को धोखे में डाल दिया ताकि वह फ्रांसीसियों की सहायता न करे। यदि इस समय सिराजउद्दौला और फ्रांसीसी सम्मिलित रूप से कार्य करते तो अंग्रेजों को बंगाल में सफलता नहीं मिल सकती थी। फ्रांसीसियों के पास पर्याप्त सेना थी और उनका जनरल बुसी इस समय उत्तरी सरकार में था। नवाब का फ्रांसीसियों की सहायता न करने का एक अन्य कारण यह भी था कि अफगानिस्तान के अमीर अहमदशाह अब्दाली ने इसी समय दिल्ली पर अधिकार स्थापित कर लिया था और ऐसी धारणा की जा रही थी कि वह शीघ्र ही बंगाल पर आक्रमण करेगा। अतः नवाब ने विचार किया कि वह अहमदशाह अब्दाली के बंगाल आक्रमण के समय अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करेगा।

अतः उसने अंग्रेजों को रुष्ट करना उचित नहीं समझा। यह सिराजुद्दौला की बड़ी भारी भूल थी और उसकी अदूरदर्शिता का प्रमाण था जिसका उसको शीघ्र ही परिणाम भोगना पड़ा।

सिराजद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र (Plot against Sirajuddaulah)—क्लाइव फ्रांसीसियों की बस्ती चन्द्रनगर पर अधिकार कर अंग्रेजों की शक्ति को सुदृढ़ बनाने में सफल हुआ। अब उसको आशा हो गई थी कि उसके विरुद्ध नवाब और फ्रांसीसियों में गठबन्धन नहीं होगा। वह यह जानता था कि शायद भविष्य में यह गठबन्धन सप्तवर्षीय युद्ध के कारण न हो जाय। इसी समय क्लाइव सिराजउद्दौला के विरुद्ध आक्रमण कर देता तो उसको भय था कि फ्रांस तथा बुसी की सेनायें अवश्य नवाब से मिल जायेंगी। अतः उसने इस समय नवाब की शक्ति का अन्त करने के लिये युद्ध की शरण न लेकर कूटनीति की शरण लेना अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए अधिक हितकर समझा। उसने सिराजउद्दौला के दरबार में षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ किया। उसको अपने षड्यन्त्र की पृष्ठ-भूमि के निर्माण का भी अवसर प्राप्त हो गया। उसने शीघ्र ही उससे लाभ उठाने का निश्चय किया और जगत सेठ तथा अमीचन्द नामक दो व्यक्तियों को अपनी ओर मिलाकर कुटिल राजनीति का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इनके द्वारा उसने सिराजउद्दौला के सेनापति तथा फूफा मीर जाफ़र को बंगाल की नवाबी का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाया। वह स्वयं षड्यन्त्र करने का विचार कर रहा था तथा उसने नवाब के विरोधियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। सिराजउद्दौला के मूर्खतापूर्ण व्यवहार के कारण बहुत से व्यक्ति उससे अप्रसन्न हो गये थे। मीर जाफ़र तो ऐसे समय की प्रतीक्षा में ही था। उसने इस अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया और वह षड्यन्त्र में शामिल हो गया। इस प्रकार "*क्लाइव षड्यन्त्र का मुख्य संचालक था, वाट्स (Watts) उसके प्रतिनिधि की हैसियत से मुर्शिदाबाद में रहकर षड्यन्त्र का ताना-बाना बुनता था, अमीचन्द विश्वासघात के गन्दे जाल को रचने के लिए वाट्स का एजेन्ट बना हुआ था और मीरजाफर षड्यन्त्र के नीचतापूर्ण नाटक का प्रधान नायक था।*" अब अमीचन्द के मन में खटका हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि षड्यन्त्र के सफल होने पर उसका ध्यान न रखा जाय? उसने कहा कि उसको नवाब के राजकोष से समस्त धन का ५ प्रतिशत और जवाहिरात आदि का चतुर्थ भाग कमीशन के रूप में दिया जायगा अन्यथा वह समस्त षड्यन्त्र नवाब पर प्रकट कर देगा। अंग्रेजों को बड़ा भय हुआ क्योंकि षड्यन्त्र के खुलने से नवाब उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा और उनको बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। क्लाइव के सामने जब यह भीषण परिस्थिति उत्पन्न हुई तो वह बड़ा भयभीत हुआ किन्तु उसके साहस ने उसका साथ दिया। वह न तो अमीचन्द को छोड़ना चाहता था और न षड्यन्त्र का भेद ही खोलना चाहता था। *अतः उसने धूर्तता का सहारा लिया और अमीचन्द को धोखा* देने के लिये उसने दो सन्धि-पत्र तैयार करवाये जिनमें से एक सन्धि-पत्र असली था और दूसरा जाली। श्वेत-पत्र पर लिखा हुआ संधि-पत्र असली था और लाल पत्र पर लिखा हुआ जाली था। असली संधि-पत्र की मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं—

"सिराजउद्दोला के परास्त होने पर मीर जाफर को बंगाल का नवाब बनाया जायेगा। उसके शासन काल में अंग्रेजों को समस्त व्यापारिक सुविधायें प्राप्त होंगी जो उनको सिराजउद्दोला के समय में प्राप्त थीं। नवाब के राज्य में जितने भी फ्रांसीसी तथा उसके कारखाने हैं उन सब पर अंग्रेजों का अधिकार होगा और नवाब उनको अंग्रेजों के अधिकार में दे देगा। मीर जाफर अंग्रेजों को कलकत्ते में हुई पिछली क्षति-पूर्ति के रूप में एक करोड़ रुपया देगा। क्षति-पूर्ति के रूप में ५० लाख अंग्रेजों को, २० लाख हिन्दू निवासियों को तथा ७ लाख आर्मीनियन निवासियों को दिये जायेंगे और कम्पनी का पूर्ण अधिकार कलकत्ते पर होगा।"

जाली संधि-पत्र में उक्त समस्त बातों के साथ-साथ अमीचन्द की शर्तों का भी उल्लेख किया गया था। असली संधि-पत्र पर क्लाइव तथा वाटसन् (Watson) के हस्ताक्षर थे, किन्तु जब क्लाइव ने दूसरे संधि-पत्र पर वाटसन् से हस्ताक्षर करने को कहा तो उसने साफ इन्कार कर दिया, तब उसने ही उस पर वाटसन् के हस्ताक्षर कर दिए और अमीचन्द को उसे दिखाकर राजी कर लिया। अमीचन्द प्रसन्न हो गया। क्लाइव अपनी धूर्तता में सफल हुआ। और इस प्रकार धोखे के आधार पर क्लाइव अपने षड्यन्त्र के ताने-बाने को रचने में सफल हुआ। मीरजाफर और अमीचन्द ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये ऐसा घृणित तथा निन्दनीय कार्य किया कि वे दोनों सदा देशद्रोही के नाम से जाने जायेंगे और घृणित दृष्टि से देखे जायेंगे।

प्लासी का युद्ध
(Battle of Plassey)

जब क्लाइव अपनी योजना को पूर्ण करने में सफल हो गया तो उसने मद्रास से सैनिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। हौलवेल (Holwell) की कल्पित ब्लैक होल (Black Hole) घटना के कारण मद्रास के अंग्रेजों में विशेष उत्तेजना थी, जिसके कारण उन्होंने एक सुसज्जित सेना क्लाइव की सहायता के लिये भेजी। सिराजउद्दोला को इन सब का कुछ ज्ञान भी नहीं हो पाया यद्यपि फ्रांसीसियों ने इस ओर इशारा किया था। उसकी आँखें उस समय भी नहीं खुलीं जिस समय उसको गुप्त संधि का भी ज्ञान हो गया था। उस समय भी उसने उत्साह से काम नहीं लिया। यदि इस समय वह मीरजाफर को बन्दी कर लेता तो समस्त षड्यन्त्र का अन्त हो जाता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इसके विपरीत वह स्वयं मीर जाफर के पास गया और उससे षड्यन्त्र से पृथक् होने की प्रार्थना की। उसके आश्वासन से वह संतुष्ट हो गया। इसके अतिरिक्त क्लाइव उसको पत्रों के द्वारा झूठे आश्वासन बराबर देता रहा। इसी समय वाट्स मुर्शिदाबाद छोड़ अंग्रेजी सेना के उपनिवेश में पहुंच गया। सिराजउद्दोला इससे भी नहीं जागा और पूर्ववत् ही धोखे में पड़ा रहा। जब १२ जून १७५७ को क्लाइव को मीरजाफर का संदेश पहुँचा तो उसने सिराजउद्दोला के विरुद्ध सीधा कार्य करने का निश्चय कर अपनी योजना को सफल बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। अगले ही दिन उसने अपनी सेना को कूच करने की आज्ञा प्रदान की और नवाब सिराजउद्दोला को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाये।

तथा फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों का बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया किन्तु वे मैदान में खेत रहे। जब सिराजउद्दौला को मीर मदन की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने मीर जाफर से अंग्रेजों पर आक्रमण करने को कहा किन्तु उसने युद्ध में भाग नहीं लिया और चुपचाप युद्ध का तमाशा देखता रहा। उसके अधीन सेना का एक बड़ा भाग था और जब उसने युद्ध में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया तो सिराजउद्दौला की पराजय निश्चित थी। जब सिराजउद्दौला ने यह देखा तो वह बड़ा भयभीत हुआ और उसने भागने का निश्चय किया। वह युद्ध-क्षेत्र से भागा, किन्तु कुछ दिनों बाद वह बन्दी बना लिया गया और मीर जाफर के पुत्र मीरन के आदेशानुसार उसका वध कर डाला गया। उसके मृतक शरीर को हाथी पर रखकर नगर में घुमाया गया। इस प्रकार षड्यन्त्रकारियों को अपने कार्यों में सफलता प्राप्त हुई। नवाब की २०,००० सेना क्लाइव की ३,००० सेना के सामने देश-द्रोही तथा षड्यन्त्रकारियों के देश तथा नवाब के साथ विश्वासघात करने पर पराजित हुई और भारत-भूमि को दुर्दिनों का सामना करना पड़ा।

प्लासी के युद्ध का परिणाम
(Results of the battle of Plassey)

प्लासी का युद्ध अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार निर्णायक (Decisive) युद्ध था और इसी युद्ध में विजयी होने के कारण क्लाइव की गणना विश्व के महान् सेनापतियों में की जाने लगी, किन्तु वास्तव में इस युद्ध का सैनिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है (From the military point of view it was a farce, an exchange of a few shots and the death of fewer men) और उनका क्लाइव सम्बन्धी दावा असत्य है। वास्तव में यह युद्ध था ही नहीं वरन् यह तो एक विशाल तथा गहरे षड्यन्त्र का प्रदर्शन था, किन्तु इसके द्वारा ही अंग्रेज सफल हुये और भारत की राज्यश्री उनके हाथों में आने लगी। इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि इस युद्ध का महत्व केवल राजनीतिक दृष्टि से था (Plassey made the English masters of Bengal from whence within the next hundred years they overran the whole of India)। सिराजउद्दौला के स्थान पर मीरजाफर नवाब घोषित किया गया जिसने

युद्ध का परिणाम

(१) सैनिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं।
(२) विशाल तथा गहरे षड्यन्त्र का प्रदर्शन।
(३) मीर जाफर का नवाब होना।
(४) अंग्रेजों की प्रतिष्ठा में वृद्धि।
(५) फ्रांसीसियों की शक्ति का कम होना।
(६) फ्रांसीसियों के विरुद्ध युद्ध में बंगाल से प्राप्त किए धन का प्रयोग।
(७) क्लाइव को तथा अन्य पदाधिकारियों को बहुमूल्य भेंट।
(८) वास्तविक सत्ता पर क्लाइव का अधिकार।
(९) देशी राजाओं को वास्तविकता का ज्ञान।

अंग्रेजों को विशेष सुविधायें प्रदान कीं। अंग्रेजों की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और उसके प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसीसियों की शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा। अंग्रेजों के अधिकार में बंगाल जैसा उपजाऊ प्रदेश आ गया, जिसके कारण वे फ्रांसीसियों को कर्नाटक के तृतीय युद्ध में परास्त करने में सफल हुये। अब वे अपनी कुटिल नीति का प्रयोग उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों में भी कर सकते थे। मीरजाफर ने क्लाइव को ३०,००० पौंड वार्षिक आय की जागीर प्रदान की। उसने अन्य पदाधिकारियों को भी बहुमूल्य भेंट प्रदान कीं। शासन की वास्तविक सत्ता नवाब के हाथ में न रहकर क्लाइव के हाथ में आ गई। इसी कारण क्लाइव भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक माना जाता है। इस युद्ध द्वारा यह भी निश्चय हो गया कि देशी नरेशों की शक्ति का अन्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है। अंग्रेज कुटिल नीति तथा अपने सैन्य-बल के आधार पर भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना सरलता से करने में सफल हो सकते हैं।*

मीर जाफर

(Mir Jafar)

प्लासी के युद्ध में अंग्रेज सफल हुये और उन्होंने मीरजाफर को अपने षड्यन्त्र के अनुसार बंगाल का नवाब घोषित किया। मीर जाफर नवाब बनकर बड़ा प्रसन्न हुआ किन्तु उसको क्या मालूम था कि जिस नवाबी पर वह आसीन किया जा रहा है वह उसको सुख तथा आराम की नींद का उपभोग नहीं करने देगी। उसने अंग्रेजों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से अतुल धन-राशि का वितरण किया जिसके कारण राजकोष रिक्त हो गया और उसको बाध्य होकर जवाहिरात बेचने पड़े, किन्तु इतने पर भी सालचियों की धन लिप्सा शान्त न हुई। अब परिस्थिति से बाध्य होकर उसने उनको जागीरें प्रदान कीं; जिनसे पर्याप्त आय थी। उसने कम्पनी को २४ परगनों की जमींदारी प्रदान की। इस जागीर की आय १,५०,००० पौंड वार्षिक थी। क्लाइव को भी एक जागीर भेंट में दी गई। अमीचन्द को षड्यन्त्र के सफल होने पर कुछ भी नहीं

---

* "Admiral Watson described it to be of extraordinary importance not only to the Company but to the British nation in general." A contemporary memoir defines exactly what the events of 1757 meant to the English—"Many of these who would have totally lost the fruits of long labours and various hardships, and who must have been beggars if subject to any other power, are again easy in their fortunes, and some of them have already transported their efforts to their Native Country, the proper return for their assistance. They derived from her maternal affection, and as these events have distinguished the present age and present administration, so their efforts will probably, be felt in succeeding times. The Company, by an accession of territory has an opportunity of making an ample settlement, which under proper management, may not only be extremely serviceable to her, but also to the Nation, and having a revenue from these lands, the mint at Calcutta, and the lease of salt-petre at Patna, which amounts on the whole to one hundred thousand pounds a year, there is a provision against future dangers upon the spot, and without further advance."

—Sarkar and Datta; Modern Indian History, Vol. II, pp. 43–44.

मिला। उसको बड़ा दुःख हुआ। जब उसको संधि-पत्र के जाली होने का समाचार मिला तो वह मूर्छित हो गया।

मीरजाफर की कठिनाइयां (Difficulties of Mir Jafar)—जब मीरजाफर *सिराजउद्दौला के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता कर १७५७ ई० में बंगाल का नवाब बना* तो उसके सामने विभिन्न कठिनाइयां उपस्थित हुईं जिनका समाधान करने में वह सफल नहीं हो सका। उनकी विभिन्न कठिनाइयां निम्नलिखित थीं—

(१) आर्थिक कठिनाई (Economic difficulties)—मीर जाफर ने बहुत अधिक धन अंग्रेजों तथा अन्य व्यक्तियों को भेंट-स्वरूप प्रदान किया जिन्होंने उसको नवाब बनाने में सहायता प्रदान की थी जिसके कारण राजकोष प्रायः रिक्त हो गया। इतने पर भी अंग्रेजों तथा नवाब के लालची पदाधिकारियों की तृष्णा शान्त नहीं हुई। उनकी मांगें निरन्तर बढ़ती गईं। जब नवाब उनकी सहायता से हाथ खींचने का प्रयत्न करता तो वे उसको नवाबी से पृथक् करने की धमकी देकर अपना कार्य सिद्ध कर लेते थे। अतः नवाब सदा उनसे भयभीत रहने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन उन्नत नहीं हो सका और शासन की अवस्था दिन प्रति दिन शोचनीय होने लगी। जब अंग्रेज कर्मचारियों की भूख नवाब द्वारा शान्त नहीं हुई तो उन्होंने धन प्राप्त करने के अन्य मार्गों का अनुकरण किया।

मीर जाफर की कठिनाइयां
(१) आर्थिक कठिनाई।
(२) शक्ति की स्थापना।
(३) हिन्दुओं का विरोध।
(४) अली गौहर का आक्रमण।
(५) डच आक्रमण।

(२) शक्ति की स्थापना (Establishment and Consolidation of power)—मीर जाफर ने अपनी शक्ति की स्थापना की ओर कदम बढ़ाना आरम्भ किया, किन्तु वह ऐसा करने में सफल नहीं हो सका, क्योंकि उसको सदा डर बना रहता था कि राज्य के कर्मचारी विद्रोह अथवा षड्यन्त्र द्वारा उसको पदच्युत न कर दें। इस *प्रकार धीरे-धीरे शासन की सत्ता पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित होने लगा और वह* कठपुतली के समान कार्य करने पर बाध्य हुआ। वह अपने कर्मचारियों पर विश्वास नहीं कर सकता था क्योंकि वे भी उसकी तरह ही अंग्रेजों से अपना गठ-बन्धन रखते थे और उनको उनकी सहायता धन द्वारा अंग्रेजों से प्राप्त हो सकती थी।

(३) हिन्दुओं का विरोध (Opposition of The Hindus)—मीर जाफर ने कुछ विपत्तियों को स्वयं अपने आप निमित्त किया। उसने हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार किया। उसने हिन्दू 'कर्मचारियों को उनके पदों से अलग कर मुसलमानों को *उनके स्थान पर नियुक्त किया। उसने दुर्लभराय तथा रामसिंह के विरुद्ध कार्यवाही की* जिसके कारण पटना, पूर्णिया, मिदनापुर तथा ढाका में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई। मीर जाफर अङ्ग्रेजों की सहायता से इनका दमन करने में सफल हुआ, किन्तु इस सहायता के कारण अङ्ग्रेजों का प्रभाव मीर जाफर पर बहुत बढ़ गया और उसने अङ्ग्रेजों को कुछ अन्य व्यापारिक सुविधायें प्रदान कीं। इसके द्वारा ही शासन पर वे

मीर जाफर का अधिकार उठने लगा और वह प्रत्येक समय अङ्गरेजों की ओर देखने के लिये बाध्य हुआ।

(४) अली गौहर का आक्रमण (Invasion of Ali Gauhar)—उक्त आन्तरिक समस्याओं के अतिरिक्त मीर जाफर को बाह्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। बंगाल की दयनीय दशा का लाभ उठाने के अभिप्राय से आलमगीर द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र अली गौहर का ध्यान बंगाल की ओर आकर्षित हुआ। अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला ने उसको बंगाल-अभियान में सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया। उसने शीघ्र ही १८५६ ई० में बिहार पर आक्रमण किया। बिहार के गवर्नर रामनारायण ने तुरन्त ही मीरजाफर के पास अली गौहर के आक्रमण का समाचार भेजा और उसने इस समाचार से क्लाइव को अवगत कराया। शीघ्र ही एक सेना मीरजाफर के पुत्र मीरन की अध्यक्षता में बिहार भेजी गई और स्वयं क्लाइव अंग्रेजों की एक सेना लेकर पटना की ओर चल पड़ा। अली गौहर को ठीक समय पर शुजाउद्दौला की सहायता प्राप्त नहीं हुई और वह बाध्य होकर वापिस लौट गया। उसने सन् १७६० और १७६१ में पुनः आक्रमण किया, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(५) डच आक्रमण (Invasion of The Dutch)—सन् १७५९ ई० में डच ने बंगाल पर आक्रमण किया। अभी तक उन्होंने किसी प्रकार का सक्रिय भाग बंगाल के झगड़ों में नहीं लिया था, किन्तु प्लासी के युद्ध में अङ्गरेजों के विजयी होने के कारण उनको अङ्गरेजों से भय होने लगा। कुछ लोगों की यही धारणा है कि मीर जाफर ने अङ्गरेजों के प्रभुत्व का अन्त करने के लिये उनको बंगाल पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया था, किन्तु इनमें सत्य नहीं है। उन्होंने ३०० योरोपियनों तथा ६०० मलायन सैनिकों के साथ बंगाल पर आक्रमण किया। अङ्गरेजों ने शीघ्र ही उनका सामना करने के लिये तैयारी की। २५ नवम्बर सन् १७५९ ई० में अङ्गरेजों और डचों में चन्द्रनगर और चिन्सुरा के मध्य बेदरा के मैदान में युद्ध हुआ। डच पराजित हुए और उन्होंने क्षति-पूर्ति करने का वचन दिया।* शीघ्र ही मीरन अपनी सेना लेकर चिन्सुरा के समीप पहुँच गया और उनको अपमानजनक सन्धि करने पर बाध्य किया।† इस पराजय के कारण डच शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा और उनकी महत्वाकांक्षाओं

* "They disavowed the proceedings of thier ships below, acknowledged themselves the aggressors, and agreed to pay costs and damages."
—Malcolm : Life of Clive.

† Miran, "received their deputies, and after severe altercation forgave them and promised ample protection in their trade and privileges on the following terms, that they shall never meditate on war, introduce or enlist troops, or raise fortifications in the country, that they shall be allowed to keep up one hundred and seventy-five European soldiers and no more for the service of their factories of Chinsura, Kassim bazar and Patna, that they shall forthwith send their ships and remaining troops out of the country, and that a breach of any of these articles shall be Punished with utter expulsion."—Malcolm : Life of Clive.

का अन्त हो गया। इससे अङ्गरेजों को ... हिसाब मांगा जिन

प्राप्त हो गया। ... १

क्लाइव का इङ्गलैंड जाना ... department)–

श्रम करने के कारण क्लाइव का स्वास्थ्य ... में संलग्न रहता था

फरवरी मास में इंगलैंड चला गया। ... को पर्याप्त धन

अन्त हुआ, जिसका आरम्भ

(Holwell) को दिया गया ... from local Seths)—

भारत न आये। क्लाइव ने अङ्गरेज ...।

प्रयत्न किया। उसने फांसीसियों ... the expenditure)—उसने

पुतली नवाब मीर जाफर को ... क स्थिति को उन्नत किया।

आन्तरिक कलह तथा संघर्ष से ...

व्यापारिक सुविधायें प्राप्त कीं, किन्तु ... करना (To demand arrears

कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ... जमींदारों से भी पिछला हिसाब

क्लाइव के पश्चात् ... उसके विरुद्ध मुगलों की सहायता

क्लाइव के समय में ही ...

पड़ गई थी। अंग्रेजों तथा ... अंग्रेज

अत्यधिक धन वसूल करने ... English)

और तनिक भी ध्यान नहीं ... ों के सम्बन्ध अच्छे रहे क्योंकि वह

बंगाल में अराजकता ... , किन्तु यह परिस्थिति अधिक काल

अधिक भयंकर ... जमींदार तथा व्यापारी वर्ग अंग्रेजों

का प्रबन्ध अयोग्य ... का विरोध भी किया गया। किन्तु

प्राप्त करने के ... इनका दमन किया और इनके

परिस्थिति को ... दोनों में मन-मुटाव होना प्रारम्भ हो

करते थे, ... में रहकर कार्य नहीं कर सका। इसी

को धन की ... पर मीर कासिम का परिवर्तन एक नये

वर्ष

के ... का ...

... of Capital)—मीर कासिम ने अनुभव

पड़ा और

ने अपने

करना

संघर्ष के कारण

(१) राजधानी परिवर्तन।

(२) व्यापार के कारण मतभेद।

(३) मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र।

(४) ... र कासिम की प्रतिक्रिया।

वैन्सिटार्ट
(Vansittart)

वैन्सिटार्ट ने हौलवेल से कार्य-भार सम्भाला। वह बड़ा नेक तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। जिस समय वह भारत आया उस समय कम्पनी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी के व्यापार की अपेक्षा अपने निजी व्यापार की ओर विशेष ध्यान देते थे। कम्पनी के संचालकों की यह धारणा थी कि बंगाल में बहुत अधिक धन है और इसलिये उन्होंने बंगाल के पदाधिकारियों को मद्रास तथा बम्बई की सरकार को आर्थिक सहायता प्रदान करने का आदेश दिया। इसी समय अलीगौहर ने जो इस समय शाहआलम द्वितीय के नाम से दिल्ली पर शासन कर रहा था, बंगाल पर आक्रमण किया और मरहठों ने भी दक्षिण-पश्चिम से आक्रमण किया। मीर जाफर बड़ी दुविधा में पड़ गया और उसको अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना करनी पड़ी। अंग्रेजों की सहायता से उसका यह आक्रमण विफल हो गया और वह वापिस चला गया।

मीर कासिम का नवाब होना (Mir Kasim as Nawab)—कम्पनी के कर्मचारियों ने मीर जाफर को समस्त परेशानियों तथा कठिनाइयों के लिये उत्तरदायी बनाया और हौलवेल के कहने पर दूसरा नवाब बनाने का निश्चय किया। हौलवेल ने उस पर विशेष आरोप लगाये और इस बात पर जोर दिया कि परिस्थिति उस समय तक नहीं सुधर सकती जब तक कि मीर जाफर के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नवाब के पद पर आसीन नहीं किया जाये। कम्पनी के कर्मचारियों ने मीर जाफर के दामाद मीर कासिम को नवाब बनाने का निश्चय किया। २७ सितम्बर १७६० ई० को मीर कासिम और कम्पनी के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि नवाब कम्पनी को वर्दवान, मिदनापुर और चटगाव के जिले देगा जिससे कम्पनी बंगाल की रक्षा के लिये एक सेना रखेगी और उसको उप-सूबेदार के पद पर नियुक्त किया जायगा और भविष्य में उसको नवाब बनाया गया। यह समझौता कर मीर कासिम मुर्शिदाबाद चला गया और बाद में क्लाइव तथा वैन्सिटार्ट भी वहां पहुँच गए। अंग्रेजों ने देशद्रोही मीर जाफर को गद्दी से उतार कर मीर कासिम को नवाब घोषित कर दिया। मीर जाफर कलकत्ते में नजरबन्द कर दिया गया।

मीर कासिम की कठिनाइयाँ तथा उनका निराकरण
(Difficulties of Mir Kasim and their Solution)

मीर कासिम को भी नवाब बनते ही कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वह एक योग्य शासक था और उसने बंगाल की अवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह ऐसा अधिक काल तक नहीं कर पाया और अंग्रेजों के साथ उसका संघर्ष हो गया।

(१) आर्थिक समस्या (Economic Problem)—प्रारम्भ में उसने आर्थिक समस्या का समाधान करने का निश्चय किया। इस समय राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत अधिक खराब हो चुकी थी। राजकोष बिल्कुल रिक्त था, किन्तु राजकर्मचारियों के पास बहुत अधिक धन था, क्योंकि समस्त राज्य में भ्रष्टाचार, घूसखोरी का बुरी तरह

नन था। उसने सर्वप्रथम इनकी ओर ध्यान दिया। उसने पिछला हिसाब मांगा जिन ों ने सरकारी धन हड़प कर लिया था उनसे वह धन वसूल किया गया।

(२) नये विभाग की स्थापना (Establishment of a new department)–ने एक अलग विभाग की स्थापना की जो उन व्यक्तियों की खोज में संलग्न रहता था जिन्होंने हिसाब में गोल-माल किया था। इसके कारण राजकोष को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ।

(३) स्थानीय सेठों से ऋण लेना (To take Loans from local Seths)—उसने स्थानीय सेठों से बहुत सा धन ऋण के रूप में वसूल किया।

(४) व्यय पर नियन्त्रण करना (To Control the expenditure)—उसने व्यय पर कठोर नियन्त्रण किया। इन कार्यों से उसने आर्थिक स्थिति को उन्नत किया। इसके अभाव में राज्य-संचालन असम्भव था।

(५) स्थानीय जमींदारों से पिछला हिसाब करना (To demand arrears from the local zamindars)—उसने कुछ स्थानीय जमींदारों से भी पिछला हिसाब वसूल किया और उन जमींदारों का दमन किया जो उसके विरुद्ध मुगलों की सहायता करते थे।

मीर कासिम और अंग्रेज
(Mir Kasim and the English)

प्रारम्भ में तो मीर कासिम और अंग्रेजों के सम्बन्ध अच्छे रहे क्योंकि वह उनकी सहायता के आधार पर ही नवाब हुआ था, किन्तु यह परिस्थिति अधिक काल तक नहीं चल सकी। अंग्रेजों की नीति के कारण जमींदार तथा व्यापारी वर्ग अंग्रेजों का विरोधी हो गया था और उसके द्वारा अंग्रेजों का विरोध भी किया गया। किन्तु कम्पनी की सेना तथा नवाब की सेना दोनों ने मिलकर इनका दमन किया और इनके साथ कठोर व्यवहार किया। कुछ समय उपरान्त दोनों में मन-मुटाव होना प्रारम्भ हो गया। वह अधिक काल तक अंग्रेजों के चंगुल में रहकर कार्य नहीं कर सका। इसी कारण कहा जाता है कि मीर जाफर के स्थान पर मीर कासिम का परिवर्तन एक नये संघर्ष की निश्चयता साथ लाया।

संघर्ष के कारण
(Causes of Conflict)

(१) राजधानी परिवर्तन (Change of Capital)—मीर कासिम ने अनुभव किया कि अंग्रेजों का प्रभाव मुर्शिदाबाद में बहुत बढ़ गया है और इस प्रभाव के कारण उसकी स्थिति कभी दृढ़ नहीं हो सकती, क्योंकि षड्यन्त्र करना अंग्रेजों का कार्य है। वे विरोधियों से मिलकर उसको राज-सिंहासन त्यागने पर बाध्य कर सकते हैं। अतः उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद के स्थान पर मुंगेर बनाई और उसको

संघर्ष के कारण

(१) राजधानी परिवर्तन।
(२) व्यापार के कारण मतभेद।
(३) मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र।
(४) मीर कासिम की प्रतिक्रिया।

किलेबन्दी दृढ़ रूप से की। उसने एक विशाल सेना का संगठन किया जिसको योरोपियनों से शिक्षा प्रदान की गई।

(२) व्यापार के कारण मत-भेद (Differences due to Commerce)—कम्पनी को निःशुल्क व्यापार का अधिकार मुगल-सम्राट फर्रुखसियर द्वारा प्राप्त हुआ था। पिछले अध्याय में इसका वर्णन पर्याप्त किया जा चुका है। कुछ समय तक कम्पनी इसका प्रयोग करती रही, किन्तु बाद में कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने निजी व्यापार के लिए भी इस सुविधा का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था और इसके साथ-साथ भारतीय व्यापारियों से रिश्वत आदि लेकर इसी सुविधा के आधार पर व्यापार करवाते थे। इस प्रकार राज्य की आय विशेष रूप से कम हो गई। उसने कलकत्ते की कौंसिल (Calcutta Council) का ध्यान इस ओर आकर्षित किया, किन्तु इन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इस पर मीर कासिम ने समस्त व्यापारियों को अंग्रेजों के समान सुविधायें प्रदान कर दीं। अंग्रेज भला इसे कैसे सहन कर सकते थे क्योंकि इस कारण उनके व्यापार तथा व्यक्तिगत लाभ को बहुत अधिक धक्का लगा।

(३) मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र (Plot against Mir Kasim)—अंग्रेज समझ गये कि मीर कासिम उनके हाथ से निकल गया है। उसको गद्दी से उतारने के लिये उन्होंने पुराने नवाब मीर जाफर को केन्द्र बना मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया।

(४) मीर कासिम की प्रतिक्रिया (Reaction of Mir Kasim)—जब मीर कासिम को अंग्रेजों के षड्यन्त्र का पता चला तो उसने शीघ्र ही कासिम बाजार पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। इसी समय कलकत्ते से अंग्रेजी सेना कासिम बाजार की रक्षा के लिये आई जिसने मीर कासिम को परास्त किया। वह पटना की ओर भागा और इस बीच में अंग्रेजों ने मुंगेर पर अधिकार किया। पटना में भी उसको विशेष सहायता प्राप्त नहीं हुई। वहाँ उसको पता चला कि उसके विरुद्ध षड्यन्त्र का जाल बिछ चुका है जो उसको बन्दी कर अंग्रेजों के सुपुर्द करेगा। अतः क्रुद्ध हो उसने समस्त षड्यन्त्रकारियों का वध करा दिया। यह घटना पटना के हत्याकांड (Massacre of Patna) के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

बक्सर का युद्ध
(Battle of Baxar)

मीर कासिम पटना से अवध गया जिससे वह अवध के नवाब वजीर से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता प्राप्त कर बंगाल को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कर सके। मीर कासिम और अवध के नवाब-वजीर शुजाउद्दौला ने मुगल-सम्राट शाहआलम का सहयोग प्राप्त किया। तीनों की सम्मिलित सेनाएँ पटना की ओर बढ़ीं। इस सेना का सामना करने के लिये अंग्रेजों की छोटी सेना बक्सर के मैदान में आ गई। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मीर कासिम के करीब ४० हजार से ६० हजार तक सेना थी। अंग्रेजों के पास ७,०७२ सैनिक तथा २० तोपें थीं। अक्टूबर सन् १७६४ ई० को यह युद्ध हुआ। मीर कासिम तथा उसके सैनिकों ने बड़ी वीरता तथा साहस के साथ युद्ध किया, किन्तु

अंग्रेजों की विजय हुई और दुर्भाग्यवश मीरकासिम का यह प्रयत्न भी सफल रहा। उसके बहुत से सैनिक युद्ध में मारे गये और बहुत से गंगा नदी में डूब कर मर गये। अंग्रेजो के कुल ८४७ सैनिक युद्ध में मारे गये। इस विजय के शीघ्र ही उपरांत अंग्रेजों ने शीघ्र ही इलाहाबाद तथा चुनार पर अधिकार कर लिया।

मीर कासिम की मृत्यु (Death of Mir Kasim)—मीर कासिम के साथ शुजाउद्दौला ने उसका धन प्राप्त करने के लिये बड़ा अपमानजनक तथा घृणित व्यवहार किया। ऐसा कहा जाता है कि उसका धन प्राप्त करने के उद्देश्य से उसको कठोर यातनायें दी गईं। उसका समस्त धन प्राप्त कर मीरकासिम को मुक्ति प्रदान की गई। वह अंग्रेजों को भारत से निकलवाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ था, किन्तु उसको अंग्रेजों का सामना करने का अवसर फिर कभी प्राप्त नहीं हुआ। सन् १७७७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

बक्सर के युद्ध के परिणाम
(Results of the Battle of Buxar)

बक्सर के युद्ध के परिणाम बड़े महत्वपूर्ण थे। कुछ विद्वानों ने इस युद्ध को प्लासी के युद्ध से भी अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ (Vincent Smith) के अनुसार "यह विजय पूर्ण रूप से निर्णयात्मक थी और इसने प्लासी के अधूरे कार्य को पूर्ण किया।" डा० सरकार और दत्त के शब्दों में, "प्लासी के युद्ध की अपेक्षा बक्सर के युद्ध के परिणाम अधिक निर्णायक सिद्ध हुये। प्लासी के कारण कम्पनी ने बंगाल की गद्दी पर कठपुतले नवाब को आसीन किया, किन्तु इस युद्ध के कारण अंग्रेजों की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई, परन्तु बक्सर के युद्ध के कारण अंग्रेजों को बहुत अधिक लाभ हुआ। इससे अंग्रेजो का अधिकार बंगाल पर अधिक सुदृढ़ होने के अतिरिक्त बंगाल की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अंग्रेजो को अधिकार करने का सुयोग प्राप्त हुआ। यदि प्लासी में बंगाल का नवाब पराजित हुआ तो इस युद्ध में अंग्रेजों ने मुगल-सम्राट तथा अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को परास्त किया। अन्त में, यह कहा जा सकता है कि जो कार्य प्लासी के युद्ध द्वारा प्रारम्भ हुआ था वह कार्य बक्सर द्वारा पूर्ण किया जाना सम्भव हुआ। प्लासी ने उनको खड़े होने का स्थान प्रदान किया किन्तु बक्सर ने उनको स्वामी बनाया।"*

(१) भारतीय सेना अंग्रेजी सेना की अपेक्षा अयोग्य (Incompetency of Indian army)—वास्तव में इस युद्ध का बड़ा महत्व है। इस युद्ध के कारण यह पूर्णतया सिद्ध हो गया कि भारतीय सेनायें अंग्रेजो सेनाओं का मुकाबला नहीं कर

* "The battle of Buxar was more decisive in result than the battle of Plassey. Plassey had enabled the Company to establish a puppet Nawab on the throne of Bengal and had no doubt immensely added to the prestige of the English. But it did nothing more besides enabling them to strengthen their hold over *Bengal. It afforded them an opportunity of bringing the north-west frontier of the* Subah under their control. If Plassey saw the defeat of the Nawab of Bengal, Buxar proclaimed the defeat of the great power of Oudh and even of the Mughal Emperor." —Dr. Sarkar and Dutta : Modern Indian History, Vol. II, p. 79.

पाती थीं। प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय का कारण उनकी सेना न होकर क्लाइव की कूटनीति थी जिसके कारण मीरजाफर के अधीन सेना ने युद्ध में भाग नहीं लिया और वह चुपचाप तमाशा देखता रहा, किन्तु इस युद्ध में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसमें तो दोनों के बीच अपने प्रभुत्व की स्थापना के लिये युद्ध हुआ। मीर कासिम ने अपनी सेना को योरोपीय ढंग से संगठित किया और वह जानता था कि एक न दिन उसका युद्ध अंग्रेजों से अवश्य होगा। उसकी बारम्बार पराजय के कारण उसकी सेना में दुर्बलता तथा शासन में अव्यवस्था थी।

> **बक्सर के युद्ध के परिणाम**
> (१) भारतीय सेना अंग्रेजी सेना की अपेक्षा अयोग्य।
> (२) अंग्रेजों को राजनीतिक अधिकारों का प्राप्त होना।

(२) अंग्रेजों को राजनीतिक अधिकारों का प्राप्त होना (The English acquired political rights)—इस युद्ध के कारण अंग्रेजों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुये और उनका प्रभुत्व चारों ओर फैल गया। शाहआलम अंग्रेजों की शरण में आ गया और कुछ समय पश्चात् उसने अंग्रेजों के साथ एक संधि की जो इतिहास में इलाहाबाद की संधि के नाम से विख्यात है जिसकी धाराओं तथा महत्व का वर्णन अगले पृष्ठ में किया जायगा।

मीरजाफर का पुनः नवाब होना
(Mir Jafar again becomes Nawab)

अंग्रेजों ने १७६३ ई० में मीरजाफर को पुनः बंगाल की नवाबी पर आसीन कर दिया था। उसके साथ अंग्रेजों ने एक नई सन्धि की जिसके द्वारा यह निश्चय हुआ कि नवाब अपने सैनिकों की संख्या में कमी करेगा, दरबार में अस्थायी रूप से एक रेजीडेन्ट रक्खेगा और नवाब अंग्रेजों से नमक के व्यापार पर केवल २½% चुंगी लेगा। इसके अतिरिक्त मीरजाफर ने ३० लाख रुपया युद्ध का व्यय, २५ लाख रुपया अंग्रेजी फौज को पुरस्कार, १२½ लाख रुपया अंग्रेजी जहाजी बेड़े की क्षतिपूर्ति तथा अन्य अंग्रेजों की क्षतिपूर्ति का वचन दिया। फरवरी १७६५ ई० में उसका देहान्त हो गया।

नवाब नजमुद्दौला
(Nawab Najmuddaula)

मीरजाफर की मृत्यु के उपरान्त कलकत्ता-कौंसिल ने मीरजाफर के पोते के स्थान पर उसके द्वितीय पुत्र नजमुद्दौला को बंगाल का नवाब घोषित किया। कम्पनी ने नये नवाब के साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार एक नायब-सूबेदार का पद बनाया गया और उसकी नियुक्ति का अधिकार कम्पनी ने अपने हाथ में रक्खा। नवाब ने यह भी वचन दिया कि वह उतनी ही सेना रक्खेगा जितनी मालगुजारी वसूल करने के लिये तथा अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये आवश्यक हो। वह कम्पनी को उसकी सेना के व्यय के लिये ५ लाख रुपया प्रति वर्ष देगा। इस प्रकार अंग्रेजों ने उसकी सैनिक शक्ति प्रायः समाप्त कर दी। नजमुद्दौला केवल नाम-मात्र का नवाब था और वास्तविक शासन कम्पनी के हाथ में था। अंग्रेजों ने नायब सूबेदार के पद पर मुहम्मद

रज़ा खाँ को नियुक्त किया। कम्पनी के पदाधिकारियों ने नये नवाब से पर्याप्त धन प्राप्त किया तथा बहुत से उपहार लिये।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और मीरकासिम के बीच संघर्ष के कारण बताओ और तदन्तर जो व्यवस्था हुई उसकी व्याख्या कीजिये। (१९५५)

(२) बंगाल में मीरकासिम तथा अंग्रेजों में झगड़े के क्या कारण थे? वास्तव में दोषी कौन था? (१९५७)

राजस्थान—

(१) "बक्सर के युद्ध का महत्व प्लासी के युद्ध की अपेक्षा भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के लिये अधिक है।" विवेचना करो। (१९५२)

मध्य भारत—

(१) अंग्रेजों से मीरकासिम की हार के कारण वर्णन करो। (१९५७)

(२) बक्सर के युद्ध ने प्लासी के युद्ध के काम को पूरा किया। (१९५१)

(३) 'मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम का परिवर्तन एक नये संघर्ष की निश्चयता साथ लाया। विवेचना करो।

४ क्लाइव की दूसरी गवर्नरी

The Second Governorship of Clive

क्लाइव की बंगाल के गवर्नर के पद पर नियुक्ति
(Appointment of Clive to the Governorship of Bengal)

क्लाइव फरवरी १७६० ई० में स्वास्थ्य के बिगड़ जाने के उपरान्त इंगलैंड चला गया था। उसके जाने के उपरान्त की घटनाओं का वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। पाठकों को स्मरण होगा कि इस बीच में मीर जाफर के स्थान पर मीरकासिम, मीरजाफर का पुनः नवाब होना तथा उसकी मृत्यु पर नज्मुद्दौला बंगाल का नवाब बना। इसी बीच पटना का हत्याकांड तथा बक्सर का युद्ध हुआ। कम्पनी के कर्मचारी पथ-भ्रष्ट हो गये थे। सन् १७६१ में मराठे पानीपत के तृतीय युद्ध में पराजित हो चुके थे। यद्यपि कम्पनी की स्थिति बाह्य दृष्टि से सुदृढ़ हो गई थी, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से अंग्रेजों में बड़ा भ्रष्टाचार फैला हुआ था। वे कम्पनी के हितों का ध्यान न रख अपने स्वार्थ में लिप्त हो रहे थे। कम्पनी के व्यापार के बदले वे अपने निजी व्यापार की ओर विशेष ध्यान दे रहे थे। उन्होंने बहुत सा रुपया बंगाल के नवाब तथा अन्य

व्यक्तियों से घूँस के रूप में प्राप्त किया था। जब ये शोचनीय समाचार इंगलैंड पहुँचे तो इस समस्या पर गहन विचार किया गया। कम्पनी के संचालकों ने क्लाइव को दूसरी बार बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया क्योंकि भारतीयों की वास्तविक दशा का ज्ञान उससे अच्छा किसी अन्य व्यक्ति को प्राप्त नहीं था। कुछ व्यक्तियों ने उसकी नियुक्ति का विरोध किया किन्तु कोर्ट आफ प्रोप्राईटर्स (Court of Proprietors) ने इन सबका ध्यान न रखकर कम्पनी का खोया हुआ सौभाग्य फिर से प्राप्त करने के लिए उसकी ही नियुक्ति की। उसको बंगाल का गवर्नर तथा प्रधान सेनापति बनाया। उसको अपनी जागीर का दस वर्ष तक उपभोग करने का आश्वासन भी दिया गया। शासन-कार्य में सहायता के लिये एक कौंसिल तथा एक सिलेक्ट कमेटी (Select Committee) की भी स्थापना की गई। उसको यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि जब कौंसिल से मिलकर कार्य करने की सम्भावना न रहे तो वह अपनी प्रधानता में चार सदस्यों की सिलेक्ट कमेटी नियुक्त कर कार्य करना प्रारम्भ कर दे। क्लाइव इन अधिकारों से सुशोभित होकर मई १७६५ ई० में बंगाल आया।

क्लाइव के आगमन पर बंगाल की दशा

(Condition of Bengal on the eve of Clive)

क्लाइव के आगमन पर बंगाल की दशा बड़ी शोचनीय थी। आन्तरिक विषयों में कम्पनी के अधिकारियों ने खुले-आम सुधार सम्बन्धी उन नियमों की अवज्ञा की थी जो डाइरेक्टरों ने उनके सामने रखे थे। क्लाइव के शब्दों में "मैं केवल इतना कहूँगा कि अराजकता, अव्यवस्था, उत्कोच, भ्रष्टाचार और शोषण का जैसा दृश्य बंगाल में था ऐसा न तो किसी देश में देखा गया है, न सुना गया है। ऐसे अन्याययुक्त और लोभपूर्ण ढंग से इतने लाभ कभी नहीं प्राप्त किये गये। मीरजाफर की पुनः स्थापना के समय से बंगाल, बिहार और उड़ीसा के तीनों प्रान्त जिनकी आय तीस लाख पौंड स्टर्लिंग है, पूर्णतया कम्पनी के कर्मचारियों के अधीन हैं। उनको मुल्की (नागरिक) तथा फौजी अधिकार प्राप्त थे और उन्होंने नवाब से लेकर छोटे से छोटे जमींदार पर कर लगाया है तथा उनसे वसूल किया है।" सिलेक्ट कमेटी (Select Committee) के अनुसार "प्रेसीडेन्सी (Presidency) में फूट थी और लोग हठी तथा दुर्व्यसनी थे, सरकार में शक्ति का अभाव था, कोष रिक्त था तथा कर्मचारियों में अधीनता, अनुशासन तथा सार्वजनिक कर्त्तव्य की भावना का अभाव था, उद्योग-धन्धों तथा न्यायोचित व्यापार की अवनति हो रही थी किन्तु व्यक्तिगत व्यापार फल-फूल रहा था जिसके कारण लोग बहुत अधिक धन एकत्रित कर रहे थे। यह धन उन लोगों ने अपमानित राजकुमारों तथा असन्तुष्ट प्रजा से वसूल किया था। जनता अनेक कष्टों का सामना कर रही थी।"* इसके अतिरिक्त

* "Presidency divided, headstrong and licentious, a government without nerves, a treasury without money and service without subordination, discipline or public spirit,......amidst a general stagnation of useful industry and of licenced Commerce, individuals were accumulating immense riches which they had ravished from the insulted price and his helpless people who groaned under the united

क्लाइव ने देखा कि चारों ओर भ्रष्टाचार तथा धनलोलुपता का साम्राज्य है। इसका वर्णन उसने इन शब्दों में किया—

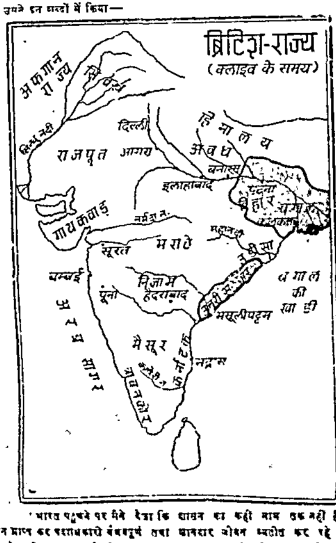

'भारत पहुँचने पर मैंने देखा कि शासन का कहीं नाम तक नहीं है। खूब धन प्राप्त कर पदाधिकारी वैभवपूर्ण तथा शानदार जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी उनका अनुकरण कर उनके ही समान जीवन व्यतीत करते हैं। सैन्य-विभाग में भी ऐसा ही होना आरम्भ हो गया था जिसके कारण अनुशासन तथा व्यवस्था का अन्त हो चुका था। घूसखोरी तथा विलासिता के अधिक

बढ़ जाने से कोई राज्य की स्थापना नहीं कर सकता। कम्पनी के कर्मचारी जनता पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करते हैं। मुझे भय है कि इस देश में अंग्रेजों के नाम पर ऐसा धब्बा लग रहा है जो कभी भी नहीं छूट सकता। महत्वाकांक्षा, विलासिता तथा सफलता के कारण एक नई व्यवस्था का उदय हो गया है और जनता का कम्पनी से विश्वास उठ गया है। यह साधारण न्याय तथा मानवता के भी विरुद्ध है।"

क्लाइव की समस्यायें तथा उनका समाधान
(Problems of Clive and their Solution)

उक्त दशा में क्लाइव दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर मई १७६५ ई० में आया। उसके सामने कई भीषण समस्यायें थीं जिनका सामना उसने बड़ी योग्यता तथा तत्परता से किया। प्रोफेसर रोबर्ट्स के शब्दों में क्लाइव ने 'इस बार भी अपनी स्वाभाविक निश्चयात्मक तत्परता से काम लिया।' उसका पूरा काम तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है जो इस प्रकार है—

> **समस्याओं का समाधान**
> (१) कम्पनी की नागरिक तथा सैनिक सेवाओं में सुधार करना।
> (२) बंगाल की दीवानी प्राप्त करना।
> (३) वाह्य-नीति।

(१) कम्पनी की नागरिकता तथा सैनिक सेवाओं में सुधार करना—(To improve the Civil and Military services of the company)—समस्त स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त क्लाइव ने कुछ सुधार करने आवश्यक समझे। इसके अन्तर्गत उसने निम्न सुधार किये—

(क) प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ (To introduce covenants)—क्लाइव ने भारत आने पर कम्पनी के कर्मचारियों से एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कराने की प्रथा का प्रचलन किया जिसके अनुसार वे किसी प्रकार की भेंट अथवा उपहार किसी से भी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

> **नागरिक तथा सैनिक सुधार**
> (क) प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ।
> (ख) क्लाइव-कोष की स्थापना।
> (ग) व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण।
> (घ) कलकत्ता-कौंसिल सम्बन्धी सुधार।
> (ङ) सैनिक सुधार।

(ख) क्लाइव-कोष की स्थापना (Establishment of Clive-fund)—क्लाइव ने एक कोष की स्थापना उस धन से की जो मीरजाफर ५० लाख रुपया क्लाइव के लिये छोड़ गया था। इस कोष के द्वारा उन भारतीय सिपाहियों तथा सैनिक पदाधिकारियों को सहायता प्रदान की जाती थी जिनका युद्ध में अंग-भंग हो जाता था और वे सैनिक कार्य या अन्य कार्यों के करने के अयोग्य हो जाते थे।

(ग) व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण (To Control private business)—इस समय कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी की परमिट पर अपना निजी व्यापार बिना चुंगी आदि दिये करते थे। इसके कारण कम्पनी के व्यापार को बड़ा धक्का लगता

था और उनकी आय कम हो गई। क्लाइव ने व्यक्तिगत व्यापार बन्द करने का निश्चय किया। क्लाइव की तो यह योजना था कि लाइसेंस लेकर किया जाने वाला व्यापार बिल्कुल बन्द कर दिया जाय और कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन मे वृद्धि कर दी जावे किन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने उसको स्वीकार नही किया। इसके उपरान्त उसने निजी व्यापार प्रथा को एक विशेष ढग से नियमित और सीमित करने का प्रयास किया। उसने कम्पनी के उच्च सेवकों को नमक का व्यापार करने का अधिकार दिया और उनके लाभ को पद के अनुपात से वितरित किया गया। इसके अनुसार गवर्नर की १७,५०० पौंड की, सेना के कर्नल की तथा कौंसिल के सदस्य की ७,००० पौंड वार्षिक आय निश्चित हुई। यह प्रथा दो वर्ष उपरान्त समाप्त कर दी गई और प्रान्त की आय पर कमीशन निश्चित हुआ। इस प्रकार गवर्नर को ४८०० पौंड वेतन के अतिरिक्त १८,५०० पौंड और मिलते थे और अन्य व्यक्तियों को उनके पद के अनुसार और धन मिलता था।

(घ) कलकत्ता-कौंसिल सम्बन्धी सुधार (Reforms regarding Calcutta Council) क्लाइव के उक्त सुधारों का कलकत्ता कौंसिल मे घोर विरोध किया जिससे क्लाइव ने कलकत्ता-कौंसिल मे सुधार करने का निश्चय किया। उसने उसकी उपेक्षा कर सिलेक्ट कमेटी का निर्माण किया जिसके चार सदस्य थे और वह उसका अध्यक्ष था। कौंसिल के कई सदस्यों को कौंसिल से या तो निकाल दिया गया अथवा उनको त्याग-पत्र देने के लिये बाध्य किया गया। उनके स्थान पर उसने मद्रास के व्यक्तियों को पदासीन किया। वह जानता था कि बगाल के कर्मचारियों मे भ्रष्टाचार फैला हुआ है और वह अपनी पुरानी नीति का परित्याग करने के लिए तैयार नही है।

(ङ) सैनिक सुधार (Military Reforms)—क्लाइव ने सैनिक सुधारों की ओर अपना ध्यान दिया। उसने सेना को तीन भागों मे विभक्त किया जिसका एक भाग मुंगेर मे, दूसरा भाग बांकीपुर मे और तीसरा भाग इलाहाबाद में रक्खा। प्रत्येक भाग म यूरोपीय पैदल सेना, एक बन्दूकची दस्ता, छः गुल्म सैनिक तथा एक गुल्म अश्वारोहियों का था। इसके उपरान्त उसने दोहरे भत्ते की प्रथा का अन्त किया। युद्ध काल मे सैनिकों का दोहरा भत्ता मिलता था परन्तु मीरजाफर ने प्लासी के युद्ध के उपरान्त शान्तिकाल मे इस भत्ते के देने का प्रचलन जारी रखा। उसने १७६६ मे इस दोहरे भत्ते को एक आदेश द्वारा देना बन्द कर दिया। इस आदेश से सेना में बड़ा असन्तोष फैला और बहुत से सैनिकों ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। क्लाइव ने शीघ्र ही रिक्त स्थानों पर नई नियुक्तियां कीं और उनके त्याग पत्र स्वीकार कर लिये।

विद्रोह (Rebellion)—क्लाइव के सुधारों के कारण नागरिक तथा सैनिक कर्मचारियों मे बड़ा असन्तोष फैला। उन्होंने विद्रोह करने का निश्चय कर अपने आपको संगठित किया। क्लाइव ने बड़ी तत्परता तथा योग्यता से भारतीय सैनिकों द्वारा इस विद्रोह का कठोरता से दमन किया। उसने विद्रोह की भावना कुचली और विद्रोही दलों को बिल्कुल शांत कर दिया।

(२) बंगाल की दीवानी प्राप्त करना (Grant of Diwani)—क्लाइव ने कम्पनी के लिये शाहआलम से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। दीवानी प्राप्त करने वाले को पूरे प्रान्त की मालगुजारी का निरीक्षण तथा वसूल करने का अधिकार दे दिया जाता था। इस समय से आरम्भ कम्पनी के सेवकों को ही मालगुजारी वसूल करनी थी और सरकारी भुगतान करने के उपरान्त नवाब को ५३ लाख रुपये की निश्चित रकम और मुगल सम्राट शाहआलम को २६ लाख रुपया वार्षिक देना पड़ता था। सन् १७६५ ई० में नवाब ने कम्पनी को 'निजामत' भी सौंप दी। इस प्रकार कम्पनी के हाथ में बंगाल १७६५ ई० तक 'निजामत और दीवानी' दोनों आ गई। कुछ समय तक कम्पनी ने अपने पदाधिकारियों को निजाम तथा दीवान के पद पर नियुक्त नहीं किया था। निजामत के पद पर किसी नवाब होता था जिसको नवाब कम्पनी की राय से नियुक्त करता था और नवाब उसको पदच्युत नहीं कर सकता था। बंगाल में इस पद पर मुहम्मद रजा खाँ काम करता रहा। बिहार में इस पद पर शिताबराय को नियुक्त किया गया। सन् १७६९ ई० में कम्पनी की ओर से स्थानीय भारतीय कर्मचारियों की देख-भाल के लिए अंग्रेज निरीक्षकों की नियुक्ति की गई बाद में ये 'कलक्टर' कहलाने लगे। यही क्लाइव का स्थापित 'दोहरा' प्रबन्ध था। इसका वर्णन विस्तार से अगले पृष्ठों में किया जायेगा।

(३) बाह्य नीति (Foreign Policy)—क्लाइव जब भारत आया तो अंग्रेज मुगल-सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को युद्ध में परास्त कर चुके थे और वे उनकी कृपा के भिखारी थे। मीरकासिम की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई थी। क्लाइव को यह स्थिति देखकर अब य कुछ निराशा हुई होगी, किन्तु क्लाइव ने इस समय बड़ी ही योग्यता का परिचय दिया।

(क) अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न करना (Oudh not included in British empire)—इस समय यदि वह चाहता तो अवध पर अंग्रेजी राज्य स्थापित कर सकता था, किन्तु क्लाइव ने अंग्रेजों के हित में उसको अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर समझा और उसने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा तक ही अपना अधिकार सीमित रखा। यह कार्य क्लाइव ने बड़ी दूरदर्शिता का किया। यदि इस समय क्लाइव अपने अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करता तो उसको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता और अंग्रेजों की शक्ति उस समय इतनी दृढ़ नहीं थी कि वे इतने अधिक भू-भाग पर सुव्यवस्थित शासन की स्थापना करने में सफल हो सकते। क्लाइव अगस्त सन् १७६५ ई० में इलाहाबाद गया और उसने मुगल सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला से १६ अगस्त

(क) अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न करना।
(ख) शाहआलम से और अवध के नवाब से इलाहाबाद की संधि करना।
(ग) शाहआलम के साथ व्यवहार।

सन् १७६५ ई० को एक सन्धि की। यह सन्धि इलाहाबाद की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

(ख) इलाहाबाद की सन्धि (Treaty of Allahabad)—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुई—

(i) युद्ध के समय दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(ii) धन लेकर कम्पनी प्रत्येक समय नवाब की सैनिक सहायता प्रदान करेगी।

(iii) अवध के नवाब को उसका राज्य लौटा दिया गया।

(iv) अवध के नवाब ने कम्पनी को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिये ५० लाख रुपया देने का वचन दिया।

(v) नवाब से कड़ा और इलाहाबाद के जिले लेकर मुगल-सम्राट शाहआलम को दे दिये गये।

(vi) बनारस के राजवंश को स्वीकार कर लिया गया और वह अवध-राज्य के अधीन माना गया।

(vii) अवध के नवाब ने यह भी विश्वास दिलाया कि वह मीर कासिम और सुमरु को अपने राज्य में आश्रय प्रदान नहीं करेगा।

इलाहाबाद की सन्धि का प्रभाव (Results of the Treaty of Allahabad)—यह समझौता बहुत ही अधिक स्थायी सिद्ध हुआ। लार्ड डलहौजी द्वारा अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने से पूर्व तक अवध एक मध्यस्थ राज्य के रूप में बना रहा। इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा अवध अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में पूर्णतया आ गया और इस समय के उपरान्त अंग्रेजों ने उसके साथ निकटतम सम्बन्ध बनाये रखा जिससे वे मरहठों के विरुद्ध उसका प्रयोग न कर सकें तथा उसको उनके विरुद्ध संरक्षण के रूप में प्रयोग किया जा सके।

(ग) शाहआलम के साथ व्यवहार (Treatment with Shah Alam)—इसके बाद क्लाइव ने भगोड़े मुगल सम्राट शाहआलम की ओर ध्यान दिया। इस समय मुगल-सम्राट के पास केवल उपाधि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। इसी उद्देश्य से उसको कड़ा और इलाहाबाद के प्रदेश दिये गये और उसको २६ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन देने का वचन दिया। इसके बदले में उसने कम्पनी को दीवानी वसूल करने का अधिकार प्रदान किया। क्लाइव ने उससे उत्तरी सरकार के लिये भी फरमान प्राप्त किया। इस प्रकार क्लाइव ने शाहआलम के साथ बड़ा नम्रतापूर्ण व्यवहार किया किन्तु उसका यह व्यवहार बड़ा ही दूरदर्शितापूर्ण था क्योंकि 'आगे बढ़ने का विचार ...... उत्साहपूर्ण होकर भी इतना महान तथा व्यर्थ है कि जब तक कम्पनी के हित की समस्त योजना पूर्ण तरह से पहले से निर्धारित न की जाये तब तक किसी भी समझदार गवर्नर द्वारा कौंसिल द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।' उसने इस समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स से भी यही प्रार्थना की थी कि 'वे अपने अधीनस्थ प्रदेशों के विस्तार के लिये विचलित न हों।' उसका यह मत उचित ही था, क्योंकि बहुत कुछ वर्षों तक अंग्रेजों को अपने प्रदेशों को पूर्णतया सुरक्षित रखना बड़ा कठिन हो गया था।

क्लाइव की मृत्यु
(Death of Clive)

सन् १७६७ ई० में क्लाइव रोगग्रस्त होने के कारण इङ्गलैंड वापिस चला गया। वहाँ पहुँचकर उसके शत्रुओं ने उसके विरुद्ध एक संगठित दल की स्थापना की जिसने उसको हर प्रकार से देश में बदनाम किया। उसके कार्यों की समीक्षा के लिये एक सिलेक्ट कमेटी का निर्माण किया गया जिसने क्लाइव के कार्यों की तीव्र निन्दा की और उसको दोषी ठहराया, किन्तु क्लाइव ने सदा अपने आपको निर्दोष बतलाया। इंगलैंड की पार्लियामेंट में इस पर खूब वाद-विवाद हुआ, किन्तु अन्त में उसकी सेवाओं का ध्यान कर उसको आदरपूर्वक अपराध-मुक्त घोषित किया गया। उसको बड़ा दुख हुआ कि उस पर लोगों ने बड़े कठोर आरोप लगाए। मुक्त होने पर उसको प्रसन्नता अवश्य हुई, किन्तु वह आंशिक थी। उसकी मृत्यु २ नवम्बर सन् १७७४ ई० में हुई जब उसने स्वयं आत्म-हत्या की।

क्लाइव का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन
(Character and Estimate of Clive)

क्लाइव ने कम्पनी तथा अंग्रेज जाति की बड़ी सेवा की। उसके ही कारण अंग्रेज भारत में राज्य स्थापित करने में सफल हुये और इसीलिये वह भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक माना जाता है। प्रोफेसर रोबर्ट्स के अनुसार "क्लाइव अपने विशेष गुणों के कारण उस अभिनय के लिये असाधारण रूप से उपयुक्त था जो उसको भारतीय रंगमंच पर करना था।"

क्लाइव के गुण
(Merits of Clive)

(१) व्यक्तिगत गुण (Personal qualities)—वह बड़ा परिश्रमी, बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति था। उसकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। वह भीषण से भीषण परिस्थिति का सामना बड़े धैर्य तथा उत्साह से करने की क्षमता रखता था।

(२) कुटिल राजनीतिज्ञ (A great diplomat)—वह एक कुटिल राजनीतिज्ञ था और भारतीय परिस्थिति का उसको पूर्ण ज्ञान था। उसने भारतीयों के चरित्र का पूर्ण अध्ययन कर लिया था। वह समझ गया था कि अंग्रेज तभी सफलता प्राप्त कर सकते हैं जबकि भारतीयों के अन्दर फूट डाल दी जावे और विरोधी तत्वों को अपनी ओर मिला लिया जावे। उसकी इस नीति को अंग्रेज मानते रहे। अतः उसकी यह नीति अंग्रेजी साम्राज्य की आधारशिला बन गई।

(३) योग्य सेनापति (Capable general)—कुछ विद्वानों ने उसकी तुलना सिकन्दर तथा नेपोलियन से सेनापति के रूप में की है। यह सत्य है कि वह अर्काट तथा प्लासी के युद्ध में सफल हुआ। किन्तु वास्तव में प्लासी का युद्ध निर्णायक सिद्ध होते हुये भी युद्ध न होकर केवल

> **क्लाइव के गुण**
> (१) व्यक्तिगत गुण।
> (२) कुटिल राजनीतिज्ञ।
> (३) योग्य सेनापति।
> (४) कुशल-बुद्धि तथा दृढ़-प्रतिज्ञ।

एक षड्यन्त्र था जिसमें वह पूर्णतया सफल हुआ। इतिहास लेखक ओर्म ने लिखा है कि *जब प्लासी का युद्ध हो रहा था तब क्लाइव सो रहा था।* अतः स्पष्ट है कि प्लासी की विजय सांग्रामिक जीत न थी वरन् 'वह प्रभाव पर पुरुषार्थ की और मूर्खता पर धूर्तता की जीत थी'। इस सम्बन्ध में चार्ल्स ने सत्य ही कहा है कि "क्लाइव की योजनाओं में योग्यतापूर्ण संयोजन का प्रायः अभाव है और कुछ अवसरों पर तो वह सर्वथा स्पष्ट सैनिक सावधानियों की भी उपेक्षा करता जान पड़ता है। शत्रु को ढूंढने और उसे पा लेने पर एकाग्र शूरवीरता के साथ उसका उन पर टूट पड़ना उसका आधारभूत सिद्धान्त जान पड़ता है और उसकी सफलता का मूल कारण अध्ययनपूर्ण योजनाओं और निपुण कूटनीति से कहीं अधिक उसकी व्यक्तिगत निडरता और पूरे विश्वास के साथ अनगिनत मनुष्यों को प्रेरणा देने की शक्ति है।"

(४) तुरन्त-बुद्धि तथा दृढ़ प्रतिज्ञ—उसकी इस योग्यता के कारण फ्रांसीसियों की शक्ति का ह्रास हुआ। वह तुरन्त-बुद्धि था। जब फ्रांसीसी तथा चांदा साहेब मुहम्मद अली को त्रिचनापली में घेरे थे और अंग्रेज किंकर्त्तव्यमूढ़ थे, उसी समय उसने मद्रास कौंसिल का ध्यान कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने की ओर आकर्षित किया जिसने पूर्णतया पासा पलट दिया और यहीं से वास्तव में अंग्रेजों की विजय का सूत्रपात्र होता है। यदि अंग्रेजों को यह विजय प्राप्त नहीं होती तो फ्रांसीसियों की शक्ति बहुत बढ़ जाती और उनके हाथ में भारत की राजसत्ता भी आ जाती। उससे फ्रांसीसी बहुत डरने लगे थे। अंग्रेजों में वह ही उस समय एक योग्य व्यक्ति था और उसने ही उनको नीचा दिखाया और जिससे फ्रांसीसियों को बड़ा आघात पहुँचा। उसने उनके साम्राज्य-विस्तार तथा राज्य की स्थापना की योजना को असफल कर दिया। *क्लाइव ने उस समय भी अदम्य उत्साह, धैर्य तथा साहस का परिचय दिया जब उसके* नागरिक तथा सैनिक सुधारों के कारण कम्पनी के कर्मचारियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। उसका सबसे बड़ा गुण यह था कि वह अपनी योजनाओं को विरोध होने पर भी करने से कभी नहीं हिचकता था। उसने कलकत्ता कौंसिल के विरोधों का ध्यान न कर अपनी योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया।

प्रोफेसर रोबर्ट्स (Professor Roberts) ने कहा है कि—"युद्ध-भूमि पर उसका अदम्य शौर्य, राजनीतिक संकट के अवसर पर उसका ओजस्वी साहस और उद्दण्डता, क्रुद्ध विरोधी और विद्रोही आश्रितों का सामना करने में उसकी नैतिक दृढ़ता, वाद-विवाद में उसकी भाषा का ओज और बल इन्हीं सब विशेषताओं ने लार्ड मैकाले की यह उक्ति सत्य कर दी है कि हमारे द्वीप ने शायद ही कभी युद्ध-भूमि और विचार-भवन दोनों ही स्थानों पर वस्तुतः उससे अधिक महान् व्यक्ति को जन्म दिया हो।"

लार्ड कर्जन (Lord Curzon) ने क्लाइव के सम्बन्ध में लिखा है कि—'अंग्रेज जाति में क्लाइव एक महान् आत्मा का व्यक्ति था। उसकी गणना उन व्यक्तियों में की जाती है जो *मानव जाति के निर्माण के लिए इस विश्व में* अवतरित होते हैं। क्लाइव एक मनुष्य था और मनुष्यों का वह स्वामी था......। वह इस देश में दोषारोपण करने वालों तथा प्रतिद्वन्द्वियों के विरुद्ध ऐसे साहस के साथ खड़ा रहा जिसका आद्योपान्त

दमन न हो सका। क्लाइव ऐसा व्यक्ति था जो अनेक आपत्तियों की बाढ़ से उसी प्रकार ऊँचा उठा रहा जिस प्रकार जहाज समुद्र के प्रहार से ऊँचा उठा रहता है।"

स्टेफन होप (Stephan Hope) के शब्दों में—"कोई भी वस्तु उसको (क्लाइव) आतंकित नहीं कर पाती थी, उसका विवेक किसी बात में मन्द नहीं पड़ पाया था। उसका निर्णय उसी क्षण का निर्णय होता था और सदैव ठीक होता था।"

क्लाइव के दोष
(Defects of Clive)

उक्त गुणों के होने पर भी उसका नैतिक चरित्र उन्नत नहीं था। वह चरित्रहीन था। उसने बंगाल में अनेक भद्र महिलाओं को अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने अमीचन्द के साथ बड़ा धोखा किया। इसने वाट्सन (watson) के हस्ताक्षर बनावे और जाली संधि-पत्र के द्वारा अमीचन्द को धोखे में रखा। उसको धन से बड़ा प्रेम था। उसने हर सम्भव रूप से भारत से धन का उपार्जन किया। वह लम्बी-लम्बी भेंट और रिश्वत स्वीकार करने का आदी था जिनको वह उपहार के रूप में मानता था। इसका प्रभाव कम्पनी के कर्मचारियों पर अच्छा नहीं पड़ा। इसके कारण घूँसखोरी और भ्रष्टाचार समस्त बंगाल में फैल गया। दूसरी बार बंगाल का गवर्नर होने पर उसने आवश्यक सुधारों के करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि बाद के जीवन में उसका मोह धन के प्रति अवश्य कम हो गया था, किन्तु उसके पूर्व के कारनामे न मिट सके और वे अपनी छाप अंग्रेजी कर्मचारियों पर छोड़ गये। सुधारों के उपरान्त भी व्यक्तिगत व्यापार पूर्ववत चलता रहा और उपहार आदि का प्रचलन भी जारी रहा। उसने दोहरे शासन-प्रबन्ध की स्थापना की जिसके कारण बंगाल की जनता को विशेष कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सन् १७७० ई० में बंगाल में एक ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा जिसने जनता को बड़ा कष्ट पहुँचाया और उसके लिये कम्पनी की नीति ही स्पष्ट कारण थी।

अतः यह कहा जा सकता है कि क्लाइव में व्यक्तिगत अवगुण तथा गुण दोनों का सम्मिश्रण था, किन्तु उसने अपने देश के प्रति जो कार्य किया वह महान् था और उसी कारण इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने उसको उसके विरुद्ध लगाये गये अपराधों तथा आरोपों से मुक्ति प्रदान की। वास्तव में वह भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक था। जब वह भारत से गया उस समय बंगाल पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार था। अवध का नवाब तथा मुगल-सम्राट शाहआलम उनके आश्रित थे। दक्षिण में भी उनका प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत हो चुका था।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) बंगाल प्रान्त की गवर्नरी के पद पर दूसरी बार गवर्नर पर क्लाइव को उसके शासन-काल में कितनी बार सफलता प्राप्त हुई ? (१९४६)

राजस्थान—

(१) क्लाइव की द्वितीय गवर्नरी के पूर्व मीर जाफर की दुशासन-व्यवस्था के क्या कारण थे ? क्लाइव ने इन दोषों का अन्त किस प्रकार किया ? (१९५२)

(२) भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना में क्लाइव के कार्यों का मूल्यांकन करो।

५ शासन का पुनर्निर्माण

Reconstruction of the Administration

क्लाइव के जाने के उपरान्त बंगाल की दशा
(Condition of Bengal at the departure of Clive)

क्लाइव सन् १७६७ ई० में स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण स्वदेश चला गया। उसके स्थान पर वार्स्लट बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ और उसके उपरान्त सन् १७६९ ई० में कार्टियर उसके पद पर आसीन हुआ, किन्तु दोनों में इतनी योग्यता नहीं थी कि वे बंगाल के शासन को उन्नत करने में सफल होते। वास्तव में इन दोनों व्यक्तियों के शासन-काल में बंगाल की अवस्था पहले से भी अधिक शोचनीय हो गई और क्लाइव द्वारा किये गये सुधारों का देश की दशा को उन्नत करने मे कोई परिणाम नहीं निकला। क्लाइव ने बंगाल मे द्वैध-शासन (Dual Government) की स्थापना की थी जिसके दुष्परिणाम इनके शासन-काल में स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगे थे। इस शासन के अन्तर्गत बंगाल का शासन नवाब और अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था। निजामत-विभाग पर अंग्रेजों का अधिकार था और दीवानी वसूल करने का कार्य अंग्रेजों के हाथ में था। प्रान्त में सर्वशक्तिशाली शक्ति का अभाव होने के कारण शासन-व्यवस्था शिथिल हो गई जिसके कारण समस्त प्रान्त में अराजकता सी फैल गई। कम्पनी तथा नवाब के कर्मचारियों में प्रायः एक दूसरे से विरोध हो जाता था। कम्पनी के कर्मचारी बड़े उद्दण्ड थे और वे नवाब की आज्ञाओं की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। इस दोहरे प्रबन्ध के कारण जनता की अवस्था बहुत खराब हो गई। कम्पनी को प्रत्येक समय धन की आवश्यकता रहती थी जिसके कारण मालगुजारी बड़ी कठोरता से वसूल की जाती थी। इसके अतिरिक्त जमींदारों को अधिक मालगुजारी देनी पड़ती थी। वे किसानों से अधिक लगान वसूल करने लगे। इसके अतिरिक्त लगान वसूल करने वाले कर्मचारियों की देख-भाल नहीं होती थी जिसके कारण वे मनमाने अत्याचार प्रजा पर करते थे। इसके अतिरिक्त इस शासन में भारतीय व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को भी बड़ा आघात पहुँचा। देशी कारीगरों को बाध्य किया जाता था कि वे अपना माल अंग्रेजों को बेचें।

अंग्रेजों के कर्मचारी कारीगरों को जेलों में बन्द कर दिया करते थे जब वे उनकी आज्ञाओं का पालन नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त कम्पनी के गुमाश्ते देशी कारीगरों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं का मूल्य निर्धारित किया करते थे। वे उनका मूल्य अधिकतर बाजार भाव से कम रखते थे। इस प्रकार बहुत से कारीगरों ने इन कठिनाइयों को देखकर अपना काम बन्द कर दिया, किन्तु जीविकोपार्जन का कोई अन्य साधन भी तो नहीं था। इस कारण किसान और कारीगरों की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई और उनको बेकार रहना पड़ता था।

इस दशा का वास्तविक तथा सत्य वर्णन रिचर्ड बीचर (Richard Bechar) ने अपने पत्र द्वारा किया जो उसने २४ मई, सन् १७६६ ई० को डाइरेक्टरों की गुप्त समिति के नाम भेजा। यह पत्र इस प्रकार था—

"जिस अंग्रेज के पास विवेक है उसको यह सोचकर अवश्य दुःख होगा कि जिस समय से कम्पनी के अधिकार में दीवानी वसूल करने का कार्य आया है उस समय से इस देश के लोगों की दशा पहले से बहुत ही अधिक शोचनीय हो गई है...। यह सुन्दर देश जो अत्यन्त निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के अन्तर्गत भी समृद्ध तथा खुशहाल था, अपने विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा था।"*

गवर्नर वल्सर्ट (Governor Walsert) भी इस प्रणाली को पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने निम्न शब्दों में अपने विचार इस सम्बन्ध में इस प्रकार प्रगट किये—

"""कम्पनी के नौकर बर्बरता से ऐसे कांड, जिनकी समता किसी भी देश के इतिहास में नहीं मिल सकती, करने के पश्चात् धन-राशि से लदे हुये इङ्गलैंड पहुँचे हैं"""। बंगाल की शासनकारिणी के रूप में तथा देश के सम्पूर्ण व्यापार की एकाधिकारिणी के रूप में कम्पनी के विभिन्न हित प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिशाओं में कार्य कर रहे हैं और वे एक दूसरे के लिये घातक सिद्ध हो रहे हैं। अतः किसी नवीन व्यवस्था के बिना दशा अवश्य ही बिगड़ती जायगी। यदि कम्पनी को अपनी वर्तमान प्रणाली के अनुसार कार्य करने दिया गया तो वह अपना विनाश स्वयं कर बैठेगी।"

कम्पनी के कर्मचारियों की मनमानी को रोकने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गई। ये ही निरीक्षक बाद में कलक्टर (Collector) के नाम से विख्यात हुए, किन्तु इन्होंने स्वयं निजी व्यापार करना आरम्भ कर दिया जिसके कारण भ्रष्टाचार और भी अधिक व्यापक रूप में फैल गया। इन सब कार्यों का परिणाम यह हुआ है कि जनता ने बिलख-बिलख कर जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया और उसके दुःख-दर्द को दूर करने वाला तो क्या सुनने वाला भी कोई नहीं था।

* "It must give pain to an 'Englishman who have reason to think that since the accession of the Company to the Diwani the condition of the people of this country has been worse than it was before......This fine country which flourished under the most despotic and arbitrary Government, is verging towards its ruin."
—Quoted by Ramsay Muir.

सन् १७०० का दुर्भिक्ष
(Famine of the year 1700)

उक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त बंगाल की भोली-भाली जनता पर एक पहाड़ और टूटा। यह १७०० ई० का दुर्भिक्ष था जिसने मरती हुई जनता को शीघ्र मरने के लिए अपना तांडव नृत्य करना आरम्भ किया। लार्ड मैकाले (Lord Macauley) ने इस दुर्भिक्ष के सम्बन्ध मे इस प्रकार कहा है—

"१७०० की गर्मियों में वर्षा नहीं हुई, भूमि कठोर हो गई, तालाब सूख गये, नदियां कावपेया रह गईं और गंगा की समस्त घाटी मे ऐसा दुर्भिक्ष छा गया, जैसा केवल उन देशों के निवासियों को ज्ञात है, जहां के परिवार भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों मे खेती करके अपना पेट पालन करते थे। कोमल और निर्बल सूर्यपश्या स्त्रियां जो कभी घर की दहलीज से बाहर नहीं निकली थीं सड़कों पर आकर यात्रियों के सामने जमीन को छूती थीं और पेट भरने के लिये मुट्ठी भर चावल मांगती थीं। विजेता अंग्रेजों के मकानों और उद्यानों के समीप, हुगली के प्रवाह से दिन प्रतिदिन हजारों दुर्भिक्ष-पीड़ितों की लाशें बहकर समुद्र में जाती थीं। मरते हुये और मरे हुओं से कलकत्ते के बाजारों का रास्ता तक भर गया था। निर्बल लोग अपने सम्बन्धियों की लाशों को मरघट तक या पवित्र नदी तक ले जाने मे असमर्थ थे, और न ही वह उन गीधों और स्यारों को भगा सकते थे, जो दिन-दहाड़े लाशों को नोचते या खाते थे। कितने व्यक्ति मरे, इसका पूरा पता नहीं लग सका, परन्तु अनुमान है कि मृतकों की संख्या लाखों होगी।"

इस सम्बन्ध में एक अन्य कर्मचारी ने लिखा था कि 'दुर्दशा के जो दृश्य देखने में आये और अब भी आ रहे हैं; वे इतने बीभत्स हैं कि उनका वर्णन करना असम्भव है। वास्तविक बात यह है कि कई स्थानों पर जीवित प्राणी मुर्दा प्राणियों को खाकर जीवित रहे।"

हम इन्द्र विद्यावाचस्पति से सहमत हैं कि लार्ड मैकाले (Lord Macauley) ने जो इस दुर्भिक्ष का उत्तरदायित्व अनावृष्टि पर रखा है, यथार्थ नहीं है। वास्तव में अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि के कारण ऐसा भीषण दुर्भिक्ष नहीं पड़ सकता जिसके कारण ३० लाख व्यक्ति भूख और बीमारी के कारण मर गये। शासन की लोलुपता और उपेक्षा से ही ऐसे भयानक परिणाम निकल सकते हैं। उस समय कम्पनी और उसके कर्मचारियों के कुकृत्यों के कारण बंगाल को इतनी भयानक दुर्दशा में से गुजरना पड़ा।

कम्पनी की शोषण नीति (Company's policy of exploitation)—वास्तव मे कम्पनी की शोषण नीति के कारण बंगाल की जनता की दशा इतनी शोचनीय हो गई कि वह अकाल के छोटे से धक्के को सहन नहीं कर सकी। अंग्रेजों ने जनता को निर्धन बना दिया जिसके कारण अनावृष्टि के होते ही बंगाल में मृत्यु का तांडव-नृत्य आरम्भ हो गया।

कम्पनी के कर्मचारियों का अन्याय (Tyranny of the servants of the

Company)—इसके अतिरिक्त कम्पनी के कर्मचारियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाकर बहुत सा चावल खरीद लिया और अधिक दामों पर बेचना आरम्भ किया। इस समय कम्पनी की ओर से लगान बड़ी क्रूरता से वसूल किया गया। कम्पनी ने केवल ५ प्रतिशत लगान में कमी की और अगले वर्ष १० प्रतिशत लगान बढ़ा दिया गया। इस प्रकार यह स्वीकार करना होगा कि इस दुर्भिक्ष में कम्पनी के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का ही हाथ था।

वारेन हेस्टिंग्ज का बंगाल का गवर्नर होना
(Warren Hastings becomes the Governor of Bengal)

जब कार्टियर किसी प्रकार का भी सुधार करने में असमर्थ रहा तो कम्पनी के डाईरेक्टरों (Directors) ने मद्रास-कौंसिल के सदस्य वारेन हेस्टिंग्ज को सन् १७७२ ई० में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया।

वारेन हेस्टिंग्ज का प्रारम्भिक जीवन
(Early Career of Warren Hastings)

वारेन हेस्टिंग्ज का जन्म ७३२ ई० में हुआ था। कुछ ही समय उपरान्त हेस्टिंग्ज की माता का देहान्त हो गया था। इससे उसके पिता ने भी उसका परित्याग कर दिया। बालक हेस्टिंग्ज का भार उसके चाचा पर आ पड़ा जिसने उसकी शिक्षा की उचित व्यवस्था की। हेस्टिंग्ज योग्य और प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी था। थोड़े दिनों बाद उसके चाचा की मृत्यु होने के कारण उसके विद्यार्थी जीवन का अन्त हुआ और वह निराश्रय हो गया। वह अपने एक दूर के सम्बन्धी की शरण लेने पर बाध्य हुआ। उसका वह सम्बन्धी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संचालक था। उसने कम्पनी में हेस्टिंग्ज को क्लर्क के पद पर नियुक्त करवाया। सन् १७५० ई० में केवल अट्ठारह वर्ष की अवस्था में वह क्लर्क बनकर कलकत्ता आया। कम्पनी की नौकरी के साथ-साथ वह

वारेन हेस्टिंग्ज

अपना व्यक्तिगत व्यापार भी करने लगा जैसे लगभग कम्पनी के समस्त कर्मचारी उस समय कर रहे थे। उसने अपने कार्य को बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया। सन् १७५३ ई० में वह कलकत्ते से कासिम बाजार भेज दिया गया और वहां से वह अपनी योग्यता के आधार पर १७५५ ई० में कासिम बाजार की कोठी की कौंसिल का सदस्य नियुक्त कर दिया गया। सन् १७५६ ई० के प्रारम्भ में जब सिराजउद्दौला ने कासिम बाजार को अपने अधिकार में किया तो वह बन्दी बना लिया गया था, किन्तु कुछ समय उपरान्त वह मुक्त कर दिया गया। उसने उस षड्यन्त्र में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था, जिसके द्वारा मीर जाफर को नवाब बनाया जाना था। मीर जाफर के नवाब बनने पर उसकी नियुक्ति मीर जाफर के दरबार में रेज़ीडेन्ट (Resident) के पद पर

कर दी गई और वह मुर्शिदाबाद में रहने लगा। यहाँ रह कर उसने तत्कालीन परिस्थिति का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। सन् १७६१ ई० में वह कलकत्ता-कौंसिल का सदस्य बना। बक्सर के युद्ध तक उसने इस पद पर बड़ी योग्यता तथा ईमानदारी से कार्य किया यद्यपि कम्पनी के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ था। वह स्वदेश वापिस चला गया। ऐसा कहा जाता है कि इस समय उसके पास ३०,००० पौंड थे। उसकी प्रतिभा, कार्य-क्षमता एवं वाक् पटुता से इङ्गलैंड की पार्लियामेंट बहुत प्रभावित हुई। कम्पनी के संचालकों पर उसकी ईमानदारी का विशेष प्रभाव था। उसने फिर कम्पनी की सेवा में काम करने का निश्चय किया। सन् १७६६ ई० में वह मद्रास कौंसिल (Madras Council) का सदस्य बनाकर भारत भेजा गया। उसने अपना कार्य बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया यद्यपि इस काल में उसने राजनीतिक कार्यों में कोई भाग नहीं लिया। सन् १७७२ ई० में वह बंगाल के गवर्नर के पद पर आसीन हुआ।

वारेन हेस्टिंग्ज की कठिनाइयाँ
(Difficulties of Warren Hastings)

जैसा उक्त पंक्तियों में उल्लिखित है वारेन हेस्टिंग्ज सन् १७७२ ई० में कार्टियर के पश्चात् बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया। उसकी नियुक्ति का प्रमुख कारण उसका भारतीय परिस्थिति का ज्ञान था। कम्पनी ने उसको तत्कालीन परिस्थिति में सुधार करने के पूर्ण अधिकारों से सुशोभित किया था। पद-भार सम्भालते ही उसने स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और सुधारों की एक विस्तृत योजना का निर्माण किया। इससे पूर्व कि उसके सुधारों पर प्रकाश डाला जाये यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि उसके सामने जो समस्यायें तथा कठिनाइयाँ थीं उनका विशद तथा विस्तृत अध्ययन किया जाय जिससे उसके सुधारों का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है। हेस्टिंग्ज के सामने मुख्य समस्यायें निम्नलिखित थीं—

> **वारेन हेस्टिंग्ज की कठिनाइयाँ**
> (१) बंगाल में अराजकता।
> (२) द्वैध शासन।
> (३) विरोधियों द्वारा उत्पन्न की गई समस्यायें।

(१) बंगाल में अराजकता (Anarchy in Bengal)

(२) द्वैध शासन (Dual Government),

(३) विरोधियों द्वारा उत्पन्न की गई समस्यायें (Problems created by his opponents)।

निम्न पंक्तियों में इनके सम्बन्ध में अलग-अलग प्रकाश डाला जायगा—

(१) बंगाल में अराजकता (Anarchy in Bengal)—बंगाल में चारों ओर अराजकता का राज्य था। नवाब शक्तिहीन था। जनता के सुख तथा समृद्धि और शान्ति की ओर न तो कम्पनी के पदाधिकारी और न नवाब की ओर से ही ध्यान दिया जाता था। नवाब की शक्ति का अन्त होने पर वह स्थान रिक्त (Vacant) हो गया, कम्पनी ने इस रिक्त स्थान की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। १७७० ई० के दुर्भिक्ष ने तो जनता की पीठ ही तोड़ दी। इस परिस्थिति में जनता को असहनीय कष्ट सहन करने पड़े।

(२) द्वैध शासन (Dual Government)—इस समय बंगाल में द्वैध शासन था। इस शासन का वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। उसके आर्थिक तथा राजनीतिक परिणाम जनता के लिये बड़े हानिकारक सिद्ध हुये। उसके द्वारा जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। इसका समाधान नितान्त आवश्यक था, क्योंकि जनता में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत होने लगी थी।

(३) विरोधियों द्वारा उत्पन्न की गई समस्यायें (Problems created by his opponents)—इस समय तक मरहठों ने अपनी शक्ति का संगठन कर लिया था और उन्होंने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। शाहआलम मरहठों के संरक्षण में चला गया था। मैसूर के राजा हैदरअली के भी अंग्रेजों के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था और उनको भारत से निकालने के लिये प्रयत्नशील था। उसने अपनी सेना का संगठन योरोपीय ढंग से करना आरम्भ कर दिया था। निजाम के भी अंग्रेजों से सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।

वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार
(Reforms of Warren Hastings)

अपनी कठिनाइयों तथा समस्याओं को भली प्रकार समझने के उपरान्त हेस्टिंग्ज ने सुधारों की ओर ध्यान दिया, और एक विशद योजना का निर्माण किया। उसके सुधारों को पाठकों कि सुविधा के लिये निम्न शीर्षकों में विभाजित किया गया है—

(क) द्वैध शासन का अन्त (Abolition of Dual Government)

(ख) व्यापारिक सुधार (Commercial Reforms)

(ग) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार (Revenue Reforms)

(घ) न्याय-विभागों में सुधार (Judicial Reforms)

(ङ) अन्य सुधार (Other Reforms)।

निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग वर्णन किया जायगा—

(क) द्वैध शासन का अन्त (Abolition of Dual Government)—

हेस्टिंग्ज के सुधार
(क) द्वैध-शासन का अन्त।
(ख) व्यापारिक सुधार।
(ग) मालगुजारी संबंधी सुधार।
(घ) न्याय-विभाग में सुधार।
(ङ) अन्य सुधार।

वास्तव में हेस्टिंग्ज द्वैध शासन का अन्त करने के उद्देश्य से ही प्रधानतः बंगाल की गवर्नरी के पद पर नियुक्त किया गया था। द्वैध शासन के कारण पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गये थे जिनका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। उसने द्वैध-शासन की समाप्ति का आदेश जारी किया। इस कार्य को पूर्ण करने के अभिप्राय से उसने नायब नाजिम के पदों को समाप्त कर दिया। बंगाल में इस पद पर मुहम्मद रज़ा खां और बिहार में इस पद पर सिताब राय कार्य कर रहे थे। दोनों पर मुकदमा चलाया गया, किन्तु बाद में वे आदरपूर्वक छोड़ दिये गये। (i) कम्पनी ने स्वयं अपने सेवकों द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों में मालगुजारी वसूल करवानी आरम्भ कर दी। इस प्रकार

कम्पनी 'दीवान के रूप में' कार्य करने लगी। (ii) भारतीय मालगुजारी वसूल करते थे, परन्तु उसने उनको उनके पदों से अलग कर उनके स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त किया। (iii) मालगुजारी वसूल करने के लिए एक रिवेन्यु बोर्ड (Revenue Board) की स्थापना की गई। (iv) सैद्धान्तिक रूप से शासन का समस्त उत्तरदायित्व नवाब पर था। उसने नवाब को शासन के उत्तरदायित्व से अलग कर दिया। (v) वह कम्पनी का पेंशनर बना दिया गया और उसको १६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में दिया जाने लगा। पाठकों को याद होगा कि १७६५ ई० की सन्धि के अनुसार कम्पनी नवाब को ५३ लाख रुपया देती थी, सन् १७६६ में वह ४१ लाख तथा सन् १७६६ ई० में वह धन ३२ लाख रुपया कर दिया और अब वह धन १६ लाख रुपया कर दिया गया। (vi) नवाब के अल्प-वयस्क होने के कारण मीर-जाफर की विधवा पत्नि मुन्नी बाई उसकी संरक्षक नियुक्त की गई और नन्दकुमार के पुत्र गुरुदास को उसके प्रबन्धक के पद पर नियुक्त किया गया। मुन्नी बाई ने हेस्टिंग्ज को १½ लाख रुपया अपनी कृतज्ञता-प्रदर्शन करने के लिये दिया। (vii) उसने मितव्ययिता करने के लिये कुछ अनावश्यक वैतनिक पदों की समाप्ति कर दी। शासन की उचित व्यवस्था करने के उद्देश्य से कलकत्ता राजधानी बनाई गई तथा राजकोष कलकत्ता लाया गया।

(ख) व्यापारिक सुधार (Commercial Reforms)—बंगाल की व्यापारिक स्थिति कम्पनी के एकाधिकार के कारण बड़ी शोचनीय हो गई थी। छोटे व्यापारियों का व्यापार ठप्प हो गया था। कम्पनी के कर्मचारी व्यक्तिगत व्यापार में मस्त थे। वस्तुओं का मूल्य भ्रष्टाचार के कारण बहुत बढ़ गया था। हेस्टिंग्ज ने शीघ्र ही इस ओर ध्यान दिया और विभिन्न उपायों द्वारा उनको दूर किया। इससे कम्पनी को भी लाभ हुआ तथा छोटे-छोटे व्यापारियों को भी। इस दिशा में उसने पर्याप्त सुधार किये जिनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—

(१) चुङ्गी में कमी (Reduction in Octrol)—हेस्टिंग्ज ने चुंगी की दर २½ प्रतिशत नमक, पान, तम्बाकू और सुपारी के अतिरिक्त निश्चित कर दी। यह समस्त भारतीय तथा योरोपीय व्यापारियों के लिये समान हो गई। इससे पूर्व अंग्रेजों को बहुत सी वस्तुओं पर चुंगी नहीं देनी पड़ती थी और भारतीय व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी। इसके कारण भारतीय व्यापारी अंग्रेज व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। उनके माल के दाम अंग्रेज व्यापारियों के दामों से अधिक रहते थे। इस सुधार के कारण बड़े दोष का अन्त हुआ।

> **व्यापारिक सुधार**
> (१) चुंगी में कमी।
> (२) दस्तक प्रथा का अन्त।
> (३) चौकियों की समाप्ति।
> (४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण।
> (५) बैंक की स्थापना।
> (६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त।
> (७) दादनी का अन्त।
> (८) व्यापारिक संधियां।

(२) दस्तक-प्रथा का अन्त

(Abolition of Dastak)—हेस्टिंग्ज ने दस्तक प्रथा समाप्त कर दी। इसके अनु[illegible] पनी को माल बिके कारणों को नहीं मिलती थी वरन् भारतीयों को मिलती थी [illegible] ने दिन रात में कुछ रुपये पर कागजों को देते थे। इसका लाभ यह हुआ कि अब से पूं[illegible] को माल बीचे कम्पनी को प्राप्त होने लगा।

(३) चौकियों की समाप्ति (Abolition of Custom houses)—हेस्टिंग्ज ने चौकियों को समाप्त की। इससे पूर्व जमींदारों ने विभिन्न स्थानों पर चौकियों की स्थापना कर दी थी। ये चौकियां व्यापारिक आवागमन में बड़ी कठिनाइयां उपस्थित करती थीं। इन चौकियों में बड़ा भ्रष्टाचार था। हेस्टिंग्ज ने केवल कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, पटना और ढाका में ही चौकियां रहने दीं। इनकी समाप्ति से व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

(४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण (Government Control over salt and opium business)—नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित किया गया। व्यापार ठेके पर उठाया गया जबकि अब तक भूमि ही ठेके पर उठाई जाती थी।

(५) बैंक की स्थापना (Establishment of Bank)—हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में एक बैंक की स्थापना की जिससे व्यापारियों को पर्याप्त सहायता प्राप्त हो जाती थी। इससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त (Abolition of private business)—हेस्टिंग्ज ने व्यक्तिगत व्यापार का अन्त करने के लिये उस पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये। क्लाइव ने भी इस ओर प्रयत्न किया था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई थी।

(७) दादनी का अन्त (Abolition of Dadni)—हेस्टिंग्ज ने दादनी की प्रथा का अन्त किया। इसके अनुसार पहले कम्पनी के कर्मचारी कारीगरों को दादनी देकर उसका तैयार किया हुआ माल निश्चित दामों पर बेचने के लिये बाध्य करते थे। इसका प्रभाव भारतीय उद्योग-धन्धों पर बहुत बुरा पड़ रहा था। इस प्रथा की समाप्ति के उपरान्त व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की दशा उन्नत हुई।

(८) व्यापारिक सन्धियाँ (Commercial Treaties)—हेस्टिंग्ज ने व्यापार की वृद्धि के लिये सिक्ख, तिब्बत तथा भूटान के राजाओं से व्यापारिक सन्धियाँ कीं जिनके कारण व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने अवध के नवाब तथा बनारस के राजा से भी व्यापारिक सन्धियाँ कीं।

(ग) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार (Revenue Reforms)—अंग्रेजों को मालगुजारी वसूल करने का ज्ञान प्राप्त नहीं था। जब उनके हाथ में दीवानी वसूल करने का अधिकार आया तो उन्होंने यह कार्य पुराने जमींदारों के हाथ में दे दिया। इनका व्यवहार बेचारे किसानों के साथ अच्छा नहीं था। वे मनमाना धन किसानों से वसूल करते थे और कम्पनी को निश्चित धन दे दिया करते थे। इनके अत्याचारों का अन्त करने के उद्देश्य से निरीक्षकों की नियुक्ति की गई किन्तु उसका भी कोई परिणाम नहीं

हुआ। निरीक्षक अपने निजी व्यापार में फंस गये और अपने कर्तव्यों से उदासीन रहे। उसने इस विभाग का पुनर्संगठन करने का निश्चय किया। उसने निम्नलिखित मुख्य सुधार किये—

(१) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध (Five year Settlement of Land revenue)—हेस्टिंग्ज ने ठेकेदारी की प्रथा का प्रचलन कराया। पुराने प्रबन्ध के अनुसार जमींदार तथा कानूनगो के पद पैतृक हो गये थे। हेस्टिंग्ज ने उन सबको अलग कर दिया। उसने एक कमेटी द्वारा भूमि-कर पिछले वर्षों के आधार पर पांच वर्ष के लिये निश्चित किया। अधिकांश व्यक्तियों ने जब इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया तो जमींदारियों का नीलाम पांच वर्ष के लिए कर दिया गया और अधिक बोली बोलने वालों के नाम जमींदारी छोड़ दी गई। इसका घातक परिणाम हुआ। जमींदारों ने अत्यधिक धन कृषकों से वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। जागीरों पर कलकत्ता के दलालों तथा गुमाश्तों का अधिकार हो गया। कभी-कभी वे भूमिकर चुकाये बिना ही भाग जाते थे। इस प्रथा से इस प्रकार कम्पनी और जनता को लाभ के बजाय हानि हुई।

(२) राजस्व समिति की नियुक्ति (Appointment of Revenue Committee)—हेस्टिंग्ज ने एक राजस्व समिति का निर्माण किया जिसके हाथ में लगान के वसूल करने का कार्य सौंप दिया गया। इस समिति में कौंसिल के दो सदस्य, तीन उच्च पदाधिकारी थे। जिले का नियन्त्रण करने के लिये एक अंग्रेज अफसर नियुक्त किया जो कलक्टर कहलाया। उसकी सहायता के लिये स्थानीय सहायक नियुक्त किये गये।

> **मालगुजारी सम्बन्धी सुधार**
> (१) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध।
> (२) राजस्व समिति की नियुक्ति
> (३) नवाब की पेंशन में कमी।
> (४) शाहआलम की पेंशन बंद।
> (५) नई व्यवस्था।

(३) नवाब की पेंशन में कमी (Reduction in the Pension of the Nawab)—हेस्टिंग्ज ने आर्थिक व्यवस्था को उन्नत करने के लिये नवाब की पेंशन में कमी कर दी। उसको ३२ लाख रुपया वार्षिक पेंशन मिलती थी। वह घटाकर १६ लाख कर दी गई।

(४) शाहआलम की पेंशन बन्द (Suspension of The Pension of Shah Alam)—शाहआलम को कम्पनी की ओर से २६ लाख वार्षिक पेंशन मिलती थी। हेस्टिंग्ज ने उसकी पेंशन बन्द कर दी क्योंकि अब वह उनके संरक्षण से निकलकर मरहठों के संरक्षण में आ गया था।

(५) नई व्यवस्था (New Set-up)—कुछ समय उपरान्त उसने प्रान्तीय कौंसिल की स्थापना की। उसने तीनों सूबों को ६ भागों में विभक्त कर दिया जो इस प्रकार थे—कलकत्ता, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, दीनाजपुर, ढाका तथा पटना। प्रत्येक के लिये एक प्रान्तीय कौंसिल नियुक्त की गई जिसमें एक प्रमुख और चार कम्पनी के

सदस्य होते थे। प्रत्येक विभाग में एक दीवान हिसाब-किताब के लिये होता था। सन् १७८१ ई० में उसने कुछ परिवर्तन किया जिसके द्वारा प्रान्तीय कौंसिल और कलक्टर हटा दिये गये और उनके स्थान पर समिति का निर्माण किया गया जिसके चार सदस्य होते थे। इनको १० प्रतिशत कमीशन मिलता था और उस धन पर २० प्रतिशत कमीशन मिलता था जो धन वे तुरन्त कलकत्ता भेजा करते थे।

(घ) न्याय सम्बन्धी सुधार (Judicial Reforms)—हेस्टिग्ज ने न्याय सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में मुख्य सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) न्यायालयों का सगठन (Organization of Judiciary)—हेस्टिग्ज के समय से पूर्व जमीदारों को कुछ न्याय-सम्बन्धी अधिकार थे। उसने उनके अधिकारों का अन्त कर दिया। उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी (मुफस्सिल दीवानी) अदालत और एक फौजदारी न्यायालय की स्थापना की। दीवानी अदालत का अध्यक्ष कलक्टर होता था और फौजदारी अदालत का अध्यक्ष काजी या पण्डित होता था। यह कानून की व्यवस्था करता था तथा दण्ड देता था। इन पर भी कलक्टर का अधिकार था। हेस्टिग्ज ने कलकत्ते में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की। इन अदालतों में जिले के न्यायों की अपीलें सुनी जाती थीं। सदर दीवानी अदालत में अध्यक्ष तथा कौंसिल के दो सदस्य होते थे तथा निजामत अदालत में एक मुख्य न्यायाधीश होता था।

> **न्याय सम्बन्धी सुधार**
> (१) न्यायालयों का संगठन।
> (२) कानूनों का संकलन।
> (३) दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र।

(२) कानूनों का संकलन (Codification of Laws)—उसने हिन्दू और मुसलमानों के कानूनों का संकलन करवाया जिससे पक्षपातहीन निर्णय किया जाना सम्भव हो गया।

(३) दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र (Jurisdiction of Civil and Criminal Courts)—हेस्टिग्ज ने दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र भी अलग-अलग कर दिये। दीवानी अदालत के अन्तर्गत, उत्तराधिकार, विवाह, जाति, ऋण, ब्याज आदि थे और फौजदारी अदालत के अन्तर्गत हत्या, डकैती, चोरी, जालसाजी झगड़े आदि थे।

(ङ) अन्य सुधार (Other reforms)—उक्त सुधारों के अतिरिक्त हेस्टिग्ज ने अन्य सुधार भी किये जिनका पर्याप्त महत्व है। उसने पुलिस विभाग का संगठन किया और प्रत्येक जिले की पुलिस के लिये एक स्वतन्त्र पदाधिकारी की नियुक्ति की। अराजकता के दमन के लिये उसने विशेष प्रयत्न किया। इस समय चोरों और डाकुओं ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। उसने आदेश दिया कि चोरों और डाकुओं को पकड़ कर उनके गावों में ही फांसी दी जाय। इधर कुछ सयासी आदि भी गड़बड़ मचा रहे थे। वास्तव में वे डाकू थे जो सयासी के वेष में जनता पर अत्याचार कर रहे थे।

उनका भी दमन किया गया और इस कार्य में केप्टिन स्टीवार्ड (Captain Steward) ने बड़ा सहयोग दिया।

उक्त सुधारों के द्वारा दूषित स्थिति का अन्त करने की ओर कदम उठाया गया। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। हेस्टिंग्ज तो कुछ अन्य सुधार और भी करना चाहता था, किन्तु उसको कम्पनी के सचालकों (Directors of the Company) ने विशेष सहयोग नहीं दिया। उसने द्वैध शासन का अन्त कर समस्त क्षेत्रों में सुधार किये जिससे कम्पनी की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। इसके अतिरिक्त इन सुधारों के द्वारा हेस्टिंग्ज की योग्यता तथा कार्यक्षमता स्पष्ट प्रतीत होती है। सर विलियम हन्टर (Sir William Hunter) के शब्दों में "वारेन हेस्टिंग्ज ने उस नागरिक-शासन प्रणाली की भली-भांति नींव डाली थी जिस पर कार्नवालिस ने एक विशाल भवन का निर्माण किया।"*

रेग्यूलेटिंग एक्ट (१७७३)
(Regulating Act–1773)

कम्पनी के सचालकों ने वारेन हेस्टिंग्ज को जिस समय बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया उस समय वह विशेष अधिकारों से सुशोभित था। इंगलैंड की पार्लियामेंट ने उसके अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्देश्य से रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) सन् १७७३ ई० में पास किया। इसी एक्ट के द्वारा अंग्रेज जाति ने कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा प्राप्त किये हुये प्रदेश का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में यह भावना विकसित हो रही थी कि भारत में ब्रिटिश शासन का उत्तरदायित्व इंग्लैंड की पार्लियामेंट को कम्पनी के स्थान पर अपने ऊपर ले लेना चाहिये, क्योंकि कम्पनी यद्यपि शक्तिशाली एवं सम्पन्न है किन्तु वह अपने बड़े तथा महत्व-पूर्ण भार के उठाने में असमर्थ है। लोगों में यह भावना भी जाग्रत होने लगी थी कि कम्पनी के लाभ का कुछ भाग अगर अंग्रेजी राजकोष में आ जायगा तो इंगलैंड के कर-दाताओं को बड़ी सान्त्वना प्राप्त होगी। उनके कर का भार कम हो जायगा। यद्यपि कम्पनी की आर्थिक अवस्था उन्नत नहीं थी, फिर भी कम्पनी ने लाभांश में वृद्धि की। पार्लियामेंट के कुछ उत्साही सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि कम्पनी की समस्त सम्पत्ति इंग्लैंड के सम्राट की है। सन् १७६७ ई० में पार्लियामेंट ने लाभांश की दर निश्चित कर दी और डाईरेक्टरों को बाध्य किया कि वे प्रतिवर्ष सरकारी राजकोष में ४ लाख पौंड दिया करें। कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था विभिन्न कारणों द्वारा दिन प्रति दिन खराब होने लगी। कम्पनी को बहुत अधिक धन सेना आदि पर व्यय करना पड़ता था। वह राजनीतिक विषयों में इतनी फस गई थी कि व्यापार की ओर वह अधिक ध्यान देने में असमर्थ हो गई। सन् १७७२ ई० में कम्पनी के संचालकों ने इंगलैंड की सरकार से प्रार्थना की कि वे कम्पनी को १० लाख पौंड का ऋण दे अन्यथा उसको व्यापार करना

* "Warren Hastings well and firmly laid the foundations of the system of civil administration on which the superstructure was raised by Cornwallis."

—Sir William Hunter: The Imperial Gazetter of India, Vol. II. p. 416.

असमर्थ हो जायगा। सरकार ने कम्पनी की वास्तविक दशा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्यों से ३१ सदस्यों की एक विशेष समिति और १३ सदस्यों की एक गुप्त समिति नियुक्त की। उनकी रिपोर्टों द्वारा स्पष्ट हो गया कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय है। यदि इस समय कम्पनी को आर्थिक सहायता प्रदान नहीं की जायगी तो उसका दिवाला निकल जायगा और सब करा-कराया काम चौपट हो जायगा।

इंगलैंड की पार्लियामेंट ने घोर वाद-विवाद के उपरान्त सन् १७७३ ई० में दो एक्ट पास किये। (i) एक के अनुसार कम्पनी को १४ लाख पौंड ४ प्रतिशत ब्याज के ऊपर ऋण दिया जाना निश्चित हुआ। इसके लाभांश निश्चित कर दिये गये तथा यह अपना हिसाब-किताब राजकोष को दे। (ii) दूसरा एक्ट प्रथम एक्ट की अपेक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। यह एक्ट रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा कम्पनी का नया विधान बनाया गया। यह प्रथम एक्ट है जो इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाया गया और जिसने भारतीय शासन की रूप-रेखा का निश्चय किया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट की धारायें—(Clauses of Regulating Act)—रेग्यूलेटिंग एक्ट की धारायें निम्नलिखित थीं—

(१) इस एक्ट के द्वारा डाइरेक्टरों का कार्य-काल चार वर्ष निश्चित कर दिया गया। उसमें से एक चौथाई सदस्यों को प्रति वर्ष अपना स्थान रिक्त करना होगा। उनको कम से कम एक वर्ष तक अपने पद से अलग रहना होगा।

(२) बंगाल प्रान्त का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल होगा। मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उसके आधीन होंगे। वे उसके आदेश बिना देशी राज्यों से न सन्धि कर सकते हैं और न युद्ध ही। इस प्रकार उन पर उसका पूर्ण नियन्त्रण होगा।

(३) गवर्नर-जनरल के कार्यों में सहायता देने के लिये एक समिति का निर्माण किया गया। इसके सदस्यों की संख्या ४ होगी। एक्ट के अनुसार जनरल क्लेवरिंग, (Clavering), बारवेल, (Barwell), कर्नल मान्सन (Monson) और फिलिप फ्रांसिस (Philip Francis) कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये। इनके स्थानों की पूर्ति करने का अधिकार कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors) को प्रदान किया गया। इनका कार्य-काल ५ वर्ष था।

(४) बंगाल के गवर्नर-जनरल का वेतन २५ हजार पौंड वार्षिक तथा कौंसिल के सदस्यों का वेतन १० हजार पौंड प्रतिवर्ष निश्चित किया गया।

(५) कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधिपति (Chife Justice) और तीन अन्य न्यायाधिपति होंगे। इनकी नियुक्ति इंगलैंड का सम्राट करेगा और उस समय तक अपने पद पर आसीन रहेंगे जिस समय तक इंगलैंड का सम्राट उनको उनके पद से पृथक् नहीं करता है। मुख्य न्यायाधिपति के पद पर सर इलिजाह इम्पे (Sir Elijah Impey) की नियुक्ति की गई। ये अंग्रेजी कानूनों के द्वारा अंग्रेजी प्रजा के मुकदमों का निर्णय करेंगे। इन पर गवर्नर-जनरल व उसकी कौंसिल का कोई प्रभाव न था। सुप्रीम कोर्ट

के निर्णय के विरुद्ध अपील इंगलैंड स्थित प्रिवी कौंसिल (Privy Council) में की जा सकती थी। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति का वेतन ८००० पौंड वार्षिक निश्चित किया गया था। इसका अधिकार क्षेत्र बहुत विस्तृत था।

(६) कम्पनी का कोई भी कर्मचारी बिना लाइसेंस प्राप्त किये व्यक्तिगत व्यापार नहीं कर सकता। वे किसी से भेंट तथा उपहार नहीं ले सकते।

(७) कम्पनी के डाइरेक्टरों को कम्पनी के राजनैतिक तथा सैनिक कार्यों से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट (Secretary of State) को सूचित करते रहना होगा।

(८) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे। दोनों पक्षों में समान मत होने की दशा में गवर्नर-जनरल को कास्टिंग वोट (Casting Vote) देने का अधिकार प्रदान किया गया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के गुण (Merits of Regulating Act)—रेग्यूलेटिंग एक्ट में पर्याप्त गुण विद्यमान थे। इसका उद्देश्य उत्तम था। इसके द्वारा शासन-व्यवस्था को उन्नत तथा दृढ़ करने का प्रयत्न तथा समान नीति अपनाने की ओर इंगित किया गया अब तक तीनों प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर एक दूसरे से स्वतन्त्र थे और वे कम्पनी के संचालकों से सीधे पत्र-व्यवहार किया करते थे, किन्तु इसके द्वारा मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर बंगाल के गवर्नर-जनरल के अधीन हो गये। कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया, और उनको भेंट तथा उपहार स्वीकार न करने का आदेश दिया गया। कम्पनी के शासन पर इङ्गलैंड की सरकार का कुछ सीमा तक नियन्त्रण स्थापित हो गया। प्रोफेसर कीथ (Keith) के शब्दों में, 'इस एक्ट ने कम्पनी की इङ्गलैंड स्थित संस्थाओं के विधान में परिवर्तन किया, भारत सरकार के स्वरूप में कुछ सुधार किये। कम्पनी के समस्त विजित भागों पर एक शक्ति का नियन्त्रण स्थापित किया गया। किसी अंश तक कम्पनी को ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल की देख-रेख में रखने का प्रयत्न किया।'* प्रोफेसर श्री राम ने इन शब्दों में इस एक्ट के महत्व का वर्णन किया है "रेग्यूलेटिंग एक्ट ने भारत में कम्पनी के शासन को उन्नत करने के लिये बिना 'ताज' (Crown) के साहसपूर्ण प्रयत्न किया और उसका उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष रूप से धारण किया। इसकी सबसे महत्वपूर्ण धारा सुप्रीम कोर्ट की स्थापना बङ्गाल उच्चतम शासन की स्थापना के लिये थी। इसके द्वारा 'ताज' को समय-समय पर समस्त समाचार अवगत होते रहेंगे जिसके कारण वह कम्पनी के शासन का निर्माण कर सकेगा। इसके द्वारा व्यक्तिगत व्यापार तथा भेंट व उपहार स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगाये गये। गवर्नर-जनरल की कौंसिल को सम्मिलित अधिकार प्राप्त हुये

* "This measure altered the Constitution of the Company at home, changed the structure of government in India, subjected in some degree the whole of the territories to one supreme control in India, and provided in a very inefficient way for the supervision of the Company by the Ministry."

—Report on Indian Constitutional Reforms, 1918. p. 17.

जो १८६१ तक चलते रहे। इसके द्वारा कम्पनी के प्रशासित प्रदेशों में एक उच्च सत्ता की स्थापना हुई।"†

रेग्युलेटिंग एक्ट के दोष
(Defects of Regulating Act)

उक्त कथन से यह समझ लेना भ्रम होगा कि रेग्युलेटिंग एक्ट में दोषों का अभाव था। वास्तव में इसमें पर्याप्त दोष विद्यमान थे। इतिहासकार एक लम्बी सूची इसके दोषों की प्रस्तुत करते हैं। इस एक्ट में दोनों, गुण एवं दोषों का एक साथ रहना अनिवार्य था क्योंकि यह एक्ट बहुत ही शीघ्रता से इङ्गलैंड की पार्लियामेंट द्वारा पारित किया गया। यदि यह इतनी शीघ्रता से पारित न किया गया होता तो इसके द्वारा भीषण तथा गहन समस्याओं का समाधान किया जाना सम्भव था। इसके मुख्य दोष निम्नलिखित थे—

> **रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष**
> १. गवर्नर-जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण का न होना।
> २. गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के दोषपूर्ण सम्बन्ध।
> ३. गवर्नर-जनरल का सुप्रीम कोर्ट के अधीन होना।
> ४. सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार-क्षेत्र।
> ५. कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना।
> ६. पार्लियामेंट द्वारा की गई कुछ अनुपयुक्त नियुक्तियाँ।

(१) *गवर्नर-जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण न होना (No Control over the Council)*—यद्यपि इस एक्ट ने *गवर्नर-जनरल को ब्रिटिश भारत के उच्चतम* पदाधिकारी के पद पर आसीन किया था, किन्तु समस्त कार्य कौंसिल के बहुमत के आधार पर किया जाना अनिवार्य था। इस प्रकार गवर्नर-जनरल के अधिकार सीमित थे। भविष्य में इस प्रणाली के द्वारा अनेक दोष उत्पन्न हो गये। गवर्नर-जनरल किसी भी कार्य को शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करने में असमर्थ हो गया। कौंसिल के वाद-विवाद के कारण बहुत समय व्यर्थ में व्यतीत हो जाता था। इसके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल और कौंसिल के सदस्यों के सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे। अधिकांश में उनका निर्णय गवर्नर-जनरल के विरुद्ध होता था जिसके कारण स्थिति दिन प्रतिदिन भयंकर और असन्तोषजनक होती चली गई।

† "The Regulating Act made a bold attempt at securing good government in the Company's territory in India without the Crown, directly assuming the responsibility for the same... Its most praiseworthy feature was the *setting up of the Supreme Court as a guarantor of good government in Bengal for all.* In introduced the thin edge of the wedge of direct administration by the Crown by insisting on securing timely information for the Company about its affairs in India, *it prohibited private trade and acceptance of gift by the Company's servants. Its principle of* collegiate authority in the Governor-General-in-Council remained substantially unmodified till 1861. It made an amateurist attempt at *setting up one supreme authority for the Company's dominions in India.*"
—Sri Ram : Constitutional History of India page 16.

(२) गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के दोषपूर्ण सम्बन्ध (Defective relation between the Governor-General and Governors)—इस एक्ट के द्वारा मद्रास तथा बम्बई की प्रेसीडेंसियों के गवर्नर को गवर्नर-जनरल के अधीन किया गया। वे किसी देशी राज्य से युद्ध व सन्धि बिना गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त किये न कर सकते थे। अतः उनकी स्वतन्त्र सत्ता का लोप हो गया। सम्मति प्राप्त होने में प्रायः देर हो जाती थी जिसके कारण उपयुक्त परिस्थिति पर कार्य नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं था कि गवर्नर-जनरल की सम्मति उनकी सम्मति के अनुसार ही हो।

(३) गवर्नर-जनरल का सुप्रीम कोर्ट के अधीन होना (Governor-General under the Supreme Court)—गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को सुप्रीम कोर्ट के अधीन कर दिया गया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल द्वारा पास किये हुए समस्त नियम या अधिकार उस समय तक वैध नहीं माने जा सकते थे जब तक कि कोर्ट उन पर अपनी अनुमति प्रदान न कर दे।

(४) सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार-क्षेत्र (No clear-cut Jurisdiction of the Supreme Court)—इस एक्ट के द्वारा सुप्रीम कोर्ट का अधिकार अस्पष्ट था। इसके अधिकारों की व्याख्या पूर्णरूप से नहीं की गई थी। इसको इस अधिनियम द्वारा अंग्रेजों की प्रजा के मुकदमों के करने का अधिकार प्रदान किया गया था। अंग्रेजों की प्रजा के अन्तर्गत अंग्रेज और भारतीय दोनों सम्मिलित थे। इससे भविष्य में अनेक दोष उत्पन्न हुये। यह भी स्पष्ट नहीं था कि सुप्रीम कोर्ट अंग्रेजी अथवा भारतीय विधि के अनुसार निर्णय करेगी। इस एक्ट द्वारा यह भी अस्पष्ट था कि कम्पनी द्वारा स्थापित न्यायालयों और सुप्रीम कोर्ट के आपस में क्या सम्बन्ध रहेंगे।

(५) कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना (No efforts to enhance the income of the servants of the Company)—इस एक्ट द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण किया गया किन्तु उनकी आय की वृद्धि का कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसके कारण कम्पनी के छोटे कर्मचारियों के लिये आवश्यक हो गया कि वे अपनी आय के लिये अन्य साधनों की खोज करें जिसके कारण भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी बहुत बढ़ गई।

(६) पार्लियामेंट द्वारा की गई कुछ अनुचित नियुक्तियाँ (Unsatisfactory appointment by the Parliaments)—पार्लियामेंट द्वारा कुछ की गई नियुक्तियाँ अनुचित सिद्ध हुईं। पार्लियामेंट ने प्रथम बार परामर्शदाताओं की नियुक्ति की। कौंसिल तथा क्लेवरिंग को भारत की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान नहीं था। वे भारत में यह निश्चित धारणा लेकर आये कि भारत का शासन पूर्णतया दोषों से परिपूर्ण है। फ्रांसिस की यह धारणा थी कि वारेन हेस्टिंग्ज के उपरान्त वह ही गवर्नर जनरल के पद पर आसीन किया जायगा। इसलिये उसने आते ही वारेन हेस्टिंग्ज का विरोध करना तथा उसको बदनाम करना प्रारम्भ कर दिया।

उक्त आधारों पर हमको प्रोफेसर रोबर्ट्स (Rrof. Roberts) के साथ

मालूम होता था कि रेगुलेटिंग एक्ट एक अधूरा उपाय था, बहुत सी बातों में वह बुरी तरह अस्पष्ट था। इसमें नाम-मात्र को बंगाल के नवाब की सत्ता को मान-कर ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया था। और भारत में सम्राट अथवा कम्पनी की सर्वोच्चता के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित बात नहीं कही गई थी।* इस सम्बन्ध में इल्बर्ट (Ilbert) का कथन है कि "१७७३ ई० के एक्ट की धारायें अस्पष्ट और दोषपूर्ण हैं, जहाँ तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल तथा उच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र का प्रश्न है तथा जहाँ तक बंगाल सरकार और कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के बीच सम्बन्ध का का प्रश्न है।"

किन्तु वास्तव में इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिनियम के उद्देश्य उत्तम थे, किन्तु यह अधिनियम उन व्यक्तियों द्वारा निर्मित किया गया जिन को भारतीय परिस्थिति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं था। ये लोग कम्पनी के अधिकारों को सीमित करना चाहते थे, किन्तु शक्ति-सन्तुलन के झंझटों में इतने फंस गये कि समस्त बातें अस्पष्ट रह गईं जिसने प्रत्येक पक्ष को निर्बल बना दिया। इसी के कारण लगभग ९ वर्ष तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल में संघर्ष होता रहा जो प्रशासनिक इतिहास में अभूतपूर्व है।

वारेन हेस्टिंग्ज और उसकी कौंसिल
(Warren Hastings and his Council)

उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि पार्लियामेंट ने गवर्नर-जनरल की कौंसिल के चार सदस्यों की नियुक्ति की। इनके नाम फ्रांसिस, क्लेवरिंग, बारवेल तथा मानसन थे। बारवेल भारत में ही था और अन्य तीनों परामर्शदाता १६ अक्टूबर सन् १७७४ ई० को भारत आये और 'औपचारिक रूप से २० तारीख से नया शासन प्रारम्भ हुआ।' इससे पूर्व कि हेस्टिंग्ज और उसकी कौंसिल के झगड़े का वर्णन कर दिया जाय कुछ बातें फ्रांसिस (*Francis*) के सम्बन्ध में बतलाई जायें क्योंकि उसने ही इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग लिया। परामर्शदाताओं में फ्रांसिस सबसे योग्य था। वह एक विद्वान, प्रसिद्ध लेखक तथा कुशल वक्ता था। उसने कम्पनी के शासन तथा उसके दोषों के बारे में पहले ही पर्याप्त सुन रखा था। अतः वह उनका मूलोच्छेदन करने के लिये व्यग्र था।' परन्तु उसमें अनेक गुणों के विद्यमान होते हुए भी कुछ दोष थे। वह बड़ा हठी था तथा उसका स्वभाव बड़ा उग्र था। वह अपना विरोध सहन नहीं कर सकता था। राबर्ट्स के शब्दों में 'फ्रांसिस कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। इसलिए हेस्टिंग्ज को असाधारण विरोध का सामना करना पड़ा। कौंसिल में अपने प्रधान का सामना करते हुए, फ्रांसिस गवर्नर-जनरल

*"The Regulating Act was a half measure, and disastrously vague in many points. The titular authority of the Nawab of Bengal was left by implication intact, and no assertion was made of the sovereignty of the Crown or Company in India."
—Robert : History of British *India*, *Pages 182—83*.

द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले प्रत्येक सुझाव को सूक्ष्म एवं प्रतिशोधात्मक तर्क के साथ आलोचना करता था।' उसने भारत आते ही क्लेवरिंग और मॉनसन को अपने पक्ष में कर लिया और अपनी अद्भुत भाषण शक्ति के सहारे वह गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्ज के कामों की तीव्र आलोचना करने लगा। इसका एक कारण यह भी था कि फ्रांसिस की यह धारणा थी कि हेस्टिंग्ज के उपरान्त वह गवर्नर-जनरल के पद पर आसीन होगा। इस धारणा ने विरोध की मात्रा को और भी तीव्र कर दिया।

विरोध का प्रमुख कारण (Main cause of conflict)—कौन्सिल और हेस्टिंग्ज के झगड़े का कारण सर्वप्रथम यह था कि कौन्सिल के सदस्यों के भारत आगमन पर जो उनका स्वागत किया गया वह सन्तोषजनक न था। इसी के आधार पर उन्होंने गवर्नर-जनरल की नीति तथा शासन-व्यवस्था की तीव्र आलोचना करनी प्रारम्भ की। सन् १७७४ से १७७६ ई० तक कौंसिल का बहुमत गवर्नर-जनरल के विरुद्ध था। मॉनसन (Monson) की मृत्यु सितम्बर १७७६ में होने के कारण हेस्टिंग्ज को अपनी कास्टिंग वोट (Casting Vote) के प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हो गया। १७७७ ई० में क्लेवरिंग (Clavering) की मृत्यु हो गई और इसी वर्ष हेस्टिंग्ज ने द्वन्द्व युद्ध में फ्रांसिस को परास्त किया। इसके परिणामस्वरूप वह उसी वर्ष स्वदेश चला गया। इस समय के उपरान्त गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज की स्थिति दृढ़ हो गई।

अवध (Oudh)—कौंसिल ने सर्वप्रथम रुहेला युद्ध की तीव्र निन्दा की। उन्होंने मिडिलटन को लखनऊ से बुला लिया। कर्नल चैम्पियन को आदेश दिया गया कि वह अवध के नवाब से ४० लाख की मांग करे। यह धन अवध के नवाब ने कम्पनी को मरहठों को अपने देश से बाहर निकालने के लिए देने का वचन दिया था। बेवेरिज (Beveridge) ने सत्य ही कहा है कि "कौंसिल ने पुनीतारावक बताकर रुहेला युद्ध की नो निन्दा की परन्तु उन्होंने उसके मेहनताने के रूप में मिलने वाले धन से अपनी जेबों के भरने में अत्यन्त आतुरता दिखलाई।'* सन् १७७५ ई० में अवध के नवाब वजीर का देहान्त हो गया। उत्तराधिकारी को एक नई सन्धि करने पर बाध्य किया गया। बनारस की सन्धि रद्द कर दी गई। इसके अनुसार नवाब द्वारा ब्रिटिश सेनाओं के पालन के लिये दी जाने वाली सहायता में वृद्धि कर दी गई और उसे बनारस जिले का पूर्णाधिकार कम्पनी को सौंप देने के लिये विवश किया गया। हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि का बहुत विरोध किया, किन्तु बहुमत द्वारा विरोध किये जाने पर उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने इस बात की ओर संकेत किया था कि यह धन कम्पनी और अवध की मित्रता में विरोध उत्पन्न करेगा।

नन्दकुमार को फांसी (Death sentence to Nand Kumar)—कौंसिल और हेस्टिंग्ज के पारस्परिक विरोध ने हेस्टिंग्ज की स्थिति शोचनीय बना दी। स्थानीय सम्वाददाताओं द्वारा हेस्टिंग्ज के विरुद्ध विश्वासघात करने के अनेक अभियोग लगाये गये। ग्यारह मार्च १७७५ को नन्दकुमार ने हेस्टिंग्ज पर अभियोग लगाया कि उसने मुक्त

* "The Rohilla war was an abomination, and yet their great anxiety was to pocket the wages of it."

—H. Beveridge—A Comparative History of India, Vol. II, Page 365.

नवाब मीर जाफर की विधवा पत्नी मुन्नी बेगम से साढ़े तीन लाख रुपया उसको अल्पवय नवाब की संरक्षिका बनाने के उपलक्ष में वसूल किया। नन्दकुमार ब्राह्मण कुलीन व्यक्ति था। उसने नवाबों के शासन में विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि हेस्टिंग्ज ने बंगाल के नायब नवाब मुहम्मद रजा खां के मुकदमे में नन्दकुमार से सहायता प्राप्त की थी और उसने उसको नायब नवाब के पद पर आसीन करने का वचन दिया था। बाद में हेस्टिंग्ज ने उसको कोई लाभ नहीं करवाया और वह उससे बदला लेने को उद्यत हो गया। जब नन्दकुमार के आरोप का कौंसिल में विचार हो रहा था तो हेस्टिंग्ज ने उसके सामने सफाई देने से बिलकुल इंकार कर दिया। उसने कौंसिल भंग कर दी और वह स्वयं कमरे से बाहर चला आया। कौंसिल ने हेस्टिंग्ज को दोषी ठहराया और उसको रुपया वापिस करने का आदेश दिया। कुछ दिनों उपरान्त हेस्टिंग्ज ने नन्दकुमार पर आरोप लगाया कि उसने हेस्टिंग्ज के विरुद्ध गवाही दिलवाने के लिये कमरुद्दीन को परेशान किया, किन्तु नन्दकुमार निर्दोष ठहराया गया। इसके कुछ दिन उपरान्त नन्दकुमार जालसाजी के अपराध में बन्दी किया गया। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर रोबर्ट्स का कथन है "कि इस गिरफ्तारी का नन्दकुमार द्वारा हेस्टिंग्ज पर लगाये गये अभियोगों अथवा हेस्टिंग्ज द्वारा नन्दकुमार पर लगाये षड्यन्त्र के अभियोग के साथ तनिक भी सम्बन्ध न था।" सर्वोच्च न्यायालय ने नन्दकुमार के मुकदमें पर विचार किया और उसको प्राण-दण्ड की सजा मिली। ५ अगस्त सन् १७७५ ई० को वह फांसी पर लटका दिया गया। हेस्टिंग्ज पर लगाये गये अभियोग सम्बन्धी समस्त पत्र इंगलैंड भेज दिए गये जहां उनको रद्द कर दिया गया।

इस सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा है कि नन्दकुमार की फांसी में हेस्टिंग्ज का हाथ था। उनका तर्क यह है कि हेस्टिंग्ज का मित्र इम्पी था जो उस न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश था जिसने नन्दकुमार को प्राणदण्ड दिया। हेस्टिंग्ज ने मुन्नी बाई से डेढ़ लाख रु० अवश्य प्राप्त किया था, किन्तु उसने उसको भत्ते के नाम से सम्बोधित किया जो पहले गवर्नर भी इन अवस्थाओं में प्राप्त कर चुके थे। इस सम्बन्ध में कि हेस्टिंग्ज और इम्पी ने मिलकर नन्दकुमार को फांसी पर लटकवाया, कोई प्रमाण नहीं मिलता। कौंसिल और सर्वोच्च न्यायालय में अधिकार सीमाओं को लेकर समय-समय पर झगड़ा होता रहा। इम्पी अन्य जजों में से केवल एक था। उन्होंने इम्पी की बात क्यों स्वीकार की? इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि नन्दकुमार को अपनी सफाई देने का पूर्ण अवसर प्रदान नहीं किया गया। उसको कठोर दण्ड दिया गया। जालसाजी के अपराध में फांसी का दण्ड बहुत कठोर था, अधिक से अधिक उसको कारागार का दण्ड दिया जाना चाहिए था। जजों ने इम्पी के कहने से जिस दी जो कुछ कठोरतापूर्वक की गई।

वारेन हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति
(Foreign Policy of Warren Hastings)

गत पृष्ठों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि यद्यपि मराठों की शक्ति को पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण बहुत आघात उठाना पड़ा, किन्तु फिर

पेशवा माधवराव के नेतृत्व में मरहठों की शक्ति का पुनः विस्तार एवं विकास हुआ। मरहठों ने शाहआलम को दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन कर दिया था और अब वह अंग्रेजों के संरक्षण से निकलकर मरहठों का आश्रित हो गया था। अंग्रेजों ने उसको वार्षिक पेंशन देना बन्द कर दिया। कड़ा और इलाहाबाद के जिले जो अंग्रेजों ने अवध के नवाब वजीर से लेकर शाहआलम को दे दिये थे, वे पुनः अवध के नवाब वजीर को ५० लाख रु० लेकर दे दिये गये थे। हेस्टिंग्ज की हार्दिक इच्छा अवध को अपने तथा मरहठों के बीच का मध्यस्थ राज्य बनाना था, जिस कारण वह उसको अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। हेस्टिंग्ज और नवाब वजीर में एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ था कि युद्ध के समय दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे।

> हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति
> (२) रुहेला युद्ध।
> (३) हेस्टिंग्ज और चेतसिंह।
> (४) हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें।

(२) रुहेला युद्ध १७७३-७४ (Robilla War 1773-74)—इसमें पूर्व कि रुहेला युद्ध का वर्णन किया जाये और हेस्टिंग्ज की नीति पर विचार किया जाये रुहेलखण्ड के प्रदेश के सम्बन्ध में कुछ आवश्यकीय बातों का ज्ञान प्राप्त करना उचित होगा।

रुहेलखण्ड की स्थिति और उसका प्रारम्भिक इतिहास (Position of Rohelkhand and its early History)—रुहेलखण्ड दो-आब का एक उपजाऊ प्रदेश है। इसकी सीमा पूर्व में अवध के राज्य से पश्चिम में गंगा नदी तक विस्तृत थी। मुगलों के पतन के उपरान्त रुहेला अफगान सरदारों ने इस प्रदेश पर अधिकार कर अपनी शक्ति का विकास किया। हाफिज रहमत के नेतृत्व में रुहेलों ने बड़ी उन्नति की। वह बड़ा साहसी, वीर तथा योग्य व्यक्ति था। उसने १७६१ ई० में मरहठों के विरुद्ध अफगानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली की सहायता पानीपत के युद्ध में की थी। मरहठों की शक्ति क्षीण होने पर उसने अपने समीप के प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित किया। मरहठों ने अपनी शक्ति का संगठन कर उत्तरी भारत के प्रदेशों को अपने अधिकार में करना प्रारम्भ किया। १७६६ ई० में उन्होंने इटावा तथा दो आब के अन्य प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित किया। मरहठों के कारण रुहेले तथा अंग्रेज दोनों ही भयभीत हुए। उन्होंने रुहेलखण्ड तथा अवध के राज्य पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये जिससे दोनों को बड़ी चिन्ता हुई।

रुहेलों तथा अवध के नवाब के बीच सन्धि (Treaty between the Rohillas and the Nawab of Oudh)—१७७० ई० में मरहठे रुहेलखण्ड और अवध की सीमाओं के आस-पास मंडराने लगे। इस भय से अवध के नवाब और हाफिज रहमत खां ने एक बार तो पारस्परिक सुरक्षा के लिये, मरहठों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा तैयार करने का निश्चय किया और एक अन्य अवसर पर दोनों में से प्रत्येक ने अलग न मरहठों के साथ मिलकर एक दूसरे का सामना करने की सम्भावना पर विचार किया।

इस प्रकार तीनों दल सावधान थे और उनमें से प्रत्येक दल यह जानता था कि दो दलों पर किसी भी प्रकार भरोसा नहीं किया जा सकता। जून १७७२ रुहेलों और अवध के नवाब वजीर के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार यह हुआ कि यदि मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया तो नवाब वजीर रुहे सहायता करेगा और रुहेले उसको ४० लाख रुपया देंगे। इस सन्धि-पत्र पर सर बार्कर के भी हस्ताक्षर थे। उसके हस्ताक्षर करने का अर्थ था कि वह दोनों का था और उसकी उपस्थिति में यह सन्धि-पत्र तैयार हुआ था।

मरहठों का रुहेलखण्ड पर आक्रमण तथा शीघ्र ही वापिस (Attack of the Marathas on Rohelkhand and to return atonce)—१७७३ ई० में मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया। रुहेलों, अवध के नवाब व तथा अंग्रेजों ने उनके आक्रमण को रोकने की तैयारी करना प्रारम्भ किया। इनकी तैयारी देखकर मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण नहीं किया। मई के महीने में मर की सेना दक्षिण की ओर चली गई क्योंकि पेशवा माधवराव की मृत्यु के कारण पूना राजनीति में गड़बड़ उत्पन्न हो गई थी।

रुहेलों पर आक्रमण (Attack on Rohillas)—मरहठों के वापिस जाने के उपरान्त अवध के नवाब वजीर ने रुहेलों से उक्त संधि के अनुसार ४० ला रुपये मांगे, किन्तु रुहेलों के सरदार हाफिज रहमत खां ने धन देने में आनाकानी की इसी समय नवाब वजीर ने बनारस में हेस्टिंग्ज के सामने यह प्रस्ताव रखा कि ध की बड़ी राशि के बदले वह उसको एक सैन्य-दल उधार दे जिसके द्वारा वह रुहेलों क सन्धि भंग करने का मजा चखा कर बहुत अधिक धन राशि प्राप्त करने में सफल हो हेस्टिंग्ज धन के लालच में आ गया और उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। नवाब वजीर ने यह वायदा किया कि वह सैन्य-दल का समस्त व्यय उठायेगा तथा ४० लाख रुपया सैन्य-दल के बदले में कम्पनी को देगा। हेस्टिंग्ज जानता था कि इस प्रस्ताव के स्वीकार करने से आपत्तियों का उदय होना अनिवार्य था, किन्तु वह कुछ कारणों से इसके स्वीकार करने के लिये बाध्य हो गया। उसके कारण निम्नलिखित थे—

(१) वह अवध के विस्तार को अपने लाभ के लिये आवश्यक समझता था।

(२) उसको धन की बड़ी आवश्यकता थी।

(३) वह नवाब वजीर को अपना पक्षपाती तथा समर्थक बनाना चाहता था।

(४) इसके द्वारा मरहठों की महत्वाकांक्षाओं को आघात पहुँचा।

सन्धि होने के कुछ समय उपरान्त ही अवध के नवाब वजीर ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। अंग्रेजों ने कर्नल चेम्पीयन (Colonel Champion) के नेतृत्व में एक अंग्रेजी सैन्य-दल नवाब की सहायता के लिये भेजा। अवध के नवाब वजीर तथा अंग्रेजों की सम्मिलित सेनाओं ने १७ अप्रैल १७७४ ई० को रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया। २३ अप्रैल को रुहेलों की सेना के साथ इस सम्मिलित सेना का मीरा कटरा नामक स्थान पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ। रुहेलों ने युद्ध में अपूर्व साहस

तथा उत्साह का प्रदर्शन किया किन्तु वे सम्मिलित सेना के हाथों परास्त हुये। उनके नेता हाफिज रहमत खां ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और वह युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। इसमें लगभग २,००० सैनिक मारे गये और २०,००० रुहेलों को अपना घर छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। उनके राज्य को अवध के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

अंग्रेजों और नवाब के बीच सन्धि (Treaty between the English and the Nawab)—युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों और नवाब वजीर ने फैजुल्ला खां नामक रुहेला सरदार से संधि की। उसको रामपुर का जिला दिया किन्तु उसकी सैनिक शक्ति पर नियन्त्रण लगा दिया गया। वह ५००० से अधिक सैनिक नहीं रख सकता था। उसने नवाब वजीर को सैनिक सहायता भी प्रदान करने का वचन दिया तथा वह किसी अन्य शक्ति से किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेगा।

हेस्टिंग्ज की रुहेला नीति पर एक दृष्टि (Critical estimate of Hasting's Rohilla Policy)—हेस्टिंग्ज की रुहेला नीति की बड़ी आलोचना की गई तथा कुछ ने उसका समर्थन भी किया। इस नीति के द्वारा हेस्टिंग्ज कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने में सफल हुआ और वह अवध को कम्पनी का मित्र बना सका, किन्तु हेस्टिंग्ज का अवध की सहायता करना कहां तक न्यायसंगत था। रुहेलों का कम्पनी से कोई झगड़ा नहीं था, फिर क्यों हेस्टिंग्ज ने कर्नल चेम्पीयन (Colonel Champion) की अध्यक्षता में अवध की सहायता के लिये एक सेना-दल भेजा। उसकी नीति के कारण रुहेलों को बड़े दुःख का सामना करना पड़ा। प्रसिद्ध वक्ता बर्क (Burke) ने उसकी इस नीति की बड़ी तीव्र आलोचना इङ्गलैंड को पार्लियामेंट में उस समय की जब हेस्टिंग्ज पर मुकदमा चलाया गया था। हाफिज रहमत उच्च-कोटि का तथा शान्तिप्रिय शासक था। वास्तव में रुहेला युद्ध में हेस्टिंग्ज की सहायता करने का कारण अवध के नवाब से धन प्राप्त करना था। कम्पनी को हर समय धन की आवश्यकता थी और इसी से प्रभावित होकर हेस्टिंग्ज ने नवाब की सहायता की। हेस्टिंग्ज को रुहेलों और अवध के नवाब वजीर के झगड़ों में पड़ना उचित नहीं था। नवाब को ४० लाख रुपया रुहेलों से दिलाने का उत्तरदायित्व अंग्रेजों पर नहीं था। बार्कर के हस्ताक्षर तो केवल इसलिए कराए गए थे कि उसके सामने सन्धि की शर्तें तय हुई थीं। हेस्टिंग्ज के इस कार्य का समर्थन किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता। इस युद्ध के परिणामस्वरूप कम्पनी को १० लाख रुपये और हेस्टिंग्ज को २ लाख रुपये मिले।

(२) हेस्टिंग्ज और चेतसिंह (Hastings and Chet Singh)—मैसूर तथा मरहठा युद्ध के कारण कम्पनी की आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय हो गई थी। धन के अभाव के कारण कम्पनी का कार्य शिथिल होने लगा था। हेस्टिंग्ज धन के अभाव के कारण बड़ा परेशान था। उसने धन प्राप्त करने के उपायों की खोज करना आरम्भ किया। इस बार उसने बनारस के राजा चेतसिंह को अपना शिकार बनाया।

अपने पिता बलवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त चेतसिंह बनारस का राजा हुआ।

पहले बनारस-राज्य पर अवध का अधिकार था किन्तु सन् १७७५ ई० की फैजाबा सन्धि के अनुसार अब उस पर कम्पनी का अधिकार हो गया। वहाँ के राजा को जमीं अमीनी तथा फौजदारी अधिकार प्राप्त थे। वह कम्पनी को २२॥ लाख रुपया प्र कर के रूप में दिया करता था। यद्यपि द्वारा यह निश्चय हो गया था कि इस के अतिरिक्त वह कम्पनी को धन की अन्य राशि न देगा। जब हेस्टिंग्ज को ध आवश्यकता का अनुभव हुआ तो उसका ध्यान चेतसिंह की ओर आकर्षित हुआ। उसने कर के अतिरिक्त ५ लाख रुपये और मांगे। राजा ने धन दे दिया। अगले उसने फिर राजा से ५ लाख रुपये मांगे। राजा ने कम्पनी को पांच लाख रुपये द दिये किन्तु उसने कम्पनी की मांग का विरोध किया, क्योंकि कम्पनी की यह मांग स के विरुद्ध थी। हेस्टिंग्ज राजा के व्यवहार से बड़ा क्रोधित हो गया। उसने राजा के एक अंग्रेजी सैन्य-दल भेजा और उसको उसका व्यय करने का आदेश दिया। इस भार लगभग २०,००० रुपये होगा। सन् १७८० ई० में राजा को २००० सैनिक भे को लिखा। राजा ने इसका विरोध किया जिसके कारण सैनिकों की संख्या २००० एक हजार कर दी गई। राजा के व्यवहार तथा विरोधी प्रवृत्ति के कारण हेस्टिंग्ज उस अप्रसन्न हो गया। उसने राजा पर ५० लाख रुपया जुर्माना किया और शीघ्र ही वह ५० सैनिकों के साथ बनारस की ओर चल पड़ा। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर राजा चेतसिंह बड़ा घबराया। राजा चेतसिंह ने बक्सर में हेस्टिंग्ज से भेंट की और क्षमा मांगी, किन्तु हेस्टिंग्ज ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। शीघ्र ही हेस्टिंग्ज बनारस पहुँचा। राजा ने उससे भेंट करनी चाही, किन्तु हेस्टिंग्ज ने भेंट करने से साफ़ इन्कार कर दिया। इसके उपरान्त उसने राजा पर आज्ञोल्लंघन तथा कुशासन का आरोप लगाया और जो उत्तर राजा ने इन आरोपों के विरुद्ध दिये उनको असन्तोषजनक कहकर ठुकरा दिया। हेस्टिंग्ज ने उसको बन्दी बनाये जाने की आज्ञा दी। हेस्टिंग्ज के इस व्यवहार से राजा की सेना में बड़ा असन्तोष फैल गया और उसने अंग्रेजों को मारना आरम्भ कर दिया। राजा बनारस छोड़कर लतीफपुर भाग गया। हेस्टिंग्ज स्वयं भाग कर चुनार आया। वहां उसने सेना का संगठन कर चेतसिंह पर आक्रमण किया। उसने अंग्रेजी सेना का सामना किया किन्तु हार गया। शीघ्र ही हेस्टिंग्ज बनारस पहुँचा और वहां कठोरता तथा निर्दयता के साथ उसने वहां आतंक छा दिया। चेतसिंह को पदच्युत कर उसके स्थान पर उसके भतीजे को बनारस का राजा घोषित किया। नगर का सैनिक प्रबन्ध इब्राहीम खां को सौंप दिया गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह के साथ व्यवहार किया और बड़ी ही उग्र नीति का अनुकरण किया।

हेस्टिंग्ज की राजा चेतसिंह सम्बन्धी नीति पर एक दृष्टि (Critical estimate of Hasting's policy towards Raja Chet Singh)—हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह के साथ जो व्यवहार किया उसका किसी भी प्रकार समर्थन किया जाना सम्भव नहीं है। हेस्टिंग्ज का व्यवहार बड़ा असन्तोषजनक तथा अन्यायपूर्ण था जिस के कारण वह न केवल भारत में ही वरन् इङ्गलैंड में भी बहुत बदनाम हुआ। हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह से सन्धि की शर्तों के विरुद्ध धन मांगा। उसको उससे धन मांगने का

कोई अधिकार ही न था। राजा की कृपा थी कि उसने कम्पनी को आर्थिक तथा सैनिक दोनों प्रकार की सहायता प्रदान की, किन्तु जब उसने विरोध किया तो हेस्टिंग्ज ने उसके साथ बड़ी कठोर नीति अपनाई। हेस्टिंग्ज के जुर्माना करने पर राजा ने बक्सर में उससे माफी मांगी, किन्तु हेस्टिंग्ज ने इस ओर तनिक भी *ध्यान न दिया।* इसके विपरीत उसने राजा को अपमानित करने के अभिप्राय से उसके ही सैनिकों तथा नागरिकों के सामने उसे बन्दी करने का असफल प्रयत्न किया। हेस्टिंग्ज को इससे आर्थिक लाभ भी विशेष नहीं हुआ क्योंकि उसके हाथ केवल २३ लाख रुपया लगा। राजा चेतसिंह को पदच्युत कर उसके भतीजे को बनारस का राजा बनाया। उसके हाल में बनारस राज्य की दुर्दशा होनी प्रारम्भ हो गई जबकि चेतसिंह एक योग्य शासक था उसके काल में राज्य की व्यवस्था ठीक थी। उस पर जो कुशासन का आरोप लगाया गया था वह बिल्कुल झूठा था। इस प्रकार हेस्टिंग्ज का व्यवहार राजा चेतसिंह के सम्बन्ध में बिल्कुल भी उचित न था।

(३) हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें (Hastings and the Begums of Oudh)—बनारस के राजा चेतसिंह के धन से हेस्टिंग्ज की धन-पिपासा शान्त नहीं हुई। हेस्टिंग्ज *का ध्यान इस ओर अपने मित्र अवध के नवाब वजीर आसफउद्दौला की ओर* आकर्षित हुआ। ऐसा समझा जाता था कि उसके पास अनन्त धन-राशि है, किन्तु वास्तविक दशा यह थी कि उसके पास भी धन का अभाव था, जिसके कारण वह बहुत दिनों से कम्पनी के पिछले कर नहीं दे पाया था। उसको कम्पनी को डेढ़ करोड़ रुपया देना था। हेस्टिंग्ज ने कई बार उससे रुपये की मांग की, किन्तु वह टालता रहा। शुजाउद्दौला की पत्नी तथा माता के पास पर्याप्त धन था जो उन्होंने उसकी मृत्यु के समय अपने अधिकार में कर लिया था। नवाब आसफउद्दौला उनसे बार-बार रुपया मांगता था। एक-आध बार तो उन्होंने रुपया दे दिया, किन्तु वे बार-बार रुपया देना नहीं चाहती थीं। उन्होंने कलकत्ता कौंसिल से प्रार्थना की कि वे नवाब वजीर को आदेश कर दें कि वह उनसे रुपया मांगकर उनको व्यर्थ में परेशान न करे। अंग्रेजों के हस्तक्षेप करने पर एक सन्धि हुई जिसके अनुसार बेगमों ने नवाब वजीर को ३० लाख रुपया दिया और नवाब वजीर ने *यह वचन दिया कि वह फिर बेगमों से पुनः धन की मांग नहीं करेगा।* सन् १७८१ ई० में आसफउद्दौला ने बेगमों से फिर रुपया माँगा, किन्तु उन्होंने रुपया देने से इन्कार कर दिया। इस पर आसफउद्दौला ने अंग्रेजों की सहायता से बेगमों से धन वसूल करने का विचार किया। वह चुनार में हेस्टिंग्ज से मिला और उसको उसने आश्वासन दिलाया कि यदि अंग्रेज मुझे बेगमों की सम्पत्ति दिला दें तो मैं उनका ऋण शीघ्र भुगतान करने में समर्थ होऊँगा। हेस्टिंग्ज को धन की आवश्यकता थी और वह शीघ्र ही नवाब वजीर की सहायता करने को तैयार हो गया।

हेस्टिंग्ज ने नवाब वजीर की सहायता के लिये एक अंग्रेजी सेना भी भेजी। 'सेना को भेजते समय गवर्नर-जनरल ने अपने एजेन्ट को *आदेश दिया कि बेगमों का* किसी प्रकार का लिहाज न किया जाय और तब तक उन पर दबाव डाला जाय जब तक खजाना अन्दर से बाहर न आ जाये।'

अंग्रेजी सेना की टुकड़ी फैजाबाद गई जहाँ बेगमें निवास करती थीं। महलों के दरवाजे जबरदस्ती खुलवाये। बेगमों को कमरे में बन्द कर खजाने की चा[बी] देने पर बाध्य किया गया। जब बेगमों ने चाबी देना स्वीकार नहीं किया तो उन[के] सेवकों को बन्दी कर उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया तथा बेगमों के [साथ] भी अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया। बेगमों को बाध्य होकर झुकना पड़ा। उन्होंने [...] लाख पौंड के जवाहिरात देकर अपनी जान छुड़ाई।

हेस्टिंग्ज के कार्यों पर एक दृष्टि (Critical estimate of Hasti[ngs'] policy)—हेस्टिंग्ज का यह कार्य राजा चेतसिंह के कार्य से भी बढ़ कर अन्याय[पूर्ण] था। हेस्टिंग्ज को महिलाओं के साथ ऐसा निन्दनीय व्यवहार करना शोभ[नीय] नहीं था। उसके इस कार्य से उसकी बहुत बदनामी हुई। हेस्टिंग्ज ने अपने का[र्य] को न्याय-संगत सिद्ध करने के लिये दो तर्क उपस्थित किये। प्रथम, कि बेगमों [की] सम्पत्ति उनकी सम्पत्ति न होकर राज्य की सम्पत्ति थी तथा द्वितीय, बेगमों ने चेतसि[ंह] की सहायता की थी। बेगमों की सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति थी अथवा उन[की] निजी सम्पत्ति थी, इसका निर्णय करने का अधिकार अंग्रेजों को नहीं था। इसके [अ]तिरिक्त सन्धि द्वारा यह निश्चय हो चुका था कि भविष्य में नवाब वजीर उनसे धन की माँग नहीं करेगा। हेस्टिंग्ज ने धन-पिपासा शान्त करने के लिये इस सन्धि का पालन न कर बेगमों के साथ विश्वासघात किया और अपने को कलंकित किया। हेस्टिंग्ज का यह कहना कि बेगमों ने राजा चेतसिंह का साथ दिया था बिल्कुल बहाना मात्र था। उनका (बेगमों का) दोष सिद्ध करने का जो मार्ग हेस्टिंग्ज ने अपनाया वह दोषपूर्ण था। बेगमों को अपनी निष्पक्षता तथा निरपराधिता सिद्ध करने का अवसर भी नहीं दिया गया। सुप्रीम कोर्ट का निर्णय एक-पक्षीय था। उनकी चेतसिंह के साथ साजिश थी, इसको सिद्ध करने के लिये आवश्यक था कि उन पर नियमपूर्वक मुकदमा चलाया जाता और उनको अपनी सफाई देने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिये था। जिस प्रकार से उन पर मुकदमा चलाया गया वह सिद्ध करता है कि हेस्टिंग्ज स्वयं विश्वास नहीं करता था कि वे अपराधिनी हैं। वास्तव में वह धन की प्राप्ति के लालच के कारण इतना अन्धा हो गया कि उसको उचित-अनुचित तक का ध्यान नहीं रहा। डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में 'यह बर्बरता तथा अन्याय की पराकाष्ठा थी। पुनः असहाय महिलाओं के घर को घेरना, उनके नौकरों को बन्दी बनाना, भूखा रखना तथा अन्य यातनायें देना सर्वथा अति कठोर था। हेस्टिंग्ज के पक्ष का किसी भी दृष्टि से समर्थन नहीं किया जा सकता।" एक अन्य आधुनिक लेखक के शब्दों में "हेस्टिंग्ज के अन्य भक्त अंग्रेज लेखक उसको इस प्रकार अनीति के समर्थन में कुछ भी कहें इतिहास का लेखक यह कहे बिना नहीं रह सकता कि अंग्रेज गवर्नर जनरल की आज्ञा से धन के लोभ के कारण अवध की बेगमों तथा उनके बूढ़े नौकरों पर जो अत्याचार किये गये, उनकी संसार के अत्याचारियों द्वारा किये गये अत्यन्त काले कारनामों में गिनती की जायगी।"

हेस्टिंग्ज का वापिस जाना (Hastings' return to England)—हेस्टिंग्ज

अपनी नीति तथा कार्यों के कारण इंगलैंड में बहुत बदनाम हो गया। सन् १७८५ ई० में वह त्याग-पत्र देकर इंगलैंड चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया गया, किन्तु वहाँ पहुँचने के ७ दिनों में ही उसके इंगलैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा अपने समय के सर्वोत्कृष्ट वक्ता एडमन्ड बर्क ने पालियामेंट मे उसके विरुद्ध प्रस्ताव रखा। फोक्स और शेरीडन ने भी बर्क की सहायता की। १७९५ ई० तक यह ऐतिहासिक मुकदमा चलता रहा। अन्त में वह लगभग निर्दोष प्रमाणित किया गया।

प्रश्न

उत्तर-प्रदेश—

(१) रेग्यूलेटिंग एक्ट की मुख्य धारायें क्या थीं ? उनके दोष बताओ। (१९५२)

(२) आपके विचार में वारेन हेस्टिंग्ज कहाँ तक ब्रिटिश राज्य का संस्थापक कहा जा सकता है ? (१९५३)

(३) "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति सराहनीय है।" इस कथन की विवेचना करो। (१९५४)

(४) वारेन हेस्टिंग्ज की बाह्य नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। (१९५५)

(५) वारेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल में किस तरह शासन-व्यवस्था की ? वर्णन कीजिये। (१९५६)

(६) रेग्यूलेटिंग एक्ट की मुख्य धारायें क्या थीं ? वारेन हेस्टिंग्ज के लिये उनसे जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, उनका वर्णन कीजिये। (१९६०)

राजस्थान—

(१) 'रेग्यूलेटिंग एक्ट सब एक्टों में निकृष्ट था जो इङ्गलैंड की पालियामेंट ने भारत के लिये पास किया है।' विवेचना करो। (१९५०)

(२) क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज में तुमको कौन अच्छा लगता है ? (१९५०, १९५१)

(३) क्लाइव द्वारा स्थापित बंगाल का दोहरा प्रबन्ध किस प्रकार समाप्त हुआ ? एक अच्छी शासन-व्यवस्था की स्थापना में हेस्टिंग्ज कहाँ तक सफल हुआ ?

(४) वारेन हेस्टिंग्ज की निम्न नीतियों की व्याख्या करो—

(क) रुहेला युद्ध तथा (ख) नन्दकुमार को फांसी। (१९५४)

(५) सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट की मुख्य धाराओं का वर्णन करो। इसके क्या दोष थे ? (१९५७)

(६) यह सत्य है कि नन्दकुमार को मारने के लिये हेस्टिंग्ज और इम्पी में कोई षड्यन्त्र नहीं था। (१९५७)

मध्य भारत—

(१) वारेन हेस्टिंग्ज के गवर्नर-जनरल काल की विशद विवेचना करो। (१९५५)

(२) "रेगुलेटिंग एक्ट अधूरा कानून था।" व्याख्या करो। (१६१

(३) वारेन हेस्टिंग्ज के शासन काल में अंग्रेजी सत्ता को किन कठिनाइयों सामना करना पड़ा ? उसने उन्हें कैसे सुलझाया ? (१६१

---

६ अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार
(१७६५-१७९८)
Expansion of the British Empire

गत अध्यायों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि अंग्रेजों ने सन् १७६० ई० में फ्रांसीसियों को बुरी तरह परास्त किया जिसके कारण फ्रांसीसी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। उनके समस्त उपनिवेश उनके हाथ से निकल गये और अंग्रेजों के प्रभुत्व की दक्षिण भारत में स्थापना हुई। मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब स्वीकार कर लिया गया। निजाम फ्रांसीसियों के प्रभाव से मुक्त होकर बहुत कुछ अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया तथा उत्तरी सरकार में अंग्रेजों की शक्ति दृढ़ हो गई। अब अंग्रेजों को एक ऐसे दृढ़ शत्रु का सामना दक्षिण में करना पड़ा जिसने अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने की प्रतिज्ञा कर कार्य करना प्रारम्भ किया। उसका नाम हैदरअली था जिसने अपनी योग्यता के कारण मैसूर के राज्य को अपने अधिकार में किया। भारतीय इतिहास में हैदरअली का उत्कर्ष एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि अब अंग्रेजों को एक विशेष शक्तिशाली भारतीय नरेश का सामना करना पड़ा।

मैसूर-राज्य
(Mysore State)

इससे पूर्व कि हैदरअली के सम्बन्ध में कुछ वर्णन किया जाय यह उचित होगा कि मैसूर-राज्य के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जाये। यह राज्य प्रारम्भ में विजयनगर राज्य का एक भाग था। विजयनगर राज्य का पतन १५६० ई० में हुआ जिसके पतन का वर्णन पुस्तक के प्रथम भाग, में किया जा चुका है। इसके उपरान्त मैसूर में वोदेयर-वंश के एक व्यक्ति ने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की जिसको मान्यता मुगल-सम्राट औरंगजेब ने १७०४ ई० में दी। यह राज्य अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य तक स्वतन्त्र राज्य के रूप में कार्य करता रहा, किन्तु इसके उपरान्त निजाम ने उसको अपने अधिकार में किया। इस समय से उसकी स्थिति खराब होने लगी जिससे मरहठों को उस पर आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कई बार इस राज्य पर आक्रमण कर वहां से 'चौथ' वसूल की, किन्तु शीघ्र ही मैसूर के दुर्दिनों का अन्त हुआ जब अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हैदरअली का उत्कर्ष हुआ और उसने मैसूर राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया जिससे मैसूर राज्य की गणना दक्षिण के शक्तिशाली राज्यों में की जाने लगी।

हैदरअली का प्रारम्भिक जीवन
(Early Career of Haider Ali)

हैदरअली का जन्म सन् १७२२ ई० में मैसूर राज्य के कोलार जिले में हुआ था। हैदर का दादा मुहम्मद बहलोल फकीर था और उसका पिता फतहमुहम्मद मैसूर की सेना में एक फौजदार था। वह भी अपने पिता के समान मैसूर की सेना में भर्ती हो गया। अपनी योग्यता तथा कार्य-कुशलता से वह मैसूर के प्रधान मन्त्री नंजराज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुआ जो वास्तव में मैसूर राज्य में एक तानाशाह के रूप में शासन कर रहा था और वहाँ का हिन्दू राजा केवल नाममात्र का शासक था। उसने उसको डिंडीगुल के दुर्ग का फौजदार घोषित किया।

हैदरअली

सैनिक संगठन की व्यवस्था (Military Organization)—हैदरअली बड़ा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह फौजदार के पद से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने फौजदार बनने पर दो कार्य किये जो उसकी अभिलाषा के प्रतीक तथा चतुराई के चिह्न थे। (i) उसने अपनी अज्ञानता तथा निरक्षरता की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से खांडेराव नामक एक ब्राह्मण को अपना सलाहकार नियुक्त किया। खांडेराव न केवल एक शिक्षित व्यक्ति ही था वरन् वह उच्च-कोटि का षड्यन्त्रकारी भी था। (ii) हैदर का दूसरा कार्य था कि उसने अपनी सेना को फ्रांसीसी ढंग पर संगठित तथा सुसज्जित करने के अभिप्राय से फ्रांसीसियों के द्वारा अपनी सेना को सैनिक शिक्षा दिलवाने की व्यवस्था की। ये दोनों ही कार्य ऐसे थे जिनसे मन्त्री नंजराज को सचेत हो जाना चाहिए था, किन्तु उसने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वह समझता रहा कि हैदर उसके लिये ही सब कुछ कर रहा है, किन्तु उसकी यह सबसे बड़ी भूल थी।

नंजराज के विरुद्ध षड्यन्त्र (Plot against Najraj)—इसी समय खांडेराव के प्रभाव से मन्त्री नंजराज के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया। उसने राजमाता को यह आश्वासन दिया कि वह हैदर की सहायता से नंजराज के अधिकार का अन्त करेगा और समस्त शासन की सत्ता राजा के सुपुर्द कर देगा जो इस समय नंजराज के बन्दी के रूप में था। शासन की समस्त सत्ता पर नंजराज का अधिकार था। राजमाता शीघ्र ही षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गई। हैदरअली ने अपनी सुसंगठित तथा सुसज्जित सेना से मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण किया। नंजराज को परास्त कर हैदर ने समस्त सत्ता को अपने अधिकार में लिया। वह राजा का संरक्षक बन गया। जब खांडेराव ने इसका विरोध किया तो उसको एक लोहे के पिंजड़े में बन्दी कर दिया गया। इस प्रकार राजा, मन्त्री और खांडेराव तीनों को ठिकाने पर लगाकर हैदरअली ने अपने आपको मैसूर का शासक घोषित किया। खांडेराव की मृत्यु एक वर्ष उपरान्त कारागृह में हुई।

हैदरअली की कठिनाइयाँ तथा उनका निराकरण
(Difficulties of Haider and their Solution)

हैदरअली यद्यपि षड्यन्त्र द्वारा मैसूर पर अधिकार करने में सफल हुआ किन्तु उसके सामने कई कठिनाइयाँ थी जिनमें से प्रमुख निम्न थीं—(i) मैसूर-राज्य का शत्रुओं से घिरा होना (Mysore was surrounded by enemies)—मैसूर राज्य चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ था। निजाम और मरहठे मैसूर पर अपनी आँख लगाये थे। (ii) आन्तरिक कलह तथा संघर्ष (Internal Conflict)—समस्त राज्य में विद्रोह हो गये और अधिकारियों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ किये। (iii) सेना तथा शासन की शोचनीय अवस्था (Deteriorable condition of the Military and the administration)—सेना तथा शासन की व्यवस्था बड़ी शोचनीय थी। हैदरअली इन कठिनाइयों से नहीं घबराया। उसने बड़े साहस तथा धैर्य से अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया। उसको उसके कार्यों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। सर्वप्रथम उसने राज्य की आन्तरिक दशा को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने समस्त विद्रोहों का दमन कर विद्रोहियों को कठोर यातनायें दीं। उसने विश्वासघाती पदाधिकारियों को उनके पदों से च्युत किया। इसके उपरांत उसने सैनिक शक्ति को सङ्गठित करना प्रारम्भ किया और शासन को सुव्यवस्थित किया।

हैदरअली का साम्राज्य-विस्तार
(Haider Ali's Expansion of the Empire)

हैदरअली, जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है, बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। अपनी स्थिति को मैसूर में दृढ़ करने के उपरान्त उसने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई और उसको अपना कार्य पूरा करने के लिये शीघ्र ही स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। उसकी मुख्य विजयें निम्नलिखित थीं:—

> **हैदरअली का साम्राज्य विस्तार**
> (१) बेदनूर विजय।
> (२) अन्य विजयें।
> (३) हैदरअली और मरहठे।
> (४) हैदरअली और अंग्रेज।

(१) बेदनूर-विजय (Conquest of Bednur)—इसी समय जब हैदरअली साम्राज्य-विस्तार की योजना का निर्माण कर रहा था तो सन् १७६३ ई० में बेदनूर के छोटे से राज्य में उत्तराधिकारी के प्रश्न पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। हैदरअली ने भी अंग्रेजों की नीति का अनुसरण कर दोनों प्रतिद्वन्द्वियों का अन्त कर दोनों को बन्दीगृह में डाल दिया और बेदनूर पर अधिकार किया। उसने बेदनूर का नाम बदल कर हैदरनगर रखा। इस विजय से हैदरअली को बड़ी प्रसन्नता हुई जो स्वाभाविक ही थी क्योंकि यह उसकी प्रथम विजय थी। इस विजय के उपलक्ष में १५ दिनों तक बड़ी धूम-धाम के साथ उत्सव मनाया गया।

(२) अन्य विजयें (Other Conquests)—इसी समय कनारा राज्य में भी

उत्तराधिकारी के प्रश्न पर संघर्ष होने लगा। हैदरअली ने शीघ्र ही उस पर अधिकार किया। इसके उपरान्त उसने मालाबार की ओर ध्यान दिया। उसने कालीकट, कोचीन और पालघाट के राजाओं को अपनी आधीनता में किया। कालीकट पर तो उसने अधिकार किया। उसने बगमहल बालाघाट को भी अपने अधिकार में किया।

(३) हैदरअली और मरहठे (Haider Ali and the Marathas)—हैदरअली के उत्कर्ष से मरहठों में चिन्ता उत्पन्न हो गई। मरहठों ने पानीपत की पराजय के उपरान्त अपनी शक्ति का संगठन पेशवा माधवराव के योग्य नेतृत्व में कर लिया था। १७६५ ई० में माधोराव पेशवा ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदरअली परास्त हुआ और उसे २८ लाख रुपया युद्ध-क्षति के रूप में और सवानूर तथा बोरठी मरहठों को देने पड़े।

(४) हैदरअली और अंग्रेज (Haider Ali and the English)—हैदरअली की दक्षिण में बढ़ती हुई शक्ति से अंग्रेज भी भयभीत होने लगे थे। मरहठे और निजाम तो उससे पहले से ही ईर्ष्या करते थे। इन तीनों शक्तियों ने हैदरअली की शक्ति को समाप्त करने के उद्देश्य से एक संघ का निर्माण किया। उसके राज्य पर मरहठों तथा निजाम ने अंग्रेजों की सहायता से आक्रमण किया। हैदर बड़ा भयभीत हुआ किन्तु इस समय उसने बड़े साहस तथा धैर्य से काम लिया। उसने शीघ्र ही मरहठों से एक सन्धि की जिसके द्वारा उसने मरहठों को ५३ लाख रुपया देने का वचन दिया। इसके पश्चात् उसने निजाम के आक्रमण की ओर ध्यान दिया। अप्रैल सन् १७६७ ई० में निजाम ने मैसूर पर आक्रमण किया, किन्तु कर्नाटक के नवाब के भाई महफूज खाँ के द्वारा निजाम हैदरअली की ओर आ गया और दोनों में एक सन्धि हो गई। इस प्रकार हैदरअली ने मरहठों और निजाम को इस संघ से अलग कर दिया। इनके साथ-साथ निजाम अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ हैदरअली से मिल गया। यह हैदरअली की बड़ी भारी विजय तथा कूटनीतिज्ञता का प्रतीक है। अब हैदरअली को केवल अंग्रेजों का सामना करना शेष रह गया।

प्रथम मैसूर युद्ध
(The First War of Mysore)

हैदरअली ने मरहठों और निजाम से मुक्त होकर अपनी समस्त शक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध प्रयोग करने का निश्चय किया। अंग्रेजों ने भी पूर्ण शक्ति से हैदरअली और निजाम का सामना किया। सितम्बर १७६७ ई० में स्मिथ के नेतृत्व में अंग्रेज इन दोनों की सम्मिलित सेनाओं को चंगामा घाट तथा त्रिनोमली के स्थानों पर परास्त करने में सफल हुये। इस पराजय के कारण निजाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया और उसकी और अंग्रेजों की सन्धि हो गई जिसके अनुसार निजाम ने अपने पुराने वचनों की पूर्ति का आश्वासन दिया और उसने अंग्रेजों को हैदरअली के विरुद्ध सहायता करने का वचन दिया। इस सन्धि से अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ वरन् इसके विपरीत वे हैदरअली के शत्रु बन गये। इसी समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने लिखा कि "तुमने हमको बड़ी कठिनाइयों तथा परेशानियों में उलझा दिया और हमारी समझ में *नहीं आता कि* हम

उससे कैसे निकलेंगे।"* इस समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की इच्छा भारत में साम्राज्य विस्तार करने की नहीं थी और वे उससे ही सन्तुष्ट थे जो उनको प्राप्त हो चुका था।

अंग्रेजों की पराजय (Defeat of the English)—यद्यपि निजाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया, किन्तु वह उससे हतोत्साहित नहीं हुआ और उसने बड़े साहस तथा उत्साह के साथ अंग्रेजों का सामना करना प्रारम्भ कर दिया। उसको निजाम पर बड़ा क्रोध आया। उसने शीघ्र ही बम्बई की सेना को परास्त कर मंगलोर नामक स्थान पर अधिकार किया। अंग्रेजों को इस युद्ध में बड़ी क्षति उठानी पड़ी। इसके उपरान्त उसने शीघ्र ही मार्च १७६९ में मद्रास पर आक्रमण किया और उसको घेर लिया।

अंग्रेज और हैदरअली में सन्धि (Treaty between Haider Ali and the English)—अंग्रेज भयभीत हो गये और दोनों में ४ अप्रैल सन् १७६९ ई० को एक सन्धि हुई जिसके अनुसार हैदरअली और अंग्रेज दोनों ने एक दूसरे के विजित प्रदेश लौटा दिये तथा यह भी निश्चय हुआ कि दोनों एक दूसरे की सहायता किसी अन्य शक्ति के आक्रमण करने के अवसर पर करेंगे। इस युद्ध तथा सन्धि से अंग्रेजों के मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुंचा और हैदरअली की शक्ति का विकास होना प्रारम्भ हो गया।

मैसूर पर मरहठों का आक्रमण (Marathas attack on Mysore)—मरहठों और हैदरअली में भी अधिक दिनों तक सन्धि न रह सकी। उन्होंने १७७१ ई० में मैसूर-राज्य पर आक्रमण किया। हैदरअली ने अंग्रेजों से सहायता नहीं ली। इस समय हैदरअली की भी यह स्थिति नहीं थी कि वह अकेला मरहठों का सामना कर सकता। अतः जब वह अंग्रेजों की सहायता से निराश हो गया तो उसने मरहठों को बहुत सा धन दिया (३६ लाख रुपया) तथा वार्षिक कर (१४ लाख) देने का वचन दिया। उसके कुछ भाग पर मरहठों ने अधिकार भी किया। हैदरअली को अंग्रेजों पर वचन-भंग करने के कारण बड़ा क्रोध आया। इस समय से वह उनका कट्टर शत्रु बन गया और उसने इसका बदला लेने का निश्चय किया और अवसर खोजने लगा।

द्वितीय मैसूर युद्ध
(Second War of Mysore)

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजों के विश्वासघात के कारण हैदरअली उनका शत्रु हो गया और वह उनकी समाप्ति करने के अवसर की खोज में था। सन् १७७६ ई० में नाना फड़नवीस ने निजाम और हैदरअली को मिला कर एक संघ का निर्माण किया। अंग्रेजों ने अपनी नीति के कारण इन तीनों को अप्रसन्न कर दिया था। उन्होंने निजाम को उत्तरी सरकार का कर नहीं दिया और गंटूर पर आक्रमण हैदरअली के राज्य में होकर किया। हैदरअली ने इसका विरोध

* "The Court of Directors observed "You have brought us into such a of difficulties that we do not see how we shall be extricated from them."

किया। इसी समय मरहठों का संघर्ष बम्बई सरकार से चल रहा था। सन् १७७८ ई० में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के युद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजों ने कुछ फ्रांसीसी बस्तियों पर शीघ्र अधिकार किया। इनमें पांडेचेरी, कारीकल और चन्द्रनगर थे। इसके पश्चात् उन्होंने माही पर जो हैदरअली के राज्य में स्थित था आक्रमण करने का विचार किया। उन्होंने इसकी सूचना हैदरअली को दी। हैदरअली ने इसका विरोध किया, किन्तु अंग्रेजों ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। सन् १७७९ ई० में अंग्रेजों ने माही पर आक्रमण किया और वे उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुये। अंग्रेजों के इस व्यवहार से हैदरअली बड़ा क्रोधित हुआ और उसको वह अवसर प्राप्त हो गया जिसकी वह खोज में था। उसने मरहठों तथा निजाम से मिलकर युद्ध का शंखनाद बजाया।

हैदरअली का अर्काट पर आक्रमण (Haider's attack on Arcot)—इस समय हैदरअली की शक्ति पर्याप्त सगठित थी। उसके पास ८०,००० हजार सैनिक और १०० तोपें थीं। अंग्रेजों की दशा इस समय बड़ी शोचनीय थी। उनकी न आर्थिक स्थिति और न सैनिक स्थिति ही उन्नत थी। हैदरअली ने शीघ्र ही जुलाई सन् १७८० ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया। उसकी समस्त सेना तीन प्रमुख भागों में विभक्त थी। एक का नेतृत्व स्वयं हैदरअली, दूसरी का उसका पुत्र टीपू और तीसरी का उसका पुत्र करीम कर रहा था। अनेक गावों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ वह कर्नाटक की राजधानी अर्काट पहुँचा जिसका उसने घेरा डाल दिया। कर्नाटक का नवाब भागकर मद्रास पहुँचा। अंग्रेजों को जब यह समाचार विदित हुआ तो उन्होंने उसका सामना करने के लिए एक सेना मनरो (Munro) के तथा दूसरी सेना बेली (Bailly) के नेतृत्व में दो विभिन्न मार्गों से भेजी, किन्तु हैदरअली के वीर पुत्र टीपू ने इन दोनों सेनाओं को मिलने नहीं दिया। पिता और पुत्र ने मिलकर बेली की ४००० सैनिकों की अंग्रेजी सेना को घेरकर बुरी तरह परास्त किया। अंग्रेजों के सैकड़ों सैनिक युद्ध में काम आए। जब मनरो को बेली की पराजय का समाचार विदित हुआ तो वह अपने सामान को एक तालाब की भेंट कर मद्रास भाग गया। इस समय अंग्रेजों का भाग्य गिर गया था* किन्तु जब इसका समाचार बंगाल पहुँचा तो वारेन हेस्टिंग्ज ने सर आयर कूट (Sir Eyre Coot) को दक्षिण भेजा। पाठकों को याद होगा कि सर आयर कूट ने फ्रांसीसियों को वांडेवाश के युद्ध में सन् १७६० ई० में बुरी तरह परास्त किया था। यदि इस समय मरहठे चाहते तो वे सर आयर कूट को दक्षिण जाने के पूर्व रोक सकते थे किन्तु हेस्टिंग्ज ने निजाम, महादजी सिंधिया और बरार के राजा भोंसले को अपनी ओर मिला लिया था। सर आयर कूट निर्विरोध दक्षिण में हैदरअली का सामना करने के लिये तथा अंग्रेज-शक्ति की रक्षा करने के लिये पहुँचने में सफल हुआ। यह युद्ध चल ही रहा था कि अंग्रेजों और

* "The fortunes of English in India had fallen to their lowest water-mark."
—Sir Alfred Lyall.

मरहठों से सन् १७८२ ई० में सालबाई की सन्धि (Treaty of Salbai) हो गई जिससे मरहठे युद्ध से अलग हो गए।

सर आयर कूट के कार्य (Activities of Sir Eyre Coote)—सर आयर कूट ने मद्रास पहुँच कर हैदरअली को रोक-थाम करने का कार्य प्रारम्भ किया। वह मद्रास से कर्नाटक के तट पर पांडिचेरि के दक्षिण कुड्डलूर पहुँचा। इसी समय एक फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा ओवरे के नेतृत्व में मद्रास तट पर आया जिसके कारण अंग्रेजी रसद का मार्ग रुक गया जो समुद्र के मार्ग से आने वाली थी। हैदरअली ने स्थल मार्ग पर अधिकार किया। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर सर आयर कूट बड़े संकट में पड़ गया, किन्तु कुछ ही दिनों बाद फ्रांसीसी बेड़ा वहाँ से रवाना हो गया और आयर कूट को समुद्र से रसद मिलने लगी। इधर से निश्चिन्त होकर आयर कूट ने हैदरअली से युद्ध करना प्रारम्भ किया। उसने चिदम्बरम् पर आक्रमण किया, किन्तु वह परास्त हुआ। इस विजय से हैदरअली का उत्साह बहुत बढ़ गया। उसने फिर से पोर्टो नोवो (Porto Novo) पर आक्रमण किया। यहाँ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु हैदरअली हार गया। हैदरअली की सेना को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। इसके बाद पोलीलोर का युद्ध हुआ। यहाँ विजय निश्चित रूप से किसी भी दल की नहीं हुई। तृतीय युद्ध में हैदरअली पराजित हुआ। यह युद्ध शोलिंगर नामक स्थान पर हुआ था।

युद्ध के मध्य हैदरअली की मृत्यु (Death of Haider in the midst of battle)—यद्यपि हैदरअली परास्त हुआ, किन्तु अंग्रेज उसको कर्नाटक से निकालने तथा सन्धि करने के लिए बाध्य न कर सके। सन् १७८२ ई० के आरम्भ में एक फ्रांसीसी बेड़ा हिन्द महासागर में आया जिसने अंग्रेजों को परास्त किया। एक योजना के अनुसार बुसी एक सेना के साथ भारत आने वाला था किन्तु वह ठीक समय पर भारत न पहुँच सका। अंग्रेजों ने तंजोर की रक्षा के लिए कर्नल ब्राथवेट (Colonel Braithwaite) को २,००० सैनिकों के साथ भेजा। हैदरअली का पुत्र टीपू तंजोर का घेरा डाले पड़ा था। टीपू ने उसको बुरी तरह परास्त किया और उसको आत्म-समर्पण करने के लिये बाध्य किया। दूसरी ओर हैदरअली वेलौर को घेरे पड़ा था। किन्तु अंग्रेज उसकी रक्षा करने में सफल हुए। इसी समय एक फ्रांसीसी बेड़ा एडमिरल सफरन (Admiral De Suffren) के नेतृत्व में भारत आया। हैदरअली को पुनः आशा हुई। अब अंग्रेजों ने हैदरअली के राज्य मैसूर पर आक्रमण करना आरम्भ किया। कर्नल हैम्बर स्टोन (Colonel Hamberstone) ने अंग्रेजी सेना के मालाबार पर आक्रमण किया। टीपू ने उसका बड़ी वीरता से सामना किया और उसको परास्त किया। हैदरअली स्वयं अंग्रेजों का सामना करने के लिए आ रहा था, किन्तु इसी बीच ७ दिसम्बर सन् १७८२ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

टीपू का युद्ध संचालन (Tipu in Command of the War)—हैदरअली की मृत्यु के उपरान्त युद्ध का समस्त कार्य भार संचालन टीपू ने अपने हाथ में लिया। सन् १७८३ ई० में उसने बेदनूर पर अधिकार किया। अंग्रेजों ने दक्षिण की ओर से उसके राज्य पर आक्रमण किया। टीपू को बाध्य होकर उधर जाना पड़ा। इसी

बीच सन् १७८३ में अंग्रेजी कर्नल फुलर्टन (Colonel Fullorton) ने कोयम्बटूर पर अधिकार कर श्रीरंगपट्टम की ओर बढ़ना आरम्भ किया। दोनों दल युद्ध से ऊब गए थे और वे संधि करना चाहते थे। दोनों ही अपनी स्थिति के कारण बड़े परेशान हो गए थे। १७ मार्च १७८४ ई० को दोनों में संधि हो गई। यह संधि मंगलौर की संधि (Treaty of Mangalore) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि दोनों एक दूसरे के विजित प्रदेश वापिस कर दें तथा युद्ध के बन्दियों को मुक्त कर दें। वारेन हेस्टिंग्ज को संधि की ये शर्तें बिल्कुल भी पसन्द नहीं आईं।*

टीपू

हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन
(Character and Estimate of Haider Ali)

भारतीय इतिहास में हैदरअली का स्थान सब दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। वह सर्वगुण सम्पन्न था, जिसके आधार पर वह एक छोटे से पद से मैसूर राज्य का स्वामी बनने में सफल हुआ।

> **हैदरअली का चरित्र और मूल्याङ्कन**
> (१) महान् शासक और सेनापति।
> (२) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ।
> (३) बड़ा परिश्रमी।
> (४) गुणों के परखने की शक्ति।
> (५) सैनिक संगठन पर विशेष महत्व।
> (६) कई भाषाओं का ज्ञाता।
> (७) विलक्षण स्मरण-शक्ति।
> (८) न्यायप्रिय शासक।
> (९) धार्मिक विषयों में उदारता।

(१) महान् शासक और सेनापति (A Great administrator and General)—शासक और सेनापति के रूप में वह महान् था। उसने अपने राज्य में उचित व्यवस्था की स्थापना कर शान्ति स्थापित की। उसने अपनी सेना को पाश्चात्य ढंग से संगठित किया और जहाजी बेड़ा बनाने की ओर *ध्यान दिया।*

(२) उच्च-कोटि का कूटनीतिज्ञ (High Class politician)—वह उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ था। इसका प्रदर्शन उसने अपने जीवनकाल में कई बार किया। उसमें प्रतिशोध की भावना विशेष रूप से विद्यमान थी। वह अपने शत्रुओं के साथ कठोरता का व्यवहार करता था। उनको क्षमा करना वह नहीं जानता था।

(३) बड़ा परिश्रमी (Hard Worker)—वह बड़ा परिश्रमी था और दिन-रात वह अपने कार्य में व्यस्त रहता था।

(४) गुणों के परखने की शक्ति (Shrewd judge of men)—वह मनुष्य के

*"What a man is this Lord Macartney ! I yet belive that inspite of the peace, he will effect the loss of the Carnatic." —Hastings.

गुणों को परखने की अद्वितीय शक्ति रखता था। वह अयोग्य व्यक्तियों का किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन प्रदान नहीं करता था।

(५) सैनिक सङ्गठन पर विशेष महत्व (Attached Great Importance on military organization)—उसने सैनिक संगठन को विशेष महत्व दिया। वह जानता था कि चारों ओर वह शत्रुओं से घिरा हुआ है और वह उनका सामना करने में असमर्थ रहेगा जब तक कि वह अपने सैनिक संगठन को उच्च-कोटि तक पहुंचाने में सफल न होगा। उसने फ्रांसीसियों को अपनी सेना में भर्ती किया और उनके द्वारा उसने अपनी सेना का समस्त संगठन करवाया। सैनिकों को पाश्चात्य ढङ्ग पर शिक्षा दी जाती थी। वह सैनिकों की भर्ती में जाति, रंग आदि का भेदभाव नहीं करता था। उसने योग्यता को ही अपना आधार बनाया। कुछ विद्वानों ने उसकी पराजय का कारण उसकी सैनिक नीति ही बतलाई है, किन्तु इसमें सत्य का अभाव है। वास्तव में अपनी सैनिक शक्ति के द्वारा ही वह अंग्रेजों का सामना करने में सफल हुआ और कई युद्धों में उसको उनके विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई।

(६) कई भाषाओं का ज्ञाता (Well-versed in several Languages)—यद्यपि वह साक्षर नहीं था, किन्तु उसको कई भाषाओं का ज्ञान था।

(७) विलक्षण स्मरण-शक्ति (Good memory)—उसकी स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी। छोटी-छोटी बातों तक को भी वह कभी नहीं भूलता था।

(८) न्यायप्रिय शासक (Lover of Justice)—वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उसके नियम कठोर अवश्य थे, किन्तु इनके अभाव में शांति और सुव्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं थी। वह सबके साथ न्यायोचित व्यवस्था करता था।

(९) धार्मिक विषयों में उदारता (Religious tolerance)—उसकी धर्म में विशेष अभिरुचि नहीं थी, इसी कारण वह धार्मिक विषयों में बड़ा उदार था। वह एक साथ कई कार्य करने की क्षमता रखता था।

अंग्रेजों के विचार (Opinion and views of the English people)—कुछ अंग्रेजों ने उसके चरित्र को कलुषित करने का यत्न किया,* किन्तु वास्तव में उसका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था। यद्यपि उसमें कुछ दोष भी अवश्य थे किन्तु उसके गुणों के सामने उनका कोई महत्व नहीं था। उसके चरित्र के सम्बन्ध में बोरिंग (Bowring) का कथन है कि 'हैदरअली एक वीर, मौलिक तथा साहसिक सेनापति, कुशल रणनीतिज्ञ तथा साधन-सम्पन्न व्यक्ति था। पराजय से भी वह कभी हतोत्साहित व निराश नहीं हुआ। वह दृढ़ प्रतिज्ञ था और सदा इस ओर प्रयत्नशील था। उसकी अंग्रेजों के प्रति नीति पूर्ण स्पष्ट थी जिसका पालन उसने ईमानदारी के साथ किया। यद्यपि उसके कार्यों द्वारा लोगों में आतङ्क था किन्तु उसका नाम मैसूर-राज्य में आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है चाहे वे उसकी प्रशंसा न करें। उसके अत्याचार को लोग भूल गये हैं, किन्तु उसकी वीरता तथा सफलता उनके हृदयों पर सदा अंकित रहेगी।"*

* "Haider was an absolutely unscruplous man, who had no religion, no moral and no compassion." —Dr. V. Smith.

तृतीय मैसूर युद्ध
(The Third Mysore War)

मंगलोर की सन्धि अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी। दोनों एक दूसरे से पूर्व के समान शत्रुता रखते थे। अपनी-अपनी परिस्थितियों से बाध्य होकर दोनों ने एक-दूसरे से सन्धि की। इसके अनुसार ट्रावनकोर राज्य पर अंग्रेजों का संरक्षण स्थापित हो गया था। इसी समय डचों ने कोचीन राज्य के दो नगर ट्रावनकोर के राजा को बेच दिये। कोचीन-राज्य मैसूर-राज्य के संरक्षण में था। उसने ट्रावनकोर के राजा को आदेश दिया कि वे उन दोनों नगरों को कोचीन राज्य को वापिस कर दें। उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। टीपू ने १४ दिसम्बर सन् १७८६ ई० को ट्रावनकोर राज्य पर आक्रमण किया। जब लार्ड कार्नवालिस ने भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन किया तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि स्थिति बड़ी भयंकर हो गई है और मैसूर राज्य से युद्ध करना अनिवार्य है। यद्यपि पिट्स इण्डिया एक्ट (Pitt's India Act) द्वारा वह केवल सम्राट के लिये युद्ध कर सकता था। अतः जनवरी सन् १७९० ई० को उसने मैसूर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। अंग्रेजों ने पहले ही निजाम और मरहठों को यह आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया था कि युद्ध की समाप्ति पर वह उनको विजित प्रदेशों का कुछ भाग प्रदान करेंगे। इसके कारण उन्होंने टीपू की सहायता नहीं की।*

युद्ध की घटनायें (The events of the battle)—अंग्रेज मेजर जनरल मेडोज (Major General Medows) ने मैसूर पर आक्रमण किया, किन्तु वह सफल नहीं हो सका। इसी बीच मरहठों ने धारवार पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। टीपू शीघ्र ही त्रिचनापली पहुँचा जहां उसने श्रीरंगम् के टापू पर आक्रमण किया। उसकी इन सफलताओं के कारण कार्नवालिस बड़ा चिन्तित हुआ। उसने दिसम्बर १७९० ई० में सेना का नेतृत्व स्वयं अपने हाथों में लिया। उसने वैलोर पर अधिकार करने के लिये आगे बढ़ना आरम्भ किया। सन् १७९१ ई० में वह बंगलोर पर अधिकार करने में सफल हुआ। टीपू ने उस पर अधिकार स्थापित करने के लिये उस पर आक्रमण किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई, यद्यपि मैसूर की सेना ने अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ युद्ध किया था। टीपू को बाध्य होकर वापिस लौटना पड़ा। इस युद्ध में दोनों पक्षों की बड़ी हानि हुई।

श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण (Attack on Srirangapattam)—इस युद्ध के

* "He was a bold, an original and an enterprising commander, skilful in tactics and fertile in resources, full of energy and never desponding in defeat. He was singularly faithful to his engagements and straight-forward in his policy towards the British. Notwithstanding the severity of his internal rule, and the terror which he inspired, his name is always mentioned in Mysore with respect if not with admiration. While the cruelties which he sometimes practised are forgotten, his prowess and success have an abiding place in the memory of the people."

—Bowring.

उपरान्त अंग्रेजों ने शीघ्र ही देवली और बलीपुर के दुर्गों पर अधिकार किया अं कार्नवालिस मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम की ओर चल पड़ा। निजाम और मरह की सेना भी अंग्रेजों के साथ थी। टीपू इस सेना के आगमन का समाचार सुन घबरा गया। उसने अंग्रेजों के सामने सन्धि का प्रस्ताव रखा, किन्तु अंग्रेजों ने इस स्वीकार नहीं किया। उनका इस बार निश्चय था कि टीपू की शक्ति का पूर्णतया अ करना चाहिये। अंग्रेजों की सम्मिलित सेना ने नन्दी दुर्ग पर अधिकार कर शीघ्र श्रीरंगपट्टम को घेर लिया। मैसूर की सेना ने इनका बड़ी वीरता के साथ सामना किया किन्तु गोलाबारी के अभाव के कारण उसने फिर सन्धि करने का प्रयत्न किया अं कार्नवालिस अपनी शर्तों पर सन्धि करने के लिये तैयार हो गया। अन्त में दोनों सन् १७९२ ई० में श्रीरंगपट्टम की सन्धि (Treaty of Srirangapattam) हुई। इस अनुसार यह निश्चय हुआ कि टीपू को अपना आधा राज्य अंग्रेजों को देना होगा तथ क्षति-पूर्ति के लिए वह ३ करोड़ ३० लाख रुपये अंग्रेजों को देगा। उसको अपने पुत्र भी बन्धक के रूप में अंग्रेजों को देने पड़े।

इसके पश्चात् अंग्रेज, निजाम और मरहठों में विजित प्रदेशों का विभाग होना प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों को बड़ा महल, सलेम, डिंडीगल और मालाबार प्रदेश प्राप्त हुए, मरहठों को कृष्णा और तुंगभद्रा के मध्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हु तथा निजाम को कृष्णा और पन्ना नदी के मध्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए। कुर्ग का राज अंग्रेजों के संरक्षण में आया क्योंकि उसने युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की थी।

कार्नवालिस ने इस समय बड़ी ही योग्यता का परिचय दिया। इस समय ऐस परिस्थिति थी कि मैसूर राज्य का विलीन किया जाना सम्भव था। उस समय कु सेनापतियों तथा राजनीतिज्ञों ने कार्नवालिस के सामने इस सम्बन्ध के प्रस्ताव भी रखे किन्तु उसने यह कह कर टाल दिया कि वह इसको क्या करेगा। वास्तव में उसके ऐस करने के कई कारण थे। प्रथम तो उसका यह कार्य पिट के इंडिया एक्ट (Pitt's India Act) का विरोधी होता। दूसरे मैसूर राज्य पर अधिकार करने से यह सम्भव था कि मरहठे और निजाम उसके शत्रु बन जाते और अंग्रेजों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये उद्यत हो जाते। उनकी सम्मिलित सेनाओं का सामना करने की शक्ति इस समय अंग्रेज नहीं रखते थे। तृतीय, इस समय अंग्रेजों की सेना बीमारी से ग्रस्त थी तथ फ्रांस और अंग्रेजों का युद्ध चल रहा था। चौथे, कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors) शांति चाहते थे और वे युद्ध को प्रोत्साहन नहीं दे रहे थे। पांचवें, मैसू राज्य पर अधिकार कर उसमें शासन-व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था।

अंग्रेजों की सफलता के कारण (Causes of the victory of the English)—इस युद्ध में अंग्रेजों की सफलता उनके सैनिक संगठन अथवा कुशल सेनापतित्व के कारण नहीं हुई। वास्तव में उनकी सफलता का एक कारण निजाम और मरहठों का अंग्रेजों के साथ सम्मिलित होना था। यदि टीपू को केवल अंग्रेजों का सामना करना होता तो वह उनको पराजित करने में अवश्य सफल होता, किन्तु दोनों

उसको फ्रांस आदि से भी किसी प्रकार की सहायता प्राप्त न हो पाई।

अंग्रेज और मरहठे
(The English and the Marathas)

सन् १७७२ ई० में मरहठों के पेशवा माधव राव का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका भाई नारायणराव पेशवा की गद्दी पर आसीन हुआ। वह केवल ९ महीने तक ही शासन कर सका कि राघोबा ने षड्यन्त्र रचकर ३० अगस्त १७७३ ई० को उसका वध किया और स्वयं पेशवा बन गया। कुछ समय उपरान्त सखाराम और नाना फड़नवीस ने उसका विरोध करना प्रारम्भ किया। उन्होंने मृतक पेशवा के पुत्र को राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया जिससे राघोबा की स्थिति शोचनीय हो गई। उसका समर्थन किसी भी मरहठा सरदार ने नहीं किया। बाध्य होकर उसने अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करने के लिये बम्बई की सरकार से सूरत की सन्धि ७ मार्च सन् १७७५ ई० में की। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि वह अंग्रेजों को सालसिट और बेसीन के द्वीप देगा और अंग्रेज उसकी सहायता करेंगे। इस प्रकार अंग्रेजों को कर्नाटक के समान भारत के पश्चिम में भी राज्यसिंहासन प्राप्ति के संघर्ष में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो गया।

नाना फड़नवीस

पुरन्धर की सन्धि (Treaty of Purandhar)—जब इस सन्धि का समाचार गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज को प्राप्त हुआ तो उसने इस सन्धि की कड़ी आलोचना की। वास्तव में हेस्टिंग्ज सूरत की सन्धि का विरोधी नहीं था, किन्तु कौंसिल के सदस्यों के कारण उसको भी विरोध करना पड़ा। बम्बई की सरकार ने रघुनाथराव के साथ उसको गद्दी पर आसीन करने के लिये सेना भेजी। उस सेना और मरहठों की सेना के बीच अरस के मैदान में युद्ध १८ मई सन् १७७५ ई० को हुआ। इस प्रकार गवर्नर-जनरल की बिना अनुमति प्राप्त किये ही इस क्षेत्र में युद्ध प्रारम्भ हो गया। शीघ्र ही गवर्नर जनरल की ओर से बम्बई सरकार को आदेश दिया गया कि वह अपनी सेना को मरहठों के प्रदेश से वापिस बुला ले, जो उन्होंने रघुनाथ राव (राघोबा) की सहायतार्थ भेजी थी। इसके उपरान्त अपटन (Upton) एक अंग्रेज अफसर पूना भेजा गया कि वह पूना सरकार से एक नवीन सन्धि की व्यवस्था करे। उसने पूना सरकार से सन् १७७६ ई० में पुरन्धर की सन्धि की। इसके अनुसार सूरत की सन्धि का अन्त हो गया और यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज रघुनाथ राव का साथ त्याग देंगे और मरहठे कम्पनी को सालसिट का द्वीप देंगे। मरहठे अंग्रेजों को १२ लाख रुपये क्षति-पूर्ति

के रूप में देंगे तथा राघोबा को २५,००० रुपये मासिक पेंशन के रूप में देंगे।

प्रथम मरहठा युद्ध
(The First Maratha War)

बम्बई की सरकार ने सन्धि की शर्तों के विरुद्ध राघोबा को अपनी शरण में [illegible] और मरहठों ने भी इस सन्धि का परित्याग कर दिया। इसी समय पूना दरबार में [illegible] फ्रांसीसी दूत आया और दोनों के मध्य एक व्यापारिक सन्धि हुई। उक्त दोनों सन्धियों [illegible] मसविदे इंगलैंड भेजे गये। कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors) ने सूरत [illegible] सन्धि का अनुमोदन किया क्योंकि उससे ही उनको विशेष लाभ था। [illegible] अंग्रेजों ने राघोबा के पक्ष का समर्थन किया जिसके कारण एक अंग्रेज सेना ने पू[ना] की ओर बढ़ना आरम्भ किया। नाना फड़नवीस इसके लिये तैयार था। ९ जनव[री] सन् १७७९ ई० को मरहठों ने अंग्रेजी सेना को तलेगाँव नामक स्थान पर बुरी तर[ह] परास्त किया।

बड़गाँव की सन्धि (Treaty of Wadgaon)—अंग्रेजों को इस पराजय [से] बाध्य होकर बड़गाँव की सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि अंग्रेजों के लिये बड़ी अपमानजन[क] थी। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि—

(१) बम्बई सरकार को वे समस्त प्रदेश मरहठों को वापिस करने होंगे जो उसने सन् १७७३ के उपरान्त अपने अधिकार में कर लिये थे।

(२) बंगाल से आने वाली सेना को वापिस जाना होगा।

(३) सिंधिया को बरोच की मालगुजारी का कुछ भाग दिया जायगा तथा

(४) अंग्रेजों को ४१,००० हजार रुपया मरहठों को युद्ध की क्षति-पूर्ति के रूप में देना होगा।

सन्धि का परिणाम और युद्ध का आरम्भ (Result of the treaty and the beginning of the War)—इस सन्धि से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा तथा मान को बड़ा आघात पहुँचा। वारेन हेस्टिंग्स ने इस सन्धि को रद्द करने का विचार किया। उसने शीघ्र ही बंगाल से कर्नल गोडार्ड (Colonel Goddard) के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना भेजी जिसने १५ फरवरी सन् १७८० ई० को अहमदाबाद पर अधिकार किया और बेसीन पर ११ दिसम्बर १७८० ई० को अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अब अंग्रेजी सेना पूना की ओर बढ़ी तो मरहठे उसको परास्त करने में सफल हुए। इसी बीच बंगाल से एक दूसरी सेना आई जिसने ग्वालियर पर ३ अगस्त सन् १७८० ई० को अधिकार किया। इन विजयों से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

सालबाई की सन्धि (Treaty of Salbai)—महादजी सिंधिया ने, जो उत्तरी भारत को अपने अधिकार में करना चाहता था, अंग्रेजों की इन विजयों को देखकर अपने व्यवहार में परिवर्तन किया और उसने अंग्रेजों से सन्धि की [illegible] की। उसने अंग्रेजों को यह आश्वासन दिया कि वह पूना दरबार से उनकी सन्धि [illegible] करवा देगा। अंग्रेज भी सन्धि करना चाहते थे। [illegible] यह था कि हैदरअली और निजाम मरहठों की सहायता [illegible] रहे थे। इसी [illegible]

भी भय था कि कहीं फ्रांसीसी बेड़ा भी उनकी सहायता के लिए न आ जाय। सन् १७८२ ई० में मरहठों और अंग्रेजों में सालबाई की सन्धि हुई। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अंग्रेजों का अधिकार सालसट पर रहेगा, अंग्रेज राघोबा को सहायता प्रदान नहीं करेंगे, उसको २५,००० रु० मासिक पेंसन दी जायेगी, अंग्रेज उन समस्त प्रदेशों को वापिस करेंगे जो उन्होंने इस समय तक जीते थे।

सन्धि के परिणाम (Results of the treaty)—इस सन्धि के कारण अंग्रेजों की प्रतिष्ठा भारत में जम गई। यद्यपि कम्पनी को बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा और आर्थिक दृष्टि से उसको कोई लाभ नहीं हुआ। इसी कारण वारेन हेस्टिंग्ज को कम्पनी की आर्थिक स्थिति को उन्नत करने के लिये अन्य उपायों की शरण लेनी पड़ी जिसके कारण वह बहुत बदनाम हो गया। इस सन्धि का इतना लाभ अवश्य हुआ कि उसको मित्रता मरहठों से २० वर्ष तक बनी रही और वे अन्य राज्यों की ओर ध्यान देने में समर्थ हो सके। परन्तु यह स्वीकार करना भूल होगी कि इसने भारत पर अंग्रेजों की प्रभुता स्थापित कर दी। इसके बाद महादजी सिंधिया ने अपनी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया और वह भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लेने लगा।

हैदराबाद और अंग्रेज
(Hydrabad and the English)

निजामुलमुल्क की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र निजामअली गद्दी पर बैठा। १२ नवम्बर सन् १७६६ ई० को उसने मरहठों तथा मैसूर से डरकर अंग्रेजों से एक सन्धि की। प्रथम मैसूर युद्ध के समय में हैदरअली ने उसको अपनी ओर मिला लिया, किन्तु शीघ्र ही उसने सन् १७६७ ई० में पुनः अंग्रेजों से सन्धि की। इसके अनुसार कम्पनी निजाम को ९ लाख रुपये प्रतिवर्ष कर के रूप में देगी और निजाम उनको उत्तरी सरकार का प्रदेश देगा, किन्तु बाद में गन्टूर निजाम के भाई को दे दिया गया और कर ९ लाख से ७ लाख कर दिया गया। बाद में निजाम ने मरहठों और हैदरअली से मित्रता स्थापित की, किन्तु हेस्टिंग्ज ने निजाम को गन्टूर का प्रदेश वापिस कर अपनी ओर मिला लिया।

सन् १७८२ ई० में अंग्रेजों ने निजाम से गन्टूर का प्रदेश माँगा। सन् १७८८ ई० में उसने उस प्रदेश को अंग्रेजों को दिया और उसने अपने उन प्रदेशों को मैसूर राज्य से वापिस लेने के कार्य में सहायता की प्रार्थना की जिन पर मैसूर राज्य ने अधिकार कर लिया था। सन् १७९० ई० को कार्नवालिस ने निजाम को अपनी ओर मिला लिया कि वह टीपू के विरुद्ध उसकी सहायता करने को तैयार है। तृतीय युद्ध में निजाम अंग्रेजों की ओर रहा और उसको कृष्णा तथा पन्ना नदी के मध्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए। सन् १७९५ ई० में मरहठों ने निजाम को खुर्दा नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। अंग्रेजों ने निजाम की कोई सहायता नहीं की जिससे निजाम अंग्रेजों से द्वेष रखने लगा, किन्तु वह बाद में पुनः अंग्रेजों की ओर झुका क्योंकि उसको हर समय मरहठों और टीपू के आक्रमण का भय बना रहता था।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) प्रथम [illegible] युद्ध के क्या कारण थे ? [illegible] ([illegible])

मध्य भारत—

(१) [illegible] ([illegible])

अन्य—

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible]

७. अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार

([illegible])

Expansion of the British Empire [illegible]

तृतीय युद्ध में परास्त हो चुका था, किन्तु वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु बना रहा और अपनी प्रतिष्ठा की पुनः प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील था। उसने कुछ विदेशी राज्यों से

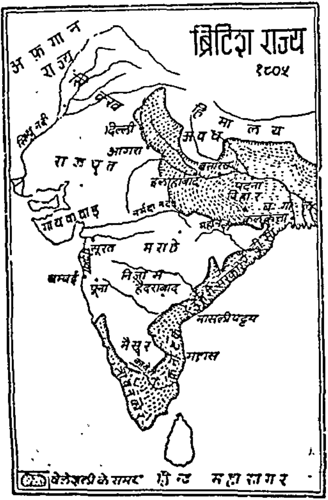

सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु अंग्रेज उससे अब अधिक भयभीत नहीं थे और वे समझते थे कि मैसूर राज्य को पराजित करना विशेष कठिन कार्य नहीं है। (iii) मराठा शक्ति—इस काल में मराठों की शक्ति का विनाश होना प्रारम्भ हो गया था। उन्होंने १७९५ ई० में निज़ाम को

खुर्दा के युद्ध में तरह पराजित किया। माधवराव नारायण की मृत्यु के उपरान्त बाजीराव द्वितीय पेशवा बना। वह नाना फड़नवीस से प्रसन्न नहीं था, जिसके कारण मरहठा दरबार षड्यन्त्रों का अखाड़ा बन गया। बाजीराव द्वितीय मरहठा-संघ के सरदारों में पारस्परिक झगड़े तथा द्वेष व वैमनस्य के बीज बोता रहता था, जिससे वे सम्मिलित रूप से कार्य करने में असमर्थ होने लगे। वास्तव में खुर्दा का युद्ध अन्तिम युद्ध था जब मरहठा-सरदारों ने पेशवा की अधीनता में रहकर सम्मिलित रूप से कार्य किया। बाजीराव द्वितीय के पेशवा हो जाने से नाना फड़नवीस का दल शिथिल हो गया और मरहठा-राजनीति में उसके प्रभाव का ह्रास होने लगा था। इसके अतिरिक्त इस समय तक मरहठों के योग्य नेताओं की मृत्यु हो गई थी और उनके स्थान पर नवयुवकों का आगमन हुआ जो पेशवा को अपने अधीन तथा उस पर प्रभुत्व स्थापित करने की ओर विशेष रूप से प्रयत्नशील थे। इस उद्देश्य से इनमें बड़ा मनमुटाव तथा ईर्ष्या विद्यमान रहती थी। महादजी सिंधिया, मल्हार राव होल्कर तथा तुकोजी होल्कर की मृत्यु के उपरान्त दौलत राव सिंधिया और जसवन्त राव होल्कर के हाथ में शासन-सत्ता आई, किन्तु उनमें योग्यता का सर्वथा अभाव था। जब भारत की ऐसी डांवाडोल राजनीतिक परिस्थिति थी तो २६ अप्रैल सन् १७९८ ई० में लार्ड वैलेजली गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया। उसको भारतीय समस्या का बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल (Board of Control) का कमिश्नर होने के कारण पर्याप्त ज्ञान था। वह पूर्ण साम्राज्यवादी था तथा भारतीय नरेशों की वास्तविक स्थिति को भली भांति जानता था। उसने भारत की स्थिति को "अत्यन्त गम्भीर" कहा, किन्तु उसने इसके साथ-साथ यह भी बतलाया कि वह विशेष "चिन्ताजनक" नहीं है।

वैलेजली की सहायक सन्धि
(Wellesley's Subsidiary Alliance)

वैलेजली ने इस "अत्यन्त गम्भीर" परिस्थिति में कम्पनी के हितों की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझा और उसने अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा तथा उसके विकास के लिये सहायक सन्धि (Subsidiary Alliance) को अपनाया, जिसके द्वारा वह भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव विशेष दृढ़ करने में सफल हो पाया तथा जिसने देशी नरेशों को पंगु कर दिया। इस सन्धि के स्वीकार करने पर कम्पनी जिस देशी नरेश को सैनिक सहायता देने का वचन देती उसके बदले में कम्पनी उस नरेश से निश्चित आर्थिक सहायता प्राप्त करती। इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) इस सन्धि को स्वीकार करने वाला देशी राज्य कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार करे तथा बिना उसकी अनुमति प्राप्त किये वह किसी अन्य राज्य से युद्ध या सन्धि नहीं कर सकता।

(२) वह किसी अन्य-योरोपियन को अपने राज्य में नौकरी पर नहीं रख सकता। किन्तु यदि वह ऐसा करना चाहता है तो उसको कम्पनी से पूर्व अनुमति प्राप्त करनी होगी।

(३) उसको अपने राज्य में अंग्रेजी फौज रखनी होगी जिसका सम्पूर्ण व्यय देशी नरेश को उठाना होगा। वह उसका व्यय धन अथवा अपने राज्य का कोई भाग

देकर उठा सकता था।

(४) उसको अपने राज्य में एक अंग्रेज रेजिडेन्ट (Resident) रखना होगा जिसके परामर्श से वह शासन करेगा।

(५) उक्त धारायें स्वीकार करने वाले राज्य की कम्पनी बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा करेगी, अर्थात् कम्पनी ने उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया।

अंग्रेजी सत्ता पर प्रभाव
(Effects on English Power)

सहायक संधि के गुण (Merits of Subsidiary Alliance)—सहायक सन्धि अंग्रेजों के लिये बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई। इसके द्वारा अंग्रेजी राज्य की नींव दृढ़ हो गई और अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होने लगा। वैलेजली ने इस नीति के कारण ही अंग्रेज राष्ट्र तथा भारत में उनके साम्राज्य की महान् सेवा की। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि वारेन हेस्टिंग्ज के जिन कार्यों की कटु आलोचना इंगलैंड की संसद में की गई तथा उस पर महाभियोग चलाया गया, वैलेजली के उन्हीं कार्यों के समान कार्यों को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया। इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

सहायक संधि के गुण
(१) कम्पनी के साधनों में वृद्धि।
(२) सैनिक-व्यय में कमी।
(३) कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित।
(४) देशी राज्यों पर फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त।

(१) कम्पनी के साधनों में वृद्धि (Resources of the Company were increased)—इसके द्वारा कम्पनी के साधनों में बड़ी वृद्धि हुई जिसके कारण वह भारत में सर्वोच्च सत्ता बन गई। उसका देशी-राज्यों की बाह्य नीति पर पूर्ण नियंत्रण तथा अधिकार रहने लगा।

(२) सैनिक व्यय में कमी (Decrease in military expenditure)—व्यय कम हो गया क्योंकि जो सेना देशी नरेशों के राज्यों में रहती थी उसका सम्पूर्ण व्यय या अधिकतर का कुछ भाग देशी नरेशों को देना पड़ता था। इससे कम्पनी की आर्थिक स्थिति उन्नत हो गई।

(३) कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित (Company's Empire safe from foreign invasions)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत जिस सेना का निर्माण किया गया वह कम्पनी के राज्य के अन्तर्गत न रहकर देशी राज्यों में रहती थी जिसके परिणामस्वरूप कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित हो गया। युद्ध कम्पनी के राज्य की सीमाओं में न होकर देशी राज्यों की सीमा में होने लगा जिससे कम्पनी के राज्य में सुख और शान्ति रहने लगी।

(४) देशी राज्य पर फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त (Death-knell to French Influence over Indian States)—इसके द्वारा देशी राज्यों पर से फ्रांसीसी प्रभाव

का अन्त होने लगा क्योंकि देशी नरेशों को किसी योरोपीय की नियुक्ति करने का अधिकार नहीं रहा।

देशी राजाओं पर प्रभाव
(Effects on Indian princes)

सहायक-सन्धि के दोष—यद्यपि सहायक-सन्धि के कारण कम्पनी को विशेष लाभ पहुँचा, परन्तु देशी नरेशों तथा भारत की जनता के लिये यह विशेष हानिकारक सिद्ध हुई। इसके मुख्य दोष निम्नलिखित हैं—

(१) देशी नरेशों का पंगु होना (The Indian Princes became crippled)—इसके द्वारा देशी नरेश पंगु बन गये। उनका अपने राज्य की बाह्य नीति पर कोई अधिकार नहीं रहा। वे न तो किसी से युद्ध कर सकते थे और न सन्धि ही।

> सहायक संधि के गुण
> (१) देशी नरेशों का पंगु होना।
> (२) आर्थिक हानि।
> (२) जनता को कष्ट।
> (४) देशी नरेशों का राज्य कार्य से उदासीन होना।

(२) आर्थिक हानि (Economic loss)—कम्पनी की सेना के व्यय के लिये देशी नरेशों को बहुत अधिक धन देना पड़ता था जिसने उनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब कर दी।

(३) जनता को कष्ट (Harmful to the People)—देशी नरेशों की आर्थिक अवस्था शोचनीय होने के कारण जनता को अधिक करों का भार उठाना पड़ा जिससे जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

(४) देशी नरेशों का राज्य-कार्य से उदासीन होना (The Indian princes became disinterested from administration)—देशी नरेश निकम्मे तथा अयोग्य रहने लगे जिसके कारण उन्होंने उचित शासन व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। वे कम्पनी पर पूर्णतया निर्भर रहने लगे, क्योंकि कम्पनी ने उनको वचन दे दिया था कि वे उनकी वाह्य आक्रमण से रक्षा करेंगे। वे शासन-कार्य से उदासीन होकर अपना समय भोग-विलास में व्यतीत करने लगे और कम्पनी को उनके राज्य हड़प करने का अवसर प्राप्त हो गया। आगे आने वाले शासकों ने देशी नरेशों की इस दुर्बलता का लाभ उठाया और अंग्रेजी साम्राज्य में उनके राज्यों को विलीन किया।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि सहायक-संधि की प्रथा नई नहीं थी और न यह वेलेजली के मस्तिष्क की उपज ही थी। इससे पूर्व भी अंग्रेजों ने इसका प्रयोग अवध के साथ करना प्रारम्भ कर दिया था। डूप्ले ने भी इसके अनुसार कार्य किया। रानाडे (Ranade) का कथन है कि 'सहायक-सन्धि मरहठों द्वारा चलाई हुई सार-देशमुखी और चौथ का सुसंगठित रूप है। सार देशमुखी और चौथ देने वाले प्रदेशों पर मरहठे आक्रमण नहीं करते थे और अन्य आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करते थे।" इतना होते हुए भी यह तो स्वीकार करना होगा कि लार्ड वेलेजली ने इसको अपनी

भारतीय नीति का प्रधान अङ्ग बनाकर व्यापक रूप से प्रयोग किया।

वैलेजली और निजाम
(Wellesley and the Nizam)

दक्षिण के राज्यों में हैदराबाद का निजाम सबसे दुर्बल था तथा उसकी स्थिति विशेष असन्तोषजनक थी। उसको प्रत्येक समय मरहठों और मैसूर राज्य का भय बना रहता था तथा उसकी आन्तरिक स्थिति भी दृढ़ नहीं थी क्योंकि उसके राज्य में अधिकांश जनता हिन्दू थी। उसको इस परिस्थिति से बाध्य होकर किसी न किसी बाह्य शक्ति का सहारा अवश्य लेना पड़ता था। प्रारम्भ में उसने फ्रांसीसियों की शरण ली, किन्तु जब उनकी शक्ति का पतन होने लगा तो वह अंग्रेजों की ओर आकृष्ट हुआ, किन्तु वह अन्य शक्तियों के भय के कारण निश्चित नीति का अनुकरण कभी भी नहीं कर सका। कभी वह मैसूर से तथा कभी मरहठों से मिल जाता था। तृतीय मैसूर युद्ध में वह अंग्रेजों की ओर था। उसने उनको सक्रिय सहायता प्रदान की जिसके फलस्वरूप उसको मैसूर राज्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए किन्तु वह कुछ ही समय पश्चात् कम्पनी की तटस्थ नीति के कारण उनका शत्रु बन गया, जब कम्पनी ने मरहठों के विरुद्ध उसकी सहायता नहीं की और खुर्दा के युद्ध (१७९५) में उसको मरहठों द्वारा बुरी तरह परास्त होना पड़ा। इसके बाद उसने अपनी सेना का संगठन फ्रांसीसियों द्वारा करवाना प्रारम्भ किया और अंग्रेज सैनिकों को अपने यहां से निकाल दिया। इस समय फ्रांस की क्रान्ति का समय था जब नैपोलियन का आतङ्क योरप में छाया हुआ था। इस परिस्थिति को वैलेजली जैसा साम्राज्यवादी गवर्नर-जनरल किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता था। उसने शीघ्र ही निश्चय किया कि निजाम के राज्य से फ्रांसीसी प्रभाव का शीघ्र अन्त कर वहां पर अंग्रेजी प्रभुत्व शीघ्र स्थापित किया जाय।

आलीजाह का विद्रोह (Revolt of Alijah)—इसी समय वैलेजली को निजाम पर अपना अधिकार स्थापित करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया। निजाम के पुत्र आलीजाह ने १७९७ ई० में अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। निजाम को अंग्रेजों ने आलीजाह के विद्रोह के विरुद्ध सहायता की। अंग्रेजों ने निजाम के एक मन्त्री मीर आलम को अपनी ओर मिला लिया और उसके द्वारा उन्होंने निजाम से वार्ता प्रारम्भ की जिसके परिणामस्वरूप १७९८ ई० में निजाम तथा अंग्रेजों के मध्य एक सन्धि हुई।

सन्धि की शर्तें (Clauses of the Treaty)—इस सन्धि की मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) निजाम को अपने राज्य में ६ बटालियन स्थायी रूप से रखने होंगे। उनका २४ लाख वार्षिक व्यय निजाम को देना होगा।

(२) निजाम को फ्रांसीसी सेना अपने राज्य से अलग करनी होगी।

(३) अंग्रेज निजाम और मरहठों के बीच मध्यस्थ का काम करेंगे।

सन् १८०० की अंग्रेजों और निजाम के बीच सन्धि (Treaty of 1800 between the English and the Nizam)—निजाम ने मैसूर के चतुर्थ युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की जिसके उपलक्ष में उसको मैसूर राज्य का कुछ प्रदेश प्राप्त हुआ। १८०० ई० के अक्तूबर मास में अंग्रेज और निजाम के बीच एक सन्धि हुई जिसके द्वारा 'निजाम समता के स्तर से नीचे गिर कर अधीनता के स्तर पर आ गया।' इस सन्धि के अनुसार निजाम के राज्य में अंग्रेजी सेना की वृद्धि हुई और निजाम ने इस सेना के व्यय के लिए अपने राज्य के वे प्रदेश अंग्रेजों को दे दिये जो उसको १७९२ और १७९८ के मैसूर युद्धों के उपरान्त प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त निजाम ने यह वचन दिया कि वह अंग्रेजों की सम्मति प्राप्त किये बिना किसी विदेशी सत्ता से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा। अंग्रेजों ने अन्य राज्यों के झगड़ों तथा संघर्षों का अन्त करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

संधि का परिणाम
(Effects of the Treaty)

इस प्रकार इस सन्धि द्वारा निजाम ने सहायक-संधि स्वीकार की और वह अंग्रेजों का आश्रित हो गया। इसके निम्नलिखित परिणाम हुए—

> **सन्धि का परिणाम**
> (१) अंग्रेजों की स्थिति का दृढ़ होना।
> (२) निजाम की शोचनीय आन्तरिक दशा।

(१) अंग्रेजों की स्थिति निजाम तथा मरहठों के विरुद्ध दृढ़ हो गई—निजाम राज्य में स्थित सेना का प्रयोग शीघ्रता तथा सरलता से निजाम और मरहठों के विरुद्ध किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त अब यह भी सम्भावना समाप्त हो गई कि निजाम और मरहठे तथा निजाम और मैसूर मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रमण करेंगे।

(२) निजाम की शोचनीय आन्तरिक दशा—इस सन्धि द्वारा, यद्यपि निजाम की बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा का भार अंग्रेजों पर आ गया, किन्तु उसकी आन्तरिक स्थिति का सुधार न हो पाया। आन्तरिक शासन शिथिल होता चला गया और वहाँ की स्थिति खराब होती चली गई। वेलेजली के भाई आर्थर वेलेजली ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है—"इस देश में कोई कानून नहीं है, कोई सरकार नहीं है। हथियारबन्द सेना की सुरक्षा के बिना कोई निवासी न खेती कर सकता है और न करेगा। पेशवा तथा निजाम के देशों की स्थिति का सामान्यतः यही चित्र है।"*

अंग्रेजों और निजाम के बीच व्यापारिक सन्धि (Economic treaty between the English and Nizam)—इसके उपरान्त १८०२ ई० में अंग्रेजों और निजाम के बीच एक व्यापारिक संधि हुई जिसके अनुसार कम्पनी को अधिकार प्राप्त

* "In this country there is no law, no civil government – no inhabitant can or will remain to cultivate unless he is protected by an armed force stationed in his village. This is the outline of the state of the countries of the Peshwa and the Nizam." —Arthur Wellesley.

हुआ कि वह निजाम के राज्य में व्यापार करने के लिये आवश्यक सुधार कर सके। सन् १८०३ ई० में नये निजाम सिकन्दरशाह ने समस्त संधियों को स्वीकार कर लिया। सन् १८२२ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज ने निजाम से एक संधि की जिसके अनुसार हैदराबाद की सीमायें निश्चित कर दी गईं और वह उस रकम से मुक्त कर दिया गया जो उसकी ओर पेशवा के वार्षिक कर के मद्दे निकलती थी।

वैलेजली और मैसूर
(Wellesley and Mysore)

निजाम के उपरान्त वैलेजली का ध्यान मैसूर राज्य की ओर आकर्षित हुआ। तृतीय मैसूर-युद्ध ने टीपू की शक्ति बहुत कम कर दी थी† और दोनों में संधि भी हो गई थी, किन्तु टीपू अंग्रेजों का शत्रु बना रहा और वह अपनी पराजय को भूला नहीं था। वह अंग्रेजों से अपनी पराजय का बदला लेना चाहता था। उसने फ्रांसीसियों को अपनी सेना में भर्ती करना तथा उनके सहयोग से अपनी सेना का संगठन करना प्रारम्भ कर दिया था। उसने आन्तरिक स्थिति को उन्नत करने का घोर प्रयत्न किया।‡ इसके उपरांत उसने फ्रांस की सरकार से सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ किया जिसका योरोप में अंग्रेजों से बड़ा संघर्ष चल रहा था। वह फ्रांस के जैकोबिन दल (Jacobin Club) का सदस्य बन गया और उसने अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम में फ्रांसीसियों को "प्रेम तथा सहयोग" का आश्वासन देकर "स्वतन्त्रता के वृक्ष" का बीजारोपण करने की अनुमति प्रदान की। सन् १७९८ ई० में कुछ फ्रांसीसी टीपू की सहायता के अभिप्राय से मंगलोर आये। उसने काबुल, कुस्तुनतुनिया, अरब तथा मॉरीशस में भी अपने दूत भेजे और उनसे प्रार्थना की कि वे उसको अंग्रेजों को भारत से निकालने में सहायता प्रदान करें।

वैलेजली का निश्चय (Determination of Wellesley)—वैलेजली ने भारत आने पर परिस्थिति का शीघ्र ही अध्ययन कर लिया और वह इस निश्चय पर पहुँचा कि युद्ध अवश्यम्भावी है। उसने १२ अगस्त सन् १७९८ के पत्र में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये—

"टीपू के राजदूतों के कार्य, जिसको उसने स्वयं पक्का किया तथा भारत में फ्रांसीसियों की सेना के आगमन से प्रगट होता है कि यह खुले व स्पष्ट शब्दों में युद्ध की चेतावनी है। इस युद्ध का उद्देश्य न तो राज्य-विस्तार है; न क्षति-पूर्ति है और न सुरक्षा ही है, वरन् इसका उद्देश्य भारत से ब्रिटिश-सरकार का पूर्णतया अन्त तथा विनाश है—स्थिति बड़ी भयंकर है। इस प्रकार के अपमान तथा हानि का गलत अर्थ

---

† "We have effectively crippled our enemy, without making our friends too formidable."
—Cornwallis.

‡ "Instead of sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry—to punish his refractory tributaries and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity."
—Malcolm

(४) शेष मैसूर-राज्य पुराने हिन्दू-राजवंश के एक अल्प-वयस्क बालक को दे दिया गया।

नये राजा से सन्धि—मैसूर राज्य का विभाजन कर अंग्रेजों ने नये राजा से एक सन्धि की जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) राज्य की सुरक्षा के लिये एक अंग्रेजी सेना रखनी होगी।

(२) उसके व्यय के लिये राजा को ७ लाख पैगोडा (दक्षिण भारत की प्रचलित मुद्रा) प्रतिवर्ष देनी होगी।

(३) आवश्यकता पड़ने पर उसको अंग्रेजों की सहायता करनी होगी।

(४) कुप्रबन्ध होने पर कम्पनी शासन में हस्तक्षेप कर सकती है तथा उसके राज्य पर भी अधिकार कर सकती है।

(५) राजा ने वचन दिया कि वह न तो किसी विदेशी को अपने यहां नौकरी देगा और न किसी विदेशी शक्ति से पत्र-व्यवहार करेगा।

परिणाम—यद्यपि चौथा मैसूर युद्ध अधिक काल तक नहीं चला, किन्तु यह एक निर्णायक युद्ध था। उसके परिणाम इस प्रकार हुए—

(i) यह युद्ध बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इसके द्वारा अंग्रेजों के एक घोर शत्रु टीपू का अन्त हुआ।

(ii) मैसूर-राज्य छोटा कर दिया गया जिससे वह कभी भी इतना शक्तिशाली न बन सके कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा हो सके।

(iii) मैसूर की आर्थिक तथा सैनिक शक्ति पर भी अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

वास्तव में नये राजा से की गई सन्धि ने मैसूर राज्य को बिल्कुल पंगु बना दिया और वह पूर्णतया अंग्रेजों के शिकंजे में जकड़ा गया। डीन हट्न (Dean Hutton) ने सत्य ही कहा है कि सामाजिक, आर्थिक, शान्ति स्थापना-सम्बन्धी व्यवस्था के दृष्टिकोण से क्लाइव के बाद मैसूर-विजय ब्रिटिश शक्ति की शानदार सफलता है।"* इस सम्बन्ध में स्वयं वैलेजली ने लिखा है कि "यह घटना वास्तव में चमत्कारपूर्ण यशस्वी और मेरी, बड़ी से बड़ी आशापूर्ण सम्भावनाओं से वास्तविक रूप में अधिक लाभदायक है।"† इस सम्बन्ध में थोर्नटन (Thornton) का विचार है कि "मैसूर राज्य को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न कर बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया गया। ऐसी व्यवस्था की स्थापना कर (अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित कर) उसने कम बुद्धिमानी का काम नहीं किया।"‡

वैलेजली के कार्य का मूल्यांकन (Estimate of Wellesley's action)—उसके इस कार्य की बड़ी प्रशंसा की गई। उसको मार्क्विस ऑफ वैलेजली (Marques

* "As a military, financial and pacificatory settlement the conquest of Mysore was the most brilliant success of the British power since the day of Clive." —Dean Hutton.

† "The event is indeed brilliant, glorious and substantially advantageous beyond my most sanguine expectations." —Wellesley.

‡ "Mornington acted wisely not making Mysore ostensibly a British possession. He acted no less wisely in making it substantially so." —Thornton.

of Wellesley) की उपाधि प्रदान की गई और जनरल हैरिस को बेरन (Baron) के पद से सुशोभित किया गया। वास्तव में इससे अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। इसके कारण कम्पनी का अधिकार अरब सागर से बंगाल तक के प्रदेश में स्थापित हो गया। मैसूर राज्य के चारों ओर का प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इससे कम्पनी की राजनीतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उसके अधिकार में एक ऐसा राज्य आ गया जो धन-धान्य पूर्ण था तथा जिसका प्रयोग अन्य क्षेत्रों में किया जा सकता था।

टीपू का चरित्र और उसका मूल्यांकन
(Character of Tippu and his estimate)

टीपू भारतीय इतिहास का एक महान् व्यक्ति था। वह अंग्रेज जाति का कट्टर शत्रु था और अपने पिता के समान वह भी उनको भारत से निकालने के लिये कटिबद्ध था। अंग्रेज उससे सदा भयभीत तथा सशंकित रहते थे। वे उसको सदा भय, शंका तथा घृणा की दृष्टि से देखते थे। इस भावना के अन्तर्गत उन्होंने उसके चरित्र का बड़ा ही कलुषित चित्रण किया है। कर्क पैट्रिक (Kirk Patrick) ने उसको निर्दयी तथा अत्याचारी शासक कहा है। "उसका दृष्टिकोण बड़ा कुंठित और बर्बर था। हैदरअली ने जिस राज्य को अपने श्रम तथा शौर्य से स्थापित किया टीपू ने उसी राज्य को अपनी अदूरदर्शिता तथा अनीतिज्ञता के कारण समाप्त कर डाला।" इसके विपरीत कुछ निष्पक्ष अंग्रेजों ने टीपू के चरित्र का उचित रूप से चित्रण किया है। उनके अनुसार "टीपू का राज्य खूब घना बसा हुआ था, उसके उर्वर प्रदेशों में अच्छी खेती होती थी। मैसूर राज्य की सेना का अनुशासन तथा राजभक्ति प्रशंसनीय थी। यद्यपि टीपू कठोर तथा स्वेच्छाचारी शासक था तथापि वह सदैव अपनी प्रजा के दुख-सुख का ध्यान रखता था। उसका राज्य-सुख-सम्पन्न था। व्यापार की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही थी, बड़े-बड़े नगरों की संख्या बढ़ रही थी और प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने व्यापारिक कार्यों को करती थी।"

टीपू के गुण
(Merits of Tippu)

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि (१) वह बर्बर, निर्दयी तथा कठोर शासक नहीं था। उसका व्यवहार उसकी प्रजा के साथ अच्छा था और वह सदा उसके हितों की ओर ध्यान देता था। उसका व्यवहार अपने शत्रुओं के प्रति अवश्य कठोर था और क्योंकि अंग्रेज उसके शत्रु थे इसलिये उसका अंग्रेजों के साथ कठोर व्यवहार था। वह उनका तनिक भी विश्वास नहीं करता था। (२) वह वीर तथा उत्साही सैनिक था। वह भयङ्कर परिस्थितियों में भी कभी विचलित नहीं होता था। (३) यद्यपि वह स्वयं इस्लाम धर्म का अनुयायी था, किन्तु हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार सदा प्रशंसनीय [illegible]

टीपू के गुण

- (१) बर्बर, निर्दयी तथा कठोर शासक नहीं था।
- (२) वीर तथा उत्साही सैनिक।
- (३) हिन्दुओं के साथ प्रशंसनीय व्यवहार।
- (४) अंग्रेजी कूटनीति का ज्ञाता।
- (५) विदेशी शक्तियों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न।

रहा। उसने बहुत से मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने के लिये धन दिया तथा हिन्दुओं को उच्च पदों पर आसीन किया। (४) वह अंग्रेज कूटनीतिज्ञता से भली-भाँति अवगत था और उसने सदा अपने राज्य की उनसे रक्षा करने का प्रयत्न किया तथा उनको भारत से निकालने के लिए वह जीवन भर प्रयत्नशील रहा। (५) उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के अभिप्राय से विदेशी शक्तियों की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की। यदि समय पर उसको फ्रांस आदि से सहायता प्राप्त हो जाती तो अवश्य वह अपने उद्देश्य में सफल हो जाता। अन्त में अपने देश की रक्षा करने में उसने अपने जीवन का बलिदान ही कर दिया।

टीपू के दोष
(Defects of Tippu)

यह भी स्वीकार करना होगा कि टीपू में कुछ दोष भी थे जिनके कारण वह सफल नहीं हो सका। वह अपने पिता के समान (१) दूरदर्शी नहीं था और न उसमें उसके समान व्यावहारिक कौशल ही था। (२) वह बड़ा स्पष्ट वक्ता था। वह अपनी योजनाओं को गुप्त नहीं रख सका। (३) उसने एक ऐसी विदेशी शक्ति का सहारा लिया जिसका प्रभाव भारत से प्रायः लुप्त हो चुका था। यदि वह मरहठों तथा निजाम को अपनी ओर मिलाकर सम्मिलित रूप से अंग्रेजों की शक्ति तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होता तो सम्भव था उसको सफलता प्राप्त हो जाती, किन्तु उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। नैपोलियन की मिस्र पराजय ने उसकी समस्त योजना पर पानी फेर दिया। वास्तव में उस समय अंग्रेजों का भाग्य ऊंचा होने लगा था और भारतीयों का भाग्य खराब हो गया था, अन्यथा यदि तनिक भी राष्ट्रीयता की भावना का उदय उस समय हो जाता तो भारत का इतिहास ही पूर्णतया बदल जाता। फिर भी, टीपू की गणना भारत की स्वतन्त्रता के पुजारी के रूप में करनी चाहिये। उसने अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया।

टीपू के दोष
(१) दूरदर्शिता तथा व्यावहारिक कौशल का अभाव।
(२) स्पष्ट वक्ता।
(३) विदेशी शक्ति का सहारा।

वैलेजली और कर्नाटक
(Wellesley and the Carnatic)

कर्नाटक में दोहरी शासन-व्यवस्था (Dual Government in the Carnatic)—जिस समय वैलेजली गवर्नर-जनरल बन कर भारत आया उस समय कर्नाटक में दोहरी शासन-व्यवस्था थी। वहां एक अंग्रेजी सेना रहती थी जिसके व्यय के लिए कर्नाटक का नवाब कम्पनी को प्रतिवर्ष ३० लाख रुपया देता था। कम्पनी की ओर से कुछ जिलों में मालगुजारी वसूल की जाती थी। इस दोहरी शासन-व्यवस्था के कारण जनता को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था।

दोहरी शासन-व्यवस्था तथा नवाबी का अन्त (Apolition of Dual

Government and Nawabi)—वैलेजली इस स्थिति से सन्तुष्ट नहीं था। उसने शीघ्र ही इस व्यवस्था का अन्त करने का निश्चय किया और उसको ऐसा करने का बहाना भी मिल गया। टीपू की पराजय के उपरान्त श्री रंगपट्टम से कुछ ऐसे पत्र प्राप्त हुए जिनके आधार पर यह निश्चय हो गया कि टीपू और कर्नाटक के नवाब के मध्य कुछ पत्र-व्यवहार हुआ जिसके द्वारा कर्नाटक का नवाब इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था जिसको टीपू अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिये कर रहा था। कर्नाटक का नवाब १५ जुलाई सन् १८०१ को मर गया। उसी समय वैलेजली ने घोषणा की कि नवाब ने टीपू के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित होकर अपने आपको जनता का शत्रु बनाया जिससे उसका राज्य पर से अधिकार का अन्त हो गया। इस प्रकार वैलेजली ने कर्नाटक के नवाब के पुत्र को राज्यसिंहासन से वंचित कर उसके भतीजे आजमुद्दौला को कर्नाटक का नवाब घोषित किया और शीघ्र ही उसके साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार शासन का समस्त अधिकार कम्पनी के हाथ में आ गया और नवाब को आय का पाँचवां भाग पेंशन के रूप में दिया जाने लगा।

इस प्रकार वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का कर्नाटक शिकार बना। यद्यपि दोहरे-प्रबन्ध का अन्त कर वैलेजली ने बहुत अच्छा किया, किन्तु जिस नीति का उसने अनुसरण किया वह निन्दनीय तथा आपत्तिजनक थी क्योंकि उसने वास्तविक गद्दी के उत्तराधिकारी को वंचित कर नवाब के भतीजे को नवाबी के पद पर आसीन किया।

वैलेजली ने कर्नाटक से दोहरे-प्रबन्ध का अन्त कर कहा कि 'बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के उपरान्त यह सबसे उपयोगी तथा लाभप्रद कार्य था।'* कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने उसके इस कार्य का समर्थन किया, किन्तु मिल ने उसके इस कार्य की बड़ी आलोचना की। उसने यह सिद्ध किया कि 'कर्नाटक के नवाब ने कभी भी टीपू से अंग्रेजों के विरुद्ध पत्र-व्यवहार नहीं किया। कर्नाटक पर अधिकार करने के लिए यह वैलेजली का केवल एक झूंठा बहाना था। यदि वैलेजली को कर्नाटक पर अधिकार करना था तो उसको अपने उद्देश्य स्पष्ट करने चाहिए थे और सीधे उपायों से कर्नाटक पर अधिकार करना चाहिए था।'

वैलेजली और तंजोर व सूरत
(Wellesley and Tanjor and Surat)

वैलेजली ने तंजोर और सूरत पर भी कम्पनी का अधिकार स्थापित किया। तंजोर पर मरहठों का अधिकार था। जिस समय वैलेजली भारत आया तो तंजोर में उत्तराधिकारी-सम्बन्धी-कार्य चल रहा था। उसने २५ अक्टूबर १७९९ ई० को वहाँ के राजा को सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार कम्पनी को तंजोर का शासन अधिकार प्राप्त हुआ और वहाँ के राजा को ४० लाख

* "Perhaps that most salutary and useful measure which has been adopted since the acquisition of the diwany of Bengal." —Wellesley.

रुपया वार्षिक पेंशन देकर राज्य-कार्य से मुक्त कर दिया। सूरत के नवाब के साथ भी ऐसा ही किया गया। १७५६ ई० से कम्पनी के अधिकार में सूरत की रक्षा करने का भार था और शासन के अधिकार वहाँ के नवाब के हाथ मे थे। ८ जनवरी सन् १७९६ ई० को वहा के नवाब की मृत्यु हो गई। वैलेजली ने मृतक नवाब के भाई को बाध्य किया कि वह समस्त अधिकार कम्पनी को प्रदान करे। इस प्रकार वैलेजली ने जबरदस्ती सूरत को कम्पनी के आधीन किया। नवाब को १ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में दिया जाने लगा। मिल ने वैलेजली के इस कार्य को 'सिंहासन निष्कासन का अत्यन्त नियम विरुद्ध कार्य'* बतलाया तथा बेवरिज ने "समस्त कार्यवाही को अत्याचार तथा अन्यायपूर्ण"† कहा है।

वैलेजली और अवध
(Wellesley and Oudh)

अवध की दशा अंग्रेजी हस्तक्षेप के कारण दिन प्रति दिन शोचनीय होती जा रही थी। शासन में चारों ओर भ्रष्टाचार तथा अत्याचार का राज्य फैला हुआ था। वैलेजली की वक्र दृष्टि अवध पर पड़ी जहा वह अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रयोग करना चाहता था, किन्तु ऐसा करने के लिए कोई बहाना अवश्य होना चाहिए था। पर्याप्त समय से अवध का नवाब अंग्रेजों का मित्र था और नियमपूर्वक अंग्रेजों को अवध मे स्थित सेना का व्यय देता रहता था। वैलेजली ने यह बहाना किया कि भारत पर जमांशाह के आक्रमण की आशंका है, इसलिये नवाब को अपनी सेना भंग कर अंग्रेजी दस्तों में वृद्धि करनी चाहिए जिससे जमांशाह के आक्रमण को सरलतापूर्वक रोका जा सके। नवाब इस बात के लिये तैयार नहीं हुआ, किन्तु जब वैलेजली द्वारा वह विशेष बाधित किया गया तो वह गद्दी का परित्याग करने के लिए तैयार हो गया। वैलेजली नवाब की इच्छा सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु शीघ्र ही उसको ज्ञात हो गया कि नवाब ने अपनी इच्छा बदल दी है तो उसको नवाब पर बड़ा क्रोध आया। उसने शीघ्र ही नवाब को आदेश दिया कि वह अंग्रेजी सेना में वृद्धि करे तथा उसके व्यय के लिए अधिक धन दे। नवाब ने ऐसा करने में आपत्ति प्रगट की, किन्तु वैलेजली ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अन्त में बाध्य होकर १८०१ ई० में नवाब ने अंग्रेजों के साथ सन्धि की।

१८०१ की सन्धि (Ereaty of 1801)—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें निश्चित हुईं—

(१) अवध की सेना का विघटन कर दिया गया।

(२) उसको शासन तथा कर वसूल करने के लिए कुछ सेना रखने की अनुमति प्राप्त हुई।

* "The most unceremonious act of dethronement which the English had yet performed, as the victim was the weakest and most obscure." —Mill.

† "The whole proceeding was characterised by tyranny and injustic." —Beveridge.

(३) अंग्रेजी फौजी दस्तों की संख्या में वृद्धि की गई।

(४) उसके व्यय के लिये अवध का आधा राज्य अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। इस आधे राज्य में रुहेलखण्ड तथा दक्षिणी दोआब के प्रदेश थे।

(५) अंग्रेज रेजीडेन्ट को अवध के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

१८०१ की सन्धि का महत्व (Importance of the Treaty of 1801)—यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी ही महत्व की सिद्ध हुई। इसके द्वारा अवध पर *कम्पनी का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया।* उसके चारों ओर के प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गये। अवध में अंग्रेजी सेना के दस्तों में वृद्धि हो गई जिसके द्वारा कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा सुरक्षित हो गई। अवध की सेना के भंग हो जाने से नवाब शक्तिहीन हो गया और वह पूर्णतया कम्पनी के हाथ की कठपुतली-मात्र रह गया। ओवेन (Owen) के शब्दों में इसके द्वारा "हमारी सामरिक सीमा की परि-*शोधन तथा नवाब का प्रादेशिक पृथक्करण केवल बड़ी योजना के मात्र ही नहीं थे,* वरन् विशेषतः ऐसी संकटमय परिस्थिति में स्वतः इन कार्यों का बहुत अधिक महत्व था।" कुछ इतिहासकारों ने वैलेजली के इस कार्य की बड़ी निन्दा की। सर एलफ्रेड लायल (Sir Alfred Lyall) ने उसकी आलोचना इन शब्दों में की—

"उसने (वैलेजली ने) कम्पनी के हित के सामने अपने अधीनस्थ की भावनाओं तथा स्वार्थों पर कोई ध्यान नहीं दिया और ऐसा करते समय उसने तनिक भी धैर्य, सहिष्णुता या उदारता का प्रदर्शन नहीं किया।"*

इस सन्धि से अवध की दशा पहले से भी अधिक *दयनीय हो गई।* नवाब निश्चिन्त होकर अपना समय आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यतीत करने लगा। चारों ओर भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा अनाचार फैल गया। जनता को अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। कम्पनी ने शासन को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, यदि इस अन्यायपूर्ण तथा निन्दनीय कार्य के उपरान्त कम्पनी इस ओर अपना ध्यान आकर्षित करती तो भी जनता में असन्तोष की भावना जागृत न होती और उससे जनता को कुछ लाभ प्राप्त होता। अतः अवध को भी वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का शिकार बनना पड़ा।

वैलेजली और मरहठे
(Wellesley and the Marathas)

मरहठा-संघ की शोचनीय दशा (Critical Condition of the Maratha Confederacy)—गत पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है कि जिस समय सन् १७९८ ई० में वैलेजली भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया उस समय मरहठों की दशा शोचनीय होनी आरम्भ हो गई थी। केन्द्रीय शक्ति का ह्रास अयोग्य पेशवाओं तथा

* "Wellesley subordinated the feeling and interest of his ally to permanent consideration of British policy in a manner that showed very little patience, forbearance or generosity." —Sir Alfred Lyall.

महत्वाकांक्षी सरदारों के कारण होना आरम्भ हो गया था। महत्वाकांक्षी मरहठा सरदारों ने अपने अलग-अलग राज्य स्थापित कर अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करना आरम्भ कर दिया था। उनमें पारस्परिक वैमनस्य तथा कलह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा था और वे स्वयं पेशवा को अपने अधीन करने का प्रयत्न करते थे। जिस समय तक कूटनीतिज्ञ नाना फड़नवीस जीवित रहा उस समय तक वह मरहठों को एकता के सूत्र में बांधने तथा अंग्रेजी कूटनीति का कुचक्र रोकने में सफल हुआ, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त मरहठों में कोई भी ऐसा योग्य व्यक्ति नहीं था जो अंग्रेजी शक्ति का सामना करने में समर्थ होता।

पूना में अंग्रेजों का कुचक्र (The English Plot at Poona)—वैलेजली ने भारत आगमन पर पूना स्थित अंग्रेज रेजीडेन्ट कर्नल पामर (Colonel Palmer) को आदेश दिया कि वह पूना और हैदराबाद के झगड़ों में गवर्नर को पंच बनाने के सम्बन्ध में बातचीत आरम्भ करे। उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। दूसरी ओर टीपू पर अन्तिम आक्रमण करने के पूर्व अंग्रेजों ने मरहठों को यह आशा दिलवाई थी कि मैसूर के पतन के उपरान्त विजित प्रदेशों का बंटवारा आपस में कर लिया जायेगा, किन्तु जब अंग्रेजों ने देखा कि विजय निश्चित है और मरहठे टीपू का साथ न देंगे वे मरहठों की ओर से उदासीन हो गये। मरहठों ने भी ऐसी परिस्थिति देखकर विजित प्रदेशों का जो थोड़ा सा भाग उनको मिल रहा था लेने से साफ इन्कार कर दिया। इस प्रकार दोनों ओर मालिन्य उत्पन्न होने लगा। अंग्रेजों ने इसके उपरान्त पूना राज-नीति में अपना कुचक्र चलाना आरम्भ कर दिया। इस समय पेशवा पर दौलतराव सिंधिया का विशेष प्रभाव था। अंग्रेजों ने उसको अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में उन्होंने उसके शत्रुओं को प्रोत्साहन देकर उसका पक्ष निर्बल करने की चेष्टा की। दौलतराव भी इस समय आपत्तियों से घिरा हुआ था। जसवन्तराव होल्कर उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था जो मालवा को रौंद रहा था जिस पर सिंधिया का अधिकार था। दौलत राव को बाध्य होकर पूना से उत्तर की ओर जाना पड़ा। मरहठों के दुर्भाग्य से इसी समय कूटनीतिज्ञ नाना फड़नवीस की मृत्यु हुई जिसने लगभग २५ वर्ष तक मरहठा-संघ की नौका का संचालन सफलतापूर्वक किया था।*

पेशवा बाजीराव का अंग्रेजों की शरण में आना (Peshwa Baji Rao under the Protection of the English)—नाना फड़नवीस की मृत्यु के उपरान्त पेशवा बाजीराव ने उन परिवारों से बदला लेना आरम्भ किया जिन्होंने उसके या उसके पिता के विरुद्ध कार्य किया था। उसने कुछ ऐसे व्यक्तियों को बन्दीगृह में भी डाल दिया। विठोजी होल्कर को हाथी के पांव से बांधकर पूना के बाजारों में उस समय तक घसीटा गया जिस समय तक उसकी मृत्यु नहीं हुई। इस अत्याचार ने मरहठा जगत में सनसनी उत्पन्न कर दी। जसवन्तराव होल्कर ने जब अपने भाई के वध का समाचार

* "With him departed all the wisdom and moderation of the Maratha Government." —Colonel Palmer.

सुना तो वह आग-बबूला हो गया। उसने पेशवा की शक्ति का अन्त करने का निश्चय किया और शीघ्र ही अपनी सेना लेकर पूना की ओर चल पड़ा। उसने २५ अक्तूबर सन् १८०२ ई० को पेशवा और सिंधिया की सम्मिलित सेना को परास्त किया और पूना पर अधिकार कर लिया। पेशवा बाजीराव युद्ध-क्षेत्र से भागा और माड़ के दुर्ग में पहुँचकर उसने अंग्रेजों से शरण माँगी। अंग्रेज तो इस अवसर की ताक में बैठे ही थे। शीघ्र ही जहाज द्वारा वह बेसीन लाया गया। 'उस जहाज में केवल बाजीराव का शरीर ही नहीं चला गया, वस्तुतः महाराष्ट्र की वह स्वाधीनता भी अंग्रेजों की नौका में लद गई, जिसकी स्थापना छत्रपति शिवाजी ने २०० वर्ष पहले की थी।'

बेसीन की सन्धि (Treaty of Bassein)—यहाँ अंग्रेजों और पेशवा के मध्य एक सन्धि हुई जो भारत के इतिहास में बेसीन की सन्धि के नाम से विख्यात है। इस सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) दोनों ने एक दूसरे को सैनिक सहायता देने का वचन दिया।

(२) पेशवा ने अपने राज्य में अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार किया।

(३) पेशवा ने वचन दिया कि उसके राज्य में कोई भी योरोपीय अंग्रेजों की आज्ञा के बिना नहीं रह सकेगा।

(४) अंग्रेजी सेना के व्यय के लिए पेशवा ने अपने राज्य का कुछ भाग अंग्रेजों को प्रदान किया जिसकी वार्षिक आय २६ लाख रुपये थी।

(५) अंग्रेज पेशवा और निजाम तथा पेशवा और गायकवाड़ के झगड़ों के बीच मध्यस्थ का कार्य करेंगे।

(६) पेशवा किसी राज्य से अंग्रेजों की अनुमति प्राप्त किए बिना सन्धि या युद्ध नहीं कर सकता था।

बेसीन की सन्धि का महत्व (Importance of the Treaty of Bassein)—उक्त शर्तों का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह सन्धि उस सन्धि का रूपान्तर है जो निजाम और अंग्रेजों के मध्य हुई थी। इसके द्वारा अंग्रेजों का प्रभुत्व मरहठों के राज्य पर स्थापित हो गया और वह उनका पूर्ण आश्रित बन गया। पेशवा उस समय मरहठों का अध्यक्ष एवं मुगल-सम्राट का वकील-उल-मुतलक था। उसकी अधीनता का तात्पर्य सम्पूर्ण भारत की अधीनता थी। इस प्रकार से सैद्धान्तिक दृष्टि से अंग्रेज सम्पूर्ण भारतवर्ष के स्वामी बन गये। सीन हटन (Sean Hutton) के शब्दों में, "यह निःसन्देह एक ऐसा कदम था, जिसने पश्चिमी भारत में अंग्रेजी राज्य के आधार को बिल्कुल बदल दिया। इसने एक ही क्षण में अंग्रेजों का उत्तराधिकार स्थिर कर दिया।"* व्यावहारिक दृष्टि से इस सन्धि का कोई विशेष महत्व नहीं क्योंकि यह दुर्बलता द्योतक था। अन्य मरहठा सरदारों ने इस सन्धि को स्वीकार नहीं किया।

* "It was without question a step which changed entirely the face of the question as it stood in Western India. It united the English inheritance [illegible] Island." —[illegible] Hutton

वास्तव में अंग्रेजों को मरहठों पर अधिकार करने के लिये अभी इन महत्वाकांक्षी सरदारों का दमन करना शेष था।

द्वितीय मरहठा युद्ध
(The Second Maratha War)

बेसीन की सन्धि के उपरान्त पेशवा बाजीराव अंग्रेजी सेना के संरक्षण में १३ मई १८०२ ई० को पूना पहुँचा। होल्कर इस समय पूना में था। जब उसने बाजीराव के आगमन का समाचार सुना तो वह उत्तर की ओर चला गया। दौलतराव सिंधिया और भौंसले ने जब बेसीन की सन्धि का समाचार सुना तो उनको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने सम्मिलित रूप में कार्य करने का निश्चय किया। वे अपनी सेना नर्मदा के दक्षिण प्रदेश में लिये पड़े थे। उन्होंने जसवन्तराव होल्कर से अपने कार्य में सहायता की प्रार्थना की, किन्तु उसने पारस्परिक वैमनस्य तथा ईर्ष्या के कारण उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इधर अंग्रेजों ने सिंधिया और भौंसले से सन्धि करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनको निराशा हुई। वे नहीं चाहते थे कि अंग्रेज हमारे झगड़ों के बीच मध्यस्थ का कार्य करें।

सिंधिया और भौंसले से युद्ध (War with Scindia and Bhonsle)—पेशवा बाजीराव अंग्रेजों की सहायता से पूना पर अधिकार करने में सफल हुआ, किन्तु शीघ्र ही वह अपनी नवीन दशा से ऊब गया। उसने गुप्त रीति द्वारा सिंधिया और भौंसले का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया। जब अंग्रेजों को इस गुप्त मंत्रणा का ज्ञान हुआ और सिंधिया और भौंसले ने अलग होने से इन्कार कर दिया तो वैलेजली ने मरहठों की शक्ति का दमन करने का यह स्वर्ण अवसर समझ सिंधिया और भौंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेज युद्ध के लिये पहले से ही तैयार थे जबकि मरहठा सरदार बिलकुल भी तैयार नहीं थे। उन्होंने एक साथ ही उत्तर और दक्षिण भारत में युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उत्तर की सेना का नेतृत्व जनरल लेक (General Lake) ने और दक्षिण की सेना का नेतृत्व आर्थर वैलेजली ने किया। आर्थर वैलेजली ने शीघ्र ही अहमदनगर पर अधिकार कर सिंधिया और भौंसले की सम्मिलित सेनाओं को असाई नामक स्थान पर परास्त किया। नवम्बर १८०३ को अंग्रेजों ने फिर भौंसले को अरगांव नामक स्थान पर परास्त किया। उन्होंने ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार किया। बाध्य होकर भौंसले ने हथियार डाल दिये। अंग्रेजों ने उससे दिसम्बर १८०३ ई० में देवगांव की सन्धि की। इसके परिणामस्वरूप दक्षिण के युद्ध का अन्त हुआ। उत्तर भारत में जनरल लेक को भी पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। अगस्त १८०३ ई० में उसने अलीगढ़ पर अधिकार किया और शीघ्र ही उसका दिल्ली पर अधिकार हो गया। मुगल-सम्राट शाहआलम अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। अक्टूबर में अंग्रेजों ने आगरे पर अधिकार किया। इसके उपरान्त अंग्रेजों और सिंधिया के बीच लासवाड़ी नामक स्थान पर युद्ध हुआ। सिंधिया की सेना ने यद्यपि बड़ी वीरता तथा साहस से अंग्रेजों का सामना किया, किन्तु उनको परास्त होना पड़ा। ३० दिसम्बर सन् १८०३ ई० में अंग्रेज और सिन्धिया के मध्य सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि हुई। इसके द्वारा अंग्रेजों

का सिंधिया और भौंसले से युद्ध का अन्त हुआ।

देवगांव की सन्धि (Treaty of Deogaon)—उक्त पंक्तियों में बताया गया है कि अंग्रेजों और भौंसले के मध्य दिसम्बर १८०३ ई० में देवगांव की सन्धि हुई। इसके अनुसार भौंसले ने अंग्रेजों को कटक का प्रदेश दिया। इसके अतिरिक्त उसने अंग्रेजों को वार्दा नदी के पश्चिम का समस्त प्रदेश भी दिया। भौंसले को अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना पड़ा। भविष्य में वह किसी योरोपीय व्यक्ति को अपने यहाँ नहीं रखेगा। आपस में यह भी निश्चय हुआ कि भौंसला, निजाम या पेशवा के बीच के झगड़ों में अंग्रेज मध्यस्थ का कार्य करेंगे। इस प्रकार इस सन्धि से भौंसले पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया।

सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि (Treaty of Surgi Arjungaon)—यह सन्धि १८०३ ई० को अंग्रेजों और सिन्धिया के मध्य हुई। इसके अनुसार सिन्धिया ने गंगा और यमुना के मध्य का समस्त प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया। जयपुर, जोधपुर और गोहाद के उत्तर के प्रदेशों पर से सिंधिया के प्रभाव का अन्त कर दिया गया। पश्चिम में अंग्रेजों को सिंधिया ने अहमदनगर, भड़ौंच आदि प्रदेश दिये। सिन्धिया को निजाम, पेशवा तथा मुगल-सम्राट पर अपने प्रभाव का अन्त करना होगा। उसको अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना होगा तथा वह किसी योरोपीयन को अपने यहाँ स्थान नहीं देगा। बाद में सिंधिया ने सहायक सन्धि को स्वीकार किया जिसके अनुसार उसकी सीमा के समीप एक अंग्रेजी सेना रहेगी।

सन्धियों का प्रभाव (Effects of the Treaties)—अंग्रेजों के इतिहास में इन सन्धियों का बड़ा महत्व है—(i) इनके द्वारा मरहठा-सरदारों की शक्ति बहुत कम हो गई। (ii) कम्पनी के राज्य का बड़ा विस्तार हुआ और (iii) उनके अधिकार में मुगल-सम्राट शाहआलम आ गया। (iv) मरहठों की सेनायें भंग कर दी गई। (v) जोधपुर, जयपुर आदि राजपूत राज्यों पर अंग्रेजों का प्रभाव जम गया और इन्होंने भी सहायक सन्धि को स्वीकार किया। (vi) निजाम और पेशवा पर भी अंग्रेजों का अधिकार दृढ़ हो गया। मनरो के अनुसार इन सन्धियों द्वारा "हम पूर्णरूप से भारत के स्वामी बन गये हैं यदि हम इसको सुदृढ़ करने के लिये उचित व्यवस्था की स्थापना करें, तो हमारी शक्ति का किसी भी प्रकार अन्त नहीं हो सकता।"* वैलेजली की यह धारणा थी कि इन सन्धियों द्वारा शान्ति की स्थापना सम्भव है, किन्तु वास्तव में सन्धि की शर्तें इतनी कठोर थीं कि मरहठे अधिक समय तक उनका पालन नहीं कर सके और अंग्रेजों से असन्तुष्ट रहने लगे।

होलकर से युद्ध (War with Holkar)—सन्धियां कार्यान्वित भी न होने पाई थीं कि अंग्रेजों और मरहठा सरदार जसवन्तराव होल्कर में अप्रैल १८०४ ई० में युद्ध आरम्भ हो गया। उसने राजपूत राजाओं से चौथ मांगी। ये अंग्रेजों के संरक्षण में आ

* "We are now complete master of India, and nothing can shake our power, if we take proper measures to confirm it." —Munro.

गये थे। होल्कर ने कर्नल मॉनसन के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना को बुरी तरह परास्त किया। उसने भाग कर आगरे में शरण ली, होल्कर अपनी इस विजय से बड़ा उत्साहित हुआ। उसने शीघ्र ही दिल्ली पर आक्रमण किया, किन्तु लेफ्टिनेन्ट कर्नल ऑक्टर लोनी ने उसको सफल नहीं होने दिया। १३ नवम्बर १८०४ ई० को होल्कर की सेना डीग नामक स्थान

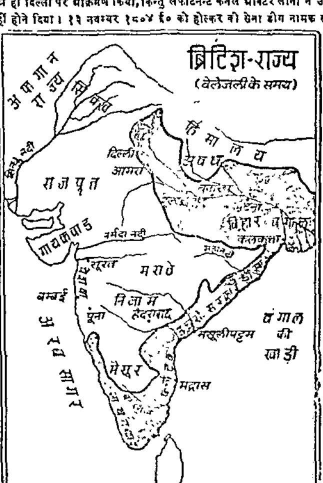

पर परास्त हुई और १७ नवम्बर को जनरल लेक ने होल्कर की सेना को फिर परास्त किया। इसी बीच होल्कर भरतपुर के राजा से मिल गया। लेक ने भरतपुर पर आक्रमण किया परन्तु उसको पराजित होना पड़ा। अन्त में भरतपुर के राजा ने अंग्रेजों से संधि

और वह बुरी तरह परास्त कर

१८०५ ई० में सन्धि की। उधर होल्कर भी हारने लगा चला गया होता।
दिया जाता यदि इस समय वैलेजली इंगलैंड वापिस नहीं लेकर भारत माना

लार्ड कार्नवालिस का पुनः गवर्नर-जनरल होना (Lord Cornwallis becomes Governor-General again)

कम्पनी का ऋण बहुत बढ़ गया
लार्ड वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति के कारण इतना विशाल हो गया था कि
तथा साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हुआ। साम्राज्य इसलिये कम्पनी के संचालकों ने
उसकी उचित व्यवस्था करना साधारण कार्य न था। इसकार्नवालिस को पुनः गवर्नर-
वैलेजली को वापिस बुला लिया और उसके स्थान पर लार्ड की थी। उसने भारत आग-
जनरल नियुक्त किया। इस समय उसकी अवस्था ६७ वर्ष पर सन्धि करने की इच्छा
मन पर सिंधिया तथा अन्य मरहठा-सरदारों से नये आधारों कि अक्टूबर १८०५ ई० में
प्रकट की। किन्तु वह अपना कार्य भी पूरा नहीं कर पाया।
गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया।

सर जार्ज बार्लो (Sir George Barlow)

ल की कौंसिल का सीनियर
लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु के उपरान्त गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया।
सदस्य सर जार्ज बार्लो अस्थाई रूप से भारत का गवर्नर- अपनाया। उसने सिन्धिया के
उसने भी कार्नवालिस के समान तटस्थता की नीति को सार सिन्धिया को ग्वालियर
साथ नवम्बर १८०५ ई० को एक नवीन सन्धि की जिसके अ सिन्धिया के राज्य की सीमा
का दुर्ग तथा गोहाद वापिस कर दिये गये। कम्पनी और थ राज्यों, जयपुर, जोधपुर,
चम्बल नदी निश्चित हुई। अंग्रेजों ने सिन्धिया के अधीन समाप्त कर दिया। सिंधिया
उदयपुर, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़, पर से अपना संरक्षण। इसके उपरान्त सर जार्ज
को ४ लाख रुपया प्रति वर्ष पेंशन के रूप में दिया जाने लग होगा कि जनरल लेक ने
बार्लो ने होल्कर के साथ भी एक सन्धि की। पाठकों को मा को अंग्रेज और होल्कर के
होल्कर को हरा दिया था। २५ दिसम्बर सन् १८०५ ई० उत्तर के प्रदेश पूना तथा
बीच सन्धि हुई जिसमे निश्चय किया गया कि चम्बल नदी केकम्पनी ने उसके दक्षिण के
बुन्देलखण्ड पर से होल्कर के अधिकार का अन्त हो गया। क वह दक्षिण के प्रदेशों में
प्रदेश उसको वापिस कर दिये तथा कम्पनी ने वचन दिया कि
किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।

वैलोर का गदर (Revolt of Vellore)—वैलोर के सेनापति ने वैलोर के
सिपाहियों को आदेश दिया कि उनको अपने सरों पर एक न ई प्रकार की पगड़ी धारण
करनी होगी तथा उनको माथे पर तिलक नहीं लगाना होगा। सिपाहियों ने सेनापति
की इस आज्ञा को अपने धर्म के विरुद्ध समझा। उनमें ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि
अंग्रेज उनको धर्म च्युत करना चाहते हैं और उनका यह कार्य उनको उनके धर्म से
पद-दलित कर देगा। इसी भावना के अन्तर्गत जुलाई १८०६ ई० को सैनिकों ने विद्रोह
कर दुर्ग पर अधिकार किया और बहुत से अंग्रेजों का वध कर डाला। कुछ लोगों को

ऐसी धारणा है कि इस विद्रोह में टीपू के पुत्रों का विशेष हाथ था। विद्रोह का दमन करने के लिये मर्काट से एक सेना भेजी गई जिसने विद्रोह का दमन शीघ्र ही कर डाला। विद्रोह के अन्त होने पर टीपू के पुत्र वैलोर से कलकत्ता भेज दिये गये।

लार्ड मिन्टो
(Lord Minto)

सन् १८०७ ई० में लार्ड मिन्टो ने सर जार्ज बार्लो से गवर्नर-जनरल का कार्य-भार लिया। सर जार्ज बार्लो मद्रास के गवर्नर पद पर नियुक्त किया गया। भारत आगमन के पूर्व वह 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' (Board of Control) का सदस्य रह चुका था। उसने उसी समय यह निश्चय कर लिया था कि वह तटस्थता की नीति के अनुसार आचरण करेगा और देशी राज्यों के साथ यथासम्भव शान्तिमय नीति का अनुकरण करेगा। उसके शासन-काल में पर्याप्त शान्ति रही, कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ, किन्तु आवश्यकता के कारण कभी-कभी उसने भी उग्र नीति का अनुकरण किया।

भारत के राज्यों का वर्गीकरण (Classification of Indian States)—इस समय भारतवर्ष में तीन प्रकार के राज्य थे। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत निजाम, पेशवा, अवध तथा मैसूर के राज्य थे। इन्होंने सहायक सन्धि स्वीकार कर रखी थी और अपनी रक्षा के लिये कम्पनी को धन देते थे अथवा उसकी सेना का व्यय देते थे। द्वितीय श्रेणी के राज्यों के अन्तर्गत कोटा-बूंदी आदि छोटे राज्य थे जो अंग्रेजों के संरक्षण में थे, किन्तु आत्म रक्षा के लिये कम्पनी को धन नहीं देते थे। तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत सिंधिया भोंसले तथा होल्कर के राज्य थे जिनकी अंग्रेजों से मित्रता थी। लार्ड मिन्टो ने प्रथम दो श्रेणी के राज्यों के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध रखा अर्थात् वे उनके संरक्षण में पूर्ववत् बने रहे। तृतीय प्रकार के राज्य से भी उसने मित्रता रखी, किन्तु वह उनके कार्यों की ओर से सदा सचेत रहा।

बुन्देलखण्ड में शान्ति की स्थापना (Establishment of peace in Bundelkhand)—इस समय बुन्देलखण्ड की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। वहाँ के छोटे-छोटे राज्यों में बड़ा वैमनस्य फैला हुआ था और वे निरन्तर संघर्ष करते रहते थे। उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध भी षड्यन्त्र रचने का प्रयत्न किया, यद्यपि उन पर अंग्रेजों का संरक्षण था। जब लार्ड मिन्टो को यह समाचार विदित हुआ तो उसने उनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय किया। उसने बुन्देलखण्ड में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना तथा राज्यों पर कम्पनी का आधिपत्य स्थापित करने के उद्देश्य से बुन्देलखण्ड में एक सेना भेजी जिसने शीघ्र ही अजमगढ़ तथा कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार किया। इस प्रकार वह बुन्देलखण्ड के प्रदेश पर अंग्रेजी प्रभाव जमाने में सफल हुआ।

ट्रावनकोर का विद्रोह (Revolt of Travancore)—ट्रावनकोर के राजा ने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली थी जिसके कारण उस पर अङ्गरेजों का प्रभुत्व था। उसने अङ्गरेजों के चंगुल से निकलने का प्रयत्न किया। वहाँ के दीवान वेलू तम्पी के वहाँ के अङ्गरेज रेजीडेन्ट से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। इसके विपरीत अङ्गरेज वहाँ के आन्तरिक

मामलों में भी विशेष हस्तक्षेप करने लगे थे जिसके कारण दीवान का असन्तोष और भी बढ़ गया। उसने जनता से अङ्गरेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रार्थना की। जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई और जनता ने रेजीडेन्ट के भवन पर आक्रमण किया। रेजीडेन्ट अपना भवन छोड़कर भाग गया, किन्तु अन्य बहुत से अङ्गरेज मारे गये। शीघ्र ही विद्रोह का दमन करने के लिये एक सेना भेजी गई जिसको विद्रोह के दमन में सफलता प्राप्त हुई। दीवान ने इस समाचार के मिलने पर आत्महत्या की। ट्रावनकोर और कोचीन राज्यों पर अङ्गरेजों ने अधिकार किया।

बाह्य नीति (Foreign Policy)—लार्ड मिन्टो की बाह्य नीति पर योरोपीय परिस्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ा। इस समय योरप में नैपोलियन अपनी उच्चतम पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। उसने रूस के जार से मित्रता कर भारत पर आक्रमण करने की एक योजना का निर्माण किया था। अतः अङ्गरेजों का ध्यान उत्तर-पश्चिम की सीमा को सुदृढ़ करने की ओर आकर्षित हुआ। उसने पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और फारस के राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की।

लार्ड मिन्टो और रणजीतसिंह (Lord Minto and Ranjit Singh)—जिस समय लार्ड मिन्टो भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया उस समय तक रणजीतसिंह पंजाब में अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। उसकी राजधानी लाहौर था। सन् १८०४ ई० में होल्कर अङ्गरेजों से फतहगढ़ के युद्ध में पराजत होकर पंजाब आ गया था। उसने रणजीतसिंह से सन्धि करने का प्रस्ताव किया किन्तु सलाहकारों के कहने में आकर वह होल्कर से सन्धि न कर सका, क्योंकि ऐसा करने से अङ्गरेजों और सिक्खों में संघर्ष होना अनिवार्य हो जाता। सन् १८०६ ई० में रणजीतसिंह ने सतलज नदी को पार कर झींद और पटियाला दोनों राज्यों को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही इन दोनों राज्यों को अपने अधिकार में किया। इस प्रदेश के अन्य राज्यों ने अंग्रेजों से संरक्षण की प्रार्थना की। ये राज्य अंग्रेजों और रणजीतसिंह के राज्य के मध्य में स्थित थे। अंग्रेज भी उनको अपने संरक्षण में करना चाहते थे। क्योंकि ऐसा करने से ये राज्य अंग्रेज और रणजीतसिंह

रणजीत सिंह

के राज्य में मध्यस्थ राज्य (Buffer State) का कार्य कर न कर सकें। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों को यह भी भय था कि इसी मार्ग से भारत पर रूस का आक्रमण सम्भव

है। अतः वे न तो पंजाब के राजा रणजीतसिंह को ही अप्रसन्न करना चाहते थे और इसके साथ-साथ इन राज्यों पर संरक्षण भी स्थापित करना चाहते थे। इस कार्य को सम्पन्न करने के अभिप्राय से भारत के गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो ने दिल्ली के रेजीडेन्ट सर चार्ल्स मेटकाफ (Sir Charles Matcalf) को रणजीतसिंह से बात-चीत करने के लिये पंजाब जाने का आदेश दिया। रणजीतसिंह ने उससे स्पष्ट कहा कि वह उस समय अंग्रेजों से सन्धि कर सकता है जब अंग्रेज सतलज नदी के पूर्व के राज्यों पर उसका आधिपत्य स्वीकार कर लें और उसको वचन दें कि वे उसके पूर्व के आन्तरिक मामलों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे। रणजीतसिंह के इस प्रस्ताव ने लार्ड मिन्टो (Lord Minto) को असमंजस में डाल दिया, क्योंकि वह उसके राज्य की सीमा सतलज नदी तक निश्चित करना चाहता था और उसके पूर्व के राज्यों को वह अङ्गरेजों के संरक्षण में लाना चाहता था। उसने अब उग्र नीति का अवलम्बन लेकर एक सेना सतलज नदी के तट पर भेजी। रणजीतसिंह इस सेना के आगमन का समाचार सुनकर कुछ भयभीत हुआ। वह अङ्गरेजों से युद्ध करने का पक्षपाती नहीं था। अतः वह शीघ्र ही अङ्गरेजों से सन्धि करने के लिये तैयार हो गया। इस प्रकार अङ्गरेज अपनी सैनिक शक्ति के बल पर रणजीतसिंह को सन्धि करने पर बाध्य करने में सफल हुए। अप्रैल सन् १८०९ ई० में अङ्गरेज और रणजीतसिंह के बीच अमृतसर की सन्धि हुई।

अमृतसर की सन्धि की शर्तें (Clauses of the Treay of Amritsar)—इस सन्धि के अनुसार रणजीतसिंह और अङ्गरेजों में निम्न शर्तें तय हुई—

(१) सिक्खों के राज्य की सीमा सतलज नदी निश्चित हो गई।

(२) सतलज नदी के पूर्व के राज्यों पर अंग्रेजों का सरक्षण स्थापित हो गया।

सन्धि की शर्तों द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि अङ्गरेजों की मनोकामना पूर्ण हुई। रणजीतसिंह ने अपने जीवन-काल में सन्धि की शर्तों का कभी उल्लंघन नहीं किया। उसने सतलज नदी के पूर्वी राज्यों को अपने प्रभाव-क्षेत्र के बाहर समझा।

लार्ड मिन्टो और फारस (Lord Minto and persia)—लार्ड मिन्टो ने फारस के शाह को अपने पक्ष में करने का निश्चय किया। इस समय फारस का शाह फांसीसियों का मित्र था और अंग्रेजों को भय था कि कहीं वह फ्रांस और रूस की सहायता से भारत पर आक्रमण न कर दे। अंग्रेज उसको अपना मित्र बनाना चाहते थे। फारस एक दूत भेजा गया जिसने फारस के शाह से अंग्रेजों से सधि करने की प्रार्थना की। १८०९ ई० में अंग्रेजों की फारस के शाह के साथ एक संधि हुई जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज आवश्यकता के समय फारस के शाह को सैनिक सहायता प्रदान करेंगे और फारस का शाह उसके बदले में अंग्रेजों के शत्रुओं को अपने राज्य से बाहर निकाल देगा तथा फ्रांस और रूस की सेनाओं को भारत पर आक्रमण करने के लिये अपने राज्य से मार्ग नहीं देगा।

लार्ड मिन्टो और अफगानिस्तान (Lord Minto and Afghanistan)—

इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये १८०६ ई० में लार्ड मिन्टो ने एलफिंस्टन (Elphinston) को काबुल के अमीर से बातचीत करने के लिये भेजा। वह वहां के अमीर शाहशुजा से सन्धि करने में सफल हुआ। यह संधि अधिक समय तक स्थायी न रह सकी क्योंकि आन्तरिक संघर्ष के कारण शाहशुजा को अफगानिस्तान से भागना पड़ा।

लार्ड हेस्टिंग्ज
(Lord Hastings)

लार्ड मिन्टो के उपरान्त सन् १८१३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज भारत का गवर्नर जनरल हुआ। उसने वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति की इङ्गलैण्ड में बड़ी आलोचना की थी। वह तटस्थता की नीति का समर्थक था, किन्तु भारत आगमन पर भारत की परिस्थिति का अध्ययन कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसको भी भारत में वेलेजली की नीति का ही अनुकरण करना होगा क्योंकि जिन मरहठा सरदारों को वेलेजली ने परास्त किया था उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था क्योंकि वेलेजली के बाद के गवर्नर-जनरलों ने तटस्थता की नीति को अपनाया था, जिसके कारण उनको अपनी शक्ति के विस्तार का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो चुका था तथा वे अंग्रेजों की शक्ति का अन्त करने की ओर प्रयत्नशील थे। मध्य भारत में अराजकता फैल रही थी। विद्रोहियों के भय के कारण लोग बड़े दुःखी थे। उनकी सम्पत्ति, जीवन तथा धन पूर्णतया अरक्षित था। भारत के बाहर नेपाल और ब्रह्मा के राज्य अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे जिनकी महत्वाकांक्षाओं के कारण अङ्गरेजी राज्य को भय उत्पन्न होने लगा था।

भारत की राजनीतिक दशा
(Political Condition of India)

जिस समय लार्ड हेस्टिंग्ज सन् १८१३ ई० में भारत आया उस समय भारत की राजनैतिक दशा बड़ी शोचनीय थी।

भारत की राजनीतिक दशा
(१) कम्पनी की स्थिति।
(२) होल्कर का राज्य।
(३) सिंधिया का राज्य।
(४) भोंसले की दशा।
(५) पिंडारियों के अत्याचार।
(६) गोरखे।
(७) राजस्थान।

(१) कम्पनी की स्थिति (Position of the Company)—कम्पनी का राज्य भारत में विशाल हो गया था। उत्तर में गंगा नदी के मुहाने से दिल्ली के पश्चिम में हिसार तक तथा पूर्व में गंगा नदी के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक कम्पनी का विस्तार था। वह देश की सबसे बड़ी शक्ति थी। कम्पनी का कर्तव्य हो गया था कि देश के अन्य भागों को अपने अधिकार में कर एक-छत्र शासन की स्थापना करे। यदि वह ऐसा करने में सफल नहीं होती तो उसके राज्य को प्रत्येक समय संकट उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है।

(२) होल्कर का राज्य (Kingdom of Holkar)—यशवन्तराव होल्कर की

यु सन् १८११ ई० में हो गई थी। उसकी मृत्यु के उपरांत उसका उत्तराधिकारी ल्हारराव होल्कर राज्य का स्वामी बना। इस समय वह अल्पवयस्क था जिसके रण शासन की बागडोर उसकी माता तुलसीबाई के हाथ में आ गई। उसके ऊपर छ ऐसे लोगों का प्रभाव था जिनके कारण देश की अवस्था खराब हो गई। सैनिक क्ति पर पठान अमीन खां ने अधिकार कर लिया था। उसके राज्य में दो दल बन गये समें विशेष रूप से प्रतिद्वन्द्विता थी।

(३) सिंधिया का राज्य (Kingdom of Scindia)—दौलतराव सिंधिया की स समय आर्थिक स्थिति अति शोचनीय थी। उसने धन प्राप्त करने के अभिप्राय से पनी सेना को लूट-खसोट करने की पूर्ण छूट दे दी थी, जिसके कारण सैनिकों के त्याचार से जनता की दशा बड़ी खराब हो गई। राजपूताने के राज्यों पर भी जो अंग्रेजों ा संरक्षण था वह समाप्त हो चुका था। उनके राज्यों में मरहठों ने मनमानी करनी ारम्भ कर दी थी।

(४) भोंसले की दशा (Condition of Bhonsle)—द्वितीय मरहठा-युद्ध में ोंसले को बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। अंग्रेज उसको अपने अधिकार में करना चाहते जिसके कारण वह सदैव उनकी ओर से सशंकित रहता था।

(५) पिंडारियों के अत्याचार (Tyranny of Pindaris)—पिंडारी वे सैनिक जिनका प्रयोग मरहठे सरदार अनियमित रूप से युद्ध के समय किया करते थे। वे ान्ति के समय खेती करते तथा युद्ध के समय में शस्त्रों से युद्ध करते थे। ये वेतन े स्थान पर शत्रु के देश को लूटते थे। जब वैलेजली के उपरान्त कम्पनी ने तटस्थता को पनाया तो मध्य भारत में उनके अत्याचारों के कारण देश में अराजकता उत्पन्न ो गई। इन्होंने लूट-मार करनी आरम्भ की जिससे जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

(६) गोरखे (The Gorkhas)—नैपाल में गोरखों ने अपनी शक्ति का पर्याप्त विस्तार कर लिया था। उन्होंने अनुभव किया कि अब उनको अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए। अतः १७९२ ई० में उनका तिब्बत पर आक्रमण हुआ, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपना ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया। इस समय तक उन्होंने अपने दक्षिणी मैदान में कुछ जिलों पर अधिकार कर लिया था, जिन पर कम्पनी का अधिकार था।

(७) राजस्थान (Rajasthan)—राजस्थान के राजा मरहठों के समान शक्तिशाली नहीं थे। उनके राज्यों पर मरहठों के आक्रमण होते रहते थे। वैलेजली ने उनको कम्पनी के संरक्षण में ले लिया था किन्तु बाद के गवर्नर-जनरल ने उनको फिर मरहठों के संरक्षण में छोड़ दिया। मरहठों तथा पिंडारियों ने फिर वहां लूट-मार मचा दी और उनकी दशा पूर्व के समान बन गई।

जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि लार्ड हेस्टिंग्स वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का विरोधी था किन्तु भारत की दशा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर उसको भी वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति को स्वीकार करना पड़ा।

लार्ड हेस्टिंग्ज और गोरखे
(Hastings and the Gorkhas)

लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत आगमन पर सर्वप्रथम गोरखों की ओर ध्यान दिया। गोरखों ने अपनी शक्ति का विकास तथा संगठन कर लिया था। उन्होंने १८०१ ई० में गोरखपुर पर अधिकार कर लिया था जिसके कारण उनकी और अङ्गरेजी राज्य की सीमा मिल गई। दोनों की सीमायें निश्चित न होने के कारण दोनों में पर्याप्त समय से झगड़ा चल रहा था। वे कभी-कभी कम्पनी के राज्य पर आक्रमण करते रहते थे। तटस्थता की नीति के कारण अङ्गरेजों ने उनके विरुद्ध कोई बड़ा कदम नहीं उठाया। गोरखों ने बुतबल और शिवराज पर अधिकार किया। जब अङ्गरेजों को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई तो उन्होंने इन दोनों प्रदेशों पर अपना अधिकार पुनः स्थापित कर लिया। गोरखों को अङ्गरेजों का यह कार्य प्रिय न लगा। वे इन प्रदेशों पर अपना अधिकार समझते थे। उन्होंने इसको अङ्गरेजों की अनधिकार चेष्टा समझा। वे अंग्रेजों से बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने १८१४ ई० में बुतबल पर आक्रमण कर तीन थानों को जला डाला। अङ्गरेज उनके इस कार्य को सहन नहीं कर सके। उन्होंने गोरखों के विरुद्ध युद्ध का शङ्खनाद बजा दिया।

गोरखा युद्ध (Gorkha War)—लार्ड हेस्टिंग्ज ने गोरखा युद्ध की एक विस्तृत योजना का निर्माण स्वयं किया था और उसने उसके लिये काफी तैयारियां की थीं। ३० हजार विशाल अङ्गरेजी सेना ने गोरखा राज्य पर आक्रमण किया। प्रारम्भ में अंग्रेजों को सफलता प्राप्त नहीं हुई किन्तु बाद में अंग्रेजी सेना गोरखों के भीषण आक्रमण का सामना नहीं कर सकी और उनको युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। जब अंग्रेजों की इस पराजय का समाचार अन्य देशी राज्यों को प्राप्त हुआ तो उनमें भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध कर उनको भारत से बाहर निकालने की भावना जागृत हुई। इसके लिए कुछ प्रयत्न किये गये, किन्तु वे कार्यान्वित नहीं हो पाये। अंग्रेजों ने इस संकट का सामना करने के अभिप्राय से एक विशाल सेना का संगठन किया। अंग्रेजों की ओर से नैपाल राज्य को परास्त करने के लिये जनरल लोनी ने भीषण आक्रमण किया। नैपाली सेनापति अमरसिंह थापा परास्त हुआ। अंग्रेजों ने मलाव नामक नैपाली दुर्ग पर अधिकार कर लिया। बाध्य होकर मई १८१५ ई० को अमरसिंह ने आत्म-समर्पण किया। अंग्रेजों ने धन का लालच देकर नैपाली सिपाहियों को भी अपनी ओर मिला लिया। जब नैपाल राज्य ने यह समाचार सुना तो उसने अंग्रेजों से सन्धि की बातचीत चलानी आरम्भ की। नवम्बर १८१५ ई० में नैपाल राज्य और कम्पनी के बीच एक सन्धि हुई। यह सन्धि संगोली की सन्धि के नाम से विख्यात है।

संगोली की सन्धि (Treaty of Sagauli)—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) नैपाली राज्य से अंग्रेजों को कमायूं और गढ़वाल के जिलों के साथ-साथ हिमालय पर्वत की तराई का एक विस्तृत प्रदेश प्राप्त हुआ।

(२) गोरखों को सिक्किम छोड़ना पड़ा।

(३) नैपाल राज्य की राजधानी काठमांडू में एक अंग्रेज रेजीडेंट रहेगा।

किन्तु यह सन्धि शीघ्र ही समाप्त कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने पुनः नैपाल पर आक्रमण किया। उन्होंने गोरखों को मलवानपुर नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध में पराजित होने के कारण गोरखों का उत्साह समाप्त हो गया। उन्होंने संगोली की सन्धि की शर्तों को स्वीकार किया।

संगोली की सन्धि का महत्व (Importance of the Treaty of Sagauli)—इस सन्धि का महत्व बहुत अधिक है। इससे अंग्रेजों को बड़ा लाभ हुआ। अंग्रेजों के अधिकार में कुमायूं तथा गढ़वाल व अन्य तराई के प्रदेश आ गये। उनका नैनीताल, अल्मोड़ा, शिमला तथा मसूरी के सुन्दर पर्वतीय प्रदेशों पर अधिकार हो गया। कम्पनी की उत्तरी-पश्चिमी सीमायें हिमालय की शृङ्खलाओं तक विस्तृत हो गईं। नैपाल और सिक्ख अलग-अलग हो गये और उनके बीच का प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। उस समय से नैपाल राज्य की ओर से कोई भय नहीं रहा। गोरखों ने इस सन्धि का पूर्णतया पालन किया। कुछ समय उपरान्त अंग्रेजों ने गोरखों को सन्तुष्ट करने के लिये तराई का प्रदेश उनको वापिस कर दिया। उनके सन्तुष्ट करने का कारण यह था कि अंग्रेजों का मरहठों से युद्ध करना आवश्यम्भावी था और उनको भय था कि ऐसा न हो जाय कि भविष्य के युद्ध में मरहठे और गोरखे सम्मिलित होकर उनके विरुद्ध कार्य करने लगे।

पिंडारियों का दमन
(Suppression of the Pindaris)

मध्य भारत में पिंडारियों ने अपनी शक्ति का बड़ा विस्तार कर लिया था। गोरखा युद्ध के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्ज का ध्यान इनके दमन की ओर आकर्षित हुआ। इनके मुख्य नेता चीतू, अमीर खां तथा करीम खां थे। इनके पास विशाल सेना थी। इनका मुख्य कार्य धन प्राप्त करना था। उनके कारण जनता को असीम कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि इनके कुछ राजनीतिक उद्देश्य भी थे। उनका मरहठों के साथ गठबन्धन था कि दोनों मिलकर अंग्रेजी सत्ता का भारत से अन्त करेंगे। परन्तु अभी तक यह पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाया है। अंग्रेजों की तटस्थता की नीति के कारण इनको बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। १८१२ ई० में इन्होंने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया तथा १८१५ और १८१६ ई० में निजाम के राज्य तथा उत्तरी सरकार के समीप के प्रदेशों पर भी आक्रमण किया। हेस्टिंग्ज ने इनके दमन के लिये एक विशाल योजना का निर्माण किया। उसने एक विशाल सेना संगठित की जिसको चार भागों में विभक्त किया गया। ऐसा करने का उद्देश्य यह था कि मरहठे और पिंडारी एक दूसरे से न मिल सकें। हेस्टिंग्ज ने उत्तरी सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया तथा दक्षिणी सेना का नेतृत्व सर टामस हिसलाप के हाथों में सौंपा। इस योजना से अंग्रेजी सेना ने पिंडारियों को चारों ओर से घेर लिया और उन पर आक्रमण किया गया। पिंडारी अंग्रेजी सेना का सामना नहीं कर सके। उनके बहुत से सैनिक युद्ध में काम आये। अमीर खां ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार की जिसके उपलक्ष में उसको

टोंक का राज्य मिला। करीम खां ने भी बाध्य होकर अंग्रेजों की अधीनता स्वी[illegible] की। उसको गोरखपुर की एक छोटी सी जागीर प्रदान की गई। चीतू जंगल में भाग [illegible] और ऐसा कहा जाता है कि चीते ने उसको खा डाला। इस प्रकार लार्ड हेस्टि[illegible] पिंडारियों का दमन करने में सफल हुआ।

हेस्टिंग्ज और मरहठे
(Hastings and the Marathas)

उक्त समस्याओं से निवृत्त होकर लार्ड हेस्टिंग्ज का ध्यान मरहठों की ओ[illegible] आकर्षित हुआ। भारत की परिस्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त वह समझ गया [illegible] कि भारत में अंग्रेजों की सत्ता स्थायी रूप धारण करने में उस समय तक सफल नहीं हो सकेगी जिस समय तक मरहठों की शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं कर दिया जायेगा। ऊपर बतलाया जा चुका है कि वैलेजली ने मरहठा-सरदारों की शक्ति पर्याप्त कम कर दी थी, किन्तु बाद में गवर्नर-जनरलों की नीति के कारण उनको अपनी शक्ति का पुन[illegible] विस्तार तथा संगठित करने का अवसर प्राप्त हो गया था। मरहठा-सरदार अपनी स्थिति को संतोषजनक नहीं समझते थे और वे अंग्रेजों से एक बार लोहा लेने के लिये उत्सुक थे। उन्होंने आपसी मत-भेद को दूर कर सम्मिलित रूप से कदम उठाया, किन्तु उनको इस दिशा में पारस्परिक संघर्ष तथा स्पर्धा के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाया और अलग-अलग उनकी शक्ति का [illegible] करने का विचार किया। अंग्रेजों के सौभाग्य से मरहठों में इस समय कोई भी ऐसा योग्य राजनीतिज्ञ न था, जिसका नेतृत्व समस्त मरहठे सरदार स्वीकार कर लेते और वह उस बिखरी हुई मरहठा-शक्ति को संगठित करने में सफलता प्राप्त करता।

(१) हेस्टिंग्ज और भोंसले (Hastings and Bhonsle)—रघुजी भोंसले की मृत्यु २२ मार्च १८१६ को हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र परशोजी के हाथ में शासन सत्ता आई, किन्तु उसकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति के ठीक न होने के कारण राघोजी की विधवा पत्नी बुकाबाई और अप्पा साहेब में संरक्षण पद प्राप्त करने के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हेस्टिंग्ज तो इस प्रकार के स्वर्ण अवसर की ताक में था। उसने इससे लाभ उठाने के अभिप्राय से अप्पा साहेब के पक्ष का समर्थन किया और उसने सहायता के उपलक्ष में संधि स्वीकार करने का वचन दिया। अंग्रेज जो कुछ चाहते थे [illegible] उन्होंने अप्पा साहेब को संरक्षक के पद पर आसीन कर दिया। [illegible] से न [illegible] की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई, वरन् मरहठा-राज्य का एक [illegible] [illegible] राज्य में अंग्रेजों की छावनियां पड़ जाने से [illegible] और हुए [illegible] के फिर बड़े तथा पेशवा और [illegible] [illegible] हो गई।

[illegible] और पेशवा (Hastings and the Peshwa)—[illegible] है कि पेशवा ने सहायक संधि स्वीकार कर ली थी, किन्तु [illegible] होना आरम्भ हो गया था। वह अपनी [illegible] चाहता था। उसने अन्य मरहठा-सरदारों से [illegible]

वार्ता करनी आरम्भ की। उसने अपनी शक्ति को संगठित करने ... दिया कि अंग्रेज उसकी ओर से शंकित होने लगे। इस समय पेशवा पर उसं... अपने का विशेष प्रभाव था। वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था और उनको की योजना बना रहा था। इसी समय पेशवा ने निजाम और अधिकारों के अनुसार धन की मांग की। गायकवाड़ की ओर उं... गङ्गाधर शास्त्री पूना आया किन्तु यहां उसका वध कर दिया गया। अभी तक यह पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाया कि उसके वध में पेशवा व उसके मन्त्री त्रियम्बक राव का कहां तक हाथ था, किन्तु अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के अभिप्राय से पेशवा पर आरोप लगाया कि त्रियम्बक राव को बन्दी बना लिया, किन्तु वह किसी प्रकार बन्दीगृह से भाग निकला। अंग्रेजों ने पेशवा पर आरोप लगाया कि त्रियम्बक जी उसके षड्यन्त्र के द्वारा बन्दीगृह से भागने में सफल हुआ। अंग्रेजों ने उसको पेशवा से मांगा, किन्तु उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि उसको त्रियम्बक जी का पता नहीं है। अंग्रेजों को उसके उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ। पूना में स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्ट एलफिन्सटन ने पेशवा को युद्ध की धमकी दी। पेशवा ने इस संकटमय परिस्थिति से बाध्य होकर अंग्रेजों से १३ जून १८१७ ई० को एक सन्धि की। इस सधि के अनुसार यह तय हुआ कि पेशवा मरहठा-संघ का अध्यक्ष नहीं होगा। उसने वचन दिया कि किसी विदेशी सत्ता से किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं करेगा। उसने अपने राज्य का कुछ भाग, जिसकी आय ३४ लाख थी, अंगरेजों को दिया। उसने मालवा, बुन्देलखन्ड और भारत पर अपने अधिकार कम्पनी के हवाले किये तथा ४ लाख वार्षिक के बदले गायकवाड़ पर से अपने दावे उठाये। स्पष्ट है कि यह संधि पेशवा के प्राणान्त के समान थी और उससे यह आशा करनी भूल थी कि वह उसका सदैव पालन करेगा। इस प्रकार पेशवा ने बाध्य होकर अंगरेजों से सहायक-सधि की, किन्तु उसके मन का वैमनस्य समाप्त नहीं हुआ। वह अंगरेजों का कट्टर शत्रु बन गया तथा वह उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के अवसर की खोज में लग गया।

(३) हेस्टिंग्ज और सिंधिया (Hastings and Scindia)—अब हेस्टिंग्ज का ध्यान सिंधिया की ओर आकर्षित हुआ जो हेस्टिंग्ज के शब्दों में 'सबसे अधिक शक्तिशाली था।' वैलेजली ने सिंधिया की शक्ति द्वितीय मरहठा-युद्ध के उपरान्त काफी कम कर दी थी, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों की तटस्थ नीति के कारण उसका राजस्थान के राजाओं पर पुनः संरक्षण स्थापित हो चुका था। इसी बीच उसने अपनी शक्ति को पर्याप्त रूप से संगठित कर लिया था। हेस्टिंग्ज ने उस सन्धि को परिवर्तित करने का विचार किया जो १८०५ ई० में सिंधिया और अंग्रेजों के मध्य हुई थी। हेस्टिंग्ज ने सिंधिया पर आरोप लगाया कि उसने अंग्रेजों के विरुद्ध पिंडारियों को सहायता प्रदान की। उसने सिंधिया से हिंडिया और असीरगढ़ के दो दुर्गों को मांग की। उसी समय उसके पास यह भी समाचार भेजा गया कि उसका मालवा तथा राजस्थान के राजाओं का संरक्षण अधिकार समाप्त किया जा रहा है। जब सिंधिया इन सब बातों से अवगत हुआ तो वह बड़ा भयभीत हो गया और उसकी समझ में

जों के सामन्त-मात्र रह गये। इस पराजय के अनेक कारण थे जिनमें
क्तियों में अंकित किये जाते हैं—

के पतन के कारण
कता का अभाव।
ोग्य नेतृत्व का अभाव।
उच्च आदर्शों का त्याग।
शासन की दुर्बलता।
सैन्य-शासन की दुर्बलता।
) मरहठों की देशी राज्यों के
प्रति नीति।
). आर्थिक कठिनाइयां।
८) जागीरदारी प्रथा।
(९) भौगोलिक ज्ञान का अभाव।
(१०) सामुद्रिक शक्ति का
अभाव।

(१) एकता का अभाव (Lack of unity)—मरहठा साम्राज्य बड़ा विशाल था, जिस पर पूना से पेशवा के लिये समस्त साम्राज्य पर नियन्त्रण रखना असम्भव था। इसके कारण समस्त साम्राज्य पांच भागों में विभक्त हो गया। प्रत्येक सरदार ने अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार किया। जब तक योग्य पेशवा रहे उस समय तक इन सरदारों पर उसका नियन्त्रण रहा, किन्तु उसकी शक्ति के दुर्बल होते ही उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इन सरदारों में बड़ी ईर्ष्या तथा स्पर्धा थी। ये पूना की राज-नीति को अपने नियन्त्रण में रखना चाहते थे और एक दूसरे को नीचा दिखलाने के भिप्राय से षड़यन्त्र रचा करते थे। इनके पारस्परिक संघर्षों के कारण ही पेशवा को ंग्रेजों की शरण में जाना पड़ा और उन्होंने उसको बेसीन की सन्धि स्वीकार करने ये बाध्य किया। वे सम्मिलित होकर युद्ध नहीं करते थे। द्वितीय ऐंगलो-मरहठा युद्ध कुछ समय तक सोल्डर ने भाग नहीं लिया तथा तृतीय मरहठा-युद्ध में सिंधिया तथा ायकवाड़ युद्ध से अलग रहे। इस प्रकार मरहठा ऐक्य में अनैक्य उत्पन्न हो गया था। उनमें न तो एक केन्द्रीय प्रशासन था, न एक सेना थी और न एक कोष था। सब ने अपने अलग-अलग राज्य स्थापित किये और अलग-अलग ही संधि तथा युद्ध किये। अंग्रेजों ने इसका बहुत लाभ उठाया। उन्होंने अलग-अलग उनकी शक्ति का दमन कर डाला।

(२) योग्य नेतृत्व का अभाव (Absence of Capable leadership)—मरहठों की पराजय में योग्य नेतृत्व के अभाव का भी बड़ा हाथ था। द्वितीय ऐंग्लो-मरहठा युद्ध के पूर्व ही मरहठों के योग्य सरदारों की मृत्यु हो गई थी। जसवंतराव होल्कर, महादजी सिन्धिया, अहिल्याबाई तथा पेशवा माधवराव की मृत्यु के उपरान्त कोई भी ऐसा नेता मरहठों में नहीं हुआ जो उनको एकता के सूत्र में बांधने में सफल होता। नाना फड़नवीस ने मरहठों की शक्ति की पुनः स्थापना का अवश्य प्रयत्न किया और उसको कुछ सफलता भी अवश्य प्राप्त हुई किन्तु उसमें भी पर्याप्त दोष थे जिसके कारण पेशवा व मरहठा सरदार उसके आधिपत्य को अधिक समय तक स्वीकार नहीं कर सके और वे ...कर षड़यन्त्र रचते रहे। उसकी मृत्यु के उपरान्त मरहठा-सरदार की गया। बाजीराव पेशवा अपने पद के सर्वथा अयोग्य था। उसके थे, किन्तु वह अपने वंश का सबसे अयोग्य व्यक्ति था जो

इस उच्च तथा महान् पद पर आसीन हुए। उसके मन्त्री तथा सलाहकार भी उच्च श्रेणी के न थे। इसके विपरीत अंग्रेजों के पास प्रतिभा सम्पन्न नेता थे जिनमें वैलेजली, लार्ड हेस्टिंग्ज, जनरल लेक तथा आर्थर वैलेजली अधिक प्रमुख थे।

(३) उच्च आदर्शों का त्याग (Leaving of high ideals)—मरहठों ने शिवाजी तथा प्रथम पेशवाओं के उच्च आदर्शों का परित्याग कर दिया। शिवाजी का उच्च आदर्श हिन्दू धर्म की रक्षा तथा मरहठों के राज्य की स्थापना करना था। प्रारम्भिक पेशवा हिन्दू पद-बादशाही के विचारों के समर्थक थे किन्तु बालाजी बाजीराव के समय में मरहठों ने इन आदर्शों को त्याग दिया। उनका राजपूत राजाओं के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। उनके इस व्यवहार से तंग आकर वे उनके शत्रु बन गये। अतः उनसे सहायता पाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत लूट-खसोट की नीति के कारण वे अपनी प्रजा को भी अपना नहीं बना सके। प्रजा उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगी। मरहठों का चरित्र भी पतित हो गया था। उन्होंने आमोद-प्रमोद और भोग-विलास में अपना समय व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था।

(४) शासन की दुर्बलता (Poor administration)—मरहठों की पराजय में उनके शासन की दुर्बलता ने बड़ा योग दिया। शिवाजी ने अपने राज्य में उच्च-कोटि की शासन-व्यवस्था की स्थापना कर जनता को सुखमय जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया, किन्तु बाद में मरहटे शासन को सुव्यवस्थित करने की ओर से पूर्णतः उदासीन हो गये। उनको हर समय धन प्राप्त करने की चिन्ता तथा धुन रहती थी। उन्होंने व्यापार तथा कृषि को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और न जनता की जान तथा सम्पत्ति को सुरक्षित करने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मरहठों की आर्थिक स्थिति सदा शोचनीय रही और उनका राज्य लोकप्रिय नहीं बन सका।

सैन्य-शासन की दुर्बलता (Inefficient Military System)—मरहठों की सैन्य-शासन की दुर्बलता ने भी उनकी पराजय में बड़ा योग दिया। यद्यपि मरहठों के पास पर्याप्त सेना थी किन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा व संचालन की ओर मरहठों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इस सम्बन्ध में इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि उन्होंने अपनी सेना को फ्रांसीसियों के नियन्त्रण में रखकर उनको यूरोपीय ढंग पर संगठित करने का प्रयास किया था, किन्तु उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके साथ-साथ फ्रांसीसियों ने कई बार उनके साथ विश्वासघात किया जिससे मरहठों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसके अतिरिक्त अब मरहठों ने गुरिल्ला युद्ध-व्यवस्था का परित्याग कर खुले मैदान में युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार के युद्ध में वे अंग्रेजों के समान कुशल नहीं थे। मरहठों के पास न उतने अच्छे हथियार थे न कुशल सैनिक थे जितने कि अंग्रेजों के पास थे। मरहठों के पास अंग्रेजों की अपेक्षा तोपखाना भी कम था। उसका बनाना व चलाना भी उनको अंग्रेजों की अपेक्षा कम आता था। इस कार्य के लिये वे सदा विदेशियों पर निर्भर रहते थे जिनकी स्वामी-भक्ति सदैव संदिग्ध रहती थी। इसके अतिरिक्त मरहठों की अपेक्षा अंग्रेज युद्ध नीति में अधिक पटु थे।

(६) मरहठों की देशी राज्यों के प्रति नीति (Policy of the Marathas

towards the Indian States)—मरहठों के पतन में उनकी देशी राज्यों के प्रति न भी योग दिया। उन्होंने उनसे सहयोग स्थापित करने की ओर प्रयत्न नहीं कि यदि मरहठों ने हैदरअली, टीपू व निजाम को समय पर सहायता की होती तो अंग्रेजों की शक्ति का अन्त करने में अवश्य सफल होते। इसके विरुद्ध मरहठों ने उन सदा विरोध किया और उस समय शांत भाव से परिस्थिति का अध्ययन किया जब राज्यों के विरुद्ध अंग्रेजों के कुचक्र चल रहे थे। उनकी शक्ति के पतन से अंग्रेजों शक्ति का विस्तार हुआ। इसके विपरीत अंग्रेजों ने मैसूर के पतन के पूर्व निजाम मरहठों को अपनी ओर मिला लिया था। राजपूतों के प्रति भी उनकी नीति उचित न थी। उनके व्यवहार के कारण राजपूतों ने मरहठों की अपेक्षा अंग्रेजों के संरक्षण में जा अपने लिए अधिक हितकर समझा।

(७) आर्थिक कठिनाइयाँ (Economic Difficulties)—मरहठा-राज्य आर्थिक दशा अच्छी न थी क्योंकि उसकी आय के साधन निश्चित नहीं थे। उनको व्याप या कृषि द्वारा विशेष धन प्राप्त नहीं होता था। उनको चौथ और सारदेशमुखी प निर्भर रहना पड़ता था जिसकी प्राप्ति के लिये उनको युद्ध की शरण लेनी पड़ती थी उन्होंने आर्थिक दशा को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जिससे उनक हर समय धन की आवश्यकता का अनुभव करना पड़ता था। इसी कारण उनको लूट मार की शरण लेनी पड़ती थी जिसके कारण राज्य में अराजकता बनी रहती थी।

(८) जागीरदारी प्रथा (Gagirdari system)—मरहठों में जागीरदारी प्रथ थी। शिवाजी ने इस व्यवस्था को उत्पन्न नहीं होने दिया, किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त इस व्यवस्था का जन्म हुआ और वह मरहठा-शासन का प्रधान अंग बन गई। इसके कारण ही उनके ऐक्य का अन्त हो गया और उनमें विशृङ्खलता उत्पन्न हो गई।

(९) भौगोलिक ज्ञान का अभाव (Lack of geographical knowledge)—मरहठों को अपने प्रदेशों का भौगोलिक ज्ञान नहीं के बराबर था जिसके कारण उनको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(१०) सामुद्रिक शक्ति का अभाव (Lack of navy)—मरहठों ने सामुद्रिक शक्ति के विस्तार की ओर ध्यान नहीं दिया। शिवाजी ने इस ओर अवश्य ध्यान दिया था, किन्तु बाद में मरहठे इस ओर से पूर्ण उदासीन हो गये। अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति बहुत दृढ़ थी जिसके कारण वे विदेशी सत्ताओं का अन्त करने में सफल हुये।

प्रश्न

उत्तर-प्रदेश—

(१) लार्ड वैलेज़्ली की नीति और महत्वपूर्ण कार्यों की आलोचनात्मक व्याख्या (१९५१)

. एक टिप्पणी लिखिये। (१९५६)

. पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५७)

. और परिणाम बताइये। (१९५७)

(५) लार्ड वैलेज़ली की सहायक सन्धि प्रथा से आप क्या सन्धियों का अंग्रेजी सत्ता और देशी शासकों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(६) लार्ड वैलेज़ली के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति क्या थी ? उसने किस प्रकार उसको सम्भाला ? (१९६०)

(७) नाना फड़नवीस पर एक टिप्पणी लिखो। (१९६२)

मध्य-भारत—

(१) लार्ड वैलेज़ली की विदेश नीति समझाइये और उसके परिणामों पर अपने विचार लिखिये।

(२) सहायक सन्धि से आप क्या समझते हैं ? उसने ब्रिटिश कम्पनी को भारत में सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में क्या सहायता की ? (१९५४)

(३) लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन का वर्णन कीजिये। क्या उसको भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य का एक निर्माता कहना ठीक होगा ? (१९५४)

(४) टीपू के राज्य-काल में मैसूर राज्य की अवनति का वर्णन करो। (१९५४)

(५) उन परिस्थितियों का विश्लेषण करिये जिनके द्वारा लार्ड वैलेज़ली को मराठों से युद्ध करने को बाध्य होना पड़ा। (१९५५)

(६) वैलेज़ली की 'सहायक प्रथा' क्या थी ? उसके लाभ और हानि समझाइए। (१९५६)

(७) 'लार्ड वैलेज़ली के शासन ने हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य को हिन्दुस्तान के अंग्रेजी साम्राज्य से बदल दिया।' स्पष्ट कीजिये। (१९५७)

(८) लार्ड हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन करो। (१९५७)

राजस्थान—

(१) लार्ड मिन्टो ने राजनैतिक मिशन (१८०७–१८११) तक क्यों भेजे ? उनके महत्व का वर्णन करो। (१९५१)

(२) लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल में अंग्रेजों और मराठों तथा राजपूतों के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये। (१९५७)

(३) कार्नवालिस, बार्लो और मिन्टो ने हस्तक्षेप न करने की नीति कहाँ तक अपनाई ? बाद में इसका परित्याग क्यों किया गया ? (१९५३)

(४) उन युद्धों का संक्षिप्त वर्णन करो जिनके द्वारा मैसूर के मुसलमानी राज्य का अन्त हुआ ? (१९५२)

(५) उन परिस्थितियों का वर्णन करो जिनके कारण वैलेज़ली के उत्तराधिकारियों को अहस्तक्षेप की नीति को अपनाना पड़ा। (१९५३)

(६) 'लार्ड वैलेज़ली की मराठों के प्रति नीति का विवेचन करो।' इसका मूल्यांकन करो।

(७) पिंडारी कौन थे ? उनका मध्य-भारत तथा राजस्थान के राज्यों
पर क्या प्रभाव पड़ा ? (१६

(८) मरहठा संघ के १७९५ के पश्चात् पतन के कारणों का वर्णन करो।
(१६

(९) 'अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम अर्धांश में मैसूर राज्य हैदर और टी
समय में अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति के लिये एक बड़ा संकट था।' विवेचना करो।
(१६

तृतीय खण्ड
(१८१८ से अब तक)

१

अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार

(१८१८-१८५६)

(Expansion of the British Empire)

मरहठों तथा पिंडारियों के कारण राजस्थान तथा मध्य भारत की दशा अति शोचनीय हो रही थी। वहां अराजकता फैली हुई थी। अठारहवीं शताब्दी में राजस्थान का इतिहास अत्यन्त अन्धकारपूर्ण था। पारस्परिक कलह, सामन्तवाद आदि के कारण वहां शान्ति की स्थापना नहीं हो सकी। अंग्रेजों के पूर्व वहां के राज्य मरहठों के संरक्षण में थे और उनके कारण होलकर और सिंधिया में बड़ा वैमनस्य रहता था। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने इन राज्यों की ओर ध्यान नहीं दिया। वैलेजली के समय में अङ्ग्रेजों ने जोधपुर और जयपुर के राज्यों को मरहठों के संरक्षण से अङ्ग्रेजों के संरक्षण में लिया, किन्तु तटस्थता की नीति के कारण अंग्रेज इन राज्यों से उदासीन हो गये और उन पर मरहठों का पुनः संरक्षण स्थापित हो गया जिसको अंग्रेजों ने स्वीकार किया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने राजस्थान के राज्यों पर अंग्रेजी संरक्षण की स्थापना करने का निश्चय किया। उसने सन् १८१७ से १८२२ तक राजस्थान के विभिन्न राज्यों से अलग-अलग सन्धि कर उनको अपने संरक्षण में लिया। इन सन्धियों द्वारा समस्त राजस्थान के राज्यों की सुरक्षा का भार अंग्रेजों के ऊपर आ गया और उनकी बाह्य नीति पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद अंग्रेजों की भोपाल, मालवा और बुन्देलखण्ड के राजाओं से इसी प्रकार की सन्धि स्थापित हो गई।

लार्ड हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन

(Estimate of Lord Hastings)

सन् १८२३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज ने त्याग-पत्र दिया और वह भारत से चला गया। उसकी गणना भारत के उन गवर्नर जनरलों में की जा जाती है जिन्होंने भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना की तथा उसको दृढ़ बनाया। उसने अपने कार्यों द्वारा उस कार्य को पूरा किया, जिसका आरम्भ क्लाइव ने किया था तथा जिस कार्य को वैलेजली ने आगे बढ़ाया था। वैलेजली अवध, निजाम, मैसूर, सूरत, तंजौर, कर्नाटक आदि प्रदेशों पर अंग्रेजी प्रभाव स्थापित करने में सफल हुआ। उसने मरहठों की शक्ति को भी कम किया, किन्तु वह उनका पूर्ण दमन नहीं कर पाया। हेस्टिंग्ज ने मरहठा शक्ति का पूर्णतया अन्त किया। उसने मध्य भारत तथा राजस्थान के राजपूती राज्यों पर अंग्रेजी प्रभाव की स्थापना की तथा पठानों और पिंडारियों का अन्त किया। उसने नैपाल से भी सन्धि की। इस प्रकार वह हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और ब्रह्मपुत्र से

लेकर सतलज नदी तक अंग्रेजों के प्रभुत्व की स्थापना करने में सफल हुआ।* उसने राजा रणजीतसिंह से सन्धि की तथा गोरखों को अपना मित्र बनाया।

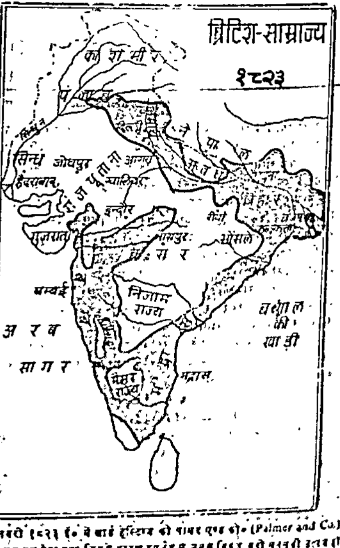

जनवरी १८२३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज को पामर एण्ड को० (Palmer and Co.) के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा जिसके कारण इंगलैंड में उनके विरुद्ध बड़ी चर्चा उठ खड़ी।

* "The British Government became the paramount power over a dominion extending the Himalayas to Cape Comorin and from the Sutlej to the Brahmaputra."
—Advanced History of India, Page 727.

गई थी। गत अध्यायों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि लार्ड हेस्टिंग्ज ने साम्राज्यवादी नीति को अपनाकर भारत में अंग्रेजी राज्य का बड़ा विस्तार किया था। उसके समय में कम्पनी के राज्य का विस्तार हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सतलज से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक हो गया था। अभी तक अंग्रेजों का ध्यान विशेष रूप से भारत-राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत था, किन्तु जब उनके साम्राज्य का विस्तार पर्याप्त हो गया तो उनके सामने सीमा-सम्बंधी समस्यायें उत्पन्न हुई जिनका समाधान किये बिना अंग्रेजी साम्राज्य का दृढ़ होना असम्भव था। इस काल में अंग्रेजों ने अपने भारत-स्थित साम्राज्य को दृढ़ करने के उद्देश्य से सिक्खों, सिंध, बर्मा, अफगानिस्तान, की ओर ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त उनका उन व्यक्तियों से भी संघर्ष होना अनिवार्य था जिनमें अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के कारण असन्तोष की भावना जाग्रत हुई। इसी भावना के अन्तर्गत १८५७ ई० का विद्रोह हुआ। १८२३ तक अंग्रेजों को फ्रांस का भय नहीं था, किन्तु उसके स्थान पर योरुप में रूस का उदय होना प्रारम्भ हो गया था और उसने अपना विस्तार मध्य एशिया में करना प्रारम्भ कर दिया था। उसको हर समय भय बना रहता था कि न मालूम किस समय रूस का भारत पर आक्रमण हो जाय। इसी उद्देश्य से उनको अफगानिस्तान के अमीरों से युद्ध करना पड़ा, सिन्ध तथा पंजाब पर अधिकार करना पड़ा तथा बलूच व पठान जातियों का दमन करना पड़ा। इन्हीं सब कारणों से अंग्रेजों ने शासन को संगठित किया, सिन्ध तथा पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया, पूर्वी तथा पश्चिमी राज्यों को अपने नियन्त्रण में करने का प्रयत्न किया और भारत के राजाओं को अपने पूर्ण अधिकार में किया।

उत्तरी-पूर्वी सीमा
(North-east Frontier)

लार्ड हेस्टिंग्ज के उपरान्त कलकत्ता कौंसिल का सीनियर सदस्य जान एडम्स गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त हुआ। उसने सात मास तक शासन किया। उससे बाद एमहर्स्ट ने अगस्त १८२३ ई० में कार्य भार संभाला। इस समय तक कम्पनी के राज्य की सीमायें बर्मा राज्य की सीमाओं से मिल गई थीं और कम्पनी को उस ओर ध्यान करना आवश्यक हो गया क्योंकि बर्मा का राजा अपने राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर से करना चाहता था।

अंग्रेजों के बर्मा के साथ सम्बन्ध (Relations of the East India Company with Burma)—सत्रहवीं शताब्दी से अंग्रेजों के बर्मा के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में कम्पनी के राज्य-विस्तार के कारण तथा चीनी-तिब्बत नस्ल की एक जाति का बर्मा पर अधिकार हो जाने से अंग्रेजों और बर्मा के राज्य में राजनैतिक सम्बन्ध की स्थापना होना अनिवार्य हो गया। अभी तक अंग्रेजों की ओर बर्मा राज्य की सीमायें निश्चित नहीं थीं जिसके कारण युद्ध का सदा भय बना रहता था। अंग्रेजी सरकार अन्य क्षेत्र में इतनी अधिक व्यस्त थी कि उसको बर्मा की ओर ध्यान देने का विशेष अवकाश प्राप्त नहीं हुआ। उसने पारस्परिक झगड़ों तथा विवादों का अन्त करने के अभिप्राय से १७९५, १८०२, १८०३, १८०९

तथा १८११ में अंग्रेज राजदूत बर्मा दरबार में भेजे। इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि बर्मा के राजा ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। दोनों के सम्बन्ध कटु होने लगे। जब बर्मा के राजा से कम्पनी के उन व्यक्तियों को मांगा जो बर्मा से भाग आए थे तथा उन्होंने अंग्रेजी राज्य में शरण ली थी तो कम्पनी ने उनको देने से साफ इंकार कर दिया। इस घटना से बर्मा का राजा बड़ा अप्रसन्न हुआ और वह अंग्रेजों का शत्रु बन गया। जिस समय पिंडारियों के दमन में अंग्रेज व्यस्त थे उसी समय बर्मा के राजा ने लार्ड हेस्टिंग्ज को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने अंग्रेजों से, चटगांव, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा कासिमबाजार के प्रदेश मांगे जो मध्य काल में अराकान के राजा को कर देते थे। हेस्टिंग्ज ने उस पत्र को जाली कहकर बर्मा के राजा के पास वापिस भेज दिया। वह पत्र हेस्टिंग्ज को उस समय मिला था जिस समय वह पिंडारियों का दमन करने में सफल हो चुका था।

प्रथम बर्मा युद्ध
(First Burmese War)

तत्कालीन युद्ध का कारण (Immediate cause of the Battle)—कुछ समय तक बर्मा के राजा ने अंग्रेजों से किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया। वह युद्ध की तैयारियां करने में संलग्न हो गया। सन् १८२१—१८२२ ई० में उसने आसाम के राजा को परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। आसाम के अधिकार में आ जाने से बर्मा और अंग्रेजी राज्य की सीमायें मिल गईं। बर्मा के राजा ने सन् १८२३ ई० में चटगांव जिले के दक्षिण में स्थित शाहपुरी द्वीप पर अधिकार किया। यहां से उन्होंने बंगाल पर आक्रमण करने की तैयारियां तथा योजनायें बनानी आरम्भ कर दीं। अंग्रेज बर्मा के राजा के इस कार्य को सहन नहीं कर सके क्योंकि उस द्वीप की भौगोलिक स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। यहां से बंगाल पर आक्रमण किया जाना सम्भव था। इस पर एमहर्स्ट ने कुछ रक्षकों के साथ एक आयोग की नियुक्ति की। बर्मा वालों ने इसको भगा दिया। इस पर लार्ड एमहर्स्ट ने २४ फरवरी, १८२४ ई० में बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध की घटनायें (Events of the War)—स्थल मार्ग से बर्मा पर आक्रमण उसकी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण करना असम्भव था। वह एक पहाड़ी प्रदेश है और वह जंगल और दलदलों से परिपूर्ण है। अतः अंग्रेजों ने जल-मार्ग से बर्मा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उन्होंने बर्मा पर आक्रमण करने के लिये ११०० व्यक्तियों का एक सामुद्रिक बेड़ा जनरल केम्पबेल (General Campbell) के नेतृत्व में रंगून पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इसी बीच अंग्रेजों ने बर्मा वालों को आसाम से भगा दिया, किन्तु उन्होंने अंग्रेजों को चटगांव की सीमा पर परास्त किया, इसके कारण रंगून का अंग्रेजों को अभियान स्थगित नहीं हो सका।

रंगून पर अधिकार (Capture of Rangoon)—११ मई १८२४ ई० को रंगून पर बिना किसी विरोध के अधिकार कर लिया। इस समय अंग्रेजों को पदार्थों के अभाव तथा वर्षा की अधिकता के कारण बड़ी कठिनाइयों का

सामना करना पड़ा किन्तु उन्होंने अपने साहस का परित्याग नहीं किया। बर्मा के योग्य सेनापति महा बन्देला (Maha Bundela) ने अंग्रेजों से रंगून लेने के लिये उन पर

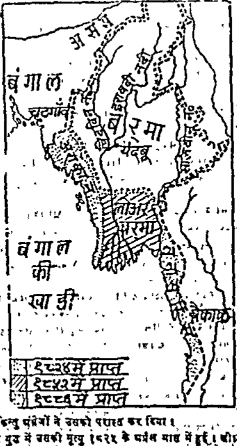

आक्रमण किया, किन्तु अंग्रेजों ने उसको पराहत कर दिया।

एक अन्य युद्ध में उसकी मृत्यु १८२५ के अप्रैल माह में हुई। शीघ्र ही २५ अप्रैल को कैम्पबेल (Campbell) ने दक्षिण बर्मा की राजधानी प्रोम (Prome) पर अधिकार कर लिया। इस समय समझौते की वार्ता आरम्भ हुई, किन्तु वह सफल नहीं हो सकी और पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजों ने यंदबू (Yandaboo) पर अधिकार किया, यद्यपि बर्मा वालों ने उनकी प्रगति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। २४ फरवरी १८२६ ई० में अंग्रेजों और बर्मा के राजा में यंदबू की सन्धि हुई जिससे प्रथम बर्मा युद्ध की समाप्ति हुई।

यंदबू की संधि (Treaty of Yandaboo)—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) बर्मा-सरकार को १ करोड़ रु० युद्ध-क्षतिपूर्ति के लिये अंग्रेजों को देने पड़े।

(२) बर्मा-सरकार ने अराकान तथा टिनासिरम के प्रदेश उनको दिये।

(३) बर्मा-सरकार आसाम, कछार, जयन्तिया के प्रदेशों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी।

(४) मनीपुर राज्य स्वतन्त्र राज्य माना गया।

(५) बर्मा की राजधानी में एक अंग्रेज राजदूत तथा कलकत्ते में एक बर्मी राजदूत रहेगा।

इस सन्धि के कुछ ही महीने उपरान्त अंग्रेजों और बर्मा सरकार में एक व्यापारिक सन्धि हुई।

यंदबू की सन्धि के परिणाम
(Results of the Treaty of Yandaboo)

यंदबू की सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई जिसके मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) बर्मा के समुद्रतट पर अङ्गरेजों का अधिकार (Control of Burmese sea-shore)—बर्मा के समुद्रतट पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

(२) आसाम, कछार और मनीपुर पर अङ्गरेजों के प्रभाव का विस्तार (British Influence in Assam, Cachar and Manipur)—आसाम, कछार और मनीपुर अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में आ गये।

(३) अङ्गरेजों की विशेष क्षति (Great lost to the English)—परन्तु इस युद्ध में अंग्रेजों को बहुत अधिक धन तथा मनुष्यों की क्षति उठानी पड़ी और इसी कारण इस युद्ध को ह्यूम ने 'सत्यानाशी युद्ध' के नाम से सम्बोधित किया।

> **यंदबू की संधि के परिणाम**
> १. बर्मा के समुद्रतट पर अंग्रेजों का अधिकार।
> २. आसाम, कछार और मनीपुर पर अंग्रेजों के प्रभाव का विस्तार।
> ३. अंग्रेजों की विशेष क्षति।
> ४. भारत पर प्रभाव।

(४) भारत पर प्रभाव (Effects on India)—इस युद्ध का कुछ प्रभाव भारत पर भी पड़ा। भारत के कुछ व्यक्तियों की यह धारणा हो गई कि अंग्रेजों की शक्ति पतन की ओर अग्रसर होने लगी। इसी धारणा के अन्तर्गत दुर्जनशाल ने भरतपुर के राजा की मृत्यु के उपरान्त जो राजा का अल्पवयस्क पुत्र अंग्रेजों द्वारा राज-सिंहासन पर आसीन किया गया था, उसका विरोध किया।

भरतपुर का घेरा (Sack of Bhartpur)—जब लार्ड एमहर्स्ट को यह समाचार विदित हुआ तो उसने प्रारम्भ में तो तटस्थता की नीति अपनाई और किसी का पक्ष नहीं लिया, किन्तु जब दुर्जनशाल ने राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया

तो अंग्रेजों ने उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया। शीघ्र ही एक अंग्रेजी सेना लार्ड कामरबरमियर (Lord Combermere) के नेतृत्व में भरतपुर भेजी गई, जिसने भरतपुर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लिया। भरतपुर के राजा दुर्जनशाल को पदच्युत कर दिया गया और भरतपुर पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। अंग्रेजी सेना ने भरतपुर को खूब लूटा।

बैरकपुर का सैनिक विद्रोह (Military Revolt of Barakpur)—लार्ड एमहर्स्ट के समय में बैरकपुर के सैनिकों ने विद्रोह किया जिसका दमन अंग्रेजों ने बड़ी कठोरता से गोली चलाकर किया। कुछ को फाँसी दी गई तथा कुछ से अमानुषिक कार्य करवाए गए।

द्वितीय वर्मा युद्ध (Second Burmese War)—उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि यंदबू की सन्धि के कारण अंग्रेजों को पर्याप्त लाभ हुआ था। उनके अधिकार में ब्रह्मा के विशेष प्रदेश आ गये थे। सन् १८३७ ई० में ब्रह्मा के राज्यसिंहासन पर थरावड़ी आसीन हुआ था। उसने यंदबू की पुरानी सन्धि को मानने से इंकार कर दिया। उसका यह कार्य ब्रह्मा के संविधान के अनुसार था; क्योंकि वर्मा के संविधान के अनुसार नये राजा द्वारा पुराने अधिकारों की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य था।* अतः राजा का उत्तराधिकार पुराने राजा की सन्धि को मानने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता था। उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि "अंग्रेजों ने मेरे भाई को परास्त किया, किन्तु मुझको नहीं। यंदबू की सन्धि मानने के लिये मैं किसी भी दशा में बाध्य नहीं किया जा सकता हूँ क्योंकि यह सन्धि मैंने नहीं की। मैं रेजीडेन्ट से एक साधारण व्यक्ति के समान भेंट करूँगा किन्तु रेजीडेन्ट की हैसियत से नहीं। वे कब समझेंगे कि मैं केवल इङ्गलैंड के शाही राजदूत से ही भेंट कर सकता हूँ।"† इस विचारधारा के अन्तर्गत अंग्रेजों और वर्मावासियों में अच्छे सम्बन्धों का अधिक समय तक रहना असम्भव था। इसके अतिरिक्त वर्मा का राजा अंग्रेजी रेजीडेन्ट (British Resident) के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं करता था और रंगून के वर्मा के गवर्नर का व्यवहार भी उन अंग्रेजों से अच्छा नहीं था जो यंदबू की सन्धि के उपरान्त रंगून में जाकर व्यापार करने लगे थे। १८४० ई० में रेजीडेन्ट वापिस बुला लिया गया। अंग्रेज व्यापारी रंगून में मनमानी करने लगे थे। वे हर समय ऐसा कार्य करने की चिन्ता में लगे रहते कि उनको कर या चुंगी न देनी पड़े। वर्मी सरकार को उनके आचरण, कार्य, व्यवहार आदि से बाध्य होकर उनके विरुद्ध कठोर नीति अपनानी पड़ी। उन्होंने उन व्यक्तियों को पकड़कर दण्डित किया जिन्होंने राज्य की आज्ञाओं का उल्लंघन किया था। वर्मी की सरकार ने

* "Within the Burmese Constitution whereby all existing rights lapsed at a new King's accession until he chose to confirm them."

—An Advanced History of India, page 733.

† "The English beat my brother and not me. The treaty of Yandaboo is not binding on me, for I did not make it. I will meet the Resident as a private individual but as a Resident never. When will they understand that I can receive only royal ambassadors from England?"

कम्पनी के पदाधिकारियों को रंगून में व्यापार करने वाले अंग्रेजों से अवगत कराया, किन्तु उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। बर्मा में रहने वाले अंग्रेजों ने बर्मा सरकार के विरुद्ध प्रचार-कार्य प्रारम्भ कर दिया और भारत सरकार से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। १८५२ ई० में उन्होंने भारत-सरकार से सहायता की याचना की जिसके आधार पर तत्कालीन भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी ने ब्रह्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। वास्तव में लार्ड डलहौजी तो ब्रह्मा पर अंग्रेजी पताका फहराने के अवसर की खोज में ही था। वह साम्राज्यवादी नीति से पूर्णतया ओत प्रोत था और वह बर्मा पर अधिकार करने के लिये इस अवसर से अच्छा अवसर नहीं पा सकता था। उसने शीघ्र ही बर्मा की सरकार से व्यापारियों की क्षति-पूर्ति प्राप्त करने के अभिप्राय से लैम्बर्ट नामक एक अंग्रेज अफसर को एक छोटे से जहाजी बेड़े के साथ, जिसमें केवल तीन जहाज थे, रंगून भेजा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लार्ड डलहौजी अपनी शर्तों को अपनी तलवार की शक्ति के जोर पर मनवाना चाहता था न कि वह झगड़ों का अन्त वाद-विवाद या वार्ता द्वारा करवाना चाहता था। २१ नवम्बर १८५२ को लैम्बर्ट अपने जहाजी बेड़े के साथ रंगून पहुंचा। उसने रंगून पहुंचकर आवा के राजा को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर अनेक प्रकार के आरोपों का उल्लेख किया गया था और उसने रंगून के गवर्नर को पदच्युत करने की मांग की।

आवा के राजा द्वारा युद्ध टालने का प्रयत्न (Efforts by the king of Ava to do away with the battle)—अंग्रेजों के जहाजी बेड़े के रंगून आगमन पर तथा पत्र प्राप्त करते ही आवा का राजा भयभीत हो गया और वह समझ गया कि अंग्रेज युद्ध के लिये कटिबद्ध हैं। वह अंग्रेजों की कूटनीति से परिचित था और जानता था कि उसके देश पर संकट आने वाला है। उसने युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया और एक उच्च पदाधिकारी को लैम्बर्ट (Lambert) के पास भेजा जिसने उसको वचन दिया कि राजा उनकी सम्पूर्ण शर्तों को मानने के लिए तैयार है। उसने शीघ्र ही रंगून के गवर्नर को पदच्युत कर एक नया गवर्नर उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया।

युद्ध का प्रारम्भ (Begining of the War)—जब सन्धि की बातचीत चल रही थी तो लैम्बर्ट (Lambert) ने रंगून के गवर्नर से मिलने की इच्छा प्रगट की और कुछ अफसरों को गवर्नर के पास भेजा। गवर्नर उसके अशिष्टतापूर्ण व्यवहार से बड़ा दुखी हुआ जिसके कारण उसने लैम्बर्ट से मिलने को इन्कार कर दिया। अंग्रेज इससे बड़े क्रुद्ध हुये। उसने शीघ्र ही ब्रह्मा के जहाज यलोशिप (Yellow ship) को अपने अधिकार में किया। ब्रह्मा सरकार अंग्रेजों के इस व्यवहार को सहन नहीं कर सकी और उन्होंने अंग्रेजी जहाजों पर गोलाबारी करनी प्रारम्भ कर दी। अंग्रेजों ने भी उसका जवाब दिया जिससे द्वितीय ब्रह्मा युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

अंग्रेजों ने रंगून का घेरा डाला। जब लार्ड डलहौजी को यह समाचार विदित हुआ तो उसने बर्मा-सरकार के पास एक पत्र भेजा जिसमें क्षमा-प्रार्थना, क्षतिपूर्ति और १,००,००० पौंड के अर्थ-दण्ड की मांग की (Demanding apology, Compensation and an Indemnity of £ 100,000)। ब्रह्मा की सरकार इतने कठोर दण्ड को

स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुई। उसने युद्ध की तैयारियां करनी आरम्भ कर दीं। जब अंग्रेजों को कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो उसने बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जनरल गाडविन (General Godwin) को एक विशाल सेना के साथ ब्रह्मा भेजा।

ब्रह्मा पर अंग्रेजों का अधिकार (Annexation of Southern Burma)—अप्रेल १८५२ ई० में अंग्रेजी सेना जनरल गाडविन (General Godwin) के नेतृत्व में रंगून पहुँची। उसने रंगून पहुँचते ही युद्ध करना आरम्भ कर दिया। रंगून पर अधिकार करने के उपरान्त अंग्रेजों ने बेसीन पर अधिकार किया। बर्मा की विजय के कार्य को शीघ्रतम समाप्त करने के हेतु लार्ड डलहौजी स्वयं रंगून गया। शीघ्र ही अंग्रेजों ने प्रोम और पेगू को अपने अधिकार में किया। इस प्रकार अंग्रेजों के अधिकार में बर्मा का दक्षिणी भाग आ गया। डलहौजी इसी प्रदेश को अपने अधिकार में करना चाहता था। वह उत्तर की ओर नहीं बढ़ा। यद्यपि कुछ व्यक्तियों ने उसको ऐसा करने के लिए कहा था। उसने युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी। डलहौजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि ब्रह्मा का राजा इन प्रदेशों को अंग्रेजों को दे दे, किन्तु ब्रह्मा का राजा इस प्रकार की सन्धि करने को तैयार नहीं हुआ। अतएव शीघ्र ही लार्ड डलहौजी ने यह घोषणा कर दी कि दक्षिणी बर्मा का प्रदेश अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। उसने विजित प्रदेशों का एक प्रान्त बनाकर रंगून को उसकी राजधानी बनाया।

लार्ड डलहौजी की नीति की आलोचनात्मक व्याख्या (Criticism of Lord Dalhousie's Policy)—लार्ड डलहौजी ने जो नीति ब्रह्मा के राजा के साथ अपनाई वह पूर्णतया अन्यायपूर्ण तथा असंगत थी। वास्तव में वह इन प्रदेशों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था और वह केवल अवसर की खोज में था जो उसको शीघ्र ही मिल गया। उसने किसी भी समय इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि वह शांति द्वारा समस्त विवादों का अन्त करता और बर्मा के राजा की बातों को ध्यानपूर्वक सुनता। अंग्रेजी व्यापारियों के कार्यों से वशीभूत होकर वहां के राजा तथा रंगून के गवर्नर ने उनके साथ कठोर व्यवहार किया। उसने उस पत्र की ओर भी ध्यान नहीं दिया जो बर्मा के राजा ने उसको लिखा था।

अंग्रेज और अफगानिस्तान
(The Britishers and Afghanistan)

भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्या सदा से ही बड़ी विकट तथा संकटमय रही है। इस ओर से सदा ही भारत पर आक्रमण होते रहे हैं और अंग्रेजों के काल में भी रूस का भय सदा अंग्रेजों को रहा। भारत और अफगानिस्तान के मध्य में कुछ पहाड़ी जातियां निवास करती हैं जो बड़ी स्वतन्त्रताप्रिय हैं और जिन्होंने कभी भी किसी राज्य की अधीनता पूर्णतया स्वीकार नहीं की, यद्यपि अफगानिस्तान तथा भारत की ओर से इन प्रदेशों तथा जातियों को अधिकार में करने के उद्देश्य से अनेक बार आक्रमण किये गये। कोई भी भारतीय राज्य उस समय तक सुरक्षित नहीं समझा जा सकता था जब तक कि उसकी उत्तरी-पश्चिमी सीमा पूर्णतया सुरक्षित न हो। दिल्ली

सल्तनत के काल में बलबन और अलाउद्दीन ने इसकी सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उस समय मंगोलों के आक्रमण भारत पर इसी ओर से हो रहे थे। जब इस काल के सुल्तान इस ओर से उदासीन हो गये तो उनको अपने साम्राज्य से हाथ धोना पड़ा। मुगलों ने भारत पर अपनी सत्ता दृढ़ करने के उपरांत इस ओर विशेष ध्यान दिया। बाद के मुगल-शासक इस ओर से उदासीन हो गये और भारत पर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण हुये जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के द्वारा मरहठा शक्ति को भी बड़ा भारी आघात पहुँचा था। वास्तव में मरहठा शक्ति का पतन पानीपत के तृतीय युद्ध (१७६१) से ही आरम्भ हो जाता है। जब अंग्रेजों का साम्राज्य सतलज नदी तक पहुँच गया तो कम्पनी को अफगानिस्तान के राज्य से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य हो गया। इस समय अंग्रेजों को रूस के आक्रमण का भय था जो मध्य एशिया में अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करता चला जा रहा था। अतः जब लार्ड ऑकलैण्ड (Lord Auckland) भारत का गवर्नर-जनरल बन कर सन् १८३६ ई० में भारत आया तो उसने अफगानिस्तान की ओर विशेष ध्यान दिया। यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि जिस समय लार्ड वैलेजली भारत का गवर्नर-जनरल था उस समय अफगानिस्तान पर जमानशाह शासन कर रहा था जिसका अंग्रेजों के कट्टर शत्रु टीपू से भारत-आक्रमण के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हो रहा था। इसी समय बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल (Board of Control) के सभापति डन्डास (Dundas) ने वैलेजली को सूचित किया था कि वह "उस राजकुमार (जमानशाह) की गति-विधि की ओर ध्यान दे, क्योंकि अपनी प्रतिभा, सैनिक शक्ति तथा आर्थिक साधनों के कारण वह अंग्रेजों का विरोधी हो सकता है।" अंग्रेजों ने एक ओर तो अवध के साथ कठोर व्यवहार किया और उसको अपने नियन्त्रण में किया तथा दूसरी ओर अंग्रेजों ने फारस के शाह के पास दूत भेजे। जमानशाह की योजना इस प्रकार अंग्रेजों ने असफल कर दी। सन् १८०३ ई० में शाहशुजा अफगानिस्तान की गद्दी पर आसीन हुआ, किन्तु आन्तरिक झगड़ों के कारण सन् १८०९ ई० में उसको अफगानिस्तान से भागना पड़ा और उसने भी अंग्रेजों की शरण ली। अंग्रेजों ने उसको पेंशन नियुक्त की। इसका कारण यह था कि वे भविष्य में उसका प्रयोग अफगानिस्तान के सम्बन्ध में कर सकें। कई अयोग्य शासकों के शासन के उपरान्त सन् १८२६ ई० में दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान की गद्दी पर आसीन हुआ। अयोग्य शासकों के काल में अफगानिस्तान की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी। पारस्परिक कलह तथा संघर्षों के कारण उसकी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा।

अंग्रेजों की दोस्त मुहम्मद के प्रति नीति (British policy towards Dost Mohammad)—दोस्त मुहम्मद में सर्वोच्च गुण विद्यमान थे। उसने अपनी शक्ति को दृढ़ करने का अथक प्रयत्न किया किन्तु वह अपने राज्य की आंतरिक तथा बाह्य कठिनाइयों में इतना अधिक व्यस्त हो गया कि उस पर काबू पाना उसके अधिकार के बाहर हो गया। सन् १८३२ ई० में शाहशुजा, जो अंग्रेजों के संरक्षण में भारत में रहता था, ने कंधार पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं

हुई। इधर सिख पूर्व में अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने पश्चिम की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। रणजीतसिंह ने अटक पार कर पेशावर पर अपना अधिकार स्थापित किया। दोस्त मुहम्मद इस समय बड़ी कठिनाइयों में ग्रस्त था। दोस्त मुहम्मद ने जिस समय लार्ड आकलैण्ड भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया, उसको बधाई का एक पत्र लिखा और उससे सहायता की प्रार्थना की, किन्तु लार्ड आकलैण्ड ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और तटस्थता की नीति (Policy of Non-intervention) का अनुसरण करने का बहाना कर दिया।

रूस के आक्रमण का भय (Russophobia)—जब सन् १८३७ ई० में फारस के शाह ने रूसी सहायता द्वारा हिरात पर अधिकार कर लिया तो लार्ड आकलैण्ड रूसी आक्रमण से बड़ा भयभीत हो गया और उसका ध्यान रूस की ओर आकर्षित हुआ। वह अब इस निश्चय पर पहुँचा कि रूस के आक्रमण के भय का अन्त करने के लिये अंग्रेजों को अफगानिस्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक है। जब अंग्रेज और दोस्त मुहम्मद के मध्य संधि की वार्तालाप, प्रारम्भ हुई तो दोस्त मुहम्मद ने उनसे कहा कि वह अंग्रेजों से मित्रता इस शर्त पर करने को तैयार है कि यदि अंग्रेज अपने मित्र राजा, रणजीतसिंह से उसको पेशावर दिलवाने का वचन दें। लार्ड आकलैण्ड यह वचन देना नहीं चाहता था, क्योंकि इससे शक्तिशाली रणजीतसिंह अप्रसन्न होगा जिसको, अंग्रेज अप्रसन्न करना नहीं चाहते थे। इस प्रकार सन्धि की वार्तालाप का अन्त हुआ।

दोस्त मुहम्मद का रूस की ओर झुकाव (Dost Mohammad's Inclination towards Russia)—अंग्रेजों से सन्धि करने के प्रयास में असफल होने पर दोस्त मुहम्मद ने रूस की ओर हाथ बढ़ाया। रूस भी अफगानिस्तान से मित्रता करना चाहता था क्योंकि यह विचार था कि वह इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों को भयभीत करने में सफल होगा और वह योरोपीय राजनीति में कुछ लाभ अंग्रेजों से प्राप्त कर सकेगा। शीघ्र ही उसने अफगानिस्तान से सन्धि की ओर उनका राजदूत काबुल पहुँच गया।

अंग्रेजों का दोस्त मुहम्मद से मित्रता करने का प्रयास (Efforts of the Britishers to establish friendship with Dost Mohammad)—यहाँ यह बात भी बतलाना आवश्यक होगा कि जिस समय दोस्त मुहम्मद रूस और फारस से मित्रता की बात-चीत कर रहा था और वह अंग्रेजों से साफ जवाब पा चुका था तो अंग्रेजों को बड़ी बेचैनी हो गई थी। उनको अपने साम्राज्य के लिये आपत्ति साफ दीखने लगी थी। ब्रिटिश परराष्ट्र मन्त्री पामर्स्टन ने भारत की सरकार को रूस की अफगानिस्तान में महत्वाकांक्षाओं को रोकने का आदेश दिया। इसके अनुसार बर्नस (Burnes) नामक व्यक्ति को व्यापारिक मिशन पर अफगानिस्तान भेजा गया, किन्तु यह स्पष्ट था कि व्यापारिक मिशन एक बहानामात्र था जबकि इस मिशन का वास्तविक उद्देश्य राजनीतिक था। वास्तव में दोस्त मुहम्मद की हार्दिक इच्छा अंग्रेजों से मित्रता करने की थी और बर्नस (Burnes) ने स्वयं लिखा है कि "यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हम उसके साथ मिलकर कार्य नहीं कर सकते परन्तु यह प्रतीत होता था कि गवर्नर-जनरल

दृढ़ रहा। लार्ड आकलैंड ने १ अक्टूबर १८३८ को युद्ध की आवश्यकता पर जोर देते हुए एक घोषणा की जो निम्नलिखित है—

"इस घोषणा का उद्देश्य है कि अफगानिस्तान के पूर्वी प्रान्तों में एक शत्रु-शक्ति के स्थान पर मित्र-शक्ति की स्थापना हो और हमारी उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आक्रमण की योजनाओं के विरुद्ध स्थायी दीवार की स्थापना हो।"

प्रथम अफगान युद्ध (First Afghan War)—अंग्रेज सेनापति सर हेनरी फेन लार्ड आकलैंड की अफगानिस्तान सम्बन्धी नीति का विरोधी था। उसने आक्रमण का नेतृत्व करने से इन्कार कर दिया। इस पर लार्ड आकलैंड ने उसके स्थान पर सर जॉन कीन को आक्रमणकारिणी सेना का सेनापति नियुक्त किया। "सिन्धु, की सेना" फिरोजपुर में एकत्रित की गई। पहले यह योजना थी कि यह समस्त सेना पंजाब में को होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगी। किन्तु जब रणजीतसिंह ने अंग्रेजी सेना को अपने प्रदेश से मार्ग देने से इन्कार कर दिया, तो यह निश्चित किया गया कि शाहशुजा के पुत्र के साथ सिक्ख सेना अफगानिस्तान पर खैबर दर्रे द्वारा आक्रमण करेगी और अंग्रेजी सेना शाहशुजा के साथ सिन्ध नदी तथा सिन्ध प्रदेश पार कर बोलन दर्रे से अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगी। अंग्रेजी सेना का सिन्ध में होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करना उस सन्धि के विरुद्ध था जो अंग्रेजों और सिंध के अमीरों के बीच हुई थी। इसका वर्णन विस्तार रूप से बाद में किया जायगा। लार्ड आकलैंड (Lord Auckland) ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वह जानता था कि अमीर में अंग्रेजी सेना का सामना करने का साहस नहीं है और इसलिये उस ने यह कार्य करने में तनिक भी सोच-विचार नहीं किया। अंग्रेजी सेना ने शीघ्र ही भक्कर पर अधिकार किया। जब सिंध के अमीरों ने अंग्रेजों के कार्य का विरोध किया तो अंग्रेजों ने उनके व्यवहार को शत्रुतापूर्ण बतलाया और उनको दण्ड देने का निश्चय किया गया। उनसे कहा गया कि तुमने तीस वर्ष से शाहशुजा को कर नहीं दिया और उनके सामने २५ लाख रुपया अदा करने की मांग रखी गई। उसने यह भी कहा कि इस समय अंग्रेजों पर आपत्ति आई हुई है और वे किसी भी पूर्व सन्धि को मानने के लिये तैयार नहीं है। अमीरों को बाध्य होकर अंग्रेजों की समस्त शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं, किन्तु यह मानना होगा कि लार्ड आकलैंड का यह कार्य सर्वथा अन्यायपूर्ण था।

अफगानिस्तान पर अंग्रेजों का अधिकार (Control of Afghanistan by the Britishers)—भक्कर पर अधिकार करने के उपरान्त अंग्रेजी सेना बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए बोलन दर्रे को पार करने में सफल हुई। चारे की कमी के कारण बहुत से पशुओं की मृत्यु हुई और सैनिकों को असह्य कष्टों का सामना करना पड़ा। २६ मार्च १८३९ को अंग्रेजी सेना बोलन दर्रा पार कर क्वेटा पहुंची और अप्रैल के मास में अंग्रेजों का कन्धार पर अधिकार स्थापित हुआ। अफगान सरदारों ने शाहशुजा का विरोध करने का निश्चय किया क्योंकि वह अंग्रेजों की सहायता से अमीर बनना चाहता था और उसने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता अंग्रेजों के हाथ बेच दी, किन्तु अंग्रेजों ने उन समस्त सरदारों को धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। इसके पश्चात्

मे दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ के नेतृत्व में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी और स्थिति दिन प्रतिदिन भयंकर रूप धारण करती गई। १८४१ के शरद काल में समस्त देश में विद्रोह होने लगे किन्तु अंग्रेज पदाधिकारियों ने स्थिति की वास्तविकता को समझने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। नवम्बर के मास में १०० अफगान विद्रोहियों ने अंग्रेजी राजदूत बर्न्स के निवास-स्थान का घेरा डाला और उसका नृशंसतापूर्ण वध कर दिया गया था। एलफिन्स्टन की सेना ने जो घटना-स्थल से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर थी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। अंग्रेज सेनापतियों के पारस्परिक मत-भेद ने स्थिति को और भी भयंकर बना दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्रोह का दमन करने का तनिक भी प्रयास नहीं किया गया। २३ नवम्बर १८४१ ई० को अफगानियों ने मेकनाटन को नमस नामक स्थान पर परास्त किया। अपनी दयनीय परिस्थिति से बाध्य होकर मकनाटन को दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ से एक बड़ी ही अपमानजनक सन्धि ११ दिसम्बर १८४१ को करनी पड़ी।

सन्धि की शर्तें (Clauses of the treaty)—इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि—

(१) अंग्रेज अफगानिस्तान को खाली करें।

(२) दोस्त मुहम्मद को स्वतन्त्र करें।

(३) शाहशुजा को पेंशन लेकर अफगानिस्तान में रहने अथवा वहाँ से चले जाने की छूट होगी।

(४) अकबर खाँ को अपने संरक्षण में अंग्रेजी सेना को सीमा पार कराना होगा।

इसी समय मैकनाटन (Macnaughten) ने अन्य सरदारों से सन्धि की वार्ता चलाना आरम्भ किया क्योंकि वह अकबर खाँ पर विश्वास नहीं करता था। उसको अफगानों ने वध कर डाला। इस काण्ड के कारण सन्धि की शर्तों का पूर्ण होना शीघ्र असम्भव हो गया। जनवरी १८४२ को अंग्रेजी सेना ने अपना भण्डार तथा अस्त्र-शस्त्र अफगानों को समर्पित कर दिये। ६ जनवरी को १६,००० व्यक्तियों ने बिना अस्त्र-शस्त्र के वापिस आना आरम्भ किया। जब यह सेना वापिस आ रही थी तो अफगानों ने इस सेना पर आक्रमण किया। इन सोलह हजार व्यक्तियों में से केवल एक व्यक्ति डा० ब्रीडन जीव बचा और १२० बाकी जीव रहे जो अकबर खाँ के पास थे। अफगानों का यह कार्य बड़ा बर्बरतापूर्ण था किन्तु इस दुर्घटना का अधिक दोष अफगानों पर न होकर स्वयं अंग्रेजों पर था क्योंकि अंग्रेजों ने समस्त अफगानिस्तान को अपनी सेनाओं से खाली नहीं किया था। काबुल की सेनायें केवल वापिस लौटी परन्तु अन्य स्थानों की सेनाओं ने वापिस आना स्वीकार नहीं किया जिससे अफगानों को अंग्रेजों पर अविश्वास हो गया और उन्होंने उत्तेजना में आकर उक्त कांड रच डाला।

(१) लार्ड आकलैंड की प्रतिक्रिया (Reactions of Lord Auckland)—जब लार्ड आकलैंड को इस कांड की सूचना प्राप्त हुई तो वह निराश हुआ और एक दम घबरा गया। अफगानिस्तान में स्थित अन्य सेना की रक्षा भी शोचनीय हो गई।

अफगानों ने जनरल नॉट (General Note) को, जो कंधार में था, घेर लिया। उसकी सहायता के अभिप्राय से जनरल इंगलैंड को भेजा गया, किन्तु वह हकलजाई के युद्ध में परास्त हुआ। गजनी में पामर ने कुछ समय युद्ध करने के उपरान्त आत्मसमर्पण कर दिया। लार्ड आकलैंड ने अपनी भूलों पर पर्दा डालने के अभिप्राय से एक वक्तव्य प्रकाशित किया। उसने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से कुछ असफल प्रयत्न किए, किन्तु जब ये समस्त समाचार इंगलैंड पहुँचे तो वह १८४२ ई० में वापिस लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड एलिनबरा भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया।

लार्ड एलिनबरा (१८४२–१८४४)
(Lord Ellinborough–1842 to 1844)

लार्ड एलिनबरा ने भारत आते ही लार्ड आकलैंड की नीति का परित्याग कर अंग्रेजी सेना अफगानिस्तान से वापिस बुलाने का निश्चय किया, किन्तु वह अफगानों को उनके कार्यों का दण्ड देना चाहता था। वह अफगानिस्तान की राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। इसके साथ-साथ वह अफगानिस्तान में अंग्रेजों की सैनिक शक्ति की धाक अवश्य जमाना चाहता था। उसने शीघ्र ही नॉट (Note) तथा पोलक (Pollock) को वापिस आने की आज्ञा दी और उनको यह भी आदेश दिया कि वापिस आते समय काबुल और गजनी पर अपना अधिकार अवश्य स्थापित करें। उसके आदेशानुसार जनरल नॉट ने कन्धार से और पोलक ने जलालाबाद से प्रस्थान किया। पोलक ने अकबर खां को तेहजीन नामक स्थान पर परास्त किया और वह १५ सितम्बर को काबुल में प्रवेश करने में सफल हुआ। उधर नॉट गजनी को नष्ट-भ्रष्ट कर काबुल की ओर चल पड़ा। वह १७ सितम्बर को काबुल पहुँचा। इस प्रकार अंग्रेजी सेना ने काबुल पर अपनी पताका फहराई। इसके उपरान्त अंग्रेजी सेना ने काबुल में लूट-मार मचाना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने काबुल के भव्य भवनों को नष्ट किया। काबुल के बाजार को लूट कर ध्वस्त कर दिया गया। अंग्रेजों ने इस प्रकार अफगानियों से उनके द्वारा किये गये कार्यों का बदला लिया, किन्तु उन्होंने जिस नीति को अपनाया वह एक सभ्य तथा सुसंस्कृत जाति के लिए शोभनीय न थी। अंग्रेजी सेना काबुल, गजनी आदि प्रदेशों में अव्यवस्था उत्पन्न कर भारत आई। वे गजनी से अपने साथ एक फाटक भी लाये जिसको वे सोमनाथ के मन्दिर का फाटक समझते थे जिसे महमूद गजनवी सोमनाथ आक्रमण के उपरांत भारत से ले गया था, किन्तु वह सोमनाथ का फाटक न होकर कहीं और का फाटक था।

एलिनबरा की घोषणा (Declaration of Ellinborough)—लार्ड एलिनबरा अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न हुआ। वह स्वयं वापिस आने वाली सेना का स्वागत करने के लिये फीरोजपुर गया जहाँ सेनाओं का बड़ा शानदार स्वागत किया गया। लार्ड एलिनबरा ने एक घोषणा की जिसमें उसने लार्ड आकलैंड की अफगानिस्तान सम्बन्धी नीति की कटु आलोचना की और कहा कि "गवर्नर-जनरल अफगानों के द्वारा सरकार को, जो पड़ौस के राज्यों के साथ शांति बनाये रखने की इच्छुक हो

और उसके योग्य हो, स्वेच्छा से स्वीकार करने को तैयार है।" इस घोषणा में यह भी कहा गया कि "हमारी विजयी सेनायें अफगानिस्तान से सोमनाथ मन्दिर का द्वार ले आई हैं और लुटा-पिटा महमूद का मकबरा गजनी के अवशेषों की ओर निहार रहा था। आठ सौ वर्ष का बदला चुका लिया गया।"

एलिनबरा की यह घोषणा सर्वसाधारण व्यक्तियों को भी धोखे में नहीं डाल सकी। वे शीघ्र ही वास्तविकता को समझ गये कि अंग्रेजों का अफगानिस्तान से वापिस आना उनकी नीति की पराजय का उल्लेख करता है। अंग्रेजों को दोस्त मुहम्मद को मुक्त करना पड़ा जो बिना किसी विरोध के पुनः काबुल के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। अंग्रेजों की नीति पूर्णतया असफल रही।

अंग्रेजों की विफलता के कारण
(Causes of the defeat of the Britishers)

प्रथम अफगान युद्ध में अंग्रेजों की विफलता के कई कारण थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) लोकप्रिय अमीर को च्युत करने का प्रयास (Efforts to dethrone the popular Amir)—अंग्रेजों ने यह निश्चय किया कि दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर बनाया जाए। दोस्त मुहम्मद अफगानों का लोकप्रिय शासक था जबकि शाहशुजा भगोड़ा था और जनता की दृष्टि में इसका मान और प्रतिष्ठा बिल्कुल भी नहीं थी। उसने एक बार पूर्व भी अमीर बनने का प्रयास किया था, किन्तु उसको जनता का दोस्त मुहम्मद की अपेक्षा बहुत कम समर्थन प्राप्त हुआ। अंग्रेजों की यह दूरदर्शिता थी क्योंकि जन-मत के विरोध में किसी भी व्यक्ति का राज्य स्थायी नहीं हो सकता। जनता ने जब यह अनुभव किया कि उसने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के अभिप्राय से अंग्रेजों के हाथ बेच दी तो उनके हृदय में उसके प्रति घृणा की भावना जागृत हो गई।

> **अंग्रेजों की विफलता के कारण**
>
> (१) लोकप्रिय अमीर को च्युत करने का प्रयास।
> (२) अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश होना।
> (३) यातायात में कमी।
> (४) अयोग्य तथा अदूरदर्शी पदाधिकारी।
> (५) लार्ड आकलैंड का परिस्थिति को समझने का प्रयास न करना।
> (६) अंग्रेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना।

(२) अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश होना (Afghanistan was a mountainous country)—अफगानिस्तान एक पहाड़ी प्रदेश था। ऐसे प्रदेश में सैनिक कार्यवाही का सफल होना असम्भव था।

(३) यातायात में कमी (Lack of Transport)—अंग्रेजों को यातायात की भी पर्याप्त कमी थी। उनका ऐसा विचार था कि पंजाब के द्वारा उनको इसका अभाव नहीं होगा; किन्तु राजा रणजीतसिंह की मृत्यु के कारण यह कठिनाई विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। इसके कारण खाद्य सामग्री तथा सेना की कमी हो गई।

(४) अयोग्य तथा अदूरदर्शी पदाधिकारी (Incompetent officials)—जिन व्यक्तियों के हाथ में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व था वे सब अयोग्य तथा अदूरदर्शी थे। इसके अतिरिक्त उनमें पारस्परिक सहयोग का सर्वथा अभाव था। एलफिन्सटन वृद्ध वीर था, किन्तु अस्वस्थ होने के कारण कार्य में उदासीन रहा।

(५) लार्ड आकलैंड का परिस्थिति को समझने का प्रयास न करना (Lord Auckland could not understand the real condition)—यह युद्ध अनिवार्य नहीं था। यदि लार्ड आकलैंड परिस्थिति को समझने का प्रयास करता तो प्रथम अफगान युद्ध का टाला जाना सम्भव था। वास्तव में दोस्त मोहम्मद रूस की अपेक्षा अंग्रेजों की ओर अधिक आकर्षित था। लार्ड आकलैंड ने अपनी अयोग्यता के कारण परिस्थिति को शोचनीय बना दिया। दोस्त मुहम्मद की शर्त केवल पेशावर प्राप्त करना था। यह सम्भव था कि रणजीतसिंह को अप्रसन्न किये बिना वह पेशावर को दोस्त मुहम्मद को दिलाने में सफल हो सकते थे किन्तु लार्ड आकलैंड ने उसकी इस शर्त को स्वीकार नहीं किया।

(६) अंग्रेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना (Stay of British army in Afghanistan)—लार्ड आकलैंड के इस निश्चय ने कि अंग्रेजी सेना अफगानिस्तान में रहे अफगानों में असन्तोष की भावना जागृत कर दी। वास्तव में, जब अंग्रेजों ने यह अनुभव कर लिया था कि शाहशुजा लोकप्रिय नहीं था, तो उनको शाहशुजा के स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को अमीर बनाना चाहिये था जो लोकप्रिय होता, और जिसको राज्य पर अधिकार स्थापित करने के लिये अंग्रेजी सेना की सहायता की आवश्यकता का अनुभव नहीं करना पड़ता।

प्रथम अफगान युद्ध का मूल्यांकन (Critical estimate of the First Afghan War)—लार्ड आकलैंड के शासन-काल की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना है जिसका उद्देश्य यह था कि रूसी प्रभाव का अफगानिस्तान से अन्त कर अंग्रेजी प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार किया जाय। रूस मध्य एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार करने में संलग्न था। उसके प्रभाव का अन्त करने के लिये यह आवश्यक था कि अफगानिस्तान पर अंग्रेज अपने प्रभाव की स्थापना करें, किन्तु जिन साधनों तथा कार्यों द्वारा लार्ड आकलैंड ने इस उद्देश्य की पूर्ति करने का प्रयास किया उसको उचित तथा न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। इसी कारण इतिहासकारों ने लार्ड आकलैंड की अफगान नीति की कटु आलोचना की है। अंग्रेजों को इस युद्ध से कोई भी लाभ नहीं हुआ, वरन् इसके विपरीत बड़ी हानि उठानी पड़ी। उनकी प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा।

प्रथम युद्ध का मूल्यांकन
(१) कम्पनी की क्षति।
(२) अनावश्यक आक्रमण।

(१) कम्पनी की क्षति (Loss to the Company)—ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस युद्ध में लगभग २० हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई और ५० लाख रुपया व्यय हुआ। इतनी अधिक जन तथा धन की हानि होने पर अंग्रेजों को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि अंग्रेजों का जो

उद्देश्य था, कि अफगानिस्तान को अपना मित्र बनाकर मध्य एशिया से रूसी प्रभाव का अन्त किया जाय, बिल्कुल भी प्राप्त नहीं हुआ। इसी बात को लेकर काई ने सत्य ही कहा है कि "इतिहास के पृष्ठों में इतनी विशाल असफलता का उल्लेख कहीं नहीं मिलता और न विश्व के इतिहास में इतना शानदार तथा प्रभावोत्पादक पाठ ही मिलता है।"* इस धन का समस्त भार भारतीय जनता को उठाना पड़ा।

(३) अनावश्यक आक्रमण (Useless invasion)—अफगानिस्तान पर अंग्रेजों द्वारा आक्रमण करना पूर्णतया अनावश्यक था। यह आक्रमण न आवश्यक ही था और न नैतिक दृष्टि से ही उचित था। दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों से मित्रता का पक्षपाती था। जिस समय लार्ड आकलैंड भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया दोस्त मुहम्मद ने उससे सहायता की प्रार्थना की थी, किन्तु लार्ड आकलैंड ने तटस्थता की नीति का ढोल पीटकर उसकी प्रार्थना की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अतः दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों की ओर से निराश होकर फारस और रूस की ओर झुका। उसने शायद यह कार्य इसलिये किया हो कि उसको अंग्रेजों की सहायता प्राप्त हो जाए और अंग्रेज अपने मित्र रणजीतसिंह से पेशावर उसको दिला दें। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों को अमीर की वाह्य नीति पर नियन्त्रण रखने का कोई अधिकार नहीं था। दोस्त मुहम्मद स्वतन्त्र शासक था। इस आधार पर वह स्वतन्त्र था कि अपने हितों की प्राप्ति के लिये किसी भी विदेशी शक्ति से मित्रता रख सकता था। यद्यपि फारस की सेनाओं ने हिरात के घेरे को सितम्बर १८३८ ई० में उठा लिया था, किन्तु फिर भी नवम्बर १८३८ ई० को लार्ड आकलैंड (Lord Auckland) ने अंग्रेज सेनाओं को अफगानिस्तान में घुसा दिया। यह उसकी भयंकर भूल थी। जब रूसी आक्रमण का भय समाप्त हो गया था तो उसको आक्रमण करने के स्थान पर दोस्त मुहम्मद को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना चाहिए था, किन्तु उसके स्थान पर भगोड़े शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर बनाकर लार्ड आकलैंड ने विपत्ति को स्वयं बुलाया। परिस्थिति से बाध्य होकर दोस्त मुहम्मद को मुक्त किया गया और वह पुनः अमीर बना। अंग्रेजों के व्यवहार से वह उनका शत्रु बन गया। इस प्रकार अफगान-युद्ध पूर्णतया असफल रहा। अंग्रेजों ने जो योजना अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिये बनाई थी वह योजना भी "एक कुशल राजनीतिज्ञ की अपेक्षा पागल की नीति थी।"† अंग्रेजों के लिये आवश्यक था कि जब उनको यह ज्ञात हो गया कि जनता शाहशुजा को अमीर बनाना तथा अंग्रेजी सेना को अफगानिस्तान में रहने देना नहीं चाहती तो उनको चाहिए था कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को अमीर बनाते जो उनका मित्र भी रहता तथा अफगानों में लोकप्रिय भी होता। ऐसा करके उनको अपनी सेनायें शीघ्र ही अफगानिस्तान से हटा लेनी चाहिये थीं, किन्तु लार्ड आकलैंड ने ऐसा न कर विनाश तथा आपत्ति को निमन्त्रण दिया।

* "No failure so total and so overwhelming as this is recorded in the pages of history. No lesson so grand and impressive is to be found in all the annals of the world." —Kaye

† "The plan violated all the conditions of sound strategy and was that of a lunatic rather than of a sane statesman." —Smith

लार्ड ऐलिनबरा की नीति पर एक दृष्टि (Critical estimate of Lor Ellinborough's policy)—लार्ड ऐलिनबरा ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध में उचि नीति को नहीं अपनाया। यह सत्य है कि उसने अंग्रेजी फौजों को वापिस आने क आदेश दिया, किन्तु उसके साथ-साथ उसने यह भी आदेश दिया था कि वे गजनी काबुल तथा कन्धार पर अधिकार कर ही वापिस आयें। इस कार्य के करने मे अंग्रेजी सेना ने इन प्रदेशों में अफगानों के साथ कठोर व्यवहार किया। अनेक गाँ जला दिये गये और काबुल का बाजार तोपों से उड़ा दिया गया। कुछ विद्वानों का कहना है कि वह स्वयं इन कार्यों के प्रति उत्तरदायी नहीं था, किन्तु वे भूल जाते हैं कि उसकी भिन्नता घोषणा ने अंग्रेजों के हृदय में प्रतिशोध की भावना जागृत कर दी थी। उसने वापिस आई हुई सेना का स्वयं फीरोजपुर पहुँचकर बड़ा भव्य स्वागत किया और कहा कि ८०० वर्ष के अपमान का बदला लिया गया है। इस घोषणा से लाभ की आशा नहीं थी वरन् हानि की सम्भावना अधिक थी।* इतिहासकार इस कथन से सहमत हैं 'कि यह भारत में हुई समस्त ब्रिटिश-इतिहास की सबसे बड़ी भूल थी।'†

सिन्ध-विजय

(Conquest of Sindh)

इससे पूर्व कि अंग्रेजों द्वारा किस प्रकार सिन्ध की विजय की गई, यह बतलाना अत्यन्त आवश्यक होगा कि अंग्रेजों का ध्यान सिन्ध प्रदेश की ओर पर्याप्त समय से आकर्षित था। अफगान युद्ध के कारण अंग्रेजों ने सिन्ध की विजय करना अपने लिये अत्यन्त आवश्यक समझा। सिन्ध नदी की दक्षिण घाटी का प्रदेश सिन्ध प्रदेश कहलाता था। यह अहमदशाह दुर्रानी के साम्राज्य का एक प्रदेश था। अहमदशाह की शक्ति का पतन होने के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों का सिन्ध प्रदेश पर से अधिकार समाप्त हो गया। तालपुर-परिवार के अमीरों ने सिन्ध पर अपना अधिकार स्थापित किया। यह परिवार मूलतः बिलोचिस्तान का था। इनकी शक्ति के तीन केन्द्र हैदराबाद, खैरपुर और मीरपुर थे। ये तीनों स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। अंग्रेजों ने इन तीनों को स्वतन्त्र मानकर तीनों से अलग-अलग सन्धियाँ की थीं।

अंग्रेजों की अमीरों से सन्धियाँ (Treaty of the Britishers with the Amirs of Sindh)—अंग्रेजों ने सिन्ध प्रदेश में सन् १७५८ ई० में थाटा नामक स्थान पर अपनी एक फैक्टरी की स्थापना की, किन्तु कुछ समय पश्चात् वह फैक्टरी बन्द कर दी गई। उन्होंने सन् १८०९ ई० में फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त करने के अभिप्राय से सिन्ध के अमीरों से एक सन्धि की। यह सन्धि सन् १८२० ई० में दोहराई गई। सन् १८३१ ई० में एलेक्जेण्डर बर्न्स (Alexander Burnes) ने सिन्ध नदी द्वारा लाहौर तक यात्रा की। इस यात्रा का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को

* "The folly of the thing was past all denial. It was a folly of the most [illegible] kind, for it was calculated to please none and to offend many." —Kaye.

† "The most unqualified blunder committed in the whole history of the British India." —[illegible]

सिन्ध प्रदेश के व्यापारिक तथा राजनीतिक महत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया। अब केवल अंग्रेज उस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिये स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। पंजाब का राजा रणजीतसिंह सिन्ध प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु अंग्रेजों ने उसको ऐसा नहीं करने दिया। उसने सिन्ध के बंटवारे का प्रश्न अंग्रेजों के सामने रखा, किन्तु अंग्रेजों ने उसको स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे तो स्वयं सिन्ध को अपने अधिकार में करना चाहते थे। इस समय भारत का गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिक था। उसने सिन्ध के अमीरों को बाध्य कर २० अप्रैल सन् १८३२ ई० को एक सन्धि की जिसके अनुसार अंग्रेजों को सिन्ध की नदी तथा सड़कों का प्रयोग व्यापारिक उद्देश्य से करने का अधिकार प्राप्त हो गया किन्तु उनको सिन्ध प्रदेश में सेना व सेना का सामान रखने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ और यह भी निश्चय हुआ कि दोनों दल एक दूसरे के प्रदेशों को लालच भरी दृष्टि से नहीं देखेंगे। सन् १८३४ ई० में यह सन्धि पुनः दोहराई गई। २० अप्रैल सन् १८३८ को लार्ड आकलैंड ने सिन्ध के अमीरों के साथ एक सन्धि की थी और उसने उनको बाध्य कर हैदराबाद में अङ्गरेज रेजीडेण्ट रखने की अनुमति प्रदान की।

सन्धि की अवहेलना (Violation of the treaty)—प्रथम अफगान-युद्ध के लिए जो सेनायें भेजी गई वे सिन्ध प्रदेश में को होकर गई थीं क्योंकि राजा रणजीतसिंह ने उनका पंजाब में से जाना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार अंग्रेजों ने सन् १८३२ ई० की सन्धि की अवहेलना की। लार्ड आकलैंड का यह व्यवहार पूर्णतया अन्यायसंगत था। अंग्रेजों ने उनसे कहा "कि उन्होंने पर्याप्त समय से शाहशुजा को कर नहीं दिया है यद्यपि वे शाहशुजा द्वारा सन् १८३३ ई० में इस कर के देने से मुक्त कर दिए गये थे। जब उन्होंने कर देने में आनाकानी की तो उनको यह धमकी दी गई कि हमारे पास उनको कुचलने और विनष्ट करने की शक्ति है और यदि हमारे साम्राज्य अथवा उसकी सीमा की अखण्डता तथा सुरक्षा के लिये इसकी तनिक सी भी आवश्यकता का अनुभव किया जायेगा तो हम उसका प्रयोग करने के लिये तनिक भी हिचकिचाहट नहीं करेंगे।* बेचारे अमीरों के पास अब कोई अन्य साधन न रहा और उन्होंने गवर्नर जनरल की बातों को स्वीकार कर लिया। फरवरी सन् १८३९ में जब जनरल कीन (Keyne) सिन्ध प्रदेश में को अंग्रेजी सेना अफगानिस्तान के लिये ले जा रहा था तो अंग्रेजों और सिन्ध के अमीरों के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार निश्चय हुआ कि—

(१) अंग्रेजों को सिन्ध के अमीर तीन लाख रुपया प्रतिवर्ष उस सेना के व्यय की पूर्ति के लिये देंगे जो सिन्ध में रखी जायेगी।

(२) सिन्ध पर अंग्रेजों का संरक्षण होगा।

* "But they were given a warning to the effect that the British Government had the power to crush and annihilate them and ... will not hesitate to call it into action, should it appear requisite, however remotely, for either the integrity or safety of the Empire, or its frontiers."

—An Advanced History of India, Page 761.

लार्ड एलिनबरा (Lord Ellinborough)—सिन्ध का दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ। अंग्रेजों की इच्छा थी कि अफगानिस्तान की विफलता को सिन्ध की विजय द्वारा पूर्ण किया जाये। वे अब बहाना खोजने में लग गये। शक्तिशाली को बहाना भी शीघ्र मिल जाता है। यहाँ भेड़िये और मेमने वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। अङ्गरेजों ने सिन्ध के अमीरों पर झूठे आरोप लगाए यद्यपि उन्होंने बड़ी निष्ठा के साथ अङ्गरेजों को सहायता प्रदान की थी। अंग्रेजों ने सिन्ध के अमीरों से एक नई सन्धि करने के लिये १८४२ ई० में सर चार्ल्स नेपियर (Sir Charles Napier) को सिन्ध भेजा। लार्ड एलिनबरा ने उसको पर्याप्त सैनिक तथा राजनीतिक अधिकारों से सुशोभित कर सिन्ध भेजा था। उसके व्यवहार से अमीर भयभीत हो गये और बाध्य होकर उन्होंने अंग्रेजों से एक सन्धि की। इसके अनुसार निश्चय हुआ कि ३ लाख वार्षिक रुपया देने के स्थान पर सिन्ध के अमीर कम्पनी को सिन्ध का एक भाग प्रदान करेंगे, सिन्ध में चलने वाले जहाजों के लिये ईंधन का प्रबन्ध अमीर करेंगे। सिक्के ढालने का अधिकार अमीरों से छीन लिया गया और अंग्रेजों ने यह महत्वपूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

सन्धि की शर्तों पर अमीर हस्ताक्षर भी नहीं करने पाये थे कि नेपियर (Napier) ने ईमामगढ़ के दुर्ग पर अपना सैनिक बल दिखलाने के अभिप्राय से आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। बाद में यह दुर्ग उड़ा दिया गया। अमीरों ने औटरम से हैदराबाद छोड़ देने को कहा जो सिन्ध में ब्रिटिश कमिश्नर के पद पर नियुक्त हुआ था। जब उसने उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया तो अमीरों ने अंग्रेजी रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध का प्रारम्भ (Beginning of the War)—नेपियर को सिन्ध-विजय करने का स्वर्ण अवसर शीघ्र हाथ लगा। इस समाचार के मिलते ही उसने युद्ध की घोषणा कर दी। १३ फरवरी, १८४३ ई० में मियानी के युद्ध में सिन्ध के अमीर पराजित हुए। हैदराबाद के युद्ध में तथा अमरकोट के युद्धों में भी अंग्रेजों को विजय हुई। इन पराजयों से सिन्ध के अमीरों का साहस टूट गया, वे डर गये और उन्होंने आत्म-समर्पण किया। सर चार्ल्स नेपियर शीघ्र ही गवर्नर जनरल को सूचित किया कि उसने सिन्ध पर अधिकार कर लिया। गवर्नर-जनरल ने सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की घोषणा की। नेपियर सिन्ध का गवर्नर बना। उसको ७०,००० पौंड प्राप्त हुए और औटरम (Outram) को ३००० पौंड मिले।

एलिनबरा की नीति पर विहंगम दृष्टि (Critical estimate of Lord Ellinborough)—लार्ड एलिनबरा तथा सर चार्ल्स नेपियर ने सिन्ध के विरुद्ध जिस नीति को अपनाया उसकी इतिहासकारों ने बड़ी कटु आलोचना की। वास्तव में सिन्ध-विजय युद्ध के अतिरिक्त बलात् डाके के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थी। इतिहासकार लेन (Lanes) का कथन है कि "यदि अफगान युद्ध हमारे भारतीय इतिहास में सबसे अधिक विनाशकारी है तो नैतिक दृष्टि से सिन्ध की घटना और भी अधिक आपत्तिजनक

है।* इस सम्बन्ध में स्वयं नेपियर ने अपनी डायरी में लिखा है कि "हम लोगों को सिन्ध पर अधिकार स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं है, तो भी हम लोग उसको अपने अधिकार में अवश्य करेंगे और यह बहुत ही लाभदायक, उपयोगी और मानवीय ढंग की शैतानी होगी।"† इस कांड के विषय में एलफिन्सटन ने लार्ड एलिनबरा की तुलना उस क्रोधी व्यक्ति से की है जो गलियों में मार खाता फिरता है किन्तु अपनी मार का बदला अपने घर में अपनी पत्नी को मार कर लेता है।‡

सिन्ध पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना कर ली गई। नेपियर को वहाँ का गवर्नर पद प्रदान किया गया। उसने शासन को सुव्यवस्थित किया तथा उसने प्रशंसनीय उत्साह तथा योग्यता का पूर्ण परिचय दिया।

सिक्खों का उत्कर्ष और पतन
(Rise and fall of the Sikh power)

गत पृष्ठों में सिक्खों का कई स्थानों पर वर्णन किया गया है। पाठक भली प्रकार परिचित हैं कि सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना गुरु नानक ने की और मुगलों की नीति के कारण यह शान्तिमय सम्प्रदाय किस प्रकार सैनिक सम्प्रदाय बन गया और उसने अपना उत्थान एक सैनिक जाति के रूप में करना आरम्भ कर दिया। इनका मुगलों से औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों से संघर्ष चलता रहा, किन्तु इन संघर्षों के कारण सिक्खों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

सिक्खों का उत्कर्ष (Rise of the Sikhs)—पानीपत के तृतीय युद्ध के पूर्व पंजाब पर मरहठों का अधिकार था। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से मरहठों की शक्ति तथा मुगलों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा और पंजाब में अव्यवस्था की स्थापना हो गई। सिक्ख जाति ने इस अव्यवस्था का पूर्ण लाभ उठाकर सम्पूर्ण पंजाब को अपने अधिकार में किया। उन्होंने अफगान सेनापतियों को पंजाब का परित्याग करने पर बाध्य किया। समस्त पंजाब पर सिक्खों की १२ मिसलों का अधिकार था। यह एक संघ-शासन के समान था किन्तु केन्द्रीय शक्ति बहुत दुर्बल थी जिसके कारण मिस्लें स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगीं। जब सामान्य शत्रु अफगानों की शक्ति का पूर्णतया अन्त हो गया तो इनमें पारस्परिक स्पर्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता का युग आरम्भ हो गया जिसके कारण इनमें संघर्ष होना आरम्भ हो गया। इस समय सिक्खों में एक ऐसे व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी जो इन मिस्लों को अपने नियन्त्रण में कर केन्द्रीय शासन को सशक्त बनाकर राज्य-कार्य करे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम काल में रणजीत सिंह नामक साहसी, योग्य तथा महत्वाकांक्षी पुरुष ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया

* "If the Afghan episode is the most disastrous in our Indian annals, that of Sindh seize morally even less excusable." —Innes.

† "We have no right to seize Sindh, yet we shall do so, and a very advantageous, useful human piece of rascality it will be." —Napier.

‡ "Coming after Afghanistan, it put one in mind of a bully who had been kicked in the streets and went home to beat his wife in revenge, it was the tale of Afghan storm." —Elphinstone.

जिसने समस्त छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता का अन्त कर पंजाब में सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की।

रणजीतसिंह का प्रारम्भिक जीवन (Early career of Ranjit Singh)—रणजीतसिंह का जन्म १७८० ई० के नवम्बर मास में हुआ था। उसके पिता का नाम महानसिंह था जो सुकरचकिया मिस्ल का नेता था। उसकी अवस्था केवल १२ वर्ष की थी जब उसके पिता का देहान्त १७९२ ई० में गुजरानवाला में हो गया। वह अपनी मिस्ल का नेता बन गया। उसने आस-पास के प्रदेशों को अपने अधिकार में करना आरम्भ किया। सन् १७९८ ई० में अफगानिस्तान के अमीर जमांशाह ने पंजाब पर आक्रमण किया। उसने उसकी सहायता की जिसके उपलक्ष में जमांशाह ने रणजीतसिंह को लाहौर की सूबेदारी के पद पर नियुक्त किया। इससे उसके मान और प्रतिष्ठा को बड़ा योग प्राप्त हुआ। शीघ्र ही उसने अपना कार्यक्रम निश्चित किया। सन् १८०२ ई० में उसने अमृतसर पर अधिकार किया और १८०९ ई० तक सतलज नदी के तट की कई मिस्लों पर अधिकार किया। तब उसने महाराजाधिराज की पदवी से अपने को सुशोभित किया।

रणजीतसिंह और होल्कर (Ranjit Singh and Holkar)—पाठकों को विदित होगा कि १८०५ ई० में लार्ड लेक ने होल्कर को परास्त किया। वह पंजाब की ओर भागा और उसने रणजीतसिंह से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, किन्तु रणजीतसिंह ने उसको किसी प्रकार की सहायता देना स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह जानता था कि होल्कर को सहायता देने का अर्थ होगा अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेना जिसके लिये वह तैयार नहीं था। होल्कर को उसके इस व्यवहार से बड़ी निराशा हुई। ऐसा कहा जाता है कि उसने ताना देते हुए रणजीतसिंह से कहा था कि 'अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी के प्रति आपका यही धर्म-पालन है, तो स्मरण रखिये कि मेरे कुल में तो राज्य रह जायेगा किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र ही अन्त होगा।' होल्कर की बात कुछ ही समय बाद सत्य हो गई।

अमृतसर की सन्धि (Treaty of Amritsar)—सतलज नदी के पश्चिम के प्रदेशों को अपने अधिकार में करने के उपरान्त रणजीतसिंह ने उस नदी के पूर्वी प्रदेशों को अपने अधिकार में करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। वह अभी तक उसके पार की सिक्ख मिस्लों पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका था। उसने उसको अपने अधिकार में लाने के लिये तीन बार आक्रमण किया। जब वह अपने उद्देश्य में सफल होने वाला ही था कि अंग्रेजों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उसके रोकने का निश्चय किया किन्तु वे उससे युद्ध करना नहीं चाहते थे। अतः लार्ड मिन्टो (Lord Minto) ने दिल्ली से मेटकाफ (Metcalf) को लाहौर भेजा कि वह उसके साथ एक सन्धि की वार्ता चलाये। उसने उसको आदेश दिया था कि वह रणजीतसिंह से आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक सन्धि करने का प्रयत्न करे। मेटकाफ शीघ्र ही लाहौर पहुँचा और उसने रणजीतसिंह के सामने अपनी शर्तें रखीं। रणजीतसिंह उसकी शर्तों के मानने पर इस शर्त पर तैयार हुआ कि कम्पनी उसको सिक्ख-राज्य

का पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार करे। शायद अंग्रेज उसकी शर्तें मान जाते। यदि योरोपीय स्थिति में परिवर्तन नहीं हो जाता। अंग्रेजों को इस समय फ्रांसीसी आक्रमण का भय कम हो गया था क्योंकि नेपोलियन स्पेन के युद्ध में बुरी तरह फंस गया था और अंग्रेजों ने तुर्की के सुल्तान से अच्छे सम्बन्धों की स्थापना कर ली थी। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह को सन्धि करने पर बाध्य किया। सतलज के तट पर अंग्रेजों ने अपनी सेना को भी एकत्रित कर लिया था। रणजीतसिंह के हृदय में यह भय उत्पन्न हो गया कि यदि वह अंग्रेजों की शर्तों के अनुसार सन्धि करने को तैयार नहीं होगा तो अंग्रेज सतलज नदी के पार के सिक्खों का समर्थन कर उसके राज्य पर आक्रमण कर देंगे। अतः उसने २५ अप्रैल १८०९ ई० में अंग्रेजों से अमृतसर की सन्धि की।

सन्धि की शर्तें—इस सन्धि के अनुसार—(i) रणजीतसिंह के राज्य की सीमा सतलज नदी निश्चित कर दी गई और सतलज तक के प्रदेशों पर अंग्रेजों ने अपना अधिकार स्थापित किया तथा वहां के सिक्ख राज्यों से मित्रता की। (ii) अंग्रेजों ने लुधियाना नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना रखनी प्रारम्भ कर दी। इस सेना के रखने का उद्देश्य यह था कि रणजीतसिंह किसी भी समय इस ओर आक्रमण न कर सके। रणजीतसिंह ने अपने जीवन-काल में इस सन्धि को भङ्ग करने का कभी भी विचार नहीं किया। वह जीवन-पर्यन्त अंग्रेजों का मित्र बना रहा।

रणजीतसिंह का साम्राज्य-विस्तार (Ranjit's Singh extension of Empire)—रणजीतसिंह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। जब अमृतसर की सन्धि के परिणामस्वरूप वह अपने साम्राज्य का विस्तार सतलज के पार करने में असमर्थ हो गया तो उसने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण की ओर करने का निश्चय किया। उसने अपनी सेना का दृढ़ संगठन किया और शीघ्र ही विजय-कार्य में संलग्न हो गया। सन् १८१८ ई० में उसने मुल्तान, १८२१ ई० में काश्मीर तथा १८२४ ई० में उसने सिन्धु नदी को पार कर पेशावर पर अधिकार किया। इन सब प्रदेशों को उसने अपने राज्य में सम्मिलित किया। १८३७ ई० में काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद ने जामरूद और पेशावर पर अधिकार करने का निश्चय किया, किन्तु अफगानों को पराजित होना पड़ा, यद्यपि रणजीतसिंह का प्रसिद्ध सेनापति हरीसिंह नलवा युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। उनकी इन विजयों के परिणामस्वरूप उसके

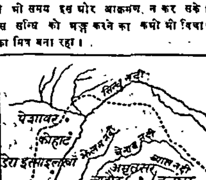

रणजीत सिंह के राज्य की सीमा

साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया। पठान और अफगान उससे भयभीत रहने लगे। रणजीतसिंह सिन्ध पर भी अधिकार करने की योजना बना रहा था, किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति के कारण वह सिन्ध-विजय के कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सका। सन् १८३९ ई० में इस महान् व्यक्ति का देहान्त हो गया।

लार्ड विलियम बैंटिक ने रणजीतसिंह से भेंट की और मित्रता की सन्धि को दोहराया। लार्ड आकलैंड ने अफगान-युद्ध के पूर्व उससे एक सन्धि की। उसने अंग्रेजों की इस युद्ध में सहायता की।

शासन प्रबन्ध
(Administration)

रणजीतसिंह न केवल एक योग्य सेनापति तथा विजेता ही था वरन् वह एक अच्छा शासन-प्रबन्धक भी था। उसने शासन-प्रबन्ध को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अपने समस्त राज्य को चार भागों में—लाहौर, मुल्तान, काश्मीर और पेशावर में विभक्त किया। ये भाग प्रान्त कहलाते थे। प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तपति जो "नाजिम" कहलाता था, नियुक्त था। इसकी नियुक्ति स्वयं रणजीतसिंह करता था। ये सैनिक तथा नागरिक दोनों के शासन-प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी थे। वह प्रजा के दुःख-सुख का पूर्ण ध्यान रखता था।

शासन प्रबन्ध
(१) भूमि-व्यवस्था।
(२) सैनिक-व्यवस्था।
(३) न्याय-व्यवस्था।

(१) भूमि-व्यवस्था (Land System)—समस्त भूमि पर जमींदारों या सरदारों का अधिकार था। वे किसानों से लगान वसूल करते थे और राजकोष में निश्चित मालगुजारी जमा करते थे। किसानों से लगान के रूप में उपज का $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ भाग तक लिया जाता था। राज्य की आय के अन्य साधन भी थे। करदार लगान वसूल करते थे। उनकी सहायता के लिये मुकद्दम, पटवारी तथा कानूनगो होते थे। इनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था तथा वसूली का पांचवां अंश भी दिया जाता था। इसी कारण ये बड़े प्रयत्न से समस्त लगान वसूल करते थे।

(२) सैनिक-व्यवस्था (Military System)—रणजीतसिंह का शासन सैनिक था। उसने सेना के सङ्गठन तथा उसको सुसज्जित बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने सैनिक संगठन तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार फ्रांसीसी सेनापतियों को सौंप दिया था। उसकी सेना उच्च-कोटि की थी। उसके पास तोपखाना, घुड़सवार तथा पैदल सैनिक थे। सैनिकों को राजकोष से वेतन दिया जाता था। उसकी सेना में ४०,००० सैनिक तथा इतनी ही संख्या में घुड़सवार थे। अंग्रेजों ने भी उसके सैनिक सङ्गठन की बड़ी प्रशंसा की।

(३) न्याय-व्यवस्था (Judicial System)—न्याय का सबसे बड़ा पदाधिकारी स्वयं सम्राट था। वह मुकदमों की अपील सुना करता था। दण्ड-विधान कठोर था। लोगों को प्रायः अङ्ग-भङ्ग का दण्ड दिया जाता था। शहरों में करदार न्यायाधीश

का कार्य करता था। ग्रामों में ग्राम पंचायतें रीति-रिवाज और परम्परा के आधार पर निर्णय किया करती थीं।

रणजीतसिंह का चरित्र और मूल्यांकन
(Character and estimate of Ranjit Singh)

रणजीतसिंह में पर्याप्त गुण विद्यमान थे जिनके आधार पर वह विशाल सिक्ख साम्राज्य की स्थापना करने तथा उसको शक्तिशाली बनाने में सफल हुआ। यद्यपि वह सुन्दर न था, उसकी एक आँख चेचक में जाती रही थी तथा वह छोटे कद का था, किन्तु उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रतिभाशाली तथा आकर्षक था। उसके चेहरे से तेज टपकता था जिसका प्रभाव उन व्यक्तियों पर शीघ्र ही पड़ जाता था जो उसके सम्पर्क में आते थे। वह उच्च-कोटि का राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ था। उसमें असम्य उत्साह तथा साहस था। वह राजनीति की चालों से पूर्णतया परिचित था। उसका व्यवहार बड़ा सभ्य तथा सौम्य होता था। उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। वह उच्च-कोटि का संगठनकर्त्ता तथा सेनापति था। युद्ध के अवसर पर उसकी आज्ञायें बड़ी स्पष्ट होती थीं। उसका सैनिकों के साथ सदा सद्व्यवहार रहता था। इसी कारण वह सदा इनका प्रिय बना रहा। सैनिक उससे प्रेम करते थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिये सदा तत्पर रहते थे। वे उसको बड़ी श्रद्धा तथा स्नेह की दृष्टि से देखते थे। उसने सैनिक संगठन को उन्नत करने के लिये फ्रांसीसियों की सेवायें प्राप्त की। इस सेना के आधार पर ही वह साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ तथा उसने देश में सुख और शान्ति की स्थापना की। वह अपने हितों की प्रधानता में विश्वास रखता था। उसकी वृद्धि के लिये साधन तथा उपायों की ओर वह विशेष ध्यान नहीं देता था। यद्यपि वह सिक्ख धर्म का अनुयायी था, किन्तु उसकी धार्मिक नीति उदार थी। अन्य धर्मावलम्बियों के साथ अच्छा व्यवहार था। वह काल की गति को भली प्रकार समझता था और परिस्थितियों का लाभ उठाना जानता था। उसने अपनी शक्ति को अंग्रेजों से कम समझ कभी भी युद्ध करने का विचार नहीं किया।

वह समस्त कार्य स्वयं देखता था। भारत के इतिहास में अपने विशिष्ट गुणों के कारण उसका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वह "पंजाब केसरी" के नाम से विख्यात है। "उसने पंजाब को उस अवस्था में पाया जब सिक्खों की मिसलें आपस में युद्ध में संलग्न थीं, प्रदेश सरदारों की इच्छाओं के शिकार थे, अफगान तथा मराठे उस पर दबाव डाल रहे थे। ऐसी परिस्थिति में अपनी अद्वितीय प्रतिभा, असाधारण योग्यता, वीरता तथा बुद्धिमत्ता के कारण उसने पंजाब से अफगानों के पैर उखाड़ दिये तथा मिसलों को जीतकर एक सुदृढ़ राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की।

रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त पंजाब (The Punjab after the death of Ranjit Singh)—उत पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि राजा रणजीतसिंह की मृत्यु १८३९ ई० में हुई। पाठकों को याद होगा कि इस समय अंग्रेजों ने दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया था। जिस समय तक रणजीतसिंह जीवित रहा उस समय तक वह समस्त सिक्ख जाति को तथा महाराजा की

सरदारों को अपने वश में रखने में सफल हुआ, किन्तु उसकी मृत्यु होते ही सि सरदारों में अपने स्वार्थों की प्राप्ति के लिये संघर्ष होना प्रारम्भ हो गया। उसके उत्त धिकारियों में से कोई भी इतना योग्य नहीं था जितना कि वह था, कि वह उन सब अपने नियन्त्रण में रख सकता। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि शक्ति प्राप्ति के लि स्पर्धा प्रारम्भ हो गई और शासन शिथिल होने लगा।

रणजीतसिंह के तीन पुत्र थे—खड़गसिंह, शेरसिंह और नौनिहाल सिंह। रणजी सिंह की मृत्यु के उपरान्त खड़गसिंह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने अप सरदार ध्यानसिंह को अपना मन्त्री नियुक्त किया जिसने खड़गसिंह का मस्तिष्क दुर्ब होने के कारण शासन की समस्त सत्ता पर अपना अधिकार किया। रणजीतसिंह के अन्य दो पुत्रों ने खड़गसिंह तथा ध्यानसिंह के विरुद्ध एक संधि की और इन दोनों ने मिलकर खड़गसिंह के एक समर्थक व्यक्ति चेतसिंह का वध कर डाला। इसी समय सन् १८४० ई० में खड़गसिंह मर गया तथा कुछ ही समय उपरान्त नौनिहालसिंह का भी देहान्त हो गया जिसने खड़गसिंह के उपरान्त शासन-सत्ता को अपने अधिकार में कर लिया था। अब फिर सिक्खों में उत्तराधिकारी का प्रश्न उत्पन्न हो गया। बहुत वाद-विवाद व षड्यन्त्र आदि द्वारा यह निश्चय हुआ कि नौनिहाल सिंह के उत्पन्न होने वाले पुत्र को राज्यसिंहासन पर आसीन किया जाये, माईचन्द को उसका संरक्षक नियुक्त किया जाये, ध्यानसिंह को वजीर तथा शेरसिंह को उसका प्रतिनिधि बनाया जाये। रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह ने इस योजना का विरोध किया। उसने सेना के एक भाग को अपनी ओर मिलाकर जनवरी १८४१ ई० में अपने आपको महाराणा घोषित किया। ध्यानसिंह तथा उसके पक्षपातियों ने शेरसिंह का विरोध किया। शेरसिंह ने अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने अफगानिस्तान से लौटी हुई सेना को मार्ग प्रदान किया किन्तु इससे उसके विरोधी सन्तुष्ट नहीं हुये। उन्होंने पहले जून १८४२ ई० में उसके समर्थक माईचन्द तथा सितम्बर १८४० ई० में शेरसिंह का वध कर डाला। बाद में इस दल के व्यक्तियों ने ध्यानसिंह का वध कर डाला। ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह ने अजीतसिंह और लहनासिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र रच उनका वध करवा दिया। दलीपसिंह को राज्यसिंहासन पर आसीन किया तथा उसकी माता को उसका संरक्षक घोषित कर स्वयं पद-ग्रहण किया। धीरे-धीरे उसने अपनी शक्ति का विस्तार किया और विरोधी सरदारों का पतन किया। उसने 'खालसा' को अपनी ओर मिला लिया। उसने सिक्ख जाति में अंग्रेजों के विरुद्ध भावना उत्पन्न की। दिसम्बर १८४४ ई० में हीरासिंह का वध किया गया और शासन पर रानी जिन्दन और उसके भाई जवाहरसिंह तथा रानी के प्रेमी लालसिंह का अधिकार स्थापित हो गया। सन् १८४५ ई० में रानी के भाई जवाहरसिंह का वध कर दिया गया। अब लालसिंह वजीर बन गया।

इस समय खालसा की शक्ति का बड़ा विस्तार हुआ। प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी उसकी सहायता पर आश्रित था। उसमें उच्छृङ्खलता उत्पन्न हो गई थी और पूर्ण नियन्त्रण रखना सरल कार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त उनको यह भी भय था कि यदि उनको

किसी कार्य में व्यस्त नहीं किया जायेगा तो सम्भव है राज्य में अशांति उत्पन्न कर दे और राज्य में लूट-मार आरम्भ हो जाये। इसके अतिरिक्त अंग्रेज भी बड़ी उत्सुकता से पंजाब की राजनीति का अध्ययन कर रहे थे। कुछ का तो यह कथन है कि इन षड्यन्त्रों में अंग्रेजों का पर्याप्त हाथ था। वे सिक्ख राज्य को अधिक शक्तिशाली नहीं देखना चाहते थे। अतः जब सिक्ख नेताओं ने यह अनुभव किया कि सिक्ख सेना को पूर्ण नियन्त्रण में रखना असम्भव है तो उन्होंने सिक्ख सेना को सतलज नदी पार जाने का आदेश दिया। उनके ऐसा करने पर १३ दिसम्बर १८४५ में अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा की जिससे प्रथम सिक्ख युद्ध आरम्भ हो गया।

प्रथम सिक्ख युद्ध
(The First Sikh War)

युद्ध आरम्भ होने के पूर्व ही अंग्रेजी सेना लुधियाने तथा फिरोजपुर मे एकत्रित थी जब सिक्ख सेना ने सतलज नदी को पूर्व सन्धि के प्रतिकूल पार किया। सिक्ख सेना ने शीघ्र ही फिरोजपुर नगर मे प्रविष्ट किया, किन्तु वहाँ उसने अंग्रेजी सेना को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई। इसका कारण यह था कि सिक्खो के नेता अंग्रेजों से मिल गये थे। उनका उद्देश्य अंग्रेजों को परास्त करना नहीं था। वरन् उनकी इच्छा थी कि अंग्रेज विजयी हों, खालसा की शक्ति कम हो तथा उनको अंग्रेजों द्वारा विशेष सुविधायें प्राप्त हों। कितना दुःख का विषय है कि सिक्खों के सरदारों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपने देश तथा राष्ट्र का अहित करने का निश्चय किया। सिक्खों की विशाल सेना के लिए फिरोजपुर की अंग्रेजी सेना को परास्त करना कठिन कार्य नहीं था जिसकी संख्या केवल ७००० थी। अंग्रेजो और सिक्खों की प्रथम मुठभेड़ दिसम्बर सन् १८४५ ई० को मुदकी नामक स्थान पर हुई। सिक्ख सेना ने अदम्य उत्साह तथा साहस का परिचय दिया, किन्तु जब सिक्खों की विजय निश्चित थी उसी समय सिक्ख सरदार लालसिंह अंग्रेजों से जा मिला जिसका परिणाम यह हुआ कि सिक्ख सेना की पराजय हुई। सिक्ख सेना वापिस फिरोजपुर आई। अंग्रेजी सेना ने २१ दिसम्बर १८४५ ई० को उसका सामना किया। यद्यपि अंग्रेजी सेना को सहायता प्राप्त हो गई थी किन्तु सिक्खों पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। फिरोजपुर के युद्ध में सिक्खों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये, किन्तु सिक्ख सरदार तेजसिंह अंग्रेजों से जा मिला। अतः सिक्खों को नेता के बिना ही युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में किसी की भी विजय अथवा पराजय नहीं हुई। लगभग एक मास तक कोई युद्ध नहीं हुआ। दोनों ओर से तैयारियां होनी आरम्भ हुईं। तृतीय युद्ध जनवरी १८४६ ई० में अलीवाल नामक स्थान पर हुआ। इस युद्ध में सिक्खों का नेतृत्व रणछोर ने किया। यह युद्ध बड़ा भीषण हुआ, किन्तु सिक्ख परास्त हुए और उनके नेता रणछोर को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। इसके पश्चात् अंग्रेजों और सिक्खों में चौथी बार फरवरी १८४६ ई० में सुबराव नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में डोगरा सरदार गुलाबसिंह ने सिक्खों के साथ विश्वासघात कर अंग्रेजों से गठबन्धन किया। उसकी सहायता के बदले में अंग्रेजों ने उसको कश्मीर देने का वचन दिया। लालसिंह और तेजसिंह अंग्रेजों से पहले

ही मिल चुके थे। ऐसा कहा जाता है कि लालसिंह ने तो युद्धाव की सम्पूर्ण
से अंग्रेजों को युद्ध होने के पूर्व ही अवगत कर दिया था। सिक्ख सेना ने अदम्य उ
वीरता तथा साहस से अंग्रेजों का सामना किया, किन्तु उनकी वीरता अपने ही स
के विश्वासघात के कारण पूर्णतया व्यर्थ हो गई। इस युद्ध में सिक्खों को पूर्ण पराज
जिसने उनकी कमर तोड़ डाली। अन्त में ९ मार्च १८४६ ई० को अंग्रेजों और सि
में लाहौर की सन्धि हुई।

लाहौर की सन्धि (Treaty of Lahore)—लाहौर की सन्धि भारतीय इति
में बड़ी महत्वपूर्ण है। इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) सिक्खों को युद्ध-क्षति पूर्ति के लिये १ करोड़ रुपया देना होगा। इस स
राजकोष में केवल ५० हजार रुपये थे। अतः यह निश्चय हुआ कि शेष धन के बदले
सिक्ख काश्मीर तथा व्यास और सतलज नदी का दोआब का प्रदेश दें।

(२) लालसिंह को राजा दलीपसिंह का मन्त्री और रानी झिंदन को उस
संरक्षक बनाया गया।

(३) सिक्ख सेना की संख्या घटा दी गई।

(४) सिक्ख दरबार में किसी विदेशी को स्थान न दिया जायेगा।

(५) अंग्रेजी सेना को पंजाब में आने-जाने का अधिकार होगा।

(६) लाहौर में एक वर्ष तक अंग्रेजी सेना रहेगी।

(७) लाहौर दरबार में एक रेजीडेन्ट होगा।

सन्धि के होने के उपरान्त कम्पनी ने काश्मीर प्रदेश ७५ हजार रुपये में गुला
सिंह के हाथ बेच दिया। जब काश्मीर का राज्य अंग्रेजों ने गुलाबसिंह को दिया
लालसिंह तथा रानी झिंदन ने इसका विरोध किया। अंग्रेजों को अपनी एक सेन
काश्मीर भेजनी पड़ी और उसने सिक्ख सेना को परास्त कर गुलाबसिंह को काश्मी
पर अधिकार दिलवाया। अंग्रेजों ने लालसिंह और रानी झिंदन पर षड्यन्त्र क
आरोप लगा उनको उनके पदों से च्युत कर दिया। अंग्रेजों ने दिसम्बर सन् १८४६ ई
में सिक्खों के साथ एक अन्य सन्धि की जिसके अनुसार शासन-कार्य का भार, सरदारों की
एक कौंसिल के अधिकार में सौंपा गया और अंग्रेज रेजीडेन्ट उसका प्रधान बना
गया। लाहौर में एक अंग्रेजी सेना रहेगी जिसका सम्पूर्ण व्यय सिक्ख राज्य देगा। यह
व्यय २२ लाख रुपये निश्चित किया गया। इस सन्धि के द्वारा सिक्ख-राज्य पर अंग्रेजों
का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। अतः सिक्खों की स्वतन्त्रता का अन्त हुआ।

यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि युद्ध के उपरान्त कुछ अंग्रेज पदाधिकारियों
की यह धारणा थी कि अंग्रेजों को समस्त पंजाब पर अधिकार स्थापित कर लेना
चाहिये किन्तु भारत का गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंग उनसे सहमत नहीं हुआ क्योंकि
वह पंजाब को अपने अधिकार में करके व्यर्थ का झंझट नहीं लेना चाहता था। इसके
अतिरिक्त वह यह भी चाहता था कि अफगानिस्तान और ब्रिटिश-साम्राज्य के मध्य एक
हिन्दू राज्य रहे जिससे पश्चिमी सीमा सुरक्षित बनी रहे। वास्तव में इसका उद्देश्य
सिक्खों की शक्ति को कम करना था जिससे वे अंग्रेजी साम्राज्य को किसी प्रकार का

आघात पहुँचाने में सफल न हो सकें।

द्वितीय सिक्ख युद्ध (Second Sikh War)

लार्ड हार्डिंज द्वारा स्थापित पंजाब-व्यवस्था अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी, क्योंकि इस व्यवस्था के द्वारा अंग्रेजों ने सिक्खों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया था। यह सत्य है कि सिक्ख सेना युद्ध में परास्त हुई, किन्तु सैनिक भली भांति परिचित थे कि उनकी पराजय में उनके नेताओं का विश्वासघात सम्मिलित था। स्वतन्त्रता प्रेमी सिक्ख जिन्होंने पिछली लड़ाइयों में अपनी वीरता तथा बहादुरी का परिचय दिया था और जिनका पिछला इतिहास गौरवमय सफलताओं से भरा था, सीधी तरह अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों के कार्य से और सिक्ख जाति क्षुब्ध और क्रुद्ध थी ही कि इसी समय रानी झिंदन पर षड्यन्त्र का आरोप लगाकर उसको लाहौर से चुनार के दुर्ग में भेज दिया गया। सिक्ख जाति इस घटना को सहन नहीं कर सकी और उनमें विद्रोह की भावना प्रज्ज्वलित हुई। इस समय एक अन्य घटना ने जो मुल्तान में मूलराज के साथ हुई, अग्नि में घी का कार्य किया। इस समय वहाँ मूलराज लाहौर दरबार की ओर से सूबेदारी का काम कर रहा था। वह बड़ा योग्य व्यक्ति था। उससे लाहौर दरबार ने एक करोड़ रुपया मांगा जिस धन को देने में वह असमर्थ था। बाद में वह धन घटाकर १८ लाख रुपया कर दिया गया। युद्ध के उपरान्त मूलराज से यह धन मांगा गया, किन्तु उसने धन देने में टाल-मटोल की। लालसिंह सेना लेकर मुल्तान गया, किन्तु मूलराज ने लालसिंह को परास्त कर दिया। जब अंग्रेजों के हाथ में पंजाब की सत्ता आई तो मूलराज से यह धन पुनः मांगा गया। उस समय उससे २० लाख रुपया तथा राज्य का ⅓ भाग मांगा। इसका वार्षिक कर भी १२ लाख रुपये से १८ लाख रुपये कर दिया गया। अंग्रेजों ने उसके स्थान पर खानसिंह को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये दो अंग्रेज पदाधिकारी भी भेजे गये। अंग्रेजों को देखकर सिक्खों तथा अन्य व्यक्तियों में विद्रोह की भावना प्रज्ज्वलित हुई। २० अप्रैल सन् १८४८ ई० में अंग्रेज पदाधिकारियों का वध कर दिया गया।

इसी बीच लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। वह साम्राज्यवादी नीति से ओत-प्रोत था। उसके हृदय में समस्त पंजाब पर अधिकार करने की भावना जाग्रत हुई। एक अंग्रेज अफसर लेफ्टीनेंट एडवर्ड (Lieutident Edward) ने मुल्तान पर आक्रमण किया। अंग्रेजी सेना ने मूलराज को परास्त किया। इस कार्य के कारण समस्त पंजाब में विद्रोह होने लगे। अंग्रेजों ने सिक्खों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेजों ने शेरसिंह को अंग्रेजी सेना की सहायतार्थ मुल्तान भेजा, किन्तु वह वहां जाकर अपनी सेना सहित मूलराज से मिल गया। उन्होंने अफगानों को भी अपनी ओर मिलाकर उनको युद्ध में सहायता देने के लिये आमन्त्रित किया।

लार्ड डलहौजी ने १० अक्टूबर सन् १८४८ को इस घोषणा के साथ युद्ध की दुंदभी बजाई—

"सिक्ख राष्ट्र ने, बिना किसी पूर्व घटना के उदाहरण से प्रभावित हुई, लड़ाई

की मांग की है, महाशयों मैं शपथ लेकर कहता हूं कि उनसे इसका प्रतिशोध लिया जायगा।"*

इस प्रकार द्वितीय युद्ध का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने कूटनीति की शरण ली। उन्होंने मूलराज और शेरसिंह में मतभेद उत्पन्न करने के लिये जाली पत्र भेजा। इस पत्र ने अपना कार्य किया। शेरसिंह के हृदय में मूलराज के विरुद्ध सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने उसका साथ छोड़ दिया। इससे मूलराज की शक्ति बहुत कम हो गई। अंग्रेज सेनापति गफ अपनी सेना को लेकर चल पड़ा। १६ नवम्बर १८४८ ई० को उसने रावी नदी को पार किया। सिक्ख सेना ने रामनगर नामक स्थान पर उसका सामना किया, किन्तु कोई भी दल विजयी न हो सका। इसके उपरान्त अंग्रेजी सेना ने दिसम्बर के माह में मुल्तान को घेर लिया। मूलराज ने अंग्रेजी सेना का बड़े साहस तथा उत्साह से सामना किया, किन्तु उसके दुर्भाग्य से उसके तोपखाने में आग लग गई जिससे उसकी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। इस संकटमय परिस्थिति से बाध्य होकर मूलराज ने २२ जनवरी १८४९ ई० को अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण किया। सिक्ख सेना ने चिलियांवाला नामक स्थान पर अंग्रेजों को १३ जनवरी १८४९ ई० को बुरी तरह परास्त किया, किन्तु मुल्तान पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो जाने के कारण सिक्खों का उत्साह मन्द पड़ गया। सिक्खों और अंग्रेजों में २१ फरवरी १८४९ ई० में गुजरात नामक स्थान पर युद्ध हुआ। सिक्खों ने बड़ी वीरता का परिचय दिया, किन्तु अंग्रेजों की तोपों की मार को सिक्ख सेना सहन नहीं कर सकी और १३ मार्च को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार द्वितीय सिक्ख-युद्ध का अन्त हुआ। सिक्खों की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया और लार्ड डलहौजी ने समस्त पंजाब को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। दलीपसिंह को पांच लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर इंगलैंड भेज दिया गया। उसने वहां ईसाई धर्म स्वीकार किया। मूलराज को प्राण दण्ड दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पंजाब राज्य को अंग्रेजी राज्य में कूटनीति के आधार पर सम्मिलित किया।

अन्य देशी राज्यों का अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित किया जाना
(Annexation of other States in British Empire)

उक्त पंक्तियों में प्रकाश डाला जा चुका है कि अंग्रेजों ने किस प्रकार सन् १८२३ ई० से १८५६ ई० तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अपने राज्य की सीमा निश्चित की। इस काल में अंग्रेजों ने कुछ छोटे-छोटे राज्यों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया। अंग्रेजों ने दो उपायों की मुख्यतः इस कार्य में शरण ली। राजनीतिक आधार पर कम्पनी ने छोटे-छोटे राज्यों को अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रथम शिकार बनाया तथा दूसरा समस्त देश में बिना किसी प्रतिबन्ध के व्यापारिक प्रगति करना प्रारम्भ किया।

* "Unwarned by precedent, uninfluenced by example, the Sikh nation has called for war and no my word Sirs, they will have it with vengeance."
—Lord Dalhausi.

लार्ड विलियम बेंटिक (Lord William Bentinck)—लार्ड विलियम बेंटिक १८३३ ई० में भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया। लार्ड हेस्टिंग्स और उसके बीच के गवर्नर-जनरलों के शासन-काल में इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ। लार्ड विलियम बेंटिक का शासन-काल मुख्यतः आन्तरिक सुधारों के लिये प्रसिद्ध है, किन्तु उसके समय में कुछ छोटे राज्य अंग्रेजी राज्य में मिलाये गये। कम्पनी ने मैसूर राज्य को कुव्यवस्था का आरोप लगाकर अपने अधिकार में कर लिया था। यह व्यवस्था सन् १८८१ ई० तक रही। उसके समय में कचार, जयन्तिया और और कुर्ग के राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये गये।

लार्ड आकलैंड (Lord Auckland)—यद्यपि लार्ड आकलैंड के शासन की मुख्य घटना प्रथम अफगान युद्ध थी, किन्तु उसके समय में ही मद्रास का करौली राज्य अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया गया।

लार्ड एलिनबरा (Lord Ellinborough)—उसके शासन-काल में ग्वालियर का कांड हुआ। द्वितीय मरहठा-युद्ध के उपरान्त ग्वालियर पर सिंधिया का आधिपत्य था। दौलतराव सिंधिया की मृत्यु के उपरान्त जनकोजी सिंधिया ग्वालियर का राजा बना। १८४३ ई० में उसकी मृत्यु होने पर जयाजीराव को राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया। उसके संरक्षक होने के प्रश्न पर मरहठों में दो दल हो गये। इससे ग्वालियर की सेना ने शासन की समस्त सत्ता अपने अधिकार में कर ली। लार्ड एलिनबरा ने ग्वालियर में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से अंग्रेजी सेना ग्वालियर भेजी, अंग्रेजों ने ग्वालियर की सेना को दो स्थानों पर परास्त किया। ग्वालियर को अंग्रेजों ने अपने संरक्षण में ले लिया। अंग्रेजों ने शासन का भार एक संरक्षक-समिति के हाथों में सौंप दिया। यह समिति अंग्रेजी रेजीडेंट के आधीन थी। ग्वालियर राज्य की सेना कम कर दी गई और एक अंग्रेजी सेना वहां रहने लगी। इस प्रकार ग्वालियर पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया, किन्तु वह अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया गया।

लार्ड डलहौजी (Lord Dalhausi)—लार्ड एलिनबरा के उपरान्त लार्ड हार्डिंज भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया। उसके शासन-काल की मुख्य घटना प्रथम सिक्ख युद्ध थी। यद्यपि अंग्रेज इस युद्ध में पूर्णतया विजयी हुये किन्तु उसने सिक्ख राज्य को अंग्रेजी साम्राज्य में नहीं मिलाया और यह कार्य वह अपने उत्तराधिकारी लार्ड डलहौजी के लिये छोड़ गया। सन् १८४८ ई० की जनवरी में वह भारत का गवर्नर-जनरल होकर आया। वह आठ वर्ष तक भारत का गवर्नर-जनरल रहा। उसका शासन-काल भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। उसके शासन-काल में द्वितीय बर्मा-युद्ध (१८५२) तथा द्वितीय सिक्ख युद्ध (१८४८–४९), बड़े महत्वपूर्ण हैं जिनके कारण उसने बर्मा तथा पंजाब पर अधिकार किया। इनसे सम्बन्धित अंग्रेजों की नीति तथा कार्य का गत पृष्ठों में वर्णन किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त उसने कुछ अन्य देशी राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया।

लार्ड डलहौजी का राज्य हड़पने का सिद्धान्त (Lord Dalhousi's Doctrine of Lapse)—लार्ड डलहौजी पूर्णतया साम्राज्यवादी था। वह छोटे-छोटे देशी राज्यों का अस्तित्व सदा के लिये मिटाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार का पूर्ण पक्षपाती था। उसने एक नई नीति का अनुकरण कर देशी राज्यों को अंग्रेजी राज्य में विलीन किया। उसकी यह नीति 'लैप्स के सिद्धान्त' (Doctrine of Lapse) के नाम से विख्यात है। इस नीति का स्पष्ट रूप में यह अर्थ था कि कोई भी देशी नरेश ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी को गोद नहीं ले सकता। पुनः अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना गोद लिया हुआ पुत्र देशी नरेश के राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था। यह कोई नई नीति नहीं थी जिसका प्रारम्भ लार्ड डलहौजी ने किया। १८३४ ई० में ही डाइरेक्टर्स की समिति (Court of Directors) ने निश्चय कर दिया था कि इस प्रकार की अनुमति नियम नहीं, वरन् अपवाद होगी और वह आरी दया और हर्ष को प्रकट करने के अतिरिक्त कभी भी नहीं दी जायगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्पनी के संचालक गोद लेने के अधिकार को कम से कम देना चाहते थे और उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न होने पर देशी राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जाए; किन्तु लार्ड डलहौजी के गवर्नर-जनरल होने के पूर्व तक इस नीति को अपने साम्राज्य के विस्तार का दृढ़ अस्त्र न बनाकर कुछ छोटे देशी राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। अंग्रेजों की यह नीति हिन्दू-धर्म विरोधी थी। हिन्दू-धर्म के शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक हिन्दू को गोद लेने का अधिकार प्राप्त था यदि उसके औरस पुत्र न हो। इसलिये यह कहना उचित होगा कि लार्ड डलहौजी की इस नीति से हिन्दू समाज क्षुब्ध हो गया। हिन्दुओं की धार्मिक तथा सामाजिक भावना पर कुठाराघात किया गया।

भारतीय देशी राज्यों का विभाजन (Classification of Indian States)—लार्ड डलहौजी ने अपनी इस नीति को स्पष्ट करने के हेतु समस्त भारतीय देशी राज्यों को तीन भागों में विभक्त किया—(१) स्वतन्त्र राज्य, (२) कम्पनी के आश्रित राज्य तथा (३) कम्पनी के आधीन राज्य। प्रथम दो श्रेणियों के राज्यों के राजाओं को उसने गोद लेने का अधिकार प्रदान किया, किन्तु तृतीय श्रेणी के राजाओं को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया। डलहौजी का इस प्रकार देशी राज्यों का विभाजन उचित नहीं था, क्योंकि कोई भी देशी राज्य पूर्ण स्वतन्त्र नहीं था और द्वितीय तथा तृतीय श्रेणियों का विभाजन पूर्णतया अस्पष्ट था, क्योंकि आश्रित तथा आधीन राज्यों का अन्तर कुछ भी नहीं था। लार्ड डलहौजी ने अपनी इस नीति के अन्तर्गत निम्न राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया—

(१) **सतारा (Satara)**—सर्वप्रथम डलहौजी की इस नीति का शिकार सतारा राज्य हुआ। सन् १८४८ ई० में सतारा का राजा निःसन्तान मर गया। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने एक बालक को गोद लिया, किन्तु डलहौजी ने उसके उत्तराधिकार को यह कहकर अस्वीकार किया कि राजा ने उसकी स्वीकृति अंग्रेजों से प्राप्त नहीं की थी।

उसने सतारा को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया।

(२) नागपुर (Nagpur)—नागपुर का राजा राघोजी था। उसके कोई पुत्र नहीं था। उसने पुत्र गोद लेने के लिये अंग्रेजों की स्वीकृति मांगी। उसको अंग्रेजों का कोई उत्तर भी नहीं मिला था कि उससे पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही उसने अपनी पत्नी को यशवन्तराव को गोद लेने की सम्मति दी थी। अतः उसकी पत्नी ने अपने मृतक पति के आदेशानुसार यशवन्तराव को गोद लिया और उसके सम्बन्ध में अंग्रेजों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये उसने अंग्रेजों से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ किया। लार्ड डलहौजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और शीघ्र ही नागपुर को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

> **डलहौजी की अपहरण नीति के शिकार**
>
> (१) सतारा।
> (२) नागपुर।
> (३) झाँसी।
> (४) बरार तथा सिक्कम।
> (५) अवध।
> (६) अन्य राज्य।
> (७) उपाधियों तथा पेंशनों का अन्त।

(३) झाँसी (Jhansi)—सन् १८५३ ई० में झांसी का राजा निःसन्तान मर गया। वहां की रानी ने एक पुत्र गोद लिया। अंग्रेजों ने उसको स्वीकार नहीं किया और उन्होंने झाँसी को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(४) बरार तथा सिक्कम (Beral and Sikkam)—लार्ड डलहौजी ने हैदराबाद से बरार प्रदेश छीन लिया। हैदराबाद के निजाम पर कम्पनी का ऋण शेष था। जब निजाम ने वह धन नहीं दिया तो कम्पनी ने बरार प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया। डलहौजी ने सिक्कम राज्य को सन् १८५० ई० में अपने अधिकार में किया, क्योंकि उसने दो अंग्रेजी कारिन्दों को बन्दी कर लिया था।

(५) अवध का अङ्गरेजी राज्य में मिलाया जाना (Annexation of Oudh)—लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति का अन्तिम शिकार अवध बना। अब अंग्रेजों के अधिकार में पंजाब का प्रदेश आ गया तो अवध का महत्व समाप्त हो गया। लार्ड डलहौजी ने उसको अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया। वह ऐसा करने के लिये बहाना ढूंढने लगा। इस समय फिर भेड़ और मेमने की कहावत चरितार्थ हुई। सन् १८४९ ई० में कर्नल स्लीमेन अवध में रेजीडेंट पद पर नियुक्त हुआ। वह लार्ड डलहौजी की नीति का पूर्णतया समर्थक था। उसने अवध के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार की जिससे स्पष्ट हुआ कि नवाब का शासन बहुत खराब है। सन् १८५४ ई० में कर्नल आउट्रम रेजीडेंट नियुक्त हुआ। उसने भी कर्नल स्लीमैन के विचारों का समर्थन किया। लार्ड डलहौजी ने रेजीडेंट को आदेश दिया कि नवाब से नई सन्धि कर अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जाय। नवाब वाजिदअली शाह ने इस सन्धि को अस्वीकार किया। इसकी शर्त यह थी कि नवाब को १२ लाख रुपये की पेंशन देकर अवध को अङ्गरेजी साम्राज्य में विलीन कर लिया

जाय। जब नवाब ने सन्धि करने से साफ इन्कार कर दिया तो डलहौजी ने सेना की सहायता ली। उसने एक अंग्रेजी सेना अवध की राजधानी लखनऊ भेजी और इस प्रकार सैनिक शक्ति के द्वारा अवध पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस प्रकार डलहौजी ने अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया।

डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में "वास्तव में लार्ड डलहौजी का यह कार्य अत्यन्त गर्हित था। अवध राज्य को हस्तगत करने के लिये उसने जिस अनीति और अत्याचार का प्रदर्शन किया उसकी समता समस्त इतिहास में बहुत कम मिलेगी। अवध का नवाब पूर्ण रूप से अंग्रेजों के प्रति स्वामीभक्त था। उसने सदैव उनकी धन-जन से सहायता की थी। इतना होते हुए भी असत्य एवं अर्ध-सत्य आरोपों को लगाकर जब लार्ड डलहौजी ने पूर्व निर्मित सन्धियों को भंग कर उसके राज्य को अबाध ब्रिटिश राज्य में मिला लिया तो कोई भी निष्पक्ष उसके इस उग्र एवं गर्हित कार्य का समर्थन नहीं कर सका। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवाब वाजिदअली शाह का शासन प्रशंसनीय नहीं था, तथापि यदि जन-मत लिया जाता तो अवध की प्रजा अंग्रेजों की अपेक्षा अपने नवाब की ही छत्र-छाया में रहना अधिक पसन्द करती। परन्तु साम्राज्यवाद का प्रेत जनमत की अपेक्षा नहीं करता। वह अपने कार्य के औचित्य को तलवार की धार से प्रमाणित करता है।

(६) अन्य राज्य (Other states)—उड़ीसा का संभलपुर, बाघट, उदयपुर और करोली को भी उसने अपने राज्य में सम्मिलित किया। बाघट और उदयपुर उस के उत्तराधिकारी लार्ड केनिंग ने तथा करोली राज्य कम्पनी की संचालक समिति ने छोड़ दिये।

(७) उपाधियों और पेंशनों का अन्त (Suspension of titles and Pensions)—इन राज्यों के अतिरिक्त लार्ड डलहौजी ने कुछ व्यक्तियों की उपाधियों तथा पेंशनों का भी अन्त कर डाला। पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु १८५१ ई० में हुई। उसका नाना साहब दत्तक पुत्र था। उसकी वह पेंशन बन्द कर दी गई जो अंग्रेज बाजीराव को देते थे। कर्नाटक के शासक का देहान्त होने पर उसके उत्तराधिकारी को उपाधियों से वंचित कर दिया गया। कर्नाटक का शासक केवल नाम-मात्र का शासक था। तंजौर के राजा के निःसन्तान मर जाने पर लार्ड डलहौजी ने राजा के पद का अन्त कर दिया।

अबके वर्ष ही जब सन् १८५७ ई० की क्रान्ति का दौर चला तो जनता ने अपने ऊपर पड़ किये हुये अन्याय तथा अत्याचार का बदला लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) भारतीय राज्यों के प्रति डलहौजी की नीति की सविस्तार व्याख्या कीजिए और उसके परिणाम बताइये। ([illegible])

(२) भारत और अफगानिस्तान के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये। ([illegible])

मध्य प्रदेश—

(१) देशी राज्यों के सम्बन्ध में लार्ड डलहौजी की नीति के महत्वपूर्ण अंगों को संक्षेप में समझाइये ? (१९५१)

(२) सिन्ध की विजय पर प्रभाव डालने वाली प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिये ? क्या वह एक राजनीतिक आवश्यकता थी ? (१९५३)

(३) महाराजा रणजीतसिंह के चरित्र और उन्नति की आलोचना कीजिये ? (१९५३)

(४) 'लार्ड डलहौजी सामरिक व्यवस्था में महान् था किन्तु शान्ति-व्यवस्था वह महानतर था।' विवेचना करो। (१९५४)

(५) लार्ड आकलैंड की अफगान नीति की आलोचना कीजिये। (१९५५)

(६) लार्ड डलहौजी की भारतीय रियासतों के साथ जो नीति रही उसकी संक्षेप में व्याख्या करो। (१९५५)

(७) 'सिन्ध की विजय एक अन्याय का कार्य था।' व्याख्या कीजिये। (१९५६)

(८) 'कुछ विजेता थे, कुछ निर्माता थे, कुछ सुधारक थे परन्तु डलहौजी सब था। आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? (१९५७)

राजस्थान—

(१) अंग्रेजों का अवध के नवाबों से १७६५ से १७९६ ई० तक के सम्बन्ध का वर्णन करो। (१९५१)

(२) राजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त से पंजाब के अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने तक की दशा का वर्णन करो। (१९५३)

(३) पिंडारियों के विषय में तुम क्या जानते हो ? उनका भारतीय इतिहास में क्या भाग था ? (१९५३)

(४) 'राज्य हड़पने के सिद्धान्त (Doctrine of Lapse) से तुम क्या समझते हो ? वह गदर के लिये कहाँ तक उत्तरदायी है ? (१९५४)

(५) लार्ड हार्डिंज के शासन-काल का वर्णन करो। (१९५४)

(६) रणजीतसिंह के सैनिक तथा शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो। (१९५५)

(७) लार्ड वेलेजली और डलहौजी की नीति की आलोचनात्मक व्याख्या करो। (१९५७)

(८) रणजीतसिंह के शासन में सिक्खों के उत्कर्ष का वर्णन करो। उनके पतन के कारणों का वर्णन करो। (१९५७)

२

१८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम

(The First War of Independence–1857)

भारतीय इतिहास में सन् १८५७ का वर्ष अपना विशेष स्थान रखता है क्योंकि इस वर्ष भारत के निवासियों ने अंग्रेजी शासन का अन्त करने के लिये घोर प्रयत्न किया। इस क्रान्ति की तुलना सन् १७८९ ई० से आरम्भ होने वाली फ्रांस की क्रान्ति तथा सन् १७७६ ई० की अमेरिकन क्रान्ति से की जाती है क्योंकि इन दोनों क्रान्तियों का उद्देश्य अपने देश से निरंकुश शासन की समाप्ति करना था यद्यपि भारतीयों का यह प्रयास असफल रहा और विदेशी अपने प्रयत्न में सफल हुए, किन्तु इस असफलता के कारण इस क्रान्ति का महत्व कम नहीं हो जाता है। वास्तव में भारतीयों का यह प्रथम प्रयास था जब सम्मिलित रूप से भारतीयों ने विदेशी सत्ता का अपनी पवित्र भूमि से अन्त करने का सशस्त्र प्रयत्न किया। इस क्रान्ति के द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति हुई।

क्रान्ति का स्वरूप
(Nature of the Revolution)

सन् १८५७ ई० की भारतीय क्रान्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों तथा इतिहासकारों के मत एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। एक मत के विद्वानों की यह धारणा है कि यह क्रान्ति न होकर केवल सैनिक विद्रोह (Mutiny) था। प्रधानतः अंग्रेज विद्वानों, इतिहासकारों तथा पदाधिकारियों की यही धारणा है, किन्तु कुछ भारतीय आधुनिक इतिहासकारों ने, जिनमें पंडित नेहरू, वीर सावरकर, अशोक मेहता, श्री वृन्दावन लाल वर्मा अधिक विख्यात हैं, अपने सबल तर्कों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि सन् १८५७ ई० की क्रान्ति राष्ट्रीय क्रान्ति थी और स्वतन्त्रता संग्राम था। अंग्रेज विद्वानों के विचारों में भी कुछ मत-भेद अवश्य पाया जाता है। सर जोन लारेंस (Sir John Lawrence) के अनुसार "यह केवल एक सैनिक विद्रोह था जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका कोई सम्बन्ध किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से नहीं था, यद्यपि बाद में कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये इससे लाभ उठाया।"* सर जान सीले

* "Sir John Lawrence held that the mutiny had its origin in the army and that its proximate cause was the cartridge affair and nothing else. It was not attributable to any antecedent conspiracy whatever, although it was afterwards taken advantage of by disaffected persons to compass their own ends."

—Quoted from History of British India by Roberts, Page 360.

(Sir John Selley) के अनुसार सन् १८५७ ई० की क्रान्ति केवल "सैनिक विद्रोह पूर्णतया अराष्ट्रीय स्वार्थी विद्रोह था जिसका न कोई देशीय नेता था और न जिसको सम्पूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त था।"[1] इस विचारधारा के बिल्कुल विपरीत सर जेम्स आउट्रम (Sir James Outram) की धारणा है कि "यह अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमानों का षड्यन्त्र था जो हिन्दुओं की शिकायतों के बल पर लाभ उठाना चाहते थे।" कारतूस वाली घटना ने केवल "विद्रोह को समय के पूर्व भड़का दिया जबकि अभी वह भली भांति संगठित नहीं हुआ था और उसे लोकप्रिय राजविद्रोह का रूप देने के लिये पर्याप्त प्रबन्ध भी नहीं किये गये थे।"[2] हम आउट्रम साहेब (Outram) से इस सम्बन्ध में सहमत नहीं हैं कि यह क्रान्ति मुसलमानों का षड्यन्त्र था, वरन् यह क्रान्ति हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिलित प्रयास था और बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित करना एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार था। यह स्वीकार करना होगा कि बहादुरशाह क्रान्ति का एक स्तम्भ था, यद्यपि उसने प्रारम्भ में कुछ शिथिलता का प्रदर्शन किया। उसकी यह एक राजनीतिक चाल थी जिसमें वह अंग्रेजों को फांसना चाहता था, क्योंकि मेरठ के सैनिकों की क्रान्ति निश्चित तिथि (३१ मई) के पूर्व ही कारतूस वाली घटना के कारण घटित हो गई थी। इस क्रान्ति का प्रादुर्भाव सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ, किन्तु इसके पीछे अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए गए अत्याचार तथा अन्याय की कहानी छिपी हुई थी। यह भी स्वीकार करना होगा कि कुछ जिलों में सैनिकों के पूर्व जनता अंग्रेजी सत्ता का उल्लंघन करने के लिये उद्यत हो गई थी। अंग्रेजी इतिहासकार रोबर्ट्स ने भी इसको स्वीकार किया है। पंडित नेहरू ने 'भारत की खोज' (Discovery of India) में लिखा है कि "यह केवल एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। यह भारत में शीघ्र ही फैल गया, तथा इसने जन विद्रोह और भारतीय स्वाधीनता के संग्राम का रूप धारण किया।"[3] आधुनिक भारतीय इतिहासकार वीर सावरकर तथा अशोक मेहता ने इसको "भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा प्रदान की है।" इसमें सैनिकों के साथ-साथ बहुत से लोगों ने, जो अंग्रेजों से असन्तुष्ट थे, भाग लिया था। अधिकांश क्रान्तिकारियों का उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से बाहर भगाना था। मुगल सम्राट बहादुरशाह के द्वारा राजपूत राजाओं के नाम लिखित पत्र इस बात की पुष्टि करता है। उन्होंने लिखा था कि "मेरी हार्दिक इच्छा है कि

---

1. "The mutiny is a wholly unpatriotic Sepoy Mutiny with no native leadership and no popular support." —Sir John Seeley.

2. "The view of Sir James Outram is almost the exact antithesis of this, he belived that it was the result of Muhammadan conspiracy making capital of Hindu grievances. 'The cartridge incident merely precipitated' the Mutiny before it had been thoroughly organized and before adequate arrangements had been made for making the mutiny a first step to a popular insurrection."

—Roberts : History of British India, Page 360.

3. "It was much more than a military mutiny, and it spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of Indian Independence."

—Dr. Nehru Discovery of India.

भारत से फिरंगी निकाल दिए जाएं और सारा भारत स्वतन्त्र हो जाये, किन्तु इसके लिये जो क्रान्ति की लड़ाई चल रही है, तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कोई योग्य पुरुष, जो क्रान्ति का नेतृत्व कर सके और देश की बिखरी शक्तियों को सन्तुलित कर लोगों को एकत्रित कर सके, इस युद्ध का संचालन न करें। मेरी कोई खास इच्छा अंग्रेजों को भारत से निकाले जाने के बाद, भारत पर शासन करने की नहीं रही। अगर आप सभी देशी राजा दुश्मन को देश से बाहर निकालने के लिये लोहा लें तो मैं अपनी सारी शाही शक्ति और अधिकार देशी नरेशों के किसी संघ के हाथ सुपुर्द कर देने को तैयार हूं।" श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने २ जून १९५७ को अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये जब हिन्दुस्तान टाइम्स (Hindustan Times) के संवाददाता ने उनसे भेंट की।

In an interview here, the learned historian. Mr. Brindabai Lall Verma, refuted the views expressed by Mr. R. C. Majumdar in his address to the History Congress at Agra that the mutiny was not a War of Independence.

Mr. Verma said that he was pained at the statement of the Indian Historián and quoted several English historians to prove that there was a national upsurge in 1857.

From Kayee and Mallison's *Indian Mutiny* he read out an extract stating that a proclamation was posted in Delhi in the beginning of 1857, which read, 'Drive out the foreigners, O' all Hindustanis.' From *Sepoy War* by Holems, he quoted a letter from Lord Canning to Sir James Outram saying "Loyalty could exist only with patriotism. Even those who had not suffered at our hands were against foreign rule." Kayee in *Sepoy war in India* also writes a lot about the native newspapers "spreading sedition all round."

Questioned about Kunwar Singh of Jagdishpur, Mr. Verma referred again to Kayee, where the historian writes that Kunwar Singh was intriguing and was in corespondence with Nana Sahib.

Kayee and Malisom in *Indian Mutiny*, have actually paid a tribute to the people of Oudh for their freedom struggle, Mr. Verma said.

Taylor, Commissioner of Patna, in a letter writes "We are isolated from hearts of the people"'there is utter absence of the tie between the governed and the governors.' The minds of the people are in a very disaffected state,...a secred society has been functioning in Patna Since 1852."

From Calcutta to Punjab, writes Trevelyan in his *Kanpur Narratives,* they exhibited dangerous *tamashas* and puppet shows in festivals—their method of propaganda."

"The secred organization" writes Mallison, "was growing at a tremendous rate."

Mr. Justice Mac Cartny in *History of our Times,* writes "It was the rebellion of native races against English power." Charles Bells writes in *Indian Mutiny,* "The Meerut Sepoys inamovement found a leader, a flag and a cause and the mutiny was transformed into a revolutionary war."

There was wide spread hatred of British rule, as is evident from the account in Trevelyan's *"Kanpur narratives,* "The effect in rousnig hatred was tremendous—bhistis refused water, ayas left service, bavarchis stood half naked before mem sahibs."

Innes in *Sepoy Revolt* mentions detection of cypher and code letters, which suggests a high state of organization, "The greased cartridge," says Medley, "was merely a match to explode the mine, which war prepared long since."

All this evidence, Mr. Verma said, proved beyond doubt that there was a Was of Independence in 1857.

Regarding the alleged loyalty of Bahadur Shah and the Rani of Jhansi to the British, Mr. Verma said that they played a double game, necessitiated by diplomacy. Both the Rani of Jhansi and Bahadur Shah had full knowledge of the secret plan, as was evident from the details given in Kayee's book and Major Pinkey's (Commissioner of Jhansi) unpublished letters. Bahadur Shah's autographed letters quoted by Metcalfe, clearly indicates his knowledge of the plan. "I am willing", wrote Bahadur Shah, "to resign my imperial authority in the hands of a confederacy of native princes, who are chosen to exercise it, but expel the English from India."

इस प्रकार उक्त तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि १८५७ की क्रांति भारतीयों प्रथम का स्वतन्त्रता संग्राम था जो कलकत्ते से लेकर दिल्ली तक विस्तृत हो गई थी जिसमें जनता ने, सेना ने तथा राजाओं ने अपना शक्ति भर सहयोग दिया। यद्यपि इस समय तक राष्ट्रीय भावना का पूर्णतया विकास नहीं हो पाया था, किन्तु इसमें कुछ राष्ट्रीय तत्व अवश्य विद्यमान थे।

१८५७ की क्रान्ति के कारण
(Causes of the Revolt of 1857)

१८५७ की क्रान्ति के विभिन्न कारण थे। यह सत्य है कि इस क्रान्ति का श्रीगणेश सैनिक विद्रोह के रूप में प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे कलकत्ता से लेकर देहली तक के प्रदेशों में फैल गई, किन्तु इसके पीछे अन्य कारण थे जिन्होंने इसके विस्तार में शीघ्र सहयोग प्रदान किया और जनता ने सक्रिय भाग लेकर अंग्रेजी सत्ता के विनाश करने का प्रयत्न किया। समस्त कारणों को पाँच प्रमुख भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) राजनीतिक कारण (Political Causes)—भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना प्लासी के युद्ध के उपरान्त हुई जो सन् १७५७ ई० में हुआ था। (i) अंग्रेजों की कुटिल साम्राज्यवादी नीति (Imperialistic policy of the Britishers)—सौ वर्षों में अंग्रेजों ने बड़ी कुटिल नीति तथा तीव्रगति से साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण कर समस्त देशी राज्यों को पंगु बना दिया था तथा उनके राज्यों को अंग्रेजी राज्य में विलीन कर लिया था। (ii) भारतीय राजाओं की बाह्य नीति पर प्रतिबन्ध (Control of foreign policy of the Indian princes)—जिन राज्यों को अंग्रेजी राज्य में विलीन नहीं किया गया था उनके राजाओं की बाह्य नीति को अंग्रेजों ने अपने पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया था। अंग्रेजी रेजीडेण्टों को केवल बाह्य नीति पर अधिकार कर ही सन्तोष नहीं हुआ था, उन्होंने देशी राज्यों की आन्तरिक नीति में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। (iii) सहायक संधि (Subsidiary Alliance)—सहायक संधि द्वारा अंग्रेजों ने देशी राज्यों में अंग्रेजी सेना की स्थापना की प्रथा को अपनाया। इस सेना का व्यय देशी राज्यों को देना पड़ता था और जब वे उसका व्यय नहीं चुका सकते थे तो उनको अपने राज्य का कुछ भाग अंग्रेजों को देना पड़ता था, वहाँ की जनता का अंग्रेजों द्वारा बहुत खूब शोषण किया जाता था। उनमें विद्रोह तथा असन्तोष की भावना अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी। (iv) डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति (Lord Dalhausi's Imperialistic policy)—लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति ने तो और भी उग्र रूप धारण किया। उसने राज्य हड़पने की नीति

१८५७ की क्रान्ति के कारण
(१) राजनीतिक।
(२) धार्मिक।
(३) आर्थिक।
(४) सामाजिक।
(५) सैनिक।

(Doctrine of Lapse) द्वारा कुछ राज्यों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया जिनमें झाँसी, नागपुर विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त उसने कुशासन के आधार पर भी कुछ राज्यों को हड़प लिया जिसमें अवध विशेष उल्लेखनीय है जो सदा से अंग्रेजों का सहायक तथा समर्थक रहा। उसने भारतीय नरेशों की पेंशनों तथा उपाधियों का अन्त किया जिससे वे अंग्रेजों के विरोधी हो गये। उसने मुगल-सम्राट बहादुरशाह के साथ ... किया। अंग्रेजों ने उसके पुत्र जवांबख्त के स्थान पर मिर्जा कुवैश को ... कर उसको एक नई संधि मानने के लिये बाध्य किया। इसके

कारण मुसलमानों में ही नहीं वरन् समस्त देश में असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो गया। डलहौजी ने पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब की पेंशन बन्द कर दी जिससे हिन्दुओं को बड़ा आघात पहुँचा और वे अंग्रेजों से असंतुष्ट हो गये। (v) जमींदारों के विरुद्ध नीति (Policy Against the Zamindars)—अंग्रेजों ने अपनी नीति के जमींदारों के लोगों को अपने विरुद्ध कर लिया। बहुत से जमींदारों की जमींदारियाँ अंग्रेजों ने जब्त कर लीं। (vi) उच्च वर्ग के लोगों के विरुद्ध नीति (Policy Against high and Upper Class)—कम्पनी के कर्मचारियों का व्यवहार उच्च वर्ग के लोगों के प्रति भी अच्छा नहीं था। वन कर उनके साथ अपमानजनक व्यवहार था और उनको उनके पदों पर आसीन नहीं किया जाता था।

(२) धार्मिक कारण (Religious Causes)—१८५७ की क्रान्ति में धार्मिक कारणों ने भी पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। अंग्रेजों ने भारत में ईसाई धर्म का भी प्रचार किया, यद्यपि प्रारम्भ में कम्पनी की धार्मिक नीति उदार थी। (i) पादरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार (Propagation of Christianity by the priests)—अंग्रेजों के साथ-साथ बहुत से ईसाई पादरी भारत आये और उन्होंने ईसाई धर्म का प्रचार करना भारत में प्रारम्भ किया। इन पादरियों को अंग्रेजों ने गुप्त रूप से सहायता दी। कम्पनी के संचालकों की भी यह नीति थी कि जिस प्रकार से सम्भव हो भारत में ईसाई धर्म का प्रचार किया जाये। ईसाइयों को उच्च पदों पर आसीन किया जाता था तथा उनकी शिक्षा आदि की भी उचित व्यवस्था का पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। इसके विपरीत हिन्दू और मुसलमानों के साथ कम्पनी के कर्मचारियों का व्यवहार अच्छा नहीं था। (ii) हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की अवहेलना (Violation of the principles of Hinduism)—अंग्रेजों ने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को भी स्वीकार नहीं किया जैसे गोद लेने की प्रथा, विवाह आदि। इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमान जनता अंग्रेजी सरकार को अपने धर्म का शत्रु समझने लगी। (iii) कारतूस का प्रचलन (Use of cartridges)—इसी समय अंग्रेजों ने एक कारतूस का प्रचलन किया, जिसको चिकना करने के लिये गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता था और जिसको बन्दूक में भरने से पूर्व मुँह से काटना पड़ता था। जब सेना को इस बात का ज्ञान हुआ तो उनको विश्वास हो गया कि कम्पनी उनके धर्म को भ्रष्ट करने का प्रयत्न कर रही है और इस भावना के अन्तर्गत उनमें अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होना अनिवार्य हो गया। (iv) रेल और तार का प्रचलन (Introduction of Railway and Telegraph)—यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि इसके अतिरिक्त रेल और तार के प्रचलन के कारण जनता में यह भावना जागृत हुई कि इनके द्वारा कम्पनी हमारे धर्म पर आघात पहुँचा रही है।

(३) आर्थिक कारण (Economic Causes)—कम्पनी की आर्थिक नीति के कारण भी भारतीय जनता में असन्तोष उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गया था। अंग्रेजों के आगमन तथा राज्य स्थापित करने के पूर्व भारत में अनेक राज्य स्थापित हुए और वे

समाप्त भी हुए, किन्तु उनकी आर्थिक नीति का प्रभाव भारतीय जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि वे भारत से धन नहीं ले गये वरन् उन्होंने उसका प्रयोग भारत-भूमि पर ही किया। देशी नरेशों ने कृषकों तथा श्रमिकों की दशा को भी उन्नत करने का प्रयास किया जिसके कारण उनको आर्थिक संकट का सामना विशेष रूप से नहीं करना पड़ा और भारत उनके शासन में समृद्धिशाली बना रहा, किन्तु अंग्रेजों ने भारत का आर्थिक क्षेत्र में भी उतना ही अधिक शोषण किया जितना कि राजनीतिक क्षेत्र में। इसका प्रधान कारण यह था कि अंग्रेजों का भारत-आगमन व्यापारिक उद्देश्य से प्रभावित हुआ था। वे भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आये थे न कि राज्य प्राप्ति के उद्देश्य से। उनके सौभाग्य से उनको भारत में ऐसी परिस्थितियाँ मिल गईं जिनके कारण वे अपना राज्य भारत में स्थापित करने में सफल हुये। उन्होंने भारत के साथ व्यापार करना आरम्भ किया और उसके द्वारा जो धन प्राप्त हुआ वह इंगलैंड जाने लगा। कम्पनी का हित इसी में था कि भारत का समस्त व्यापार उनके हाथ में आ जाय, इसीलिये उन्होंने व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करने का प्रयत्न किया। प्रारम्भ में उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु जब उनके हाथ में शासन-सत्ता का आगमन हुआ तो परिस्थिति में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। उन्होंने हर सम्भव रूप से भारतीयों के धन को लूटना आरम्भ कर दिया। इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति होने के कारण भारत इंगलैंड में बने हुये माल की बिक्री का केन्द्र हो गया। भारत से कच्चा माल इंगलैंड जाने लगा और वहाँ से तैयार माल आने लगा। उनको किसी प्रकार की स्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ा। भारतीय व्यापारियों का व्यापार बन्द होने लगा और कम्पनी का व्यापार दिन प्रतिदिन चमकने लगा। इससे भारतीय उद्योग-धन्धों को बड़ी हानि उठानी पड़ी और वे प्रायः बन्द से हो गये जिससे हजारों की संख्या में व्यक्ति बेकार हो गये। इसका एक दुष्परिणाम प्रभाव यह हुआ कि भारत की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर रहने लगी जिसकी उचित व्यवस्था तथा उन्नति करने के लिये कम्पनी ने किसी प्रकार का कदम नहीं उठाया। विभिन्न राज्यों के अंग्रेजी राज्य में विलीन होने के कारण बहुत से सैनिक तथा उच्च पदाधिकारी बेकार हो गये, जिनमें कम्पनी के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हो गया। कम्पनी ने बहुत से पुराने जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों को उनके अधिकारों से वंचित कर उनके गाँवों को अपने अधिकार में कर लिया। अंग्रेज़ी सरकार की अपेक्षा उनके अधिकार में रहना अधिक अच्छा समझते थे। अतः जब इन जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों ने कम्पनी के राज्य के विरुद्ध [illegible] करना आरम्भ किया तो जनता ने सहर्ष उनका साथ दिया और क्रांति को [illegible] प्रदान की।

(४) सामाजिक कारण (Social Causes)—अंग्रेजों ने अपने शासन की स्थापना के उपरान्त भारतीय सामाजिक व्यवस्था को भी छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया। भारतीय [illegible] [illegible] थे, किन्तु [illegible] सामाजिक व्यवस्था [illegible] [illegible] करने का [illegible] नहीं [illegible]। अतः जब कम्पनी ने [illegible]

उसमें पाश्चात्य ढंग का समावेश करना प्रारम्भ किया तो वे क्षुब्ध हो गये। (i) अंग्रेजी शिक्षा का विरोध (Opposition to English language)—भारतीय जनता ने अंगरेजी शिक्षा का विरोध किया। उनकी धारणा थी कि अंगरेजी के प्रचार से कम्पनी उनको ईसाई बनाना चाहती है। (ii) अंगरेजी वस्तुओं का विरोध (Opposition of British goods)—उन्होंने उन वस्तुओं के प्रचलन का भी विरोध किया जिनका प्रारम्भ अंगरेजों ने भारत में किया था, क्योंकि वे उनको पाश्चात्य समझते थे। (iii) सामाजिक प्रथाओं पर प्रतिबन्ध (Restraint on Social Costoms)—कम्पनी ने सती-प्रथा, बाल-विवाह आदि का प्रचलन बन्द करने का प्रयत्न किया उनको अवैध घोषित किया। जनता ने उनका विरोध किया। जब कम्पनी ने विधवा विवाह को न्यायसंगत घोषित किया, तो भी जनता ने उनका विरोध किया। इनको वे यह समझते थे कि ये सब कार्य कम्पनी इसलिये कर रही है कि हम पाश्चात्य सिद्धान्तों को अपनायें और अपनी भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को छोड़ दें। कट्टर हिन्दुओं ने इन सबका घोर विरोध किया। (iv) अंगरेजों द्वारा पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचलन (Introduction of Western Civilization and Culture)—अंगरेजों ने भारत में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी प्रचार किया। उनका भारतीय साहित्य तथा भाषाओं के प्रति भी उचित व्यवहार नहीं था। उन्होंने उसके प्रोत्साहन के स्थान पर पाश्चात्य साहित्य और भाषा का प्रचलन किया जिससे जनता में उनके विरुद्ध असन्तोष की भावना का उदय होने लगा।

(५) सैनिक कारण (Military causes)—अंगरेजों को भारतीय सेना द्वारा भारत में राज्य की स्थापना करने में विशेष सहायता प्राप्त हुई थी। भारतीय सेना ने उनकी सेवा उत्तम रीति से की। अंगरेजों की नीति के कारण कुछ विशेष कारण ऐसे उत्पन्न हो गये जिसके द्वारा सैनिकों में भी उनके प्रति असन्तोष जाग्रत होने लगा। यहाँ यह भी बतलाना उचित होगा कि १८५६ ई० में कम्पनी की समस्त सेना में दो लाख के करीब भारतीय सैनिक थे तथा ४० हजार के करीब अंगरेज सैनिक थे। इस प्रकार अंग्रेजी सैनिकों की अपेक्षा भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी (i) भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार (Ill-treatment towards the Indians)—अंगरेजों का भारतीय सैनिकों के साथ सद्व्यवहार नहीं था। (ii) अंग्रेजी सैनिकों का अधिक वेतन (High grade of British Soldiers)—अंगरेजी सैनिकों का वेतन भारतीय सैनिकों की अपेक्षा बहुत अधिक था (iii) उच्च पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति (Appointment of Britishers on Coveted posts)—उच्च पदों पर अंगरेजों की ही नियुक्ति की जाती थी और भारतीय सैनिक उच्च पदों के योग्य नहीं समझे जाते थे। इन्हीं कारणों से भारतीय सैनिकों ने कभी-कभी विद्रोह किया, किन्तु वह व्यापक रूप धारण न कर सका जिस कारण अंगरेज उनका सरलता और नृशंसता से दमन करने में सफल हुये। (iv) भारतीय सैनिकों का तत्कालीन सैनिक नियमों का विरोध (Opposition of Indian soldiers of immediate military laws)—भारतीय सैनिक तत्कालीन सैनिक नियमों को घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि

उनका आधार पाश्चात्य था (v) सेना का अनुशासन शिथिल होना (Military disipline was slackened)—सेना का अनुशासन शिथिल पड़ गया क्योंकि उच्च सैनिक पदाधिकारी राजनीतिक पदों पर कार्य करने के लिये चले गये थे। (vi) अंग्रेजी सेना की भारत में कमी (Lack of British army in India)—बहुत सी अंग्रेज सेना भारत-भूमि के बाहर योरुप, मध्य-एशिया, चीन आदि प्रदेशों में चली गई थी। भारत में उनकी संख्या कम हो गई थी। (vii) देशी नरेशों का विरोध (Opposition of Indian princes)—देशी नरेश भारतीय सेना में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष तथा विद्रोह की भावना का प्रचार बड़ी तेजी से कर रहे थे। (viii) सर्विस इन्टेलिजेंस एक्ट का विरोध (Opposition of Service Intelligence Act)—सन् १८५६ ई० में लार्ड कैनिंग ने 'सर्विस इंटेलिजेन्स एक्ट' (Service Intelligent Act) की घोषणा की जिसके अनुसार सैनिकों को अनिवार्य रूप से देश के बाहर जाना होगा, किन्तु भारतीय समुद्र पार जाना अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे। सैनिकों को विश्वास हो गया कि अंग्रेजों का यह कार्य उनकी धार्मिक भावना पर कुठाराघात है। (ix) नये प्रकार के कारतूस (New type of Cartridges)—इसी समय उनको एक नये प्रकार के कारतूस दिये गये जिनका वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। इसने घी में अग्नि का काम किया। विद्रोह की समस्त पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार थी। इसने केवल एक चिनगारी का कार्य किया जिसके लगते ही क्रान्ति के रूप में विस्फोट हो गया।

क्रांति की पृष्ठ-भूमि तैयार करना
(To prepare the background of the Revolution)

क्रांतिकारी नेता कई वर्षों से अंग्रेजी साम्राज्य के नष्ट करने के प्रयत्न में लगे हुये थे। उन्होंने समस्त देश की अशान्ति का लाभ उठाकर सशस्त्र क्रान्ति की योजना का निर्माण किया था। क्रान्ति के नेताओं में नाना साहेब, तांतिया टोपे, झाँसी की रानी, बहादुरशाह, कुंवर सिंह आदि महान् व्यक्ति सम्मिलित थे। उन्होंने ३१ मई १८५७ की तिथि क्रान्ति के लिये निश्चित की थी। पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसके दत्तक पुत्र नाना साहेब को वह पेंशन नहीं दी गई जो अंग्रेज बाजीराव को देते थे। गत पृष्ठों में इसका वर्णन किया जा चुका है। इसी समय से नाना साहेब अंग्रेजों के कट्टर शत्रु बन गये थे। नाना साहेब बहुत तेजस्वी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। अंग्रेज लेखकों ने उनका बहुत ही जघन्य और भयानक चित्र अंकित किया है किन्तु उनको भी यह स्वीकार करना पड़ा कि वे एक चतुर, पुरुषार्थी और संसार के व्यवहार में निपुण व्यक्ति थे। उनको सरकार का यह व्यवहार सहन न हुआ। उन्होंने अजीमुल्ला नामक एक व्यक्ति को अपना वकील बनाकर अपनी शिकायत सुनाने के अभिप्राय से इङ्गलैंड भेजा। वह वहाँ अपने कार्य में सफल तो नहीं हो सका, किन्तु उसने भ्रमण द्वारा योरुप की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। इङ्गलैंड में अजीमुल्ला खां की भेंट रंग बापू से हुई जो सतारा के राजा का वकील बनकर इङ्गलैंड आया था। दोनों ने मिलकर सशस्त्र क्रान्ति की योजना का निर्माण किया। रंगबापू शीघ्र ही भारत वापिस आया, किन्तु अजीमुल्ला खां रूस, इटली, टर्की, मिस्र आदि देश

होता हुआ भारत आया। यहाँ आकर उसने नाना साहेब के साथ क्रान्ति की योजना बनाने का निश्चय किया। उस समय से नाना साहेब गुप्त रूप से भारत की असन्तुष्ट शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर देश-व्यापी विद्रोह खड़ा करने के कार्य में संलग्न हो गये। नाना साहेब ने दिल्ली, लखनऊ, मैसूर जैसे दूरस्थ प्रदेशों के उन व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ किया जो अंग्रेजी सरकार की नीति के शिकार बन चुके थे। १८५७ के मार्च मास में उसने तीर्थ-यात्रा के नाम पर असन्तुष्ट प्रदेशों का भ्रमण किया। उसने अपने दूत को प्रत्येक स्थान पर विद्रोह की पृष्ठ-भूमि तैयार करने के लिये भेजा। अप्रैल में नाना साहेब अपनी यात्रा से वापिस आ गये और मई के महीने में विस्फोट हो गया।

क्रान्ति की योजना (Plan of the Revolution)—योजना यह थी कि बहादुरशाह के नाम पर क्रान्ति की जायगी। क्रान्ति की तिथि ३१ मई १८५७ निश्चित की गई। भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने के उपरान्त बहादुरशाह को सम्राट के पद पर आसीन किया जायेगा। विद्रोह की रूप-रेखा पर विचार करने तथा उसको निश्चित करने के उद्देश्य से दिल्ली स्थित लाल किले में गुप्त मन्त्रणायें होने लगीं। योजना निश्चित हो जाने पर लगभग समस्त उत्तरी भारत के नरेशों ने उसमें सक्रिय भाग लेने की शपथ खाई। समस्त देश में गुप्तचरों का जाल बिछ गया और उन्होंने समस्त व्यक्तियों के पास जाकर उनसे क्रांति में भाग लेने का वचन लिया। इस प्रकार चारों ओर अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण तैयार किया गया। क्रांतिकारियों को अपने इस कार्य में अपार सफलता प्राप्त हुई और यह इतना गुप्त रूप से सम्पन्न किया गया कि अंग्रेजों को इसका तनिक भी पता नहीं चला। नाना साहेब अजीमुल्ला के साथ अपनी तीर्थ-यात्रा में दिल्ली, लाहौर, अम्बाला आदि प्रदेशों में गए जो मार्च १८५७ में प्रारम्भ हुई और क्रान्तिकारियों को सब बातों से अवगत किया।

मङ्गल पाण्डे काण्ड
(The Incidence of Mangal Pandey)

मंगल-पांडे ने क्रान्ति के विस्तार में बड़ा सहयोग दिया। वह जाति का ब्राह्मण था। उसने अपने आपको विद्रोही घोषित किया और सैनिक बारकों में क्रान्ति का प्रचार करने लगा, जिसके कारण सैनिकों में उत्साह का संचार होना प्रारम्भ हो गया। मेजर ह्यूसन ने उसको बन्दी करने की आज्ञा सैनिकों को दी किन्तु कोई भी उसको बन्दी करने के लिये आगे नहीं बढ़ा। एक गोरा अफसर आगे बढ़ा, मंगल पांडे ने तुरन्त उसको अपनी गोली का निशाना बनाया। मंगल-पाण्डे को बन्दी करने के लिये एक अन्य अफसर आगे बढ़ा, परन्तु, मंगल-पांडे ने उसको भी अपनी गोली का शिकार किया। अब कुछ अन्य अफसर स्थल पर आये। ३४ वीं पल्टन के कर्नल व्हीलर ने मंगल पांडे को बन्दी करने की आज्ञा दी परन्तु सैनिकों में से एक भी व्यक्ति अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ। अन्त में घायल अवस्था में मंगल-पाण्डे बन्दी किया गया। उस पर मुकदमा चलाया गया और उसको फांसी का दण्ड मिला। उसको फांसी देने के लिये अंग्रेजों ने चार हत्यारे कलकत्ते से बुलवाये क्योंकि उनको भारतीय

सेना पर विश्वास नहीं रहा था। यह सूचना समस्त छावनियों में फैल गई। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग एक महीने में देश की समस्त छावनियों में विद्रोह के भाव जागृत हो गये। यह घटना बैरकपुर में २९ मार्च, १८५७ ई० को हुई थी। इस घटना के कारण सैनिकों में इतना अधिक उत्साह उत्पन्न हो गया कि उनके लिये ३१ मार्च तक ठहरना असम्भव हो गया।

मेरठ काण्ड
(The Meerut Incident)

क्रान्ति का दूसरा विस्फोट मेरठ में हुआ। बैरकपुर की समस्त घटना का ज्ञान मेरठ के सैनिकों को प्राप्त हो चुका था। सैनिक विद्रोह के लिये तैयार बैठे हुये ही थे कि कर्नल स्मिथ ने २४ अप्रैल को अपने दस्ते के सिपाहियों को एकत्रित कर नये कारतूसों के प्रयोग करने की आज्ञा दी। उसके दस्ते में ९० सैनिक थे। उनमें से केवल पाँच ने उसकी आज्ञा का पालन किया और शेष ८५ ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया। बस फिर क्या था। इन ८५ अपराधियों को १० वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड मिला। इससे छावनी के अन्य सिपाहियों में विक्षोभ फैल गया। अंग्रेज अफसरों को उनको दण्डित करके शान्ति नहीं हुई। उन्होंने ९ मई को छावनी की समस्त सेनाओं को एकत्रित किया और उनके सामने अपराधी सैनिकों का घोर अपमान किया गया। जब उनको हथकड़ी-बेड़ी पहनाकर बन्दीगृह की ओर ले जाया गया तब उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध नारे लगाये। अन्य सैनिकों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा, किन्तु उस समय वे कुछ न कर पाये, किन्तु रात्रि के समय सैनिकों ने अपनी योजना बनाई। १० मई को रविवार था। अंग्रेज निश्चिन्त थे और उसी दिन सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और अंग्रेजों का वध करना आरम्भ किया। इसके पश्चात उन्होंने जेल पर आक्रमण कर समस्त बन्दियों को मुक्त कर दिया। जब रात हो गई तो सैनिकों ने "दिल्ली चलो" का नारा लगाया और शीघ्र ही समस्त सैनिकों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करना आरम्भ कर दिया।

विद्रोहियों का दिल्ली पर अधिकार (Annexation of Delhi by the Rebels)—११ मई के प्रातःकाल सैनिक दिल्ली पहुँच गए और उन्होंने वहाँ के सैनिकों को साथ देने के लिये ललकारा। सैनिक तो पहले से ही तैयार थे। वे शीघ्र ही उनसे सम्मिलित हो गये और जहाँ भी अंग्रेज मिले वहीं उनका वध कर डाला गया। जब सैनिक बारूदखाने पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़े तो अंग्रेज अफसरों ने उसमें आग लगा दी। यदि यह बारूदखाना सैनिकों को प्राप्त हो जाता तो क्रान्ति का नया दौर आरम्भ हो जाता और सम्भव था कि वे अपने उद्देश्य में सफल हो जाते। इसके उपरान्त सैनिकों ने लाल किले में प्रवेश कर बहादुरशाह को सम्राट घोषित किया और नगर में उसका जुलूस निकाला गया। इस प्रकार दिल्ली पर सैनिकों का पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया।

दिल्ली के आसपास के प्रदेशों में क्रान्ति (Revolt near Delhi)—११ मई

समाचार दिल्ली के समीप के प्रदेशों में फैल गया कि क्रांतिकारियों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तो शीघ्र ही उसके आस-पास क्रांति का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी तथा रुहेलखण्ड (मुरादाबाद, बरेली) में भी अंग्रेजों का वध किया गया और खजाने पर क्रांतिकारियों का अधिकार स्थापित हो गया। इस प्रकार शीघ्र ही दिल्ली के आसपास के समस्त प्रदेशों पर बहादुरशाह का हरा झंडा फहराने लगा और वहां से अंग्रेजी राज्य का अन्त हो गया। साधारण जनता ने सैनिकों को हर प्रकार से सहायता प्रदान की जिससे अंग्रेजी राज्य का शीघ्र अन्त हो गया।

अंग्रेजों की प्रतिक्रिया (The English Counter attack)—जब अंग्रेजों को उक्त समस्त समाचारों का ज्ञान हुआ तो वे बहुत भयभीत हुए और उन्होंने इस क्रांति का दृढ़ता से दमन करने का निश्चय किया। अंग्रेजों को अपनी योजना निर्माण करने का कुछ समय भी मिल गया क्योंकि अन्य प्रदेशों में ३१ मई को क्रांति का दौर आरम्भ हुआ। यद्यपि समय कम था किन्तु अंग्रेजों ने उस बीच अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया। अंग्रेजों के पास उत्तरी भारत में अंग्रेजी सेना की कमी थी। उन्होंने मद्रास और बम्बई की सेनायें मंगा लीं तथा चीन जाने वाली सेना को रोक लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ देशी राज्यों को भी अपनी ओर मिला लिया जिन्होंने अंग्रेजों की पर्याप्त सहायता की। इस समय पंजाब की ओर विशेष ध्यान दिया गया क्योंकि वहां तीन प्रकार के भय की आशंका थी—(१) सैनिकों में विद्रोह की भावना, (२) अफगान आक्रमण का भय तथा (३) सिक्खों का व्यवहार। अंग्रेजों ने भारतीय सिपाहियों को सामयिक रूप में भंग कर दिया। जिन्होंने विद्रोह किए उनका तत्परता से दमन किया गया। दोस्त मुहम्मद ने पंजाब पर आक्रमण नहीं किया और उसने उन संधियों का पूर्णरूप से पालन किया जो उसने १८५५ और १८५७ में अंग्रेजों से की थीं। सिक्ख सेना क्रांति से पूर्णतया उदासीन ही नहीं रही वरन् अंग्रेजों ने उसका प्रयोग क्रांति के दमन में किया। इसके अतिरिक्त सरकार ने अन्य अंग्रेज पदाधिकारियों को विशेष अधिकार प्रदान किये जिससे वे क्रांति का दमन करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र हो गये। गोरखों ने भी अंग्रेजों का साथ दिया, क्योंकि अवध की सहायता से अंग्रेज उन पर अधिकार करने में सफल हुये थे। अंग्रेजों ने क्रांति का दमन करने के लिये हर संभव उपाय की शरण ली। उन्होंने कुछ को घूस तथा अन्य प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया जिसके कारण क्रांति का पक्ष निर्बल होने लगा। "दमनकार्य में अंग्रेजों ने सारी शिष्टता, भद्रता एवं मनुष्यता का परित्याग कर दिया। उनकी पाशविक प्रवृत्ति पूर्णरूप से जागृत हो गई। जनरल नील और हैवलाक की सेनाओं के निर्मम कृत्यों को पढ़कर बरबस चंगेज खां और हलाकू की क्रूर गाथा का स्मरण हो आता है।"

दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार (Britishers occupy Delhi)—सर्वप्रथम अंग्रेजों ने दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। दिल्ली पर अधिकार करने के लिये प्रधान सेनापति अनसन गया। दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार

स्थापित करने में पंजाब ने अंग्रेजों को विशेष रूप से सहायता प्रदान की। बहादुरशाह ने सिक्ख राज्यों को अपनी ओर मिलाने का घोर प्रयत्न किया किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। पंजाब के अधिकारियों ने कुत्सित प्रचार के कारण सिक्खों में मुसलमानों के प्रति प्रतिशोध की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। ऐन्सन सिक्खों तथा पंजाब से सेना लेकर अम्बाला से दिल्ली पर अधिकार करने के लिये चल पड़ा,

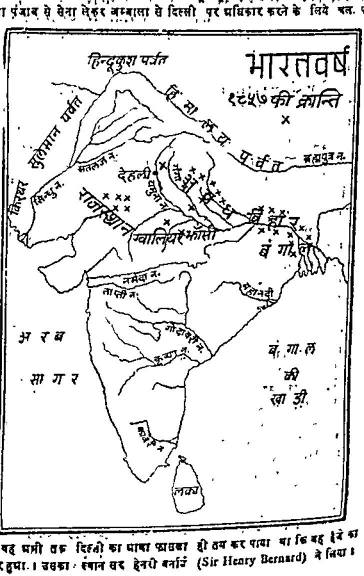

किन्तु वह अभी तक दिल्ली का आधा रास्ता ही तय कर पाया था कि वह हैजे का शिकार हुआ। उसका स्थान सर हेनरी बर्नार्ड (Sir Henry Bernard) ने लिया।

र जून को मेरठ से आर्कडेल विलसन अपनी सेना सहित उससे आ मिला। अब घम संग्राम आरम्भ हुआ। बहादुरशाह ने अंग्रेजों को कई बार युद्ध में परास्त किया, न्तु वह अंग्रेजी सेना को छिन्न-भिन्न करने में सफल नहीं हुआ। अंग्रेजों ने दिल्ली बाहर पहाड़ी पर अपनी छावनी डाल दी। इसी बीच दिल्ली में अव्यवस्था उत्पन्न ने लगी। परन्तु क्रांतिकारियों ने पुनः अपना संगठन किया। अंग्रेजों ने भी आक्रमण योजना बनाकर चारों ओर से दिल्ली पर आक्रमण किया। क्रांतिकारियों ने बड़ी रता से अंग्रेजी सेना का सामना किया, किन्तु वे उनके आक्रमण को न रोक सके। जों ने काश्मीरी दरवाजे को उड़ा दिया। अंग्रेज दिल्ली में प्रवेश करने में सफल ए। अंग्रेजों ने बहादुरशाह और उसके पुत्रों को उसके सम्बन्धियों के विश्वासघात कारण बन्दी कर लिया। उसके पुत्रों का वध कर दिया गया और उनके सिरों को ट कर बहादुरशाह के पास भेज दिया गया। बहादुरशाह बन्दी बनाकर रंगून भेज या गया जहाँ १८६२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

बनारस पर अधिकार (Annexation of Banaras)—बनारस पर अधिकार रने के लिए जनरल नील (General Neille) अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। उसने घ्र ही बनारस पर अधिकार किया। वहाँ उसने क्रांतिकारियों के साथ बड़ा क्रूर था निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया। हजारों व्यक्तियों का वध कर डाला गया। गाँव गाँव जला दिये गये। किसानों की फसलें काट डाली गईं।

इलाहाबाद (Allahabad)—बनारस में अपनी पाशविक भावना का प्रदर्शन रने के उपरान्त जनरल नील (General Neille) ने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान या। इलाहाबाद में भी सैनिकों ने विद्रोह किया था और जनता ने उनका साथ कर बहादुरशाह की हरी पताका फहराई थी। क्रान्तिकारियों का नेतृत्व लियाकतअली ाम के एक मौलवी ने किया जिसने ग्यारह दिन तक अंग्रेजों से संघर्ष किया। परन्तु रतीय सिपाही किले पर अधिकार करने में असफल रहे जिसकी रक्षा सिक्ख कर हे थे। १७ जून को जनरल नील (General Neille) इलाहाबाद पहुँचा। उसने घ्र ही नगर पर अधिकार किया और जनता के साथ पाशविक व्यवहार करना रम्भ कर दिया। सैकड़ों व्यक्ति चौक के नीम के पेड़ों की शाखाओं पर लटका दिये ये।

कानपुर (Kanpur)—नाना साहेब ने कानपुर और उसके समीप के प्रदेश पर धिकार कर लिया था। २६ जून को उन्होंने कानपुर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। ाना साहेब ने दुर्ग के अन्दर रहने वाले अंग्रेजों को यह आश्वासन दिया था कि उनके ाथ सद्व्यवहार किया जायगा। उनको यह आदेश दिया गया कि वे नावों द्वारा नदी पार चले जायें। जब वे नावों पर चढ़कर गंगा में पहुँच गये तो कुछ भारतीय निकों ने उन पर आक्रमण किया। बहुत से अंग्रेज मारे गये। नाना साहेब को इस टना का समाचार उस समय विदित हुआ जब वह काण्ड समाप्त हो गया। उस मय उनको बड़ा दुःख हुआ किन्तु क्या किया जा सकता था। नाना साहेब ने पेशवा की पाधि धारण की। अंग्रेजों को जब कानपुर काण्ड का पता चला तो इलाहाबाद से दो

सेनायें जनरल हैवलाक् और जनरल रेनर्ड की अध्यक्षता में कानपुर भेजी गईं। मार्ग में इन सेनाओं ने जनता के साथ बड़ा पाशविक तथा अमानुषिक व्यवहार किया। अंग्रेजों ने फतेहपुर पर अधिकार किया। वहाँ भी अंग्रेजों का जनता के साथ बुरा व्यवहार रहा। इसके उपरान्त सेनायें कानपुर की ओर बढ़ीं। नाना साहेब ने अंग्रेजी सेना का बड़ा डटकर सामना किया, किन्तु पराजित हुये। हैवलाक् १७ जुलाई को नगर में प्रविष्ट होने में सफल हुआ। नगर में लूट-मार मचाता हुआ वह लखनऊ की ओर चला गया। इधर नाना साहेब ने पुनः सेना का संगठन कर कानपुर पर आक्रमण किया। उन्होंने शीघ्र ही बिठूर को अपने अधिकार में किया। कानपुर की सेना की सहायता के लिये हैवलाक लखनऊ से कानपुर आया। वह नाना साहेब की सैनिक कार्यवाही देखकर दंग रह गया और उसने कानपुर पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। उसने तुरन्त कलकत्ते से और सेना मंगवाने की व्यवस्था की। इसी समय तांत्या टोपे कानपुर की ओर आया। वह नाना का अत्यन्त योग्य तथा विश्वासपात्र सेनापति था। हैवलाक् से परास्त होने पर नाना साहेब फतेहपुर चले गये थे और वहीं से वे कानपुर पर अधिकार करने की योजना बनाने लगे। तांत्या टोपे के नेतृत्व में नाना की सेना ने बिठूर पर पुनः अधिकार किया किन्तु हैवलाक् ने १६ अगस्त को उसे भयानक युद्ध के उपरान्त परास्त किया। तांत्या टोपे शीघ्र ही ग्वालियर गया और वहाँ से सेना का संगठन कर उसने काल्पी पर अधिकार किया। नाना भी अपनी सेना लेकर उससे यहीं आ मिले। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने कानपुर पर आक्रमण किया। अंग्रेज इस सम्मिलित सेना का सामना नहीं कर सके और कानपुर पर नाना का पुनः अधिकार स्थापित हो गया। जब यह समाचार लखनऊ पहुंचा तो कैम्पबेल ने कानपुर की ओर प्रस्थान किया। ६ दिन तक दोनों सेनाओं में बड़ा भीषण संघर्ष हुआ। अपनी पराजय को निश्चित समझ तांत्या टोपे काल्पी चला गया। अंग्रेजों ने शीघ्र ही कानपुर पर अधिकार कर लिया।

नाना साहेब

अवध (Oudh)—क्रान्ति का सबसे भीषण रूप अवध में था। वहाँ सेना तथा जनता दोनों में अपार उत्साह तथा साहस था। ३० मई की रात्रि को वहाँ क्रान्ति का कार्य आरम्भ हुआ। समस्त प्रदेश के जमींदारों तथा तालुकेदारों ने क्रान्ति में भाग लिया। जहाँ भी अंग्रेज मिले उनका वध कर दिया गया और उनके भवनों को जलाकर राख कर दिया गया। समस्त अवध पर से अंग्रेजों के अधिकार का अन्त कर क्रान्तिकारियों ने उस पर अधिकार किया। अवध का रेजीडेन्ट सर हेनरी लारेंस (Sir Henry Lawrence) बहुत ही योग्य तथा कर्मठ व्यक्ति था। वह प्रथम अंग्रेज था जिसको पूर्व से ही क्रांति का आभास हो रहा था। उसने अंग्रेजी रेजीडेन्सी की पहिले से ही किलेबन्दी कर ली थी, और जितने भी अंग्रेज उसकी शरण में आये उसने उनको

रेजीडेन्सी में स्थान प्रदान किया। क्रान्तिकारियों ने लखनऊ स्थित रेजीडेन्सी पर अधिकार करने का घोर प्रयत्न किया किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने अब रेजीडेन्सी के उद्धार के लिये प्रयत्न करना आरम्भ किया। हैवलाक (Havelock) एक विशाल सेना लेकर कानपुर से लखनऊ गया। वह २३ सितम्बर को आलमबाग पहुँचा जहाँ क्रान्तिकारियों ने उसको बुरी तरह परास्त कर किया। अब कैम्पबेल हैवलाक् को सहायता के लिये लखनऊ की ओर चल पड़ा। दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ। अन्त में अंग्रेज रेजीडेन्सी से क्रान्तिकारियों को हटाने में सफल हुए। इस समय कैम्पबेल को कानपुर की ओर जाना पड़ा। वहां से निश्चिन्त होकर वह लखनऊ की ओर गया। अंग्रेजों के सौभाग्य से गोरखों की सेना अंग्रेजों की सहायता के लिए आ गई। अंग्रेजों ने लखनऊ पर आक्रमण किया। यद्यपि दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ किन्तु अंग्रेज विजयी हुये और उनका लखनऊ पर अधिकार हो गया।

अहमदशाह और नाना साहेब शाहजहांपुर में मिले। उन दोनों ने सेनाओं का संगठन करना आरम्भ किया। कैम्पबेल लखनऊ पर अधिकार कर शाहजहांपुर गया, किन्तु दोनों नेता वहां से बरेली चले गये। अन्य नेता भी वहां एकत्रित हो गये। कैम्पबेल ने बरेली की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेजों ने उसको अपने अधिकार में किया। इधर अहमदशाह ने बरेली से भाग कर शाहजहांपुर को अपने अधिकार में किया। विवश होकर कैम्पबेल (Campbell) शाहजहांपुर गया। अन्य क्रांतिकारी नेता उसकी सहायता के लिये वहां गए। अहमदशाह भाग, कर अवध गया जहां एक देशद्रोही ने उसका वध कर डाला। अवध में पुनः क्रांति ने भीषण रूप धारण कर लिया किन्तु अंग्रेजों ने उनको परास्त कर जनता के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया। क्रांतिकारी नेता अवध छोड़कर नेपाल की तराई की ओर भाग गये।

झांसी (Jhansi) —झांसी की रानी अंग्रेजों की नीति से बड़ी क्रुद्ध थी। कुछ समय तक उसने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया, किन्तु बाद में उसने सेना का संगठन कर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। उसका दमन करने के लिये मार्च सन् १८५८ ई० को सर ह्यू रोज झांसी की ओर गया। रानी ने स्वयं सेना का नेतृत्व किया और अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। रानी ने तांत्या टोपे को सहायता के लिये बुलाया। वह वीर सेनानी अपनी सेना लेकर सहायता के लिये चल पड़ा, किन्तु उसको सर ह्यू रोज (Sir Hugh Rose) ने परास्त कर दिया। रानी की दशा भी चिन्ताजनक हो गई। अंग्रेजों के धावे बड़े वेग से हो रहे थे जिनका सामना झांसी की सेना अदम्य उत्साह तथा साहस से कर रही थी। अब अंग्रेजों ने कूटनीति की शरण लेकर कुछ

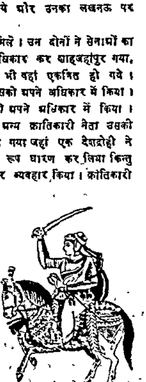

झांसी की रानी

व्यक्तियों को अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने दक्षिण का द्वार खोल दिया और अंग्रेजी सेना उस द्वार से झांसी में घुस गई। झांसी की सेना ने अंग्रेजों का सामना किया। इसी समय दूसरा द्वार भी टूट गया और उस द्वार से भी अंग्रेज भीतर आ गये। रानी को बड़ी चिन्ता हुई किन्तु उस वीरांगना का साहस तथा उत्साह मन्द नहीं हुआ। अपने बच्चे को कमर से बांधकर वह अंग्रेजी सेना को चीरती हुई झांसी से बाहर निकालने में सफल हुई। वह तांत्या टोपे के पास काल्पी पहुँची। सर ह्यू रोज (Sir Hugh Rose) ने काल्पी की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेज विजयी हुये किन्तु रानी लक्ष्मीबाई वहां से भी भागने में सफल हुई। लक्ष्मीबाई और तांत्या टोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर आक्रमण किया किन्तु परास्त हुआ। अगले दिन पुनः दुर्ग पर आक्रमण किया गया। रानी अंग्रेजी सेना से घिर गई। रानी ने भागना ही हितकर समझा। वह भागी और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। उसका घोड़ा एक नाले में गिर गया। अंग्रेजों ने उस पर आक्रमण कर उसको घायल कर दिया, किन्तु इस अवस्था में भी उसने आक्रमणकारियों का बध कर दिया। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने भी इस वीर रमणी की वीरता, उत्साह तथा साहस की बड़ी प्रशंसा की है।

तांत्या टोपे

तांत्या टोपे का अन्त (Death of Tantiya Tope)—केवल अब तांत्या टोपे ही शेष रहा था, यद्यपि उसकी अवस्था बड़ी हीन थी क्योंकि न तो उसके पास धन था और न सेना ही थी, किन्तु उस वीर क्रान्तिकारी ने साहस का परित्याग नहीं किया। वह दक्षिण जाकर क्रान्ति की ज्वाला प्रचण्ड करना चाहता था। वह नागपुर गया, किन्तु वहां की जनता ने उसका साथ नहीं दिया। अंग्रेजों ने नागपुर घेर लिया किन्तु तांत्या टोपे उनको धोखे में डालकर उदयपुर पहुंच गया। अंग्रेजों ने उसका वहां भी पीछा किया। वह वहां से भागकर अलवर गया जहां मानसिंह नामक एक सरदार के विश्वासघात करने के कारण वह बन्दी बना लिया गया। १८ अप्रैल को उसको मृत्यु दण्ड दिया गया। अपने कार्यों द्वारा उसका नाम सदा के लिये अमर हो गया।

क्रान्ति की विफलता के कारण
(Causes of the Failure of the Revolt)

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने अदम्य उत्साह, वीरता, साहस एवं त्याग का परिचय दिया किन्तु अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन करने में सफल हुए और क्रान्ति का अन्त बड़ी नृशंसतापूर्वक कर दिया गया। इस क्रान्ति के असफल होने में बहुत से कारणों ने योग दिया जिनमें से मुख्य कारणों का अग्र पंक्तियों में उल्लेख किया जायगा—

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र (Limited Scope of Revolt)—क्रान्ति का क्षेत्र सीमित था क्योंकि देश के कई भागों में क्रान्ति का दौर नहीं चला। यह क्रान्ति दिल्ली से लेकर कलकत्ते तक ही सीमित रही और शेष भारत के लोग क्रान्ति से प्रभावित नहीं हुए, जिसके कारण उन्होंने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया। पंजाब दक्षिणी भारत, राजस्थान, पूर्वी बंगाल तथा सिन्ध में अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया। गोरखों ने क्रान्तिकारियों को सहयोग देने के स्थान पर अंग्रेजों को उनके भीषण समय में बड़ी प्रशंसनीय सहायता की और पंजाब के सिक्खों ने भी क्रान्ति के दमन में अंग्रेजों का साथ दिया।

(२) जन-क्रान्ति का न होना (Not a people's War)—यह क्रान्ति जन क्रान्ति नहीं हो पाई क्योंकि जनता के समस्त वर्गों ने क्रान्ति में भाग नहीं लिया। कुछ प्रदेशों में यद्यपि किसानों, जमींदारों आदि ने क्रान्ति में भाग लिया किन्तु अधिक प्रदेशों में साधारण जनता इनसे उदासीन रही। क्रान्ति में उन राजाओं, सरदारों तथा जमींदारों ने विशेष रूप से भाग लिया जो अंग्रेज साम्राज्यवाद के शिकार हो चुके थे। बहुत से सरदार तथा राजा भी इससे अलग रहे और कुछ ने तो अंग्रेजों की सहायता कर क्रान्ति के दमन में पर्याप्त सहयोग दिया। इसी आधार पर इन्स (Inns) का कथन है कि सिंधिया ने भारतवर्ष को अंग्रेजों के लिये बचाया। नेपाल सेना ने अवध की क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों को बड़ी सहायता की। यदि ठीक समय पर नेपाल की सेना न आ गई होती तो अंग्रेजों की अवध में और भी अधिक शोचनीय परिस्थिति हो जाती, जिससे निकलना अंग्रेजों के लिये दुस्साध्य नहीं तो विशेष कठिन अवश्य हो जाता।

(३) योग्य नेता का अभाव (Lack of Capable Leader)—यद्यपि क्रान्ति के कई नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को संगठित करने तथा उसको सफल बनाने के लिये अकथनीय प्रयत्न किये जिनमें नाना साहेब तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, वाजिदअली शाह तथा उसकी बेगम विशेष प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनमें कोई भी ऐसा योग्य नेता न था जो समस्त देश के लिये सर्वमान्य होता और जिसके इशारे पर जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना फैल जाती और जो सैनिकों को यथासम्भव सहायता प्रदान करने का प्रयत्न करता। यह सर्वमान्य है कि नेताओं में विशिष्ट गुण अवश्य विद्यमान थे किन्तु वे क्रान्ति को तथा क्रान्तिकारियों को एकता के सूत्र में बांधने में सफल नहीं हो सके। सिक्ख

क्रान्ति की विफलता के कारण

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र।
(२) जन-क्रान्ति का न होना।
(३) योग्य नेता का अभाव।
(४) केन्द्रीय योजना का अभाव।
(५) साधनों का अभाव।
(६) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन।
(७) अंग्रेजों की सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति।
(८) अराजकता का उत्पन्न होना।

व्यक्तियों को अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने दक्षिण का द्वार खोल दिया और अंग्रेजी सेना उस द्वार से झांसी में घुस गई। झांसी की सेना ने अंग्रेजों का सामना किया। इसी समय दूसरा द्वार भी टूट गया और उस द्वार से भी अंग्रेज भीतर आ गये। रानी को बड़ी चिन्ता हुई किन्तु उस वीरांगना का साहस तथा उत्साह मन्द नहीं हुआ। अपने बच्चे को कमर से बांधकर वह अंग्रेजी सेना को चीरती हुई झांसी से बाहर निकालने में सफल हुई। वह तांत्या टोपे के पास काल्पी पहुँची। सर ह्यू रोज (Sir Hugh Rose) ने काल्पी की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेज विजयी हुये किन्तु रानी लक्ष्मीबाई वहां से भी भागने में सफल हुई। लक्ष्मीबाई और तांत्या टोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर आक्रमण किया किन्तु परास्त हुआ। अगले दिन पुनः दुर्ग पर आक्रमण किया गया। रानी अंग्रेजी सेना से घिर गई। रानी ने भागना ही हितकर समझा। वह भागी और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। उसका घोड़ा एक नाले में गिर गया। अंग्रेजों ने उस पर आक्रमण कर उसको घायल कर दिया, किन्तु इस अवस्था में भी उसने आक्रमणकारियों का वध कर दिया। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने भी इस वीर रमणी की वीरता, उत्साह तथा साहस की बड़ी प्रशंसा की है।

तांत्या टोपे

तांत्या टोपे का अन्त (Death of Tantiya Tope)—केवल अब तांत्या टोपे ही शेष रहा था, यद्यपि उसकी अवस्था बड़ी हीन थी क्योंकि न तो उसके पास धन था और न सेना ही थी, किन्तु उस वीर क्रान्तिकारी ने साहस का परित्याग नहीं किया। वह दक्षिण जाकर क्रान्ति की ज्वाला प्रचण्ड करना चाहता था। वह नागपुर गया, किन्तु वहां की जनता ने उसका साथ नहीं दिया। अंग्रेजों ने नागपुर घेर लिया किन्तु तांत्या टोपे उनको धोखे में डालकर उदयपुर पहुंच गया। अंग्रेजों ने उसका वहां भी पीछा किया। वह वहां से भागकर अलवर गया जहां मानसिंह नामक एक सरदार के विश्वासघात करने के कारण वह बन्दी बना लिया गया। १८ अप्रैल को उसको मृत्यु दण्ड दिया गया। अपने कार्यों द्वारा उसका नाम सदा के लिये अमर हो गया।

क्रान्ति की विफलता के कारण (Causes of the Failure of the Revolt)

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने अदम्य उत्साह, वीरता, साहस एवं त्याग का परिचय दिया किन्तु अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन करने में सफल हुए और क्रान्ति का अन्त बड़ी नृशंसतापूर्वक कर दिया गया। इस क्रान्ति के असफल होने में बहुत से कारणों ने योग दिया जिनमें से मुख्य कारणों का अग्र पंक्तियों में उल्लेख किया जायगा—

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र (Limited Scope of Revolt)—क्रान्ति का क्षेत्र सीमित था क्योंकि देश के कई भागों में क्रान्ति का दौर नहीं चला। यह क्रान्ति दिल्ली से लेकर कलकत्ते तक ही सीमित रही और शेष भारत के लोग क्रान्ति से प्रभावित नहीं हुए, जिसके कारण उन्होंने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया। पंजाब दक्षिणी भारत, राजस्थान, पूर्वी बंगाल तथा सिन्ध में अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया। गोरखों ने क्रान्तिकारियों को सहयोग देने के स्थान पर अंग्रेजों को उनके भीषण समय में बड़ी प्रशंसनीय सहायता की और पंजाब के सिक्खों ने भी क्रान्ति के दमन में अंग्रेजों का साथ दिया।

(२) जन-क्रान्ति का न होना (Not a people's War)—यह क्रान्ति जन क्रान्ति नहीं हो पाई क्योंकि जनता के समस्त वर्गों ने क्रान्ति में भाग नहीं लिया। कुछ प्रदेशों में यद्यपि किसानों, जमींदारों आदि ने क्रान्ति में भाग लिया किन्तु अधिक प्रदेशों में साधारण जनता इससे उदासीन रही। क्रान्ति में उन राजाओं, सरदारों तथा जमींदारों ने विशेष रूप से भाग लिया जो अंग्रेज साम्राज्यवाद के शिकार हो चुके थे। बहुत से सरदार तथा राजा भी इससे अलग रहे और कुछ ने तो अंग्रेजों की सहायता कर क्रान्ति के दमन में पर्याप्त सहयोग दिया। इसी आधार पर इन्स (Inns) का कथन है कि सिंधिया ने भारतवर्ष को अंग्रेजों के लिये बचाया। नेपाल सेना ने अवध की क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों को बड़ी सहायता की। यदि ठीक समय पर नेपाल की सेना न आ गई होती तो अंग्रेजों की अवध में और भी अधिक शोचनीय परिस्थिति हो जाती, जिससे निकलना अंग्रेजों के लिये दुस्साध्य नहीं तो विशेष कठिन अवश्य हो जाता।

(३) योग्य नेता का अभाव (Lack of Capable Leader)—यद्यपि क्रान्ति के कई नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को संगठित करने तथा उसको सफल बनाने के लिये अकथनीय प्रयत्न किये जिनमें नाना साहेब तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, वाजिदअली शाह तथा उसकी बेगम विशेष प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनमें कोई भी ऐसा योग्य नेता न था जो समस्त देश के लिये सर्वमान्य होता और जिसके इशारे पर जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना फैल जाती और जो सैनिकों को यथावश्यक सहायता प्रदान करने का प्रयत्न करता। यह सर्वमान्य है कि नेताओं में विशिष्ट गुण अवश्य विद्यमान थे किन्तु वे क्रान्ति को तथा क्रान्तिकारियों को एकता के सूत्र में बाँधने में सफल नहीं हो सके। सिक्ख

> **क्रान्ति की विफलता के कारण**
> (१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र।
> (२) जन-क्रान्ति का न होना।
> (३) योग्य नेता का अभाव।
> (४) केन्द्रीय योजना का अभाव।
> (५) साधनों का अभाव।
> (६) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन।
> (७) अंग्रेजों को सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति।
> (८) अराजकता का उत्पन्न होना।

व्यक्तियों को अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने दक्षिण का द्वार खोल दिया और अंग्रेजी सेना उस द्वार से झाँसी में घुस गई। झाँसी की सेना ने अंग्रेजों का सामना किया। इसी समय दूसरा द्वार भी टूट गया और उस द्वार से भी अंग्रेज भीतर आ गये। रानी को बड़ी चिन्ता हुई किन्तु उस वीरांगना का साहस तथा उत्साह मन्द नहीं हुआ। अपने बच्चे को कमर से बाँधकर वह अंग्रेजी सेना को चीरती हुई झाँसी से बाहर निकालने में सफल हुई। वह तांत्या टोपे के पास काल्पी पहुँची। सर ह्यू रोज (Sir Hugh Rose) ने काल्पी की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेज विजयी हुये किन्तु रानी लक्ष्मीबाई वहाँ से भी भागने में सफल हुई। लक्ष्मीबाई और तांत्या टोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर आक्रमण किया किन्तु परास्त हुआ। अगले दिन पुनः दुर्ग पर आक्रमण किया गया। रानी अंग्रेजी सेना से घिर गई। रानी ने भागना ही हितकर समझा। वह भागी और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। उसका घोड़ा एक नाले में गिर गया। अंग्रेजों ने उस पर आक्रमण कर उसको घायल कर दिया, किन्तु इस अवस्था में भी उसने आक्रमणकारियों का वध कर दिया। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने भी इस वीर रमणी की वीरता, उत्साह तथा साहस की बड़ी प्रशंसा की है।

तांत्या टोपे

तांत्या टोपे का अन्त (Death of Tantiya Tope)—केवल अब तांत्या टोपे ही शेष रहा था, यद्यपि उसकी अवस्था बड़ी हीन थी क्योंकि न तो उसके पास धन था और न सेना ही थी, किन्तु उस वीर क्रान्तिकारी ने साहस का परित्याग नहीं किया। वह दक्षिण जाकर क्रान्ति की ज्वाला प्रचण्ड करना चाहता था। वह नागपुर गया, किन्तु वहाँ की जनता ने उसका साथ नहीं दिया। अंग्रेजों ने नागपुर घेर लिया किन्तु तांत्या टोपे उनको धोखे में डालकर उदयपुर पहुँच गया। अंग्रेजों ने उसका वहाँ भी पीछा किया। वह वहाँ से भागकर अलवर गया जहाँ मानसिंह नामक एक सरदार के विश्वासघात करने के कारण वह बन्दी बना लिया गया। १८ अप्रैल को उसको मृत्यु दण्ड दिया गया। अपने कार्यों द्वारा उसका नाम सदा के लिये अमर हो गया।

क्रान्ति की विफलता के कारण
(Causes of the Failure of the Revolt)

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने अदम्य उत्साह, वीरता, साहस एवं त्याग का परिचय दिया किन्तु अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन करने में सफल हुए और क्रान्ति का अन्त बड़ी नृशंसतापूर्वक कर दिया गया। इस क्रान्ति के असफल होने में बहुत से कारणों ने योग दिया जिनमें से मुख्य कारणों का अग्र पंक्तियों में उल्लेख किया जायगा—

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र (Limited Scope of Revolt)—क्रान्ति का क्षेत्र सीमित था। क्योंकि देश के कई भागों में क्रान्ति का दौर नहीं चला। यह क्रान्ति दिल्ली से लेकर कलकत्ते तक ही सीमित रही और शेष भारत के लोग क्रान्ति से प्रभावित नहीं हुए, जिसके कारण उन्होंने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया। पंजाब दक्षिणी भारत, राजस्थान, पूर्वी बंगाल तथा सिन्ध में अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया। गोरखों ने क्रान्तिकारियों को सहयोग देने के स्थान पर अंग्रेजों को उनके भीषण समय में बड़ी प्रशंसनीय सहायता की और पंजाब के सिक्खों ने भी क्रान्ति के दमन में अंग्रेजों का साथ दिया।

(२) जन-क्रान्ति का न होना (Not a people's War)—यह क्रान्ति जन क्रान्ति नहीं हो पाई क्योंकि जनता के समस्त वर्गों ने क्रान्ति में भाग नहीं लिया। कुछ प्रदेशों में यद्यपि किसानों, जमींदारों आदि ने क्रान्ति में भाग लिया किन्तु अधिक प्रदेशों में साधारण जनता इससे उदासीन रही। क्रान्ति में उन राजाओं, सरदारों तथा जमींदारों ने विशेष रूप से भाग लिया जो अंग्रेज साम्राज्यवाद के शिकार हो चुके थे। बहुत से सरदार तथा राजा भी इससे अलग रहे और कुछ ने तो अंग्रेजों की सहायता कर क्रान्ति के दमन में पर्याप्त सहयोग दिया। इसी आधार पर इन्स (Inns) का कथन है कि सिंधिया ने भारतवर्ष को अंग्रेजों के लिये बचाया। नेपाल सेना ने अवध की क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों की बड़ी सहायता की। यदि ठीक समय पर नेपाल की सेना न आ गई होती तो अंग्रेजों की अवध में और भी अधिक शोचनीय परिस्थिति हो जाती, जिससे निकलना अंग्रेजों के लिये दुस्साध्य नहीं तो विशेष कठिन अवश्य हो जाता।

(३) योग्य नेता का अभाव (Lack of Capable Leader)—यद्यपि क्रान्ति के कई नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को संगठित करने तथा उसको सफल बनाने के लिये अकथनीय प्रयत्न किये जिनमें नाना साहेब तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, वाजिदअली शाह तथा उसकी बेगम विशेष प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनमें कोई भी ऐसा योग्य नेता न था जो समस्त देश के लिये सर्वमान्य होता और जिसके इशारे पर जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना फैल जाती और जो सैनिकों को यथासम्भव सहायता प्रदान करने का प्रयत्न करता। यह सर्वमान्य है कि नेताओं में विशिष्ट गुण अवश्य विद्यमान थे किन्तु वे क्रान्ति को तथा क्रान्तिकारियों को एकता के सूत्र में बाँधने में सफल नहीं हो सके। सिक्ख

क्रान्ति की विफलता के कारण

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र।
(२) जन-क्रान्ति का न होना।
(३) योग्य नेता का अभाव।
(४) केन्द्रीय योजना का अभाव।
(५) साधनों का अभाव।
(६) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन।
(७) अंग्रेजों की सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति।
(८) अराजकता का उत्पन्न होना।

मुसलमानों की नीति के कारण उनसे सहयोग स्थापित नहीं कर सकते थे। मुसलमान हिन्दुओं के साथ वैमनस्य रखते थे। अतः सर्वमान्य नेता के अभाव में क्रान्ति असफल रही।

(४) केन्द्रीय योजना का अभाव (Absence of Central Plan)—क्रान्तिकारियों में केन्द्रीय योजना का अभाव था तथा उनकी नीति स्पष्ट नहीं थी। नीति के अस्पष्ट तथा अकेन्द्रीय होने के कारण क्रान्तिकारी नेताओं में एकता का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक की नीति अलग-अलग थी और प्रत्येक के समर्थक अपने ही नेता के अन्तर्गत कार्य करना चाहते थे। सब नेताओं के अपने-अपने स्वार्थ थे जिनकी पूर्ति के लिये वे प्रयत्नशील थे। इसके विपरीत अंग्रेजों की योजना बिल्कुल स्पष्ट थी और उनके पास योग्य और कर्मठ नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को असफल करने में किसी भी बात की कसर नहीं छोड़ी और उन्होंने हर सम्भव साधन का प्रयोग किया।

(५) साधनों का अभाव (Lack of means)—क्रान्तिकारियों के पास साधनों का बहुत बड़ा अभाव था। (i) उनके पास धन की बहुत कमी थी जिसके कारण सैनिकों के वेतन की उचित व्यवस्था नहीं हो पाई थी। (ii) उनके अस्त्र-शस्त्र प्राचीन ढंग के थे तथा उनके पास तोपखाना बहुत कम था। (iii) उनमें योग्य तथा कर्मठ सेनापतियों का अभाव था। (iv) उनको समाचार भेजने तथा उनको प्राप्त करने में बड़ा समय लग जाता था जिसके कारण शीघ्र आवश्यक स्थान पर पहुंचना कठिन रहता था। इसी कारण सबको अलग-अलग अपने सीमित क्षेत्रों में कार्य करना पड़ा और एक दूसरे की सहायता बहुत कम कर सका।

(६) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन (Britishers possessed enough Resources)—इसके विपरीत अंग्रेजों के पास पर्याप्त सेना थी जो आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित थी। उनके पास योग्य तथा कर्मठ सेनापति थे। आधुनिक आविष्कार रेल, तार आदि के कारण उनको समस्त समाचार शीघ्रता से प्राप्त हो जाते थे, और वे आवश्यक कार्य शीघ्रातिशीघ्र कर सकते थे।

(७) अंग्रेजों की सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (The International situation was in favour of the Britishers)—इस समय अंग्रेजों की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सन्तोषजनक हो चुकी थी जिसके कारण वे क्रान्ति का कठोरतापूर्वक तथा अपने समस्त साधनों का प्रयोग कर दमन करने के कार्य में एकत्रित होकर संलग्न हो गये। दोस्त मुहम्मद ने अफगानिस्तान से भारत पर आक्रमण नहीं किया। उससे पूर्व में की हुई सन्धियों का पूर्णरूप से पालन किया। क्रीमिया तथा चीन के युद्धों का अन्त हो चुका था तथा फारस को अंग्रेज पराजित कर चुके थे।

(८) अराजकता का उत्पन्न होना (Anarchy prevailed)—क्रान्तिकारियों ने धन के अभाव में साधारण जनता को लूटना आरम्भ कर दिया जिसके कारण क्रान्ति के क्षेत्रों में अराजकता उत्पन्न हो गई जिसने जनता को क्रान्ति से शीघ्र ही उदासीन कर दिया। जेलों आदि के तोड़ने से बदमाश तथा गुण्डे व्यक्ति मुक्त हो गये जिनको अपने कार्य करने का खुला अवसर प्राप्त हुआ। इस अराजकता के उत्पन्न होने

से अंग्रेजों को जनता का सहयोग प्राप्त हुआ। अंग्रेजी सेनापतियों ने क्रान्तिकारियों का इस कठोरता, नृशसता तथा पाशविकता से दमन किया कि जनता में आतंक छा गया और वह बड़ी भयभीत हो गई।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) सन् १८५७ का स्वतन्त्र-विद्रोह क्या केवल डलहौजी की नीति का परिणाम था? (१९५७)

राजस्थान—

(१) क्या आपकी राय में १८५७ का गदर राष्ट्रीय आन्दोलन या सैनिक विद्रोह था? कारण लिखो। यह क्यों असफल रहा? (५१)

३ कम्पनी के अन्तर्गत भारत

(India under the Company's Rule)

सन् १८५७ ई० की क्रांति के उपरान्त जिस व्यवस्था का जन्म हुआ उसके अन्तर्गत कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया और उसके स्थान पर भारत की शासन-व्यवस्था पर इङ्गलैंड के सम्राट का आधिपत्य स्थापित हुआ। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि उन समस्त बातों का अध्ययन कर लिया जाए जो कम्पनी के राज्य के अन्तर्गत भारत में हुई। इस अध्ययन के अन्तर्गत निम्न शीर्षकों का अध्ययन किया जायगा :—

(१) कम्पनी का केन्द्रीय प्रशासन

(Central Administration of the Company)

कम्पनी के अन्तर्गत भारत
(१) कम्पनी का केन्द्रीय प्रशासन।
(२) गवर्नर जनरल द्वारा शासन सम्बन्धी तथा अन्य सुधार।
(३) शिक्षा की प्रगति।
(४) लोक-कल्याण कार्य।
(५) नव-चेतना।
(६) आर्थिक दशा।

इलाहाबाद की सन्धि (१७६५) से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी केवल एक व्यापारिक संस्था थी और उसका मुख्य उद्देश्य भारत में व्यापार करना था, किन्तु इस सन्धि के उपरान्त उसके अधिकार में दीवानी वसूल करने का अधिकार आ गया जिसके कारण कम्पनी की परिस्थिति में विशेष अन्तर उत्पन्न हुआ। कम्पनी के अधिकार में बंगाल का शासन आने के कारण नई समस्यायें स्वतः उत्पन्न हो गईं, क्योंकि अब

उसके हाथ में व्यापार और दीवानी के साथ-साथ शासन भी आ गया। दोहरे शासन प्रबन्ध के कारण शासन-व्यवस्था उन्नत न हो पाई और विशेष गड़बड़ उत्पन्न हो गई। गत पृष्ठों में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जा चुका है। युद्धों के कारण कम्पनी की आर्थिक अवस्था दिन प्रति दिन बिगड़ने लगी। बहुत वाद-विवाद करने के उपरान्त १७७१ ई० में कम्पनी की वास्तविक दशा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से ३१ सदस्यों की एक विशेष समिति (Select Committee) तथा १३ सदस्यों की एक गुप्त समिति (Secret Committee) का निर्माण किया गया। इन दोनों समितियों की रिपोर्ट के आधार पर इंगलैंड की पार्लियामेंट ने सन् १७७३ में दो एक्ट पास किये जिनके द्वारा कम्पनी के ऊपर इंगलैंड की पार्लियामेंट का नियन्त्रण स्थापित हो गया। प्रथम एक्ट के अनुसार कम्पनी को १४ लाख पौंड ४ प्रतिशत ब्याज के ऊपर देना निश्चित किया गया। दूसरा एक्ट जो रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के नाम से विख्यात है विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि इस एक्ट द्वारा कम्पनी के शासन की रूप-रेखा निश्चित की गई। यद्यपि इस एक्ट की धाराओं का विस्तृत वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है किन्तु क्रम को निभाने के अभिप्राय से इस एक्ट के विषय में कुछ शब्दों का कहना यहाँ भी आवश्यक प्रतीत होता है।

कम्पनी का प्रशासन

(i) रेग्यूलेटिंग एक्ट।
(ii) पिट का इण्डिया एक्ट।
(iii) सन् १७९३ का चार्टर एक्ट।
(iv) सन् १८१३ का चार्टर एक्ट।
(v) सन् १८३३ का चार्टर एक्ट।
(vi) सन् १८५३ का चार्टर एक्ट।

(i) रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act)—इस एक्ट के द्वारा बंगाल प्रान्त का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल होगा जिसके अन्तर्गत मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर होंगे। गवर्नर जनरल की सहायता के लिये ४ सदस्यों की एक समिति होगी। इसकी अवधि पांच वर्ष निश्चित की गई। समस्त निर्णय बहुमत द्वारा होगा। गवर्नर जनरल इस समिति का अध्यक्ष होगा। उसको निर्णायक मत (Casting Vote) का अधिकार प्रदान किया गया। वह इसका प्रयोग केवल उसी समय कर सकता है जब दोनों पक्षों के मत समान हों। कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधिपति तथा तीन अन्य न्यायाधिपति होंगे। यह एक्ट सन् १७७३ ई० से १७८४ ई० तक चालू रहा। इस एक्ट में पर्याप्त दोष विद्यमान थे जिसके कारण यह वास्तविक दशा में कोई विशेष सुधार करने में पूर्णतया असमर्थ रहा। इसके दोषों का उल्लेख करते हुए सरकार और दत्त (Sarkar and Dutta) ने उचित ही कहा है कि, "इस एक्ट के द्वारा शासन-शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की अवहेलना की गई। उसने ऐसे गवर्नर-जनरल की [illegible] जो अपनी समिति के कार्यों पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। इसके द्वारा [illegible] की स्थापना हुई जो सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) के सामने [illegible] तथा सुप्रीम कोर्ट ऐसी थी जिस पर देश की शान्ति तथा कल्याण का दायित्व [illegible] नहीं था।" एक आधुनिक इतिहासकार के अनुसार 'यह एक अपूर्ण

अधिनियम था जिसमें बहुत सी बातें अस्पष्ट थीं। (The Regulating Act was a half measure, and disasterously vague in many points) जो प्रथम मरहठा-युद्ध ने स्पष्ट कर दीं।' वास्तव में इस एक्ट के कारण स्थिति और भी भयंकर हो गई। यह उसी समय टूट गया जब उसको व्यवहार में लाना आरम्भ किया गया। समिति के सदस्यों से हेस्टिंग्ज का संघर्ष आरम्भ हो गया जिसके कारण उचित शासन-व्यवस्था की स्थापना असम्भव हो गई। उन्होंने गवर्नर जनरल की नीति का घोर विरोध किया और समिति के सदस्यों का व्यवहार गवर्नर-जनरल के प्रति तनिक भी मैत्रीपूर्ण नहीं था।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष दूर करने का असफल प्रयत्न—कुछ ही समय के उपरान्त यह स्पष्ट हो गया कि इस अधिनियम के दोषों के कारण शासन-व्यवस्था का उन्नत होना असम्भव है और यह अनुभव किया जाने लगा कि शीघ्र ही इन दोषों का अन्त कर दिया जाये। (i) सन् १७७८ का एक्ट—सन् १७७८ ई० में एक एक्ट इंगलैंड की पार्लियामेंट ने पारित किया जिसके अनुसार सुप्रीम कोर्ट के अधिकार सीमित कर दिए गये। गवर्नर-जनरल और उसकी समिति को उसके नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया। (ii) १७८१ का इण्डिया एक्ट—सन् १७८१ में एक अन्य विधेयक द्वारा कम्पनी के राजनीतिक तथा व्यापारिक क्षेत्र एक दूसरे से बिल्कुल अलग कर देने की व्यवस्था तथा एक बोर्ड की स्थापना जिसके अधीन कम्पनी का राजनीतिक शासन होगा, पारित करने का प्रयत्न किया गया। यह विधेयक हाउस ऑफ कामन्स (House of Commons) से तो पारित हो गया, किन्तु हाउस ऑफ लार्ड्स (House of Lords) ने अस्वीकार कर दिया।

(iii) **पिट का इण्डिया एक्ट (Pitt's India Act)**—सन् १७८४ ई० में इंगलैंड की पार्लियामेंट ने एक अन्य अधिनियम पारित किया जो उस समय के इंगलैंड के प्रधानमन्त्री पिट के नाम से विख्यात हुआ। इसके द्वारा निम्न संशोधन किये गये—(क) बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की स्थापना—इस अधिनियम के अनुसार कमिश्नरों की एक समिति की स्थापना की गई जिसका नाम बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल (Board of Control) रखा गया। इसमें चान्सलर ऑफ एक्सचेकर (Chancellor of the Exchequer), सेक्रेटरी ऑफ स्टेट (Secretary of State) और ४ प्रीवी कौंसिल के सदस्य होते थे। इनकी नियुक्ति इंगलैंड का सम्राट करता था। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स (Board of Directors) इनके पूर्णतया अधीन था और उनको इसी समिति के आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। (ख) गवर्नर-जनरल की समिति के तीन सदस्य—गवर्नर-जनरल की समिति के सदस्यों की संख्या ४ से ३ कर दी गई। इनके लिये निश्चय किया गया कि उच्च पदों पर कार्य करने वाले व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त किये जा सकते हैं। इस समिति का नियन्त्रण मद्रास तथा बम्बई की सरकार पर सुनिश्चित कर दिया गया। सन् १७८६ ई० के एक पूरक अधिनियम द्वारा यह भी निश्चित कर दिया गया कि गवर्नर-जनरल को अपनी कौंसिल की राय मानने अथवा न मानने का अधिकार है। इस प्रकार समिति के सदस्यों के अधिकार कम कर गवर्नर-जनरल के अधिकार विस्तृत कर दिये गये। इस अधिनियम का महत्व यह है कि इसके द्वारा केन्द्रीकरण की नीति

मुक्त कर दिया गया। उसने भूमि का पंच-वर्षीय प्रबन्ध किया और ठेके की व्यवस्था स्थापित की। उसने प्रत्येक जिले में एक अंग्रेजी अफसर की नियुक्ति की जो कलक्टर कहलाता था जिसका मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना था। उसने न्याय-सम्बन्धी सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फौजदारी न्यायालय की स्थापना की गई। कलकत्ते में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत की स्थापना हुई जिसमें जिलों की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती थीं। उसने कानून का संकलन करवाया। उसने पुलिस-विभाग का संगठन करवाया।

लार्ड कार्नवालिस के सुधार
(Lord Cornwallis's Reforms)

लार्ड कार्नवालिस के शासन-सम्बन्धी सुधार बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसने न्याय-विभाग और भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष प्रयत्न किया।

(i) न्याय-विभाग में सुधार (Judicial Reforms)—लार्ड कार्नवालिस ने न्याय के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किये। निजामत अदालत मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते लाई गई। इसमें अब गवर्नर-जनरल, सुप्रीम कौंसिल के सदस्य, प्रान्त का मुख्य काजी और दो मुफ्ती होते थे। उसने जिलों की अदालत में भी सुधार किया। वहाँ की फौजदारी अदालतों को तोड़कर चार प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई जिनमें से तीन बंगाल में और एक बिहार में। कुछ समय उपरान्त मैजिस्ट्रेटों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे चोरी के छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला करें। उसका ध्यान दीवानी सुधार की ओर भी आकर्षित हुआ। उसने रिवेन्यू कोर्टों (Revenue Courts) का अन्त कर दिया। उसने कलक्टरों तथा बोर्ड ऑफ रिवेन्यू को न्यायालय के कार्यों से निवृत्त किया। जिलों में दीवानी अदालतों की स्थापना की गई। इनकी अपील सुनने के लिये पटना, ढाका, मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई। प्रत्येक प्रान्तीय अदालत में तीन जज होते थे जो अंग्रेज हुआ करते थे। इनके निर्णय के विरुद्ध अपील कलकत्ता स्थित सदर दीवानी अदालत में की जा सकती थी।

(ii) लगान सम्बन्धी सुधार (Revenue Reforms)—लार्ड कार्नवालिस ने लगान वसूल करने की उचित व्यवस्था की स्थापना की ओर विशेष प्रयत्न किया। यह इसका सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार था। यह स्थायी भूमि-व्यवस्था इस्तमरारी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) के नाम से विख्यात है।

स्थायी भूमि व्यवस्था (इस्तमरारी बन्दोबस्त) (Permanent settle-)—वारेन हेस्टिंग्स ने भूमि की मालगुजारी तथा लगान के लिये पंचवर्षीय प्रबन्ध व्यवस्था की। इसके अनुसार मालगुजारी अधिक बोली बोलने वालों को ठेके पर ... की अवधि के लिये छोड़ दी जाती थी। इस व्यवस्था के दोष शीघ्र ही स्पष्ट ... देने लगे। नये जमींदारों ने किसानों का भरसक शोषण किया और कृषि की उन्नति के लिये तनिक भी ध्यान नहीं दिया। सन् १७८४ ई० में पंचवर्षीय व्यवस्था के

स्थान पर एक वर्षीय व्यवस्था स्थापित की गई, किन्तु सन् १७८६ ई० में सर जान शोर (Sir John Shore) द्वारा इसके स्थान पर दस वर्षीय व्यवस्था की स्थापना की गई। जब कार्नवालिस गवर्नर-जनरल बनकर आया तो उस समय भारत में यही व्यवस्था प्रचलित थी। कार्नवालिस इस व्यवस्था से सहमत नहीं था। वह निश्चित मालगुजारी के आधार पर स्थायी प्रबन्ध करना चाहता था, किन्तु उसके सहयोगी उसकी नीति के विरुद्ध थे। उन्होंने उसकी नीति का विरोध किया, किन्तु अन्त में, पर्याप्त वादविवाद के उपरान्त उसके सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। उसने १७९३ ई० में बंगाल में स्थायी भूमि-व्यवस्था (इस्तमरारी बन्दोबस्त) की व्यवस्था की, जिसके अनुसार निश्चित मालगुजारी पर भूमि जमींदारों को दे दी गई। इस व्यवस्था से सरकार बन्दोबस्त निश्चित करने के झगड़ों से पूर्णतया मुक्त हो गई। इस व्यवस्था से जमींदारों को बड़ा लाभ हुआ, समय के अनुसार अधिक भूमि पर खेती होने लगी और उपज में बड़ी वृद्धि हुई जिससे जमींदारों की आय दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। वे किसानों से अधिक उपज के आधार पर अधिक कर वसूल करते थे तथा नई भूमि पर कार्य करने के लिये किसानों से अलग कर वसूल किया करते थे। इसके साथ वे सरकार को केवल निश्चित की हुई मालगुजारी ही दिया करते थे। अतः इस व्यवस्था से न तो कम्पनी को ही लाभ हुआ और न किसानों को ही वरन् जमींदारों को ही लाभ पहुंचा। किसानों के साथ जमींदारों का व्यवहार अच्छा नहीं था। वे उनसे मनमाना लगान वसूल करते थे और सरकार की ओर से उनकी अवस्था को उन्नत करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। इसके लिये न्यायालय (अदालतें) अवश्य थे जिनके द्वारा किसान जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध न्याय प्राप्त कर सकता था, किन्तु उनकी व्यवस्था बहुत ही व्ययकारिणी तथा विलम्बकारिणी थी, जिससे साधारण किसान उनका लाभ उठाने में अपने आप को असमर्थ पाता था। जमींदार वर्ग सरकार का बड़ा पक्षपाती तथा समर्थक बन गया और उसने अंग्रेजी सरकार की सत्ता स्थापित रखने में भरसक सहयोग प्रदान किया।

लार्ड विलियम बेंटिक के सुधार (Reforms of Lord William Bentinck)—लार्ड विलियम बेंटिक का शासन-काल उसके सुधारों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। जिस समय वह भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया उस समय इंगलैंड बेंथम (Bentham) तथा विल्बरफोर्स (Wilburforce) के विचारों से बड़ा प्रभावित था, जो दुर्बलों के अधिकारों के समर्थक थे। लार्ड विलियम बेंटिक ने समस्त क्षेत्रों में सुधार करने का प्रयत्न किया और उसको अपने कार्य में विशेष सफलता प्राप्त हुई। उसके मुख्य सुधार अग्रलिखित हैं—

> **लार्ड विलियम बेंटिक के सुधार**
>
> (१) आर्थिक सुधार।
> (२) भूमि व्यवस्था।
> (३) लगान व्यवस्था।
> (४) भारतीयों की नियुक्ति।
> (५) न्याय-सम्बन्धी सुधार।
> (६) सामाजिक सुधार।

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)—सर्वप्रथम लार्ड विलियम बैंटिक का ध्यान आर्थिक सुधारों की ओर आकर्षित हुआ क्योंकि प्रथम ब्रह्मा युद्ध (First Brahama Battle) के कारण कम्पनी की आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी। उसने दो समितियों का निर्माण किया जिनमें से एक सिविल तथा दूसरी सैनिक थी। इन दोनों समितियों की सिफारिश पर (i) उसने बहुत से पद समाप्त कर दिये, (ii) सिविल सर्विस के नौकरों के वेतनों में कमी कर दी तथा (iii) उनके भत्ते काट दिये। (iv) सैनिक सेवाओं में दोहरा भत्ता कम कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनी को २०,००० पौंड वार्षिक की बचत हुई। (v) सन् १८२८ ई० में बैंटिक ने यह आदेश जारी किया कि जो सेनायें कलकत्ते से ४०० मील की दूरी पर स्थित हैं, उनको आधा भत्ता दिया जायेगा। यद्यपि सैनिकों द्वारा इस आदेश का घोर विरोध किया गया, किन्तु बैंटिंग ने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। (vi) उसने प्रान्तों के दौरा और अपील के न्यायालयों को भी समाप्त कर दिया। इससे कम्पनी को व्यय कम करना पड़ा। (vii) उसने अफीम के व्यापार की वृद्धि कर कम्पनी की आय में वृद्धि की।

(२) भूमि-व्यवस्था (Land Reforms)—बहुत से जमींदारों को राजाओं तथा नवाबों द्वारा भूमि जागीर के रूप में प्राप्त थी जिसको वे कोई मालगुजारी सरकार को नहीं देते थे। उसके आदेशानुसार ऐसी भूमि की पूर्ण व्यवस्था करने की घोर ध्यान दिया गया। इस प्रकार की बहुत सी भूमि कम्पनी ने अपने अधिकार में की जिससे कम्पनी की आय में लगभग ३० करोड़ रुपये की वृद्धि हुई।

(३) लगान-व्यवस्था (Revenue Reforms)—कम्पनी के अधिकार में आगरे के समीप का समस्त प्रदेश आ गया था। वैलेजली ने यहाँ स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) करना चाहा, किन्तु कम्पनी के डाइरेक्टर्स (Director of Company) उससे सहमत नहीं हुये। अतः बाध्य होकर उसको यहाँ पचवर्षीय व्यवस्था स्थापित करनी पड़ी, किन्तु इस व्यवस्था से तनिक भी लाभ नहीं हुआ। इसका अधिकांश लाभ किसानों को हुआ। अतः लार्ड विलियम बैंटिक ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। उसने समस्त भूमि की नाप-तोल करवाकर उसके मान-चित्र बनवाये। भूमि की उपज तथा स्थिति के आधार पर भूमि का विभाजन श्रेणियों में किया गया और वहाँ उसने तीस वर्षीय प्रबन्ध की व्यवस्था की। इस व्यवस्था में किसानों, जमींदारों अथवा सम्पूर्ण ग्रामवासियों ने भाग लिया था। भूमि-कर की अधिकता के कारण कम्पनी की आय में बड़ी वृद्धि हुई, किन्तु किसानों की दशा उन्नत न हो पाई।

(४) भारतीयों को नियुक्ति (Appointment of Indians)—लार्ड विलियम बैंटिक के पूर्व महत्त्वपूर्ण उच्च पदों पर केवल अंग्रेज ही नियुक्त किये जाते थे। भारतीयों के लिये इन सेवाओं के द्वार बिल्कुल बन्द थे। लार्ड विलियम बैंटिक ने निम्न पदों पर भारतीयों को नियुक्त करना आरम्भ किया, जिनका वेतन अंग्रेजों की अपेक्षा बहुत कम होता था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार भी किया गया, जिससे भारतीय

अंग्रेजी पढ़-लिखकर सरकारी सेवाओं में कार्य करने के योग्य बन सकें। १८३१ ई० में उसने एक अधिनियम द्वारा बंगाल में भारतीय जजों की नियुक्ति करने की आज्ञा प्रदान की, किन्तु उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति नहीं की गई।

(५) न्याय सुधार (Judicial Reforms)—लार्ड विलियम बैंटिक ने न्याय-व्यवस्था को उन्नत करने की ओर भी ध्यान दिया। उस समय न्याय-विभाग में निम्न तीन दोष विद्यमान थे—(१) विलम्ब,(२) अपव्यय और (३) अनिश्चितता। मुकदमों के फैसलों में बहुत समय लगता था जिसके कारण जनता को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता था। मुकदमों के बहुत दिनों तक चलते रहने के कारण उनको बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त फैसला भी निश्चित था। बैंटिक ने इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। (i) उसने प्रान्तों के दौरे तथा अपील के न्यायालय बन्द कर दिये। (ii) दीवानी अदालतों के कार्य सदर दीवानी अदालत और सेशन की अदालतों का कार्य कमिश्नरों को सौंप दिया गया। (iii) कमिश्नरों का कार्य अधिक सन्तोषजनक न होने के कारण उनके कार्य १८३२ ई० में डिस्ट्रिक्ट जजों को दे दिये गये। (iv) उसने इलाहाबाद में एक बोर्ड ऑफ रेवेन्यु (Board of Revenue) की स्थापना की। फारसी भाषा के स्थान पर उर्दू भाषा को न्यायालयों की भाषा स्वीकार किया गया।

(६) सामाजिक सुधार (Social Reforms)—लार्ड विलियम बैंटिक के उक्त सुधारों की अपेक्षा उसके सामाजिक सुधारों का महत्व बहुत अधिक है जिसकी ओर भी उसने पर्याप्त ध्यान दिया। उसके इन सुधारों को साधारणतः निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(क) ठगों का अन्त करना—भारतवर्ष में ठग बहुत हो गये थे जो भेष बदल-बदल कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहते थे और हर सम्भव रूप से जनता को लूट रहे थे। वे यात्रियों तथा पथिकों की हत्या कर उनका सामान लूट लिया करते थे। इस प्रकार जनता की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझ लार्ड विलियम बैंटिक ने इनके दमन करने का निश्चय किया। उसने सर विलियम स्लीमैन की अध्यक्षता में ठगों का अन्त करने के अभिप्राय से एक विभाग की स्थापना की। शीघ्र ही इस विभाग ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया और ठगों के सम्बन्ध में जितनी भी ज्ञातव्य बातें थीं सबका ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके उपरान्त उनका दमन-कार्य आरम्भ कर दिया गया। हजारों की संख्या में ठग बंदी किये गये। उन पर मुकदमा चलाया गया जिसके परिणामस्वरूप सैकड़ों को प्राण-दण्ड मिला और अन्य को कारागृह में बन्दी कर दिया गया। उनके बच्चों आदि के लिये सरकार ने एक औद्योगिक विद्यालय स्थापित किया जिसके द्वारा उनको सम्मानपूर्वक अपनी जीविका उपार्जन करने का ज्ञान प्राप्त हो जाये।

(ख) शिक्षा का प्रचार—लार्ड विलियम बैंटिक ने शिक्षा के प्रचार की ओर भी ध्यान दिया। पाठकों को स्मरण होगा कि १८१३ ई० के चार्टर एक्ट में यह व्यवस्था की गई थी कि कम्पनी शिक्षा प्रचार के लिये प्रति वर्ष एक लाख रुपया व्यय

करेगी, किन्तु लार्ड विलियम बैंटिक के आगमन के पूर्व तक इस दिशा में कोई प्रगति नहीं की गई। सन् १८२३ ई० में एक समिति का निर्माण किया गया जिसका नाम पब्लिक इंस्ट्रक्शन्स कमेटी रखा गया, किन्तु सरकार ब्रह्मा युद्ध में इतनी अधिक व्यस्त हो गई कि वह इस ओर ध्यान ही नहीं दे सकी। लार्ड विलियम बैंटिक ने आते ही इस कार्य को पूरा करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय यह वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ कि भारतीयों को शिक्षा किस माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये। अन्त में यह निश्चय हुआ कि शिक्षा का माध्यम अङ्ग्रेजी हो। १८३५ ई० के एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया कि समस्त स्वीकृति धन अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार में व्यय करना चाहिए। इसी वर्ष कलकत्ते में एक मैडीकल कालिज (Medical College) की स्थापना की गई।

> **सामाजिक सुधार**
> (क) ठगों का बन्द करना।
> (ख) शिक्षा का प्रचार।
> (ग) सती-प्रथा का अन्त।

(ग) सती प्रथा का अन्त—भारतीय समाज में यह प्रथा प्रारम्भ हो गई थी कि प्रत्येक स्त्री को अपने पति की चिता पर जलना होगा। इसके द्वारा स्त्रियां यह प्रदर्शित करती थीं कि उनका उनके पति के प्रति अगाध प्रेम तथा स्नेह था, परन्तु कालांतर में यह प्रथा बड़ी भयावह हो गई क्योंकि यदि कोई स्त्री ऐसा करने से इन्कार करती थी तो लोग उसके चरित्र तथा वंश को बुरा समझते थे। ऐसा प्रायः होता था कि घर वाले बलात् उसको सती कर देते थे। भारत का शिक्षित वर्ग इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। उन्होंने इस प्रथा का घोर विरोध करना प्रारम्भ कर दिया इन महानुभावों में राजा राममोहनराय का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है जिनके अकथनीय प्रयत्न और प्रोत्साहन से लार्ड विलियम बैंटिक ने १४ दिसम्बर १८२९ ई० को इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। कुछ व्यक्तियों ने इसका यह कहकर विरोध किया कि सरकार का यह कार्य हिन्दू धर्म पर आघात है, किन्तु सरकार ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। भारत की अधिकांश जनता ने इसका हृदय से स्वागत किया। इसके अतिरिक्त उसने बाल-हत्या, मानव-बलि और दासता को भी बन्द किया।

लार्ड डलहौजी के सुधार (Reforms of Lord Dalhousie)—लार्ड डलहौजी ने न केवल भारत में अङ्ग्रेजी साम्राज्य का ही विस्तार किया वरन् उसने कुछ आन्तरिक सुधार भी किये जिनका प्रभाव भारत के इतिहास पर विशेष रूप से पड़ा और उसमें आधुनिकता की झलक दृष्टिगोचर होने लगी। उसके प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) सार्वजनिक निर्माण-विभाग की स्थापना—लार्ड डलहौजी ने लोक कल्याण कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया। सन् १८५४ ई० में उसने सार्वजनिक निर्माण-विभाग (Public Works Department) की स्थापना की। अब तक निर्माण-कार्य सैनिक विभाग के अन्तर्गत था। उसने बम्बई तथा मद्रास में भी इसी प्रकार का एक विभाग खोला। उसका प्रधान तथा अन्य इन्जीनियर इङ्गलैंड से बुलाये गये।

(२) डाकखाना-विभाग की व्यवस्था को उन्नत करना—लार्ड डलहौजी ने डाकखाना-विभाग (Postal Department) की व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने टिकट-व्यवस्था प्रारम्भ की और उनकी दर निश्चित कर दी गई। पोस्ट कार्ड समस्त भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान तक दो पैसे में आ-जा सकता था तथा लिफाफा एक आने में।

(३) रेलों की व्यवस्था—रेल-पथ की योजना को लार्ड हार्डिंज ने कार्यान्वित किया किन्तु रेल चलने का कार्य लार्ड डलहौजी के समय से प्रारम्भ हुआ। उसने प्रथम भारतीय रेल का उद्घाटन किया।

(४) तार की व्यवस्था—उसके समय में तार-घरों की स्थापना हुई और साधारण जनता भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक तार भेज सकती थी। तार-घर की तार के विषय में एक विद्रोही ने कहा था—"यही वह निर्दय रस्सी है, जिसने हमें फांसी दी (The accursed string that strangled us)।"

(५) नहरों का निर्माण—लार्ड डलहौजी ने कृषि को उन्नत करने के लिये सिंचाई की व्यवस्था की। उसके काल में गंग नहर तथा बारी दोआब नहर का निर्माण हुआ।

(६) शिक्षा की व्यवस्था को उन्नत करना—भारतीयों का ध्यान अङ्ग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की ओर विशेष रूप से हुआ क्योंकि १८४४ ई० में लार्ड हार्डिंज ने यह घोषित किया था कि सरकारी नौकरियों में अङ्ग्रेजी जानने वाले व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखा जायगा। लार्ड डलहौजी ने भी शिक्षा की व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयास किया। "उसका यह कार्य भारत-हितैषिता के विचार से नहीं हुआ था। वह अपने कतिपय सुकार्यों की चमक में अपने शासनकाल के बहु-संख्यक काले कारनामों को छिपाना चाहता था।" सन् १८५४ ई० में बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सभापति सर चार्ल्स वुड (Sir Charles Wood) ने एक बहुत व्यापक शिक्षा-निर्देश-पत्र भारत सरकार के पास भेजा। भारत में आधुनिक शिक्षा के इतिहास में वुड की योजना का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह भारतीय शिक्षा के इतिहास का मेग्नाकार्टा (Magna Charta) है। इस योजना के अनुसार तीनों प्रेसीडेन्सियों और पश्चिमोत्तर प्रान्तों एवं पंजाब में सर्वजन शिक्षा विभाग तथा समूचे ब्रिटिश भारत में क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना का विधान किया गया जिसमें शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषा थी। इसके साथ-साथ उसमें ऐसी भी व्यवस्था की गई थी कि सरकार गैर-सरकारी शिक्षण-संस्थाओं को भी आर्थिक सहायता प्रदान करेगी। उसमें यह भी आदेश दिया गया था कि सरकार लन्दन विश्वविद्यालय के समान कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना करे। प्रत्येक प्रान्त में एक डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन (Director of Public Instruction), डिप्टी इन्सपेक्टर आदि कर्मचारियों की नियुक्ति होने लगी। शिक्षा का विस्तार इसी समय से प्रारम्भ होता है।

वास्तव में उसके सुधारों द्वारा भारत में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण भारतीयों को विशेष सुविधायें प्राप्त हुईं। वास्तव में शासन का कोई भी क्षेत्र

न था जिसमें उनने प्रत्यय उत्साह, योग्यता तथा साहस का परिचय नहीं दिया।

(३) शिक्षा की प्रगति
(Development of Education)

प्रारम्भ में कम्पनी की ओर से शिक्षा की प्रगति की ओर ध्यान नहीं दिया गया जिसके कारण भारत इस दिशा में पिछड़ने लगा। देशी राजाओं तथा नरेशों की सत्ता का अन्त होने के कारण विद्वानों तथा साहित्यकारों के प्रश्रय का अन्त हो गया। इसके लिये कम्पनी का पूर्ण उत्तरदायित्व है। वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने शासन-काल में कलकत्ते में एक मदरसे की स्थापना की जिसमें अरबी और फारसी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। कम्पनी की उदासीनता का कारण यह था कि इंग्लैंड में भी यह काम राज्य की ओर से नहीं किया जाता था, वरन् पादरी किया करते थे। १८१३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया था कि कम्पनी एक लाख रुपया प्रति वर्ष शिक्षा की प्रगति के लिये दिया करेगी। अतः इस दिशा में इस एक्ट का महत्व बहुत अधिक है, किन्तु कई वर्षों तक इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। भारत में अङ्ग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ सर्वप्रथम ईसाई पादरियों द्वारा हुआ क्योंकि उनका विश्वास था कि अङ्ग्रेजी शिक्षा का अध्ययन कर भारतीय स्वतः ईसाई धर्म की ओर प्रभावित होंगे और उनको अपने आप ही उनके कार्य में मनोनीत सफलता प्राप्त होगी। उनकी देखा-देखी राजा राम मोहन राय आदि उदार तथा समझदार व्यक्तियों ने १८१६ ई० में कलकत्ते में एक हिन्दू कालिज की स्थापना की। उनकी धारणा यह थी कि पाश्चात्य शिक्षा का अध्ययन कर भारतीयों का ज्ञान विकसित होगा। १८३५ ई० में लार्ड विलियम बेंटिक ने यह घोषणा कर दी कि शिक्षा अंग्रेजी माध्यम द्वारा दी जायगी। उसकी धारणा यह थी कि इस प्रकार उनको अङ्ग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय मिल जायेंगे और सरकार का व्यय कम हो जायगा। १८३६ ई० लार्ड विलियम बेंटिक ने विलियम आदम को बंगाल में शिक्षा की दशा जानने के लिये नियुक्त किया। पादरियों द्वारा कुछ अन्य स्थानों पर स्कूल और कालिजों की स्थापना की गई। सन् १८४४ ई० में लार्ड हार्डिञ्ज ने घोषित किया कि सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी जानने वाले व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखा जायगा। इसके कारण भारतीयों का ध्यान अंग्रेजी शिक्षा में अध्ययन की ओर विशेष रूप से हुआ। इसी समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार में बड़ा सहयोग प्रदान किया। लार्ड डलहौजी ने भी इस ओर कार्य किया। 'उसका यह कार्य भारत हितैषिता के विचार से न हुआ था। वह अपने कतिपय सुकार्यों की चमक में शासनकाल के बहुसंख्यक काले कारनामों को छिपाना चाहता था।' सन् १८५४ ई० में सर चार्ल्स वुड (Charles Wood) ने एक बहुत व्यापक शिक्षा निर्देश-पत्र भारत सरकार के पास भेजा। वुड की योजना के अनुसार तीनों प्रेसीडेन्सियों और पश्चिमोत्तर प्रान्तों एवं पंजाब में सर्वजन शिक्षा-विभाग तथा समूचे ब्रिटिश भारत में क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना का विधान किया गया जिसमें शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषा थी। इसके साथ-साथ उसमें ऐसी व्यवस्था की गई थी कि सरकार गैर-सरकारी शिक्षण-संस्थाओं को भी आर्थिक सहायता प्रदान करे।

उसमें यह भी आदेश दिया गया कि सरकार लन्दन विश्व-विद्यालय के समान कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना करे। इसी के अनुसार कलकत्ते में सर्व प्रथम सन् १८५७ ई० में एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

(४) लोक-कल्याण कार्य
(Public Welfare Activities)

प्रारम्भ में कम्पनी ने लोक-कल्याण कार्यों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया किन्तु बाद में उन्होंने इस ओर ध्यान दिया। उन्होंने भवनों के निर्माण, पुराने भवनों की मरम्मत तथा कुछ सड़कों की मरम्मत तथा नई सड़कों का निर्माण करना आरम्भ *किया जिनका सैनिक दृष्टि से महत्व था।* लार्ड हेस्टिंग्ज ने एक पुरानी नहर की मरम्मत करवाई जिसके कारण दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों में सिंचाई की सुव्यवस्था हुई। लार्ड विलियम बेंटिक ने ग्रांड ट्रंक सड़क की मरम्मत करवाई और लार्ड डलहौजी ने भी उस सड़क की ओर ध्यान दिया। रेल-पथ की योजना को कार्यान्वित करना लार्ड हार्डिंज के समय में प्रारम्भ हुआ। उसने गंगा नदी से निकलने वाली गंग-नहर की योजना का भी निर्माण करवाया। लार्ड डलहौजी ने लोक-कल्याण कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने १८५४ ई० में सार्वजनिक निर्माण विभाग (Public Works Department) की स्थापना की। अब तक निर्माण-कार्य सैनिक विभाग के अन्तर्गत था। उसने बम्बई और मद्रास में भी इसी प्रकार का एक विभाग खोला। उसका प्रधान इन्जीनियर तथा अन्य अफसर इंगलैंड से बुलाये गये। उसने डाकखाना-विभाग की व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने टिकट व्यवस्था आरम्भ की और उनकी दर निश्चित कर दी गई। उसके काल में गंग नहर तथा बारी दोआब नहर का निर्माण हुआ। उसके समय में रेल चली तथा समाचार भेजने के लिए तार की व्यवस्था हुई। वास्तव में उसके सुधारों द्वारा भारत में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण भारतीयों को विशेष सुविधायें प्राप्त हुई। वास्तव में शासन का कोई भी क्षेत्र ऐसा न था जिसमें उसने अपने अदम्य उत्साह, योग्यता तथा साहस का परिचय नहीं दिया हो। उसने बहुत अधिक कार्य किया जिसके कारण उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और इंगलैंड पहुंचने के कुछ ही काल उपरान्त सन् १८६० ई० में वह मृत्यु का ग्रास बन गया।

(५) नव-चेतना
(Renaissance)

कम्पनी के विभिन्न पदाधिकारियों द्वारा भारत में उसका राज्य बहुत शीघ्र बढ़ता चला गया। कम्पनी ने इस काल में भारत की दशा को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जिसके कारण जनता की अवस्था बहुत शोचनीय होनी आरम्भ हो गई। कम्पनी के कर्मचारियों का ध्यान विशेष रूप से अपने साम्राज्य के विस्तार में लगा हुआ था। जब भारतवासियों की दुर्दशा अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई तो कुछ ऐसे व्यक्तियों का जन्म हुआ जिन्होंने भारतीयों को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया और उन कारणों का मनन करना आरम्भ किया जिनके द्वारा उनको उन्नत

किया जाना सम्भव था। सर्वप्रथम अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का नग्न नृत्य बंगाल में हुआ और वहां की जनता को लोभ में फंसे हुए अंग्रेजों का शिकार बनना पड़ा। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी सर्वप्रथम बंगाल में होनी आरम्भ हुई। वहां के समाचार-पत्रों ने सरकार की विभिन्न नीतियों की आलोचना करना आरम्भ किया, किन्तु वे समस्त भारत की जनता को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाये। इसका प्रमुख कारण यह था कि यातायात के साधन सुलभ नहीं थे। इस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो भारत की उन्नति किसी एक निर्दिष्ट क्षेत्र में नहीं वरन् समस्त क्षेत्रों में करने का प्रयास करता। राजा राम मोहन राय ने इस कमी को पूरा किया और अपना समस्त जीवन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू को उन्नत करने में व्यतीत किया।

राजा राममोहन राय (Raja Ram Mohan Rai)—आपका जन्म १७७४ ई० में बंगाल के एक छोटे से गाँव राधानगर में हुआ था। आपने संस्कृत, फारसी, अरबी, बंगला तथा अंग्रेजी भाषाओं का खूब अध्ययन किया। इसके उपरान्त आपने ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी की। इन्होंने हिन्दू तथा ईसाई धर्म का भी अध्ययन किया था। ४० वर्ष की आयु में आपने नौकरी छोड़ दी और समाज सेवा के कार्य में रत हो गये। आप पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति से विशेष रूप से प्रभावित थे। आपने १८१५ ई० में भारतीय सभा तथा १८१६ ई० में युनिटेरियन समिति की स्थापना आध्यात्मिक ज्ञान तथा हिन्दू धर्म में सुधार करने के उद्देश्य से की। १८२८ ई० में आपने ब्रह्म-समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारतीय समाज से जाति-पाँति, रूढ़िवादिता तथा अन्य दोषों का अन्त करना था। उन्होंने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये भरसक प्रयत्न किया और ब्रह्म समाज के समर्थकों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उनके अकथनीय प्रयत्नों के कारण सती प्रथा का अन्त हुआ। उनके कार्य राजनैतिक क्षेत्र में भी बड़े सराहनीय हैं। उन्होंने वैधानिक रीति से राजनीतिक आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की और इसी उद्देश्य से १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। वे समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता में विश्वास करते थे। उसकी प्राप्ति के लिये उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में एक अनुरोध-पत्र (Petition) प्रस्तुत किया। वे इंगलैंड भी गये और वहां जाकर उदार व्यक्तियों से भेंट की जिनसे वहां के राजनीतिज्ञ बड़े प्रभावित हुये। उन्होंने किसानों की अवस्था को भी उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि किसानों का लगान भी निश्चित कर दिया जाये जिससे जमींदार उनसे अधिक लगान वसूल न कर सकें। उन्होंने कार्यों के विभाजन तथा प्राक्कथन की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित करवाया। वास्तव में उन्होंने भारतीय समाज की बड़ी सेवा की। इनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज द्वारा ही भारत में नव चेतना की भावना जागृत हुई जिसने कालान्तर में राष्ट्रीय भावना का स्थान लिया।*

*"Raja Ram Mohan Roy presents a most instructive and inspiring study for the new India of which he is the type and pioneer ......He embodies the new spirit.........its freedom of enquiry, its thirst for science, its large human sympathy, its pure and shifted duties, along with its reverent but not uncritical regard for the past and present...... disinclination towards revolt."

अन्य—राजा राम मोहन राय के अतिरिक्त महाराष्ट्र में बाल शास्त्री तथा
ालहरि दो महानुभावों का जन्म हुआ जिनके प्रयत्न के कारण महाराष्ट्र में नव-
ा का प्रचार हुआ। बाल शास्त्री संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेंच तथा लेटिन भाषा के
ान् थे। उन्होंने पाश्चात्य ज्ञान तथा विज्ञान का पर्याप्त अध्ययन किया। वे भी
ाज सुधार और शिक्षा के प्रचार को भारतीयों की उन्नति के लिये विशेष महत्व-
तथा आवश्यक समझते थे। उन्होंने कुछ समाचार-पत्रों का प्रकाशन भी करवाया।
ृ प्रयत्नों के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में देश-सेवा की भावना का उदय हुआ।
ालहरि बाजीराव द्वितीय के सेनापति बापू गोखले की सेवा में रह चुके थे। उनमें
प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधार
ा आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि भारतीयों को विदेशी वस्त्रों का
ष्कार कर स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि इससे अंग्रेजों के व्यापार
आघात लगेगा।

(६) आर्थिक दशा (Economic Condition)—भारत की आर्थिक दशा
ति उन्नत थी। उसका बाह्य देशों से पर्याप्त व्यापार था जिसके कारण साधारण
ता समृद्धिशाली थी। भारत के उद्योग-धन्धों के उन्नत होने के कारण भूमि पर
अधिक भार नहीं था। सब ओर सुख और शान्ति व्याप्त थी किन्तु अंग्रेजों ने
रत में आकर अपने व्यापार की वृद्धि के कारण भारतीय उद्योग-धन्धों पर कुठारा-
त करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज भारत से कच्चा माल इङ्गलैंड ले जाने लगे और
ार माल आने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत से तैयार माल विदेशों
जाना बन्द हो गया। कम्पनी की ओर से किसानों की दशा को उन्नत करने का
ई प्रबन्ध नहीं किया गया। बंगाल में इस्तमरारी बन्दोबस्त के कारण किसानों की
ा बहुत ही शोचनीय हो गई। कम्पनी ने लगान की दर निश्चित नहीं की।
मींदार उनसे अत्यधिक लगान वसूल करते थे। अतः उनके ऋण का बोझ बढ़ने लगा
ससने उनकी कमर तोड़ दी। जमींदारों का किसानों के साथ अमानुषिक व्यवहार था।
को लगान न देने पर जमींदार बड़ी कठिन सजायें दिया करते थे। वे अपनी दृष्टि
हो अपने आपको पतित समझने लगे। इस प्रकार कम्पनी के शासन-काल में भारत
ी आर्थिक स्थिति बड़ी ही असन्तोषजनक थी।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधारों का वर्णन कीजिये और यह भी बतलाये
क उन्होंने ब्रिटिश राज्य को कैसे दृढ़ किया? (१९५१)

(२) लार्ड कार्नवालिस ने कम्पनी की शासन-व्यवस्था में क्या-क्या सुधार
किये? (१९५७)

(३) लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधारों का वर्णन करो। (१९५७)

(४) "लार्ड डलहौजी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक है।" क्या
आप इस कथन से सहमत हैं? (१९५५)

(५) लार्ड विलियम बेंटिक के शासन-सुधारों का वर्णन कीजिये। उनका क्या प्रभाव पड़ा? (१९६०)

मध्य भारत—

(१) लार्ड कार्नवालिस के शासकीय सुधारों का वर्णन कीजिये। उसके कार्यों का स्थायी मूल्य क्या था? (१९५२)

(२) लार्ड विलियम बेंटिक के राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों का वर्णन कीजिये। (१९५३)

(३) "बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त एक ऐसा अभाग्यपूर्ण सुधार था जिसके द्वारा देश का नाश हुआ।" विवेचना करो। (१९५७)

(४) "लार्ड विलियम बेंटिंग ने हिन्दुस्तान को शान्ति के वरदान प्रदान किये।" विवेचना करो। (१९५७)

राजस्थान—

(१) कार्नवालिस के शासन सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो और उनकी तुलना वारेन हेस्टिंग्स के सुधारों से करो। (१९५२)

(२) लार्ड कार्नवालिस के शासन सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो। उसके सुधारों के स्थायी मूल्य की व्याख्या करो। (१९५३)

(३) इङ्गलेंड की पार्लियामेंट ने किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर नियंत्रण की स्थापना की? (१९५३)

(४) "लार्ड विलियम बेंटिंग ने भारत को शान्ति प्रदान की।" विवेचना करो। (१९५५)

(५) लार्ड विलियम बेंटिंग के सामाजिक और शासन सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो और उनका महत्व बतलाओ। (१९५५)

अन्य—

(१) कम्पनी के अन्तर्गत वैधानिक विकास का संक्षिप्त वर्णन करो।

(२) कम्पनी के अन्तर्गत गवर्नर-जनरलों द्वारा शासन-सम्बन्धी सुधारों का उल्लेख करो।

(३) कम्पनी के अन्तर्गत शिक्षा की प्रगति का वर्णन करो।

(४) कम्पनी के अन्तर्गत कौन से लोक-कल्याण के कार्य किये गये।

(५) इस काल की नव-चेतना का वर्णन करो।

(६) इस काल की आर्थिक दशा का उल्लेख करो।

४

क्रान्ति के उपरान्त नई व्यवस्था

(New Set up after the War of Independence)

कम्पनी के शासन का अन्त

(End of Company's Rule)

अंग्रेज भारतीय क्रान्ति का दमन करने में सफल हुये यद्यपि उनको विशेष ठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंगलैंड में उन क्तियों का विशेष प्रभाव स्थापित हो गया जो कम्पनी के शासन का अन्त कर रतीय साम्राज्य पर इंगलैंड के सम्राट का आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। नको अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये इससे अधिक स्वर्ण अवसर और कौन-सा हो कता था। इङ्गलैंड के पदाधिकारियों ने कम्पनी के शासन का अन्त करने का निश्चय केया। उसको पार्लियामेंट ने नया आज्ञा-पत्र प्रदान नहीं किया। पार्लियामेंट ने सन् १८५८ ई० में एक एक्ट पारित कर भारत के शासन पर से कम्पनी के अधिकार ा अन्त कर इङ्गलैंड की पार्लियामेंट को शासन का अधिकार प्रदान किया। इस एक्ट में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि भविष्य में भारत का शासन इंगलैंड की ाम्राज्ञी विक्टोरिया के नाम से होगा।

१८५८ का अधिनियम (Act of 1858)—इस अधिनियम द्वारा (i) बोर्ड आफ कन्ट्रोल और कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स का अन्त कर दिया गया और (ii) एक भारत-सचिव (Secretary of State for India) की नियुक्ति की गई जो इंगलैंड के मन्त्रि-मंडल का सदस्य होता था। उसके ऊपर भारतीय शासन का समस्त भार सौंप दिया गया। वह अपने कार्यों के लिये इंगलैंड की पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होगा। (iii) उसकी सहायता के लिये १५ सदस्यों की समिति होगी जिसका नाम इण्डियन कौंसिल (Indian Council) होगा। इनमें से ७ सदस्यों की नियुक्ति इंगलैंड की पार्लियामेंट तथा शेष ७ सदस्यों की नियुक्ति कम्पनी के डाइरेक्टरों द्वारा की जायगी। सदस्य केवल वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों तथा अपनी नियुक्ति के पूर्व १० वर्ष से अधिक भारत से बाहर न रह चुके हों। इसका अर्थ यह हुआ कि इस कौंसिल के सदस्यों को भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होना अनिवार्य था। इस कौंसिल का सदस्य ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हो सकता था जो इंगलैंड की पार्लियामेंट का सदस्य हो।

इस अधिनियम ने भारत सचिव को विशेष अधिकारों से सुशोभित किया। वह इण्डिया कौंसिल का अध्यक्ष होगा और उसको कौंसिल के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार होगा। उसको वे समस्त पत्र-व्यवहार कौंसिल के सामने

रखने होंगे जो उसके और भारत के गवर्नर-जनरल के मध्य होते रहे हैं। भारत सचिव को प्रतिवर्ष भारतीय शासन की रिपोर्ट पार्लियामेंट के सामने प्रस्तुत करनी होगी। गवर्नर-जनरल और प्रेसीडेन्सियों के गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट को प्राप्त होगा। लेफ्टीनेन्ट गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर-जनरल को प्रदान किया गया। भारतवर्ष की समस्त जल तथा थल सेना पर इंगलैंड के सम्राट का अधिकार होगा।

महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र
(Proclamation of Queen Victoria)

महारानी विक्टोरिया के नाम से एक घोषणा-पत्र तैयार किया गया जिसमें महारानी ने भारतीय जनता को विश्वास दिलाया कि अंग्रेजी सरकार सदैव भारतीयों के हित का ध्यान रखेगी। वह उनके धार्मिक विश्वासों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी तथा धर्म और जाति के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव किसी भी व्यक्ति के साथ नहीं किया जायगा। सम्राट उन समस्त सन्धियों का सम्मानपूर्वक आदर करेगा जो कम्पनी के शासन-काल में देशी राज्यों से समय-समय पर की गई थीं। उसने राजाओं के गोद लेने के अधिकार को न्यायसंगत घोषित किया और यह भी घोषणा की गई कि अब से अंग्रेज भारत-भूमि में अपना राज्य विस्तार करने को ओर कोई कदम नहीं उठायेंगे। इसके द्वारा भारतीयों की शंकाओं का समाधान हो गया। यह घोषणा-पत्र लार्ड केनिंग ने १ नवम्बर, १८५८ ई० को इलाहाबाद में पढ़ कर सुनाया जिसमें लगभग समस्त राजा, महाराजाओं ने भाग लिया था। इस घोषणा-पत्र के कुछ शब्दों को यहां उल्लिखित करना पाठकों के लिये हितकर होगा।

"हम देशी नवाबों के लिये यह घोषित करते हैं कि जो सन्धियां एवं प्रतिज्ञायें प्रतिष्ठित ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा उनके साथ सम्पन्न की गई हैं, हम उनको स्वीकार करते हैं। उनको अक्षरशः निभाया जायेगा और हम उनसे भी इसी प्रकार निभाए जाने की आशा करते हैं।"

"और हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन चाहे वे किसी भी जाति अथवा धर्म के क्यों न हों, हमारे कार्यालय और सरकारी नौकरियों के उन समस्त पदों पर नियुक्त किये जावें जिनका कार्य वे अपनी शिक्षा, चतुराई तथा योग्यता के द्वारा उचित रूप से करने योग्य हों।"

"हम इस बात को जानते हैं और सम्मान करते हैं कि भारतवासी अपनी मातृभूमि को कितना प्रेम करते हैं। हम राज्य की आवश्यकतानुसार उनके भूमि सम्बन्धी समस्त अधिकारों की रक्षा करेंगे।"

"ईश्वर की कृपा से जब देश में पुनः शान्ति की स्थापना हो जायेगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि देश में शान्तिपूर्वक उद्योगों की उन्नति की जायेगी, प्रजा को लाभ पहुँचाने वाले कार्य किये जायेंगे और ऐसा शासन-प्रबन्ध किया जायेगा जिससे इस के समस्त व्यक्तियों को लाभ हो। उन्हीं की उन्नति में हमारी शक्ति है, उन्हीं

तुष्टि में हमारा कल्याण है और उनकी कृतज्ञता ही हमारा सर्वोत्कृष्ट पारितोषिक है।*

घोषणा के भावों में संदेह नहीं किया जा सकता और उनको अत्यन्त मर्यादित एवं सुन्दर भाषा में प्रकट किया गया। घोषणा का भारत में भावातीत स्वागत हुआ और भारतीयों के हृदय में ब्रिटिश-सम्राट के प्रति आशातीत तथा श्रद्धा के भाव हिलोरें लेने लगे। इसका एकमात्र दोष यह था कि उसके अन्तर्गत जो भी प्रतिज्ञायें की गई थीं वे कभी भी कार्यान्वित नहीं हो पाईं।

अंग्रेजी सिपाहियों का विद्रोह (Revolt of English Soldiers)—जब इस घोषणा-पत्र का प्रचार समस्त देश में किया जा रहा था तो उसी समय अंग्रेजी सैनिकों ने विद्रोह किया। वे कम्पनी की अधीनता को छोड़ सम्राट की अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहते थे। उन्होंने सरकार के सामने अतिरिक्त वेतन की माँग की। भारत के तत्कालीन वाइसराय केनिंग (Canning) ने उनके विरुद्ध दृढ़ नीति का अनुसरण कर बहुत से सैनिकों तथा अफसरों को उनके पद से हटा दिया। इस प्रकार इस विद्रोह को शान्त किया गया।

सेना का संगठन (Organisation of the army)—क्रान्ति का दमन करने के उपरान्त पदाधिकारियों का ध्यान सेना का संगठन करने की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि भारत की रक्षा केवल उस समय सम्भव है जब भारत में पर्याप्त अंग्रेजी सेना हो। उन्होंने २ : १ के अनुपात में भारतीय तथा अंग्रेजी सेना की संख्या निश्चित की। इसके अनुसार भारतीय सैनिक की संख्या कम कर दी गई और अंग्रेजी सैनिकों की संख्या में वृद्धि की गई। १८६१ ई० में भारत में ब्रिटिश सेना की संख्या बढ़ाकर ७६ हजार कर दी गई और स्थानीय सेना १२०,००० रह गई।

---

* "We hereby announce to the native princes of India that all treaties and engagements made with them by or under the authority of the Honourable East India Company are by us accepted, and will be scrupulously maintained and we look for the like observance on their part."

"And it is our further will that, so far as may be, our subjects of whatever race or creed, be freely and impartially admitted to office in our service, the duties of which they may be qualified by their education, ability and integrity to discharge."

"We know and respect the feelings of attachment with which the natives of India regard the lands inherited by them from their ancestors, and we desire to protect them in all rights connected therewith subject to the equitable demands of the state, and we will that, generally in framing and administering the law, due regard to be paid to the ancient rights, usages and customs of India."

"When by the blessing of Providence, internal tranquility shall be restored, it is our earnest desire to stimulate the peaceful industry of India to promote works of public utility and improvement and to administer its government for the benefit of all our subjects resident therein. In their prosperity will be our strength, in their contentment our security and in their gratitude our best reward."

भारतीयों के हाथ से छोपखाना लेकर अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया गया।

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)—इस समय आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी क्योंकि क्रान्ति के दमन में बहुत अधिक धन का व्यय हो चुका था। लार्ड केनिंग ने सरकार की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया। विलसन नामक कुशल अर्थनीतिज्ञ भारत आया जिसने आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिये निम्न सुझाव रखे—

(१) ५०० रुपये से अधिक की आय पर आय-कर (Income Tax) लगाना,

(२) व्यापार एवं व्यवसाय पर लाइसेंस कर लगाना तथा

(३) भारतीय तम्बाकू पर कर लगाना।

इसके अतिरिक्त उसने आयात-कर और निर्यात-कर लगाने की व्यवस्था भी की। आयात-कर १० प्रतिशत और निर्यात-कर ४ प्रतिशत निश्चित किया गया। नमक-कर में वृद्धि हुई।

इन सुधारों के कारण सरकार की आय में बड़ी वृद्धि हुई। इसके उपरान्त उसने सरकारी व्यय को कम करने की व्यवस्था की। उसने सैनिक तथा नागरिक दोनों विभागों के व्यय में पर्याप्त कमी की। इसके द्वारा सरकार की आर्थिक स्थिति बड़ी सन्तोषजनक हो गई।

लार्ड केनिंग के अन्य सुधार (Other reforms of Lord Canning)—लार्ड केनिंग ने अन्य सुधारों की ओर ध्यान दिया। उसने निम्न प्रमुख सुधार किए—

(i) उसने शिक्षा का प्रचार करने का प्रयत्न किया किन्तु धनाभाव के कारण उसके प्रयत्नों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। १८५७ में लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किये गये।

(ii) उसके समय में हाई-कोर्ट एक्ट पास किया गया जिसके अनुसार कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में हाई कोर्ट की स्थापना की गई। सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतों का अन्त कर दिया गया।

(iii) किसानों का अधिकार मौरूसी कर दिया गया जो बारह वर्ष से किसी भूमि को जोत रहे थे।

(iv) जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकार सीमित कर दिये गये।

(v) उसके समय में ई० आई० आर० और जी० आई० पी० रेलवे लाइनों का विस्तार किया गया।

(vi) ग्राण्ड-ट्रंक रोड का पुनरुद्धार किया गया।

सन् १८६२ ई० में अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाने के कारण उसने त्याग-पत्र दिया और वह इंगलैंड वापिस चला गया।

प्रश्न

१. कम्पनी के उपरान्त नई व्यवस्था का वर्णन करो।

५ अंग्रेजों की सीमान्त नीति

(१८५७—१९४७ तक)

(Frontier Policy of the Britishers 1857 to 1947)

अंग्रेजों की सीमान्त नीति का वास्तविक रूप में उस समय आरम्भ होता है जिस समय से अंग्रेजों ने सिन्ध और पंजाब को अपने अधिकार में कर लिया। पाठकों को स्मरण होगा कि अंग्रेजों का अधिकार सिन्ध पर १८४३ ई० में तथा पंजाब पर १८४९ ई० में स्थापित हो गया था। इन विजयों के परिणामस्वरूप अंग्रेजी साम्राज्य की सीमायें उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान-राज्य की सीमाओं के साथ हो गई थीं। अतः यह स्वाभाविक था कि अब अंग्रेज अफगानिस्तान राज्य की ओर अधिक आकृष्ट हों। अंग्रेजों ने सदा से इस बात का विशेष रूप से प्रयत्न किया कि अफगानिस्तान राज्य पर उनके अतिरिक्त किसी अन्य विदेशी राज्य का कोई प्रभाव स्थापित न हो। इस समय तक अंग्रेजों को फ्रांसीसी आक्रमण का भय इस दिशा में पूर्णतया समाप्त हो गया था, किन्तु उसका स्थान योरुप की राजनीति में रूस ने ले लिया था जो मध्य एशिया में दिन प्रतिदिन अपने प्रभावक्षेत्र का विस्तार करने में संलग्न था। अतः अब अंग्रेजों को फ्रांस के स्थान पर रूस के आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया। जैसे-जैसे इस आक्रमण का भय बढ़ता गया वैसे-वैसे ही अंग्रेजों की नीति अफगानिस्तान के प्रति दृढ़ तथा कठोर होती गयी। पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने से अंग्रेज राजनीतिज्ञों के सामने एक समस्या और उत्पन्न हुई कि पहाड़ी प्रदेशों में निवास करने वाली अर्द्धसभ्य जातियों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जाये। वास्तव में ये जातियां सैद्धान्तिक रूप में अफगानिस्तान के आधीन थीं, किन्तु व्यावहारिक रूप में ये पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। ये जातियां बड़े गौरव के साथ कहा करती थीं "कि हमने कभी भी किसी की आधीनता स्वीकार नहीं की है।" अंग्रेजों ने इन अर्द्धसभ्य जातियों के छुट-पुट आक्रमणों से सीमान्त प्रदेश में रहने वाले निवासियों की रक्षा करने का प्रयास किया किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। जब उनके आक्रमणों का विस्तार तथा वेग बढ़ गया तो अंग्रेजों को बाध्य होकर उन पहाड़ी प्रदेशों पर आक्रमण करना पड़ा, और उन्होंने इन जातियों का दमन किया किन्तु इससे भी सीमान्त प्रदेश में शान्ति की स्थापना न हो सकी जिसके कारण अंग्रेजों को उस ओर से बड़ा सतर्क रहना पड़ा। लार्ड केनिंग (Lord Canning) और एलगिन (Elgin) के समय में पंजाब का गवर्नर सर जॉन लारेंस (Sir John Lawrence) था। उसको सीमान्त प्रदेशों का बहुत अधिक अनुभव था।

लार्ड केनिंग (Lord Canning) के पश्चात भारत का वाइसराय लार्ड एलगिन (Lord Elign) नियुक्त हुआ, किन्तु वह अधिक काल तक शासन न कर सका नियुक्ति के एक वर्ष पश्चात् ही पंजाब में धर्मशाला नामक स्थान पर उसका देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त पंजाब का गवर्नर सर जॉन लारेंस (Sir John Lawrence) जो इस समय इण्डिया कौंसिल का सदस्य था भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। उसकी नियुक्ति का प्रमुख आधार यही था कि वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा की वास्तविकता से पूर्ण परिचित था जहाँ कि कबाइली जातियाँ अपना संगठन कर सीमान्त प्रदेशों में भय उत्पन्न कर रही थीं। उन्होंने अपना संगठन पेशावर के उत्तर और सिन्धु नदी के पश्चिम में सिताना नामक स्थान में कर लिया था। यह बस्ती वहाबी नामक धर्मान्ध मुसलमानों की बस्ती थी। पटना में उनका फौजी भरती

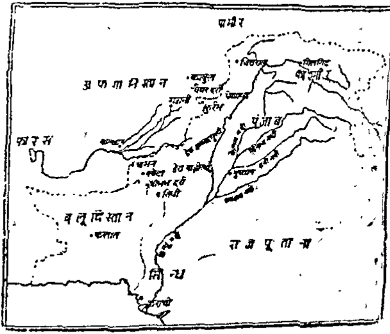

उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश

केन्द्र तथा एजेंसी थी। इनका प्रभाव कुछ कम से समस्त भारत में फैला हुआ था। उनके विरुद्ध १८५३ ई० और १८५८ ई० में आक्रमण किये गये थे। १८६१ ई० में वे पटना में पुनः सक्रिय हुये और १८६३ ई० में उन्होंने पंजाब के लिये बड़ा भारी भय उत्पन्न कर दिया। अंग्रेजों ने एक विशाल सेना के साथ उन पर आक्रमण किया। कबाइलियों ने अंग्रेजी सेना का अम्बेला नामक दर्रे में सामना किया और घोर लड़ाई

तक अंग्रेजी सेना आगे नहीं बढ़ सकी। अन्त में अंग्रेजी सेना सफल हुई और उसने मल्का को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अंग्रेज और अफगानिस्तान
(The Britishers and Afghanistan)

इससे पूर्व कि लार्ड लारेंस (Lord Lawrence) की अफगानिस्तान-राज्य के प्रति नीति की समीक्षा की जाए यह अधिक उचित होगा कि यह बतला दिया जाये कि इस समय अंग्रेज और अफगानिस्तान-राज्य के सम्बन्ध किस प्रकार के थे। पाठकों को स्मरण होगा कि अंग्रेजों ने प्रथम अफगान-युद्ध में सफल होने के उपरान्त बाध्य होकर दोस्त मुहम्मद को पुनः अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया। उसने जीवन-पर्यन्त अंग्रेजों से मैत्री-व्यवहार रखा। १८५५ ई० में अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद और भारत सरकार के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अंग्रेजों अफगानिस्तान की आन्तरिक नीति में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा अमीर अंग्रेजों के शत्रुओं तथा मित्रों को अपना शत्रु तथा मित्र समझेगा।* उसने भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय अंग्रेजों के प्रति पूर्ण भक्ति का परिचय दिया और भारत पर आक्रमण नहीं किया यद्यपि इसकी सम्भावना बहुत अधिक थी। गत पृष्ठों में इस विषय पर प्रकाश डाला जा चुका है कि यदि इस समय अफगानिस्तान की ओर से आक्रमण हो जाता तो अंग्रेजों की परिस्थिति बहुत गम्भीर हो जाती। सर जॉन लारेंस (Sir John Lawrence) ने तो इस समय भारत सरकार को यह आदेश भी दिया था कि 'हमको अमीर को पेशावर दे देना चाहिये जिससे अमीर उनका दोस्त बना रहे'। किन्तु केनिंग (Canning) उसकी इस बात से सहमत नहीं हुआ। उसने लारेंस को पेशावर को अपने अधिकार में रखने की आज्ञा दी।

लार्ड लारेंस की अफगानिस्तान सम्बन्धी नीति (Policy of Lord Lawrence towards Afghanistan)—लार्ड लारेंस दृढ़ संकल्प वाला तथा योग्य और समझदार व्यक्ति था। पश्चिमी सीमा की समस्या के सम्बन्ध में लार्ड लारेंस का अपना अलग एक निश्चित मत था कि शान्तिपूर्ण उपायों से अफगानिस्तान में बिना हस्तक्षेप किये उसके अमीर को अपना मित्र बनाया जाये। जबकि अग्रगामी नीति (Forward Policy) के समर्थकों का कथन था कि अफगानिस्तान पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया जाये और उस देश की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो। रूस के आक्रमण के सम्बन्ध में लार्ड लारेंस का यह मत था कि रूस और इंगलैण्ड के बीच सन्धि द्वारा दोनों राज्यों के प्रभाव क्षेत्रों का विभाजन कर दिया जाए जिससे आगे कोई भी अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने के लिए अपना कदम न उठाए। इससे स्पष्ट

*"By this treaty the Indian Government "undertook not to violate the territory of the Amir, and the latter agreed to be "the friend of the friends and enemy of the enemies of the Honourable East India Company."
—An Advanced History of India Page 830.

हो जाता है कि वह रूस की मध्य एशिया में बढ़ती हुई शक्ति से उदासीन नहीं था, वरन् उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर वह सन्धि द्वारा प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में था। उसके सामने एक अन्य समस्या पंजाब और सिन्ध के पश्चिमी प्रदेशों में रहने वाली विभिन्न अर्द्ध सभ्य जातियों की थी जिनके अधिकार में समस्त प्रसिद्ध दर्रे थे जो भारत को अफगानिस्तान से मिलाते थे। इनके सम्बन्ध में अग्रगामी नीति (Forward Policy) यह थी कि भारत-सरकार इन पर अपना अधिकार स्थापित कर ले और इन जातियों का इतना दमन कर दिया जाए कि वे कभी सर उठाने योग्य न रहें। क्वेटा पर अधिकार करने का प्रस्ताव सिन्ध के शासकों द्वारा आया, किन्तु उसने उसको स्वीकार नहीं किया। लार्ड लारेंस की नीति इन जातियों के सम्बन्ध में यह थी कि उनके आन्तरिक व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाए, उनको सभ्य बनाने की चेष्टा की जाए और जब वे आक्रमण करें तो उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाये। इस प्रकार उसने तीनों पहलुओं का समाधान शान्तिमय उपायों द्वारा करना उचित समझा। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने उसकी तटस्थता की नीति को महान् अकर्मण्यता (Masterly Inactivity) की नीति की संज्ञा प्रदान की, किन्तु उसको अथवा उसकी नीति को अकर्मण्यता की संज्ञा प्रदान करना उस महान् व्यक्ति के साथ अन्याय करना है। वास्तव में वह तटस्थता की नीति का समर्थक तथा पालन करने वाला उसी समय तक था जब तक कि अफगानिस्तान का अमीर फारस या रूस के प्रभाव क्षेत्र से बाहर है परन्तु यदि वह उसके प्रभाव-क्षेत्र में आ जाये तो लारेंस कभी भी इस नीति को पालन करने के लिये उद्यत न होता जैसा स्वयं उसने कहा है कि हिरात के फारस के अधिकार में चले जाने की सम्भावना पर हम अफगानिस्तान के अमीर की भरसक सहायता फारस के विरुद्ध करेंगे। १८६८ ई० में उसने शेरअली को आर्थिक सहायता इसी उद्देश्य से दी कि वह अपने राज्य के आन्तरिक संघर्षों का अन्त कर अपनी शक्ति को दृढ़ तथा संगठित कर फारस और रूस से मुकाबला करने में समर्थ हो सके और उसके साथ-साथ अंग्रेजों का मित्र बना रहे। वास्तव में उसकी इच्छा अफगानिस्तान को सशक्त बनाने की थी न कि शक्तिहीन करने की जो किसी भी समय रूस अथवा फारस के सामने घुटने टेक दे।

अफगानिस्तान में उत्तराधिकारी युद्ध (War of Succession in Afghanistan)—सन् १८६३ ई० में अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु ८० वर्ष की आयु में हुई। शीघ्र ही अफगानिस्तान में उसके सोलह पुत्रों के बीच उत्तराधिकार युद्ध प्रारम्भ हो गया। शेरअली को दोस्त मुहम्मद अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गया था, किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। शेरअली ने प्रारम्भ में काबुल की गद्दी पर अधिकार किया और तीन वर्ष तक अमीर बना रहा। उसके प्रतिद्वन्दियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। शेरअली ने भारत सरकार से सहायता की प्रार्थना की। उस समय सर जॉन लारेंस भारत का वाइसराय था। उसने शेरअली को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की और घोषित किया कि हम अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कुछ समय पश्चात् शेरअली की स्थिति बड़ी

हो गई। सन् १८६६ ई० में शेरअली काबुल से तथा १८६७ ई० में कन्दहार से भागने पर बाध्य हुआ। अफजल खां ने अपने आपको अमीर घोषित किया, किन्तु उसका उसी वर्ष देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु पर उसका भाई आजम खां अमीर के पद पर आसीन हुआ, परन्तु शेरअली ने १८६८ ई० में कन्दहार और १८६६ ई० में काबुल पर अधिकार कर लिया। अजीम ईरान भाग गया और अफजल खां के पुत्र अब्दुर्रहमान ने ताशकन्द में शरण ली और रूस का पेंशन भोगी बन गया। इस प्रकार अफगानिस्तान का गृह-युद्ध समाप्त हुआ और शेरअली अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन करने में सफल हुआ।

सर जॉन लारेंस की नीति (Policy of Sir John Lawrence)—सर जॉन लारेंस ने युद्ध में किसी भी उत्तराधिकारी की किसी भी प्रकार की सहायता नहीं की। उसने पूर्णतया अपनी सुनिश्चित तटस्थता की नीति का पालन किया। १८६४ ई० में उसने शेरअली को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया, किन्तु जब १८६६ ई० में अफजल खां ने काबुल पर अधिकार किया और शेरअली के अधिकार में हिरात और कन्दहार थे तो उसने अफजल खां को काबुल का शासक और शेरअली को कन्दहार और हिरात का शासक स्वीकार किया। जब शेरअली ने समस्त अफगानिस्तान को अपने अधिकार में कर लिया तो लारेंस ने उसको अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया और उसके पास ६,००० पौंड तथा ३५,००० हथियार उपहार स्वरूप भेजे।

लारेंस की नीति की समीक्षा (Critical estimate of Lord Lawrence's Policy)—लारेंस ने अफगानिस्तान के प्रति जिस नीति को अपनाया वह वास्तव में बहुत ही उचित थी। यह सत्य है कि कुछ समय तक शेरअली का व्यवहार अंग्रेजों के प्रति अच्छा नहीं रहा, किन्तु बाद में जब लारेंस ने उसको अमीर स्वीकार कर धन और अस्त्र उपहार-स्वरूप भेंट किए तो वह अंग्रेजों की ओर अवश्य आकर्षित हो गया। यदि लारेंस युद्ध के मध्य में किसी भी पक्ष की सहायता करता तो दूसरे पक्ष के लोग उसके विरुद्ध हो जाते और सम्भव था कि इस बार के हस्तक्षेप का परिणाम भी वही होता जो प्रथम अफगान युद्ध का परिणाम हुआ था। अफगान उस व्यक्ति को अपना अमीर मानने के लिए तैयार किसी भी दशा में नहीं होते जो अंग्रेजों की सहायता के बल पर अफगानिस्तान का अमीर बनने में सफल होता। यह भी सम्भव था कि फिर अन्य प्रतिद्वन्दी रूस की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते और युद्ध अफगान युद्ध न रहकर आंग्ल-रूस युद्ध का रूप धारण कर लेता। लारेंस की नीति के आलोचकों का कथन है कि उसने अपनी नीति का पूर्णतया पालन नहीं किया, क्योंकि बाद में उसने शेरअली को सहायता प्रदान की, किन्तु वे भूल जाते हैं कि उसकी नीति का प्रधान अंग अफगानिस्तान राज्य का शक्तिशाली होना ही था। उसकी नीति की सबसे विशिष्ट विशेषता यह है कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध को होने से बचा लिया।*

* In any case it must be admitted that he succeeded in isolating the Afghan Civil War, and prevented any international conflict.
—An Advanced History of India, P. 831.

रूस के प्रति लारेंस की नीति (Policy of Lawrence towards Russia)—उक्त पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है कि रूस बड़ी तेजी से मध्य एशिया में बढ़ता हुआ चला आ रहा था। सन् १८६८ ई० में उसने ताशकन्द और बुखारा को अपने अधिकार में किया तथा बाद में खीवा भी उसके अधिकार में आ गया। रूस की बढ़ती हुई शक्ति की ओर लारेंस उदासीन नहीं था। उसने इस भय का अन्त करने के लिए इंगलैंड की सरकार को सुझाव दिया कि वह रूस के साथ सन्धि कर उसके प्रभाव क्षेत्र को सीमित कर दे ताकि वह भविष्य में उसके आगे न बढ़ पावे। यह स्वीकार करना भूल होगी कि लार्ड लारेंस रूस के भय से उदासीन था। वह भी उस खतरे को उतना ही भयकर समझता था जितना कि इंगलैंड के अन्य राजनीतिज्ञ समझते थे। अन्तर केवल समस्या के समाधान का था। वह शान्तिमय तथा कूटनीतिक उपाय से इस समस्या का अन्त करना चाहता था।

लारेंस की नीति का मूल्यांकन (Estimate of Lawrence's policy)—अतः यह स्वीकार करना होगा कि लार्ड लारेंस की नीति अकर्मण्यता की नीति न होकर जागरूकता तथा यथावश्यक हस्तक्षेप की नीति थी। भविष्य के इतिहास ने उस नीति को योग्यतम सिद्ध किया और जब अंग्रेजों ने उनकी नीति का परित्याग कर लार्ड लिटन (Lord Lytton) के शासन में उग्र नीति (Forward Policy) को अपनाया तो उसके भीषण परिणाम निकले और द्वितीय अफगान युद्ध हुआ। उस नीति का महत्व इसी बात से सिद्ध होता है कि आने वाले वायसरायों ने भी कुछ आवश्यक संशोधन तथा परिवर्तनों के साथ उसकी नीति के अनुसार ही आचरण किया।

लार्ड मेयो की नीति (Lord Mayo's policy)—लार्ड लारेंस के स्थान पर १८६९ ई० में लार्ड मेयो भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया। यद्यपि वह अनुदार दल का सदस्य था और उसकी नियुक्ति का आशय यह था कि अफगानिस्तान के साथ उस नीति का परित्याग किया जाए जिसको लार्ड लारेंस ने अपनाया जो 'महान् अकर्मण्यता' की नीति के नाम से विख्यात हुई, किन्तु उसने लार्ड लारेंस की नीति को ही श्रेयस्कर समझकर अपनाई। उसने लारेंस को उसकी नीति की प्रशंसा करते हुए लिखा कि "मेरा विश्वास है कि आपने शेरअली के पास रुपये तथा अस्त्र भेजकर एक ऐसी नीति का आविष्कार किया जिसका प्रयोग हम दोनों के लिये सब से अधिक लाभप्रद होगा। मैं आपकी ही नीति का अनुसरण करना चाहता हूँ।"*

अम्बाला दरबार (Ambala Darbar)—यह आशा की गई थी कि लार्ड लारेंस भारत से जाने के पूर्व शेरअली से भेंट करें किन्तु वह बहुत समय तक अपने अनियन्त्रित राज्य के झगड़ों में उलझा रहने के कारण भारत न आ सका। क्योंकि शेरअली अफगानिस्तान से चला भी नहीं था कि लार्ड लारेंस भारत से चला गया था। जब शेरअली मार्च १८६९ ई० को अम्बाला पहुँचा तो लारेंस के उत्तराधिकारी लार्ड मेयो

---

* "I believe that when you sent to Shere Ali the money and arms last December, you laid the foundation of a Policy which will be of the greatest use to us hereafter, I wish to continue it." —Lord Mayo

(Lord Mayo) ने उसका स्वागत किया। नीति को चालू रखने की परम्परा में कोई अन्तर नहीं पाया क्योंकि जैसा उक्त पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है कि उसने लार्ड लारेंस की नीति को ही अफगान मामलों में अपनाया। शेरअली भारत से अधिकतम निकट सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। शेरअली लार्ड मेयो के शिष्ट व्यवहार तथा अम्बाला की तड़क-भड़क एवं आतिथ्य-सत्कार से बड़ा प्रभावित हुआ। वह अङ्ग्रेजों से एक सुनिश्चित सन्धि करना चाहता था।

शेरअली के उद्देश्य (Aims of Sher Ali)—उसने अपने निम्न उद्देश्य लार्ड मेयो के सामने उपस्थित किये—

(१) भारत सरकार अफगानिस्तान को प्रति वर्ष धन की सहायता प्रदान करे।

(२) उसके राजवंश को मान्यता प्राप्त हो।

(३) उसकी मृत्यु के उपरान्त भारत सरकार उसके ज्येष्ठ पुत्र याकूब खां के स्थान पर उसके छोटे पुत्र अब्दुला जान को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार करे।

(४) अफगानिस्तान के संकट के समय में भारत सरकार उसको आर्थिक तथा सैनिक सहायता प्रदान करे,

(५) दोनों सरकार एक दूसरे के शत्रु को अपना शत्रु समझें।

लार्ड मेयो शेरअली द्वारा प्रस्तावित उक्त शर्तों के मानने के लिये तैयार नहीं था क्योंकि उन शर्तों को स्वीकार करने का अर्थ होता कि अंग्रेजों ने अफगानिस्तान तथा शेरअली के वंश को संरक्षण प्रदान किया जिसको लार्ड मेयो प्रदान करना नहीं चाहता था क्योंकि वह अफगानिस्तान के मामलों में लार्ड लारेंस की नीति का समर्थक था। उसने कुछ आश्वासन देकर अपने शिष्ट व्यवहार से शेरअली को प्रभावित अवश्य किया, किन्तु वह उससे कुछ स्पष्ट प्रतिज्ञा नहीं कर पाया। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता था कि शेरअली लार्ड मेयो से सन्तुष्ट होकर स्वदेश वापिस गया, किन्तु वह वास्तव में वह अंग्रेजों की तटस्थता की नीति के कारण बहुत दुःखी था। अमीर को प्रति समय रूस का भय बना रहता था जो मध्य एशिया में अपनी शक्ति का विस्तार करने के कार्य में संलग्न था।

लार्ड मेयो की रूस के प्रति नीति (Lord Mayo's policy towards Russia)—लार्ड मेयो ने भी रूस के सम्बन्ध में उसी नीति को स्वीकार किया जिसका प्रतिपादन लार्ड लारेंस ने किया था। पाठकों को स्मरण होगा कि लारेंस ने इङ्गलैंड की सरकार पर इस बात का जोर डाला था कि वह रूस के राजनीतिज्ञों से बात-चीत करने के उपरान्त दोनों शक्तियों का प्रभाव-क्षेत्र निश्चित करने का प्रयत्न करे। यह बात निश्चित करने के उद्देश्य से ब्रिटिश पर-राष्ट्र मन्त्री क्लेरेंडन और रूस के प्रसिद्ध मन्त्री प्रिंस गार्चकाफ में वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। सन् १८६७ ई० में लार्ड मेयो ने कलकत्ते से डगलस फारसाइथ को रूसी अधिकारियों को भारत सरकार का दृष्टिकोण समझाने के उद्देश्य से सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) भेजा। इस वार्तालाप के परिणामस्वरूप रूस ने शेरअली को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया।

तथा उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि अफगानिस्तान का राज्य रूस के प्रभाव क्षेत्र से बाहर रहेगा। वास्तव में इस समझौते का महत्व दोनों देशों के लिये बहुत होता यदि दोनों देशों के राजनीतिज्ञ इस समझौते के अनुसार आचरण करते और हृदय से उसका समर्थन करते। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् यह समझौता अन्य राजनीतिक तथा कूटनीतिक समझौतों के समान रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया।

लार्ड नार्थब्रुक की नीति (Lord Northbrook's Policy)—अण्डमान द्वीप में लार्ड मेयो का वध कर दिया गया। उसके स्थान पर लार्ड नार्थब्रुक भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। उसके शासन-काल में रूस ने खीवा पर अधिकार स्थापित कर लिया जिसके कारण अफगानिस्तान का अमीर शेरअली रूस से बड़ा भयभीत हुआ और उस यह आशंका उत्पन्न हुई कि अब शीघ्र ही रूस अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगा। परिस्थिति में अमीर शेरअली ने अपना राजदूत लार्ड नार्थब्रुक की सेवा में भेजा जिस उससे प्रार्थना की कि वह रूस के आक्रमण के विरुद्ध स्पष्ट रूप की गारन्टी प्रदान करे। लार्ड नार्थब्रुक इस समय अफगानिस्तान को स्पष्ट रूप की गारण्टी देने उद्यत था, किन्तु भारत सचिव ने उसकी नीति को स्वीकार नहीं किया। उसने केवल इतना ही कहा कि "हम अपनी पूर्व निश्चित नीति का पालन करेंगे (We shall maintain our settled policy in Afghanistan)। इस प्रकार एक बार फिर अंग्रेजों ने शेरअली को अपनी ओर मिलाने का अवसर खो दिया। यदि इस समय अंग्रेज शेरअली को सहायता का आश्वासन प्रदान कर देते तो वह उनसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता और उसका झुकाव रूस की ओर न होता। अंग्रेजों की इस नीति के कारण वह बड़ा क्षुब्ध हुआ। भारत-सचिव ड्यूक आफ आरगाइल ने लार्ड नार्थब्रुक को यह आदेश दिया कि वह अमीर को कोई स्पष्ट आश्वासन प्रदान न करे वरन् लार्ड मेयो के अस्पष्ट आश्वासन को दोहरा दे। इसी समय शेरअली ने अपने ज्येष्ठ पुत्र याकूब खां को बन्दी बनाकर अपने कनिष्ट पुत्र अब्दुल्ला जा को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। लार्ड नार्थब्रुक ने उसके इस कार्य की भर्त्सना की जिसको शेरअली ने शान्तिपूर्वक सहन कर लिया किन्तु उसका हृदय अंग्रेजों से क्षुब्ध होने लगा। उसी समय अफगानिस्तान और फारस के मध्य अफगानिस्तान सीमा के सम्बन्ध में कुछ झगड़ा खड़ा हुआ। भारत सरकार ने इस झगड़े में पंच (Arbitrator) का कार्य किया। उसके निर्णय से शेरअली अंग्रेजों से क्षुब्ध हो गया और उसने यह निश्चय किया कि इंगलैंड के स्थान पर उसको रूस से मित्रता करनी अधिक हितकर होगी। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेज ही शेरअली को अप्रसन्न करने के लिए उत्तरदायी थे। शेरअली ने तो प्रयत्न किया था कि अंग्रेजों से मैत्री सम्बन्ध की स्थापना की जाय। इसके बाद शेरअली ने रूसी जनरल काफमैन से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ कर दिया और अफगानिस्तान की राजधानी काबुल में रूसी प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा।

उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति में परिवर्तन (Change in the North West Frontier policy)—मार्च १८७४ ई० में इंगलैंड में उदार दल के हाथ से

सत्ता निकलकर अनुदार दल के हाथ में सत्ता आई जिसके परिणामस्वरूप डिजरायली (Disreli) इंगलैंड का प्रधान मन्त्री तथा लार्ड सेलिसबरी (Lord Salisbury) भारत-सचिव बना। अनुदार दल साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। वह अफगानिस्तान के सम्बन्ध में तटस्थ नीति का समर्थक नहीं था। अतः उन्होंने लार्ड लारेंस द्वारा प्रतिपादित नीति का परित्याग कर साम्राज्यवादी आक्रमण नीति को अपनाया। भारत-सचिव लार्ड सेलिसबरी ने भारत के वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक को आदेश दिया कि वह शेरअली पर दबाव डाले कि वह अपने राज्य में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखे। लार्ड नार्थब्रुक भारत सचिव की इस नीति का विरोधी था। उसकी कौन्सिल ने सर्वसम्मति से भारत सचिव के इस प्रस्ताव का विरोध किया, किन्तु भारत-सचिव पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और उसने उनकी नीति का विरोध किया। वह अपनी बात पर डटा रहा। जब लार्ड नार्थब्रुक के लिये परिस्थिति असह्य हो गई तो उसने सन् १८७६ ई० में अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। किन्तु उसने लार्ड सेलिसबरी को यह चेतावनी दी कि 'शेरअली की इच्छा के विरुद्ध उसे अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने के लिये बाध्य करना अंग्रेजों को अफगानिस्तान में एक आवश्यक एवं अपव्ययी युद्ध में ढकेलना होगा।' लार्ड नार्थब्रुक की भविष्यवाणी तथा चेतावनी सत्य सिद्ध हुई क्योंकि जब लार्ड नार्थब्रुक के उत्तराधिकारी लार्ड लिटन ने अमीर को अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने के लिये बाध्य किया तो उसके कुछ ही समय उपरान्त द्वितीय अफगान युद्ध हुआ। यह नितान्त सत्य है कि दोस्त मुहम्मद के समान शेरअली भी अंग्रेजों की मित्रता का इच्छुक था। वह तो अंग्रेजों की नीति तथा परिस्थिति से विवश होकर रूस की ओर आकर्षित हुआ जब उसने यह देख लिया कि अंग्रेजों को केवल अपना स्वार्थ प्रिय है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

लार्ड लिटन की अफगान नीति (Lord Lytton's Afghan Policy)—लार्ड नार्थब्रुक के त्याग-पत्र देने के उपरांत लार्ड लिटन भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि लार्ड नार्थब्रुक के त्याग-पत्र देने का कारण उसकी इंगलैंड की अफगानिस्तान-सम्बन्धी नीति का विरोध करना था। अब इंगलैंड की सरकार ने भारत के वाइसराय के पद पर ऐसे व्यक्ति की स्थापना की जो उनकी नीति के अनुसार उत्तरी-पश्चिमी सीमा की ओर आक्रमण करे। लार्ड लिटन् बड़ा योग्य, अनुभवी कूटनीतिज्ञ तथा उद्भट विद्वान था, किन्तु अपनी उग्र नीति के कारण उसको अफगानिस्तान से युद्ध करना पड़ा। वह भारत के आन्तरिक प्रशासन में भी प्रिय न बन सका जिसके कारण यह स्वीकार करना नितान्त सत्य होगा कि वह अपने शासन-काल में पूर्णतया असफल रहा।

रूस की एशिया में बढ़ती हुई शक्ति के प्रति प्रतिक्रिया (Reaction against the growing power of Russia in Asia)—इंगलैंड की सरकार को रूस की बढ़ती हुई शक्ति के कारण भारतीय साम्राज्य के लिये चिन्ता उत्पन्न हुई और उसने लारेंस की तटस्थता की नीति का परित्याग कर क्रियात्मक नीति का अवलम्बन किया। इंगलैंड का प्रधान मन्त्री डिजरायली साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। वह सदैव इंगलैंड के साम्राज्य का विस्तार करने का पक्षपाती था तथा मध्य एशिया

में रूस की शक्ति को बढ़ने से रोकना चाहता था। लार्ड लिटन डिजराइली की नीति को कार्यान्वित करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। अतः उसने भारत आते ही अफगानिस्तान के अमीर शेरअली से एक सुनिश्चित सन्धि करने का निश्चय किया। स्थिति को पूर्णतया समझने के अभिप्राय से वह अम्बाला आया और वहां आकर उसने शेरअली को एक सन्देश भेजा कि वह उसको वे समस्त शर्तें मानने के लिये उद्यत है जो उसने सन् १८७३ ई० में लार्ड मेयो के सामने उपस्थित की थीं; यदि अमीर अफगानिस्तान में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट तथा अफगान सीमा पर राजनीतिक तथा सामरिक सुविधा के लिये अंग्रेजों को एक लाभप्रद स्थान देने के लिये सहमत हो। जब यह संदेश शेरअली के पास पहुंचा तो बहुत सोच-विचार के उपरान्त उसने लार्ड लिटन को लिखा कि यदि वह अंग्रेजों को उक्त सुविधायें प्रदान करता है तो उसको ये समस्त सुविधायें रूस को भी देनी होंगी। शेरअली के उत्तर से स्पष्ट हो जाता है कि वह लार्ड लिटन के प्रस्ताव से सहमत नहीं था। लार्ड लिटन शेरअली के उत्तर से बड़ा क्षुब्ध हुआ और उसने उसके उत्तर को ब्रिटिश हितों के विरुद्ध माना। उसने शीघ्र ही पत्र द्वारा अमीर को चेतावनी दी कि वह अपने आचरण से ही अंग्रेजों की मित्रता से हाथ खींच रहा है। वाइसराय की कौंसिल में इस विषय पर बड़ा वाद-विवाद हुआ। तीन सदस्यों ने लार्ड लिटन की नीति का विरोध किया और शेरअली का समर्थन किया कि लार्ड लिटन शेरअली को ब्रिटिश रेजीडेन्ट (British Resident) रखने के लिये बाध्य नहीं कर सकता है, किन्तु उसने उनके विरोध पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह जानता था कि इंगलैंड की सरकार उसके साथ है और वह उसकी नीति को ही कार्यान्वित करने में संलग्न है। उसने शीघ्र ही अंग्रेजों की ओर से अफगानिस्तान में रहने वाले वकील को शिमला बुलाया और उससे कहा कि वह काबुल जाकर शेरअली को सूचित करे कि यदि वह इंगलैंड की उपेक्षा कर रूस से मित्रता करेगा तो उसकी शक्ति का अन्त कर दिया जावेगा।

क्वेटा पर अधिकार (Occupation of Quetta)—इधर तो ये बातचीत चल रही थी कि लार्ड लिटन ने सन् १८७६ ई० के दिसम्बर माह में कलात तथा लासबेला के खानों से क्वेटा में सेना रखने का अधिकार प्राप्त किया और अगले वर्ष १८७७ ई० में अंग्रेजों ने क्वेटा पर अधिकार कर लिया। राजनीतिक दृष्टि से क्वेटा का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि यह बोलन दर्रे का द्वार है और इसी दर्रे से होकर कन्धार जाना पड़ता है और उस सेना पर आक्रमण यहां से किया जाना सम्भव है जो सेना खैबर दर्रे द्वारा भारत पर आक्रमण करती है।

पेशावर सम्मेलन (Peshawer Conference)—क्वेटा अंग्रेजों के अधिकार में आ जाने से अमीर शेरअली अंग्रेजों का मन्तव्य समझ गया और वह अपनी शक्ति को स्थायी बनाने के लिए चिन्तित हुआ। सन् १८७७ ई० में अफगान प्रतिनिधियों और ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन पेशावर में हुआ किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला क्योंकि अफगान प्रतिनिधि अंग्रेज प्रतिनिधियों की हिरात में ब्रिटिश रेजीडेन्ट रखने की शर्त मानने के लिये तैयार नहीं हुआ।

इस पर लार्ड लिटन ने 'अफगान शक्ति को क्रमशः खण्डित और दुर्बल' करने का निश्चय किया। उधर-शेरअली रूस की ओर मित्रता करने के लिये बढ़ा क्योंकि उसको निश्चय हो गया था कि अंग्रेजों से युद्ध होना अनिवार्य है। रूस के भय के कारण लार्ड लिटन ने काश्मीर-राज्य के एक प्रदेश गिलिगट (Gilgit) में एक ब्रिटिश एजेन्सी की स्थापना की। इसकी स्थापना के फलस्वरूप शेरअली को अंग्रेजों का मन्तव्य ज्ञात हो गया कि वे उसकी सीमा के समीप अपनी सैनिक छावनियों की स्थापना कर उस पर आक्रमण करने की योजना का निर्माण कर रहे हैं।

रूस और अफगानिस्तान में सन्धि (Treaty between Russia and Afghanistan)—अप्रैल सन् १८७७ ई० में रूस और टर्की-युद्ध योरप में हुआ जिसमें रूस विजयी हुआ और उसने टर्की को एक अपमानजनक सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि को इंगलैंड और फ्रांस ने स्वीकार नहीं किया वरन् उसका विरोध किया। डिज़राइली ने रूस के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कीं, किन्तु १८७८ ई० में बर्लिन की सन्धि (Treaty of Berlin) के कारण रूस और इगलैंड का युद्ध टल गया। इस सन्धि के परिणामस्वरूप रूस का योरप में विस्तार रुक गया और उसने अपना ध्यान मध्य एशिया की ओर आकर्षित किया। जिस दिन योरप में बर्लिन की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए उसी दिन एक रूसी अफसर जनरल कापफमेन का पत्र अफगानिस्तान के अमीर के नाम लेकर ताशकन्द से काबुल के लिए रवाना हुआ। शेरअली ने जनरल स्टोलीटौफ (Stolietoff) को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु वह जुलाई १८७८ ई० में काबुल पहुँच गया। वहाँ अमीर और रूस के मध्य एक सन्धि हुई जिसमें यह निश्चय हुआ कि रूस अफगानिस्तान पर बाह्य आक्रमण के समय उसकी सहायता करेगा।

सन्धि की प्रतिक्रिया (Reactions of the Treaty)—जब रूस-अफगान सन्धि का समाचार लार्ड लिटन को प्राप्त हुआ तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने अमीर के सामने काबुल में अंग्रेजी रेजीडेण्ट रखने की माँग उपस्थित की। परिस्थितियों का अवलोकन करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय लार्ड लिटन की माँग अर्थहीन तथा अन्यायसंगत थी क्योंकि जनरल स्टोलीतोफ काबुल से चला गया तथा योरप में इंगलैंड और रूस के मध्य शान्ति की स्थापना हो चुकी थी। लार्ड लिटन ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और आवेश में आकर उसने यह माँग उपस्थित की और शेरअली को सूचित किया कि यदि अमुक तिथि तक उसकी माँग का सन्तोषजनक उत्तर नहीं आयगा तो वह सर नेवाइल चेंबरलेन (Sir Neville Chamberlain) को ब्रिटिश रेजीडेन्ट बनाकर काबुल भेज देगा। शेरअली के उत्तर आने में देर हुई, क्योंकि उसका प्रिय पुत्र तथा उत्तराधिकारी अब्दुल्ला जान का देहान्त हो गया था जिससे शेरअली को बड़ा दुख हुआ था। इस पर भी लार्ड लिटन ने पुनः विचार करने का प्रयत्न नहीं किया और शेरअली की देरी को यह समझा कि वह जान-बूझकर ऐसा कर रहा है। उसने नेवाइल-चेंबरलेन (Neville Chamberlain) को ब्रिटिश रेजीडेन्ट बनाकर काबुल भेजा, किन्तु अफगानों ने उसको अली मस्जिद (खैबर दर्रे के समीप) पर

रोक दिया। जब लार्ड लिटन को इस सूचना का समाचार विदित हुआ तो उसने अफगानिस्तान के विरुद्ध २१ नवम्बर सन् १८७८ ई० को युद्ध की घोषणा कर दी।

द्वितीय अफगान युद्ध (Second Afghan War)—युद्ध की घोषणा का समाचार पाते ही अमीर शेरअली ने रूस से सहायता प्राप्त करने के लिये जनरल काउफमैन को लिखा; किन्तु उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि अमीर को अंग्रेजों से सन्धि कर लेनी चाहिये। बर्लिन सन्धि के कारण रूस अफगानिस्तान को सहायता नहीं देना चाहता था। निराश होकर शेरअली काबुल का परित्याग कर तुर्किस्तान की ओर भाग गया जहां शीघ्र ही १८७९ ई० में उसका देहान्त हो गया। युद्ध की घोषणा करते ही अंग्रेजी सेना ने तीन ओर से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। एक सेना ने खैबर दर्रे द्वारा अफगानिस्तान में प्रवेश कर जलालाबाद पर अधिकार किया, द्वितीय सेना ने खुर्रम दर्रे द्वारा प्रवेश कर पेवार कोतल पर अंग्रेजी पताका का रोहण किया तथा तृतीय सेना ने बोलन दर्रे द्वारा प्रवेश कर कन्दहार को हस्तगत किया। अंग्रेजों का कहीं भी अफगानी सेना द्वारा विशेष प्रतिरोध नहीं किया गया। इन तीन प्रदेशों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि शेरअली काबुल छोड़कर तुर्किस्तान भाग गया था।

गन्डमक की सन्धि (The treaty of Gandamak)—शेरअली के भाग जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र याकूब खां अफगानिस्तान के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। अंग्रेज और उसके बीच गन्डमक के स्थान पर एक सन्धि हुई जो उसी नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। यह सन्धि मई १८७९ ई० में हुई। इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) अंग्रेजों ने याकूब खां को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया।
(२) अमीर की वैदेशिक नीति पर अंग्रेजों का आधिपत्य होगा।
(३) अमीर अंग्रेजों को खुर्रम, पीशिन और सिबी के देश देगा।
(४) काबुल में एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट रहेगा।
(५) हिरात तथा अफगानिस्तान के अन्य सीमान्त नगरों में अंग्रेज एजेन्ट रहेंगे।
(६) अमीर को छः लाख रुपया वार्षिक अंग्रेज देंगे।
(७) विदेशी आक्रमण के समय अंग्रेज उसको सैनिक सहायता प्रदान करेंगे।
(८) जाड़ों तक कन्दहार के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रदेशों से अंग्रेजी सेना हटा ली जायगी।

गन्डमक की सन्धि का महत्व (Importance of the treaty of Gandamak)—अफगानों के साथ की गई सन्धियों में गन्डमक की सन्धि का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि इसके द्वारा अफगानिस्तान पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया और उसकी स्वतन्त्रता का अन्त हुआ। लार्ड लिटन अपने ध्येय में पूर्ण सफल हुआ। केवल सैनिक प्रदर्शन से ही वह सब प्राप्त करने में सफल हुआ जो उसका ध्येय था। उसने कहा था कि इससे हमने युद्ध के सब ध्येय प्राप्त कर लिये हैं लार्ड बेकन्स-

फील्ड (Lord Baconsfield) ने कहा है कि हमने इससे अपने भारतीय साम्राज्य के लिये वैज्ञानिक और उपयुक्त सीमा प्राप्त की ।'*

अफगानों का विद्रोह (Revolt of the Afghans)—अंग्रेजों का यह विजयोल्लास क्षणिक था । लार्ड लिटन ने कैवेग्नरी (Cavagnari) को ब्रिटिश रेजीडेन्ट नियुक्त किया । अफगान शान्त भाव से अपने अपमान को सहन नहीं कर सके । याकूब खां शीघ्र ही उनका अप्रिय बन गया क्योंकि उसने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता शाहशुजा के समान विक्रय कर दी थी । अफगानों में असन्तोष के भाव उदय होने लगे । कैवेग्नरी २४ जुलाई को ब्रिटिश रेजीडेण्ट के रूप में काबुल में प्रविष्ट हुआ । उसने दो सितम्बर को तार द्वारा वाइसराय को 'कुशल' की सूचना से अवगत किया । किन्तु अगले ही दिन विद्रोही अफगानों ने दूतावास पर आक्रमण किया और कैवेग्नरी को उसके समस्त रक्षकों के साथ कत्ल कर दिया । याकूब खां ने दूतावास की रक्षा के लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं किया । वाइसराय जब इस समाचार से अवगत हुआ तो उसको 'एक भयकर धक्का' लगा । उसने स्वयं लिखा कि "नीति का जो जाल सावधानी और धैर्यपूर्वक बुना गया था, बुरी तरह भंग कर दिया गया । पिछले युद्ध और सन्धि वार्ता में जो कुछ मैं बहुत चिन्तापूर्वक बचाता रहा वह अब भाग्य ने कर दिखाया ।"† ब्रिटिश सरकार ने इस काण्ड के लिये याकूब खां को उत्तरदायी बनाया । अंग्रेजी सेनाओं की हलचल अफगानिस्तान में आरम्भ हो गई । अंग्रेजों ने शीघ्र ही कन्दहार पर अधिकार किया । जनरल राबर्ट्स खुर्रम घाटी से काबुल पहुंचा । अंग्रेजी सेना के काबुल पहुंचने के पूर्व ही याकूब खां अंग्रेजी सेना की शरण में पहुंच गया । उसने राज्यसिंहासन त्याग दिया । उसके सम्बन्ध में जांच की गई किन्तु यह सिद्ध हुआ कि उसका हत्या-कांड से कोई सम्बन्ध नहीं था । किन्तु उस पर यह आरोप अवश्य लगाया गया कि वह इस हत्या-काण्ड से प्रति उदासीन रहा । वह बन्दी बनाकर मेरठ भेज दिया गया ।

अब्दुर्रहमान का अमीर बनना (Abdur Rahman installed as Amir)—भारत सरकार के सामने विशेष परिस्थिति उत्पन्न हुई अफगानिस्तान में विद्रोह की भावना प्रज्वलित हो गई और वहां का कोई शासक नहीं था जिससे सन्धि की जाए । काबुल के चारों ओर भयंकर युद्ध हुआ । रोबर्टस् को विवश होकर काबुल और बालाहिसार का दुर्ग त्यागना पड़ा । जब वह शेरपुर में आश्रय ले रहा था वहां उसको कजाइलियों ने घेर लिया । स्टीवार्ट की अध्यक्षता में कन्धार से सेना विद्रोहियों को अहमदखेल नामक स्थान पर परास्त करती हुई काबुल आई जहां उसकी सेना रोबर्ट्स

---

* "He (Lord Lytton) claimed that it fully secured all the objects of the war, and Lord Baconsfield added that, by it, we had attained a scientific and adequate frontier for our Indian Empire."

—Roberts : History of British India, Pages 443 and 444

† "The web of policy so carefully and patiently woven has been rudely Shattered" "All that I was most anxious to avoid in the conduct of the late war and negotiations has now been brought about by the hand of fate" —Lord Lytton.

(Roberts) की सेना से मिली और उसको शान्ति प्राप्त हुई। इसी समय जब अंग्रेजी सेना भीषण परिस्थिति में थी कि शेरअली का भतीजा और अफजल खां का पुत्र एक-एक उत्तरी सीमा पर प्रकट हुआ। लार्ड लिटन ने उसको अमीर बनाने का निश्चय किया, किन्तु अपने निश्चय को पूर्ण करने के पूर्व ही उसने १८८० ई० में त्याग-पत्र दे दिया क्योंकि इङ्गलैंड के साधारण निर्वाचन में अनुदार दल पराजित हो गया और उदार दल के हाथ में शासन की सत्ता आ गई। अब ग्लेडस्टन (Gladston) इङ्गलैंड का प्रधानमन्त्री और लार्ड हार्टिंगटन (Lord Hartington) भारत-सचिव बना। लार्ड लिटन के स्थान पर लार्ड रिपन को वाइसराय बनाकर भारत भेजा गया। लार्ड हार्टिंगटन ने अपनी नीति निम्न शब्दों में प्रकट की—

"जितना सम्भव हो सके युद्ध के पहले की स्थिति उत्पन्न की जाये"।

लार्ड रिपन की नीति (Lord Rippon's Policy)—लार्ड रिपन ने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में लार्ड लिटन की नीति स्वीकार कर अब्दुर्रहमान को औपचारिक रूप में काबुल का अमीर स्वीकार किया। उसकी मान्यता के सम्बन्ध में केवल एक ही शर्त रखी गई कि अमीर अंग्रेजों को छोड़ किसी विदेशी राष्ट्र से राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रखेगा और पीशिन तथा सिबी के जिले अंग्रेजों के पास रहेंगे।

नई समस्या (New Problem)—अब्दुर्रहमान काबुल का अमीर घोषित किया गया। हिरात पर इस समय शेरअली के पुत्र अयूब खां का आधिपत्य था। सन्धि होने के शीघ्र ही उपरान्त अयूब खां ने कन्दहार पर आक्रमण किया। उसने जनरल बरोज को माईबन्द नामक स्थान पर परास्त किया। अंग्रेजी सेना ने उसकी सेना का उस समय तक सामना किया जब तक उनका एक सिपाही भी जीवित रहा। उसने शीघ्र ही कन्दहार पर आक्रमण किया। अंग्रेजी सेना काबुल से लार्ड राबर्ट्स (Lord Roberts) के नेतृत्व में ३१३ मील की यात्रा करती हुई २० दिन में कन्दहार पहुंची। उसने अय्यूब खां को परास्त किया। अंग्रेजी सेना ने काबुल छोड़ दिया और कुछ समय उपरान्त कन्धार से अंग्रेजी सेना वापिस चल पड़ी। कन्दहार अमीर को दे दिया गया यद्यपि उग्रगामी नीति के समर्थकों ने इसका बड़ा विरोध किया था। ब्रिटिश सेनाओं के काबुल तथा कन्दहार से प्रस्थान करने के शीघ्र ही उपरान्त अय्यूब खां ने पुनः कन्दहार पर आक्रमण किया। वह उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुआ। अब्दुर्रहमान ने ने कन्दहार पर अधिकार करने के लिये प्रस्थान किया। उसने अय्यूब खां को परास्त किया जिससे कन्दहार पर उसका अधिकार स्थापित हो गया।

लार्ड लिटन तथा लार्ड रिपन की नीति की समीक्षा (Critical estimate of Lord Lytton and Lord Rippon's Policy)—लार्ड लिटन ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध के लार्ड लारेंस द्वारा प्रतिपादित तटस्थता की नीति का परित्याग किया। वास्तव में प्रारम्भ में उसने जिस नीति का अनुकरण किया वह इंगलैंड की सरकार के अनुकूल थी और उसका उसको सदैव समर्थन प्राप्त होता रहा, किन्तु बाद में उसने जिस नीति का अनुकरण किया उसमें उसको इंगलैंड की सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि घटना-चक्र इतना तीव्र गति से चला कि इंगलैंड की सरकार उसके कार्यों में

विशेष हस्तक्षेप नहीं कर सकी। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि द्वितीय अफगान युद्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व लार्ड लिटन पर है। लार्ड रिपन की नीति के कारण अफगानिस्तान की समस्या का समाधान हुआ। अब्दुर्रहमान अपने जीवन भर अंग्रेजों का मित्र बना रहा। यदि अंग्रेज कन्धार पर अपना अधिकार बनाये रखते तो इस समस्या का समाधान असम्भव था। अंग्रेजों को सीबित तथा सिबी के प्रदेश प्राप्त हुए जिससे बिलोचिस्तान की एजेन्सी का निर्माण हुआ जिसका हेडक्वार्टर क्वेटा रखा गया। इससे कुलात, लसबेयला तथा अन्य बिलोची जातियों पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। रूस की महत्वाकांक्षाओं को बड़ा आघात पहुंचा और अफगानिस्तान की वाह्य नीति अंग्रेजों के नियन्त्रण में हो गई।

लार्ड डफरिन की अफगान नीति (Lord Dufferin's Afghan policy)—सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन त्याग-पत्र देकर चला गया और उसके स्थान पर लार्ड डफरिन भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। लार्ड रिपन के समय में रूस मध्य एशिया में बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। १८८१ ई० से रूसियों ने तक्की तुर्कमानों को परास्त कर उनके प्रदेश पर अधिकार किया। सन् १८८४ ई० में उन्होंने मर्व को अपने अधिकार में किया। यह प्रदेश अफगानिस्तान की सीमा से केवल डेढ़ सौ मील की दूरी पर था। इंगलैंड में इस स्थान को सदा महत्व दिया गया और रूस के हाथ में चले जाने पर व्यापक रोष फैल गया। ब्रिटिश सरकार बड़ी चिंतित हुई और लार्ड रिपन के समय में निश्चय हुआ कि रूस और अंग्रेजों के एक सम्मिलित सम्मेलन द्वारा अफगानिस्तान की उत्तरी-पश्चिमी सीमा निश्चित कर दी जाए। इसी समय लार्ड डफरिन भारत का वाइसराय बनकर आया। जब सीमा-आयोग के वार्तालाप में रोष प्रकट किया जाने लगा और वे किसी निर्णय विशेष पर नहीं पहुँचे तो रूसियों ने पंचदेह पर आक्रमण कर उस पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। पंचदेह अफगान राज्य में था और मर्व से सौ मील दक्षिण में स्थित था। इस समय भारत का वाइसराय डफरिन और अब्दुर्रहमान रावलपिंडी में थे। पंचदेह के आक्रमण का समाचार पाते ही अंग्रेजों ने क्वेटा में अपनी सेना का संगठन करना आरम्भ किया। वाइसराय ने अमीर से पूछा कि क्या अंग्रेजी सेना को पंचदेह की रक्षा के लिये कूच करने का आदेश दिया जाये, किन्तु अब्दुर्रहमान ने उसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह किसी भी मूल्य पर रूस और अंग्रेज युद्ध अफगानिस्तान में नहीं होने देना चाहता था क्योंकि इससे अफगानिस्तान युद्ध स्थल बन जाता और उसको विशेष हानि उठानी पड़ती। अन्त में रूस और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित हुई जिसके अनुसार पंचदेह पर रूस का अधिकार रहा और जुलफिकार दर्रे पर अफगानों का अधिकार स्वीकार किया गया। इस प्रकार रूस-आंग्ल युद्ध रुक गया। अन्त में सन् १८८७ ई० में रूस और अफगानिस्तान की सीमा अंकित कर दी गई।

लार्ड लैंसडाउन की अफगान नीति (Lord Lansdowne's Afghan Policy)—लार्ड लैंसडाउन अग्रगामी नीति का समर्थक था। वह अर्द्धसभ्य जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था और उनके प्रदेशों को वह भारत से रेल

(Roberts) की सेना से मिली और उसको शान्ति प्राप्त हुई। इसी समय जब बड़ी सेना भीषण परिस्थिति में थी कि शेरअली का भतीजा और अफज़ल खां का पुत्र एक उत्तरी सीमा पर प्रकट हुआ। लार्ड लिटन ने उसको अमीर बनाने का निश्चय किया, किन्तु अपने निश्चय को पूर्ण करने के पूर्व ही उसने १८८० ई० में त्याग-पत्र दे दिया क्योंकि इङ्गलैंड के साधारण निर्वाचन में अनुदार दल पराजित हो गया और उदार दल के हाथ में शासन की सत्ता आ गई। अब ग्लेडस्टन (Gladston) इङ्गलैंड का प्रधानमन्त्री और लार्ड हार्टिंगटन (Lord Hartington) भारत-सचिव बना। लार्ड लिटन के स्थान पर लार्ड रिपन को वाइसराय बनाकर भारत भेजा गया। लार्ड हार्टिंगटन ने अपनी नीति निम्न शब्दों में प्रकट की—

"जितना सम्भव हो सके युद्ध के पहले की स्थिति उत्पन्न की जाये"।

लार्ड रिपन की नीति (Lord Rippon's Policy)—लार्ड रिपन ने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में लार्ड लिटन की नीति स्वीकार कर अब्दुर्रहमान को औपचारिक रूप में काबुल का अमीर स्वीकार किया। उसकी मान्यता के सम्बन्ध में केवल एक ही शर्त रखी गई कि अमीर अंग्रेजों को छोड़ किसी विदेशी राष्ट्र से राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रखेगा और पीशिन तथा सिबी के जिले अंग्रेजों के पास रहेंगे।

नई समस्या (New Problem)—अब्दुर्रहमान काबुल का अमीर घोषित कि गया। हिरात पर इस समय शेरअली के पुत्र अयूब खां का आधिपत्य था। सन्धि हो के शीघ्र ही उपरान्त अयूब खां ने कन्दहार पर आक्रमण किया। उसने जनरल बरो को माईवन्द नामक स्थान पर परास्त किया। अंग्रेजी सेना ने उसकी सेना का उस समय तक सामना किया जब तक उनका एक सिपाही भी जीवित रहा। उसने शीघ्र ही कन्दहार पर आक्रमण किया। अंग्रेजी सेना काबुल से लार्ड राबर्ट्स (Lord Roberts) के नेतृत्व में ३१३ मील की यात्रा करती हुई २० दिन में कन्दहार पहुंची। उसने अयूब खां को परास्त किया। अंग्रेजी सेना ने काबुल छोड़ दिया और कुछ समय उपरान्त कन्धार से अंग्रेजी सेना वापिस चल पड़ी। कन्दहार अमीर को दे दिया गया यद्यपि उग्रगामी नीति के समर्थकों ने इसका बड़ा विरोध किया था। ब्रिटिश सेनाओं के काबुल तथा कन्दहार से प्रस्थान करने के शीघ्र ही उपरान्त अय्यूब खां ने पुनः कन्दहार पर आक्रमण किया। वह उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुआ। अब्दुर्रहमान ने ने कन्दहार पर अधिकार करने के लिये प्रस्थान किया। उसने अय्यूब खां को परास्त किया जिससे कन्दहार पर उसका अधिकार स्थापित हो गया।

लार्ड लिटन तथा लार्ड रिपन की नीति की समीक्षा (Critical estimate of Lord Lytton and Lord Rippon's Policy)—लार्ड लिटन ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध के लार्ड लारेंस द्वारा प्रतिपादित तटस्थता की नीति का परित्याग किया। वास्तव में प्रारम्भ में उसने जिस नीति का अनुकरण किया वह इंगलैंड की सरकार के अनुकूल थी और उसका उसको सदैव समर्थन प्राप्त होता रहा, किन्तु बाद में उसने जिस नीति का अनुकरण किया उसमें उसको इंगलैंड की सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि घटना-चक्र इतना तीव्र गति से चला कि इंगलैंड की सरकार उसके कार्यों में

बड़ी कठिनता से इन विद्रोह का दमन करने में सफल हुये किन्तु वे उनकी स्वतन्त्रता-प्रिय भावना का दमन नहीं कर सके। अंग्रेजों ने इन जातियों के दमन में बड़ी कठोर-नीति का व्यवहार किया और उन्होंने उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया।

लार्ड कर्जन की नीति (Lord Curzon's Policy)—लार्ड एलगिन द्वितीय के उपरान्त लार्ड कर्जन भारत का वाइसराय बनकर सन् १८९९ ई० में आया। भारत आते ही उसका ध्यान पठानों के प्रदेशों की ओर आकर्षित हुआ जहां अभी दो वर्ष पूर्व ही बड़ा भारी विद्रोह अंग्रेजों की उग्र नीति के कारण हुआ था। प्रारम्भ में कर्जन उग्र नीति का समर्थक था और लोगों को यह आशा थी कि वह उनके साथ कठोरता का व्यवहार कर उसका पूर्ण दमन करने की चेष्टा में संलग्न हो जायेगा और वहां सैनिक कार्यवाही कर अंग्रेजी सत्ता का आतंक स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। उसने जब वास्तविक परिस्थिति का अध्ययन भली प्रकार किया तो उसको अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। उसने इन प्रदेशों के सम्बन्ध में मध्यम मार्ग का अनुकरण किया उसने न तो लार्ड लारेंस की नीति को अपनाया और न अपने पूर्व के वाइसरायों की क्रियात्मक नीति का सहारा लिया। उसने धीरे-धीरे इन प्रदेशों से अंग्रेजी सेना को हटाया तथा उनके स्थान पर कबीलों की सेनायें संगठित कर उनको अंग्रेज अफसरों के अधिकार में रखा। उनके ऊपर ही उन प्रदेशों में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। उसने सड़कें तथा रेलवे लाइन बनाने की व्यवस्था की। उसने शस्त्रों के आयात पर भी इन प्रदेश में कठोर प्रतिबन्ध लगाया। उसने कबाइली-क्षेत्रों के बाहर कुछ छावनियों की स्थापना की। उसने पठानों को आश्वासन दिया कि उनकी स्वतन्त्रता का अन्त नहीं किया जायगा, किन्तु यदि वे भारत प्रदेश पर आक्रमण करेंगे तो उनके साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया जायगा। इसके उपरान्त लार्ड कर्जन ने १९०१ ई० में पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की स्थापना एक चीफ कमिश्नर (Chief Commissioner) के अधीन की। उसने चीफ कमिश्नर को पंजाब के अधिकार से मुक्त कर केन्द्रीय सरकार के अधीन किया। इस प्रकार इस समस्त प्रदेश का सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार से हो गया। लार्ड कर्जन के कार्यों के कारण प्रदेश में शान्ति की स्थापना हो गई और पर्याप्त समय तक वहां कोई भीषण विद्रोह नहीं हुआ।

लार्ड कर्जन की अफगान नीति (Lord Curzon's Afghan Policy)—अफगानिस्तान के अमीर अब्दुर्रहमान का देहान्त १९०१ ई० में हुआ। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र हबीबुल्ला राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उस पर रूस, जर्मनी तथा आस्ट्रिया अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। लार्ड कर्जन को यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं नया अमीर रूस से अपना सम्बन्ध स्थापित न कर ले। अतः शीघ्र ही उसने उस ओर ध्यान दिया और हबीबुल्ला के साथ एक नई सन्धि करने का प्रस्ताव रखा किन्तु अमीर ने सन्धि करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। दोनों में मनोमालिन्य इतना अधिक बढ़ गया कि अमीर ने अंग्रेजों से आर्थिक सहायता लेना बन्द कर दिया। तीन वर्ष तक दोनों के सम्बन्ध खराब रहे। लार्ड कर्जन अफगानिस्तान के अमीर के प्रति क्रियात्मक कार्यवाही करना चाहता था, किन्तु इङ्-

सड़कों आदि के द्वारा जोड़ना चाहता था जिससे उन प्रदेशों में शीघ्रातिशीघ्र सैनिक कार्यवाही की जा सके। रूस पामीर की ओर बढ़ रहा था। अतः वाइसराय ने गिलगिट और चितराल को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाकर एजेन्सियों की स्थापना करना प्रारम्भ किया। उसने चमन तक रेल-पथ बनाने का निश्चय किया। इन्हीं सब कारणों से अफगानिस्तान का अमीर अब्दुर्रहमान अंग्रेजों से सशंकित रहने लगा। उसने अंग्रेजों की इस नीति का विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप वाइसराय ने यह निश्चय किया कि जनरल राबर्ट्स को अफगानिस्तान भेजा जाये और वह अमीर से मिलकर भारत और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित करे। अमीर राबर्ट्स को अफगानिस्तान नहीं आने देना चाहता था क्योंकि उसके आने से अफगानों में विद्रोह के भाव जागृत हो जायेंगे क्योंकि द्वितीय अफगान-युद्ध में उसने अफगानिस्तान में सक्रिय भाग लिया था। अतः कुछ समय उपरान्त यह निश्चय हुआ कि वाइसराय का परराष्ट्र डयूरेंड अफग निस्तान आकर सीमा सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय करे। १८९३ ई० में वह अफगानिस्ता पहुँचा। दोनों के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अमीर ने पठानी जातियों प अधिकार का त्याग किया और उन पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इ प्रकार अंग्रेजों का अधिकार चमन, वजीरिस्तान, अफ़ीदी प्रदेश, कुर्रम, स्वात आदि प्रदेश पर हो गया। इस प्रकार भारत और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित हुई। य सीमा डयूरेन्ड सीमा (Durand Line) के नाम से विख्यात हुई। अमीर ने अंग्रेजों को पेशावर से चितराल तक रेल-पथ बनाने की भी अनुमति प्रदान की।

लार्ड एलगिन की अफगान नीति (Lord Elgin's Afghan Policy)—लार्ड लेन्सडाउन के उपरान्त लार्ड एलगिन द्वितीय सन् १८९४ ई० में भारत का वाइसराय बनकर आया। वह भी लार्ड लेन्सडाउन के समान उग्रगामी नीति का समर्थक था। उसने उन प्रदेशों में अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जो डयूरेन्ड सीमा द्वारा अंग्रेजों के अधिकार में आये। रूस के भय के कारण उसने चितराल पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। गिलगिट से चितराल पर अधिकार करने के लिये एक सेना भेजी गई किन्तु चितरालियों ने उसको घेर लिया। अंग्रेजी सेना की रक्षा के लिये मालाकन्द और गिलगिट से पुनः सेना भेजी गई जिन्होंने अंग्रेजी सेना की रक्षा कर चितराल को अपने अधिकार में किया और वहाँ के मेहतर (राजा) से संधि की। अंग्रेजों ने अन्य पठानी जातियों को भी अपने नियन्त्रण में रखने के अभिप्राय से कई प्रदेशों में अपनी एजेंसियाँ स्थापित कर सैनिक छावनियों की स्थापना की। इस उग्र नीति के कारण समस्त पहाड़ी प्रदेशों में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई। कुछ लोगों की यह धारणा है कि इस विद्रोह में अमीर अब्दुर्रहमान का भी हाथ था, किन्तु निश्चित रूप से यह धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती। इस विद्रोहात्मक भावना को अधिक प्रज्वलित करने में इन प्रदेशों के फकीरों का विशेष हाथ था जिनके आदेशों का पालन करना वहाँ के निवासी अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। सन् १८९७ ई० में समस्त पठानी प्रदेशों में एक साथ विद्रोह प्रारम्भ हुआ। अंग्रेज

अफगानिस्तान में विद्रोह (Revolt in Afghanistan)—उक्त पंक्तियों बतलाया गया है कि अमानुल्ला पर रूसी प्रभाव बढ़ रहा था जिसके कारण उसने अ देश को पाश्चात्य देशों के समान संगठित कर उसका आधुनीकरण करना आर किया। अफगान उसकी नीति का पूर्ण समर्थन नहीं कर पाये। उन्होंने उसकी नी का विरोध किया। बच्चा सक्का नामक एक साहसी सैनिक ने विद्रोहियों का नेतृ किया। अमानुल्ला उसका सामना नहीं कर सका। वह अफगानिस्तान का परित्य कर १९२९ ई० में योरुप भाग गया। शासन सत्ता पर बच्चा सक्का का अधिकार गया। यह अधिकार अल्पकालीन रहा। शीघ्र ही अमानुल्ला के सेनापति नादिर ने बच्चा सक्का का वध कर शासन पर अपना अधिकार स्थापित किया और देश आधुनीकरण धीरे-धीरे करना आरम्भ कर दिया।

भारत और ईरान
(India and Persia)

फ्रांस के प्रभाव को रोकना (To stop the influence of France) अठारहवीं शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों को फ्रांसीसी आक्रमण का सदा भय बना रहता था। मैसूर के राजा टीपू का उनसे पत्र-व्यवहार था। वह अफगानिस्तान के अमीर जमानशाह को भी भारत-आक्रमण का निमन्त्रण दे रहा था। अंग्रेजों ने इस भय के कारण अपना ध्यान ईरान की ओर आकर्षित किया। वे फारस की खाड़ी और मध्य पूर्व में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। सन् १७९९ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड वैलेजली ने अपना दूत ईरान भेजा जिसका उद्देश्य यह था कि ईरान का शाह अमीर जमानशाह पर दबाव डाले कि वह भारत पर आक्रमण न करे। १८०१ ई० में अंग्रेजों और ईरान के शाह में व्यापारिक सन्धियां हुईं जिसके द्वारा यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज और भारतीय व्यापारी ईरान में बिना कर दिये निवास कर सकते हैं। उनको कुछ अन्य व्यापारिक सुविधायें भी प्राप्त हुईं। इन सब का कारण यह था कि वहां फ्रांस का प्रभाव न बढ़ने पाये।

रूस के प्रभाव को रोकना (To stop the influence of Russia)—उन्नीसवीं शताब्दी में रूस ने मध्य एशिया में अपना प्रभाव तथा साम्राज्य का विस्तार करने की योजना का निर्माण किया। रूस की प्रगति के कारण ईरान को बड़ी हानि उठानी पड़ी, किन्तु अंग्रेजों ने ईरान को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की। अतः ईरान ने अपना ध्यान फ्रांस की ओर आकर्षित किया, किन्तु वह भी उसको कोई सहायता न दे सका क्योंकि १८०७ ई० में फ्रांस और रूस में सन्धि हो गई थी। अब अंग्रेजों को बड़ा भय हुआ। १८०८ ई० में लार्ड मिन्टो के कैप्टिन मैलकाम को ईरान भेजा, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८०९ ई० में ब्रिटिश राजदूत सर हारफोर्ड जोन्स ने ईरान से एक सन्धि की। १८१४ ई० में एक अन्य सन्धि हुई जो मुजिमला की सन्धि के नाम से विख्यात है। इस सन्धि द्वारा निश्चय हुआ कि ईरान में उन सेनाओं को प्रवेश नहीं करने दिया जायगा जो अंग्रेजों के विरुद्ध हों। अंग्रेज और अफगानों में युद्ध होने पर ईरान अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगा

भारत के दबाव के कारण उसको मान्य करना पड़ा। अन्त में, १९०५ ई० भारत-सरकार और हबीबुल्ला के बीच एक समझौता हुआ जिसमें उसने उन शर्तों को स्वीकार किया जो उसके पिता अब्दुर्रहमान ने स्वीकार की थीं। इस पुनः अफगानिस्तान अंग्रेजों के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया।

आंग्ल रूसी समझौता (Anglo-Russian Pact)—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में योरप में जर्मनी की शक्ति का उत्थान होना आरम्भ हो गया था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उसने अपनी शक्ति को संगठित किया और वह इंग्लैंड के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में विश्व-क्षेत्र में उभर आया। फ्रांस और रूस की १८९४ ई० में सन्धि हो गई थी। सन् १९०४ ई० में इंग्लैंड और फ्रांस की सन्धि हुई। फ्रांस के प्रयत्न से इंग्लैंड और रूस में १९०७ ई० में सन्धि हुई। ये समस्त सन्धियाँ इसीलिये हुई कि इस समय जर्मनी अपने साम्राज्य तथा प्रभाव क्षेत्र के विस्तार करने में संलग्न था। उसने टर्की को अपने प्रभाव क्षेत्र में करने के उपरान्त मध्य एशिया में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। १९०७ के समझौतों के अनुसार रूस ने स्वीकार कर लिया कि अफगानिस्तान उसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर है तथा वह अफगानिस्तान से अपना सम्बन्ध अंग्रेजों द्वारा स्थापित करेगा। यह भी निश्चय हुआ कि अमीर की स्वीकृति पर अंग्रेज रूसी व्यापारी अफगानिस्तान से व्यापार कर सकते हैं किन्तु अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला ने इसको स्वीकार नहीं किया।

तृतीय अफगान युद्ध (Third Afghan War)—अमीर हबीबुल्ला ने अपने पिता अब्दुर्रहमान की नीति का अनुसरण करते हुये अंग्रेजों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार किया। वह अपने देश अफगानिस्तान को पाश्चात्य देशों के समान उन्नत करना चाहता था जिसके कारण कट्टर-पन्थी अफगानों ने उसका विरोध करना आरम्भ कर दिया। अफगानों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर १९१९ ई० के फरवरी मास में उसका वध कर दिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अमानुल्ला अफगानिस्तान के राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह अपने देश को अंग्रेजों के प्रभाव-क्षेत्र से मुक्त करना चाहता था। अतः उसने अपने पिता तथा दादा की नीति का परित्याग कर भारत की सीमा पर १९१९ ई० में आक्रमण किया। शीघ्र ही वजीरिस्तान आदि प्रदेशों के पठानों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। अंग्रेज इसे सहन नहीं कर सके और उन्होंने अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेजों ने वायुयानों से जलालाबाद और काबुल पर आक्रमण किया तथा बोलन और खैबर दर्रे की ओर से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। अमानुल्ला अंग्रेजी आक्रमण से भयभीत हो गया। अगस्त १९१९ ई० में युद्ध बन्द हो गया और सन्धि की शर्तें निश्चित हो गईं। यह सन्धि २२ नवम्बर १९२१ ई० को और भी दृढ़ कर दी गई। अंग्रेजों ने अब अपना हित इसी में समझा कि अफगानिस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाये क्योंकि रूस की साम्यवादी सरकार के प्रभाव क्षेत्र में वह आने लगा था। अतः इस सन्धि के उपरान्त अफगानिस्तान की विदेशी नीति पर से अंग्रेजों के प्रभाव का अन्त हो गया और वह पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न देश बन गया।

का आधुनीकरण करना प्रारम्भ कर दिया । उस समय से अंग्रेजों का फारस के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा ।

उत्तरी-पूर्वी सीमा
(North-Eastern Frontier)

अब तक हमने अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति का अध्ययन किया, अब हम भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमान्त नीति का अध्ययन करेंगे। इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न का वर्णन किया जायगा।

(१) अंग्रेज और तिब्बत,
(२) अंग्रेज और भूटान,
(३) अंग्रेज और नेपाल तथा
(४) अंग्रेज और ब्रह्मा ।

(१) अंग्रेज और तिब्बत (The Britishers and Tibet)—अंग्रेजी शासन की स्थापना करने के उपरान्त अंग्रेजों ने तिब्बत प्रदेश की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। सन् १७७४-७५ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज ने व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से एक शिष्ट-मण्डल तिब्बत भेजा, किन्तु इस शिष्ट-मण्डल को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके उपरान्त पर्याप्त समय तक तिब्बत ने सिक्किम राज्य पर आक्रमण किया। यह राज्य इस समय तक अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया था। तिब्बत को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८६० ई० में अंग्रेजों और चीनियों में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार व्यापारिक सुविधाओं के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गई जिसके द्वारा १८६३ ई० में तिब्बत-सिक्किम सीमा पर यांतुग नामक स्थान पर व्यापारिक केन्द्र खोला गया, किन्तु इसका कोई फल नहीं निकला।

लार्ड कर्जन और तिब्बत (Lord Curzon & Tibet)—लार्ड कर्जन के भारत का वायसराय होने के उपरान्त भारत सरकार ने तिब्बत की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके पूर्व भारत सरकार और तिब्बत का कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था। इसी समय तिब्बत में एक ऐसी घटना हुई जिसने भारत सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। दलाई लामा पर रूस का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। १६०१ में यह समाचार फैला कि तिब्बत के सम्बन्ध में रूस और चीन के मध्य एक सन्धि हुई है जिसके द्वारा तिब्बत पर रूस का अधिकार स्थापित हो गया। अंग्रेज भला कब इस बात को सहन कर सकते थे कि रूस का प्रभाव उनकी उत्तरी-पूर्वी सीमा में विकसित हो। अतः लार्ड-कर्जन ने कर्नल यंगहसबैंड (Colonel Younghusband) की अध्यक्षता में कुछ सैनिकों के साथ एक दूत-मण्डल तिब्बत भेजा। यद्यपि तिब्बत-वासियों ने उस दूत-मण्डल का विरोध किया किन्तु उसने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। १६०४ ई० में दूत-मण्डल तिब्बत की राजधानी ल्हासा पहुँचा। इस दूत-मण्डल द्वारा एक समझौता हुआ जिसके अनुसार निम्न बातें तय हुई—

(क) तिब्बतियों ने ग्यान्तसे, गारटोक और यांतुग में अंग्रेजों को व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया।

तथा ईरान और अफगानिस्तान में युद्ध होने पर अंग्रेज तटस्थ रहेंगे। १८२६ ई० तक ईरान और अंग्रेजों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।

रूस-ईरान युद्ध (Russo-Persian War)—१८२७ ई० में रूस और ईरान के मध्य युद्ध हुआ। ईरान ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की किन्तु अंग्रेजों ने उसको किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की। ईरान युद्ध में परास्त हुआ और १८२८ ई० में वह तुर्कोमांची की सन्धि करने पर बाध्य हुआ। इस सन्धि से ईरान पर रूसी प्रभाव स्थापित हो गया।

सन् १८५६ ई० में ईरान ने अफगानिस्तान के हिरात प्रदेश पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने अमीर दोस्त मुहम्मद को सहायता प्रदान की जिसके कारण हिरात पर अफगानों का अधिकार हो गया।

ईरान-अंग्रेज सन्धि (Anglo-Persian Pact)—१८५७ ई० में ईरान के साथ अंग्रेजों की सन्धि हो गई जिसके कारण कटुता का अन्त हुआ। अब से ईरान तथा फारस की खाड़ी पर अंग्रेजों का एकाधिकार स्थापित हो गया। ईरान पूर्णतया अंग्रेजों के प्राधिपत्य में आ गया। फारस की खाड़ी का महत्व भारत-स्थित अंग्रेजी साम्राज्य के लिये बहुत अधिक था। अन्य योरोपीय राष्ट्र भी फारस की खाड़ी पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे और वे अंग्रेजों के एकाधिकार का अन्त करने के लि प्रयत्नशील थे। १८९८ ई० में फ्रांस ने ओमन के सुल्तान से बन्दरमिस्ता ले लिया अंगरेजों को यह असह्य था। उन्होंने ओमन के सुल्तान का दुर्ग उड़ा दिया और उसक धमकी दी। १९०० ई० में रूस ने भी फारस की खाड़ी में अधिकार करने का प्रयत्न किया किन्तु अंग्रेजों ने उसको भी सफल नहीं होने दिया। १९०३ ई० में भारत का वाइसराय कर्जन स्वयं फारस की खाड़ी गया जिससे वह ब्रिटिश हितों की रक्षा करने तथा अपने विरोधियों के प्रयत्नों को असफल बनाने में सफल हो सके। 'अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिये उसने कई उपायों का सहारा लिया। सर हेनरी मैकमोहन के नेतृत्व में सिस्तान में दूत-मण्डली भेजी गई, व्यापारिक अड्डों में दूतावास स्थापित किये गये, क्वेटा के पश्चिम में ६३ मील तक रेलवे लाइन बनाई गई, मुस्की से लेकर सीमाप्रान्त में रोबन किले तक सड़क बनाई गई तथा डाकखानों और तारघरों की व्यवस्था की गई।'

इंगलैंड और रूस का समझौता (Anglo-Russian Pact)—सन् १९०७ ई० में इंगलैंड और रूस में ईरान के प्रश्न को लेकर एक समझौता हुआ। इसके द्वारा यह निश्चय हुआ कि उत्तर में रूस का तथा दक्षिण में इंगलैंड का प्रभाव-क्षेत्र होगा और उसका मध्य भाग तटस्थ-क्षेत्र माना गया।

१९१९ का समझौता (Pact of 1919)—प्रथम युद्ध के उपरान्त १९१९ ई० में अंग्रेजों और ईरान के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अंग्रेजों ने ईरान की स्वतन्त्रता तथा अखण्डता को स्वीकार किया।

१९२१ ई० में फारस के शाह ने १९१९ के समझौते का अन्त कर अपने राज्य

का आधुनीकरण करना आरम्भ कर दिया । उस समय से अंग्रेजों का फारस के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा ।

उत्तरी-पूर्वी सीमा
(North-Eastern Frontier)

अब तक हमने अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति का अध्ययन किया, अब हम भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमान्त नीति का अध्ययन करेंगे । इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न का वर्णन किया जायगा ।

(१) अंग्रेज और तिब्बत,
(२) अंग्रेज और भूटान,
(३) अंग्रेज और नेपाल तथा
(४) अंग्रेज और ब्रह्मा ।

(१) अंग्रेज और तिब्बत (The Britishers and Tibet)—अंग्रेजी शासन की स्थापना करने के उपरान्त अंग्रेजों ने तिब्बत प्रदेश की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया । सन् १७७४–७५ ई० में वारेन हेस्टिंग्स ने व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से एक शिष्ट-मण्डल तिब्बत भेजा, किन्तु इस शिष्ट-मण्डल को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई । इसके उपरान्त पर्याप्त समय तक तिब्बत ने सिक्किम राज्य पर आक्रमण किया । यह राज्य इस समय तक अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया था । तिब्बत को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई । १८९० ई० में अंग्रेजों और चीनियों में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार व्यापारिक सुविधाओं के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गई जिसके द्वारा १८९३ ई० में तिब्बत-सिक्किम सीमा पर याटुंग नामक स्थान पर व्यापारिक केन्द्र खोला गया, किन्तु इसका कोई फल नहीं निकला ।

लार्ड कर्जन और तिब्बत (Lord Curzon & Tibet)—लार्ड कर्जन के भारत का वायसराय होने के उपरान्त भारत सरकार ने तिब्बत की ओर विशेष ध्यान दिया । इसके पूर्व भारत सरकार और तिब्बत का कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था । इसी समय तिब्बत में एक ऐसी घटना हुई जिसने भारत सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित किया । दलाई लामा पर रूस का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था । १९०१ में यह अफवाह फैली कि तिब्बत के सम्बन्ध में रूस और चीन के मध्य एक सन्धि हुई है जिसके द्वारा तिब्बत पर रूस का अधिकार स्थापित हो गया । अंग्रेज भला कब इस बात को सहन कर सकते थे कि रूस का प्रभाव उनकी उत्तरी-पूर्वी सीमा के निकट हो । अतः लार्ड-कर्जन ने कर्नल यंगहसबैंड (Colonel Younghusband) की अध्यक्षता में कुछ सैनिकों के साथ एक दूत-मण्डल तिब्बत भेजा । यद्यपि तिब्बत-वासियों ने इस दूत-मण्डल का विरोध किया किन्तु उसने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया । १९०४ ई० में दूत-मण्डल तिब्बत की राजधानी ल्हासा पहुँचा । इस दूत-मण्डल द्वारा एक समझौता हुआ जिसके अनुसार निम्न शर्तें तय हुई—

(क) तिब्बतियों ने ग्यान्टसे, गारटोक और याटुंग में अंग्रेजों को व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया ।

(ख) अंग्रेजों को सिक्कम और भूटान का भू-भाग प्राप्त हुआ।

(ग) ग्यानसे में एक ब्रिटिश ट्रेड एजेन्ट रहेगा जिसको ल्हासा जाने का अधिकार होगा तथा,

(घ) तिब्बत पर चीन का अधिकार होगा।

तिब्बत पर चीनी आक्रमण (Chinese attack on Tibet)—चीन ने तिब्बत में अपनी सत्ता को दृढ़ करने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण किया। तिब्बत चीन का सामना नहीं कर सका। दलाई लामा को बाध्य होकर दार्जिलिंग में अंग्रेजों की शरण में आना पड़ा। भारत सरकार ने चीन की इस नीति का विरोध किया। १९१२ ई० में तिब्बत पर से चीनी प्रभुत्व का अन्त हो गया और भारत सरकार का प्रभुत्व उस पर स्थापित हो गया। दिन प्रतिदिन दोनों देशों में मैत्री सम्बन्ध बढ़ते रहे।

(२) अंग्रेज और भूटान (The Britishers and Bhutan)—भूटान एक पहाड़ी प्रदेश है जो हिमालय पर्वत की तलहटी में स्थित है। यह सदा स्वतन्त्र रहा है, किन्तु कभी-कभी तिब्बत तथा नेपाल की ओर से इस पर अधिकार करने के प्रयत्न किये गये। भूटान से अंग्रेजों का सम्पर्क १७६२ ई० से आरम्भ होता है। वहाँ दो शिष्ट-मण्डल विभिन्न समयों में भेजे गये, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। १७९२ ई० में नेपाल ने भूटान पर आक्रमण किया। भूटान के लोगों ने अंग्रेजी सीमा पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। १८३८ ई० में अंग्रेजों की ओर से एक मिशन भूटान भेजा गया, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इसके उपरान्त १८६४ ई० में एक शिष्ट-मण्डल भेजा गया, किन्तु उन्होंने बलपूर्वक उस शिष्ट-मण्डल को एक सन्धि करने पर बाध्य किया जिसके अनुसार आसाम से भूटान जाने वाले रास्तों पर भूटानियों का अधिकार हो गया। शीघ्र ही भारत सरकार ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध में अंग्रेज विजयी हुये और १८६६ ई० में सिंचुला की सन्धि हुई जिसके द्वारा निश्चय हुआ कि—

(१) भूटानियों ने भारत से तिब्बत आने के समस्त मार्ग अंग्रेजों को दे दिये।

(२) १८० मील लम्बा तथा २० मील चौड़ा भू-भाग अंग्रेजों को प्राप्त हुआ।

(३) भारत-सरकार भूटान को ५०,००० रुपये वार्षिक दिया करेगी।

इस सन्धि के अनुसार शांति की स्थापना हुई। १९१० ई० में इस सन्धि में कुछ आवश्यक परिवर्तन किए गये। इन परिवर्तनों से भूटान की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया तथा भूटान राज्य की धन-राशि में वृद्धि कर दी गई। यह संधि स्थायी रही।

(३) अंग्रेज और नैपाल (The Britishers and Nepal)—गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि १८१६ ई० में संगोली की संधि द्वारा भारत-सरकार और नैपाल राज्य के मध्य एक समझौता हो गया था और उसके उपरान्त भारत सरकार और नैपाल के बीच एक मैत्रीपूर्ण व्यवहार रहा। १८५७ की क्रान्ति में अंग्रेजों को नैपाल राज्य से बड़ी सहायता प्राप्त हुई। क्रान्ति के दमन के लिये नैपाल से

एक सेना भी आई थी जिसने क्रान्ति के दमन-कार्य में अंग्रेजों को बड़ी सहायता की। अंग्रेज इनकी सहायता से प्रसन्न होकर नेपाल राज्य को दस लाख रुपये की वार्षिक सहायता प्रदान करने लगे। १९२३ ई० में भारत सरकार और नेपाल राज्य के बीच एक संधि हुई जिसने मित्रता को और भी दृढ़ कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अंग्रेज नेपाल राज्य को २० लाख रुपये वार्षिक देने लगे।

(४) अंग्रेज और बर्मा (The Britishers and Burma)—गत पृष्ठों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि द्वितीय बर्मा युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों के अधिकार में दक्षिणी बर्मा का प्रदेश आ गया था। अंग्रेजों की साम्राज्य-लिप्सा का अन्त अभी नहीं हो पाया था। वे तो समस्त बर्मा पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे और उसके लिये अवसर की खोज में थे।

तृतीय बर्मा युद्ध (Third Burmese War)—१८५३ ई० में मिंडन अपने भाई पेगन को गद्दी से उतार कर बर्मा का राजा बना। वह एक योग्य शासक था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह दक्षिणी बर्मा पर से अंग्रेजों के प्रभुत्व का अन्त करे। उसके समय में ही अंग्रेजों से उसके सम्बन्ध खराब होने लगे। उसके बाद थीबा बर्मा का राजा हुआ। वह अयोग्य शासक था और वह बर्मा में शान्ति की स्थापना नहीं कर सका। इसका शासन शिथिल था, किन्तु वह अंग्रेजों को घृणा की दृष्टि से देखता था। अंग्रेजों को उत्तरी बर्मा में कुछ व्यापारिक सुविधायें प्राप्त थीं जिनका वह अन्त करना चाहता था। उसने अन्य योरोपीय शक्तियों के साथ सन्धि-वार्ता चलाई जिसको अंग्रेज सहन न कर सके। उसने फ्रांस के साथ १८८६ ई० में एक सन्धि की जिससे अंग्रेज चौकन्ने हो गए। धीरे-धीरे दोनों के सम्बन्ध कटु होने लगे। भारत के वाइसराय ने उसके सामने कुछ मांगें रखीं जिनको मानने से उसने साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेजों ने शीघ्र ही मांडले पर अधिकार कर लिया। थीबा ने आत्मसमर्पण किया। १८८६ ई० की पहली जनवरी को उत्तरी बर्मा को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार समस्त बर्मा पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) उन्नीसवीं शताब्दी में भारत और अफगानिस्तान के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये। अफगान मामलों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप करना कहाँ तक उचित था? (१९५१)

(२) द्वितीय अफगान युद्ध के कारण और परिणाम बताइये। (१९५६)

(३) ब्रिटिश राज्य-काल में भारत और अफगानिस्तान के पारस्परिक संघर्षों पर प्रकाश डालिये।

(४) अंग्रेजी सरकार की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो। (१९५८)

मध्य भारत—

(१) लार्ड लारेंस द्वारा अपनाई हुई मास्टरली इनएक्टिविटी (Masterly Inactivity) की नीति का वर्णन कीजिये। इसके परिणाम बताइये। (१९५२)

(२) लार्ड कर्जन की सीमा विषयक नीति की विवेचना कीजिये और सिद्ध कीजिये कि विशेषकों विरोधी मतों के मध्य में वह एक समझपूर्ण समझौता था। (१९५४)

(३) उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहने वाली अफगान जातियों के प्रति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार की नीति का वर्णन करो। (१९५६)

राजस्थान—

(१) क्या लार्ड लिटन की अफगान नीति का समर्थन किया जा सकता है? संक्षेप में, ब्रिटिश सरकार और अफगानिस्तान के सम्बन्धों का वर्णन करो जिसके कारण द्वितीय अफगान युद्ध हुआ। (१९५२)

(२) लार्ड कर्जन को किन बाह्य समस्याओं का सामना करना पड़ा। उनके निराकरण करने में उसकी सहायता का वर्णन करो। (१९५३)

(३) बर्मा किस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया गया। (१९५२)

(४) उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति की व्याख्या कीजिये। (१९५

(५) सन् १८५८ से १९०५ तक की अंग्रेजों की अफगानिस्तान के प्र नीति की व्याख्या कीजिये। (१९५१

---

६ वैधानिक विकास

(१८५८—१९४७ तक)

(Constitutional Development)

सन् १८५८ ई० के अधिनियम तथा महारानी विक्टोरिया की घोषणा द्वारा क्रान्ति के उपरान्त नई व्यवस्था को जन्म दिया गया। इसका उल्लेख गत अध्यायों में किया जा चुका है। १८५३ ई० के चार्टर एक्ट के द्वारा भारत में संसदीय व्यवस्था की स्थापना कर दी गई थी। विधि-निर्माण करने के लिये गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका में ६ सदस्य और सम्मिलित कर दिये गये थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसकी सदस्यता किसी भारतीय को प्राप्त नहीं थी। इस दोष का अनुभव बहुत से व्यक्तियों को क्रान्ति के अवसर पर हुआ। 'इसी कारण कुछ अंग्रेजों में यह धारणा बलवती हो गई थी कि सिपाही विद्रोह का प्रमुख कारण शासक तथा

शासितों में घनिष्ट सम्पर्क का अभाव था और देश की व्यवस्थापिका सभा में भारतीयों की अनुपस्थिति थी।'* कुछ भारतीय और अंग्रेज नीतिज्ञों की भी यह धारणा थी। इसके अभाव में भारतीयों को अपना दृष्टिकोण भारत-सरकार के सामने व्यक्त करने का अवसर प्राप्त नहीं होता था। सर सैयद अहमद खां सदृश अनेक शिक्षित भारतीयों की यह धारणा थी कि यदि भारतीयों को विधान-मण्डल में स्थान प्राप्त होता तो भारतीय १८५७ की भूल कदापि नहीं करते। इसके अतिरिक्त १८५३ ई० के अधिनियम द्वारा जिस विधान-मण्डल का निर्माण किया गया उसने कार्यपालिका के कार्यों की आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया और अपने आपको भारत-सचिव (Secretary of State for India) या कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (Court of Directors) से मुक्त समझना प्रारम्भ किया जिसका अर्थ यह हुआ कि वह अपने आप को स्वतन्त्र विधान-मण्डल समझने लगा। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड विधान-मण्डल के स्वतन्त्र आचरण को सहन नहीं कर सका।† किन्तु भारत का गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी विधान-मण्डल के कार्य से तथा उसके रुख से परेशान नहीं हुआ। लार्ड कैनिंग ने सर चार्ल्स वुड का समर्थन किया। अतः यह निश्चय किया गया कि विधान-मण्डल के अधिकार में केवल अधिनियम बनाने का ही कार्य रहे। इसी समय यह भावना जोर पकड़ रही थी कि विधानाधिकार के केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण किया जाये। मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके इस अधिकार के छिन जाने से वे बड़े खिन्न थे और साथ ही साथ उनको कुछ असुविधा उत्पन्न हो गई थी। अतः क्रान्ति के उपरान्त शीघ्र ही इन दोनों दोषों को दूर करने की ओर ध्यान दिया गया।

सन् १८६१ का इण्डियन कौंसिल्स् अधिनियम
(Indian Council's Act of 1861)

सन् १८६१ ई० में कौंसिल अधिनियम द्वारा प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं का आयोजन किया गया। शीघ्र ही मद्रास और बम्बई में व्यवस्थापिका सभायें निर्मित की गईं। सन् १८६२ में बंगाल में, १८८६ में उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश तथा १८९७ में पंजाब में इनका निर्माण हुआ। इसके सदस्यों की संख्या ४ से ८ तक निश्चित की गई जिनमें से आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना अनिवार्य था। इनकी नियुक्ति प्रान्त का गवर्नर करता था। इसको प्रान्त सम्बन्धी विषयों पर विचार करने तथा अधिनियम बनाने का अधिकार था। ये उन विषयों पर अधिनियम नहीं बना सकते थे जिनके लिये सम्पूर्ण भारत के लिये एक नीति का होना आवश्यक था। ये सभायें गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई विधेयक पास नहीं कर सकती थीं। गवर्नर-जनरल का यह अधिकार था कि वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा

* "The terrible events of the Mutiny brought home to men's minds the dangers arising from the entire exclusion of Indians from associations with the legislature of the country."

† Sir Charles Wood said, "I do not look upon it as some of the young Indians do as the nucleus and beginning of a constitutional parliament in India."

बनाये हुए अधिनियम को अस्वीकृत कर दे। अधिनियम में ऐसा निश्चित नहीं था कि भारतीयों को सदस्य बनाया जाये, किन्तु कार्य-रूप में कुछ भारतीयों को इनका सदस्य अवश्य बनाया गया। गवर्नर-जनरल की परिषद् (Governor-General in Council) में एक वित्त सदस्य (Finance Member)—को बढ़ा दिया गया। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह विधि बनाने के प्रयोजन के लिये अपनी परिषद् में कम से कम छः और अधिक से अधिक १२ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जिनमें से आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना आवश्यक था। गैर सरकारी सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल दो वर्ष के लिये कर सकता था। इनके अधिकार बहुत सीमित थे। उनका प्रश्न पूछने तथा सरकार की नीति-निर्धारित करने में कोई सम्बन्ध नहीं था। प्रत्येक विषय को सभा में प्रस्तावित करने के पूर्व गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य था। इस अधिनियम द्वारा गवर्नर-जनरल को आपात-काल में अध्यादेश जारी करने की एक नई शक्ति प्राप्त हुई।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभायें गवर्नर-जनरल और गवर्नर की कार्यकारिणी का ही रूपान्तर थीं। अन्तर केवल इतना ही था कि कुछ थोड़े से भारतीय सदस्य इनके लिए नियुक्त कर लिये जाते थे जिनको विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस अधिनियम से भारत-सरकार में विभाग-पद्धति का आरम्भ हुआ। लार्ड केनिंग (Lord Canning) ने अपने अधिकारों को विभागों में विभाजित कर दिया जिसके द्वारा प्रशासन की प्रत्येक शाखा का एक सरकारी अध्यक्ष तथा सरकार में उनका प्रवक्ता होता है। वह अपने विभाग में प्रशासन तथा संरक्षण के लिये उत्तरदायी था।

१८९२ का इण्डिया कौंसिल्स अधिनियम
(Indian Council's Act of 1892)

१८६१ के कौंसिल्स अधिनियम द्वारा भारतीयों को तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ। १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना भारत में हुई। अपने प्रथम अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने निम्न प्रस्ताव पास किया—

"राष्ट्रीय महासभा की राय है कि केन्द्रीय और स्थानीय व्यवस्थापिका सभाओं में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या को बढ़ाकर उनका सुधार और विस्तार करना और उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त और अवध तथा पंजाब में भी इसी प्रकार की व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना करना अति आवश्यक है। इस सभा की राय में सम्पूर्ण बजट भी इस व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया जाना चाहिये और इसके सदस्यों को प्रशासन के समस्त विभागों के विषय में व्यवस्थापिका से प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिये"।

सन् १८८९ ई० में ब्रिटिश संसद का सदस्य सर चार्ल्स ब्रेडलो (Sir Charles Bradlaugh) भारत आया। वह राष्ट्रीय महासभा के पाँचवें सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। उसने ब्रिटिश संसद में एक विधेयक उपस्थित किया। बाद मे ब्रिटिश सरकार ने बाध्य होकर एक अन्य अधिनियम पास किया जो १८९२ ई० के इण्डिया

कौंसिल अधिनियम (India Council's Act) के नाम से विख्यात हुआ, जिसमें सर टालर्स ब्रैडलो की मांगें आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

इस अधिनियम द्वारा भारतीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या १६ कर दी गई जिसमें से १० सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। प्रान्तों में भी गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनकी नियुक्ति केन्द्र में गवर्नर-जनरल और प्रान्तों में गवर्नर विभिन्न संस्थाओं के आधार पर करने लगे। गवर्नर जनरल पांच सदस्यों की नियुक्ति कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स (Calcutta Chamber of Commerce) की सिफारिश पर और अन्य चार की नियुक्ति मद्रास, बम्बई, बंगाल तथा सीमा-प्रान्त की व्यवस्थापिका सभाओं के गैर-सरकारी सदस्यों की सिफारिश पर करेगा। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सदस्यों की नियुक्ति स्थानीय संस्थाओं द्वारा की जायगी। सदस्यों के अधिकारों में भी वृद्धि हुई। इनको वार्षिक बजट पर बहस करने का अधिकार प्राप्त हुआ। वे उस पर न मत दे सकते थे और न उससे सम्बन्धित किसी विषय पर मत की मांग कर सकते थे।

इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति का आरम्भ हुआ। सदस्यों को सरकार की नीति पर स्वतन्त्र रूप से वाद-विवाद करने का अधिकार प्राप्त हुआ तथा उनको सार्वजनिक हित के विषयों में प्रश्न पूछने का अधिकार मिला। अतः यह स्वीकार करना होगा कि यह अधिनियम पिछले अधिनियमों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील था जिसके कारण उसका वैधानिक महत्व बहुत अधिक है।

सन् १९०९ का इण्डिया कौंसिल्स अधिनियम

(Indian Council's Act of 1909)

१८९२ ई० के अधिनियम से भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। भारत-सरकार पर भारत-सचिव का पूर्ण नियन्त्रण था। लार्ड कर्जन जैसा गवर्नर-जनरल भी उसके सामने झुक गया। लार्ड कर्जन की नीति के कारण देश में बड़ा असन्तोष फैल गया। भारत में बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में एक उग्र दल का निर्माण कांग्रेस में हुआ जिसने सरकार की नीति का घोर विरोध किया। गोपाल कृष्ण गोखले ने सरकार से अपील की कि जनता को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। वे स्वयं इंगलैण्ड गये और उन्होंने भारत सचिव मार्ले (Morley) से भेंट कर उनको यह सुझाव दिया कि भारत में नये राजनीतिक सुधारों का समय आ गया है। सन् १९०६ ई० में मार्ले ने भारत के वाइसराय लार्ड मिण्टो को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि भारत को नये राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता है। भारत-मन्त्री और भारत सरकार में प्रस्तावित सुधारों के स्वरूप एवं उनके क्षेत्र के विषय में तीन वर्ष तक पत्र-व्यवहार चलता रहा और अन्त में सन् १९०९में ब्रिटिश संसद ने १९०९ का इण्डिया कौंसिल अधिनियम पारित किया। ये सुधार मिण्टो-मार्ले सुधारों के नाम से भी विख्यात हैं।

१. इस अधिनियम के अनुसार गवर्नर-जनरल तथा प्रान्तीय गवर्नर को अपनी अपनी व्यवस्थापिका सभाओं के लिये कार्य-क्रम के नियम बनाने का अधिकार प्राप्त

हुआ। गवर्नर-जनरल की व्यवस्थापिका सभा के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या २ (बीस) कर दी गई। इस प्रकार कार्यकारिणी के सदस्यों को सम्मिलित कर केन्द्री व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का योग ६० हो गया जिनमें से ३३ सदस्य मनोनी होते थे और २७ सदस्य निर्वाचित होते थे। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यं में भी वृद्धि हुई। बम्बई, बंगाल तथा मद्रास में ५० और अन्य प्रान्तों में ३० सदस्य निश्चित किये गये।

इस अधिनियम की सर्वश्रेष्ठ महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रथम बार प्रत्यक्ष निर्वाचन तथा मुसलमानों के प्रथम निर्वाचन-सिद्धान्त को अपनाया गया था। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में भी प्रथम बार भारतीयों को स्थान दिया गया। प्रथम सदस्य श्री एस० पी० सिन्हा थे जो बाद में लार्ड सिन्हा के नाम से विख्यात हुये। इसके द्वारा व्यवस्थापिका सभा के कार्य-क्षेत्र तथा उसके अधिनियम सम्बन्धी अधिकार विस्तृत कर दिये गये। वार्षिक बजट पर सदस्यों को वाद-विवाद का अधिकार प्राप्त हुआ। सार्वजनिक हित-सम्बन्धी विषयों पर भी सदस्यों को वाद-विवाद का अधिकार मिल गया।

१९०९ का अधिनियम तत्कालीन परिस्थितियों में आगे की ओर एक बहुत बड़ा पग था। इसने नरम दल के हृदय में आशा का संचार किया। श्री गोपाल कृष्ण गोखले का विचार था कि यह भारत-सरकार के नौकरशाही के स्वरूप में एक बड़ा परिवर्तन कर देगा और निर्वाचित भारतीय सदस्यों को कार्यपालिका को प्रभावित करने का अवसर होगा। उनका यह केवल भ्रम था जो शीघ्र ही दूर हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचित भारतीयों के कथन का सरकार निश्चयों पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। श्री गोखले का यह विचार था कि सुधारों ने निर्वाचित भारतीयों को प्रशासन के साथ उत्तरदायित्वपूर्ण संसर्ग प्रदान किया था, स्पष्ट रूप से कोरी आशावादिता की पराकाष्ठा थी।

इस अधिनियम ने कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन अवश्य किये, किन्तु भारतवासियों को उससे विशेष सन्तोष नहीं हुआ। इसका प्रमुख कारण यह था कि व्यवस्थापिका सभाओं को अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। वे केवल प्रस्ताव पास करने का अधिकार रखते थे, किन्तु उनकी स्वीकृति का अधिकार वाइसराय एवं प्रान्तों के गवर्नरों की इच्छा पर था। अतः इस अधिनियम ने कार्यकारिणी की शक्ति में तनिक भी परिवर्तन नहीं किया और उसकी शक्ति पूर्ववत् बनी रही। पृथक निर्वाचन पद्धति या साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का सिद्धान्त मुसलमानों को प्रसन्न करने के हेतु स्वीकार किया गया, किन्तु इसका दुःखद परिणाम भारतीयों को उठाना पड़ा। इससे भारत की एकता तथा अविभाज्यता का अन्त होना आरम्भ हो गया। इसके अतिरिक्त निर्वाचकों की संख्या भी सीमित थी। साधारण जनता को वे अधिकार प्राप्त नहीं थे जिससे उसका शासन-प्रबन्ध में कोई हाथ नहीं था।

लार्ड मार्ले ने इण्डिया कौंसिल में भी दो भारतीयों की नियुक्ति की। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है किन्तु इसका सीधा सम्बन्ध इस अधिनियम से नहीं है।

प्रथम महायुद्ध (१९१४—१९१८)

१९०९ के एक्ट से भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ, यहां तक कि उदार दल के सदस्य भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट हो गये। राष्ट्रीय महासभा ने इसका विरोध किया। धीरे-धीरे भावना अधिक प्रबल हो गई। इसी समय बालगंगाधर तिलक ने घोषित किया कि 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।' १९०९ के अधिनियम को कार्यान्वित हुये अधिक समय भी नहीं हो पाया था कि योरप में प्रथम महायुद्ध (१९१४–१९१८) की चिंगारी भभक उठी। सबका ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया। भारतीय जनता ने भी अंग्रेजों की हृदय से सहायता की, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन चलता रहा। भारतीयों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से १९१७ ई० को २० अगस्त को भारत मन्त्री मांटेग्यू ने ब्रिटिश लोक-सभा में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जो इस प्रकार है—

"सम्राट की सरकार की नीति जिससे भारत-सरकार पूर्णरूप से सहमत है यह है कि भारतीयों को प्रशासन के प्रत्येक विभाग में अत्यधिक स्थान प्रदान किये जायें जिससे भारतवासियों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़ाता जाये तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अङ्ग के रूप में भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिये स्वशासित संस्थाओं की स्थापना की जाये। इस नीति का उत्थान तथा प्रगति धीरे-धीरे की जायेगी और भारत तथा ब्रिटिश सरकार ही यह निर्णय करेगी कि अब और कितना अग्रसर होना चाहिये।"*

अपनी घोषणा को कार्यरूप देने के उद्देश्य से भारतीय नेताओं और भारत-सरकार के कर्मचारियों की सलाह से एक सुधार-योजना का निर्माण करने के अभिप्राय से श्री मांटेग्यू नवम्बर सन् १९१७ ई० में भारत आये और आगामी वर्ष तक वे भारत में रहे। आपने भारत में उदार तथा उग्र और मुस्लिम लीग के नेताओं से भेंट की। उन्होंने एक योजना का निर्माण किया जिसके आधार पर सन् १९१९ ई० का भारत-सरकार अधिनियम का निर्माण हुआ।

१९१९ का भारत-सरकार अधिनियम
(Government of India Act 1919)

इस अधिनियम के द्वारा भारतीय शासन-व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। इसका प्रभाव न केवल भारत-स्थित सरकार पर पड़ा वरन् इङ्गलैण्ड स्थित शासन-संस्थाओं को भी उसने प्रभावित किया। इस अधिनियम ने केन्द्रीय धारा सभा के गठन कार्यों और शक्तियों में अनेक सारगर्भित परिवर्तन किये, इन्हें विस्तृत किया इनमें जनता के प्रतिनिधियों की संख्या में विस्तार किया तथा इसको सरकार को प्रभावित करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये किन्तु इसके और कार्यपालिका के सम्बन्धों में

* "The policy of His Majesty's Government, with which the Government of India are in full accord, is that of increasing association of Indians in every branch of the administration and the gradual development of self-governing institution with a view to the progressive realisation of responsible Government in India as an integral part of the British Empire. The progress in this policy can only be achieved by successive stages. The British Government of India must be the judge of the time and measure of each advance." —Lord Montague.

कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया गया। इसने कार्यपालिका की बनावट और उसके स्वरूप में भी आवश्यक परिवर्तन किये। इस एक्ट का अध्ययन निम्न शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा—

(१) गृह सरकार (Home Government)

(२) केन्द्रीय सरकार (Central Government)

(३) प्रान्तीय सरकार (Provincial Government)

(१) गृह सरकार (Home Government)—इस अधिनियम के अनुसार भारत मन्त्री की इण्डिया-कौंसिल की संख्या आठ से बारह निश्चित हुई जिनमें से आधे सदस्य ऐसे होने चाहिएँ जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में निवास कर चुके हों। बारह सदस्यों में से तीन का भारतीय होना आवश्यक था। इनकी अवधि पाँच वर्ष निश्चित की गई। भारत मन्त्री का वेतन इङ्गलैंड के राजकोष से दिया जायेगा।

> **एक्ट के अध्ययन के शीर्षक**
> (१) गृह सरकार।
> (२) केन्द्रीय सरकार।
> (३) प्रान्तीय सरकार।

इस अधिनियम ने एक भारतीय उच्च आयुक्त (Indian High Commissioner) की व्यवस्था की जिनके अधिकार में भारत-मन्त्री के कुछ कार्य सौंपे गये। भारत-मन्त्री के शासन-सम्बन्धी अधिकारों को कम कर दिया गया जिससे उसका भारतीय शासन में हस्तक्षेप कम हो गया। जिन विषयों पर गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करेगा उनके ऊपर से भारत-मन्त्री का नियन्त्रण हटा दिया गया। उसका केन्द्रीय सरकार पर से भी कुछ नियन्त्रण कम कर दिया गया। इतना होने पर भी भारत-सरकार पर उसका तथा ब्रिटिश सरकार का पर्याप्त नियन्त्रण बना रहा।

(२) केन्द्रीय सरकार (Central Government)—इस अधिनियम द्वारा भारत सरकार में विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। केन्द्रीय शासन में द्विसदनीय व्यवस्थापिका सभा (Bi-Cameral Legislature) की स्थापना हुई जिनमें से प्रथम भवन का नाम भारतीय विधान सभा (Legislative Assembly) और द्वितीय भवन का नाम राज्य परिषद् (Council of States) रखा गया। भारतीय विधान सभा में सदस्यों की संख्या १४५ निश्चित की गई जिनमें से १०३ सदस्य निर्वाचित तथा शेष ४१ सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। राज्य-परिषद् के सदस्यों की संख्या ६० थी जिनमें से २७ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे और शेष ३३ सदस्यों का निर्वाचन होता था। इन सभाओं में अधिनियम-सम्बन्धी अधिकारों में वृद्धि हुई किन्तु अब भी केन्द्रीय कार्यकारिणी उसके प्रति उत्तरदायी नहीं थी। गवर्नर-जनरल के अधिकार पूर्ववत् रहे। वह सम्पूर्ण शासन का केन्द्र था। वह अपनी कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका सभा की इच्छाओं की अवहेलना करने का अधिकार रखता था। वह दोनों सदनों द्वारा पास किये हुये विधेयकों को अस्वीकार कर सकता था। उसको अध्यादेश (Ordinances) बनाने का अधिकार भी प्राप्त था। उसकी कार्यकारिणी में तीन भारतीय सदस्यों का होना आवश्यक था। कुल सदस्यों की संख्या आठ

निश्चित की गई थी। उनकी सलाह मानना अथवा न मानना उसकी अपनी निजी इच्छा पर निर्भर था। वे उसको किसी भी प्रकार अपनी सलाह मनवाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते थे। वास्तव में वे उसके सेवक-मात्र थे।

(३) प्रान्तीय सरकार—इस अधिनियम द्वारा प्रान्तीय सरकार में भी बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों में वृद्धि की गई। निश्चित सदस्यों में से ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचन द्वारा तथा शेष ३० प्रतिशत सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस सभा की अवधि तीन वर्ष निश्चित हुई। इनको अपने सभापति के निर्वाचन करने का अधिकार प्राप्त था। प्रांतों में द्वैध शासन (Dyarchy) की स्थापना की गई। समस्त प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया जिनमें से एक सुरक्षित (Reserved) और दूसरे हस्तांतरित (Transferred) विषय कहलाये। सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी कार्यकारिणी द्वारा, हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर मन्त्रि-परिषद् की सलाह से करेगा। मन्त्रि-परिषद् अपने समस्त कार्यों के लिए व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। मन्त्री साधारणतः व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होगा किन्तु गवर्नर को अधिकार था कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्री पद पर आसीन कर सकता है जो उसका सदस्य नहीं हो किन्तु उसको छः मास के अन्तर्गत व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होना आवश्यक था, अन्यथा उसको अपना पद रिक्त करना होगा। व्यवस्थापिका सभा के अधिकारों में वृद्धि की गई किन्तु गवर्नर के विशेषाधिकार (Veto Power) के सामने उसके समस्त अधिकारों का तनिक भी महत्व नहीं था। वह इस अधिकार द्वारा उसके पारित विधेयकों को अस्वीकार कर सकता था। उसको कार्यकारिणी की सलाह मानने अथवा न मानने का भी अधिकार था। वह अध्यादेश बना सकता था।

भारतीय जनता को इस अधिनियम से संतोष नहीं हुआ क्योंकि वे बहुत अधिक राजनीतिक सुधारों की आशा करते थे। समस्त देश में असन्तोष की लहर फैल गई और उन्होंने सरकार की नीति तथा इन सुधारों की तीव्र आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया। ८ नवम्बर १९२७ ई० को अंग्रेजी सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की जिसने सरकार के सामने अपनी रिपोर्ट पेश की और १९३० ई० में यह रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

भारत-सरकार अधिनियम (१९३५)
(Government of India Act 1935)

अंग्रेजों ने तीन गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। उसके वाद-विवादों तथा विचार-विमर्श के आधार पर ब्रिटिश सरकार की ओर से एक श्वेत (White Paper) तैयार किया गया जिसके अन्तर्गत शासन-सुधार की एक योजना थी। भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में सन् १९३२ ई० में इस श्वेत पत्र पर अपने विचार प्रकट करने के लिये एक समिति का निर्माण हुआ जिसने २२ नवम्बर सन् १९३४ ई० को अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट को पस्ताव का रूप देकर भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर (Sir Samual Hoare) ने ब्रिटिश संसद में प्रस्तावित किया। लोक-सभा

द्वितीय महायुद्ध (Second World War)—इसके उपरान्त भारत के राजनैतिक क्षितिज में बड़ी महत्वपूर्ण हलचलें हुईं जिनका वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जायेगा। प्रान्तों में १९३५ ई० का अधिनियम कार्यान्वित किया गया, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के होने के कारण वह भी असफल हो गया। इसके उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ योजनायें रखीं। भारत में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ने का निश्चय किया। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी १९४७ को लोक सभा (House of Commons) में एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा—

"ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि वह जून १९४८ तक भारत पर से अपनी शासन-सत्ता का अन्त कर देगी।"

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७)
(Indian Independence Act 1947)

भारत के वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन ने एक योजना का निर्माण किया जिसको अधिनियम का रूप प्रदान करने के अभिप्राय से ४ जुलाई १९४७ को उसको *विधेयक के रूप में इंगलैण्ड की लोक सभा में प्रस्तावित किया।* दोनों सदनों द्वारा पारित होने के उपरान्त अगस्त १९४७ को इङ्गलैंड के सम्राट ने अपने हस्ताक्षर कर अपनी सम्मति प्रगट की। यह अधिनियम भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७) के नाम से विख्यात है। इस अधिनियम का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि इसके द्वारा भारत स्वतन्त्र हुआ और उस पर से अंग्रेजों के शासन का अन्त हो गया। इस अधिनियम की मुख्य धारायें निम्नांकित हैं—

(१) १५ अगस्त १९४७ से भारत का विभाजन पाकिस्तान तथा भारत में होकर उनको औपनिवेशिक अधिकार प्रदान किये जाते हैं।

(२) १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त ब्रिटिश सरकार का इन पर किसी भी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा। प्रत्येक को अपने मामलों का निर्णय करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(३) इन उपनिवेशों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nations) में सम्मिलित रह सकते हैं अथवा नहीं।

(४) जिस समय तक दोनों उपनिवेशों का संविधान तैयार न हो उस समय तक इनकी संविधान-सभा को विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार संविधान-सभा को व्यवस्थापिका सभा के अधिकार प्राप्त हुये जो १९३५ ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधान मण्डल को प्राप्त थे।

(५) ब्रिटिश सम्राट दोनों उपनिवेशों के लिये अलग-अलग वाइसराय नियुक्त करेंगे, किन्तु यदि दोनों उपनिवेशों की व्यवस्थापिका सभायें एक ही वाइसराय रखना चाहें तो वह भी सम्भव है।

(६) सम्राट की प्रान्तों तथा देशी राज्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

सलाह मानना अथवा न मानना उनकी अपनी इच्छा पर पूर्णतया निर्भर था तथा, (३) कुछ विषयों में वह अपनी मन्त्रि-परिषद् की सलाह से कार्य करता था। इस क्षेत्र में ही केवल उत्तरदायित्व शासन की स्थापना हो पाई थी।

गवर्नर-जनरल के समान प्रान्तों के गवर्नरों को अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार था। वह वैधानिक संकट (Constitutional deadlock) के समय प्रान्त का सम्पूर्ण शासन अपने अधिकार में कर सकता था और उसको ऐसी परिस्थिति में सलाहकारों द्वारा शासन-संचालन का अधिकार प्राप्त था। उसको विशेषाधिकार (Veto Power) भी प्राप्त था। वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन आमन्त्रित कर सकता था तथा उसकी अवधि घटा और बढ़ा सकता था। उसको भंग करने का भी अधिकार प्राप्त था। वह संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) भी आमन्त्रित कर सकता था।

कुछ प्रान्तों में दो सदनों का तथा कुछ प्रान्तों में एक सदन का आयोजन किया गया। उत्तर प्रदेश में दो सदनों की व्यवस्था की। प्रथम सदन का नाम विधान-सभा (Legislative Assembly) और द्वितीय सदन का नाम विधान-परिषद् (Legislative Council) रखा गया। विधान सभा के समस्त सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा होता था, किन्तु विधान-परिषद् के कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जाते थे। सदस्यों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया गया था। सदस्यों की संख्या प्रान्तों की जनसंख्या के आधार पर निश्चित की गई थी। मतदाताओं और सदस्यों की योग्यताएँ घटा दी गईं और व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि हुई। वार्षिक बजट (Budget) में काट-छाँट करने का अधिकार सदस्यों को प्राप्त था। किन्तु गवर्नर अपने विशेष अधिकारों द्वारा उस कमी की पूर्ति कर सकता था। सदस्यों के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि की गई। उनको सरकार की नीति की आलोचना करने तथा पूरक प्रश्न (Supplementary questions) पूछने का अधिकार था। मन्त्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिये विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी था। इतना सब कुछ होते हुए भी गवर्नर पर व्यवस्थापिका सभा का कोई नियन्त्रण नहीं था।

इस अधिनियम में भी जनता को सन्तोष नहीं हुआ। प्रत्येक राजनीतिक दल ने उसकी कटु आलोचना की। देशी प्रान्तों ने संघ में सम्मिलित होने से इंकार कर दिया। देश-रत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में सभापति के पद से इस अधिनियम की तीव्र आलोचना की। उन्होंने कहा कि—

"यह एक प्रकार का संघ है जिसमें भारत के एक तिहाई भाग का निर्लज्ज स्वेच्छाचारी राज्य सुरक्षित रहेगा और समय-समय पर यह अपनी झाँकी देता रहेगा, और शेष दो-तिहाई भाग में जनमत का गला घोटा जायेगा।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने अपने फौजपुर अधिवेशन में इस अधिनियम की तीव्र आलोचना करते हुये घोषित किया कि वे अधिनियम का विध्वंस करने के अभिप्राय से निर्वाचन में भाग लेंगे।

आलोचना का परिणाम इतना तो अवश्य हुआ कि संघीय शासन कार्यान्वित नहीं किया गया और प्रान्तीय योजना को १९३७ ई० में लागू करने की घोषणा की गई।

द्वितीय महायुद्ध (Second World War)—इसके उपरान्त भारत के राजनैतिक क्षितिज में बड़ी महत्वपूर्ण हलचलें हुईं जिनका वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जायेगा। प्रान्तों में १९३५ ई० का अधिनियम कार्यान्वित किया गया, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के होने के कारण वह भी असफल हो गया। इसके उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ योजनायें रखीं। भारत में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ने का निश्चय किया। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी १९४७ को लोक सभा (House of Commons) में एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा—

"ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि वह जून १९४८ तक भारत पर से अपनी शासन-सत्ता का अन्त कर देगी।"

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७)
(Indian Independence Act 1947)

भारत के वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन ने एक योजना का निर्माण किया जिसको अधिनियम का रूप प्रदान करने के अभिप्राय से ४ जुलाई १९४७ को उसको विधेयक के रूप में इंगलैण्ड की लोक सभा में प्रस्तावित किया। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के उपरान्त अगस्त १९४७ को इङ्गलैंड के सम्राट ने अपने हस्ताक्षर कर अपनी सम्मति प्रगट की। यह अधिनियम भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७) के नाम से विख्यात है। इस अधिनियम का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि इसके द्वारा भारत स्वतन्त्र हुआ और उस पर से अंग्रेजों के शासन का अन्त हो गया। इस अधिनियम की मुख्य धारायें निम्नांकित हैं—

(१) १५ अगस्त १९४७ से भारत का विभाजन पाकिस्तान तथा भारत में होकर उनको औपनिवेशिक अधिकार प्रदान किये जाते हैं।

(२) १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त ब्रिटिश सरकार का इन पर किसी भी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा। प्रत्येक को अपने मामलों का निर्णय करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(३) इन उपनिवेशों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nations) में सम्मिलित रह सकते हैं अथवा नहीं।

(४) जिस समय तक दोनों उपनिवेशों का संविधान तैयार न हो उस समय तक इनकी संविधान-सभा को विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार संविधान-सभा को व्यवस्थापिका सभा के अधिकार प्राप्त हुये जो १९३५ ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधान मण्डल को प्राप्त थे।

(५) ब्रिटिश सम्राट दोनों उपनिवेशों के लिये अलग-अलग वाइसराय नियुक्त करेंगे, किन्तु यदि दोनों उपनिवेशों की व्यवस्थापिका सभायें एक ही वाइसराय रखना चाहें तो यह भी सम्भव है।

(६) सम्राट को प्रान्तों तथा देशी राज्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

सलाह मानना अथवा न मानना उनकी अपनी इच्छा पर पूर्णतया निर्भर था तथा,

(३) कुछ विषयों में वह अपनी मन्त्रि-परिषद् की सलाह से कार्य करता था इस क्षेत्र में ही केवल उत्तरदायित्व शासन की स्थापना हो पाई थी।

गवर्नर-जनरल के समान प्रान्तों के गवर्नरों को अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार था। वह वैधानिक संकट (Constitutional deadlock) के समय प्रान्त का सम्पूर्ण शासन अपने अधिकार में कर सकता था और उसको इस परिस्थिति में सलाहकारों द्वारा शासन-संचालन का अधिकार प्राप्त था। उसको विशेषाधिकार (Veto Power) भी प्राप्त था। वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन आमन्त्रित कर सकता था तथा उसकी अवधि घटा और बढ़ा सकता था। उसको भंग करने का भी अधिकार प्राप्त था। वह संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) भी आमन्त्रित कर सकता था।

कुछ प्रान्तों में दो सदनों का तथा कुछ प्रान्तों में एक सदन का आयोजन किया गया। उत्तर प्रदेश में दो सदनों की व्यवस्था की। प्रथम सदन का नाम विधान-सभा (Legislative Assembly) और द्वितीय सदन का नाम विधान-परिषद् (Legislative Council) रखा गया। विधान सभा के समस्त सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा होता था, किन्तु विधान-परिषद् के कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जाते थे। सदस्यों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया गया था। सदस्यों की संख्या प्रान्तों की जनसंख्या के आधार पर निश्चित की गई थी। मतदाताओं और सदस्यों की योग्यतायें घटा दी गईं और व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि हुई। वार्षिक बजट (Budget) में काट-छाँट करने का अधिकार सदस्यों को प्राप्त था। किन्तु गवर्नर अपने विशेष अधिकारों द्वारा उस कमी की पूर्ति कर सकता था। सदस्यों के अधिकार-क्षेत्र में वृद्धि की गई। उनको सरकार की नीति की आलोचना करने तथा पूरक प्रश्न (Supplementary questions) पूछने का अधिकार था। मन्त्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिये विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी था। इतना सब कुछ होते हुए भी गवर्नर पर व्यवस्थापिका सभा का कोई नियन्त्रण नहीं था।

इस अधिनियम से भी जनता को सन्तोष नहीं हुआ। प्रत्येक राजनीतिक दल ने उसकी कटु आलोचना की। देशी प्रान्तों ने संघ में सम्मिलित होने से इंकार कर दिया। देश-रत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में सभापति के पद से इस अधिनियम की तीव्र आलोचना की। उन्होंने कहा कि—

"यह एक प्रकार का संघ है जिसमें भारत के एक तिहाई भाग का निरंकुश स्वेच्छाचारी राज्य सुरक्षित रहेगा और समय-समय पर वह अपनी आँखें दिखाता रहेगा, और शेष दो-तिहाई भाग में जनमत का गला घोंटा जायेगा।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने अपने फैजपुर अधिवेशन में इस अधिनियम की तीव्र आलोचना करते हुये घोषित किया कि वे अधिनियम का विरोध करने के निमित्त ही निर्वाचन में भाग लेंगे।

आलोचना का परिणाम इतना तो अवश्य हुआ कि संघीय शासन कार्यान्वित नहीं किया गया और प्रान्तीय योजना को १९३७ ई० में लागू करने की घोषणा की गई।

द्वितीय महायुद्ध (Second World War)—इसके उपरान्त भारत के राजनैतिक क्षितिज में बड़ी महत्वपूर्ण हलचलें हुईं जिनका वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जायेगा। प्रान्तों मे १९३५ ई० का अधिनियम कार्यान्वित किया गया, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के होने के कारण वह भी असफल हो गया। इसके उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ योजनायें रखीं। भारत में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ने का निश्चय किया। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी १९४७ को लोक सभा (House of Commons) में एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा—

"ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि वह जून १९४८ तक भारत पर से अपनी शासन-सत्ता का अन्त कर देगी।"

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७)
(Indian Independence Act 1947)

भारत के वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन ने एक योजना का निर्माण किया जिसको अधिनियम का रूप प्रदान करने के अभिप्राय से ४ जुलाई १९४७ को उसको विधेयक के रूप में इंगलैण्ड की लोक सभा में प्रस्तावित किया। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के उपरान्त अगस्त १९४७ को इङ्गलैंड के सम्राट ने अपने हस्ताक्षर कर अपनी सम्मति प्रगट की। यह अधिनियम भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१९४७) के नाम से विख्यात है। इस अधिनियम का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि इसके द्वारा भारत स्वतन्त्र हुआ और उस पर से अंग्रेजों के शासन का अन्त हो गया। इस अधिनियम की मुख्य धारायें निम्नांकित हैं—

(१) १५ अगस्त १९४७ से भारत का विभाजन पाकिस्तान तथा भारत में होकर उनको औपनिवेशिक अधिकार प्रदान किये जाते हैं।

(२) १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त ब्रिटिश सरकार का इन पर किसी भी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा। प्रत्येक को अपने मामलों का निर्णय करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(३) इन उपनिवेशों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार ब्रिटिश राष्ट्रमन्डल (British Commonwealth of Nations) में सम्मिलित रह सकते हैं अथवा नहीं।

(४) जिस समय तक दोनों उपनिवेशों का संविधान तैयार न हो उस समय तक इनको संविधान-सभा को विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार संविधान-सभा को व्यवस्थापिका सभा के अधिकार प्राप्त हुये जो १९३५ ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधान मण्डल को प्राप्त थे।

(५) ब्रिटिश सम्राट दोनों उपनिवेशों के लिये अलग-अलग वाइसराय नियुक्त करेंगे, किन्तु यदि दोनों उपनिवेशों की व्यवस्थापिका सभायें एक ही वाइसराय रखना चाहें तो वह भी सम्भव है।

(६) सम्राट को प्रान्तों तथा देशी राज्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

(७) देशी राज्यों पर से ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता (British Paramountcy) का अन्त किया गया।

(८) यह निश्चय किया गया कि जिस समय तक नवीन संविधान का निर्माण नहीं होता है उस समय तक इनका तथा प्रान्तों का शासन १९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम के अनुसार होगा, किन्तु इस अधिनियम में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये। भारत के वाइसराय तथा प्रान्तों के गवर्नरों के विशेष अधिकारों का अन्त कर दिया गया और उनको वैधानिक शासक का रूप प्रदान किया गया। उनको अपने मंत्रिमण्डल के परामर्श से कार्य करना होगा और मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे।

(९) भारत मन्त्री तथा इंडिया कौंसिल का अन्त कर दिया गया। उसके कार्य कामनवेल्थ सचिव को प्रदान किये गये।

(१०) ब्रिटिश सम्राट की उपाधियों में से 'भारत सम्राट' (Emperor of India) की उपाधि का अन्त करने का निश्चय किया गया।

इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की और भारत से अंग्रेजी शासन-सत्ता का अन्त हुआ। इस घटना का महत्व न केवल भारतीय इतिहास में वरन् विश्व के इतिहास में है क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने एशिया का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और वह विश्व में शान्ति के अग्रदूत के रूप में आया जिसने विश्व को अहिंसा, सत्य और शांति के पाठ की शिक्षा प्रदान की।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) १९१९ ई० के भारत-सरकार विधान के विशेष अंग क्या थे? भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस ने इन्हें क्यों स्वीकार नहीं किया? (१९५१)

मध्य भारत—

(१) सन् १८६१ से १९३५ तक केन्द्रीय विधान-सभा की प्रगति का वर्णन कीजिये।

(२) सन् १८६१ से १९१९ तक केन्द्रीय विधान-सभा के विकास का वर्णन करो। (१९५७)

७

राष्ट्रीय आन्दोलन

NATIONAL MOVEMENT

गत अध्यायों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि अंग्रेजों ने कि प्रकार भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की और धीरे-धीरे उनको दृढ़ बनाते चले गये। इसके साथ-साथ भारत में ऐसी भावना का भी उदय होना प्रारम्भ हुआ जो भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त करने की ओर प्रयत्नशील थी। १८५७ ई० के पूर्व कुछ देशी राजाओं द्वारा ही शक्ति के आधार पर इस ओर चेष्टा की गई थी। इनमें हैदरअली तथा उसका पुत्र टीपू, मरहठे तथा उनके अन्य सरदार सम्मिलित थे, किन्तु वे अंग्रेजों की सैनिक शक्ति तथा पारस्परिक असहयोग और अविश्वास के कारण अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त नहीं कर सके और अंग्रेज उनकी शक्ति का दमन करने में सफल हुये। अन्त में १८५७ ई० की क्रांति हुई जिसमें राजाओं, नवाबों तथा सरदारों के साथ सेना तथा जनता ने अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने का प्रयत्न किया, किन्तु अंग्रेज उसका भी दमन करने में सफल हुये, किन्तु इसके द्वारा जो स्वतन्त्र होने की भावना भारतीयों में जागृत हुई उसका अंग्रेज अन्त करने में सफल नहीं हुए। अंग्रेजों के विभिन्न कार्यों द्वारा भारत में राष्ट्रीयता का शनैः शनैः विकास होना प्रारम्भ हुआ, भारत में राजनीतिक जागृति हुई जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता का संघर्ष हुआ और अन्त में भारत से अंग्रेजी सत्ता का अन्त हुआ। इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है कि १८५७ ई० के पूर्व राजाओं, नवाबों तथा सरदारों ने उनका विरोध किया, किन्तु बाद में साधारण जनता की ओर से आन्दोलन की चिनगारियाँ उठीं और उसने आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया जिसके कारण आन्दोलन जन-साधारण का बन गया और वह दिन प्रतिदिन तीव्र होता चला गया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्व

(Importance of National Movement)

राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्पत्ति जिसने भारतीय जागृति में बड़ा योग दिया है और जो अन्त में स्वराज्य की स्थापना का कारण बनी, देश के वर्तमान जीवन को समझने के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मांग और उसकी प्राप्ति की कहानी बड़ी ही रुचिकर है। आधुनिक इतिहास में यह सबसे प्र[illegible] तथा महत्वपूर्ण घटना है। १८८५ ई० में कांग्रेस के जन्म के पूर्व देश में कोई एक राजनीतिक जीवन नहीं था। राष्ट्रीयता की भावना में हृदय को आन्दोलन कर [illegible] शक्ति उत्पन्न न हुई थी और कोई भी स्वराज्य अथवा जनप्रिय सरकार [illegible] का विचार भी नहीं करता था। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत लोग प्रथम दिख

इसके अतिरिक्त बहुत से भारतीय शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से विदेश गए। वे की स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृभाव से बहुत अधिक प्रभावित हुये। उनको वहाँ संस्थाओं के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया और उन्होंने भारत में भी उसी प्रकार वातावरण स्थापित करने की चेष्टा की। इसके अलावा भारतीयों का अंग्रेजों से सम्प बढ़ा और दोनों पर एक दूसरे के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इनके कार इंगलैण्ड में भी कुछ ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए जो भारतवासियों को आदर और श्रद्धा दृष्टि से देखने लगे। भारतवासियों को अपनी दासत्व दशा पर क्षोभ उत्पन्न होने लग और वे अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिये प्रयत्नशील बन गए।

(३) आर्थिक कारण (Economic Causes)—ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने जिस आर्थिक नीति को अपनाया वह देश में असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। इस नीति के द्वारा भारत का भयंकर आर्थिक शोषण हुआ। इन्होंने भारत के समस्त कुटीर उद्योग-धन्धों (Cottage Industries) का विनाश किया और सम्पूर्ण व्यापार को अपने आधिपत्य में किया जिससे भारतीय जनता दिन प्रतिदिन निर्धन होती चली गई और उनके सामने भुखमरी का नग्न नृत्य होने लगा। भारत का समस्त धन विभिन्न उपायों तथा साधनों द्वारा इंगलैंड जाने लगा। इसी समय अंग्रेजों ने स्वतन्त्र-व्यापार (Free Trade) की नीति को अपनाया। इसके द्वारा गिरते हुए उद्योगों को बड़ा गहरा आघात पहुँचा। शिक्षित वर्ग के सामने बेकारी की समस्या उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त शासन की बेहद खर्चीली प्रणाली तथा औपनिवेशिक युद्धों (Colonial Wars) में सरकार द्वारा व्यय किये धन ने और भी अधिक बर्बादी का वातावरण उत्पन्न कर दिया। इन सब कारणों के साथ-साथ कृषकों की दशा को भी उन्नत करने की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित न हो पाया। इस प्रकार चारों ओर हा-हाकार मचने लगा। इसके कारण समस्त वर्ग के लोगों में अंग्रेजी शासन के प्रति असन्तोष और क्षोभ बढ़ने लगा और वे अंग्रेजी सत्ता के कट्टर विरोधी बन गये।

(४) राजनीतिक कारण (Political causes)—पिछली शताब्दी के अन्तिम चरणों में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनायें हुईं जिनके कारण १८८५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। एक वर्ष के कठिन परिश्रम के उपरान्त १८६९ ई० में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आई० सी० एस० की परीक्षा पास की, किन्तु किसी टेकनिकल गलती के कारण उनको स्वीकार नहीं किया गया। इससे भारत में और विशेषतः बंगाल में लोगों के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। समाचार-पत्रों द्वारा सरकार की तीव्र निन्दा की गई। ...ंच डिवीजन (Queen's Bench Division) ने इस मामले की जाँच की ... सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पक्ष में हुआ। वे भारत आए और १८७१ ई० में ... नियुक्ति एसिस्टेंट मजिस्ट्रेट (Assistant Magistrate) के पद पर ... ही उन पर कुछ अभियोग लगाकर उनको नौकरी से ... गये और वह दो बार बैरिस्टर होकर आए। भारत ...शन (Indian Association) नामक संस्था की ... मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था। इस संस्था

को स्थापना १८७६ ई० में हुई और शीघ्र ही शिक्षित वर्ग में लोक-प्रिय बन गई। इसी समय आई० सी० एस० में सम्मिलित होने की आयु २१ वर्ष से उन्नीस वर्ष कर दी गई और इस प्रकार उन्होंने इस परीक्षा में भारतीय विद्यार्थियों का बैठना लगभग असम्भव कर दिया। इस प्रतिक्रियावादी कार्य द्वारा इस नवीन संस्था को अपने गुप्त आदर्शों की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ। उसकी ओर से एक राष्ट्रीय आन्दोलन करने का निश्चय किया गया। २४ मार्च १८७७ को कलकत्ते में इस संस्था द्वारा एक सार्वजनिक विशाल सभा का आयोजन किया गया। इसके बाद ही सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने भारत के विभिन्न प्रांतों का भ्रमण किया और बड़े-बड़े नगरों में सभायें कीं। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना की। इस प्रकार भारत में राजनीतिक संस्थाओं का एक जाल बिछ गया और इसके साथ-साथ सामूहिक प्रयत्न तथा कार्य की भी नींव पड़ी। स्वयं सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के शब्दों में 'जाति, भाषा, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं के विषय में हममें चाहे जो अन्तर हो किन्तु राजनीतिक उद्देश्यों के लिये भारत के लोग एक होकर सम्मिलित रूप से प्रयत्न कर सकते हैं।

(५) लार्ड लिटन के शासन-काल की घटनायें (Events of Lord Lytton's time)—इसके अतिरिक्त लार्ड लिटन के शासन-काल में कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होंने इण्डियन एसोसियेशन को राष्ट्र-व्यापी विरोध तथा आन्दोलन करने का अवसर प्रदान किया। लार्ड लिटन ने इङ्गलैंड की रानी विक्टोरिया के भारत की सम्राज्ञी (Empress of India) होने के अवसर पर दिल्ली में एक दरबार की व्यवस्था की। यह दरबार १८७७ ई० में ऐसे समय पर हुआ जब देश के कुछ भागों पर भीषण अकाल की विभीषिका छा रही थी। कलकत्ते के एक पत्रकार ने यह लिखा कि 'जब रोम अग्नि ज्वालाओं के बीच था, नीरो बीणा बजा रहा था।' फिर भी, दरबार परोक्ष रूप से एक वरदान ही सिद्ध हुआ। इस समय सुरेन्द्र नाथ बनर्जी दरबार में एक पत्र-प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। वहां उनके मन में यह आया कि 'यदि एक स्वेच्छाचारी वाइसराय की इच्छा के लिए देश के राजाओं तथा धनिक व्यक्तियों को एकत्रित होने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो देशवासियों को न्यायसंगत ढंग से स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए क्यों नहीं संगठित किया जा सकता।'

(६) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (Vernacular Press Act)—१८७८ ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (Vernacular Press Act) जैसे भूचालपूर्ण अधिनियम को पास किया गया। लार्ड लिटन की सरकार, प्रेस की शक्ति को कुचलने के बहाने उठी और १४ मार्च १८७८ को भारत-मन्त्री के पास तार भेजकर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाने की अनुमति मांगी। दूसरे ही दिन वाइसराय को अनुमति प्राप्त हो गई और उसके प्राप्त होने के दो घण्टे के अन्दर वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास हो गया। इस एक्ट के द्वारा समस्त देश में और विशेषतः बंगाल में विरोध आरम्भ हो गया। इसके विरोध में कलकत्ते में एक विशाल सभा हुई। अन्त में जाकर चार वर्ष पश्चात् लार्ड लिटन के उत्तराधिकारी वाइसराय लार्ड रिपन ने इस एक्ट को रद्द कर दिया।

(ख) आर्म्स एक्ट (Arms Act)—आर्म्स एक्ट जनता के दमन करने का दूसरा साधन था। राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से इसको रद्द करने का बार-बार प्रयत्न किया गया, किन्तु यह अब भी कानून पुस्तक में लिखित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस एक्ट के अनुसार बिना लाइसेंस के हथियार रखना, लेकर चलना या उनका व्यापार करना अपराध है। इस एक्ट के विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति को किसी न किसी रूप में जुर्माना देना पड़ता है। इस एक्ट का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसने जातीय भेद की उत्पत्ति की थी। यूरोपियनों, एंग्लो-इन्डियनों तथा कुछ सरकारी पदाधिकारी इसके नियमों से मुक्त थे। इस एक्ट ने सारे राष्ट्र को पंगु बना दिया और वाह्य आक्रमण को रोकने तथा विदेशी सत्ता का अन्त करने में असमर्थ हो गया।

(ग) अफगानिस्तान पर आक्रमण (Second Afghan War)—देश को बर्बाद करने वाले लार्ड लिटन ने एक मूर्खतापूर्ण कार्य यह किया कि उसने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया जिसमें बहुत अधिक व्यय हुआ और उसका कोई लाभप्रद परिणाम नहीं निकला।

(घ) रूई के निर्यात पर से कर का उठाना (No duty on the export of Cotton)—लंकाशायर की सन्तुष्टि के लिए रूई के निर्यात पर से कर उठा लेना भी इन्हीं मूर्खतापूर्ण कार्यों के अन्तर्गत सम्मिलित है। इन तथा कुछ अन्य कार्यों के कारण लार्ड लिटन के शासन-काल की अन्तिम स्थिति क्रांति की सीमा पर पहुँच चुकी थी।

(६) इलबर्ट-बिल प्रतिरोध (Reactions against Ilbert Bill)—उस समय के विद्यमान नियमों व विधियों के अनुसार प्रेसीडेंसी नगरों के बाहर रहने वाले यूरोपियनों का मुकदमा यूरोपियन जजों, न्यायाधीशों या दंडाधीशों (Magistrates) को ही करने का अधिकार था। भारतीय न्यायाधीशों को चाहे उनका पद कुछ भी हो, इनका मुकदमा करने का अधिकार नहीं था, यद्यपि उनके अधीन कार्य करने वाले योरोपियन न्यायाधीश ऐसा कर सकते थे। यह बात वास्तव में बड़ी ही अनुचित थी। एक भारतीय आई. सी. एस. के प्रतिनिधित्व करने पर लार्ड रिपन की सरकार ने इस पर विचार किया और तत्कालीन विधि-सदस्य (Law Member) सर इलबर्ट (Sir Ilbert) ने १८८५ ई० में विधान मण्डल में इससे सम्बन्धित एक धारा प्रस्तावित की जिसके द्वारा भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियनों के मुकदमे सुनने का अधिकार दिया और इस प्रकार न्याय से जातीय तथा वर्ण-भेद का अन्त करने का प्रयास किया, किन्तु सरकारी तथा गैर सरकारी यूरोपियनों ने इस बिल का इतना तीव्र विरोध किया कि सरकार को बाध्य होकर इसे वापिस लेना पड़ा। यूरोपियनों ने एक रक्षा-संघ की स्थापना की जिसका केन्द्र कलकत्ते में था और उसकी शाखाएं देश के विभिन्न भागों में स्थापित की गईं। इसके साथ-साथ उन्होंने व्यय के लिए डेढ़ लाख रुपया भी एकत्रित किया। अंग्रेज जाति के इस व्यवहार ने यह स्पष्ट कर दिया कि जहाँ शासन करने वाली जाति के हित तथा स्वार्थ निहित हों वहाँ न्याय की आशा नहीं की जा सकती। भारतीयों को अंग्रेजों से घृणा होने लगी।

राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके कार्य
(Establishment of political Institutions and their activities)

इन्डियन एसोसियेशन की स्थापना हो ही गई थी। इसकी ओर से १८८३ ई० में कलकत्ते में एक 'राष्ट्रीय सम्मेलन' की आयोजना की गई। बंगाल प्रान्त के अनेक मान्य व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। इस सम्मेलन में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी से यह प्रार्थना की गई कि वे देश-सेवा के लिये तत्पर हों। इस सम्मेलन ने एक ऐसा कार्यक्रम अपनाया जो दो वर्ष बाद कांग्रेस द्वारा अपनाये कार्य-क्रम से बहुत कुछ मिलता है। तीन दिन के अधिवेशन में इसके कार्यों में जो उत्साह तथा व्यग्रता रही वही कांग्रेस का एक सर्वमान्य गुण बन गया। १८८४ ई० में मद्रास में एक प्रान्तीय सम्मेलन हुआ, बम्बई में भी जनवरी १८८५ ई० में 'बोम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन, (Bombay Presidency Association) की स्थापना हुई जिसमें बदरुद्दीन तैयबजी, फिरोजशाह मेहता, के० टी० तैलंग तथा दिनशा, रायुल जी वाचा जैसे व्यक्तियों ने भाग लिया। इस सम्बन्ध में यह भी वर्णन करना आवश्यक है कि दिसम्बर सन् १८८४ ई० में थ्योसोफिकल सोसाइटी के मद्रास-अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त, देश के सभी भागों का प्रतिनिधित्व करने वाले सत्रह प्रमुख व्यक्ति मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के मकान पर एक दूसरे से मिले। उनका उद्देश्य था—देश के सभी राजनीतिज्ञों को एकत्रित करने के उपाय तथा ढंग पर विचार करना और देश की वर्तमान सरकार के उपायों तथा साधनों में सुधार करने के लिये एक राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भ करना जो भविष्य में देश को स्वराज्य की ओर ले जाने में सफल हो सके। उन्होंने अपने को एक छोटी समिति में संगठित करने का निश्चय किया जिसमें विभिन्न नगरों के लोग स्वयं अपनी अपनी जगह कार्य करके अन्य लोगों पर अपना प्रभाव डालें। और साथ-साथ आगामी विचार विनिमय के लिये वे एकत्रित भी हो सकें।

कांग्रेस का जन्म
(Birth of the Congress)

जब विभिन्न प्रान्तों में उपर्युक्त संघों की स्थापना हो रही थी। प्रेस देश की जनता से एक उद्देश्य से प्रेरित होकर एक रंग-मंच पर संगठित होने का अनुरोध कर रहा था तो श्री० ए० ओ० ह्यूम (A. O. Hume) ने, जो एक सेवा निवृत्त नागरिक (Retired Civilian) थे, कलकत्ता विश्वविद्यालयों के स्नातकों के नाम पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उनसे देश-सेवा के कार्य करने की प्रार्थना की। इस अपील का बड़ा प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप १८८३ ई० के अन्त में इण्डियन नेशनल यूनियन (Indian National Union) की स्थापना हुई। इस यूनियन ने १८८५ ई० में बड़े दिन की छुट्टियों के अवसर पर पूना में देश के विभिन्न भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा करने का निश्चय किया। इस सम्मेलन के दो उद्देश्य थे—

(१) सच्चे देशवासियों के पारस्परिक सम्पर्क में वृद्धि करना तथा

(२) आगे आने वाले वर्ष के लिये राजनीतिक कार्यों की रूप-रेखा निश्चित करना।

श्री ह्यूम को इसे संगठित करने तथा सम्बन्धित सभी बातें करने का कार्य सं
गया। सम्मेलन आरम्भ होने के कुछ दिन पूर्व ही पूना में हैजे का प्रकोप फैला, इस का
सम्मेलन पूना के स्थान पर बम्बई में किया गया। सम्मेलन के प्रतिनिधि १८८५
२७ दिसम्बर को बम्बई पहुँचे और दूसरे दिन सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हो गई
सम्मेलन का नाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस रखा गया।

कांग्रेस की विशेषताएँ
(Special Characteristics of the Congress)

जैसा कि कांग्रेस के नाम से स्पष्ट है यह एक राष्ट्रीय संस्था है, जातिगत, साम्प्रदायिक तथा किसी विशिष्ट दल की नहीं। यह राष्ट्रीय है क्योंकि यह सभी हितों तथा दलों के प्रतिनिधित्व एवं भारतीय राष्ट्र की ओर से बोलने का दावा करती है। यह एक ऐसी संस्था है जो सामूहिक रूप से सब का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी विशेषता के विकास में अनेक बातों का योग रहा है। कोई भी अकेला वर्ग या प्रान्त इस संस्था पर अपना अधिकार रखने का दावा नहीं कर सकता। १८८५ ई० में इसके जन्म के उपरान्त विभिन्न जातियों तथा देश के सभी भागों के निवासियों ने इसके उच्च स्वरूप-निर्माण में सहायता पहुँचाई है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाई, यूरोपियनों तथा आंग्ल-भारतीयों तक ने इसके विकास मे सहायता प्रदान की। देश से प्रेम रखने वाले तथा उसके लिए कार्य करने एवं कष्ट सहने वाले सभी स्त्री-पुरुष इसके सदस्य बन सकते हैं, इसमें जाति-पांति, वर्ण, धर्म आदि का कोई बन्धन नहीं है। जिन व्यक्तियों ने इसकी कल्पना की तथा इसकी उत्पत्ति करने का प्रयत्न किया वे विभिन्न जातियों के तथा देश के विभिन्न प्रान्तों के निवासी थे, लेकिन उनका दृष्टिकोण व्यापक था। वह अखिल भारतीय था। कांग्रेस ने अपने इस अखिल भारतीय दृष्टिकोण को न कभी छोड़ा है और न कभी एक क्षण के लिये भुलाया है। पिछली अर्द्ध शताब्दी में जिन समस्याओं का इसको सामना करना पड़ रहा है उसने इनको इसी भारतीय दृष्टिकोण से देखा तथा समाधान किया है। इन समस्याओं के निराकरण में अविभाज्य भारत के कल्याण की भावना ने ही इसका पथ-प्रदर्शन किया है। इसने अपने निर्णय को साम्प्रदायिक, वर्गगत या प्रान्तीयता की भावना से आच्छादित नहीं होने दिया है। इसके वार्षिक अधिवेशनों का स्थान सदैव बदलता रहा है और यह स्थान चाहे जहां भी रहा हो देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया है और इसकी राष्ट्रीय विशेषताओं तथा दृष्टिकोण को सदा बनाये रखा है। इसका प्रारम्भ एक मध्य वर्ग की संस्था के रूप में हुआ लेकिन कुछ समय बाद ग्रामीण क्षेत्रों तथा मजदूर-वर्ग के प्रतिनिधि भी इसमें भाग लेने लगे। इसके अधिवेशनों को नगरों से हटाकर गांवों में करने के विचार को १९२७ ई० में कार्य-रूप में परिणत किया गया और इस प्रकार देश की विस्तृत सीमा से घिरे सात लाख गांवों की मूक तथा अर्द्ध भूखी जनता का प्रतिनिधित्व करने का भी इसे अवसर मिला। जो इसको हिन्दुओं या पूँजीपतियों, जमींदारों या किसानों की संस्था मानते हैं, उनके विचारों का कोई वास्तविक आधार नहीं है। यह सत्य है कि कुछ विशिष्ट व्यक्ति तथा उन व्यक्तियों द्वारा संचालित संस्थायें कांग्रेस को सारे देश का प्रतिनिधित्व करने का

गौरव प्रदान नहीं करतीं, लेकिन इससे कांग्रेस के दावे की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। कांग्रेस ने केवल सेवा अधिकार द्वारा ही सारे भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है।

कांग्रेस के उद्देश्य
(Aims and objects of the Congress)

यद्यपि पिछली अर्द्ध शताब्दी के अपने ऐतिहासिक जीवन में इसके राष्ट्रीय आकार में कोई अन्तर नहीं पड़ा है, फिर भी इसके उद्देश्य समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं। साध्य के परिवर्तन के साथ-साथ साधनों में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। प्रारम्भ में इसकी मांगें विनम्र थीं। राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर जनता के विचारों का संगठन तथा वैधानिक रूप से भारतीयों की कठिनाइयों व असुविधाओं को दूर करने के अतिरिक्त इसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं था। श्री उमेश चन्द बनर्जी ने, जो १८८५ ई० के कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सदस्य थे, अपने भाषण में कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्य व्यक्त किये—

> **कांग्रेस के उद्देश्य**
> (१) देशवासियों में पारस्परिक सम्पर्क की स्थापना।
> (२) राष्ट्रीय भावनाओं का विकास।
> (३) सामाजिक समस्याओं पर प्रमाणित लेख लिखना।
> (४) राजनीतिक जन-हित के कार्यों पर विचार करना।

(१) देशवासियों में पारस्परिक सम्पर्क की स्थापना—साम्राज्य के विभिन्न भागों में फैले सच्चे देशवासियों का पारस्परिक सम्पर्क तथा प्रगाढ़ मैत्री।

(२) राष्ट्रीय भावनाओं का विकास—व्यक्तिगत मित्रता तथा मेल-मिलाप द्वारा देशवासियों के मध्य जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना का विनाश तथा राष्ट्रीय एकता की उन भावनाओं का विकास तथा संगठन जिनकी उत्पत्ति सर्वप्रिय लार्ड रिपन के चिरस्मरणीय शासन-काल में हुई थी।

(३) सामाजिक समस्याओं पर प्रमाणित लेख लिखना—समय की कुछ अधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक सामाजिक समस्याओं पर शिक्षित भारतीय वर्ग के विचारों का प्रामाणिक लेख लिखना।

(४) राजनीतिक जन-हित के कार्यों पर विचार करना—उन उपायों पर विचार करना जिनके अनुसार आगामी बारह मास तक देश के राजनीतिक जन-हित के कार्य किये जायें।

अपने जीवन के प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के प्रस्तावों का निरीक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि वह विनम्र भाषा में देश के शासन में थोड़ा-बहुत सुधार चाहती थी। व्यवस्थापिका सभा (Legislature) में सुधार करना इसका एक मुख्य उद्देश्य था। १८९० में कांग्रेस की ओर से एक प्रतिनिधि-मण्डल इंगलैंड गया जिसका उद्देश्य कांग्रेस के विचारों का प्रतिनिधित्व तथा उसकी इच्छानुसार देश के राजनीतिक सुधारों का अंग्रेजी जनता के सामने स्पष्टीकरण करना था। इस

वर्ष के प्रस्ताव में कांग्रेस ने विधान-मण्डलों का लोकतन्त्रात्मक ढंग पर पुनर्निर्माण पर बल दिया था। इसका कारण यह था कि अभी कांग्रेस का बाल्यकाल था उसमें आत्मनिर्भरता तथा दूसरों पर अपना प्रभाव जमाने की शक्ति नहीं थी। वाम के उदय तथा प्रभाव के उपरान्त ही उसमें इस शक्ति तथा विश्वास का जन्म हु इसके बाद उसने प्रार्थना करने की नीति का परित्याग किया और स्वराज्य को अ अधिकार समझने लगी। सन् १९०६ ई० के पूर्व कांग्रेस के रंग-मंच से 'स्वराज्य' का नारा नहीं लगाया गया था, लेकिन अब दादा भाई नौरोजी ने सभापति के पद भाषण करते हुये कहा, "कांग्रेस का उद्देश्य यूनाइटेड किंगडम (United Kingdor तथा उपनिवेशों के समान ही स्वशासन या स्वराज्य प्राप्त करना है।" किन्तु इ घोषणा के करने से कांग्रेस की कार्य-प्रणाली में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं हुआ। ब्रिटि राष्ट्र की सत्यता, न्याय तथा ईमानदारी पर इसका विश्वास बना रहा और यह आश करती रही कि भारतीयों की इच्छाओं तथा देश की परिस्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर अंग्रेज-सरकार समय की पुकार के अनुसार आचरण करेगी, देश में जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं की स्थापना होगी और भारतीय हितों के अनुसार यहां की जनता को स्वशासन के अधिकार प्राप्त होंगे। दादा भाई की प्रसिद्ध घोषणा के बहुत समय उपरान्त तक यह आशा बनी रही, किन्तु महात्मा गांधी के कांग्रेस में प्रवेश करने तथा अमृतसर की दुःखद घटना के उपरान्त कांग्रेस को अपनी विचार-धारा तथा उपायों में परिवर्तन करना पड़ा। उसने सरकार के समक्ष अपनी मांगों को प्रस्तुत करने का पुराना उपाय त्याग दिया और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने बल पर खड़ा होना सीखा। इसने एक देश-व्यापी संगठन बनाया, जनता में राजनीतिक प्रचार करना आरम्भ किया और सक्रिय विरोध के अनेक प्रदर्शन किये। कुछ समय पश्चात् उसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता हो गया और उसकी प्राप्ति का उपाय अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा हुआ। अतः इस प्रकार कांग्रेस के साध्य तथा साधनों में महत्वपूर्ण तथा मौलिक परिवर्तन हुये।

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास
(Short History of the Congress)

उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास कांग्रेस के विकास के बहुत निकट है। कांग्रेस का इतिहास निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) १८८५ से १९०७ तक—कांग्रेस में दो दलों के होने तक।
(२) १९०८ से १९१५ तक—नरम दल के हाथ में कांग्रेस रही।
(३) १९१६ से १९२९ तक—कांग्रेस में दोनों दलों के सम्मिलित होने पर।
(४) १९३० से १९३९ तक—कांग्रेस ने सक्रिय विरोध करना आरम्भ किया।
(५) १९३९ से १९४७ तक—जब से कांग्रेस ने अपना उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य घोषित किया तथा उसकी प्राप्ति तक।

प्रथम युग
(First Phase)

कांग्रेस के इतिहास में यह युग १८८५ से १९०७ तक रहा। १८८५ ई० में कांग्रेस का जन्म हुआ और १९०७ ई० के सूरत अधिवेशन के उपरान्त कांग्रेस में दो दल हो गये और उग्रदल वालों ने कांग्रेस से अपने आप को अलग कर लिया। कांग्रेस में उस समय के समस्त भारतीय सम्मिलित थे, केवल सर सैयद अहमद खां इससे अलग रहे क्योंकि वे राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर रहना अधिक हितकर समझते थे। उस समय वह वास्तव में एक राष्ट्रीय संगठन था। इस सम्बन्ध में यह आज की कांग्रेस से भिन्न थी क्योंकि इधर इसकी सदस्यता में उदार विचारों वाले, मुस्लिम लोगों, हिन्दू भाई तथा अन्य साम्प्रदायिक संस्थाओं के व्यक्ति सम्मिलित रहे हैं, लेकिन इस तथ्य के कारण भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने तथा उसकी ओर से बोलने के अधिकार में कोई कमी नहीं पड़ी। लोकमान्य तिलक तथा कुछ लोगों के अतिरिक्त कांग्रेस के नेता देश की साधारण जनता के सम्पर्क में नहीं थे। वह केवल शिक्षित वर्ग तथा मध्यम वर्ग की मांगों तथा आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती थी। १८९० में कांग्रेस का एक प्रतिनिधि-मण्डल इंगलैंड गया जिसका उद्देश्य ब्रिटिश जनमत को अपने अनुकूल बनाना और कौंसिल में सुधार करने के लिये उनकी सहायता प्राप्त करना था। इस प्रतिनिधि मण्डल के साथ-साथ इंगलैंड में कार्य करने के लिये पांच अंग्रेजों की एक समिति नियुक्त की गई। जनता के साधारण ज्ञान के लिये इस समिति ने छोटी-छोटी पत्रिकाओं का वितरण किया तथा बड़े-बड़े नगरों में सभायें की। 'इण्डिया' (India) नामक एक पत्र का भी प्रकाशन किया तथा जिसने सरकार तथा जनता को इस देश से सम्बन्ध रखने वाली बातों से अवगत कराया।

उग्रवादी विचार-धारा का प्रादुर्भाव (Introduction of Extremism)—सरकार की नीति के कारण कांग्रेस के अन्तर्गत उग्रवादी विचार-धारा का प्रादुर्भाव हुआ; जिसके समर्थक श्री बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल थे। इसी नवीन दल के कारण सूरत की प्रसिद्ध फूट हुई। इस दल को कांग्रेस से १९०६ से १९१५ तक अलग रहना पड़ा। कांग्रेस के साध्य तथा साधनों को भली प्रकार समझने के लिये उन घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है जिन्होंने एक नवीन कार्यक्रम के साथ इस दल को जन्म दिया। ये घटनायें निम्नलिखित हैं—

(१) युवक दल का अविश्वास—१८९२ के अधिनियम के पारित होने के उपरांत कांग्रेस को सफलता प्राप्त नहीं हुई। १९०७ ई० तक यह केवल प्रस्ताव पास करती रही, किन्तु इसका कोई प्रभाव इंगलैंड की सरकार पर विशेष रूप से नहीं पड़ा, इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस के युवक सदस्य व्यग्र हो उठे। उन्होंने प्रस्ताव पास करने के ढंग पर जिसको वे भीख मांगने का ढंग कहकर सम्बोधित करते थे, अविश्वास प्रकट करना आरम्भ किया। इसकी श्रद्धा ब्रिटिश न्याय तथा कर्तव्य-निष्ठा से उठ गई। विधान-मण्डलों में भी किये गये सुधारों से लोगों को सतोष नहीं हुआ, जनता के

प्रतिनिधियों के द्वारा विधान-मण्डलों में प्राप्त सफलता की न्यूनता से देश में निराशा फैली।

(२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति—सन् १८९६–९७ में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा। जिसका प्रभाव ७०,००० वर्ग मील और दो क भारतीयों पर पड़ा। सरकार का सहायता कार्य बड़ा ही असंतोषप्रद था। सभी धीरे-धीरे तथा अव्यवस्थित रूप से हुआ। इसके साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप हुआ जिसके कारण बम्बई प्रेसीडेन्सी के पश्चिमी भाग में बड़ी हलचल मच गई। इस मह मारी का सामना करने के लिये बम्बई सरकार ने जो उपाय अपनाये उनके कारण जनता में असंतोष की लहर फैली। इनमें सबसे बड़ा अवगुण यह था कि समस्त का सरकारी पदाधिकारियों पर छोड़ दिया गय जो सब विदेशी थे। उन्होंने उत्साह, लगन तथा स्वार्थहीनता से काम नहीं किया। लाखों व्यक्तियों का भूख तथा प्लेग से मरना देशवासियों को बाध्य होकर देखना पड़ा।

> **उग्रवादी विचार-धारा**
> (१) युवक दल का अविश्वास।
> (२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति।
> (३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य।
> (४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति।
> (५) बंगाल-विभाजन।
> (६) कांग्रेस के प्रतिनिधि-मंडल से मिलने से इंकार।
> (७) विदेशी घटनायें।

(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य—पूना के प्लेग कमीशन तथा श्री रैंड के विरुद्ध लोगों की भावना इतनी उग्र और समाचार-पत्रों की विशेषतः, लोकमान्य तिलक द्वारा सम्पादित 'केसरी' की आलोचना इतनी प्रखर थी कि दंगा आरम्भ हो गया और एक भावुक ने श्री रैंड तथा उसके साथी लेफ्टिनेन्ट अर्स्ट को गोली से मार दिया। इस पर सरकार द्वारा महाराष्ट्र में दमन-कार्य किया गया। तिलक प रैंड तथा अर्स्ट की हत्या का अभियोग लगाया गया। उनको प्रिवी कौंसिल (Priv Council) में अपील करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई। इस घटना पर मद्रास के 'हिन्दू' (Hindu) नामक समाचार-पत्र की टिप्पणी बड़ी ही महत्वपूर्ण तथा उद्धृत करने योग्य है। उसने लिखा कि—

"लोगों को अपनी असहाय दशा तथा राजनीतिक परतन्त्रता की याद दिलाने वाली पिछली-चालीस वर्षों में बम्बई सरकार की काली करतूतों से बढ़कर कोई घटना नहीं हुई।"

(४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति (Reactionary Policy of Lord Curzon)—उक्त घटनाओं से महत्वपूर्ण लार्ड कर्जन की सरकार की प्रतिक्रियात्मक नीति थी। उसका सप्तवर्षीय शासन-काल 'मिशन, ओमिशन तथा कमीशन' (Mission, Omission and Commission) से भरपूर था। ब्रिटिश साम्राज्यवादिता के इस दूत ने जागृत भारत की समस्त आकांक्षाओं तथा महत्वाकांक्षाओं को पैरों तले रौंद डाला। उसकी सीमा नीति (Frontier Policy) तथा तिब्बत को प्रतिनिधि-मण्डल

भेजने की बड़ी प्रखर आलोचना हुई। १९०४ का 'ऑफिशियल सीकरेट एक्ट' (Official Secret Act), 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' (Calcutta Corporation Act) तथा 'इण्डियन यूनिवर्सिटीज एक्ट' (Indian Universities Act) युग की पुकार के विरोधी थे और इसलिये इनकी व्यापक आलोचना हुई। इनके अतिरिक्त उसने भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य बतलाया और शिक्षित वर्ग पर बेईमानी का दोष आरोपित किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये।

"इसमें सदेह नहीं कि पूर्व में आदर पाने से कहीं पहले सत्य को पश्चिम में बहुत उच्च स्थान मिला था। पूर्व में तो धूर्तता तथा कूटनीति सम्बन्धी चालाकी का सदैव आदर हुआ है।"

भारतीय चरित्र के सम्बन्ध में लार्ड कर्जन के इस अन्यायपूर्ण तथा झूठे कथन का बड़ा विरोध किया गया और भारतीय पत्रों ने इन आरोपों तथा झूठे तथ्यों का करारा उत्तर प्रकाशित किया।

(५) बंगाल-विभाजन (Partition of Bengal)—इतना ही नहीं उसके युग का सबसे महत्वपूर्ण तथा निकृष्ट कार्य बंगाल-विभाजन था जिसने उसको बंगाल की जनता की इच्छा के विरुद्ध लादा। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारणतः यह विश्वास था कि प्रान्त के विभाजन का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का दमन तथा वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना था। श्री ए० सी० मजूमदार (A. C. Majumdar) के अनुसार "लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल का दौरा किया, मुसलमानों की बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया और उनको यह समझाया कि बंगाल का विभाजन करने में उसका उद्देश्य शासन-भार कम करना ही नहीं अपितु एक मुसलमानी प्रान्त का निर्माण भी करना था जहां इस्लाम तथा उसके अनुयायी प्रभावशाली बने रहें।"

बंगाल निवासियों ने इस अपमान को सहन न करने का निश्चय किया। उन्होंने सरकार द्वारा दी गई चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने इसके विरुद्ध एक विशाल आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने ब्रिटिश माल के बहिष्कार का व्रत लिया। लोगों को यह प्रतिज्ञा करने का आदेश दिया गया कि जब तक विभाजन का अन्त नहीं किया जाता उस समय तक कोई ब्रिटिश सामान का क्रय न करे। इस प्रतिज्ञा का एक अन्य उद्देश्य यह था—ब्रिटिश जनता द्वारा भारतीय विषयों की उपेक्षा तथा वर्तमान सरकार का जनमत की ओर ध्यान देने का विरोध। इस आन्दोलन को बड़ी सफलता प्राप्त हुई जिसके कारण नौकरशाही के छक्के छूट गये, यद्यपि इनके द्वारा आन्दोलन को असफल बनाने की पूर्ण कोशिश की गई थी। सरकार की दमन नीति के कारण बंगाल में एक आतंकवादी दल का जन्म हुआ। उन्होंने सरकार को दमन-नीति का उत्तर हिंसात्मक कार्यों द्वारा दिया। इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक नवीन विचारधारा तथा दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

(६) कांग्रेस के प्रतिनिधि मण्डल से मिलने से इन्कार—१९०४ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसका उद्देश्य किया तथा कलकत्ता

प्रतिनिधियों के द्वारा विधान-मण्डलों में प्राप्त सफलता की न्यूनता से देश
निराशा फैली।

(२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति—सन् १८९६-९
में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा। जिसका प्रभाव ७०,००० वर्ग मील और दो
भारतीयों पर पड़ा। सरकार का सहायता कार्य बड़ा ही असंतोषप्रद था। सभी
धीरे-धीरे तथा अव्यवस्थित रूप से हुआ। इसके साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप हु
जिसके कारण बम्बई प्रेसीडेन्सी के पश्चिमी भाग में बड़ी हलचल मच गई। इस म
मारी का सामना करने के लिये बम्बई सरकार ने जो उपाय अपनाये उनके कारण
जनता में असंतोष की लहर फैली। इनमें सबसे बड़ा अवगुण यह था कि समस्त का
सरकारी पदाधिकारियों पर छोड़ दिया ग
जो सब विदेशी थे। उन्होंने उत्साह, लग
तथा स्वार्थहीनता से काम नहीं किया। लाख
व्यक्तियों का भूख तथा प्लेग से मरत
देशवासियों को बाध्य होकर देखना पड़ा।

उग्रवादी विचार-धारा
(१) युवक दल का अविश्वास।
(२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति।
(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य।
(४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति।
(५) बंगाल-विभाजन।
(६) कांग्रेस के प्रतिनिधि-मंडल से मिलने से इंकार।
(७) विदेशी घटनायें।

(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य—
पूना के प्लेग कमीशन तथा श्री रैंड के
विरुद्ध लोगों की भावना इतनी उग्र और
समाचार-पत्रों की विशेषतः, लोकमान्य
तिलक द्वारा सम्पादित 'केसरी' की आलो-
चना इतनी प्रखर थी कि दंगा प्रारम्भ हो
गया और एक भावुक ने श्री रैंड तथा
उसके साथी लेफ्टिनेन्ट अर्स्ट को गोली से
मार दिया। इस पर सरकार द्वारा महाराष्ट्र में दमन-कार्य किया गया। तिलक पर
रैंड तथा अर्स्ट की हत्या का अभियोग लगाया गया। उनको प्रिवी कौंसिल (Privy
Council) में अपील करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई। इस घटना पर मद्रास के
'हिन्दू' (Hindu) नामक समाचार-पत्र की टिप्पणी बड़ी ही महत्वपूर्ण तथा उद्धृत करने
योग्य है। उसने लिखा कि—

"लोगों को अपनी असहाय दशा तथा राजनीतिक परतन्त्रता की याद दिलाने
वाली पिछली-चालीस वर्षों में बम्बई सरकार की काली करतूतों से बढ़कर कोई
घटना नहीं हुई।"

(४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति (Reactionary Policy of
Lord Curzon)—उक्त घटनाओं से महत्वपूर्ण लार्ड कर्जन की सरकार की प्रति-
क्रियात्मक नीति थी। उसका सप्तवर्षीय शासन-काल 'मिशन, ओमिशन तथा कमीशन'
(Mission, Omission and Commission) से भरपूर था। ब्रिटिश साम्राज्यवादिता
के इस दूत ने जागृत भारत की समस्त आकांक्षाओं तथा महत्वाकांक्षाओं को पैरों तले
रौंद डाला। उसकी सीमा नीति (Frontier Policy) तथा तिब्बत को प्रतिनिधि-मण्डल

भेजने की बड़ी प्रखर आलोचना हुई। १६०४ का 'ऑफिशियल सीकरेट एक्ट' (Official Secret Act), 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' (Calcutta Corporation Act) तथा 'इण्डियन यूनिवर्सिटीज एक्ट' (Indian Universities Act) युग की पुकार के विरोधी थे और इसलिये इनकी व्यापक आलोचना हुई। इनके अतिरिक्त उसने भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य बतलाया और शिक्षित वर्ग पर बेईमानी का दोष आरोपित किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये।

"इसमें सदेह नहीं कि पूर्व में आदर पाने से कहीं पहले सत्य को पश्चिम में बहुत उच्च स्थान मिला था। पूर्व में तो धूर्तता तथा कूटनीति सम्बन्धी चालाकी का सदैव आदर हुआ है।"

भारतीय चरित्र के सम्बन्ध में लार्ड कर्जन के इस अन्यायपूर्ण तथा झूठे कथन का बड़ा विरोध किया गया तथा घोर भारतीय पत्रों ने इन आरोपों तथा झूठे तथ्यों का करारा उत्तर प्रकाशित किया।

(५) बंगाल-विभाजन (Partition of Bengal)—इतना ही नहीं उसके युग का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा निकृष्ट कार्य बंगाल-विभाजन था जिसने उसको बंगाल की जनता की इच्छा के विरुद्ध लादा। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारणतः यह विश्वास था कि प्रान्त के विभाजन का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का दमन तथा वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना था। श्री ए० सी० मजूमदार (A. C. Majumdar) के अनुसार "लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल का दौरा किया, मुसलमानों को बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया और उनको यह समझाया कि बंगाल का विभाजन करने में उसका उद्देश्य शासन-भार कम करना ही नहीं अपितु एक मुसलमानी प्रान्त का निर्माण भी करना था जहाँ इस्लाम तथा उसके अनुयायी प्रभावशाली बने रहें।"

बंगाल निवासियों ने इस अपमान को सहन न करने का निश्चय किया। उन्होंने सरकार द्वारा दी गई चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने इसके विरुद्ध एक विशाल आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने ब्रिटिश माल के बहिष्कार का व्रत लिया। लोगों को यह प्रतिज्ञा करने का आदेश दिया गया कि जब तक विभाजन का अन्त नहीं किया जाता उस समय तक कोई ब्रिटिश सामान का क्रय न करे। इस प्रतिज्ञा का एक अन्य उद्देश्य यह था—ब्रिटिश जनता द्वारा भारतीय विचारों की उपेक्षा तथा वर्तमान सरकार का जनमत की ओर ध्यान देने का विरोध। इस आन्दोलन को बड़ी सफलता प्राप्त हुई जिसके कारण नौकरशाही के छक्के छूट गये, यद्यपि इनके द्वारा आन्दोलन को असफल बनाने की पूर्ण कोशिश की गई थी। सरकार की दमन नीति के कारण बंगाल में एक आतंकवादी दल का जन्म हुआ। उन्होंने सरकार की दमन-नीति का उत्तर हिंसात्मक कार्यों द्वारा दिया। इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक नवीन विचारधारा तथा दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

(६) कांग्रेस के प्रतिनिधि मण्डल से मिलने से इन्कार—१६०४ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसका उद्देश्य ब्रिटिश तथा कलकत्ता

प्रतिनिधियों के द्वारा विधान-मण्डलों में प्राप्त सफलता की न्यूनता से देश में निराशा फैली।

(२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति—सन् १८९६-९७ में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा। जिसका प्रभाव ७०,००० वर्ग मील और दो करोड़ भारतीयों पर पड़ा। सरकार का सहायता कार्य बड़ा ही असंतोषप्रद था। सभी कार्य धीरे-धीरे तथा अव्यवस्थित रूप से हुआ। इसके साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप हुआ। जिसके कारण बम्बई प्रेसीडेन्सी के पश्चिमी भाग में बड़ी हलचल मच गई। इस महामारी का सामना करने के लिये बम्बई सरकार ने जो उपाय अपनाये उनके कारण भी जनता में असंतोष की लहर फैली। इनमें सबसे बड़ा अवगुण यह था कि समस्त कार्य सरकारी पदाधिकारियों पर छोड़ दिया गया जो सब विदेशी थे। उन्होंने उत्साह, लगन तथा स्वार्थहीनता से काम नहीं किया। लाखों व्यक्तियों का भूख तथा प्लेग से मरना देशवासियों को बाध्य होकर देखना पड़ा।

> **उग्रवादी विचार-धारा**
> (१) युवक दल का अविश्वास।
> (२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति।
> (३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य।
> (४) लार्ड कर्ज़न की प्रतिक्रियात्मक नीति।
> (५) बंगाल-विभाजन।
> (६) कांग्रेस के प्रतिनिधि-मंडल से मिलने से इंकार।
> (७) विदेशी घटनाएँ।

(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य—पूना के प्लेग कमीशन तथा मी० रैंड के विरुद्ध लोगों की भावना इतनी उग्र और समाचार-पत्रों की विशेषतः, लोकमान्य तिलक द्वारा सम्पादित 'केसरी' की आलोचना इतनी प्रखर थी कि दंगा आरम्भ हो गया और एक भावुक ने मी० रैंड तथा उसके साथी लेफ्टिनेन्ट आर्स्ट को गोली से मार दिया। इस पर सरकार द्वारा महाराष्ट्र में दमन-कार्य किया गया। तिलक पर रैंड तथा आर्स्ट की हत्या का अभियोग लगाया गया। उनको प्रिवी कौंसिल (Privy Council) में अपील करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई। इस घटना पर मद्रास के 'हिन्दू' (Hindu) नामक समाचार-पत्र की टिप्पणी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण तथा उद्धृत करने योग्य है। उसने लिखा कि—

"लोगों की अपनी असहाय दशा तथा राजनीतिक परतन्त्रता की याद दिलाने वाली पिछली-चालीस वर्षों में बम्बई सरकार की वर्तमान कार्यवाही के बराबर कोई घटना नहीं हुई।"

(४) लार्ड कर्ज़न की प्रतिक्रियात्मक नीति (Reactionary Policy of Lord Curzon)—इन घटनाओं से महत्त्वपूर्ण लार्ड कर्ज़न की सरकार की प्रतिक्रियात्मक नीति थी। उसका सम्पूर्ण शासन-काल मिशन, ओमिशन तथा कमीशन (Missions, Omission and Commissions) से परिपूर्ण था। [illegible] इस युग ने [illegible] भारत की [illegible] आकांक्षाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं को [illegible] उसकी [illegible] नीति (Efficiency Policy) तथा [illegible]

भेजने की बड़ी प्रखर आलोचना हुई। १९०४ का 'ऑफिशियल सीकरेट एक्ट' (Official Secret Act), 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' (Calcutta Corporation Act) तथा 'इण्डियन यूनिवर्सिटीज एक्ट' (Indian Universities Act) युग की पुकार के विरोधी थे और इसलिये इनकी व्यापक आलोचना हुई। इनके अतिरिक्त उसने भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य बतलाया और शिक्षित वर्ग पर बेईमानी का दोष आरोपित किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये।

"इसमें संदेह नहीं कि पूर्व में आदर पाने से कहीं पहले सत्य को पश्चिम में बहुत उच्च स्थान मिला था। पूर्व में तो धूर्तता तथा कूटनीति सम्बन्धी चालाकी का सदैव आदर हुआ है।"

भारतीय चरित्र के सम्बन्ध में लार्ड कर्जन के इस अन्यायपूर्ण तथा झूठे कथन का बड़ा विरोध किया गया और भारतीय पत्रों ने इन आरोपों तथा झूठे तथ्यों का करारा उत्तर प्रकाशित किया।

(५) बंगाल-विभाजन (Partition of Bengal)—इतना ही नहीं उसके युग का सबसे महत्वपूर्ण तथा निकृष्ट कार्य बंगाल-विभाजन था जिसने उसको बंगाल की जनता की इच्छा के विरुद्ध लादा। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारणतः यह विश्वास था कि प्रान्त के विभाजन का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का दमन तथा वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना था। श्री ए० सी० मजूमदार (A. C. Majumdar) के अनुसार "लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल का दौरा किया, मुसलमानों की बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया और उनको यह समझाया कि बंगाल का विभाजन करने में उसका उद्देश्य शासन-भार कम करना ही नहीं अपितु एक मुसलमानी प्रान्त का निर्माण भी करना था जहाँ इस्लाम तथा उसके अनुयायी प्रभावशाली बने रहें।"

बंगाल निवासियों ने इस अपमान को सहन न करने का निश्चय किया। उन्होंने सरकार द्वारा दी गई चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने इसके विरुद्ध एक विशाल आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने ब्रिटिश माल के बहिष्कार का व्रत लिया। लोगों को यह प्रतिज्ञा करने का आदेश दिया गया कि जब तक विभाजन का अन्त नहीं किया जाता उस समय तक कोई ब्रिटिश सामान का क्रय न करे। इस प्रतिज्ञा का एक अन्य उद्देश्य यह था—ब्रिटिश जनता द्वारा भारतीय विषयों की उपेक्षा तथा वर्तमान सरकार का जनमत की ओर ध्यान देने का विरोध। इस आन्दोलन को बड़ी सफलता प्राप्त हुई जिसके कारण नौकरशाही के छक्के छूट गये, यद्यपि इनके द्वारा आन्दोलन को असफल बनाने की पूर्ण कोशिश की गई थी। सरकार की दमन नीति के कारण बंगाल में एक आतंकवादी दल का जन्म हुआ। उन्होंने सरकार की दमन-नीति का उत्तर हिंसात्मक कार्यों द्वारा दिया। इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक नवीन विचारधारा तथा दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

(६) कांग्रेस के प्रतिनिधि मण्डल से मिलने से इन्कार—१९०४ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसका उद्देश्य शिक्षा तथा कलकत्ता

कारपोरेशन के सहकारीकरण के प्रयत्नों का विरोध था। उस वर्ष के सभापति सर हेनरी काटन (Sir Henry Cotton) की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि मण्डल वाइसराय के पास भेजने का निश्चय किया गया। लार्ड कर्जन ने इस प्रतिनिधि मण्डल से मिलना अस्वीकार किया। कांग्रेस ने इसमे अपना अपमान समझा और उसने गोपाल कृष्ण गोखले और लाला लाजपतराय को इंगलैंड भेजा। वहां से लौटने पर लाला लाजपतराय ने देशवासियों को बतलाया कि 'अंग्रेज जनतन्त्र अपने कार्यों में इतना संलग्न है कि यह भारत के लिये कुछ नहीं कर सकता और इसके अतिरिक्त ब्रिटिश पत्र भारतीय आकांक्षों को प्राथमिकता देना नहीं चाहते। इंगलैंड में अपनी मांगों के ऊपर ध्यान दिलवाना बड़ा कठिन है। वहाँ आंग्ल भारतीयों का प्रभाव तथा उनकी साख इतनी अधिक है कि इंगलैंड में संगठित किया हुआ कांग्रेस का विरोध उसकी तुलना में हल्का पड़ेगा'। संक्षेप में लाला लाजपतराय ने अपने देशवासियों को अपने पैरों पर खड़े होने तथा अपने ही प्रयत्नों पर भरोसा रखने का आदेश दिया।

(७) विदेशी घटनायें (Events Outside India)—भारत के बाहर भी इस समय कुछ ऐसी घटनायें हुई जिन्होने नई पीढ़ी के दृष्टिकोण को प्रभावित किया। ब्रिटिश उपनिवेशों, विशेषतः दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के प्रति बड़ा अपमानपूर्ण व्यवहार हो रहा था। एबीसीनिया की सेनाओं ने इटली की सेनाओं को १८९६ ई० में परास्त किया तथा रूसी सेना को जापानी सेना से १९०५ ई० में परास्त होना पड़ा। इन घटनाओं तथा अन्य देशों मे हुये आन्दोलनों ने भारतीय युवकों को बड़ा प्रभावित किया और वे विचार करने लगे 'क्या हम भी भविष्य मे ग्रेट ब्रिटेन को चुनौती देने योग्य नहीं हो सकते ?"

लोकमान्य तिलक

उग्र-दल (Extremists)—उपर्युक्त घटनाओं द्वारा कांग्रेस के अन्तर्गत एक नया दल पनपने लगा और उन्होंने कांग्रेस की भिक्षावृत्ति का डटकर विरोध किया। लोकमान्य तिलक ने नारा लगाया कि 'स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा'। वास्तव में दोनों दलों में साधन का अन्तर था साध्य का नहीं। इस नवीन दल का जन्म १९०५ ई० में हुआ जब उसने कांग्रेस मंच पर ही अपने उद्‌घाटन के सम्बन्ध में एक सभा का आयोजन किया। यह दल कांग्रेस के अन्तर्गत १९०७ तक रहा। सूरत अधिवेशन के अवसर पर दोनों दलों की शक्ति के बीच पारस्परिक होड़ लगी। उसमें उदार दल की विजय हुई और दूसरा दल कांग्रेस से अलग हो गया।

कांग्रेस का विधान (Constitution of the Congress)—सूरत-कांग्रेस ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के लिये एक विधान तथा उसकी सभाओं के लिये नियमों तथा उपनियमों के निर्माण-कार्य के लिये लगभग सौ प्रसिद्ध व्यक्तियों की इलाहाबाद में एक समिति का आयोजन किया जिसने एक विधान तथा नियमों की तालिका प्रस्तुत की। उसके अनुसार "इंडियन नेशनल कांग्रेस का उद्देश्य भारतवासियों के लिये उस

प्रकार की सरकार प्राप्त करना है जैसे ब्रिटिश साम्राज्य के स्वयं-शासित उपनिवेशों में है। साथ ही साथ वह साम्राज्य के अधिकारों तथा उत्तरदायित्व में उन्हीं की भांति भारत को भी भाग दिलाना चाहती है। इन ध्येयों की प्राप्ति का प्रयत्न वैधानिक उपायों द्वारा शासन की वर्तमान प्रणाली में धीरे-धीरे सुधार, राष्ट्रीय एकता तथा जन-सेवा की भावना के विकास तथा देश की बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक तथा औद्योगिक देन के संगठन द्वारा होगा।"

नये विधान का परिणाम (Result of the new Constitution)—नये विधान ने उन समस्त देशवासियों को कांग्रेस से अलग कर दिया जो कार्य करने के अधिक साहसपूर्ण, स्फूर्तिमय तथा प्रभावशाली ढंग के पक्षपाती थे। उसने उस बहिष्कार तथा निष्क्रिय प्रतिरोध पर भी ध्यान नहीं दिया जिस पर लोकमान्य तिलक तथा उसके साथियों ने बल दिया था। इस प्रकार इसने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नरम दल को एक नवीन स्फूर्ति व शक्ति प्रदान की। इसका कुछ समय तक कांग्रेस पर अधिकार हो गया। तिलक तथा लाजपतराय जैसे उग्रवादियों को बन्दी-गृहों में डालकर तथा देश-निर्वासित देकर सरकार ने नरम दल वालों को उनके कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की।

क्रान्तिकारी आन्दोलन (Revolutionary Movement)—इस युग में क्रान्तिकारी आन्दोलन भी प्रारम्भ हुआ जिसके प्रारम्भ होने के कारण वे ही थे, जिन्होंने उग्रवादी दल को जन्म दिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीयता के विकास में कोई विशेष महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया, इसीलिये इसका वर्णन संक्षिप्त रूप में किया जायगा। क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म महाराष्ट्र में हुआ, किन्तु शीघ्र ही इसका प्रभाव तथा प्रचार बंगाल में आरम्भ हो गया। लार्ड कर्जन के बंगाल-विभाजन तथा स्वदेशी आन्दोलन द्वारा क्रान्तिकारी आन्दोलन को बड़ा बल प्राप्त हुआ। सरकार की दमननीति के कारण इस आन्दोलन ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता बंगाल में अरविन्द घोष के छोटे भाई बीरेन्द्र कुमार घोष तथा स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई भूपेन्द्र दत्त थे। उन्होंने 'युगान्तर' तथा 'संध्या' नामक समाचार-पत्रों द्वारा क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रचार किया। सरकार ने इनका दमन बड़ी तेजी से किया जिसके कारण क्रान्तिकारियों की कई गुप्त समितियों का निर्माण हुआ और उन्होंने राजनीतिक हत्यायें तथा डकैतियां डालनी आरम्भ कर दीं। सन् १९०७ ई० में क्रान्तिकारियों ने मिदनापुर के समीप उप-गवर्नर की रेलगाड़ी को बम द्वारा ध्वंस करने का प्रयत्न किया। फरीदपुर के जिला मजिस्ट्रेट को गोली द्वारा घायल किया गया। ऐसी ही घटना मुजफ्फरपुर में हुई। क्रान्तिकारियों ने किंग्सफोर्ड जज का वध करने के लिए उनके बगले से आती हुई एक गाड़ी पर बम फेंका। गाड़ी में श्री किंग्सफोर्ड के स्थान पर दो महिलायें थीं। क्रांतिकारियों का नेता खुदीराम बन्दी बना लिया गया और उसको प्राण-दण्ड मिला। भारतीयों पर इस नवयुवक के बलिदान का बड़ा प्रभाव हुआ। क्रान्तिकारियों ने कलकत्ते में एक बड़े षड्यन्त्र की तैयारी की, किन्तु सरकार को इसका पता लग गया। क्रांतिकारी बन्दी बना लिये गये। यह षड्यन्त्र

'अमीपुर षड्यन्त्र केस' के नाम से विख्यात है। दो नवयुवकों को प्राण-दण्ड और एक को काले पानी की सजा मिली। बाद में क्रान्तिकारियों ने सरकारी वकील आशुतोष बिस्वास को गोली से मार डाला।

विदेशों में क्रान्तिकारी दल (Revolution Movement outside India)—क्रान्तिकारी अपने कार्य भारत की सीमा तक संकुचित नहीं रख सके। उन्होंने लन्दन में भी अपने केन्द्रों की स्थापना की। भारत में क्रान्तिकारियों ने नासिक के मजिस्ट्रेट का वध किया तथा भारत के वाइसराय लार्ड मिन्टो तथा उनकी पत्नी के ऊपर बम फेंके, किन्तु बम के न फटने के कारण वे बच गए। कुछ ऐसे भी क्रान्तिकारी थे जो भारत के बाहर रहकर अंग्रेजों के शत्रुओं से सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में थे, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई।

सरकार की दमन नीति (Repressive measures)—क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण भारत-सरकार सहम गई थी। उसने नरम दल वालों, मुसलमान तथा जमींदारों को अपना कृपापात्र बनाने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर सरकार ने राजनीतिक उग्रवादिता तथा क्रान्तिकारी कार्यों का जोर से दमन करना आरम्भ कर दिया। लाला लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह और लोकमान्य तिलक को बन्दी बनाकर मांडले भेज दिया गया। सभाओं, समाचार-पत्रों तथा संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये, राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिये सरकार ने कई दमनकारी एक्टों का निर्माण किया और उनको बड़ी कठोरता के साथ लागू किया गया। इस प्रकार सन् १९०६ से १९१० ई० तक एक ओर अपूर्व क्रान्तिकारी कार्यों की भरमार रही और दूसरी ओर उनका वैसा ही भयंकर दमन हुआ। भारत-सरकार ने दो अधिनियम बनाये जिनमें से एक १९०७ ई० का सिडिशंस मीटिंग्स एक्ट (Seditions Meetings Act) और दूसरा सन् १९०८ ई० का समाचार-पत्र अधिनियम (News Paper Act) था। प्रथम अधिनियम द्वारा स्थानीय अधिकारियों को अधिकार प्राप्त हुआ कि वे किसी भी व्यक्ति को किसी भी भाषा में बोलने पर प्रतिबन्ध तथा राजनीतिक सभाओं के करने पर प्रतिबन्ध लगा सकते थे। द्वितीय अधिनियम द्वारा जिलाधीश, को छापेखाने पर अधिकार करने या नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त हुआ। सन् १९०८ ई० में एक दूसरा अधिनियम पारित हुआ जो क्रिमिनल ला अमेन्डमेंट एक्ट (Criminal Law Amendment Act) के नाम से विख्यात है। इसके द्वारा क्रांतिकारी कार्यों के लिये एक विशेष प्रकार का मुकदमा चलाने का निश्चय किया गया और सरकार को किसी भी समुदाय को अवैध घोषित करने का अधिकार मिला। जनता द्वारा सरकार की दमन नीति का घोर विरोध किया गया।

इन कानूनों को बहुत कठोरता से लागू किया गया कि स्वयं भारत मन्त्री लार्ड मार्ले ने 'उनको वीभत्स, अत्यन्त उग्र और अनुचित' की संज्ञा, प्रदान की। उन्होंने १४ दिसम्बर १९०८ ई० को वाइसराय लार्ड मिन्टो को लिखा कि 'राजद्रोह और अन्य अपराधों के सम्बन्ध में जो दिल दहलाने वाले दण्ड दिये जा रहे हैं, उनके कारण मैं अत्यन्त चिन्तित और चकित हूं।''''''हम व्यवस्था चाहते हैं किन्तु व्यवस्था लाने

के लिये घोर कठोरता से सफलता प्राप्त नहीं हो सकती । उसका परिणाम उल्टा होगा/ और लोग बम का सहारा लेंगे ।'

एक ओर तो भारत-सरकार क्रान्तिकारियों तथा उग्रवादिता का दमन करने में कठोरता से संलग्न थी, दूसरी ओर इंगलेण्ड की संसद ने १६०६ का अधिनियम पास किया जिसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भारतवासियों को इस अधिनियम द्वारा जो अधिकार प्राप्त हुए उनसे जनता को संतुष्टि नहीं हो पाई। इन सुधारों का सबसे बड़ा दोष यह था कि इनके द्वारा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया जिसने हमारी राष्ट्रीय उन्नति में भयंकर रोड़ा अटकाया है। इस सम्बन्ध में १६०६ में हुए कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया—

"धार्मिक आधार पर अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों के निर्माण का विरोध करना कांग्रेस अपना प्रमुख कर्तव्य समझती है और उसको इसका दुःख है कि अधि नियम के उपबन्धों का निर्माण उस उदार भावना से नहीं हुआ जिससे लार्ड मार्ले की पिछले वर्ष की सुधार योजनायें प्रेरित थीं।" वास्तव में इस कार्य द्वारा ब्रिटिश सर कार ने भारत के राजनीतिक जीवन में यह विष-वृक्ष बो दिया जो साम्प्रदायिकता के विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग में बहुत काल तक अड़चन बना रहा और जो देश के विभाजन का कारण बना। इस अधिनियम के सम्बन्ध में स्वयं लार्ड मार्ले ने कहा था कि 'यदि उसे इस बात की तनिक भी आशंका होती कि जिन परिवर्तनों की उसने सिफारिश की है उनका यह परिणाम होगा तो वह कभी ऐसा कार्य न करता।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता (Moslim Communalism)—क्रान्तिकारी आन्दोलन की सरगर्मी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण अंग्रेज बड़े भयभीत हुये और उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने के अभिप्राय से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का विष बोया। कांग्रेस के प्रारम्भिक इतिहास से स्पष्ट है कि इस संस्था को मुसलमानों का हिन्दुओं के समान पूर्ण समर्थन प्राप्त था। उन्होंने मुस्लिम समाज में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया जो कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था के नाम से पुकारने लगा और वे अपने हितों की रक्षा अंग्रेजों से मित्रता कर ही स्थापित कर सकते हैं। १८५७ के उपरांत अंग्रेजों की दमन नीति के शिकार हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान अधिक हुए। अतः सरकार ने उनको अपनी ओर मिलाने के लिये अपनी नीति में परिवर्तन करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज अपनी कूटनीति में पूर्ण सफल हुए। सर सैयद अहमद खाँ पर अंग्रेजों का बड़ा प्रभाव पड़ा था और मुस्लिम समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मोहम्डन ऐंग्लो ओरियेन्टल कालिज के प्रिंसिपल श्री बेक के प्रभाव

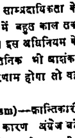

सर सैयद अहमद खाँ

में आकर सर सैयद अहमद खाँ की यह धारणा बन गई कि मुसलमानों को अंग्रेजों की मित्रता से अधिक लाभ प्राप्त होगा। उनके प्रचार का मुसलमानों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे कांग्रेस से अलग होने लगे। १९०६ ई० में लार्ड मिन्टो के इशारे पर मुसलमानों के एक शिष्ट-मण्डल ने शिमला में वाइसराय से पृथक निर्वाचन की माँग मुसलमानों के लिए की। उसने उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया जिसके द्वारा मुसलमान अंग्रेजी राज्य के भक्त बन गये। ३० दिसम्बर १९०६ ई० को ढाका में एक मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन का आयोजन हुआ। वहीं मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। इस प्रकार भारत सरकार का संरक्षण प्राप्त कर मुसलमानों ने मुस्लिम लीग की स्थापना की। यह राजभक्त संस्था थी और यह अंग्रेजों की उंगलियों पर नाचती थी। लार्ड मिण्टो के प्रयत्नों से १९०९ ई० के अधिनियम में साम्प्रदायिक प्रतिनिधि व्यवस्था सिद्धान्त को स्वीकार किया यद्यपि भारत मन्त्री लार्ड मार्ले स्वयं इस पक्ष का विरोधी था।

दूसरा युग
(Second Phase)

१९०८ से १९१५ तक कांग्रेस के कार्यों में कुछ बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस समय नरम दल वाले राजनीतिज्ञों का देश में प्रभाव था और उग्र दल उससे बिल्कुल अलग हो गया था। क्रान्तिकारियों का दमन बड़े जोरों से किया गया जिसके कारण उनका उत्साह मन्द हो गया था। कांग्रेस प्रस्तावों द्वारा अपनी माँग रखती रही, १९११ में सम्राट के भारत आगमन पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वामि-भक्ति का प्रदर्शन किया, किन्तु उसको अपने उद्देश्यों की सफलता में कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। सम्राट ने बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया जिसके ऊपर कांग्रेस ने असीम कृतज्ञता प्रगट की। १९१४ ई० में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट कांग्रेस में सम्मिलित हो गईं। इसी वर्ष लोकमान्य तिलक जेल से छूट कर आये थे।

कांग्रेस-लीग समझौता (Congress League Pact)—१९१६ ई० में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन हुआ जो इस संस्था के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिवेशनों में गिना जाता है। इसका कारण यह है कि सूरत की फूट के उपरान्त नरम दल वालों ने सम्मिलित रूप से इस सम्मेलन में भाग लिया और कांग्रेस का कार्य तीव्र गति से चलने लगा। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मैत्रीपूर्ण भावना का उदय होना। मुस्लिम लीग का अधिवेशन भी लखनऊ में हुआ था। इन दोनों को एक दूसरे के समीप लाने में श्री मुहम्मद अली जिन्ना का विशेष हाथ था। पारस्परिक वाद-विवाद के उपरान्त कांग्रेस-लीग स्कीम का निर्माण हुआ जिसको दोनों ने स्वीकार किया। यह समझौता साधारणतः लखनऊ पैक्ट के नाम से विख्यात है। दोनों संस्थाओं में प्रेम तथा सहयोग की स्थापना के लिये कांग्रेस को बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी। इसको पृथक-पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का राष्ट्रीयता तथा लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ा। वास्तव में कांग्रेस ने इस सिद्धान्त को इसलिये स्वीकार किया कि उसको विश्वास था कि वह एक अस्थायी

प्रबन्ध था जिसको बाद में टलाया जा सकता था। लेकिन यह विश्वास बालू की भीत के समान था जैसा कि बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया। कांग्रेस ने अल्प-संख्यकों को अधिक स्थान तथा कानून बनाने पर साम्प्रदायिक निषेधाधिकार के भी सिद्धान्त को स्वीकार किया। सरकार ने इस निर्णय को स्वीकार नहीं किया। उसने केवल साम्प्रदायिक समझौते को स्वीकार किया और उसे १९१९ के सुधारों में सम्मिलित किया।

होम रूल आन्दोलन (Home Rule Movement)—यहां उन दो होम रूल लीगों का वर्णन करना आवश्यक है जिनमें से एक को अप्रैल १९१६ में लोकमान्य तिलक ने पूना में और दूसरी को ऐनी बेसेन्ट ने मद्रास में सितम्बर १९१६ में आरम्भ किया था। सरकार ने दोनों नेताओं के विरुद्ध कार्यवाही की। ऐनी बेसेन्ट को नजरबन्द कर दिया और तिलक को २०,००० रुपये का व्यक्तिगत बांड भरने तथा १०,००० रुपये की दो जमानतें जमा करने की आज्ञा दी गई। इसके साथ-साथ उनको एक वर्ष तक अपना आचार अच्छा रखने का भी आदेश दिया गया। बम्बई हाई कोर्ट में अपील करने पर ये आज्ञायें रद्द कर दी गईं।

मिस्टर माण्टेग्यू की घोषणा (Mr. Montague's Proclamation)—१९१७ का वर्ष प्रथम महायुद्ध के बीच मित्र राष्ट्रों के लिये बड़ा संकटमय था। इसी वर्ष भारत में भी राजनीतिक हलचल अपनी चरम सीमा पर पहुँची। स्थिति की मांग स्वीकार करके ब्रिटिश सरकार ने अपनी भारत-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करने का निश्चय किया। २० अगस्त १९१७ को भारत मन्त्री मिस्टर मांटेग्यू ने हाउस ऑफ कामन्स में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जो इस प्रकार है—

"सम्राट की सरकारी नीति, जिससे भारत सरकार भी पूर्णतया सहमत है, यह है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त किया जावे और इसके साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए स्वयं शासित संस्थाओं का धीरे-धीरे विकास किया जाय।" वे स्वयं भारत आए और उन्होंने देश का भ्रमण किया। उन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की जिसके आधार पर १९१९ ई० का भारत-सरकार के अधिनियम का निर्माण हुआ।

तीसरा युग (The Third Phase)

१९१८ ई० की जुलाई में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट' के प्रकाशन ने कांग्रेस की राजनीतिक एकता का अन्त कर दिया। दस वर्षों के विच्छेद के उपरान्त गरम और नरम दल के नेता फिर अलग-अलग हो गये। नरम दल वालों ने इसको आशीर्वाद किया। उदार दल के नेताओं के साथ माण्टेग्यू का एक समझौता हो गया था और उनको उसकी उदारता तथा न्यायप्रियता पर भरोसा था, इसलिये इन्होंने योजनाओं को प्रगतिशील एवं सन्तोषजनक बतलाया, यद्यपि इसमें और अधिक सुधार करने के लिये इन्होंने कुछ सुझाव भी दिये। नरम दल वालों ने अपना एक अलग राष्ट्रीय संगठन बनाने का निश्चय किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कलकत्ता में 'नेशनल लिबरल कोन्फ्रेंस' की स्थापना की। उग्रवादियों ने पहले तो सुधारों का बड़ा तीव्र विरोध किया किन्तु

बाद में नरम दल वालों को कांग्रेस में सम्मिलित रखने के अभिप्राय से अपना विरोध कम कर दिया। १९१८ के अगस्त के अन्तिम दिनों में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ जिसमें उन्होंने समझौता करने के अभिप्राय से एक प्रस्ताव पास किया। नरम दल के नेताओं ने अपना एक सम्मेलन कर एक प्रस्ताव द्वारा योजनाओं का स्वागत किया और उनको भारत के लिये उपयोगी बतलाया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कांग्रेस पर उग्र दल का प्रभुत्व स्थापित हो गया। कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर एक नया उत्साह दृष्टिगोचर हुआ तथा उसके प्रस्तावों के ढंग में एक विशेष परिवर्तन आ गया।

चौथा युग (The Fourth Phase)

इस युग में कांग्रेस के उद्देश्यों में विशेष परिवर्तन हुआ। अब उसने औपनिवेशिक स्व-राज्य (Dominion Status) के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य अपना उद्देश्य घोषित किया। सन् १९३० तक उसका एकमात्र यही उद्देश्य रहा। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये इंगलैंड की संसद के सामने अपनी मांगें रखने के स्थान पर प्रत्यक्ष कार्यवाही की प्रणाली को अपनाया। अंग्रेजों के सौजन्य तथा न्याय की भावना पर विश्वास रखने के बदले उसने स्वतन्त्रता को बलपूर्वक प्राप्त करने की अपनी शक्ति पर जोर देना प्रारम्भ कर दिया।

गांधी जी का प्रादुर्भाव (The Coming of Gandhiji into Congress)—इसी समय महात्मा गांधी का राष्ट्रीय नेता के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। उक्त आधारभूत परिवर्तनों का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर था। लेकिन यह स्मरण रहे कि अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ में उनको गरम दल का अनुयायी नहीं कहा जा सकता है। दक्षिणी अफ्रीका का सत्याग्रह संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त करके जब वे भारत लौटे तो उन्होंने गोखले को अपना राजनीतिक गुरु बनाना निश्चय किया। गोखले ने उनसे किसी भी प्रत्यक्ष राजनीतिक कार्य में एक वर्ष तक हाथ न डालने की प्रतिज्ञा करवाई और अपना समय घटनाओं की धाराओं से परिचय प्राप्त करने में व्यतीत करने का आदेश दिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी वामपंथी नेता के स्थान पर नरम प्रकृति के व्यक्ति थे। यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उन्हीं के प्रभाव के कारण १९१९ में होने वाले कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के प्रस्ताव में शान्ति एवं संयम की भावना का समावेश हुआ, यद्यपि अमृतसर के जलियांवाले बाग में स्त्री, पुरुष तथा बच्चों की निर्मम हत्या, उसी वर्ष के अप्रैल में जनरल डायर द्वारा नगर निवासियों पर की गई कठोरता तथा पंजाब में मार्शल ला (Martial Law) के विरुद्ध भारतीयों में बड़ा क्षोभ तथा असन्तोष व्याप्त था। मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-योजनाओं (Montague Chelmsford Reforms) के निराशाजनक और अनुपयुक्त होने पर भी उत्तरदायी सरकार की शीघ्र स्थापना के लिये कांग्रेस ने उसको स्वीकार कर लिया। ऐसे गम्भीर तथा उदारवादी नेता को भी असहयोग तथा सविनय अवज्ञा-आन्दोलन चलाना पड़ा तथा औपनिवेशिक पद की मांग के स्थान पर कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य बनाना पड़ा। यह भारत सरकार की काली करतूतों की दुःखद आलोचना ही

नहीं वरन् समय के प्रवाह में एक परिवर्तन का चिह्न भी है।

महात्मा गांधी का सहयोगी से असहयोगी होना (Mahatma Gandhi becomes Satyagrahi)—पंजाब में हुये अत्याचारों के प्रति भारत तथा ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार के रुख तथा जनरल डायर पर हाउस आफ लार्डस में हुई बहस ने *महात्मा गांधी की आंखें खोल दीं और वे सहयोगी से असहयोगी बन गये।* १९१७ में महायुद्ध की समाप्ति के पूर्व ही भारत सरकार ने रौलट कमेटी (Rowlatt Committee) नियुक्त की जिसका कार्य देश के क्रान्तिकारी आयोजन से सम्बन्धित षड्यन्त्रों *की जांच करना था और उनके अन्त करने के लिये सरकार को उपयुक्त सुझाव तथा उपाय सुझाना था। इस कमेटी ने १९१८ की जनवरी में अपना कार्य प्रारम्भ किया और* उसी वर्ष के अप्रैल के मध्य में अपनी रिपोर्ट दे दी। उसने दो प्रकार के कानूनों के बनाने *की सलाह दी। इस परामर्श के आधार पर भारत सरकार ने दो विधेयक तैयार किये और* व्यापक तथा गैर-सरकारी सदस्यों का विरोध होते हुए भी उनको पास करा दिया। इनके द्वारा आतंकवादी जन-आन्दोलनों को कुचलने के लिये बहुत अधिक अधिकार दिये गये। राइट आनरेबिल श्री श्रीनिवास शास्त्री जैसे उदारवादी नेता ने भी लोगों की भावना के विरुद्ध ऐसे कड़े अधिनियमों के भयानक परिणामों के सम्बन्ध में सरकार को चेतावनी दी। कदाचित किसी भी घटना ने कांग्रेस की नीति तथा व्यवहार में इतना परिवर्तन नहीं किया जितना सारे राष्ट्र के विरोध करने पर भी रौलट विधेयकों की सरकार द्वारा स्वीकृति ने। भारत सरकार के इस कठोर व्यवहार से महात्मा गांधी बड़े चिन्तित हुए। उनके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनके विरोध में समस्त देश के अन्तर्गत एक विशेष दिन सर्वव्यापी हड़ताल का आयोजन किया जाय और वह दिन उपवास और ईश्वर प्रार्थना में व्यतीत किया जाये। १९१९ मार्च की ३० तारीख इस कार्य के लिये निश्चित की गई। किन्तु बाद में बदल कर छः अप्रैल कर दी गई। कुछ नगरों में ३० मार्च को ही हड़ताल कर दी गई। दिल्ली में पुलिस ने एक ऐसी भीड़ पर गोली भी चलाई जो एकत्रित होकर रेलवे जलपान-गृहों को बन्द करवा रही थी। छः अप्रैल की हड़ताल के उपरान्त गांधी जी ने कुछ स्थानीय नेताओं की प्रार्थना पर दिल्ली जाना स्वीकार किया किन्तु पलवल नामक स्थान पर उनको बन्दी कर बम्बई भेज दिया गया। उनके बन्दी किये जाने का समाचार दावाग्नि के समान फैल गया और कुछ स्थानों पर उत्पात हो गया। सरकार ने शीघ्र ही उनको मुक्त कर दिया और शान्ति की स्थापना हुई। सर माइकल ओडायर (Sir Michal O' Dyre) द्वारा शासित पंजाब में कुछ जनप्रिय नेताओं के बन्दी करने तथा निहत्थी जनता पर गोली चलाने के कारण लाहौर और अमृतसर में बड़ी सनसनी फैली। अमृतसर की घटनायें दिल दहलाने वाली थीं।

इन घटनाओं का पता चलने पर लोगों में बड़ा क्षोभ फैला और उन्होंने इस अपमान तथा अमानुषिक कार्यों के उत्तरदायी लोगों को दण्ड देने की मांग की। इन घटनाओं की जांच के लिये सरकार द्वारा एक समिति का निर्माण किया गया। किन्तु

इसका कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही सरकार ने अपराधी अफसरों के हितार्थ एक इन्डेम्निटी बिल (Indemnity Bill) पास किया जिससे उनको मुक्ति मिल गई। इस समिति की रिपोर्ट ने घटनाओं पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया। इससे देश का क्रोध और भी बढ़ गया। सरकार ने माईकल ओडायर के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की और केवल जनरल डायर को 'निर्णय की भूल' के लिये उत्तरदायी बनाकर नौकरी से हटा दिया। इन कार्यों से यह स्पष्ट हो गया कि इंगलैंड तथा भारत सरकार को पंजाब की भयंकर भूलों के लिये कोई पश्चाताप नहीं है। गांधी जी को इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने को इस सरकार से हर प्रकार अलग कर देने का निश्चय किया। उन्होंने एक योजना बनाई और राष्ट्र को उस समय तक असहयोग करने का आदेश दिया जिस समय तक पंजाब की भूलों में स्वराज्य की स्थापना न हो जाये। लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कांग्रेस का कलकत्ता-अधिवेशन सितम्बर १६२० के पहले सप्ताह में हुआ। इसी अधिवेशन के अवसर पर गांधी जी ने अपनी योजना लोगों के सामने रखी। इस अधिवेशन के अवसर पर विभिन्न प्रान्तों के मुसलमान भी अधिक संख्या में एकत्रित हुये थे। उन्होंने आन्दोलन में अपना सहयोग देने का निश्चय किया।

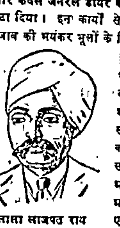

लाला लाजपत राय

१६२१ का असहयोग आन्दोलन (Non Co-operation Movement of 1921)—इसके बाद कांग्रेस के इतिहास में एक नया युग आरम्भ होता है। महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव ने राजनीतिक विरोध के स्थापित तथा पुराने ढंग के लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया। दिसम्बर १६२० में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव और भी पक्का हो गया। देशबन्धु चितरंजनदास तथा लाला लाजपतराय ने कलकत्ते में असहयोग के प्रस्ताव का विरोध किया था लेकिन नागपुर में वे उनके समर्थक बन गये। आन्दोलन में भाग लेने के कारण ३० हजार व्यक्तियों ने सहर्ष जेल के कष्टों को सहन किया। सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियां त्याग दीं और इससे कई गुना लोगों ने वकालत करना छोड़ दिया। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल तथा कॉलिज त्याग दिये और देश भर में अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना हो गई। इन संस्थाओं में अलीगढ़ का राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ तथा तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। १६२१ के पूरे वर्ष तक आन्दोलन जितनी सफलता के साथ आगे बढ़ा इतनी सफलता की आशा इसके पक्के समर्थकों को भी नहीं थी। बारदोली तास्लुका में महात्मा जी बन्दी-कर आन्दोलन स्थगित कर रहे थे। इन सब कार्यों से ब्रिटिश सरकार की नींव हिल उठी और स्वराज्य प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। लेकिन इसी मनोवैज्ञानिक अवसर पर मालाबार में मोपला दंगा आरम्भ हो गया जिसमें हिन्दुओं पर बहुत अधिक अत्याचार हुआ। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता को बड़ा आघात

पहुँचा। यह एकता ही उस वर्ष के अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रमुख स्तम्भ थी। वेल्स के राजकुमार (Prince of Wales) के आगमन पर बम्बई में बड़ी गड़बड़ हुई। इससे भी बुरी बात यह हुई कि उन्मत्त जनता ने चौरा-चौरी की चौकी में आग लगा दी और वहाँ पुलिस के अनेक सिपाहियों की हत्या कर दी। महात्मा गांधी ने देखा कि आन्दोलन का अहिंसात्मक रूप समाप्त हो गया है, इसलिये उन्होंने इसे तुरन्त बन्द करने की आज्ञा दी। इस पर उनके निकट अनुयायियों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कांग्रेस के सभी कार्य बन्द कर दिये जिसके लिए जेल जाने की आवश्यकता पड़ती। सरकार ने इस अवसर से लाभ उठा कर गांधी जी को बन्द कर उन पर मुकदमा चलाया और १६२२ में उनको छः वर्ष का कारागार दिया।

आन्दोलन का महत्व—महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाला असहयोग का पहला आन्दोलन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहा। ब्रिटिश सरकार हिल तो गई लेकिन गिरी नहीं, फिर भी आन्दोलन पूर्णतया निष्फल नहीं रहा। इसने राजनीतिक विरोध को उस स्तर तक पहुँचा दिया जिसकी पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। इसके द्वारा कांग्रेस आन्दोलन जनता का आन्दोलन बन गया तथा स्वराज्य का संदेश समाज के निम्न स्तर तक पहुँच गया। नौकरशाही ने पहली बार अनुभव किया कि नरम दल के राजनीतिज्ञों की शुभेच्छाओं का कितना मूल्य है। इसने उनका सहयोग प्राप्त करने के लिये अपना पूरा प्रयत्न लगा दिया और मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों को इस रूप में लागू किया जैसा पूर्व में उससे आशा नहीं की जा सकती थी।

कांग्रेस में स्वराज्य दल की स्थापना

(Establishment of Swaraja Party in Congress)

अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन की बाह्य सफलता से कांग्रेस के कुछ नेताओं ने नई विधान-सभाओं के बहिष्कार की नीति का विरोध करना आरम्भ किया। कांग्रेस के अन्तर्गत ही श्री सी० आर० दास तथा पण्डित मोती लाल नेहरू ने एक कौंसिल प्रवेश पार्टी की स्थापना की। हकीम अजमल खां और विट्ठल भाई पटेल का भी इस दल को सहयोग प्राप्त हुआ। यह दल 'स्वराज्य दल' के नाम से विख्यात हुआ। इस दल का उद्देश्य सुधारों को कार्यान्वित न करके सरकार के कार्यों में रोड़े अटकाना था। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार को राष्ट्र की मांगें स्वीकार करने के लिये विवश कर देना था। गांधी जी के अनुयायियों ने कौंसिल-प्रवेश का विरोध किया। ये लोग अपरिवर्तनवादी कहलाये। डाक्टर अन्सारी तथा राजगोपालाचार्य इनमें प्रमुख थे। १६२२ के कांग्रेस के गया अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश सम्बन्धी प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ, किन्तु दिल्ली के विशेष अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। १६२४ में विधान-मण्डलों के लिए दूसरी बार निर्वाचन हुआ। प्रथम निर्वाचन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की ओर से खड़े स्वराज्य दल की अनेक प्रान्तों में विजय हुई। बंगाल तथा मध्य प्रान्त में स्वराज्य दल के लोग काफी संख्या में सफल हुए। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि संविधान का चलना असम्भव हो गया किन्तु इनकी अङ्गेबाजी को चालों से

नौकरशाही हिल न सकी। केन्द्रीय विधान-सभा में भी स्वराज्य दल कुछ अधिक कार्य नहीं कर सका। केन्द्रीय ऐसेम्बली में भारत के लिये संविधान बनाने के उद्देश्य से एक गोलमेज सम्मेलन की मांग की गई जिसको लार्ड रीडिंग की सरकार ने अस्वीकृत कर दिया। सरकार ने इस पर इतना अवश्य किया कि सर अलेक्जेंडर मुडीमैन (Sir Alexander Mudimen) की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण १९१९ के सुधारों के परिणाम पर रिपोर्ट देने के उद्देश्य से किया जिसकी रिपोर्ट को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। १९२६ ई० में पुनः निर्वाचन हुआ। श्री सी० आर० दास की मृत्यु के उपरान्त स्वराज्य-दल को बड़ा आघात पहुँचा। इसके सदस्य कम निर्वाचित हुये। उनको बाध्य होकर कांग्रेस के पुराने कार्य-क्रम को अपनाना पड़ा। इस पुराने कार्य-क्रम का उद्देश्य तैयारी करते रहना और आवश्यकता पड़ने पर खूब अधिक संख्या में सविनय अवज्ञा करना था।

साइमन कमीशन
(Simon Commission)

कांग्रेस का कार्य शिथिल पड़ गया था। आन्दोलन स्थगित हो ही चुका था। स्वराज्य दल का भी प्रायः अन्त हो गया था। उसी समय स्वयं ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को एक देश-व्यापी आन्दोलन करने का सुयोग प्रदान किया। इंगलैंड की सरकार ने स[र] जोन साइमन (Sir John Simon) की अध्यक्षता में एक रायल कमीशन (Roya[l] Commission) की नियुक्ति की कि वह इंगलैंड की संसद के सामने १९१९ के अधिनिय[म] के कार्यों की जांच करके एक रिपोर्ट पेश करे। यह कमीशन ३ फरवरी १९२८ ई० क[ो] बम्बई पहुँचा। इस कमीशन का स्वागत हड़ताल द्वारा किया गया। यह कमीशन जह[ाँ] कहीं भी जाता वहीं हड़ताल होती, काले झंडों का प्रदर्शन होता और 'साइमन लौट जाओ' (Go back Simon) का नारा लगाया जाता। केवल मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा मुस्लिम संस्थाओं ने इसका स्वागत किया। साइमन कमीशन के बहिष्कार ने देश में बड़ी उथल-पुथल मचा दी। ब्रिटिश सरकार ने आतंक तथा बलात्कार करना आरम्भ किया। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी का प्रहार किया। लाला लाजपतराय पर लाहौर में लाठियों और डण्डों की बौछार की गई जब उनकी अध्यक्षता में लाहौर में एक जलूस निकाला जा रहा था। घातक हमले के कारण उनकी मृत्यु हो गई। पुलिस के इस अमानुषिक व्यवहार से लोगों में बड़ा क्षोभ फैला और इसलिये कुछ आतंकवादी घटनायें घटीं।

नेहरू रिपोर्ट
(Nehru Report)

भारत-मन्त्री लार्ड बर्किनहेड (Lord Burkinhead) ने भारतीय नेताओं को सर्वमान्य विधान बनाने तथा उसको इंगलैंड की संसद के सामने रखने की चुनौती दी जिसको भारत के राजनीतिक नेताओं ने स्वीकार किया। तुरन्त ही पण्डित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में विधान निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया और उसने एक रिपोर्ट तैयार की जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है। इसने भारत के

लिये औपनिवेशिक आधार पर एक विधान तैयार किया। १६२८ के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन ने इस रिपोर्ट पर विचार किया। इस अधिवेशन में भारत के लिये पूर्ण स्वराज्य के चाहने वालों और औपनिवेशिक पद के समर्थकों के बीच खूब वाद-विवाद हुआ। पहले दल के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाष चन्द्र बोस और दूसरे दल के नेता पण्डित मोती लाल नेहरू थे जो इस अधिवेशन के सभापति थे। महात्मा गांधी ने दोनों दलों में मेल कराने के लिये एक प्रस्ताव पास किया जिसको कांग्रेस ने स्वीकार किया। प्रस्ताव इस प्रकार था—

"सर्व दलीय समिति की रिपोर्ट द्वारा पेश किये हुये विधान पर विचार करने के उपरान्त कांग्रेस उनका स्वागत करती है क्योंकि भारत की राजनीति तथा साम्प्रदायिक समस्याओं के हल करने के लिये यह एक महान देन है। कांग्रेस इस समिति को सुझाव के एक मत होने के लिये धन्यवाद देती है। मद्रास-कांग्रेस के अवसर पर पास किये हुए पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव को ही मानने के साथ-साथ कांग्रेस कमेटी द्वारा निर्मित विधान को राजनीतिक प्रगति में एक महान् कदम के रूप में स्वीकार करती है, विशेषतः इसलिये कि देश के प्रमुख दलों के बीच वह सबसे अधिक समझौते का प्रतिनिधित्व करती है।"

"यदि यह विधान दिसम्बर १६२६ या उससे पूर्व स्वीकार नहीं किया जाता तो कांग्रेस उसे मानने के लिये बाध्य नहीं रहेगी और यह भी घोषित किया जाता है कि यदि इंगलैंड की संसद इस तिथि तक इस विधान को स्वीकार नहीं करती है तो कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग फिर आरम्भ कर देगी जिसके अनुसार देश शासन को कर या अन्य किसी प्रकार की सहायता देना बन्द कर देगा।"

पूर्ण स्वराज्य

भारत के वाइसराय लार्ड इरविन (Lord Irwin) जून में विचार-विमर्श करने इंगलैंड गये। वहां से वापिस आने पर उन्होंने ३१ अक्टूबर को एक घोषणा की जिस पर कांग्रेस ने विचार-विमर्श करना आरम्भ किया। कांग्रेस की घोषणा पर सरकार की ओर से कोई वक्तव्य प्रकाशित नहीं हुआ। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में आने से पहले महात्मा गांधी तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू ने वाइसराय से भेंट करना उचित समझा जिससे उनकी घोषणा का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाय, किन्तु वाइसराय लार्ड इरविन (Lord Irwin) दोनों महान् नेताओं को कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। ये दोनों बड़े नेता खाली हाथ लाहौर पहुंचे। इन परिस्थितियों के बीच पूर्ण स्वराज्य को अपना उद्देश्य घोषित करने के अतिरिक्त और कोई चारा कांग्रेस के पास न रह गया था। कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति अपना उद्देश्य घोषित किया। अतः इस प्रकार स्वराज्य प्राप्ति के लिये दूसरे महान् राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि का निर्माण किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन
(Civil Disobedience Movement)

कांग्रेस ने अपनी कार्य समिति को यह आदेश भी दिया था कि यदि आवश्यक समझे तो वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर सकती है। २ मार्च १६३० को महात्मा गांधी ने लार्ड इरविन के नाम एक ऐतिहासिक पत्र लिखा जिसमें उ

साबरमती आश्रम के अपने कुछ साथियों के साथ नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने की सूचना दी। १२ मार्च को महात्मा गांधी डांडी में नमक कानून तोड़ने के लिये अहमदाबाद से चल पड़े। उनके साथ ७५ आश्रमवासी थे। जगह-जगह मार्ग में रुककर उन्होंने अपना सन्देश जनता को सुनाया। गांधी जी की डांडी यात्रा बहुत प्रसिद्ध हो गई और इस यात्रा से सम्बन्धित दृश्य इतने भव्य, जोशीले तथा प्रभावशाली थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बाम्बे क्रानिकल (Bombay Chronical) ने डांडी-कूँच के सम्बन्ध में लिखा कि "मानव जाति के इतिहास में देश-प्रेम की लहर उतनी तीव्र कभी भी नहीं उठी थी जितनी इस महान् अवसर पर। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में यह घटना एक महान आन्दोलन के प्रारम्भ के रूप में प्रसिद्ध हुई।"

महात्मा जी ५ अप्रैल को डांडी पहुँचे, मार्ग में समस्त लोगों ने उनका शानदार स्वागत किया, और उन्होंने नमक कानून को भंग किया। इसके उपरान्त समस्त देश में नमक कानून तोड़ने की धूम मच गई। महात्मा गांधी के बन्दी होने पर कांग्रेस की कार्यसमिति ने शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्रों के विक्रय पर प्रतिबन्ध, जंगल सम्बन्धी कानूनों की अस्वीकृति तथा कर न देने की नीति को अपनाया। आन्दोलन का दमन करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमन की नीति का सहारा लिया। भारत सरकार ने बहुत से अध्यादेश पास किये जिसके कारण यह समय अध्यादेश का समय बन गया। इसके द्वारा बहुत से लोगों को बन्दी बनाया गया तथा जुर्माने किये गये। पुलिस ने जनता पर गोलियां चलाई जिनके कारण सैकड़ों मृत्यु भी हुई किन्तु इन पाशविक उपायों के सामने भारत नत-मस्तक नहीं हुआ और वह पहले से भी अधिक शक्तिशाली होता गया।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन (First Round Table Conference)—गोलमेज सम्मेलन का पहला अधिवेशन १२ नवम्बर १९३० को लन्दन नगर में प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। इसके मुख्य नेता बन्दीगृहों में बन्द थे। यह अधिवेशन १९ जनवरी १९३१ को समाप्त हुआ। इसमें भारतीयों की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर संघ-शासन का सिद्धान्त सबसे उत्तम समझा गया। प्रान्तीय क्षेत्र में संसदीय सरकार (Parliamentary form of Government) तथा कुछ आरक्षण (Reservation) और संरक्षण (Safeguards) के साथ केन्द्र में द्वैध शासन (Dyarchy) का सिद्धान्त निश्चित किया गया।

गांधी-इरविन पैक्ट (Gandhi Irwin Pact)—प्रथम गोलमेज द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों पर विचार करने के लिए कांग्रेस के नेताओं को बन्दीगृहों से मुक्त कर दिया गया। वे २६ फरवरी सन् १९३१ को मुक्त हुए। महात्मा गांधी ने भारत के वाइसराय के साथ एक समझौता किया जो गांधी-इरविन समझौते (Gandhi-Irvin Pact) के नाम से विख्यात है। इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस समझौते के परिणामस्वरूप कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया और उसने द्वितीय

गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने का निश्चय किया। इससे कांग्रेस की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई और सविनय अवज्ञा आंदोलन को अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण सारे राष्ट्र का नैतिक उत्थान हुआ। दुःख इस बात का है कि पंडित मोतीलाल नेहरू की, जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भाग लिया था, समझौते होने के पूर्व ही मृत्यु हो गई थी।

इङ्गलैंड में साधारण निर्वाचन (*General Elections in England*)—इसी समय इङ्गलैंड में साधारण निर्वाचन हुआ जिसके परिणामस्वरूप अनुदार दल के हाथ में शासन-सत्ता आई। लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगडन भारत के वाइसराय नियुक्त हुये। इसके कारण दोनों देशों की परिस्थितियों में बड़ा अन्तर उत्पन्न हो गया। कांग्रेस को यह शिकायत थी कि सरकारी अधिकारी गांधी-इरविन समझौते की शर्तों का पालन नहीं करते। परिस्थितियों की विषमता तथा सफलता की आशा न होते हुये भी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने के कारण महात्मा गांधी जी २९ अगस्त १९३१ को इंगलैंड के लिये चल पड़े।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (Second Round Table Conference)—द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (Second Round Table Conference) १४ सितम्बर से १ दिसम्बर १९३१ ई० तक हुआ। इस सम्मेलन में जो उत्साह प्रथम सम्मेलन में था, नहीं रहा। ब्रिटिश प्रतिनिधियों के रुख तथा व्यवहार में एकदम परिवर्तन हो गया। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में गांधी जी ने सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लिया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता (Failure of the Second Round Table Conference)—सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य इंगलैंड तथा भारत के बीच का निपटारा और भारत की वैधानिक समस्या का हल निकालना था, किन्तु मार्ग में साम्प्रदायिक समस्या उत्पन्न हो गई। इस समस्या को ब्रिटिश प्रतिनिधियों की ओर से प्रधानता दी गई। इसका हल असम्भव हो गया। सरकार ने इस समस्या का निराकरण साम्प्रदायिक निर्णय के रूप में किया जो कुछ दलों के एकदम अनुकूल था और कुछ के एकदम प्रतिकूल। दिल्ली के पारस्परिक समझौते को ही स्थायी समझौते का रूप देने के लिये महात्मा गांधी जी इंगलैंड गए थे, किन्तु वे असफल रहे। महात्मा जी ने भारत के लिए प्रस्थान किया।

तृतीय अहिंसात्मक प्रतिरोध
(The Third Civil Disobedience Movement)

महात्मा गांधी ने इंगलैंड में जो कुछ भी देखा और अनुभव किया उससे उनकी यह धारणा बन गई कि ब्रिटिश सरकार भारत के साथ छल किया है। जब वे २८ दिसम्बर १९३१ को बम्बई में उतरे तो उनको लार्ड वेलिंगडन की सरकार द्वारा उपस्थित की हुई एक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा। बंगाल, संयुक्त प्रान्त तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में सरकार की दमन नीति चल रही थी। स्थिति पर विचार करने तथा अधिकारियों के समक्ष [illegible] दिखलाने के उद्देश्य से महात्मा गांधी ने वायस

के वाइसराय से भेंट करनी चाही किन्तु भेंट पर सरकार ने अपमानपूर्ण शर्तें लाद दीं। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस समिति ने एक लम्बा प्रस्ताव पास किया जिसमें राष्ट्र को सविनय अवज्ञा आन्दोलन उस समय तक जारी रखने का आदेश दिया जब तक उनकी मांगों का सरकार कोई उपयुक्त उत्तर न दे। इन मांगों के उत्तर में अनेक अध्यादेश जारी किए गये। महात्मा गांधी, कांग्रेस समिति के सदस्य तथा अन्य लोगों को बन्दीगृहों में डाल दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अन्त करने के लिये भारत सरकार ने कई नई चालों का प्रयोग किया। कांग्रेस समितियाँ अवैध घोषित कर दी गई और नेताओं को बन्दी कर लिया गया। कांग्रेस हाउसों तथा दफ्तरों पर सरकार ने अधिकार किया और उनकी सम्पत्ति पर भी आधिपत्य स्थापित किया। डाकघरों तथा तारघरों का प्रयोग कांग्रेस के लिये रोक दिया गया और प्रेस पर विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये। जनता को विशेष कष्टों का सामना करना पड़ा। उसने हिंसात्मक उपायों का प्रयोग नहीं किया यद्यपि सरकार का उनके साथ अमानुषिक व्यवहार था। कांग्रेस का अधिवेशन अपने स्वाभाविक रूप में करने की सरकार ने आज्ञा प्रदान नहीं की, इसलिये १९३२ ई० में तथा १९३३ ई० के कांग्रेस अधिवेशन क्रम से दिल्ली तथा कलकत्ते में हुये। इस तीसरे मोर्चे में लोगों ने जितने कष्ट उठाये वे पिछले सभी आन्दोलनों से अधिक थे। अनुमान किया जाता है कि लगभग एक लाख व्यक्तियों ने बन्दीगृह की यातनायें सहन कीं। लोगों को व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक जुर्माना देना पड़ा, कभी-कभी तो इनकी संख्या हजारों लाखों में होती थी। एक ओर था अत्याचार तथा पाशविकता का व्यंग्यात्मक कठोर अट्टहास और दूसरी ओर त्याग और कष्ट-सहन की चरम-सीमा।

साम्प्रदायिक निर्णय
(Communal Award)

जब भारत में अहिंसात्मक प्रतिरोध चल रहा था तो १७ अगस्त १९३२ ई० को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने साम्प्रदायिक समस्या पर अपने निर्णय की घोषणा की जिसके अनुसार अछूतों के लिये सवर्ण हिन्दुओं से पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की। कांग्रेस ने इस साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) को अस्वीकार किया। महात्मा गांधी ने जो इस समय यर्वदा जेल में थे, आमरण अनशन आरम्भ किया। उनके ऐसा करने से देश में खलबली मच गई और फलस्वरूप पूना समझौता (Poona Pact) हुआ, जिसके द्वारा अछूतों के लिये कुछ स्थान दोहरे निर्वाचन की व्यवस्था के साथ सुरक्षित कर दिये गये, परन्तु उनको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर पृथक् नहीं किया गया। इसी से १९३३ में गांधी जी को २१ दिन के उपवास की प्रेरणा हुई। अपनी तथा अपने साथियों की शुद्धता तथा हरिजनों की भलाई के कार्य में सतर्कता और जागरूकता के लिये ही गांधी जी ने यह उपवास किया। उपवास ८ मई को प्रारम्भ हुआ और उसी दिन महात्मा जी बिना किसी शर्त के जेल से मुक्त कर दिये गये।

गांधी जी ने कांग्रेस सभापति को सविनय अवज्ञा आन्दोलन ६ सप्ताह तक स्थगित करने की सलाह दी और भारत-सरकार से राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करने

की प्रार्थना की। इसके फलस्वरूप आन्दोलन तीन महीने के लिये स्थगित कर दिया गया, किन्तु सरकार ने महात्मा गांधी की प्रार्थना की अवज्ञा कर राजनीतिक बन्दियों को मुक्त नहीं किया। २४ जुलाई को गांधी जी ने कांग्रेस के सभापति को सामूहिक आन्दोलन के स्थान पर व्यक्तिगत आन्दोलन करने की सलाह दी। उन्होंने स्वयं अपना साबरमती आश्रम बन्द कर दिया और खैरा के जिले के रास नामक गांव में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने अन्य लोगों को भी ऐसा ही करने का आदेश दिया। वे बन्दी कर लिये गये और एक वर्ष के लिये यर्वदा जेल में डाल दिये गये। २३ अगस्त को स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणों से वे छोड़ दिये गये, बाद में उन्होंने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द करने का आदेश दिया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन
(The Third Round Table Conference)

गोलमेज सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन १७ नवम्बर से २४ दिसम्बर तक हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। पहले की भांति भारत से केवल सरकार के विश्वस्त व्यक्तियों को आमन्त्रित किया गया, यहां तक कि हिन्दू महासभा द्वारा चुने सदस्यों तथा लिबरल फेडरेशन के अध्यक्ष को भी नहीं बुलाया गया। सम्मेलन ने तीन प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जो इस प्रकार थीं—

(१) संरक्षण,

(२) वे शर्तें जिनके अनुसार भारतीय देशी राज्य संघ के अन्तर्गत सम्मिलित होगा, तथा

(३) अवशिष्ट अधिकारों (Residuary Powers) का विभाजन।

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि मण्डल ने विधान में एक अधिकार-पत्र (Bill of Rights) भी सम्मिलित करना चाहा, किन्तु ब्रिटिश अधिकारियों ने इसे अस्वीकार कर दिया।

अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त सरकार ने एक श्वेत-पत्र (White Paper) के रूप में अपनी योजनायें प्रकाशित कीं। ये योजनायें भारतीय जनता की मांगों की अपेक्षा बहुत कम थीं। नरम दल को भी इससे सन्तोष नहीं हुआ। जिन अधिकारों की प्राप्ति एक देश को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में परिणत कर सकती है वे समस्त अधिकार वाइसराय को प्रदान किये गए। संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी ने उनमें कुछ और भी कमी कर दी। अन्त में १९३५ का भारत-सरकार-अधिनियम बना।

१९३७ का निर्वाचन और उसके उपरान्त
(Elections of 1937 and After)

१९३५ के भारत-सरकार-अधिनियम के अन्तर्गत १९३७ में प्रान्तीय विधान-सभाओं के लिये निर्वाचन हुआ। कांग्रेस ने इस निर्वाचन में भाग लेने का निश्चय किया। देश के मान्य नेताओं को कांग्रेस की विजय में पूर्ण आशा थी। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने समस्त देश का तूफानी दौरा किया और अनेक आम सभाओं में भाषण

लिया। लोगों में जोश तथा उत्साह का संचार हुआ और स्वराज्य का सन्देश भारत के कोने-कोने में फैल गया। भारतीय जनता ने निर्वाचन में विशेष दिलचस्पी ली। कांग्रेस को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। ग्यारह प्रान्तों में से आठ प्रान्तों में कांग्रेस दल का बहुमत था। दो प्रान्तों में कांग्रेस का सबसे बड़ा दल था किन्तु उसका पूर्ण बहुमत नहीं था, बंगाल तथा पंजाब में यह दल कमजोर था।

निर्वाचन में विजयी होने पर नवीन विधान को भंग करने के लिये कांग्रेस के नेताओं में बड़ा वाद-विवाद हुआ। कुछ नेता पद स्वीकार करने और सरकार के अन्दर रहकर युद्ध के पक्ष में थे और कुछ कांग्रेस को 'पद-स्वीकृति' की सलाह न देकर उससे बाहर ही रहना चाहते थे। महात्मा गांधी ने दोनों में एक समझौता करवाया और कांग्रेस को पद स्वीकार करने का परामर्श दिया, यदि दिन प्रतिदिन के शासन में राज्य के गवर्नर अपने विशेष अधिकारों (Special Powers) का प्रयोग न करें। कांग्रेस ने भारत-सरकार से इस प्रकार का आश्वासन मांगा, किन्तु कई महीनों के उपरान्त भारत-सरकार ने कांग्रेस की मांगें परोक्ष रूप में स्वीकार कर लीं। इसके फलस्वरूप ग्यारह प्रान्तों में से आठ प्रान्तों में कांग्रेस ने अपना मंत्रि-मण्डल बना कर शासन की सत्ता को अपने हाथ में ले लिया। सिंध के मन्त्रि-मण्डल में कांग्रेस का हाथ था। इच्छा होने पर वह बंगाल में भी महत्वपूर्ण भाग ले सकती थी। पंजाब में कांग्रेस की उपेक्षा अवश्य हुई। शासन चलाना कांग्रेस के लिये एक नया अनुभव था, किन्तु उसने यह कार्य अच्छी तरह निभाया। १९३९ के अन्त में कांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल एकाएक समाप्त हो गये। द्वितीय महायुद्ध में सहयोग के प्रश्न को लेकर कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये।

द्वितीय महायुद्ध और उसके उपरान्त
(The Second World War and After)

भारतीयों की इच्छा जाने बिना इंगलैंड की सरकार ने भारत को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। भारतीय सेनायें विदेशों में युद्ध करने के लिये भेज दी गई। कांग्रेस ने इसका विरोध किया और यह घोषित किया कि युद्ध अथवा शान्ति के विषय में कोई भी विदेशी सत्ता अपना निर्णय भारत पर नहीं लाद सकती। कांग्रेस ने अपने सदस्यों को केन्द्रीय विधान-सभा से हटा लिया। बाद में उसने ब्रिटिश सरकार से युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने को कहा और उसके प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया यदि युद्ध का उद्देश्य लोकतन्त्र तथा लोकतन्त्र पर आधारित व्यवस्था की रक्षा करना हो। लेकिन यदि युद्ध साम्राज्यवादी उद्देश्यों से प्रेरित हो तो इससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने की घोषणा की। १९३९ के सितम्बर के मध्य में कांग्रेस कार्य-समिति ने अपने लम्बे, स्पष्ट तथा गौरवपूर्ण प्रस्ताव में अपनी मांगें स्पष्ट कीं।

कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों का त्याग-पत्र (Resignation of Congress Ministries)- ब्रिटिश सरकार ने अपने युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा नहीं की। एक बार ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री ने यह घोषणा की कि उनका तत्कालीन उद्देश्य स्वरक्षा है। एक

अन्य मन्त्री ने घोषित किया कि ब्रिटेन का उद्देश्य युद्ध में विजयी होना है। श्री (सर) विन्सटन चर्चिल ने अपने बाद के एक वक्तव्य में स्पष्ट किया कि एटलांटिक घोषणा (Atlantic Declaration) भारत पर लागू होगा और यह भी होगा कि वे सम्राट के प्रधान-मन्त्री इसलिये नहीं बने कि वे साम्राज्य का अन्त कर डालें। ये बातें सिद्ध करती हैं कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं थी जिसको भारतीय अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते थे तथा जिसकी प्राप्ति के लिये भारत के सैकड़ों सपूतों ने अपनी जान की बाजी लगाई तथा हजारों पुत्रों व पुत्रियों ने हर प्रकार के कष्टों तथा दुखों का सामना किया। वाइसराय महोदय ने एक पूर्वगामी वाइसराय की एक घोषणा उद्धृत की जिसमें यह कहा गया कि 'भारतीय प्रगति का मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति था'। कांग्रेस की इस माग पर कि ब्रिटेन अपने लोकतन्त्र-प्रेम को सक्रिय रूप में प्रकाशित करे वाइसराय ने एक मन्त्रणा मंडल (Advisory Council) बनाने का निश्चय किया। १७ अक्टूबर १९३९ को प्रकाशित एक श्वेत-पत्र में सरकार ने अपनी भारत-सम्बन्धी नीति स्पष्ट की। कांग्रेस को इससे सन्तोष नहीं हुआ। इन परिस्थितियों से बाध्य होकर कांग्रेस ने मन्त्री-मंडलों से त्याग-पत्र देने का आदेश किया और उन्होंने आदेश पाते ही त्याग-पत्र दे डाले।

गवर्नरों का शासन (Governer's Rule)—गवर्नरों ने अल्प-सख्यकों की सहायता से सरकार बनाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् संविधान की ९३वीं धारा के अनुसार विधान को स्थगित कर दिया। हाई कोर्ट के अधिकारों के अतिरिक्त प्रान्तीय गवर्नरों ने समस्त अधिकार अपने हाथों में ले लिये। कुछ समय उपरान्त दो या तीन प्रान्तों में से विधान को स्थगित करने की घोषणा उठा ली गई और कम से कम दिखाने के लिये विधान पुनः कार्यान्वित किया गया। शेष प्रांतों में गवर्नरों ने सलाहकारों की सहायता से शासन चलाना आरम्भ किया।

कांग्रेस मन्त्रियों के त्याग-पत्र देने के लगभग एक वर्ष तक कोई विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। वर्ष के लगभग बीच में एक महत्वपूर्ण घटना अवश्य हुई। नार्वे, स्वीडन, बेल्जियम तथा फ्रांस के पतन से प्रभावित होकर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस की कार्य-समिति को एक प्रस्ताव पास करने के लिये प्रेरित किया, जिसके अनुसार ब्रिटेन को युद्धकालीन सहायता की घोषणा इस शर्त पर की गई कि भारत सरकार को भारतवासियों के समक्ष उत्तरदायी बनाया जाये। दूसरे शब्दों में कांग्रेस ने यह माग की कि भारत सरकार १९१९ के अधिनियम के अनुसार बने, विधान मण्डल (इसके सरकारी तथा मनोनीत तथा सदस्यों के अतिरिक्त) के प्रति कानून में नहीं तो व्यवहार में उत्तरदायी हो। यह स्मरण रहे कि पूना अधिवेशन में पास किया यह प्रस्ताव कांग्रेस के शान्ति तथा अहिंसात्मक सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ता था, फिर भी उसने सरकार के प्रति उदारता का व्यवहार किया और प्रस्ताव को पास किया। स्टेटसमैन' जैसे समाचार-पत्र ने भी इस व्यवहार में कोई अव्यावहारिक तथा सकटमय चीज का अनुभव नहीं किया। सरकार ने कांग्रेस को उदारता का उत्तर अगस्त योजना (August Plan) के रूप में दिया। इस योजना ने वाइसराय को

अपनी कार्यपालिका में कुछ भारतीयों को आमंत्रित करने तथा एक युद्ध-सलाहकार समिति (War Advisory Council) जिसमें भारतीय राज्यों तथा राष्ट्रीय जीवन के हितों के भी प्रतिनिधि रहेंगे, नियुक्त करने का अधिकार दिया। इस योजना में औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की प्रतिज्ञा को दोहराया और इस बात पर भी ज़ोर दिया कि 'सम्राट की सरकार की यह उत्कृष्ट इच्छा है कि युद्ध के पश्चात् राष्ट्रीय जीवन के प्रधान तत्वों के प्रतिनिधियों की एक समिति बना ली जाये जिसका कार्य नव विधान की रूप-रेखा का निर्माण करना होगा। इसके अतिरिक्त वह अपनी शक्ति के अनुसार सभी उपयुक्त विषयों के निर्णय में भी शीघ्रता करेगी। योजना का प्रथम भाग जिसमें भारतीयों के कार्यपालिका में सम्मिलित करने की बात कही

जवाहरलाल नेहरू

गई थी, कांग्रेस को कुछ सीमा तक लाभप्रद थी, किन्तु यह शक्ति की उस वास्तविक प्राप्ति की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण थी जिसकी कांग्रेस निरन्तर मांग करती रही है। उसके दूसरे भाग का अर्थ या तो विधान-परिषद् की स्थापना एक या दूसरा गोलमेज सम्मेलन होता। पहले अर्थ से कांग्रेस को सन्तोष हो सकता था किन्तु दूसरे से कदाचित नहीं। लेकिन कांग्रेस ने अगस्त योजना को इसलिये स्वीकार नहीं किया कि वह समय की मांग के प्रतिकूल थी वरन् इसका कारण निम्नलिखित शब्दों में छिपा हुआ व्यंग्य था—

"यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत की मुख्य शान्ति के लिये वह (ब्रिटिश सरकार) अपने उत्तरदायित्व को ऐसी सरकार के हाथ में नहीं देना चाहती जिसको भारत के राष्ट्रीय जीवन के बड़े शक्तिशाली तत्व स्वीकार नहीं करते हों और वह किसी ऐसे तत्व को ऐसी सरकार की सत्ता मानने के लिये विवश भी करने के लिये प्रस्तुत नहीं है।"

सीधी तथा सरल भाषा में इसका अर्थ यह है कि मुसलमान तथा दलित वर्ग जैसे अल्पसंख्यक वर्गों को निषेधाधिकार (Veto-power) दे दिया गया। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर इन अल्पसंख्यकों तथा ग्रेट-ब्रिटेन के अनुदार दल के मध्य गठ-बन्धन की याद आने पर भावना का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कांग्रेस की कार्यसमिति ने वर्धा में १८ से २३ अगस्त १९४० तक विचार किया और अन्त में उसको अस्वीकार कर दिया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience Movement)—इस योजना के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप महात्मा जी को सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करने का अधिकार दिया गया। धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) के विरुद्ध जीवन-मरण के युद्ध में गांधी जी ने ब्रिटेन को द्वेषवश परेशान नहीं करना चाहा और उन्होंने संसार के सामने यह घोषित किया कि भारत स्वेच्छा से ब्रिटेन की सहायता नहीं कर रहा है वरन् वह अपनी स्वतन्त्रता का इच्छुक है। उन्होंने सविनय अवज्ञा को अपने द्वारा चुने हुए कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रखा। उनकी आज्ञा के अनुसार कांग्रेस के सभी प्रान्तीय

तथा स्थानीय नेताओं, विधान-मण्डलों के सदस्यों, जिलों तथा नगरों की कांग्रेस कमेटियों के सभापतियों तथा सदस्यों ने लड़ाई के विरुद्ध भाषण देकर जेल जाना आरम्भ कर दिया। स्वतन्त्र भाषण का उपयोग करने के कारण १२००० व्यक्ति जेल भेज दिये गये।

समझौता न होना—जब यह महत्वपूर्ण सविनय अवज्ञा आन्दोलन चल ही रहा था, तो वाइसराय ने अपनी कार्यपालिका समिति विस्तृत की और एक युद्ध-सलाहकार-मण्डल (War Advisory Board) की भी स्थापना की। भारतीय सदस्यों ने जिनका अब कार्यपालिका मे बहुमत था सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्दियों को १९४१ के दिसम्बर मे मुक्त करवाया। कांग्रेस ने कुछ शर्तों के साथ भारत की रक्षा मे भी भाग लेना चाहा। इस प्रकार उसने अन्य समझौते के लिये भी रास्ता खुला रखा, किन्तु सरकार अपनी 'समस्त योजना' के आगे न बढ़ी इसलिये उसके और कांग्रेस के मध्य खाई बन गई।

क्रिप्स मिशन और उसके बाद
(Cripps Mission and After)

सिंगापुर, मलाया तथा रंगून का जापानियों द्वारा पतन और बर्मा की निश्चित पराजय ने सम्राट की सरकार को इस बात की आवश्यकता स्वीकार करने के लिये विवश कर दिया कि वह भारत को जापानी खतरे का सामना करने के लिये सन्तुष्ट करे। इसलिये उसने भारत मे सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स (Sir Strafford Cripps) को भारत की सवैधानिक समस्याओ का निराकरण करने के लिये भेजा। सर स्ट्रैफोर्ड का मिशन असफल रहा क्योंकि कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक दलों ने उसके द्वारा प्रस्तुत की गई योजना को स्वीकार नहीं किया। इस योजना की असफलता ने परिस्थिति को और भी अधिक भयकर बनाया। सरकार और कांग्रेस की बीच की खाई पूर्व से अधिक विस्तृत हो गई सरकार द्वारा कांग्रेस की मांग अस्वीकार किया जाना महात्मा गांधी को बहुत बुरा लगा; उन्होने एक विचारधारा का निर्माण किया जिसे बाद मे 'भारत छोड़ो' (Quit India) का रूप दिया गया। उन्होने अंग्रेजों को भारत से केवल भारत के हित के लिये ही नहीं वरन् अपने हित के लिये भी चले जाने का आदेश दिया। उन्होने 'हरिजन' द्वारा अपने विचार स्वतन्त्र रूप से प्रगट किये किन्तु उनकी विचारधारा का सरकार पर कोई प्रभाव नही पड़ा। वह कांग्रेस को कुचलने के लिये अपना सगठन दृढ़तर बनाती रही। जुलाई के मध्य मे कांग्रेस कार्यसमिति ने गाधी जी के विचारों का स्पष्टीकरण किया। यहाँ भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिये बम्बई मे अगले महीने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। ८ अगस्त १९४२ को इस अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और देशवासियों को तैयार रहने का आदेश दिया गया। महात्मा गांधी ने अपने भाषण में लोगों का 'करो या मरो' (Do or die) संग्राम के लिये आवाहन किया।

भारत छोड़ो आन्दोलन (Quit India Movement)—यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिये कि कांग्रेस ने वास्तव मे सविनय अवज्ञा आरम्भ नहीं किया था, वरन्

उसने केवल एक प्रस्ताव पास करके लोगों को यह आदेश दिया था, कि ब्रिटिश सरकार द्वारा राष्ट्रीय मांगों के अस्वीकार किये जाने पर वे सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दें। इस बात पर विश्वास किया जाता है कि समस्या के शान्तिपूर्ण हल के लिये गांधी जी ने वाइसराय से विचार-विनिमय करना चाहा था किन्तु उनकी यह इच्छा कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी क्योंकि सरकार का इस स्थिति के प्रति दूसरा ही दृष्टिकोण था और यह विश्वास करके कि कांग्रेस एक सर्वव्यापी हिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ करने की चिन्ता में है उसने दृढ़ तथा शीघ्रतापूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया। इसीलिये रात्रि के सन्नाटे में महात्मा जी तथा कार्यसमिति के अन्य सदस्यों को बन्दी कर किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया गया। प्रान्तीय तथा स्थानीय नेताओं की देश भर में गिरफ्तारी की गई। सरकार के इस दुर्व्यवहार से सारे देश में हिंसा की अग्नि भभक उठी। जनता लोकप्रिय नेताओं के बन्दी किये जाने पर क्रोध से उन्मत्त हो उठी। उसने रेल, तार तथा राजकीय भवनों आदि को नष्ट भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि कांग्रेस के सविनय अवज्ञा कार्यक्रम में इसके लिये कोई स्थान नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि जनता में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये एक आन्तरिक उत्साह उमड़ रहा था और वे परतन्त्रता का अन्त करने के लिए व्याकुल हो उठी। सरकार का दमन-चक्र तीव्रगति से चलने लगा। जनता के पास न हथियार थे और न नेताओं का पथ प्रदर्शन। अन्तु व जनता सरकार के सामने न टिक सकी। इस आन्दोलन में लगभग समस्त राजनीतिक दलों और देश-भक्तों ने भाग लिया, किन्तु साम्यवादी दल (Communist Party) और मुस्लिम लीग ने विद्रोह का विरोध ही नहीं किया वरन् सरकार को पूर्णरूपेण सहायता प्रदान की।

आन्दोलन का दमन (Surpression of the Movement)—सरकार की दमन नीति के कारण आन्दोलन कुचल दिया गया था। महात्मा गांधी ने २१ दिन का का उपवास अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने तथा हिंसात्मक नीति को प्रश्रय देने के आक्षेप का विरोध करने के लिए किया। वे अपनी इस कड़ी परीक्षा में सफल हो गये यद्यपि कई बार उनकी दशा चिन्ताजनक हो गई थी। सरकार की नीति के विरोध में श्री होमी मोदी श्री अणे तथा श्री सरकार ने वाइसराय की कार्यपालिका से त्याग पत्र दिया। इसी समय महात्मा गांधी के सर्वप्रिय सहयोगी महादेव देसाई तथा गांधी जी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गांधी का स्वर्गवास हुआ। गांधी जी भी जेल में बीमार पड़ गये और मई १९४४ में अस्वस्थता के कारण छोड़ दिये गये।

जेल से मुक्त होकर गांधी जी ने राजनैतिक समस्या का निराकरण करने का प्रयत्न किया किन्तु सरकार की दृढ़ नीति के कारण परिस्थिति पूर्ववत् ही रही और उसमें किसी प्रकार का सुधार न हो पाया। इसी बीच में श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना तथा उनकी मुस्लिम लीग से पाकिस्तान के प्रश्न पर समझौता करने का प्रयास किया, किन्तु उनको अपने प्रयास में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन (Wavell Plan and Simla Conference)

१९४५ की गर्मियों में भारत के वाइसराय लार्ड वेवल लन्दन गये और उन्होंने

ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों से खूब विचार-विमर्श किया। वहाँ से वापिस आने पर उन्होंने देश की राजनीतिक विकट परिस्थिति का अन्त करने तथा उसे स्वराज्य की ओर बढ़ाने के उद्देश्य से भारतीय नेताओं के सामने सम्राट की सरकार की योजना रखी, किन्तु मुस्लिम लीग की हठधर्मी के कारण शिमला सम्मेलन सफल नहीं हो सका। मुस्लिम लीग राष्ट्रीय मुसलमान को कार्यकारिणी में स्थान देने के पक्ष में नहीं थी जब कि कांग्रेस दो राष्ट्रीय मुसलमानों को कार्यकारिणी में सम्मिलित करने के पक्ष में थी।

शिमला सम्मेलन के उपरान्त
(After Simla Conference)

देश की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने तथा राजनीतिक समस्या के निराकरण करने के उपायों को समझने के लिये पहली तथा दूसरी अगस्त १६४५ को लार्ड वेवल ने प्रान्तीय गवर्नरों की एक सभा का आयोजन किया। इसी बीच इंगलैंड में साधारण निर्वाचन हुआ जिसमें मजदूर-दल विजयी हुआ। श्री चर्चिल के स्थान पर श्री एटली ने प्रधान मन्त्री के पद को ग्रहण किया। सितम्बर १६४५ में भारत में भी निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में अनेक अड़चनों के होते हुए भी कांग्रेस ने भाग लिया।

निर्वाचन का परिणाम (Results of the Election)—कांग्रेस ने अपने घोषणा-पत्र में ८ अगस्त १६४२ के प्रसिद्ध प्रस्ताव को इन शब्दों में केन्द्र बिन्दु बना दिया :—

"अपनी ८ अगस्त १६४२ की माँग पर कांग्रेस आज भी आरूढ़ है। इसी माँग तथा युद्ध-घोषणा के आधार पर कांग्रेस आगामी निर्वाचन का सामना कर रही है।"

कांग्रेस ने इस १६४५ के साधारण निर्वाचन में साधारण क्षेत्रों (General Constituencies) में पूर्ण विजय प्राप्त की। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों में इसके बहुत से उम्मीदवार निर्विरोध निर्वाचित हो गए और जहाँ कहीं भी उनका विरोध किया गया वहाँ विरोधियों को परास्त होना पड़ा। मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रों में दूसरी ही दशा रही। हिन्दुओं की अधिक संख्या वाले प्रांतों में उत्तर-प्रदेश तथा कुछ सीमा तक आसाम के अतिरिक्त कांग्रेस द्वारा खड़े किये हुये सभी मुसलमान उम्मीदवारों को पराजित होना पड़ा। मुसलमानों की अधिक संख्या वाले चार प्रान्तों में से दो प्रान्त पंजाब तथा बंगाल में मुस्लिम लीग को महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। सिंध में लीग को मुसलमानों की सीटों में से अधिकांश सीटें मिलीं और कांग्रेस का पक्ष लेने वाले दलों का वहाँ बहुमत रहा। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में कांग्रेस को बहु-संख्यक स्थान प्राप्त हुये यद्यपि १६३७ के निर्वाचन की अपेक्षा लीग को इस बार अधिक सफलता मिली। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि निर्वाचन में कांग्रेस तथा लीग दोनों ही देश के शक्तिशाली राजनीतिक दल सिद्ध हुये। कांग्रेस इस बात का दावा कर सकती थी कि उसके 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को जनता का समर्थन प्राप्त

था क्योंकि उसको १ करोड़ ६० लाख मत प्राप्त हुये। उसी की तरह मुस्लिम लीग भी यह कह सकती थी कि भारतीय मुसलमानों के बहुसंख्यक भाग का उसमें विश्वास था। क्योंकि उसको १५ लाख वोट प्राप्त हुये जो मुसलमान वोटों की पूर्ण संख्या के ७५ प्रतिशत थे। राष्ट्रीय तथा अन्य गैर लीगी मुसलमानों को ५ लाख या कुल वोटों के २५ प्रतिशत से कुछ अधिक वोट मिले। फिर भी उनको मुस्लिम सीटों की आनुपातिक (Proportional) संख्या न मिली। अप्रैल १९४६ में जब मन्त्रि-मंडल बने तो हिन्दुओं के बहुसंख्यक वाले समस्त प्रान्तों तथा पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में कांग्रेस को शक्ति मिली और मुस्लिम लीग ने बंगाल तथा सिंध में सरकार का निर्माण किया। पंजाब में कांग्रेस, अकालियों तथा 'यूनियनिस्टों' (Unionists) ने संयुक्त मन्त्री-मण्डल का निर्माण किया और इस प्रकार अकेले सबसे बड़ी पार्टी वाली मुस्लिम लीग से इनकी सम्मिलित संख्या बहुत बढ़ गई।

एटली की घोषणा (*Atlee's Declaration*)—कांग्रेस भारतीय राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रही थी क्योंकि उसको यह आशा थी कि इंगलैंड की सरकार १९४५ को वाइसराय की सितम्बर घोषणा के अनुसार कोई निश्चित कदम अवश्य उठायेगी। इसी बीच १५ मार्च १९४६ को इंगलैंड के प्रधान मन्त्री एटली ने हाउस आफ कॉमन्स में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जिसमें उन्होंने भारत के स्वातन्त्र्य-अधिकार को स्वीकृत किया और अपनी सरकार का यह निश्चय भी प्रगट किया कि वह भारतीयों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में पूर्ण सहायक होगी और बहुसंख्यक लोगों की उन्नति का ध्यान रखकर वह अल्पसंख्यक लोगों को निषेधाधिकार (Veto-Power) प्रदान न करेगी।

कैबिनेट मिशन (Cabinet Mission)—इंगलैंड के प्रधान मन्त्री श्री एटली ने यह भी घोषणा की थी कि ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल के तीन उच्च सदस्यों का—भारत-मन्त्री लार्ड पेथिक लारेंस, व्यापार बोर्ड के प्रेसिडेंट सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा फर्स्ट ऑफ दी ऐडमिरेलटी श्री ए० वी० अलेग्जैण्डर—एक दल भारतीय जनता के नेताओं से भारत के विधान के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने भारत जायेगा। इन नेताओं ने भारत आकर विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं से भेंट की। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता न होने के कारण मिशन के सदस्यों ने भारतीय नेताओं के सम्मुख एक योजना रखी। उनकी योजना को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों ने अस्वीकार किया।

राष्ट्रीय सरकार की स्थापना
(Establishment of National Government)

लगभग चार महीने तक भारत में रहने के उपरांत कैबिनेट मिशन के सदस्य इंगलैंड वापिस चले गये। उनको अपने प्रयत्नों में कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। कांग्रेस ने १६ मई की लम्बी योजना (Long Tern Plan) को स्वीकार किया, लेकिन १६ जून की तत्कालीन योजना (Short Term Plan) को अस्वीकार किया। उसने संविधान-सभा (Constituent Assembly) में सम्मिलित होने का

निश्चय किया किन्तु अंतरिम सरकार (Interium Government) में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया क्योंकि लार्ड वेविल की शर्तें उसकी राय के अनुसार हिन्दुओं तथा अल्प सख्यकों के प्रति अन्यायपूर्ण थी। मुस्लिम लीग ने इस बात का बडा प्रयत्न किया कि कांग्रेस की अनुपस्थिति मे ही सरकार की स्थापना हो जाये किन्तु वाइसराय इस बात से सहमत नही हुआ। २२ जून को वाइसराय ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अध्यक्षों को एक योजना भेजी। लीग ने अंतरिम-सरकार मे भाग लेना अस्वीकार किया और दूसरी ओर कांग्रेस ने योजनायें स्वीकार कीं और अन्तरिम सरकार मे सम्मिलित होने का निश्चय किया। २४ अगस्त १९४६ को वाइसराय ने अन्तरिम सरकार के निर्माण का निश्चय किया जिसमे लीग सम्मिलित नहीं हुई। उसने १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' (Direct Action Day) मनाना निश्चय किया। उसकी यह कार्यवाही कांग्रेस के समान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न होकर हिन्दुओं के विरुद्ध थी। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच खुल्लम खुला लडाई प्रारम्भ कर दी। अगस्त १९४६ में कलकत्ते मे चार दिन तक होने वाला भयंकर रक्तपात, उसी वर्ष के अक्टूबर मे नोआखली के हिन्दुओं पर होने वाले असाधारण अमानुषिक कार्य बिहार के हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों से भयंकर बदला लेने तथा पंजाब मे देश के विभाजन से पूर्व और बाद मे होने वाले अत्याचारों के लिये यही प्रत्यक्ष कार्यवाही उत्तरदायी है।

अन्तरिम सरकार में लीग का पदार्पण

(Inclusion of League in the Interium Cabinet)

लार्ड वेविल मुस्लिम लीग की ओर से निराश नहीं हुए। उन्होंने लीग को उसका प्रस्ताव वापिस लेने, अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने तथा संविधान सभा मे पूरा भाग लेने के लिए प्रयत्न जारी रखा। उनको अपने उद्देश्य मे आंशिक सफलता मिली। लीग ने सरकार मे सम्मिलित होने का निश्चय किया लेकिन उसने अपने उस प्रस्ताव को वापिस नहीं लिया जिसमें केबिनेट मिशन की लम्बी योजना अस्वीकृत की थी। २६ अक्टूबर १९४६ को बनने वाली नई अन्तरिम सरकार मे लीग के पाँच सदस्य सम्मिलित हुये किन्तु मुस्लिम लीग के पदार्पण करने का कारण साम्प्रदायिक भावना को उत्साहित करना तथा कांग्रेस द्वारा किये गये कार्य मे रोड़ा अटकाना था।

लन्दन सम्मेलन

(London Conference)

इन परिस्थितियों मे लार्ड वेविल ने केबिनेट से विचार-विमर्श किया जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री ने वाइसराय, पंडित नेहरू, सरदार पटेल, श्री जिन्ना तथा श्री लियाकतअली खां को लंदन मे एक सम्मेलन के लिये आमन्त्रित किया कांग्रेस-नेता लंदन जाने के लिए प्रस्तुत नहीं थे क्योंकि वे जानते थे कि सम्मेलन उन्हीं बातों पर विचार होगा जिन पर केबिनेट मिशन के आने से लेकर अब तक हु था और इन बातों मे कोई परिवर्तन करने का अर्थ होगा लीग को कट्टरता, उस

एँड तथा हिंसात्मक प्रवृत्ति के समक्ष सिर झुकाना। कुछ ह[illegible]
सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया; किन्तु लंदन सम्मे[illegible]
कोई समझौता नहीं कर सका, फिर भी उसने भी जिन्ना [illegible]

[illegible] आन्दोलन पर कांग्रेस की प्रतिक्रिया—कांग्रेस भारतीय कांग्रेस कमेटी ने ६ दिसम्बर की घोषणा पर विचार किया कि [illegible] उसके के कारण जो कठिनाई उत्पन्न करने के उद्देश्य से कांग्रेस [illegible] सरकार के वर्गों के अनुसार अनुसार करने की राय देती है, लेकिन यह बात स्पष्ट ध्यान किसी प्रान्त के साथ जबरदस्ती न होगी और न पंजाब में सि[illegible] की जायेगी।

संविधान-सभा
(Constituent Assembly)

संविधान सभा की प्रथम बैठक ९ दिसम्बर १९४६ को हु[illegible] लीग की बैठक भाग लेने की इजाजत स्वीकार नहीं की क्योंकि [illegible] पूरा करने के लिए बहाना जाता था। लीग के [illegible] स्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन होने तक डाक्टर सच्चिदानन्द सि[illegible] चुने गये। संविधान-सभा ने भारत के लिए नया संविधान ब[illegible] किया। यहाँ यह कहना ऐसा अनुपयुक्त न होगा कि देश का [illegible] करने वाले पंडित नेहरू, सरदार पटेल, [illegible], [illegible] तथा [illegible] राजेन्द्र प्रसाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] था।

२० फरवरी की घोषणा
(Declaration of February 20)

[illegible]

३ जून की घोषणा
(Declaration of June 3)

[illegible] के भारत के [illegible] [illegible] सरकार के [illegible] [illegible] भारत [illegible] और ३ जून को उन्होंने एक घोषणा [illegible] को सत्ता हस्तान्तरित करने का निश्चय किया [illegible]

बड़ी महत्वपूर्ण थी। इसके अनुसार भारत का दो भागों में विभाजन निश्चय हो गया परिस्थितियों से विवश होकर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को कटा-फटा पाकिस्तान (Truncated Pakistan) प्राप्त करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम
(Indian Independence Act)

भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक ब्रिटिश संसद ने सर्व सम्मति तथा बड़ी शीघ्रता से पास किया। यह शीघ्रता समस्त अंग्रेजी इतिहास में बे-मिसाल है। इसी अधिनियम के अनुसार १५ अगस्त १९४७ को रात के बारह बजे भारत तथा पाकिस्तान दो स्वतन्त्र उपनिवेशों का निर्माण हुआ।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में साम्प्रदायिक दंगे हुये और पाकिस्तान में निवास करने वाले हिन्दुओं को अपना घर-बार त्यागकर भारत की भूमि में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। संविधान-सभा ने संविधान बनाने का कार्य २६ जनवरी १९४९ को समाप्त किया जो २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ। इसके अनुसार भारत एक सार्वभौम स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित किया गया। देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद इसके प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुये।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) १९२० ई० से भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का क्रमानुसार उल्लेख कीजिये। संक्षेप में बताइए कि महात्मा गाधी और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस का स्वराज्य प्राप्ति में क्या भाग था। (१९५१)

(२) राष्ट्र के निर्माण में महात्मा गाधी का क्या भाग था ? (१९५२)

(३) १९४७ में भारत का विभाजन किन परिस्थितियों के कारण हुआ ? (१९५३)

(४) महात्मा गाधी ने कांग्रेस की नीति और कार्यप्रणाली में क्या-क्या परिवर्तन किये ? (१९५७)

(५) सन् १९४२ के महात्मा गाँधी द्वारा संस्थापित 'भारत छोड़ो" आंदोलन के कारणों का वर्णन कीजिये और उसके परिणामों का उल्लेख कीजिये। (१९५९)

(६) सन् १९४० से १९४७ तक की हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति का वर्णन कीजिये। महात्मा गांधी ने उसमें क्या भाग लिया था ? (१९६०)

(७) असहयोग आन्दोलन के कारणों का वर्णन करो और भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में उसके महत्व का उल्लेख कीजिए ? (१९६१)

(८) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर एक टिप्पणी लिखो। (१९६२)

मध्य प्रदेश—

(१) १८५७ से १९४७ तक भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति में सहायक विभिन्न बातों को बतलाइए। (१९५२)

(२) भारत छोड़ो का आन्दोलन पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५३)

कर ४ प्रतिशत निश्चित किया गया। नमक कर (Salt tax) में भी वृद्धि की गई।

इन सुधारों के कारण सरकार की आय में बड़ी वृद्धि हुई। इसके उपरान्त उसने सरकारी व्यय को कम करने की व्यवस्था की। उसने सैनिक तथा असैनिक (Civil) या नागरिक दोनों विभागों के व्यय में पर्याप्त कमी की। इसके द्वारा सरकार की आर्थिक स्थिति बड़ी सन्तोषजनक हो गई।

(ग) अन्य सुधार (Other Reforms)—लार्ड केनिंग ने अन्य सुधारों की ओर भी ध्यान दिया जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(i) शिक्षा का प्रचार (Propagation of education)—उसने शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार करने का प्रयत्न किया किन्तु धनाभाव के कारण उसके प्रयत्नों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८५७ ई० में लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किये गये।

(ii) हाई कोर्ट एक्ट (High Court Act)—उसके समय में हाई कोर्ट एक्ट (High Court Act) पास किया गया जिसके अनुसार बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हाई कोर्ट की स्थापना की गई। सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) और सदर अदालतों का अन्त कर दिया गया।

(iii) किसानों के अधिकारों को सुरक्षित करना (To Protect the rights of the farmers)—उन किसानों के अधिकारों की मारसी कर दिया गया जो बारह वर्ष से किसी भूमि को जोत रहे थे।

(iv) जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों को सीमित करना (To restrict the rights of the peasants to enhance land-tax)—जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों को सीमित कर दिया गया।

(v) रेलवे लाइनों का विस्तार (Increase of Railway lines)—लार्ड केनिंग के समय में ई० आई० आर० (E. I. R.) और जी० आई० पी० (G. I. P.) रेलवे लाइनों का विस्तार किया गया।

(vi) ग्रांड-ट्रंक रोड का पुनरुद्धार (Rebuilding of Grand Trunk Road)—उसके समय में ग्राड-ट्रक रोड का पुनरुद्धार किया गया।

(vii) पुलिस विभाग का सगठन (Organisation of police Department)—सन् १८६१ ई० के एक एक्ट द्वारा पुलिस विभाग का सगठन किया गया। प्रत्येक प्रान्त में एक पुलिस-विभाग की स्थापना एक प्रान्तीय इन्सपेक्टर-जनरल के निरीक्षण में की गई। प्रत्येक जिले में एक पुलिस अधीक्षक (Police Superintendent) की नियुक्ति की गई।

(२) लार्ड मियो
(Lord Mayo)

लार्ड मियो ने वित्त सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया क्योंकि उसको सरकार की आर्थिक व्यवस्था को उन्नत करना था। उसके मुख्य सुधार निम्नलिखित हैं—

(क) नमक कर में वृद्धि (Increase in Salt tax)—उन प्रान्तो में नमक कर बढ़ाया गया जहाँ अब तक वह बहुत थोड़ा था।

(ख) आय कर की दर में वृद्धि (Increase in the rate of Income tax)—इसने आय कर मे वृद्धि की। पहले आय कर की दर १ प्रतिशत थी। पहले उसने २½ प्रतिशत और बाद मे ३ प्रतिशत कर दी।

(ग) प्रान्तों को निश्चित वार्षिक अनुदान देना (To give definit grants to the Provinces)—प्रान्तों को निश्चित वार्षिक अनुदान (Grant) देने का निश्चय किया गया। यह राशि प्रत्येक पाच वर्ष बाद घटाई-बढ़ाई जा सकती थी। इसके साथ-साथ उनको इस धन-राशि को कुछ निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत व्यय करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वे एक विभाग मे से बचाया हुआ धन दूसरे विभागों मे लाभपूर्ण ढङ्ग से व्यय कर सकते थे।

इन सुधारों का लाभ यह हुआ कि लार्ड लारेंस (Lord Lawrence) के समय का घाटा अगले चार वर्षों मे बचत मे परिवर्तित हो गया।

(घ) जनगणना (Census)—लार्ड मेयो के समय मे भारतीय जनता की प्रथम जनगणना (Census) की व्यवस्था की गई।

(ङ) कृषि और व्यापार विभाग की स्थापना (Establishment of agriclture and Commerce Department)—उसने कृषि और व्यापार की उन्नति के लिये कृषि और व्यापार विभाग की स्थापना की।

(३) लार्ड लिटन
(Lord Lytton)

लार्ड लिटन का शासन-काल महान् सुधारों के कारण प्रसिद्ध है। उसके शासन-काल में निम्न प्रमुख सुधार हुए:—

(क) नमक-कर (Salt tax)—नमक-कर आय का एक प्रमुख साधन था। यह विभिन्न प्रान्तों मे विभिन्न दरों मे लागू था। इस कारण नमक का आयात चोरी द्वारा किया जाता था। इसको रोकने के लिये कटक से दक्षिण मे महानदी तक २५०० मील की दूरी में चुङ्गी की चौकियाँ स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त उसने उसके दर मे इतनी कमी कर दी कि एक प्रान्त से नमक दूसरे प्रान्त मे ले जाने मे कोई लाभ नहीं रहा। उसने समस्त चुङ्गी चौकियों का अन्त कर दिया।

(ख) मुक्त व्यापार की ओर प्रगति (Progress towards free trade)—१८७८ ई० मे टैरिफ मे से देश के अन्दर की चुङ्गियों पर लगने वाला चीनी शुल्क हटा दिया गया और २१ वस्तुओं पर से आयात शुल्क भी समाप्त कर दिया गया। सन् १८७९ ई० मे मोटे घटिया कपड़े पर से आयात शुल्क समाप्त कर दिया गया। इसके लिए वाइसराय को अपनी कौंसिल के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने के लिए अपने वैधानिक अधिकार को प्रयोग मे लाना पड़ा।

(ग) कृषि की उन्नति (*Development of Agriculture*)—कृषि की उन्नति

के लिये १८७९ ई० में लार्ड लिटन की सरकार ने दक्षिण-भारत एग्रीकल्चरल रिलीफ एक्ट (South India Agricultural Relief Act) पास किया जिसके द्वारा साहूकार के किसान की भूमि पर ऋणार्थ रोक के अधिकार की समाप्ति हुई।

(घ) असैनिक सेवा का नियम (Law of Civil Service)—सन् १८७९ ई० में *असैनिक सेवा का नियम बनाया गया।*

(ङ) वर्नाक्यूलर प्रेस-एक्ट (Vernacular Press Act)—लार्ड लिटन की सरकार प्रेस की शक्ति की उन्नति से घबरा गई और १३ मार्च १८७८ ई० को उसने भारत-सचिव के पास तार भेजकर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाने की अनुमति माँगी। दूसरे ही दिन अनुमति प्राप्त हो गई और उसके प्राप्त होने के दो ही घन्टों के अन्दर वर्नाक्यूलर प्रेस-एक्ट (Vernac lar Press Act) पास हो गया। इस एक्ट के द्वारा मजिस्ट्रेट और कलक्टर को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि किसी भी पत्र-सम्पादक से अंग्रेजी में यह शर्तनामा लिखवा ले कि वह अपने पत्र में कोई ऐसी बात नहीं लिखेगा जिससे सरकार के विरुद्ध उत्तेजना अथवा असन्तोष और विभिन्न जाति तथा धर्मों के लोगों में घृणा का प्रचार हो, अन्यथा उसके लिये वह सरकारी अधिकारियों के समक्ष प्रमाण उपस्थित करेगा। इस एक्ट के द्वारा समस्त देश में और विशेषतः बंगाल में ' रोष उत्पन्न हो गया। इसके विरोध में कलकत्ते में एक विशाल सभा हुई। अन्त में बाध्य होकर लार्ड लिटन के उत्तराधिकारी लार्ड रिपन ने इस एक्ट को चार वर्ष उपरान्त रद्द कर दिया।

(४) लार्ड रिपन
(Lord Rippon)

लार्ड रिपन उदार विचारों का था। वह लार्ड विलियम बैंटिक के समान राजनीतिक और सामाजिक सुधारों में अभिरुचि रखता था। 'वह शान्ति, हस्तक्षेप न करने और स्वायत्त शासन के गुणों में विश्वास रखता था और ग्लैडस्टन युग का सच्चा उदारपंथी था।' वह भारत-सरकार को और अधिक उदार बनाने की दिशा में कार्य करने का निश्चय कर चुका था। उसके समस्त सुधारों को निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) *आयात-निर्यात कर और राजस्व (Export and Import ax and* Revenue) —उसने आयात-निर्यात कर और राजस्व के सम्बन्ध में निम्न महत्वपूर्ण सुधार किये—

(i) आयात शुल्क की समाप्ति—सन् १८८२ ई० में टैरिफ में से मूल्य के अनुसार पाँच प्रतिशत आयात-शुल्क समाप्त कर दिया गया। अब केवल नमक, शराब तथा गोला-बारूद और शस्त्रों पर शुल्क रह गया।

(ii) नमक कर कम करना—सन् १८८२ ई० में समस्त भारत में नमक-कर कम कर दिया गया।

(iii) लगान के स्थायी बन्दोबस्त का अन्त—सन् १८८३ ई० में लार्ड रिपन ने लगान के स्थायी बन्दोबस्त चालू करने की योजना का अन्त कर दिया।

(ख) शासन का विकेन्द्रीकरण और वित्त नियन्त्रण (*Decentralization* of Administration and Financial Control)—इस शीर्षक के अन्तर्गत जितने सुधार कार्यान्वित किये गये वे विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनमे मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(i) स्थानीय स्वशासन की प्रगति—यद्यपि स्थानीय स्वशासन की ओर कदम पहले ही उठाया जा चुका था, किन्तु १८८२ ई० मे लार्ड रिपन की सरकार ने इस ओर जो पग उठाया वह विशिष्ट महत्वपूर्ण है। अब से गावों की ओर भी ध्यान दिया गया। उसके एक प्रस्ताव ने नगरपालिकाओ (Municipalities) का सम्पूर्ण रूप बदल दिया। उसने ग्राम पचायतो तथा जिला बोर्डों की ओर भी ध्यान दिया। इनके द्वारा अपने ही कार्यों मे लोगों को अधिक तथा वास्तविक प्रबन्ध और देख-भाल का अवसर दिया गया।

(ग) समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता (Freedom of the Press)—लार्ड रिपन ने लार्ड लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को समाप्त कर सब समाचार-पत्रों को सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में समान स्वतन्त्रता प्रदान की।

(घ) शिक्षा (Education)—लार्ड रिपन ने शिक्षा के प्रसार के लिये भी प्रयत्न किया। सन् १८८२ ई० मे सर डब्ल्यू डब्ल्यू हटर (Sir W W Hunter) की अध्यक्षता मे २० सदस्यो का एक शिक्षा-आयोग (Education Commission) की नियुक्ति की गई, जो उसके अध्यक्ष के नाम पर ही हटर कमीशन के नाम से विख्यात हुआ। इसकी नियुक्ति का उद्देश्य शिक्षा सम्बन्धी दोषों का अन्त करना तथा शिक्षा-पद्धति मे सुधार करना था। इसने सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षा को लोकल बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियों के सुपुर्द किया जाये और शिक्षण सस्थाओं पर से सरकारी नियन्त्रण का अन्त किया जाये। उन्होने स्त्रियों तथा दलित वर्ग की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करने की भी सिफारिश की। इस प्रकार लार्ड रिपन के शासन-काल मे शिक्षा के क्षेत्र मे विशेष प्रगति हुई।

(५) लार्ड कर्जन
(Lord Curzon)

लार्ड कर्जन का शासन-काल भारतीय शासन-सुधारों के इतिहास मे अपना विशेष स्थान रखता है। शासन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था जिसमें उसने सुधार करने की आवश्यकता का अनुभव न किया हो। उसने अनेक विभागों का सूक्ष्म परीक्षण किया जिसके लिए उसने एक कमेटी की नियुक्ति की, बाद मे उसकी रिपोर्ट की सिफारिशों को ध्यान मे रखकर नियम बनाये गये। उसके प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं:—

(१) कृषि की अवस्था को उन्नत करना (To improve the condition of Agriculture)—सर्वप्रथम लार्ड कर्जन का ध्यान कृषि की अवस्था को उन्नत करने की ओर आकर्षित हुआ। अब तक सरकार का ध्यान केवल लगान तथा मालगुजारी की ओर था। उसने कृषि को उन्नत करने के लिये कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया था। इस सम्बन्ध मे उसके मुख्य सुधार इस प्रकार हैं:—

(i) सस्पेंशन और रेमीशन प्रस्ताव—उसने सस्पेंशन और रेमीशन प्रस्ताव (Suspension and Remission Resolution) पास किया। इसके अनुसार जिलाधीशों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वे अकाल और अनावृष्टि के समय लगान को माफी कर सकते थे।

(ii) पंजाब भूमि हस्तांतरण अधिनियम—सन् १६०० ई० मे लार्ड कर्जन ने पंजाब भूमि हस्तांतरण अधिनियम (Punjab Land Alienation Act) पास किया। इसके अनुसार किसान को उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई। भूमि को डिग्री की वसूली के लिये बेचा नही जा सकता था। इससे किसान, साहूकारों द्वारा बेदखली किये जाने से बच गये। वह सरकार की अनुमति प्राप्त किये बिना २० वर्ष से अधिक उनकी भूमि को बन्धक नहीं रख सकता था।

(iii) कृषि बैंक तथा सहकारी समितियों की स्थापना—किसानों की आर्थिक अवस्था शोचनीय होने के कारण उनको गाव तथा शहर के महाजनों से अधिक व्याज पर धन लेना पड़ता था जिसका भुगतान करना उनके लिए असम्भव था, लार्ड कर्जन ने उनकी आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिये कृषि बैंक (Agricultural Banks) और सहकारी समितियो (Co-operative Societies) की स्थापना की और उसके लिए १६०४ ई० मे एक अधिनियम पास किया। किसान इनसे कम सूद पर ऋण ले सकता था।

(iv) अन्वेषण कृषि संस्था—लार्ड कर्जन ने पूसा मे एक कृषि अन्वेषण संस्था (Agricultural Research Institute) की स्थापना की जिसके द्वारा वैज्ञानिक ढग से खेती का कार्य आरम्भ किया जा सके।

(v) सिंचाई की व्यवस्था को उन्नत करना—सिंचाई की व्यवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय से सन् १६०१ ई० मे लार्ड कर्जन ने एक कमीशन नियुक्त किया। उसकी रिपोर्ट के आधार पर एक विस्तृत योजना का निर्माण किया गया जिसमे २० वर्षों के लिये ४४ करोड़ रुपये का व्यय किया जाना था। नदियों से नहरें निकालने का कार्य आरम्भ होने लगा।

(ख) प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा (Protection of old Historical Buildings)—लार्ड कर्जन न प्राचीन ऐतिहासिक स्मारको तथा चिह्नो की रक्षा के लिये एक नये विभाग का निर्माण किया जिसका नाम पुरातत्व विभाग (Archeolgical Department) रखा गया। इस विभाग ने सराहनीय कार्य कर भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास को जीवित व जागृत रखने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। इस विभाग की ओर से बहुत सी घटनाओ व शिलालेखो की खोज हुई है जिसने ऐतिहासिक ज्ञान की वृद्धि की है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण खोज सिन्धु घाटी की सभ्यता है।

(ग) रेलवे-विभाग (Establishment of Railway Department)—पब्लिक वर्क्स विभाग (Public Works Department) के नियन्त्रण मे रेलवे का कार्य सम्पन्न किया जाता था। इस व्यवस्था के अत्यन्त दोषपूर्ण होने के कारण सन्

१९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने रेलवे का प्रबन्ध इस विभाग से लेकर तीन सदस्यों का एक रेलवे बोर्ड बनाया।

(घ) शासन का केन्द्रीकरण (Centralization of Administration)—लार्ड कर्जन शासन के केन्द्रीकरण मे विश्वास करता था। वह प्रान्तीय गवर्नरों के अधिकारों को सीमित करना चाहता था किन्तु उसको इस दिशा मे सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु फिर भी उसने अन्य विभागों की अधिकांश सत्ता पर केन्द्र का नियन्त्रण स्थापित किया।

(ङ) पुलिस (Police)—सन् १९०२ ई० में इस विभाग की जाच के लिये सर एन्ड्रयू फ्रेजर (Sir Andrew Frazer) की अध्यक्षता में एक कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने इस विभाग की जोरदार निन्दा की, "इसमें कार्य-कुशलता का सर्वथा अभाव है, शिक्षण और संगठन दोषपूर्ण है और यह अपूर्ण रूप से निरीक्षित और साधारणतया दमन और भ्रष्टाचारपूर्ण ख्याल किया जाता है।" सन् १९०५ ई० में इस विभाग मे सुधार करने आरम्भ किये गये, किन्तु फिर भी वह दोषपूर्ण ही रहा।

(च) शिक्षा (Education)—शिक्षा के क्षेत्र में भी लार्ड कर्जन ने केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया। वह देश को समस्त शिक्षा की सरकारी नियंत्रण के अन्तर्गत लाना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने एक योजना का निर्माण किया और उस पर विचार-विमर्श करने के लिये सन् १९०१ ई० में शिमला में एक सम्मेलन का आयोजन किया। सन् १९०२ ई० में उसने एक यूनिवर्सिटी कमीशन (University Commission) नियुक्त किया जिसमे केवल एक भारतीय (सैयद हुसैन बिलग्रामी) थे और शेष सदस्य अंग्रेज थे। बाद मे जनता के विरोध पर एक अन्य भारतीय गुरुदास बनर्जी की नियुक्ति की गई। कमीशन की रिपोर्ट का प्रकाशन १९०२ ई० मे हुआ। इसके आधार पर १९०४ ई० में एक यूनिवर्सिटी एक्ट (University Act) पास किया गया, यद्यपि जनता की ओर से रिपोर्ट की कटु आलोचना की गई। इस एक्ट के अनुसार विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता को बहुत कम कर दिया गया। सीनेट तथा सिंडिकेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी गई और उनके अधिकार सीमित कर दिये गये। कालिजों को विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत सम्मिलित करने के नियम कठोर कर दिये गए। इसका विशेष विरोध किया गया। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए २,३०,००० पौंड स्वीकृत किये गए। उसने अध्यापकों के वेतन मे वृद्धि की उसने। औद्योगिक तथा स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया।

(छ) स्थानीय संस्थायें (Local Bodies)—लार्ड कर्जन ने स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण अत्यधिक स्थापित करने का प्रयत्न किया। सन् १९०० ई० मे उसने कलकत्ता म्युनिसिपल अधिनियम (Calcutta Municipal Act) पास किया जिसके द्वारा कलकत्ते के निगम (Corporation) मे अंग्रेज सदस्यों का बहुमत हो गया और भारतीय सदस्यों का अल्पमत रह गया। समस्त कार्यों पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया। बंगाल मे इसका विरोध किया गया किन्तु लार्ड कर्जन ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

(ज) बंगाल-विच्छेद (Partition of Bengal)—सन् १६०५ ई० में लार्ड कर्जन ने बंगाल को पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में विभाजित किया। इसके विरोध में बंगाल की जनता ने अपना मत प्रकट किया किन्तु लार्ड कर्जन उससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारणतः यह विश्वास था कि प्रांत के विभाजन का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती राष्ट्रीयता का दमन तथा वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालना था। अन्त में सात वर्ष के उपरांत सन् १६१२ ई० में बंगाल विच्छेद का अन्त किया गया।

न्याय-सम्बन्धी सुधार
(Judiral Reforms)

पहले ही बतलाया जा चुका है कि कम्पनी को जब १७६५ ई० में बंगाल तथा बिहार की दीवानी प्राप्त हुई तो उसको न्याय की व्यवस्था करने का भी अधिकार मुगल-सम्राट की ओर से प्राप्त हुआ। वारेन हेस्टिंग्ज ने इस ओर विशेष ध्यान देकर कई महत्वपूर्ण सुधार किए। उसके समय में प्रत्येक जिले में एक दीवानी तथा न्यायालय की स्थापना की तथा कलकत्ते में एक दीवानी अदालत तथा सदर निजामत अदालत की स्थापना की। १७७३ ई० में बंगाल में एक प्रधान न्यायालय की स्थापना हुई। जब कार्नवालिस भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया तो उसने भी कई न्याय-सम्बन्धी सुधार किए। उसने अंग्रेजी राज्य को ३६ जिलों के स्थान पर २३ जिलों में विभाजित किया। उसने दीवानी के मुकदमों के न्याय के लिए श्रेणी-बद्ध न्यायालयों की व्यवस्था की। सदर दीवानी अदालत सबसे उच्च न्यायालय माना गया जिसमें गवर्नर जनरल और कलकत्ता कौंसिल के सदस्य, काजी-उल-कज्जात, दो मुफ्ती और दो पंडित होते थे। प्रान्तीय नगरों में प्रान्तीय न्यायालय थे जिनको मुख्यतः अपील सुनने का अधिकार था, किन्तु कुछ विषयों से सम्बन्धित प्राथमिक मुकदमे भी इनमें सुने जा सकते थे। प्रत्येक प्रान्तीय न्यायालय में तीन यूरोपियन जज होते थे। इनके अतिरिक्त एक काजी, एक मुफ्ती और एक पंडित भी सहायतार्थ होते थे। इनके अन्तर्गत जिले के न्यायालय थे और बड़े-बड़े नगरों में नगर-न्यायालय (City Courts थीं। यूरोपियन तथा ब्रिटिश प्रजा कलकत्ते में स्थित सुप्रीम कोर्ट के अन्तर्गत थी। कार्नवालिस ने सदर निजामत अदालत मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते में स्थापित की और वह फौजदारी न्याय की सबसे बड़ी अदालत थी। इसका सभापति गवर्नर-जनरल होता था। छोटे फौजदारी मुकदमों के निर्णय के लिए १७९३ ई० चार नए न्यायालय स्थापित किए गए, जिनको सरकिट कोर्ट (Circuit Courts) कहते थे। १८०१ में लार्ड वेलेजली ने अपील के दोनों न्यायालयों में कुछ परिवर्तन किए। अब गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्यों के अतिरिक्त तीन या उससे अधिक न्यायाधीश नियुक्त किए जाने लगे। लार्ड विलियम बैंटिक के समय में प्रांतीय न्यायालयों को भंग कर उनके कार्य न्यायाधीशों को प्रदान किए गये। कलक्टर को मजिस्ट्रेट के अधिकार प्रदान किए गए। अतः अब उसके अधिकार में शासन-सम्बन्धी तथा न्याय-सम्बन्धी दोनों अधिकार आ गए। उसके

समय मे विधि का संग्रह भी किया गया जिसमे बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों ने विशेष महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। १८३३ ई० मे गवर्नर-जनरल की कौंसिल मे एक विधि-सदस्य (Law Member) और सम्मिलित कर दिया गया। विधि के संग्रह के लिए एक आयोग का निर्माण किया गया जिसके प्रयत्नों से भारतीय-दण्ड-विधान (Indian Penal Code) निर्मित किया गया। १८६१ के आयोग द्वारा सिविल प्रोसिजर (Civil Procedure) तथा क्रिमिनल प्रोसीजर (Criminal Procedure) निर्मित हुआ। १८६१ ई० में इण्डियन हाई कोर्ट एक्ट पारित हुआ जिसके अनुसार प्रान्तों में हाई कोर्ट की स्थापना की गई और सुप्रीम कोर्ट तथा अदालत कोर्ट समाप्त कर दी गई। सन् १९११ ई० में दूसरा हाई कोर्ट एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा न्यायाधीशों की संख्या १३ से २० कर दी गई। १९३५ ई० के अधिनियम के द्वारा भारत मे एक संघ-न्यायालय (Federal Court) की स्थापना की गई जिसमे एक मुख्य न्यायाधीश और ६ से अधिक न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई। इस न्यायालय को विशेष अधिकार प्राप्त थे।

पुलिस और जेल-सम्बन्धी सुधार
(Reforms Regarding Police and Jails)

पुलिस व्यवस्था—अंग्रेजी राज्य मे शासन और सुव्यवस्था की स्थापना करने के लिए भी अंग्रेजों ने प्रबन्ध किया क्योंकि इसके अभाव मे व्यापार करना असम्भव था जो कम्पनी का मुख्य उद्देश्य था। वारेन हेस्टिंग्ज ने इस कार्य के लिए फौजदारों, थानेदारों की व्यवस्था की किन्तु वह अपने उद्देश्य मे सफल न हो सका। लार्ड कार्नवालिस ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उसने हेस्टिंग्ज द्वारा स्थापित व्यवस्था का अन्त किया। उसने जिलाधीशों को आदेश दिया कि वे अपने जिलों में थानों का निर्माण करें। प्रत्येक थाने मे एक दरोगा होगा जिसकी नियुक्ति जिलाधीश करेगा। जमींदारों को समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उनके समस्त अधिकार जिलाधीश को दे दिये गये। दरोगा को चुराई हुई वस्तु का पता लगाने पर उसके मूल्य का १० प्रतिशत कमीशन के रूप मे मिलेगा तथा डाकू का पता लगाने पर सरकार की ओर से १० रुपया दिया जायेगा। पुलिस के व्यय के लिए शहरों तथा बाजारों की दुकानों तथा गोदामों पर कुछ कर लगा दिया गया। बाद मे यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली सिद्ध हुई और इसके स्थान पर जमींदारों को पुनः १८०७ ई० मे अधिकार प्रदान किये गये किन्तु १८१४ ई० मे उनका फिर अन्त कर दिया गया। अन्त मे क्रान्ति के उपरान्त पुलिस-विभाग का पुनः संगठन किया गया। १८६० ई० मे एक आयोग का निर्माण किया गया जिसकी सिफारिशों के आधार पर १८६१ ई० मे पुलिस एक्ट (Police Act) पास हुआ। प्रत्येक प्रान्त मे एक इंसपेक्टर जनरल की नियुक्ति की गई और इस विभाग के समस्त कर्मचारी उसके अधीन कर दिये गये। १९०२ ई० में पुनः एक आयोग की स्थापना की गई जिसकी सिफारिशों पर पुलिस-विभाग का पुनः संगठन किया गया। १९०४ ई० में गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई। इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक जिले मे इंसपेक्टर-

जनरल होता था जिसके अधीन कई डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल होते थे जो अपने सर्कि के इन्चार्ज थे। प्रत्येक जिले में एक पुलिस अधीक्षक होता था और उसके अन्त जिले के समस्त थाने होते थे। प्रत्येक थाने में एक पुलिस इन्सपेक्टर, सब-इन्सपेक्ट तथा कुछ सिपाही होते थे। देहातों में चौकीदार होते थे।

जेल-व्यवस्था—आरम्भ में जेल-व्यवस्था अंग्रेजी अस्तव्यस्त, अव्य और अपराधों को रोकने में अंग्रेजी जेल-व्यवस्था के समान थी। इस अ लार्ड मेकाले का ध्यान आकर्षित हुआ जिसके कहने पर एक जेल-कमीशन नियुक्ति १८३६ में की गई। १८३८ ई० में उसने अपनी रिपोर्ट सरकार दी, किन्तु उसने जेल-व्यवस्था की उन्नति के विषय में कोई मुख्य सिफारिश न की। इसके उपरांत १८६६ और १८६७ में पुनः दो आयोग नियुक्त हुए। १८८८ ई में भारत सरकार की ओर से दो अफसर इस कार्य के लिए नियुक्त किये गये जिन्हो इस व्यवस्था को उन्नत करने की सिफारिशें कीं। फिर १८९२ ई० में एक कमीश की नियुक्ति की गई। इसके आधार पर १८९४ ई० में जेल अधिनियम पारित हु जिसके अनुसार जेल-व्यवस्था का संगठन किया गया। यह विषय प्रान्तों को दिय गया। १९१९ मे फिर एक कमेटी की नियुक्ति की गई जिसके अनुसार जेलों मे कु सुधार किये गये।

सैनिक शासन
(Military Administration)

वर्तमान भारतीय सेना का इतिहास १७४८ ई० से आरम्भ होता है जब मद्रास में भारतीय सिपाहियों के एक दस्ते का संगठन मेजर स्टिंगर लारेंस ने किया। उसके बाद सैनिकों की संख्या में वृद्धि हुई और उसका संगठन किया गया, किन्तु उनमे अनुशासन का पर्याप्त अभाव था। क्लाइव ने १७६५ ई० में तथा १७९६ और १८२४ में सेना का संगठन करने का प्रयत्न किया। बंगाल आर्मी (Bengal Army) के अन्तर्गत १८ रेजीमेंट थीं। १८५७ के उपरान्त इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। समस्त सेना को तीन भागों में विभाजित किया गया—(१) बंगाल की सेना, (२) मद्रास की सेना तथा (३) बम्बई की सेना। इसके उपरान्त एक कमीशन की नियुक्ति की गई जिसने देशी रेजीमेंटों के निर्माण करने की सिफारिश की। १८७६ ई० में सेना मे कुछ सुधार किये गये। १८९५ में चार कमांड की नियुक्ति हुई—(१) पंजाब (२) बंगाल (३) मद्रास और (४) बम्बई। १८९१ ई० मे तीनों प्रेसीडेन्सियों के स्टाफ-कोर (Staff Core) को सम्मिलित कर इण्डियन स्टाफ-कोर का निर्माण हुआ। सन् १९०३ ई० में इसका नाम भारतीय सेना रखा गया। लार्ड किचनर ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उसने नये सिरे से सेना का संगठन किया। उसने तीन कमांड उत्तरी-कमांड, पूर्वी कमांड तथा पश्चिमी कमांड बनाये। सन् १९०७ ई० मे कमांड के स्थान पर भारतीय सेना उत्तरी और दक्षिणी भागों में विभक्त की गई। प्रत्येक क्षेत्र का एक अध्यक्ष होता था। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त सेना के पुनर्संगठन की ओर ध्यान दिया गया। १९३० में चार कमांड

बनाये गये और प्रत्येक कमाड एक कम डिंग अफसर के अधिकार में कर दिया गया। सन् १६३८ ई० में पश्चिमी कमाड का अन्त कर दिया गया। इसी वर्ष चेटफील्ड कमेटी का निर्माण हुआ जिसने इसके सगठन के लिए विशेष सिफारिशें कीं। भारतीय सेना का प्रधान कमाडर-इन-चीफ होता था जो वाइसराय की कौंसिल का रक्षा सदस्य था। उसका समस्त भारतीय सीमा पर पूर्ण नियन्त्रण रहता था।

आर्थिक नीति
(Economic Policy)

सन् १८३३ ई० से भारत-सरकार की आर्थिक नीति का केन्द्रीकरण होना आरम्भ हुआ। १८३३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा प्रान्तीय सरकारों को कर लगाने तथा अपनी निजी इच्छा से धन के व्यय करने का अधिकार नहीं रहा जिसके परिणाम-स्वरूप प्रान्तीय सरकारों का सगठन बहुत कुछ सीमा तक केन्द्रीय सरकार के समान हो गया और वे केन्द्रीय सरकार पर अधिक निर्भर रहने लगीं। सन् १८७० ई० में लार्ड मेयो के शासन-काल में जेल, पुलिस, रजिस्ट्रेशन, शिक्षा, सड़कें आदि कुछ विभागों का व्यय प्रान्तीय सरकार के हाथ में दे दिया गया। उनको केन्द्रीय सरकार से प्रति वर्ष एक निश्चित धन-राशि प्राप्त हो जाती थी, जिसका व्यय विभिन्न भागों में करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को प्राप्त था। धन की कमी के कारण प्रान्तीय सरकार इस दिशा में विशेष कार्य करने में असमर्थ रही। सन् १८७७ ई० में भारत-सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में मालगुजारी, चुङ्गी आदि वसूल करने का कार्य दिया और उसके उपलक्ष में भारत-सरकार उनको कुछ धन ब्याज के रूप में दिया करती थी। सन् १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने एक नई व्यवस्था पाँच वर्ष के लिए प्रारम्भ की। जिसके अनुसार प्रान्तीय सरकारों को मिलने वाली आर्थिक व्यवस्था समस्त कर दी गई। समस्त आर्थिक साधन तीन श्रेणियों में साम्राज्य सम्बन्धी, प्रांतीय सम्बन्धी तथा उभयनिष्ट विभक्त कर दिये गये। साम्राज्य सम्बन्धी साधनों की आय केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होती थी। प्रान्तीय सम्बन्धी साधनों की आय प्रान्तों को प्राप्त होती थी। उभयनिष्ट श्रेणी के अन्तर्गत आने वाली समस्त साधनों द्वारा आय दोनों सरकारों में विभक्त कर दी जाती थी। प्रान्तीय सरकार को मालगुजारी का एक अंश भी दिया गया।

नौकरियों का भारतीयकरण
(Indianization of Service)

१८५७ की क्रांति से पूर्व तथा कुछ समय उपरान्त तक उच्च पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति हुआ करती थी। यद्यपि महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में यह घोषित किया था कि भारतीयों को उच्च पदों पर आसीन किया जायगा, किन्तु इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया। सन् १८६१ ई० के एक्ट के अनुसार सम्पूर्ण उच्च पद कवेनेंटेड सिविल सर्विस (Covenanted Civil Service) के सदस्यों के लिये सुरक्षित कर दिये गये। इनकी परीक्षा प्रतिवर्ष इङ्गलैंड में होती थी।

इस परीक्षा में सम्मिलित होने का अधिकार भारतीयों को भी प्राप्त था। प्रारम्भ में परीक्षार्थियों की आयु १२ और १८७१ ई० में २१ वर्ष निश्चित हुई। इसके कारण भारतीय इसमें पद प्राप्त करने में प्रायः असफल रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीयों के लिये केवल निम्न पद ही शेष रहे। सरकार की इस नीति का विरोध भारतीयों ने करना आरम्भ किया।

सन् १८७० ई० इंगलैंड की सरकार ने एक एक्ट द्वारा वाइसराय को यह अधिकार प्रदान किया कि वह भारतीयों को आवश्यकतानुसार सिविल सर्विस में भर्ती कर सकता है और उनके लिये इगलैंड की परीक्षा पास करना आवश्यक न होगा, किन्तु वाइसराय ने इस एक्ट का विशेष रूप से पालन नहीं किया। १८७६ ई० में एक एक्ट पास किया गया जिसके अनुसार कुछ उच्च वर्ग के भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करने का अधिकार वाइसराय को प्राप्त हुआ, किन्तु इंगलैंड की परीक्षा में सम्मिलित होने की आयु २१ वर्ष से कम करके १६ वर्ष निश्चित कर दी गई। इस एक्ट के विरोध में भारतीयों ने अपनी आवाज उठाई जिसके कारण देश में उत्तेजना फैल गई। लार्ड डफरिन ने समस्त परिस्थिति को भली प्रकार समझने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की जिसमें समस्त पदों को तीन श्रेणियों में—साम्राज्य सम्बन्धी, प्रान्तीय तथा आश्रित-विभक्त किये। उच्च पद साम्राज्य श्रेणी के अन्तर्गत थे जो केवल अंग्रेजों के लिये थे। प्रान्तीय तथा आश्रित पदों पर भारतीयों की नियुक्ति भी की जाने लगीं, परन्तु उनमें भी विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध थे। सिविल सर्विस की परीक्षा की आयु २३ वर्ष कर दी गई। इस एक्ट से भी भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। सन् १८९३ ई० में इंगलैंड की सरकार ने एक एक्ट पास किया जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि सिविल सर्विस परीक्षा के केन्द्र भारत में स्थापित होने चाहियें। १९२० तक भारतीयों को इसमें बहुत कम स्थान प्राप्त थे। भारतीयों की तीव्र माग के अनुसार १९२३ में ली कमीशन (Lee Commission) की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि साम्राज्य-सम्बन्धी सेवाओं में भारतीयों को पूर्व से अधिक स्थान प्राप्त होने चाहियें और उनका अनुपात निश्चित होना चाहिये। इसकी रिपोर्ट के अनुसार भारतीयों का इन सेवाओं में अनुमान निश्चित कर दिया गया। सन् १९४२ ई० में एक सार्वजनिक सेवा-आयोग (Public-Service Commission) नियुक्ति की गई।

१९३५ के एक्ट ने भारतीय सेवाओं को निम्न दो भागों में विभक्त किया—

(१) रक्षा-सम्बन्धी सेवाएं (Defence Services) और

(२) असैनिक सेवायें (Civil Services)।

असैनिक सेवाओं को तीन भागों में विभक्त किया गया—

(क) अखिल भारतीय सेवायें,

(ख) केन्द्रीय सेवायें, तथा

(ग) प्रान्तीय सेवायें।

प्रथम श्रेणी की असैनिक सेवाओं पर भारत मन्त्री, द्वितीय श्रेणी की असैनिक सेवाओं पर वाइसराय तथा तृतीय श्रेणी की सेवाओं पर प्रान्त के गवर्नर का अधिकार था।

१६७४ के उपरान्त सरकारी सेवाओं का भारतीयकरण कर दिया गया। अब समस्त सेवायें भारत सरकार के अन्तर्गत हैं। नवीन संविधान ने कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ लोक-सेवाओं की उसी सामान्य योजना तथा वर्गीकरण को स्वीकार कर लिया है जैसा ब्रिटिश शासन- काल में था। अब लोक सेवायें रक्षा सम्बन्धी सेवायें एवं नागरिक सेवाओ मे विभक्त हैं। रक्षा-सम्बन्धी सेवाओं पर भारत के राष्ट्रपति का अधिकार है। इस पर लोक-सेवा-आयोग का नियन्त्रण नहीं है। नागरिक सेवायें पूर्ववत तीन भागों मे किन्तु नामों मे सशोधन कर विभक्त हैं—(१) अखिल भारतीय सेवायें (All India Services), (२) सघ-सेवायें और (३) राज्य-सेवायें। समस्त नागरिक सेवा मे भर्ती लोक-सेवा-आयोग द्वारा होती है। संघ का अपना अलग एक आयोग है और लगभग प्रत्येक राज्य का अपना एक अलग।

स्थानीय स्वशासन
(Local Self-Government)

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य काल में अंग्रेजी सरकार ने मद्रास, बम्बई और कलकत्ते मे अंग्रेजी प्रथा के अनुसार निगम (Corporation) स्थापित किये। सन् १८४२ ई० मे इन सस्थाओ की स्थापना बंगाल के अन्य नगरों मे की गई, किन्तु उनको कोई विशेष सफलता प्राप्त नही हुई। वास्तव मे इन सस्थाओं का विकास सन् १८७० से आरम्भ होता है। जब उन संस्थाओं मे निर्वाचित सदस्यों को स्थान प्राप्त होने लगे। राज्य की ओर से इनको कुछ अधिकार भी प्रदान किये गये। इस समय तक इन संस्थाओ का विकास केवल नगर-क्षेत्रों तक सीमित था और गांवों की ओर से सरकार पूर्णतया उदासीन थी। इस दशा में महत्वपूर्ण कार्य भारत के वाइस-*राय लार्ड रिपन के शासन-काल मे आरम्भ हुआ। इसी कारण इस समय से* (१८८२) ही स्थानीय सस्थाओं की स्थापना मानी जाती है। उसके एक प्रस्ताव ने नगरपालिका का सम्पूर्ण रूप बदल दिया। उसने ग्राम-पंचायतों तथा जिला बोर्डों की ओर भी ध्यान दिया। इस समय तक गाव के प्रबन्ध की ओर किसी प्रकार का ध्यान नही दिया जाता था। इसी के शासन-काल मे जिला बोर्ड की स्थापना हुई और उनको कुछ साधारण अधिकार भी प्रदान किये गये।

लार्ड रिपन के प्रस्ताव से प्रकाशित होने के थोड़े ही समय उपरान्त समस्त प्रान्तों मे स्थानीय स्वशासन अधिनियम (Local-Self Government Act) पारित हुआ, किन्तु कुछ विशेष कारणों से इन सस्थाओं को विशेष सफलता प्राप्त नही हुई किन्तु यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि इसके द्वारा भारतीयों को शासन-कार्य में *भाग लेने के लिये अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।*

१९१९ का भारत सरकार अधिनियम (Governmment of India Act 1919)—स्थानीय स्वशासन का प्रश्न भारत-सरकार ने १९१५ ई० मे उठाया जब

कि उसने इस विषय का एक प्रस्ताव पास किया किन्तु वह कार्यान्वित भी न हो पाया था कि १९१९ का भारत-सरकार अधिनियम पारित हो गया। इसके अनुसार स्वायत्त हस्तान्तरित विषय बना दिया गया और यह विभाग प्रान्तीय मन्त्रि मण्डल के एक सदस्य के अधिकार में आ गया। सरकारी हस्तक्षेप कम कर दिया गया, इनमें जनता को अत्यधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ तथा मताधिकार का विस्तार किया गया और निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो गया। इसने यह भी निश्चित था कि कम से कम तीन चौथाई स्थान निर्वाचन द्वारा तथा इस परामर्श देने के लिए गिने-चुने सरकारी कर्मचारी मनोनीत किए जायेंगे, परन्तु इन इस को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। दूसरे, इसका अध्यक्ष सरकारी पदाधिकारी के अतिरिक्त निर्वाचित सदस्य होना चाहिये। तीसरे, इन संस्थाओं को अपने क्षेत्रों में कर लगाने के अधिक अधिकार प्राप्त हुये और चौथे, बजट के सम्बन्ध में उनको अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

स्वतन्त्रता के उपरान्त—१९३५ के भारत-सरकार अधिनियम द्वारा स्वायत्त शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया, किन्तु भारत के स्वतन्त्र होने पर राष्ट्रीय सरकारों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और इन संस्थाओं को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश में १९४७ में पंचायत राज्य-अधिनियम और १९५० के डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्ड एक्ट के द्वारा गाँव तथा नगर के निवासियों को स्वशासन के अधिक अधिकार प्राप्त हुए।

प्रेस
(Press)

प्रारम्भ में प्रेस के ऊपर सरकार का कोई प्रतिबन्ध न था, किन्तु जब समाचार-पत्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी और वे सरकार की नीति की कटु आलोचना करने लगे तो सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना आरम्भ किया। १८७० के पेनल कोड (Penal Code) का जब नवीन संस्करण हुआ तो समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता को कम कर दिया गया। १८७२ ई० लार्ड डफरिन ने 'सोम प्रकाश' नामक एक बंगाली समाचार-पत्र को कठिन चेतावनी दी, क्योंकि उसने सरकार की नीति की कटु आलोचना की थी। १८७५ ई० में भारत-सचिव लार्ड सैलिसबरी ने भारत सरकार का ध्यान कुछ समाचार-पत्रों की ओर आकर्षित करते हुए कहा कि इस प्रकार के पत्र अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध हैं और उनकी ओर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए। लार्ड लिटन ने सन् १८७८ में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (Vernacular Press Act) पास किया जिसके कारण ... भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी गई। ... के द्वारा समस्त देश में और विशेषतः बंगाल में विरोध उत्पन्न कर दिया गया। विरोध में कलकत्ते में एक विशाल सभा हुई। इस एक्ट के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट ... अधिकार दिया गया कि वह आवश्यकता के उत्पन्न होने पर प्रकाशक और ... दोनों से जमानत (Security) जमा करा सकता है अथवा लिखित रूप से उनसे

वचन ले सकता है कि वे किसी भी प्रकार के विद्रोहात्मक विषय पर समाचार का प्रकाशन नहीं करेंगे अथवा प्रकाशन के पूर्व अपने समाचार के प्रूफ सेंसर ऑफिसर (Censor Officer) को दिखाने और उसकी स्वीकृति प्राप्त होने पर ही उसका प्रकाशन किया जा सकता था। लार्ड रिपन के समय में यह एक्ट जनता के विरोध का ध्यान रखकर समाप्त कर दिया गया। इसके उपरान्त समाचार-पत्रों ने राष्ट्रीयता की भावना को जनता मे प्रोत्साहित करना आरम्भ कर दिया। समय-समय पर प्रतिबन्ध लगाये गये, उनके दफ्तरों की छान-बीन की गई और उनका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। य केवल विशेष अवसरो पर ही हुआ करते थे।

भूमि-व्यवस्था
(Land System)

गत अध्यायों मे उल्लिखित किया जा चुका है कि बंगाल मे लार्ड कार्नवालिस ने इस्तमरारी बन्दोबस्त की व्यवस्था की। सन् १७६५ ई० मे बनारस मे और १८०२ ई० मे मद्रास के कुछ जिलों मे यह व्यवस्था प्रचलित की गई; किन्तु यह व्यवस्था मद्रास मे असफल हो गई और वहाँ पर सर टामस मनरो की अध्यक्षता मे रैयतवाड़ी प्रथा का आरम्भ हुआ। बम्बई मे भी कुछ समय उपरांत इसी व्यवस्था को कार्यान्वित किया गया। अवध मे ताल्लुकेदारी प्रथा आरम्भ हुई तथा उत्तरी पश्चिमी प्रान्तो मे भी इसी व्यवस्था का प्रचलन किया गया। पंजाब मे गाँव के मालिकों के साथ बंदोबस्त किया गया। मध्य प्रान्त मे १८६१ ई० के उपरांत मालगुजारी बन्दोबस्त किया गया जिसके अनुसार लगान वसूल करने का कार्य पुराने मालगुजारों को ठेके पर दिया गया और सरकार ने उनके स्वामित्व को स्वीकर किया। धीरे-धीरे किसानों मे चेतना का आरम्भ हुआ और सरकार को बाध्य होकर किसानो के अधिकारों को जमीदारों से सुरक्षित करना पड़ा। १९१९ के उपरात भूमि-राजस्व प्रांतीय विषय घोषित किया गया किन्तु वह सुरक्षित विषय (Reserved Subject) था जिसके कारण प्रान्त के गवर्नर का इस पर विशेष नियन्त्रण था। १९३७ के उपरात कांग्रेस मन्त्री-मण्डलों ने किसानों के हितों की ओर विशेष ध्यान दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत जमीदारी-प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया और आज किसानो का सम्बन्ध सीधा राज्य से हो गया है।

रेल-यातायात
(Railway Transport)

भारत मे १८५३ ई० मे रेल-यातायात प्रारम्भ हुआ। यह व्यक्तिगत कम्पनियों के नियन्त्रण मे थी और रेल-मार्ग उनकी सम्पत्ति थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापार की वृद्धि के लिये रेल-यातायात आरम्भ करना चाहती थी किन्तु समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी। इसी कारण सरकार ने यह कार्य व्यक्तिगत कम्पनियों को दिया और उनकी लगी हुई सम्पत्ति पर ५ प्रतिशत लाभ निश्चित कर दिया। सन् १८५३ ई० में जी० आई० पी० रेलवे कम्पनी ने बम्बई और थाना के मध्य देश की सर्वप्रथम रेलवे लाइन खोली। सन् १८५४ ई० ईस्ट इण्डिया कम्पनी

ने ८७ मील कलकत्ते से दूर तक रेलवे लाइन की स्थापना की। १८२६ ई० में मद्रास ने अर्काट तक रेलवे लाइन बिछा दी गई। दिन प्रति दिन इसका विकास होता चला गया और समस्त भारत में रेलवे लाइनों का जाल सा बिछ गया। इसका लाभ यह हुआ कि अंग्रेजों के व्यापार में बड़ी वृद्धि हुई। वे इनके द्वारा इंगलैंड का बना हुआ माल भारत के आन्तरिक भागों तक पहुँचाने में सफल हुए और भारत से कच्चा माल बन्दरगाहों तक आसानी से ले जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय उद्योग-धन्धों को बड़ा आघात पहुँचा। वे अंग्रेजों की प्रतिद्वन्दिता के सामने न टिक सका। कृषि के भार में वृद्धि हुई। जनता निर्धन होनी आरम्भ हो गई किन्तु इससे कुछ लाभ भी अवश्य हुआ। भारतवासी एक दूसरे के निकट आने लगे जिससे भारत की राष्ट्रीय एकता का उदय होना आरम्भ हुआ। दुर्भिक्ष आदि के दिनों में सहायता सरलतापूर्वक प्रदान की जानी सम्भव हो गई। सन् १८८० ई० के उपरांत भारत-सरकार ने व्यक्तिगत कम्पनियों को समाप्त करने की नीति अपनाई और कुछ पर उसने अपना अधिकार स्थापित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त समस्त रेलवे लाइनों तथा रेल-यातायात पर भारत-सरकार का अधिकार हो गया। इस समय से अधिकारियों ने यात्रियों की ओर भी ध्यान दिया और दिन प्रतिदिन इसके क्षेत्रफल में विस्तार हो रहा है। भारत में रेल के इंजनों का निर्माण होना भी आरम्भ हो गया है।

डाक, तार और टेलीफोन
(Postal, Telegraph and Telephone)

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल में डाक-व्यवस्था उन्नत नहीं थी। डाक ले जाने वाले एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल जाते थे, कहीं-कहीं घोड़ा-गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। वर्षा-काल में डाक एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना प्रायः असम्भव सा हो जाता था। इसके बाद प्रत्येक प्रेसीडेंसी ने अपनी-अपनी डाक-व्यवस्था को पृथक किया। जब यातायात के साधन उन्नत होने लगे तो डाक-व्यवस्था भी स्वतः उन्नत होने लगी। समस्त देश में डाकघरों पर केन्द्र का नियन्त्रण स्थापित हो गया। डाक की दर आधा आना निश्चित की गई। बाद में डाकघरों में पार्सल, वी० पी० और मनिआर्डर की व्यवस्था भी हो गई। दिन प्रतिदिन डाकखानों की संख्या में वृद्धि होने लगी। अभी भी इस दशा में पर्याप्त काम करने की आवश्यकता है। गावों आदि में डाक पहुँचाने में पर्याप्त समय लग जाता है। वहां की जनता डाकखानों की सुविधा का उपभोग करने में असमर्थ रहती है।

तार-व्यवस्था का आरम्भ लार्ड डलहौजी के शासन-काल में १८५४ ई० में हुआ। उस वर्ष कलकत्ते से आगरे तक टेलीग्राफ की लाइन स्थापित की गई। फिर इसका विस्तार होना आरम्भ हो गया, किन्तु अभी भी इस दिशा में और अधिक कार्य होना आवश्यक है। प्रत्येक डाकखाने में तारघर अवश्य होना चाहिये। गांव की जनता को अभी भी इस दिशा में काफी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

टेलीफोन डाक और टेलीग्राम की स्थापना के काफी बाद में आया। इसके

रखने में पर्याप्त व्यय करना पड़ता है जो भारतीय साधारणतः सहन नहीं कर सकते। इनका अधिकांश प्रयोग सहकारी विभागों, उद्योगपतियों तथा व्यापारियों तक ही सीमित है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। गाँव की जनता अभी भी इसका प्रयोग नहीं कर सकती है। यह व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक डाकखाने में टेलीफोन हो और उसका मूल्य कम कर देना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोग इसका लाभ उठा सकें।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) *स्थानीय स्वशासन से आप क्या समझते हैं? अंग्रेजों के शासन-काल में उसके विकास में क्या प्रगति हुई?* (१९५८)

(२) लार्ड कर्जन के कार्यकाल के शासन-सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (१९५९)

(३) 'लार्ड कर्जन दूरदर्शी राजनीतिक नहीं था।' इस कथन को सामने रखकर उसकी नीति एवं सुधारों का मूल्यांकन कीजिए। (१९६२)

मध्य प्रदेश—

(१) भारतीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था के विकास के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालिये। (१९५५)

राजस्थान—

(१) भारत में स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का वर्णन करो। (१९५१)

अन्य—

(१) *न्याय-सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो।*

(२) पुलिस तथा जेल सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो।

(३) सैनिक शासन के सुधारों का उल्लेख करो।

(४) *नौकरियों के भारतीयकरण के इतिहास का वर्णन करो।*

(५) भूमि-व्यवस्था का वर्णन करो।

६ धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन

(Religious and Social Movements)

धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि
(Introduction to Religious and Social Movements)

समय के अनुसार धर्म में भी कुछ परिवर्तनों का होना आवश्यक हो जाता है क्योंकि वह सामाजिक तथा अन्य प्रवृत्तियों के साथ सहयोग प्रदान करने में असमर्थ

होता है। पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर मनुष्य स्वार्थों में इतना लिप्त हो जाता है कि वह धर्म के सिद्धान्तों का परित्याग, उनका प्रयोग अपने स्वार्थों की सिद्धि में करने लगता है। १६वीं शताब्दी में भारत में कुछ महानुभावों, का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने धर्म को पवित्र करने तथा उसमें जो दोष उत्पन्न हो गये थे उनको दूर करने के अभिप्राय से आंदोलन किया। इसमें ब्रह्मसमाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन हिन्दू धर्म के मुख्य सुधार आंदोलन हैं। इन सुधार-आंदोलनों की वास्तविक महत्ता को समझने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सन् १८२८ ई० में ब्रह्म-समाज की स्थापना के पूर्व भारत के राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक जीवन का पतन हो गया था। यह समय भारतीय इतिहास का अंधकार युग कहा जाता है जब हिन्दू धर्म की सजीवता समाप्त हो गई थी और जिसने अतीत में एक शानदार तथा वैभवपूर्ण सभ्यता को जन्म दिया था। भारतवासी उपनिषदों तथा वेदांत के पुनीत सत्यों को भूल गए थे, उनकी आध्यात्मिक भावनाओं का शुष्क धार्मिक क्रियाकलापों ने स्थान ले लिया था। एक ईश्वर की उपासना का परित्याग कर हिन्दू अनेक देवी-देवताओं की पूजा करने में लग गये थे और निराकार ब्रह्म के चिन्तन का स्थान निम्न कोटि की मूर्ति पूजा ने ले लिया था। सती प्रथा, अनिवार्य वैधव्य, छुआछूत, बाल-हत्या संकीर्ण जाति-प्रथा जैसी अनेक बुराइयां समाज के शरीर को खोखला बना रही थीं। राजनीतिक दृष्टि से भारत ब्रिटिश कूटनीति का शिकार बन गया था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारत पश्चिमी विजेताओं की बाहर से ऊँची दिखलाई देने वाली सभ्यता के सामने मूक बना खड़ा था। राजनीतिक शक्ति के ह्रास के कारण भारतीयों के भीतर संगठन का अन्त हो रहा था. पश्चिमी सभ्यता ने इनको और भी अधोगति को पहुँचा दिया था। शिक्षित भारतीयों पर पश्चिमी भौतिकवाद का विशेष प्रभाव पड़ने लगा और इस कारण भारत की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उच्चता उनके हृदय से दूर होने लगी। ईसाई पादरी हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों तथा कर्मकाण्डों की खूब आलोचना तथा बुराई करके *अपने धर्म की महत्ता प्रदर्शित करते,* जिससे भारत की भोली-भाली जनता और भी बहकावे में आती चली आ रही थी। देश में अंग्रेजों के सर्वेसर्वा होने से उनको अपने कार्य में और सहायता मिलती। हिन्दू धर्म के दुर्ग में बड़े जोर का धक्का लगा और ऐसा प्रतीत होता था कि वह बस अब गिरने ही वाला है। हिन्दुओं का सांस्कृतिक जीवन प्रायः लुप्त हो चुका था लेकिन इसी समय एक विचित्र घटना हुई। बंगाल में राजा राममोहन राय काठियावाड़ में स्वामी दयानन्द सरस्वती, मद्रास में मिसेस ऐनी बेसेंट और बंगाल में श्री रामकृष्ण परमहंस जैसी महान् विभूतियों ने आगे कदम बढ़ाकर डगमगाती अवस्था में हिन्दू धर्म की रक्षा की। धीरे-धीरे किन्तु अविराम गति से वह आगे बढ़ने लगा और बहुत दिनों तक अपने ऊपर जादू करने वाले पश्चिमी जगत को वह फिर वही सन्देश देने योग्य बन गया जिसकी उसको अत्यधिक आवश्यकता थी।

ब्रह्म समाज
(Brahmo Samaj)

सुधार आन्दोलन में सबसे पहला ब्रह्म समाज था जिसकी स्थापना सन् १८२८ ई० में राजा राममोहन राय ने की। हिन्दू धर्म की पतित अवस्था का प्रभाव राजा राममोहन राय पर बहुत अधिक पड़ा। वे प्रथम सुधारक थे जिन्होंने इस ओर विशेष ध्यान दिया और अवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय से उन्होंने बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना की। वे केवल भारत के सामाजिक तथा धार्मिक सुधारकों और देशभक्तों में न केवल प्रथम ही थे वरन् वे उच्च-कोटि के सुधारक भी थे। इनका जन्म १७७२ ई० में एक पुराने तथा कट्टर ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बिहार के पटना नगर में हुई जो मुस्लिम सभ्यता तथा संस्कृति का केन्द्र था। शिक्षा की समाप्ति के उपरान्त इन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया। संस्कृत एवं हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन के लिए आप कुछ समय तक काशी में रहे। कुछ समय उपरान्त इन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी की और वहाँ आप ईसाई पादरियों के सम्पर्क में आये। इनका उनके धार्मिक विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने शीघ्र ही अनुभव किया कि ईसाई पादरियों तथा अन्य कुछ बुद्धिवादी नास्तिकों की आलोचना का सामना करने के लिये हिन्दू धर्म में कुछ सुधारों की आवश्यकता है। इस प्रकार उनको अपने जीवन के ध्येय का बोध हुआ। वे कोई नया धर्म प्रचलित करना नहीं चाहते थे वरन् प्राचीन हिन्दू धर्म में पवित्रता लाना और उसमें जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनको दूर करना चाहते थे। उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कलकत्ते में रहना आरम्भ कर दिया। वे प्रति सप्ताह कुछ उदार विचारकों की एक सभा का आयोजन किया करते थे। इनमें हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन और विचार किया जाता था। उन्होंने उपनिषदों एवं वेदान्त सूत्रों का सर्वसाधारण के लिये बंगला भाषा में अनुवाद किया। हिन्दू धर्म के मूल सत्यों तथा उसकी कभी भी समाप्त न होने वाली सांस्कृतिक निधि के प्रति उनके हृदय में बड़ा आदर तथा श्रद्धा थी, लेकिन मूर्तिपूजा तथा भद्दे रीति-रिवाजों जैसे बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहु-विवाह तथा छूतछात के वे कट्टर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि उस समय बंगाल में मान्य हिन्दू धर्म पवित्र न रहकर अनेक अन्ध-विश्वासों का घर बन गया है और उसको निकाल बाहर करना अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने अपने देशवासियों को उपनिषदों में निहित सत्यों से परिचित होने का आदेश दिया।

राजा राममोहन राय

धार्मिक सिद्धान्त (Religious Principles)—सन् १८२८ ई० में उन्होंने

ब्रह्म समाज की स्थापना की जो आगे चलकर बहुत प्रभावशाली हुआ। इसके अनुसार ईश्वर रूपहीन, अनन्त, अनादि तथा शाश्वत सत्ता है और यही सत्ता सृष्टि का निर्माण तथा विनाश करती है। भगवान की उपासना के लिए 'समाज' का पहला *मन्दिर १८३० ई० में खोला गया। यह ध्यान में रखने की बात है कि इस अनन्त* तथा सर्वोच्च सत्ता की किसी नाम या पहचान द्वारा उपासना नहीं होती थी। मन्दिर में न कोई मूर्ति थी और न कोई बलिदान चढ़ाया जाता था। मन्दिर के अन्दर किसी *भी धर्म में मानी गई पवित्र कोई भी वस्तु न घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी और* न उसकी बुराई ही की जाती थी। जाति-पाति, वर्ण, धर्म किसी का भी भेद-भाव न करते हुए मन्दिर के द्वार सबके लिए समान रूप से खुले रहते थे। इससे यह स्पष्ट *हो जाता है कि राजा राममोहन राय अपने 'समाज' को सहिष्णु बनाना चाहते थे* जिससे पवित्रता, करुणा, उदारता आदि गुणों और सभी धर्मावलम्बियों के साथ मेल-जोल की भावना का विकास हो। इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि वे अपने धार्मिक उपदेशों में उपनिषदों, दर्शन के तथा इस्लाम की ईश्वर की एकात्मवादिता का बहुत हद तक समन्वय करने में सफल हुये।

राजा राममोहन राय के अन्य कार्य (Other activities of Raja Ram Mohan Roy)—राजा राममोहन राय केवल एक धार्मिक सुधारक ही नहीं थे, वरन् सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों के लिये भी उन्होंने बड़ा कठिन परिश्रम किया। उनका ब्रह्म समाज स्त्रियों को सभी प्रकार की सामाजिक *असमानता से* ऊपर उठाने का प्रयत्न करता था तथा बाल-विवाह, इच्छा विरुद्ध वैधव्य तथा छुआ-छात का विरोधी था। बाद में इन्होंने जाति-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया। हिंदू *धर्म के सभी विभागों में ब्रह्म समाजी ही जाति का सबसे कम विचार रखते थे। शिक्षा* के क्षेत्र में वे पश्चिमी शिक्षा के अनन्य भक्त थे। वे अपने देशवासियों को पश्चिमी शिक्षा दिलाना चाहते थे क्योंकि उनका विचार था कि यूरोपवासियों की उन्नत *अवस्था का कारण उनकी विज्ञान में उन्नति ही है।* वे उन व्यक्तियों में थे जिन्होंने १८१६ ई० में हिन्दू कालिज की स्थापना करवाई। उन्होंने पादरी डफ को एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना करने बड़ी सहायता दी। भारतवासियों के लिये स्वतन्त्रता तथा महानता को प्राप्त करने में व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से उन्होंने अपने को एक देश-भक्त राजनीतिज्ञ भी प्रदर्शित किया। राजा राममोहन राय की महानता इस बात में नहीं है कि अपने जीवन में उनको *कितनी सफलता प्राप्त हुई* वरन् इस बात में है कि सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा राजनीतिक सुधारों का पारस्परिक सम्बन्ध समझाने वाले वे प्रथम भारतीय थे। इस प्रकार समस्त क्षेत्र *में उन्होंने बड़ी सेवा की। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिक से मिलकर* उन्होंने सती-प्रथा को बन्द करवाया।

ब्रह्म समाज की अवनति (Downfall of Brahma Samaj)—*ब्रह्म समाज* की स्थापना करने वाले राजा राममोहन राय जैसे महान् व्यक्ति के होते हुए भी ब्रह्म समाज कोई अधिक उन्नति न कर सका। उनकी असमय मृत्यु (१८३३) होने के कारण

'समाज' को बड़ी हानि उठानी पड़ी। उनके 'समाज' का प्रभाव बंगाल के केवल शिक्षित वर्ग पर पड़ा। इसका कारण यह था कि हिन्दू धर्मावलम्बी विशेष परिवर्तनों का समर्थक नहीं था। वह परम्परा तथा सदियों के रीति-रिवाजों में परिवर्तन करने का पक्षपाती नहीं था।

ब्रह्म समाज को देवेन्द्रनाथ ठाकुर की देन (Contribution f Devendra Nath Tagore to Barbma Samaj)—ब्रह्म समाज उस समय तक उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हुआ जब तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने इसकी बागडोर अपने हाथ में नहीं ली। १८४२ ई० में उन्होंने इसमें पुनः चेतना का संचार किया। उनके साधु जीवन तथा महान संगठन शक्ति द्वारा उसमें पुनः बल आ गया। तीस वर्ष तक वे ब्रह्म समाज के कर्णधार रहे और उनकी अध्यक्षता में 'समाज' ने बराबर उन्नति की। उसकी शाखायें बंगाल के अनेक स्थानों तथा अन्य प्रांतों में भी स्थापित हुईं। उन्होंने इसमें कुछ कर्मकाण्डों का भी समावेश किया।

केशवचन्द्र सेन का ब्रह्म समाज में प्रवेश (Entry of Keshav Chandra Sen into Brahma Samaj)—सन् १८६२ ई० में एक दूसरे महान् व्यक्ति केशवचन्द्र सेन भी हो गये। आपकी प्रतिभा का महर्षि देवेन्द्र नाथ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। देवेन्द्रनाथ ने इनको अपने सहायक के रूप में रख लिया और २३ वर्ष की अवस्था में ही वे 'आचार्य' पदवी से विभूषित होकर समाज में धर्माचार्य बन गये। इन्होंने एक प्रकार का युवक आन्दोलन प्रारम्भ करके ब्रह्म समाज में एक नई शक्ति तथा सजीवता को जन्म दिया जिससे नवयुवक इसकी ओर आकर्षित होने लगे। उन्होंने प्रसिद्ध पत्र 'दी इण्डियन मिरर' (The Indian Mirror) की स्थापना की जो हिन्दू पेट्रियट (Hindu Patriot) के साथ देश में सामाजिक तथा राजनितिक सुधारों का बड़ा शक्तिशाली समर्थक बन गया। वे संस्कृत नहीं जानते थे और उनकी शिक्षा एक अंग्रेजी स्कूल में हुई थी जिसके कारण वे अपने से पहले के लोगों की अपेक्षा हिन्दू धर्म से कम प्रभावित थे। इस कारण तथा अन्य कई बातों में मत-भेद होने से इनका देवेन्द्रनाथ से मनमुटाव हो गया। जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने 'समाज' से अलग होकर 'भारतीय ब्रह्म समाज' की स्थापना की जो आदि ब्रह्म समाज कहलाने वाली संस्था से भिन्न थी। उनके समाज से कई प्रभावशाली व्यक्ति अलग हो गये। उन्होंने साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना की। केशवसेन ने अपने अनुयायियों को नये रूप में संगठित किया और उस संगठन का नाम नव विधान रखा। सन् १८८४ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

साधारण ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त (Principles of ordinary Brahma Samaj)—केशवचन्द्र सेन ने अपने सिद्धान्त के प्रचार के लिये सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। उन्होंने बम्बई में प्रार्थना समाज और मद्रास में वेद-समाज की स्थापना की। आजकल साधारण ब्रह्म-समाज ही सबसे अधिक प्रभावशाली क्रियाशील शाखा है। इस समाज के मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) ईश्वर एक है।

(२) जीवात्मा अमर है।

(३) ईश्वर की पूजा सत्य के द्वारा होनी चाहिए।

(४) सच्ची उपासना ईश्वर से प्रेम करना और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी इच्छा का पालन करना।

(५) आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रार्थना करना, ईश्वर का आश्रय लेना और उसके अस्तित्व की सदैव अनुभूति का अनुभव करना आवश्यक है।

(६) किसी की बनाई हुई वस्तु को ईश्वर मानकर पूजन नहीं करना चाहिए, न किसी पुस्तक तथा पुरुष को मोक्ष का साधन समझना चाहिये।

(७) सब धर्मों तथा उपदेशों की शिक्षाओं को सत्य ग्रहण करना चाहिये।

(८) सब धर्मों में सार है।

(क) ईश्वर में पितृ-भावना,

(ख) मातृ-भावना,

(ग) प्राणी-मात्र में दया-भाव है।

(९) ईश्वर पूत कर्म का पुरस्कार और पाप का दण्ड देता है।

(१०) पाप से दूर रहना और उसके लिए सच्चा पश्चाताप करना ही उसका प्रायश्चित करना है।

ब्रह्म समाज का विस्तृत प्रभाव न होने के कारण (Causes of Brahma Samaj not to be popular)—यद्यपि ब्रह्म-समाज की शाखायें बंगाल प्रान्त के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी स्थापित की गईं, किन्तु यह आर्य समाज के समान कभी व्यापक तथा प्रभावशाली नहीं रहीं। इसके कारण निम्न हैं—

(१) **ईसाई धर्म का प्रभाव**—इस पर प्रारम्भ से ही ईसाई मत की विशेष छाप रही है। राजा राममोहन राय प्रोटेस्टेंट धर्म से बराबर उदाहरण लेते रहे और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, केशवचन्द्र अपने समाज ईसामसीह को सामने लना चाहते थे। इसके सामाजिक रीति-रिवाज पर भी पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म की भावनाओं पर अधिक जोर देने के कारण यह हिन्दू परम्परा के अनुकूल रूप धारण न कर सका।

(२) **भावना के वैभव की कमी**—इस आन्दोलन में भावना के वैभव की कमी थी जिसके रहने से बंगाली हृदय में सहानुभूति की उत्पत्ति हो सकती थी।

(३) **सिद्धान्तों का ऊंचा बौद्धिक रूप**—इसके सिद्धान्त बौद्धिक रूप से इतने ऊंचे थे कि साधारण जनता की वहां तक पहुँच होनी असम्भव थी।

ब्रह्म समाज का मूल्यांकन (Estimate of Brahma Samaj)—यद्यपि ब्रह्म समाज का भारत में अत्यधिक प्रचार नहीं हो सका फिर भी इसने हिन्दू धर्म की सेवा की। उसने उन हजारों नव-युवकों की रक्षा की जो ईसाई मत तथा नास्तिकों के प्रभाव में आ चुके थे। उसने उन लोगों के लिये भी एक स्थान खोज निकाला जो अपने तथा अन्य हिन्दुओं के बीच भिन्नता का अनुभव करते थे। इससे भी महत्वपूर्ण कार्य इसने यह किया कि उन तमाम धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन का

प्रारम्भ बिन्दु बना जिन्होंने पिछले सौ या उससे अधिक वर्षों से समस्त भारत को प्रभावित किया है। इसने शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों को बड़ा योग दिया है, विशेषतः बंगाल में। वहां उसने अन्ध विश्वासपूर्ण कट्टरता का अन्त किया। इसकी सबसे बड़ी सफलता यह भी रही है कि पढ़े-लिखे मध्य वर्ग के परिवार को समाज में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। उसने स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिये बड़ा कार्य किया। अतः उसने भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के विकास में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया।

आर्य-समाज
(Arya Samaj)

भारतीय जागृति में योग देने वाला दूसरा धार्मिक सुधार-आन्दोलन आर्य-समाज है। वर्तमान हिन्दू धर्म में यह सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन है। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे जो मनुष्यों में सबसे अधिक वीर तथा सौम्य व्यक्ति थे। इनमें सिंह का साहस और क्रियाशील विचार-शक्ति तथा नेतृत्व की प्रतिभा का अद्भुत सम्मिश्रण था। शिक्षित व्यक्तियों को पश्चिमी संस्कृति तथा विचारों से प्रभावित होते देख उन्हें महान् दुःख होता था; इस्लाम तथा ईसाई धर्म की हिन्दू धर्म पर अनाधिकार चेष्टा उनको असह्य थी। वे इन सबका एकदम अन्त करना तथा हिन्दू धर्म में सुधार करना चाहते थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द की जीवनी (Life of Swami Dayanand)—इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। इनका जन्म मोर्वी राज्य के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता प्राचीन धार्मिक विचारों के थे। शिवरात्रि के दिन जब मूलशंकर अपने पिता जी के पास शिवमन्दिर में बैठे हुये थे तो एक चूहा शिवलिंग पर चढ़कर प्रसाद खाने लगा और इधर-उधर घूमने लगा। इसका बालक मूलशंकर के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको मूर्ति-पूजा की वास्तविकता पर संदेह होने लगा। कुछ समय उपरान्त उनकी बहन तथा उनके चाचा जी की मृत्यु ने उनको जीवन की सार्थकता पर विचार करने के लिये बाध्य किया। इनके माता-पिता ने विचार किया कि उनके अव्यवस्थित मस्तिष्क तथा दुःखित हृदय के लिए विवाह औषधि का कार्य करेगा, इसलिए उन्होंने उनका विवाह करने का निश्चय किया। अपने पिता के ऐसे विचार देखकर अपने बीस वर्ष की अवस्था में घर-बार का परित्याग कर दिया। १५ वर्षों तक वे धार्मिक सत्य की खोज में अविश्रान्त परिश्रम करते रहे। उन्होंने पहले एक ब्रह्मचारी का वेष धारण किया तथा उसके समान ही जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, फिर वे वेदान्त में दीक्षित हुए। शान्ति की खोज में इधर-उधर घूमते रहे और अन्त में मथुरा में आकर स्वामी

विरजानन्द के शिष्य के रूप में उन्होंने अध्ययन-कार्य आरम्भ किया। उन्होंने उनसे तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिये समस्त भारत का भ्रमण किया। इनके व्यक्तित्व तथा उपदेशों का प्रभाव जनता पर बहुत पड़ा। पांच वर्ष में ही हजारों व्यक्ति इनके अनुयायी बन गये। इनका बहुत बार मुसलमानों तथा ईसाइयों से शास्त्रार्थ हुआ। आपकी तत्कालीन धार्मिक सुधारकों से भेंट हुई, किन्तु आप इनसे मिलकर कार्य नहीं कर सके। इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रह्म समाज पर तो ईसाई धर्म का विशेष प्रभाव था और थियोसोफिकल सोसाइटी से स्वामी जी का ईश्वर के रूप के विषय में मत-भेद हो गया था। सन् १८८३ ई० में अजमेर में इनका देहान्त हो गया।

स्वामी दयानन्द की देन (Contribution of Swami Dayanand)—*स्वामी दयानन्द केवल सत्य की खोज करने वाले नहीं; वरन् एक महान् देशभक्त भी थे।* वे अपनी मातृ-भूमि के लिये अनेक सुनहरे स्वप्न देखते थे। उनके मस्तिष्क में एक ऐसे भारत की कल्पना थी जिसमें अन्धविश्वास, इच्छा विरुद्ध वैधव्य तथा मूर्ति-पूजा न हों जिसके निवासी केवल एक ईश्वर की पूजा में विश्वास करते हों, जो सगठित हों, जो स्वतन्त्र हों तथा जो उसके प्राचीन वैभव को फिर से लौटा सकें। उन्होंने बतलाया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन प्रचलित मिथ्या विश्वासों का निवारण तथा शिक्षित नवयुवकों पर से पश्चिमी प्रभाव का *आवरण हटाना है। इस कार्य के लिए उन्होंने वेदों के प्रचार को अपना माध्यम बनाया। उन्होंने* अपने देश-वासियों को मानव जाति के इस सर्वप्रथम शास्त्र को अपना पथ-प्रदर्शक बनाने का आदेश दिया और इस प्रकार हिन्दू-धर्म को नवीनता प्रदान की। उन्होंने यह शिक्षा दी कि वेद ईश्वर की वाणी है, इसलिये त्रुटियों से परे है। वे धार्मिक नहीं अपितु वैज्ञानिक शास्त्रों के भी स्रोत हैं। उन्होंने वेदों के अर्थ का एक नया ढग निकाला, उनका अनुवाद किया तथा उन पर भाष्य लिखा। उन्होंने इस *बात की चेष्टा की कि* वेदों का अध्ययन करने तथा उनसे लाभ उठाने का मार्ग सभी के *लिये खुला रहना चाहिए। उन्होंने अछूतों आदि सभी मनुष्यों के लिये वेदाध्ययन करने तथा उनसे लाभ उठाने का मार्ग सभी के लिये खोल दिया जो ब्राह्मणों को धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध* विद्रोह था। उन्होंने यह भी सिद्ध किया की मूर्ति-पूजा तथा विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा का वेदों में विधान नहीं है। उन्होंने जातियों तथा उपजातियों को वेदों की शिक्षा के विपरीत बतलाया। वेदों में तो केवल गुण तथा चरित्र के आधार पर समाज के चार वर्गों में विभाजन की व्यवस्था है। स्त्रियों की दयनीय दशा ने भी उनकी दयालु आत्मा को स्पर्श किया। उन्होंने उनकी दशा को उन्नत करने के *लिये बड़ा प्रयत्न किया और यह प्रदर्शित किया कि बालविवाह, इच्छा विरुद्ध वैधव्य और स्त्रियों की हीन* दशा वैदिक धर्म के विरुद्ध है। वेदों की कल्पना के अनुसार वयस्क स्त्री तथा पुरुष के बीच का वैवाहिक सम्बन्ध एक धार्मिक बन्धन है। वेद स्त्री के जीवन को प्रत्येक अंश में पुरुष की दैनिक सहायिका के रूप में मानता है। अछूतों के सम्बन्ध में भी स्वामी जी ने कम साहस का परिचय नहीं दिया। उनके स्वत्वों तथा *अधिकारों का उन्होंने बड़ा*

कोई समर्थक नहीं हुआ। उन्होंने आर्य समाज का द्वार उनके लिये खोल दिया और उनको हिन्दू समाज का सम्मानित सदस्य बना दिया।

आर्य समाज की स्थापना (Establishment of Arya Samaj)—भारत का उद्धार करने के लिए स्वामी जी द्वारा १८७५ ई० में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की गई। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने लाहौर में इसकी एक शाखा की स्थापना की जो उनके कार्य का केन्द्र बन गई। आज समस्त भारत में आर्य समाज की शाखाओं का जाल बिछा हुआ है। इतना ही नहीं वरन् भारत के बाहर भी जहाँ भारतीय निवास करते हैं इसकी शाखायें हैं। आर्य समाज ने धर्मोपदेशकों को बाहर भेजने तथा गैर-हिन्दुओं को भी हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर लेने की प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित किया है। जिन्हें यह मिथ्या समझता है उन विश्वासों के प्रति अपने कट्टर दृष्टिकोण तथा दूसरों को अपने धर्म में दीक्षित करने वाले अपने कार्यों के कारण आर्य-समाज को कभी-कभी Church Militant और Aggressive Hindu ism भी कहा गया है।

आर्य-समाज का मूल्यांकन (Estimate of Arya Samaj)—आर्य समाज को भारत में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। इसने विशेषतः सिन्धु-गंगा के मैदान में जन-आन्दोलन का रूप धारण किया। जो भी व्यक्ति इससे प्रभावित हुए हैं उनमें एकता उत्साह तथा जीवन का संचार हुआ। लोगों ने अपनी अकर्मण्यता तथा जीवन के मूल की दुर्बल भावनाओं को निकाल फेंका है। उनका स्वयं अपने में तथा धर्म में विश्वास दृढ़तर हो गया है। इसके द्वारा अपने विश्वास की रक्षा के लिए एक आर्य समाजी जीवन प्रदान किया गया तथा अन्य धर्मावलम्बियों की चुनौती स्वीकार करने के लिए यह सदैव कटिबद्ध रहता है। समाज की स्थापना के पूर्व साधारण हिन्दू अपने धर्म की निन्दा तथा बुराई को सहन कर लिया करता था, किन्तु आर्य समाज ने उसको एक नवीन तेज तथा स्फूर्ति प्रदान की।

आर्य समाज के कार्य
(Activities of Arya Samaj)

आर्य समाज के कार्यों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायेगा :—

(१) **धार्मिक कार्य (Religious activities)**—धर्म के क्षेत्र में आर्य-समाज की प्रमुख सफलता हिन्दू धर्म को एक नया स्वरूप देने में है। यह हिन्दुओं के पुराण आदि को अपने धार्मिक विश्वास की स्रोत पुस्तकें मानने के लिए मना करता है तथा वेदों को ही उसकी आधार-शिला बनाने का आदेश देता है। इस प्रकार इसने हिन्दू धर्म को उन समस्त मिथ्या विश्वासों से मुक्त करने का प्रशंसनीय कार्य किया है जो उसके पतन-काल में उसमें प्रविष्ट हो गये थे। वह अनेक देवी-देवताओं में विश्वास, मूर्तिपूजा,

> **आर्य समाज के कार्य**
> (१) धार्मिक कार्य।
> (२) सामाजिक कार्य।
> (३) अछूतों का उद्धार।
> (४) शिक्षा सम्बन्धी कार्य
> (५) राजनीतिक कार्य।

छुआछूत, इच्छा विरुद्ध वैधव्य, बाल-विवाह परम्परागत जाति व्यवस्था तथा उन समस्त कुरीतियों तथा विश्वासों की भर्त्सना करता है जो विकृत हिन्दू समाज में उत्पन्न हो गये थे इस दृष्टि से इसमें और ब्रह्म समाज में समानता है। लेकिन ब्रह्म समाज जहाँ पुराणादि शास्त्रों का विरोध तर्क के आधार पर करता है, वहाँ आर्य-समाज वेदों की शरण लेता है और इन प्रथाओं का वेदों मे कोई वर्णन न होने की बात करता है। सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं का निराकरण करने का यह ढंग अधिक भारतीय है और इसलिये आर्य-समाज ब्रह्म-समाज की अपेक्षा जनता मे अधिक प्रचलित
आर्य-समाज के निम्नलिखित दस प्रमुख नियम हैं :—

(१) सब सत्य, विद्या और जो पदार्थ विद्या द्वारा जाने जाते हैं उन आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द है—वह शाश्वत ज्ञान, मूर्त तथा आनन्दकारी रूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायरूप दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, अमर सबका रक्षक, सबका स्वामी, सृष्टि की उत्पत्ति का कारण तथा उसका पालन वाला है।

(३) वेद ही सत्य-ज्ञान के आदि-स्रोत हैं वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना, का परम कर्त्तव्य है।

(४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने के लिए सदा प्र रहना चाहिए।

(५) समस्त कार्य सत्य और असत्य का विचार कर करने चाहिएं।

(६) 'समाज' का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है।

(७) पारस्परिक सम्बन्ध का आधार प्रेम, न्याय और धर्म होना चाहिये

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होनी चाहिये।

(९) प्रत्येक मानव को अपनी भलाई से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए सबकी भलाई मे अपनी भलाई समझनी चाहिए।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्व-हितकारी नियम मे स्वतन्त्र चाहिए।

इसके अतिरिक्त आर्य समाज कर्म-काड, पूर्वजन्म, निर्वाण अर्थात् मोक्ष कल्पना करता है। आर्य समाज भक्तो तथा ईश्वर के मध्य किसी माध्यम की आ श्यकता नहीं मानता। यह पुजारी वर्ग मे विश्वास नही करता।

(२) सामाजिक कार्य (*Social activities*)—आर्य समाज के कार्य-क्र सामाजिक सुधारो का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। 'समाज' ने परम्परागत जाति-व्यव का विरोध किया। उसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णो विभाजन गुण तथा कर्म के आधार पर होना चाहिए, जन्म के आधार पर नहीं। वेदों मे वर्णित वर्ण-व्यवस्था को पुनर्जीवित करना चाहता है। इस क्षेत्र में समाज को अधिक सफलता प्राप्त नही हुई, आर्य-समाज के सदस्यो की एक बड़ी स भी जाति-पाति के बन्धनों मे उतनी ही बंधी है जितने अन्य हिन्दू। फिर भी

स्वीकार करना होगा कि हिन्दू-मस्तिष्क से जाति-व्यवस्था शिथिल होती जा रही है जिसका कुछ श्रेय आर्य-समाज को प्राप्त है। 'समाज' बाल तथा बेमेल विवाह को भी बुरा मानता है। इसने लड़कों के विवाह की आयु कम से कम बाईस तथा लड़कियों की सोलह वर्ष निश्चित की है। विधवा विवाह तथा स्त्रियों की साधारण दशा में उन्नति के लिये भी पर्याप्त सराहनीय कार्य आर्य-समाज ने किया है। विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाजों तथा अन्य सामाजिक दोषों के निराकरण की ओर भी इसका ध्यान आकर्षित हुआ।

(३) **अछूतों का उद्धार** (Uplift of Harijans)—लेकिन आर्य समाज के सामाजिक सुधारों में अछूतों का उद्धार ही प्रमुख है। यह घोषणा करके कि किसी व्यक्ति का सामाजिक स्थान कर्म पर निर्भर है, जन्म पर नहीं, इसने अस्पृश्यता को कड़ा आघात पहुँचाया। सन् १६०८ ई० में दलित जातियों के उद्धार के लिए एक सक्रिय आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। वर्तमान समय में दयानन्द दलित उद्धार-मण्डल इस दिशा में सक्रिय काम कर रहा है। ईसाई मिशनरियों के सेवा-कार्यों से प्रभावित होकर, आर्य समाज ही प्रथम शुद्ध भारतीय संस्था है जिसने अनाथालयों तथा विधवाश्रमों की स्थापना की। अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में सेवा-कार्य के लिये गैर-सरकारी रूप से आन्दोलन प्रारम्भ करने वाली यह पहली गैर-ईसाई संस्था थी। आज देश भर में आर्य-समाज के सदस्यों द्वारा संगठित तथा चलाई जाने वाली सामाजिक सेवा-संस्थाओं का एक जाल सा बिछा हुआ है।

(४) **शिक्षा सम्बन्धी कार्य** (Educational activities)—देश में आर्य समाज एक शिक्षक संस्था है। किसी भी अन्य संगठन के हाथ में इतनी शिक्षण-संस्थायें नहीं है जितनी कि इसके। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में अनेक डी० ए० वी० कालिज तथा स्कूल हैं जहाँ विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा दी जाती है। सन् १८८६ ई० में महर्षि स्वामी दयानन्द के स्मारक के रूप में लाहौर में एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की गई। दलित वर्गों के लिये विशेष रूप से चलने वाले दिन-स्कूल तथा रात्रि-पाठशालायें हैं। इसकी ओर से कन्याओं की शिक्षा की ओर भी समुचित ध्यान दिया गया। लगभग सभी बड़े-बड़े नगरों में कन्या पाठशालायें हैं जिनमें जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय प्रमुख है। कांगड़ी (हरिद्वार) के प्रसिद्ध गुरुकुल का भी उल्लेख आवश्यक है जहाँ बच्चे सात वर्ष की अवस्था में भर्ती किये जाते हैं और पच्चीस वर्ष की अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करते हैं। 'समाज' ने हिन्दी के पक्ष में भी बड़ा प्रचार किया। पंजाब में हिन्दी भाषा की रक्षा के लिए 'समाज' की ओर आन्दोलन किया गया जिसमें इसको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। उसी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा के जानकारों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई।

(५) **राजनीतिक कार्य** (Political activities)—आर्य-समाज मुख्यतः हिन्दू सुधार-आन्दोलन ही था किन्तु राजनीतिक संगठन नहीं। लेकिन राष्ट्र की राजनीतिक चेतना में इसका विशेष हाथ रहा है। यह मातृ-भूमि के प्रति गौरव-भक्ति तथा अपने में आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न करता है और साथ ही साथ दृढ़

चरित्र तथा स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम जागृत करता है। इसके सदस्यों में किसी प्रकार की हीनता की भावना नहीं देखी जाती। इन कारणों से यदि यह विदेशी सरकार की दृष्टि में खटकता रहा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द जी ने ही पहले पहल स्वदेशी-मन्त्र की शिक्षा दी और पश्चिमी विचारों तथा आदर्शों के प्रति अन्ध-विश्वास के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। कांग्रेस के राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम के बहुत से अंगों के प्रेरणा का श्रेय आर्य-समाज को प्राप्त है। इसने राष्ट्र को स्वर्गीय लाला लाजपत राय तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे अनेक नेता राजनीतिक क्षेत्र में प्रदान किये हैं।

'दी कलचरल हैरिटेज आफ इण्डिया' (The Cultural Heritage of India) नामक पुस्तक में एक लेख में स्वामी विवेकानन्द ने आर्य-समाज की सफलताओं का इन शब्दों में वर्णन किया है—

वेदों के प्रति एकाकी दृष्टिकोण के कारण आर्य-समाज में चाहे जो दोष उत्पन्न हो गये हों फिर भी इस आन्दोलन ने लोगों में हिन्दुत्व का एक नया मन्त्र फूंक दिया और इसी कारण हिन्दू जाति में यह इतना प्रिय बना। इसके अतिरिक्त मूर्ति-पूजा का खंडन करके इसने आधुनिक बुद्धिवादी लोगों के विचारों का भी स्पर्श किया। मूर्ति-पूजा के स्थान पर वैदिक यज्ञादि के विधान ने आर्य-समाज में कुछ मन लुभाने वाला आकर्षण उत्पन्न कर दिया। अन्त में, सामाजिक रीति-रिवाजों का शीघ्र परिवर्तन तो युग की माँग थी। इन सबने मिलकर आर्य-समाज के धर्म-परिवर्तनों के प्रयत्नों को भी सफलता प्रदान की। सारे उत्तरी भारत विशेषतः पंजाब में, यह नया विश्वास दावाग्नि के समान फैला और कुछ ही वर्षों में इसने कई लाख व्यक्तियों को अपने सिद्धान्त में दीक्षित कर लिया। इस प्रकार आर्य-समाज ने पर्याप्त वृहत क्षेत्र से विदेशी सभ्यता के विनाशकारी प्रभावों को समाप्त किया और देश के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण सफल अध्याय जोड़ा।"

थियोसोफिकल सोसाइटी
(Theosophical Society)

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना ७ सितम्बर १८६५ ई० में अमेरिका के न्यूयार्क (New York) नगर में हुई। इसकी स्थापना का श्रेय रूसी महिला ब्लैवट्स्की तथा अमेरिकी सेना के हेनरी स्टील आलकट नाम के एक कर्नल को है। वास्तव में इस सोसाइटी का हिन्दू धर्म के सुधार आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य सृष्टि, मनुष्य तथा उसके अन्तिम लक्ष्य के विषय में कुछ तथ्यों तथा उन पर आधारित जीवन की एक विशिष्ट प्रणाली का प्रचार ही करना था। इसके द्वारा शिक्षित हिन्दुओं का अपने साहित्य तथा धर्म में विश्वास पुनर्जीवित हुआ और इसने ईसाई मत तथा भौतिकता के प्रभाव तथा उसकी विचारधारा को दक्षिण में रोकने का वही कार्य किया जो आर्य-समाज ने उत्तरी भारत में किया। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने इस सोसाइटी के दोनों संस्थापकों को भारत में आमन्त्रित किया। भारत आगमन पर उन्होंने भारत के अनेक भागों का भ्रमण किया जहाँ

उन्होंने भाषण दिये जिसमें उन्होंने हिन्दुओं का ध्यान उनकी तत्कालीन दीन दशा की ओर आकर्षित किया और उन्होंने गौरवपूर्ण प्राचीन हिन्दू धर्म को उन समस्त दोषों से अलग करने का आदेश दिया जो उसकी सजीवता को नष्ट किये डाल रहे हैं। हिन्दू धर्म के अध्ययन के लिये भी उन्होंने अनेक संस्थाओं की स्थापना की। भारत में काम करने के लिए अमरीका का प्रमुख स्थान उन्होंने सन् १८८३ में न्यूयार्क से हटाकर अदयार (मद्रास) में कर दिया। इनके कार्य का प्रमुख ध्येय भारतीयों को अपने राष्ट्रीय धर्म का आदर करने की शिक्षा देना था। सरकारी शिक्षण संस्थाओं तथा ईसाई पादरियों द्वारा दी गई अधार्मिक तथा राष्ट्र विरुद्ध शिक्षा हिन्दुओं के राष्ट्रीय धर्म का नाश कर रही थी। सर हेनरी आलकट ने इसका बड़ा विरोध किया।

सोसाइटी के मुख्य सिद्धान्त (Main Principles of the Society)—इस सोसाइटी के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

ये सब धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं। इसके अनुसार समस्त धर्मों में हिन्दू तथा बौद्ध धर्म उच्च हैं। ये लोग धर्म-परिवर्तन को अच्छा नहीं मानते। इस कारण प्रत्येक धर्म का अनुयायी इस सोसाइटी का सदस्य हो सकता है। इनका पुनर्जन्म और कर्मकाण्ड में विश्वास है। इसमें जाति-पाति का भेद नहीं है। इसके अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है। समस्त आत्माएँ समान हैं। इन्होंने मातृ-भाव का उपदेश दिया और बतलाया कि प्रत्येक मनुष्य को एक दूसरे से भाई के समान प्रेम करना चाहिये। इनका विश्वास है कि इस लोक के अतिरिक्त एक और लोक है जहाँ आत्माएँ निवास करती हैं जो इस लोक की आत्माओं की सदा सहायता करने को तत्पर रहती हैं।

सोसाइटी के उद्देश्य (Aims of the society)—इस सोसाइटी के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(१) विश्वव्यापी मानव-समाज में मातृ-भाव उत्पन्न करना।

(२) धर्म, वेदान्त एवं विज्ञान के अध्ययन के लिये मनुष्य मात्र को प्रोत्साहित करना।

(३) रहस्यमय स्वाभाविक नियमों की खोज करना एवं मनुष्य की गुप्त शक्तियों को प्रकाश में लाना।

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के कार्य (Activities of Annie Besant)—इस सोसाइटी ने आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेंट (Hnnie Besant) के नेतृत्व में विशेष उन्नति की। बचपन से ही इनको ईसाई धर्म से घृणा हो गई थी। थियोसोफिकल सोसाइटी के एक सदस्य के रूप में वे १८ ३ ई० में भारत आईं और बाद में वे सोसाइटी की प्रमुख सदस्य बन गईं। वे प्रत्येक दृष्टि से हिन्दू हो गईं और हिन्दू तथा गैर-हिन्दू, सभी प्रकार के आलोचकों द्वारा व्यर्थ बतलाये जाने वाले अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों के भी पक्ष में बड़े उत्साहपूर्ण तथा वैज्ञानिक तर्क रखने लगीं। उन्होंने वेदों तथा उपनिषदों में अपना विश्वास तथा हिन्दू संस्कृति की पाश्चात्य संस्कृति की अपेक्षा उच्चता की स्पष्ट घोषणा की। उन्होंने मूर्ति-पूजा का भी समर्थन किया जिसको ब्रह्म-

समाज तथा आर्य-समाज ने निकृष्ट घोषित किया था, उन्होंने जाति-व्यवस्था का, उसके मूल रूप में पक्ष लिया और सती प्रथा तक का भी समर्थन किया, किन्तु उस समय जब विधवा अपनी इच्छा से सती होना चाहती हो। यह कहा जा सकता है कि ऐनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में भारत में थियोसोफी हिन्दू जागृति की प्रवृत्ति बन गई। सर वेलेंटाइन सिरोल (Sir Volentine Ceirrol) ने अपनी इण्डियन अनरेस्ट (Indian Unrest) नामक पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

'श्रीमती ब्लैवटस्की तथा कर्नल आरकट के नेतृत्व में थियोसोफिस्टों के आगमन ने हिन्दू जाति को एक नई शक्ति प्रदान की और किसी भी हिन्दू ने इस आन्दोलन को सगठित तथा व्यवस्थित करने के लिये उतना कार्य नहीं किया जितना ऐनी बेसेन्ट ने। उसने सेन्ट्रल हिन्दू कालिज बनाया तथा मद्रास के निकट अदयार वाली थियोसोफिकल संस्था द्वारा पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के समय हिन्दू धर्म की उच्चता की स्पष्ट रूप से घोषणा की। हिन्दुओं का हमारी सभ्यता की ओर से मुह मोड़ लेना तक क्या आश्चर्यजनक है जब एक प्रखर बुद्धि तथा अद्वितीय वाक्-शक्ति सम्पन्न योरोपीय महिला आकर उन्हें यह बतलाती है कि सर्वोच्च ज्ञान की कुन्जी उन्हीं के पास है और सदैव से रही है। उनके देवस्व उनके दर्शन तथा उनकी नैतिकता विचार की उस उच्च भूमि पर है जहाँ तक पश्चिम अभी तक नहीं पहुँच पाया है।"

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की सबसे बड़ी सफलता सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल तथा सेन्ट्रल हिन्दू कालिज, बनारस की स्थापना है। यह कालिज अब हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम से जगत-विख्यात है। उन्होंने सामाजिक सुधारों की ओर भी ध्यान दिया। उनके सेन्ट्रल हिन्दू कालिज में विवाहित बालकों को प्रवेश नहीं मिलता। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने अपने साथ कार्य करने वालों तथा सच्चे अनुयायियों से अपनी कन्याओं का छोटी अवस्था में विवाह न करने की प्रतिज्ञा करवाई थी। उन्होंने इंगलैंड तथा अन्य देशों तक सामुद्रिक यात्रा करने वाले भारतीय हिन्दुओं को जाति में सम्मिलित कर लेने की व्यवस्था भी की। अन्त में उन्होंने 'इण्डिया होम-रूल लीग' (India Home-Rule League) की स्थापना कर आन्दोलन किया और इस सम्बन्ध में उनको कारागार की यातनायें भोगनी पड़ीं। १९१७ में कांग्रेस-अधिवेशन की अध्यक्षा निर्वाचित हुईं। हिन्दू-शास्त्रों का अनुवाद सहित प्रकाशन करके थियोसोफिकल सोसायटी ने हिन्दू धर्म की बड़ी सेवा की और इस प्रकार शिक्षित हिन्दुओं को अपने धर्म का ज्ञान हुआ। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज की कुछ कुरीतियों को दूर करने में इनको विशेष सफलता प्राप्त हुई।

राम कृष्ण मिशन
(Ram Krishna Mission)

श्री राम कृष्ण परमहंस का स्थान भारत की महान् विभूतियों में किया जाता है। यह भी राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान काद्रष थे, किन्तु इनमें उन लोगों के समान विद्वता तथा वाक्-शक्ति नहीं थी। यद्यपि

कृष्ण परमहंस ने किसी धर्म-विशेष की स्थापना नहीं की तो भी हिन्दू इनके विचारों की छाप स्पष्ट दिखलाई देती है। विचार-क्षेत्र में केशवचन्द्र बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे नेताओं ने भी इनकी महानता स्वीकार की। सन् ई० मे इनकी मृत्यु के उपरान्त उनके योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द के उनके लगभग एक दर्जन शिष्यों ने एक संस्था की स्थापना की जो 'राम मिशन' के नाम से विख्यात है। उन्होंने जीवन भर ब्रह्मचर्य तथा सादगी का व्रत और निर्बल तथा गरीबों की सेवा मे अपना समस्त जीवन व्यतीत किया।

श्री रामकृष्ण ने हिन्दू धर्म मे एक पूर्ण आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की उनका जीवन तथा उनकी अनुभूतियाँ इससे भी महान् सत्य की प्रत्यक्ष उदाहरण हीं। बालपन मे ही इनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति थी। इनकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। संसार मे इनका मन नहीं लगा और ईश्वर का दर्शन करने के लिये लालायित हो गये। कुछ समय उपरान्त उन्होंने सन्यास धारण किया। काली पूजा की असीम भक्ति थी। इन्होंने सब धर्मों की खोज की और उनके अनुसार जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न भी किया। ये सब धर्मों को एक ही सनातन- अंग मानते थे। अन्त में, अचेतन अवस्था मे इनको कृष्ण भगवान के दर्शन उन्होंने किसी धर्म का खंडन नहीं किया। कुछ अपनी आत्मा को उन्नत तथा पवित्र करने के से इन्होंने चांडाल का कार्य भी किया। इन्होंने धर्म की व्यवस्था वेदांत-दर्शन के आधार पर की।

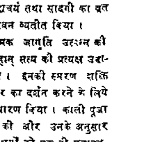

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द (Swami Vivecanand)— साहित्य एवं प्रतिभा का प्रभाव शिक्षित समाज पर रूप से पड़ा। इनके मुख्य शिष्यों मे नरेन्द्रनाथ हुये बाद मे स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात उन्होंने अपने गुरु का संदेश यूरोप तथा अमेरिका पहुँचाया। उन्होंने वहाँ कई स्थानों पर मिशन की ओं की स्थापना की। एक बार स्वामी विवेका- शिकागो (Chicago) में होने वाले धर्म सम्मेलन में भी सम्मिलित हुए। इनके अनुयायियों की संख्या अमेरिका मे पर्याप्त है।

स्वामी विवेकानन्द को वेदान्त का प्रचार करने मे स्वामी रामतीर्थ से भी बड़ी प्राप्त हुई। इन्होंने अपने पद का त्यागकर समस्त जीवन वेदान्त के प्रचार मे। इन्होंने जापान, अमेरिका तथा यूरोप के विभिन्न देशों का भ्रमण किया। भाषणों का संग्रह In Words of God Realization' नामक पुस्तक मे है। या मे ही इनकी मृत्यु हो गई जब उनकी अवस्था केवल ३३ वर्ष की ही थी।

मिशन के सिद्धान्त (Principles of the Mission)—इसके मुख्य सिद्धान्त कार थे—

(१) सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों मे समता का अंश है। इसलिये किसी व्यक्ति

को अपने धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए।

(२) ईश्वर अजन्मा, अजेय तथा अमर है।

(३) आत्मा परमात्मा का अंश है।

(४) इनका मूर्ति-पूजा में विश्वास था। इनके अनुसार मूर्ति-पूजा द्वारा ईश्वर के दर्शन सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं।

(५) भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों में श्रेष्ठ है।

(६) यूरोप के राष्ट्र एवं संस्कृति कलुषित हैं क्योंकि इनमें स्वार्थ की मात्रा बहुत अधिक है।

इस मत के अनुयायियों की संख्या अधिक न हो पाई। इस संस्था ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। निर्धनादि की सहायता के लिये वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं। यूरोप तथा अमेरिका में अब भी इनका प्रचार बराबर जारी है। जब कभी देश पर कोई संकट आया तो उसके निवारण में इस संस्था ने बड़ा सहयोग दिया।

राधा स्वामी सत्संग
(Radha Swami Satsang)

राधा स्वामी सत्संग की स्थापना श्री शिवदयालु जी ने आगरे में १८५१ ई० में की। आप आगरा-निवासी थे। आपका जन्म खत्री कुल में हुआ था। इनको राधा स्वामी से ईश्वर का ज्ञान हुआ और इसी कारण यह राधा स्वामी सत्संग के नाम से विख्यात हुआ।

सत्संग के अनुयायियों की ऐसी धारणा है कि राधा स्वामी संसार में मनुष्य का रूप धारण कर आये और उन्होंने सद्गुरु की पदवी धारण की। सन् १८७८ ई० में श्री शिवदयाल जी की मृत्यु हुई। प्रथम पांच गुरुओं के समय में इनका विशेष प्रभाव जनता पर नहीं पड़ा जिसके कारण इनके अनुयायियों की संख्या बहुत कम रही। छोटे गुरु श्री आनन्दस्वरूप जी के समय में सत्संग ने विशेष रूप से उन्नति की। उन्हीं के समय में दयालबाग की स्थापना हुई।

इस सत्संग का उद्देश्य धार्मिक होने के साथ-साथ औद्योगिक भी है। इसमें भी जाति-पाति के लिए कोई विशेष स्थान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो सत्संग का सदस्य बन सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं कि मंत्र पाने के उपरान्त किसी व्यक्ति को अपने पूर्व के धार्मिक विश्वासों का त्याग करना होगा।

इस धर्म में गुरु की बड़ी महत्ता है। ये गुरु को ईश्वर का अवतार मानते हैं। इस कारण इसका प्रमुख अंग गुरु-भक्ति है। ये लोग गुरु की प्रत्येक वस्तु को बड़े आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इनका ऐसा विश्वास है कि उनका गुरु ही सब सत्य है और सत्य का ज्ञान करवाने वाला भी वही है। इसी कारण ये लोग अपने गुरु की आराधना करना आवश्यक समझते हैं। इनका मुख्य मन्त्र 'सुरत ... आत्मा मानते हैं और 'शब्द' वह आध्या-

त्मिक धारा है जो ईश्वर के पास से आती है। 'सूरत-शब्द योग' अभ्यास एवं आराधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ये लोग ईश्वर, संसार और जीवात्मा को सत्य मानते हैं। इनका पुनर्जन्म में विश्वास है। इनके धार्मिक सिद्धान्तों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना कठिन है, क्योंकि गुरु द्वारा इनको गुप्त रखने की प्रतिज्ञा कराई जाती है। इनकी सामूहिक उपासना में गुरु नानक, कबीर तथा दादू आदि सन्तों की वाणियाँ बहुधा सुनाई देती हैं। ये लोग किसी भी पवित्र स्थान पर बैठकर सत्संग कर सकते हैं। इनमें प्रेम और भ्रातृ-भाव का स्थान बहुत ऊंचा है।

मुस्लिम धार्मिक आन्दोलन
(Muslim Religious Movements)

समय का प्रभाव इस्लाम धर्म पर भी पड़े बिना न रह सका। इस धर्म में भी कुछ दोष तथा मुस्लिम समाज में भी कुछ कुरीतियाँ उत्पन्न होने लगी थीं। शासकों द्वारा दी गई शिक्षा का लाभ न उठाने के कारण मुसलमानों की दशा और भी गिर गई। उस पर हिन्दू धर्म का भी प्रभाव पड़ा जिसके कारण उनमें हिन्दुओं के कुछ रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं ने घर कर लिया। इन पर भी नवीन जागृति का प्रभाव पड़ा और कुछ विचारकों का ध्यान इस्लाम धर्म में सुधार की ओर आकर्षित हुआ। ये धार्मिक आन्दोलनों के साथ सामाजिक भी थे। प्रमुख आन्दोलन निम्नलिखित हैं :—

(१) वहाबी आन्दोलन (Wahabi Movement)—सैयद अहमद बरेलवी प्रथम मुस्लिम विचारक थे जिनका ध्यान इस्लाम धर्म तथा मुसलमान समाज की ओर आकर्षित हुआ। वे राजा राममोहन राय के समकालीन थे। इन पर अरब के वहाबी आन्दोलन का बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी कारण आन्दोलन भी वहाबी आन्दोलन के नाम से ही विख्यात हुआ। उन्होंने जन-साधारण के प्रयोग के लिये कुरान का फारसी में अनुवाद किया। उन्होंने ईश्वर की एकता पर जोर दिया और कुरान की व्याख्या करने का अधिकार प्रत्येक मुसलमान को दिया। वे नव अनुयायियों में से इस्लाम विरोधी भावनाओं का पूर्णतया अन्त करना चाहते थे। इस प्रकार के मुसलमानों में अपने प्राचीन धर्म की बहुत कुछ बातें विद्यमान थीं जो इस्लाम धर्म का विरोध करती थीं। उन्होंने मुसलमानों की उन्नति के लिए जीवन भर भरसक प्रयत्न किया। वे भारत में मुसलमान राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं में विरोध की भावना जागृत करने का भी प्रयत्न किया। वे पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के विरोधी थे। वे काफिरों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध का उपदेश देते थे। उस समय इस आन्दोलन को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु इसने इस्लाम धर्म की कुछ कुरीतियों का अवश्य अन्त किया।

(२) अलीगढ़ आन्दोलन (Aligarh Movement)—उन्नीसवीं शताब्दी में मुसलमानों की सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों व अन्ध-विश्वास को दूर करने के

लिए पुनः प्रयत्न किया गया। इस शताब्दी के आन्दोलन में अलीगढ़ आन्दोलन विशेष प्रसिद्ध है जिसके साथ सर सैयद अहमद खाँ का नाम भी संयुक्त है। इनका जन्म १८१६ ई० में हुआ और मृत्यु १८९८ ई० में हुई। जीवन भर उन्होंने मुसलमानों को जागृत तथा उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अंग्रेजों के हृदय से इस बात को निकालने की भरसक चेष्टा की कि १८५७ की क्रान्ति के लिये मुसलमान उत्तरदायी हैं। इनको इस दिशा में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। वे अपनी जाति में आत्म-विश्वास तथा सतत प्रयत्न की भावना भी भरना चाहते थे और उनको इस्लाम की प्रारम्भिक सादगी की ओर ले जाना चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों का ध्यान पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा की ओर आकर्षित किया। उनके अनुसार मुसलमान जाति केवल उस समय उन्नति कर सकती है जब वह विज्ञान आदि की शिक्षा अंग्रेजी अध्ययन द्वारा प्राप्त करे। इसके प्रति मुल्लाओं, मौलवियों तथा पुराने परम्परा वाले व्यक्तियों का विरोध विशेष रूप से था। उन्होंने उनकी शिक्षाओं का विरोध किया और यह समझाया कि पश्चिमी शिक्षा से मुसलमानों को कोई हानि नहीं होगी। उन्होंने बतलाया कि स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहेब ने कहा था कि 'ज्ञान के लिए चीन की दीवार तक भी चल जाओ'। उन्होंने लोगों को यह समझाया कि ईसाइयों के साथ बैठकर खाने में कोई हानि नहीं है, यदि भोजन त्याज्य न हो। उन्होंने स्वयं पश्चिमी रहन-सहन अपनाया, वह यूरोपियनों को अपने घर आमन्त्रित करते और स्वयं उनका आतिथ्य स्वीकार करते थे। इन विचारों के कारण उनकी बड़ी निन्दा हुई, किन्तु अन्त में वे विजयी हुए और जीवन के अन्तिम वर्षों में वे मुस्लिम विचार-धारा को प्रभावित करने में सफल हुए। वे पर्दा प्रथा के विरोधी थे और स्त्री शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कुरान की टीका भी की। शिक्षा का महत्व समझते हुए उन्होंने अलीगढ़ में १८७५ ई० में मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियन्टल कालिज (Mohammadan Anglo Oriental College) की स्थापना की जो बाद में मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हुआ। यह मुसलमानों की प्रथम शिक्षण-संस्था है जिसका भारत के विभिन्न भागों से आने वाले मुस्लिम विद्यार्थियों को विचार धारा तथा चरित्र को प्रभावित करने में बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने मुस्लिम-शिक्षा सम्मेलन की स्थापना की। इसका अधिवेशन प्रति वर्ष किसी बड़े नगर में होता रहा है। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे। इसको प्राप्त करने के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। इनके प्रयत्नों के कारण ही आज मुसलमान उत्तम अवस्था को प्राप्त करने में सफल हुए।

> मुस्लिम धार्मिक आन्दोलन
> (१) वहाबी आन्दोलन।
> (२) अलीगढ़ आन्दोलन।
> (३) अहमदिया आन्दोलन।

(३) अहमदिया आन्दोलन (Ahmadia Movement)—इस आन्दोलन के चलाने का श्रेय मिर्जा गुलाम अहमद को प्राप्त है। मिर्जा जी का जन्म १८३५ ई० में गुरदासपुर जिले के कादियान नामक गाँव में हुआ था। वे अरबी, फारसी तथा उर्दू के विद्वान थे। उनकी मृत्यु १९०८ ई० में हुई। वे अपने को ईश्वरीय सिद्ध करते थे।

मुसलमानों मेहदी तथा विष्णु का अन्तिम अवतार मानते थे। उनका कहना था कि उनका जन्म केवल इस्लाम धर्म में ही सुधार करने के लिये नहीं; अपितु हिन्दू तथा ईसाई धर्मों को भी पुनर्जीवित करने के लिये हुआ है। पंजाब के मुसलमानों में उनके अनुयायी पाये जाते हैं। उनका हिन्दुओं तथा ईसाइयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनका ऐसा विश्वास था कि ईसामसीह की मृत्यु वास पर नहीं हुई। घावों के ठीक होने पर वे भारत आये और काश्मीर में उनकी मृत्यु कई वर्षों के उपरान्त हुई। उनका विश्वास था कि सब धर्म मनुष्य को सच्चे मार्ग पर ले जाते हैं, किन्तु इस्लाम धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ है। ये सनातनी विचारों के थे। इन्होंने पर्दा प्रथा का समर्थन और तलाक तथा बहुविवाह प्रथा का अनुमोदन किया। कादयानी दल इनको नबी मानता है।

सामाजिक प्रगति
(Social Reawakening)

उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि धर्म के साथ-साथ समाज में भी अनेक कुरीतियां उत्पन्न हो गई थीं जिनके कारण भारतीय सामाजिक जीवन निस्तेज तथा निस्पंद हो गया था। इनमें मुख्य कन्या-वध, बाल-वध सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता मुख्य थीं। कम्पनी के प्रारम्भिक काल में शासकों ने इन दोषों को दूर करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया क्योंकि कम्पनी का ध्यान अपनी व्यापारिक उन्नति तथा राज्य विस्तार की ओर विशेष रूप से आकर्षित था। समस्त धार्मिक आन्दोलनों ने इन कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करना आरम्भ किया, किन्तु उन दोषों को पूर्णतया दूर उस समय तक किया जाना सम्भव नहीं था जब तक कि सरकार के पदाधिकारी उनको न्याय-संगत घोषित न करें। धार्मिक आन्दोलनों के कारण सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और उसने भी इनको दूर करने का प्रयत्न किया।

> **सामाजिक प्रगति**
> (१) बाल-वध का अन्त।
> (२) कन्या-वध का अन्त।
> (३) सती-प्रथा का अन्त।
> (४) विधवा-विवाह।
> (५) बाल-विवाह तथा बेमेल विवाह।

(१) बाल-वध का अन्त—पर्याप्त समय से हिन्दुओं में बाल-वध की दूषित प्रथा प्रचलित थी। देवी, चण्डिका, काली आदि की शक्तियों की उपासना के लिए तथा उनको प्रसन्न करने के लिये बहुत से लोग बालकों की बलि दिया करते थे। कुछ लोग बच्चों को गंगा-सागर तथा गंगा-माता की भेंट चढ़ाते थे। इस प्रथा के विरुद्ध १७६५ ई० में सरकार ने एक कानून बनाकर बाल-हत्या को नर-हत्या के नाम से पुकार कर उसका अन्त किया। अतः इस समय से यह प्रथा अवैध घोषित कर दी गई।

(२) कन्या-वध का अन्त—कन्या वध की प्रथा मुख्यतः राजपूतों, जाटों और मेवारो मे प्रचलित थी। वे कन्या को अशुभ समझते थे। विवाह में दहेज की प्रथा के प्रचलन के कारण वे कन्याओं को भार समझने लगे थे और कन्या के जन्म लेते ही उसका वध कर दिया करते थे। १८०२ और १८०४ में इस प्रथा के विरुद्ध कानून बनाये गये और वह भी अवैध घोषित कर दी गई।

(३) सती-प्रथा का अन्त—भारतीयों मे ऐसा रिवाज प्रचलित हो गया था कि पति की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी को उसकी चिन्ता मे अपने आपको भस्मीभूत करना पड़ता था। कट्टर पंथियों को यह धारणा थी कि इस प्रथा के अनुसार पति कुल का उद्धार होता था। इतिहास मे राजपूतो की जौहर की प्रथा का उल्लेख आता है। वे उस समय इस प्रथा का पालन स्वेच्छा से करती थी जब उनको स्पष्ट हो जाता था कि शत्रुओं की विजय अवश्यम्भावी है और उनके सतीत्व की रक्षा इसी प्रकार होनी सम्भव है। यह प्रथा बाद में साधारण परिवारों मे भी प्रचलित हो गई। धर्म-परायण स्त्रियां प्रारम्भ मे सती अपनी स्वेच्छा से होती थीं, किन्तु बाद में स्त्रियों को बलपूर्वक सती होने के लिए बाध्य किया जाता था। इस प्रथा को बन्द करने के लिए कुछ मध्यकालीन शासकों ने प्रयत्न भी किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक युग में राजा राममोहन राय ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया। इस प्रथा के अन्त करने के लिये उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सरकार ने 'विजिलेन्स समिति' (Vigilance Committee) बनाई जिसकी सिफारिश पर लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। धर्म-सभा तथा कट्टर हिन्दुओं की ओर से सरकार के इस कार्य का बड़ा विरोध किया गया, किन्तु राजा राममोहन राय के प्रयत्नों के कारण उनको सफलता प्राप्त नही हुई। धीरे-धीरे इस प्रथा का अन्त होने लगा। बाद में लार्ड हार्डिञ्ज ने देशी राज्यों मे भी इस प्रथा को बन्द करवाया।

(४) विधवा-विवाह—सती प्रथा के अवैध घोषित किये जाने पर तथा उसके अन्त होने के कारण भारतीय समाज में विधवाओं की एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। बाल-विवाह, बहु-विवाह तथा बेमेल विवाह के कारण विधवाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि होने लगी। विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके साथ परिवार के लोगों का व्यवहार बड़ा कलुषित तथा दूषित था। शुभ अवसरों पर उनका देखा जाना भी बुरा माना जाता था। वास्तव में विधवाओं का जीवन अत्यन्त दुःखमय था। समस्त धार्मिक आन्दोलनों ने उनका उद्धार करने का प्रयत्न किया। बंगाल में पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह के लिए एक आन्दोलन किया। उन्होंने हिन्दू स्मृति तथा शास्त्रों के आधार पर विधवा-विवाह न्याय संगत प्रमाणित किया। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप १८५६ ई० में सरकार ने विधवा-विवाह का समर्थन किया। सन् १८८३ ई० में श्री शशीपद बनर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनकी सहायता के लिए एक संस्था की स्थापना की। इसके उपरान्त अन्य प्रान्तों में भी इनकी सहायतार्थ कुछ केन्द्रों तथा आश्रमों की स्थापना की गई। अनेक सुधारकों ने जनता का ध्यान इच्छा विरुद्ध वैधव्य की ओर आक-

पित किया। उनको इस दिशा में उतनी सफलता तो प्राप्त नहीं हो पाई कि इस समस्या का पूर्णतया समाधान ही हो जाये किन्तु सफलता अवश्य प्राप्त हुई। अखिल भारतीय महिला संघ की ओर से विधवाओं की समस्या का निराकरण करने के लिए अथक प्रयत्न किये गये, किन्तु अब भी उनकी अवस्था विशेष उन्नत नहीं है। इस ओर अभी और प्रयत्न किये जाने आवश्यक है। स्त्रियों के शिक्षित तथा स्वावलम्बी होने पर इस समस्या का समाधान पूर्णरूपेण हो जायेगा।

(५) बाल विवाह तथा बेमेल विवाह—भारतीयों में दोनों कुप्रथायें पर्याप्त समय से प्रचलित थी। कुछ छोटी जातियों में ये प्रथायें आज भी प्रचलित है। समाज तथा धार्मिक आन्दोलनों ने इनका भी अन्त करने का घोर प्रयत्न किया। सबने ही इनका विरोध किया। श्री केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों के द्वारा सन् १८७२ ई० में सरकार ने 'नटिव मैरीज एक्ट' (Native Marriage Act) पास किया जिसके द्वारा बाल-विवाह तथा बेमेल विवाह अवैध घोषित कर दिये गये। विधवा विवाह तथा बेमेल विवाह को रोकने का कार्य ब्रह्म समाज तथा आर्य-समाज द्वारा भी किया गया. किन्तु इस कार्य में सबसे महत्वपूर्ण योग पारसी पत्रकार श्री बहराम जी मालाबारी द्वारा किया गया। उन्होंने बाल-विवाह के विरुद्ध अपनी पुस्तकों द्वारा आन्दोलन किये जिससे प्रभावित होकर सन् १८९१ ई० में 'एज आफ कन्सेंट एक्ट' (Age of Consent Act) पास किया गया जिसके अनुसार सहवास की अवस्था १२ वर्ष की कर दी गई। कट्टर पंथी हिन्दुओं ने इस एक्ट का बड़ा विरोध किया और उन्होंने महारानी विक्टोरिया की दुहाई दी जिसमें कहा गया कि सरकार सामाजिक और धार्मिक बातों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी। सन् १९११ ई० में बड़ोदा सरकार ने बाल-विवाह निषेधक कानून पास किया जिसके अनुसार लड़के और लड़की की आयु विवाह के समय कम से कम क्रमशः १६ और १२ निश्चित की गई। १९३० ई० में श्री हरविलास शारदा के प्रयत्नों से उनके नाम पर ही शारदा एक्ट (Sharda Act) पास हुआ जिसके अनुसार लड़के व लड़की की आयु विवाह के समय कम से कम क्रमशः १८ और १४ निश्चित की गई। इन एक्टों द्वारा बाल-विवाह का पूर्णतया अन्त हो गया। सरकार इस ओर से उदासीन रही। शिक्षा के प्रचार के कारण इस प्रथा का अन्त होना आरम्भ हो गया है किन्तु गावों में आज भी बाल-विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है।

स्त्रियों की दशा

(Condition of Women)

किसी समाज की सभ्यता, संस्कृति एवं उसके सामाजिक स्तर की जांच उस समाज में स्त्रियों के स्थान से की जाती है। इसका कारण यह है कि बालकों पर प्रारम्भिक प्रभाव उनकी माता का विशेष रूप से पड़ता है और यह प्रारम्भिक प्रभाव इतना दृढ़ होता है कि आगे की शिक्षा बालकों को इतना अधिक प्रभावित नहीं कर पाती। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वास्तव में नारी का स्थान समाज के उत्थान और पतन में बहुत अधिक है।

स्त्रियों की वर्तमान सामाजिक हीनता—*स्त्रियों की वर्तमान हीन दशा के लिए* शिक्षा का अभाव तथा आर्थिक पराधीनता के लिए पर्दा तथा कन्याओं की हत्या *आदि विशेष रूप से उत्तरदायी हैं।* उनकी वर्तमान हीनता का परिचय कई बातों से मिलता है। *अंग्रेजी शासन काल में भी पर्याप्त समय तक उनको उन्हीं असमर्थताओं* का सामना करना पड़ा जो कि मुगलकाल में थीं। यह तो मानना पड़ेगा कि पाश्चात्य *सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव के कारण उनकी दशा कुछ उन्नत हुई, किन्तु यह केवल* शिक्षित परिवारों के लिये सत्य है। अशिक्षित परिवारों तथा ग्रामों में उनकी दशा *पूर्ववत् ही बनी रही। उनका स्थान प्रत्येक दशा में मनुष्य से नीचा था।* वह केवल भोग-विलास की सामग्री के रूप में प्रयुक्त होने लगीं। उनको राजनीतिक क्षेत्र में भी अधिकार प्राप्त नहीं था। उनको सदा दूसरों के सहारे रहना पड़ता था। उनको कन्या *के रूप में पिता पर, पत्नी के रूप में पति पर तथा वृद्धावस्था में पुत्रों के ऊपर निर्भर* रहना पड़ता था। स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत निम्न है जो ५ प्रतिशत से *अधिक नहीं है। हर्ष का विषय है कि इस दिशा में बराबर उन्नति हो रही है।* स्त्री-शिक्षा की ओर समाज की उदासीनता तथा शिक्षा में बाधक होने वाली प्रथाओं *का अन्त हो रहा है, किन्तु अब भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है।*

स्त्री-सुधार आन्दोलन (Women's Reforms Movement)—सर्वप्रथम *ब्रह्म समाज ने स्त्रियों की दशा को उन्नत करने का प्रयत्न किया।* उन्होंने पर्दा-प्रथा का विरोध किया तथा उनके प्रयत्नों से *सती प्रथा का अन्त हुआ। श्री केशवचन्द्र* सेन ने विधवा विवाह के लिये आन्दोलन *किया।* १८५६ ई० में सरकार ने विधवा-विवाह को वैध घोषित किया। इनके कारण स्त्रियों में जागृति होने लगी। इसका प्रभाव वास्तव में *कुछ सीमित क्षेत्रों में हुआ* क्योंकि ब्रह्म-समाज भारतीय आन्दोलन का रूप धारण न कर सका। इसके बाद आर्य-समाज ने इस आन्दोलन को उठाया। उसका कार्य इस दशा में *बड़ा प्रशंसनीय* रहा। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवा-विवाह का समर्थन किया। लेकिन इस दिशा में विशेष आन्दोलन १९१४–१९१८ *के प्रथम महायुद्ध के उपरान्त* हुआ जब इसका रूप अखिल भारतीय तथा राजनीतिक हो गया। होम रूल लीग (Home Rule League) के आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर *भारतीय महिलाओं* ने अपने अधिकारों के विषय में सोचना आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि भारत में स्त्री-सुधार आन्दोलन उतना *आवेशपूर्ण नहीं रहा जितना* कि यूरोप में था। इसका विकास बहुत ही शान्तिमय रहा है। जिस सरलता से उनको अधिकार प्राप्त हुये उनसे स्पष्ट हो जाता है कि *भारतीय लोग नारीत्व का कितना अधिक आदर करते हैं।*

> **स्त्री सुधार आन्दोलन**
> (१) राजनीतिक जागृति।
> (२) सामाजिक प्रगति।
> (३) कानून-सम्बन्धी सुधार।

स्त्रियों की प्रगति को साधारणतया तीन भागों में *विभाजित किया जा सकता*

है जो राजनीतिक, सामाजिक तथा कानूनी हैं। निम्न पंक्तियों मे इनके ऊपर अलग अलग विचार किया जायगा—

(१) राजनीतिक प्रगति—१९२१ के पूर्व भारतीय नारियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। १९१९ के भारत सरकार अधिनियम ने उनको वोट देने का अधिकार प्रदान नहीं किया, यद्यपि दिसम्बर १८, १९१७ को मद्रास में अखिल भारतीय महिलाओं का शिष्ट-मण्डल भारत-मन्त्री श्री माटेग्यू से मिला था। इस अधिनियम के निर्वाचन नियमों ने धारा-सभा को यह अधिकार दिया था कि यदि वह चाहे तो पुरुषों के समान स्त्रियों को भी वोट का अधिकार दे सकती है। बम्बई तथा मद्रास की धारा सभाओं ने इस धारा का लाभ उठाकर १९२१ से पूर्व ही स्त्रियों को यह अधिकार प्रदान किया। सन् १९२३ ई० में उत्तर प्रदेश ने, १९२६ में बंगाल-पंजाब तथा मध्य प्रदेश में भी उनको यह अधिकार दिया गया। इस सुधार के दस वर्ष के अन्दर ही सारे ब्रिटिश भारत में स्त्रियों को वोट का अधिकार प्राप्त हो गया। १९२६ ई० मे उनको विधान सभा का सदस्य होने का अधिकार मिला। १९२७ ई० में डाक्टर मथुलक्ष्मी रेड्डी मद्रास की प्रान्तीय धारा सभा की सदस्या निर्वाचित हुईं और सर्वसम्मति से वे उप-प्रधाना बनीं।

१९३५ के भारत-सरकार अधिनियम ने उनको और अधिकारों से सुशोभित किया। स्त्रियों का निर्वाचन-क्षेत्र विकसित हुआ और व्यस्क स्त्रियों में भी लगभग १०½ प्रतिशत स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। उनके लिये पन्द्रह स्थान (६ कौंसिल में तथा ९ सभा में) और ४१ प्रान्तीय सभाओं में सुरक्षित कर दिये गये। वे साधारण सीटों का निर्वाचन बड़ी सफलतापूर्वक लड़ीं और पुरुषों को उन निर्वाचन-क्षेत्रों में परास्त किया जहाँ पुरुषों की सख्या अधिक थी। विभिन्न प्रान्तों मे स्त्रियाँ मन्त्री, ससदीय-सचिव, उपाध्यक्ष तथा उपसभानेत्री बनीं। सविधान-सभा में भी जो राष्ट्रीय ससद के रूप मे कार्य कर रही थी, दस स्त्रियाँ थीं। जब १९४७ के उपरान्त भारत-स्वतन्त्र हुआ तब उसने नारीत्व तथा स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने वाली स्त्रियों के कार्यों तथा उनकी देन का बड़ा सम्मान किया। श्रीमती सरोजनी नायडू उत्तर प्रदेश की राज्यपाल, राजकुमारी अमृतकौर स्वास्थ्य मन्त्राणी तथा श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित रूस में भारतीय राजदूत बन गईं। हमारे नये सविधान ने तो प्रत्येक वयस्क स्त्री को वोट देने का अधिकार प्रदान कर स्त्री और पुरुष की समानता के सिद्धान्त को अपनाया।

विधान-सभाओं तथा स्थानीय सस्थाओं की स्त्री-सदस्याओं ने स्त्रियों की स्थिति तथा प्रभाव को उन्नत करने का विशेष प्रयत्न किया है। श्री सी. एफ. एन्ड्रूज (C. F. Andrews) के शब्दों में उनके इस कार्य का भली-भांति परिचय मिलता है।

"आश्चर्यजनक परिवर्तनों के लाभकारी प्रभाव से सभी अवगत हैं। दीन, अनाथों, निर्बल तथा असहायों की सेवा के क्षेत्र में नगरपालिकाओं का स्तर उच्चतर हो गया है। घरों की गन्दगी के विरुद्ध अद्वितीय तथा कठिन सग्राम आगे बढ़ता गया और एक के बाद दूसरी सफलता मिलती गई। परन्तु विशेषतः बच्चों की बीमारियों

की रोक-थाम पहले से अधिक हो रही है। उपयुक्त पोषण, उपचार तथा चीर-फाड़ की सहायता के अभाव के कारण जहाँ अत्यधिक कष्ट, कभी-कभी मृत्यु भी हो जाया करती थी अब जनता के रुपयों की सहायता से जच्चा को अधिक से अधिक सुख देने का प्रयत्न हो रहा है।"

(२) सामाजिक प्रगति—सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों की उन्नति कम महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव मे इस प्रगति के अभाव में अन्य क्षेत्र में उन्नति सम्भव नहीं है क्योंकि सामाजिक प्रगति का राजनीतिक गति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसा कि उक्त पंक्तियों में प्रदर्शित किया जा चुका है स्वतन्त्रता-संग्राम मे सक्रिय भाग लेने के कारण स्त्रियों ने पर्दे की प्रथा का बिल्कुल अन्त कर दिया। अब वे हजारों की संख्या मे राजनीतिक सभाओं और जलूसो में भाग लेती हैं। उनके प्रत्येक कार्य में उनकी मुक्ति की नई झलक दिखाई देती है जिनको देखकर कोई भी निरीक्षक बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। अपने वार्षिक सम्मेलन में उन्होंने अपने विस्तृत सुधार की माँग की। १६३१ से पूर्व सम्मेलनों में सभापतियों के भाषण में पर्दा-निवारण, बाल-विवाह उन्मूलन तथा वैधव्य समाप्ति की ओर विशेष महत्व दिया जाता था। अब वे इनके लिये प्रस्ताव पास करने की चिन्ता नहीं करतीं वरन् अब उनसे भी अधिक आवश्यक विषयों की ओर ध्यान देती हैं। अब वे सम्पति की स्वामिनी बनने तथा तलाक की माँग उपस्थित करती हैं। वे कानून द्वारा बहु-विवाह अधिनियम को कठोरता से पालन करने की माँग करती हैं। वे सहशिक्षा तथा लडकियों के लिये शिक्षा-सम्बन्धी विशेष सुविधाओं की माँग कर रही हैं, क्योंकि उनका विचार है कि शिक्षा के प्रसार से सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो जायगा और उनकी सामाजिक प्रगति स्वय हो जायगी।

(३) कानून सम्बन्धी-सुधार—स्त्रियों मे उत्पन्न हुई महत्वपूर्ण चेतना तथा अनेक दिशाओं में की गई उनकी प्रगति का आभास उन समस्त प्रयत्नों द्वारा प्राप्त हो जाता है जो आधुनिक काल मे कुरीतियों तथा उनकी असमर्थताओं को दूर करने के लिए किये गये हैं। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा मे डाक्टर देशमुख तथा सेठ गोविन्द दास, मोतीलाल द्वारा कुछ विधेयक उपस्थित किये गये। उससे कुछ पूर्व १६३७ ई० मे हिन्दू स्त्री सम्पति अधिनियम पारित हुआ। विवाह, तलाक जायदाद का स्वामित्व इत्यादि के विषय में हिन्दू-परिवारों में प्रचलित अनिश्चित तथा विरोधात्मक विधियों पर पुनर्विचार तथा सुधार करने की दृष्टि से भारतीय सरकार ने एक कमेटी की स्थापना की। इस समिति ने समस्त देश का भ्रमण कर प्रमाण सगृहीत किये और हिन्दू कोडबिल (Hindu Code Bill) पर जनता की राय ली। डाक्टर अम्बेडकर (कानून सदस्य) ने कमेटी की सिफारिश पर यह बिल भारतीय संसद के सामने प्रस्तावित किया। इस सुधार का विरोध जनता द्वारा किया गया क्योंकि इसके द्वारा हिन्दू समाज मे उग्र सुधारों को लाने की ओर कदम उठाया गया था। सरकार ने जनता का विरोध देखते हुए कुछ समय के लिए इस [illegible] दिया। लेकिन स्त्रियों की दशा को उन्नत करने के लिए इस

बिल के कई भाग भारतीय संसद द्वारा पारित हो चुके हैं और उन्होंने अधिनियमों का रूप धारण कर लिया है। भारतीय संसद ने उत्तराधिकारी अधिनियम पारित कर स्त्रियों को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये। पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार निश्चित कर दिया गया तथा एक पुरुष पहली पत्नी के जीवित होते हुए दूसरा विवाह बिना उसकी सम्पत्ति प्राप्त किये नहीं कर सकता है।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक स्त्री समाज प्रगति की ओर निरन्तर चल रहा है। १९४० ई० तक स्त्रियों की सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा इतनी अधिक हो गई कि प्रान्तों की विधान सभाओं में स्त्री सदस्यों की संख्या ८० के लगभग पहुँच गई है। इस प्रकार स्त्रियों के राजनीतिक प्रभाव तथा स्थिति की दृष्टि से भारत का तीसरा नम्बर हो जाता है।

उक्त वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भारत की समस्त स्त्रियों को पुरुषों के समान समाज में पद उसी प्रकार प्राप्त हो गया है जिस प्रकार अन्य विदेशी प्रगतिशील देशों में। विचार-वाणी तथा कार्य-क्षेत्र में उनको अभी तक उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई जितनी विदेशी स्त्रियों को। अभी भी कुछ विशेष प्रथाओं का जोर भारतीय समाज में है। गावों में, जहाँ शिक्षा तथा राष्ट्रीयता की भावना का अधिक विकास सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ स्त्रियों की दशा आज भी शोचनीय है और उनको विशेष असमर्थताओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षा के विकास के साथ उनकी भी उन्नति होनी अनिवार्य है।

जाति-व्यवस्था
(Caste System)

हमारे समाज में जाति-व्यवस्था बड़े प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रारम्भ में आर्यों ने वर्ण-व्यवस्था स्थापित की जिसका आधार कर्म था न कि जन्म। पुस्तक के प्रथम भाग में इसका विशद् वर्णन किया जा चुका है। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसी वर्ण-व्यवस्था ने कालान्तर में जाति-व्यवस्था का रूप धारण किया जो दिन प्रति दिन दृढ़ होती चली गई। इस व्यवस्था में इतने अधिक दोष विद्यमान हैं कि आज यह एक तमाशा बन गई। इसलिए यदि इसके विरुद्ध विभिन्न समयों पर विद्रोह हुए तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसके विरुद्ध विद्रोहों में शिक्षित वर्ग का विशिष्ट हाथ रहा। ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज तथा थियोसोफिकल सोसायटी की ओर से इसका खण्डन किया गया और उन सबने इसको व्यर्थ बतलाया। बीसवीं शताब्दी में इसके विरुद्ध महात्मा गांधी ने आन्दोलन किया, किन्तु इतने पर भी यह पूर्णतया अर्थहीन नहीं बन सकी। बड़े नगरों तथा बड़ी जातियों में इसका प्रायः अन्त-सा हो गया, किन्तु गांवों और निम्न जातियों में इसका अब भी जोर है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नगरों में तथा उच्च जातियों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अधिक हो गया और गांव में इसका अभाव है।

अस्पृश्यता (Untouchability)—अस्पृश्यता हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा कलंक तथा अभिशाप है। यह व्यवस्था भी उतनी ही पुरानी है जितनी कि वर्ण-व्यवस्था।

इनके लिये हिन्दू धर्म की ठीक ही आलोचना की जाती है। वर्ण-व्यवस्था के प्रमुख चार वर्णों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में विभिन्न नामों सहित अनेक छोटी-छोटी जातियाँ हैं जो सामूहिक रूप से 'अछूत' या 'जाति बाहर' मानी जाती हैं। अछूतों को कभी कभी गलती से दलित वर्ग के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि इस शब्द का नाम विस्तृत है और इसमें वे वर्ग भी आ जाते हैं जो अछूत नहीं हैं। महात्मा गांधी ने उनको 'हरिजन' कहना पसन्द किया जिसका शाब्दिक अर्थ 'हरि के बन्दे' है।

अछूतों की दशा (Condition of Untouch bles)—अछूतों से स्पर्श किया हुआ व्यक्ति या कोई वस्तु गन्दी समझी जाती है, इसलिए उनको अछूत कहा जाता है। एक सुवर्ण हिन्दू किसी अछूत द्वारा छुआ हुआ भोजन या पानी का प्रयोग नहीं करता और उससे स्पर्श हो जाने पर उनको स्वयं नहाना पड़ता है या पवित्र होने के लिये कुछ धार्मिक कृत्य करने पड़ते है। दक्षिण भारत में छुआछूत का अर्थ 'निकट न आना' तक है। वहाँ ऐसी जातियाँ हैं जो सुवर्ण हिन्दुओं की दृष्टि में वातावरण तक को गन्दा कर देती है। उनमें से कुछ तो इतने नीचे समझे जाते हैं कि उनका दिखाई पड़ जाना भी अच्छा नहीं समझा जाता है किन्तु उत्तर भारत में ऐसी भीषणता नहीं है।

अछूतों की असमर्थतायें —अछूतों का जीवन बड़ा शोचनीय तथा कठिन है। उन्हें जीवन में हीनता, दासता, मानसिक तथा नैतिक असमर्थतायें भोगनी पड़ती हैं। उनके व्यवहार को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें मनुष्योचित गौरव तथा आत्मसम्मान की भावना नहीं है और उन्होंने अपने को मनुष्योतर प्राणियों की श्रेणी में उतार दिया है। इनकी असमर्थतायें चार प्रकार की हैं—(१) सामाजिक, (२) धार्मिक, (३) आर्थिक और (४) राजनीतिक। निम्न पंक्तियों में इनका अलग-अलग विवेचन किया जायगा—

> **अछूतों की असमर्थतायें**
> (१) सामाजिक असमर्थतायें।
> (२) धार्मिक असमर्थतायें।
> (३) आर्थिक असमर्थतायें।
> (४) राजनीतिक असमर्थतायें।

(१) **सामाजिक असमर्थतायें**—अछूतों की सामाजिक असमर्थतायें अनेक तथा कई प्रकार की हैं। उनके रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न है। उनके निवास-स्थान बहुत गन्दे होते हैं और वहाँ पानी तथा रोशनी का अभाव रहता है। उनके स्पर्श से मनुष्य तथा वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं जिनसे उनकी सामाजिक असमर्थतायें बहुत बढ़ गई हैं। वे सुवर्ण हिन्दुओं के कुओं से पानी नहीं ले सकते, तालाबों में स्नान नहीं कर सकते और उनके बच्चे अन्य बच्चों के साथ पाठशालाओं तथा स्कूलों में शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। वे अपनी वर-वधुओं को पालकी में नहीं बैठा सकते। उनकी स्त्रियों को सोने-चांदी का प्रयोग करना वर्जित है। पुरुष कमर से ऊपर वस्त्र धारण नहीं कर सकते। वे बेगार करने के लिये बाध्य किये जाते हैं। दक्षिण भारत के कुछ भागों में तो उनको कुछ निश्चित सड़कों तक पर चलना वर्जित है।

(२) धार्मिक असमर्थतायें—इनके अनुसार अछूतों को धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा मन्दिरों में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं है। वे जनेऊ पहनने के अधिकारी नहीं हैं। हिन्दू समाज ने उनकी धार्मिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। उनके पतन में धार्मिक असमर्थताओं का कुछ कम हाथ नहीं है। किसी अन्य समाज में इनके समान कोई वर्ग नहीं है। उनको मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों से भी हिन्दुओं ने वंचित कर दिया है।

(३) आर्थिक असमर्थतायें—आर्थिक दृष्टि से भी अछूत सबसे गन्दे तथा कम लाभ वाले पेशे करने के लिये बाध्य किये जाते हैं। जैसे झाड़ू देना, चमड़ा साफ करना आदि। गाँवों में उनकी अपनी भूमि नहीं होती। वे भूमि के स्वामियों द्वारा बहुत कम मजदूरी पर खेत में काम करने के लिए नौकर रख लिए जाते हैं। इस प्रकार वे निम्नतर आर्थिक स्तर में हैं। उनको व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं है और इस प्रकार उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ और भी भीषण बन गई हैं।

(४) राजनीतिक असमर्थतायें—उक्त असमर्थताओं में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार देने को कौन तत्पर होगा। उनको किसी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अछूतों पर सुवर्ण हिन्दुओं ने बड़े अत्याचार किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सुवर्ण हिन्दू मनुष्यों में सबसे क्रूर तथा हृदयहीन व्यक्ति है तथा अछूत मानव-जाति के सबसे अधिक सताये हुए व्यक्ति हैं। परन्तु कुछ ऐसी घटनायें भी हैं जिन्होंने अछूतों की परेशानियों को कुछ कम अवश्य कर दिया है। उनसे यह भी प्रदर्शित हो जाता है कि सुवर्ण हिन्दू उतना हृदयहीन नहीं है जितना वह समझा जाता है। अछूतों के लिये अलग कुओं तथा हौजों की व्यवस्था है जिनका वे प्रयोग कर सकते हैं। यदि परम्परा के कारण उनको गन्दे पेशे करने के लिये बाध्य किया गया तो उनको कुछ ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जिनसे वे वंचित नहीं किये जा सकते। अनाज के कूटने के समय उनको अनाज दिया जाता है और त्यौहारों के अवसर पर उनको भोजन आदि दिया जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धार्मिक कृत्य भी हैं जिनका किया जाना अछूतों की अनुपस्थिति में सम्भव नहीं है जैसे सुवर्ण हिन्दुओं में शव को जलाना आदि।

अस्पृश्यता निवारण के आन्दोलन (Movement to remove Untouchability)—हिन्दुत्व के उज्ज्वल नाम पर अस्पृश्यता सबसे बड़ा कलंक तथा अभिशाप है। यह ईश्वर तथा मानवता के विरुद्ध पाप है। समाज का एक क्षेत्र इतना अधिक दबा दिया गया है कि उसके मात्र शरीर का स्पर्श मात्र ही अपवित्र बना देता है। मानवता के विरुद्ध इससे बड़ा पाप क्या हो सकता है? धर्म के नाम पर इस व्यवस्था को अपनाते रहना ईश्वर के विरुद्ध पाप है। इस पाप के लिए हिन्दू पर्याप्त भोग भोग चुके हैं। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा था कि 'अस्पृश्यता के पाप के लिए क्या हम भोग नहीं चुके हैं, क्या जैसा हम लोगों ने बोया था, वैसा काटा नहीं है? क्या हमने डायर तथा ओडायर की नृशंसता अपने ही भाइयों के साथ नहीं दिखलाई है? हम

लोगों ने अछूतों को अलग रखा है और इनके बदले हम लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में अलग कर दिए गए हैं? हम उनको अपने कुओं का उपभोग नहीं करने देते, हम उन्हें खाने के लिए अपना जूठन देते हैं। उनकी परछाई तक हमको अपवित्र कर देती है। यदि अछूत हमारे लिए ऐसी अशोभन भाषा का प्रयोग करते हैं जैसी हम अंग्रेजों के प्रति करते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है?'"

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन दलित वर्गों के उत्थान का सक्रिय प्रयत्न ईसाई पादरियों ने किया। जिन्होंने इनमें कार्य कर इनको हजारों की संख्या में अपने धर्म में दीक्षित किया। ईसाई धर्म में दीक्षित हो जाने पर इन्होंने अपनी गन्दी आदतों का परित्याग कर दिया। उनको एक नया सम्मान प्राप्त हुआ और वे ईसाई समाज के सम्माननीय सदस्य बन गये।

आर्य समाज—आर्य समाज ने इनके उद्धार का बीड़ा उठाया और शुद्ध करने के कुछ धार्मिक कृत्यों के पश्चात् उनको अपने समाज में लेना प्रारम्भ किया।

ब्रह्म समाज—बंगाल में ब्रह्म समाज ने जाति-व्यवस्था का विरोध कर उनके जीवन स्तर को उन्नत करने का भरसक प्रयत्न किया।

हिन्दू समाज सुधारक—कई हिन्दू समाज-सुधारकों ने अछूतों की आर्थिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति के लिए 'दलित वर्ग मिशन' स्थापित किये। १९०३ ई० के एक वक्तव्य में जनता को इस परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय मिला। गोपालकृष्ण गोखले ने अस्पृश्यता की तीव्र भर्त्सना की और कहा कि 'यह व्यवहार कितना मूर्खतापूर्ण है कि जब तक अछूत हमारे धर्म में रहते हैं, हम उनको घरों में प्रवेश करने नहीं देते और न उनको अपने में मिलने-जुलने ही देते हैं किन्तु जब वह हमारे धर्म का परित्याग कर हैट-कोट-पैंट पहनकर ईसाई बन जाते हैं तो हम उनसे हाथ मिलाते हैं और उनका आदर करते हैं।'

लेकिन हिन्दू समाज पर्याप्त समय तक इस आन्दोलन को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा। कई स्थानों पर हिन्दुओं ने इसका सक्रिय विरोध किया। विरोध की गहराई इस बात से जानी जा सकती है कि १९२० की जनगणना के समय यह प्रस्ताव रखा गया कि अछूतों की हिन्दुओं के साथ गणना नहीं की जाये।

महात्मा गांधी का हरिजन आन्दोलन (Mahatma Gandhi's Harijan Movement)—महात्मा गाधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अस्पृश्यता के निवारण को अपने कार्य-क्रम का एक प्रमुख अंग बनाया। इससे वातावरण में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ। कई बार भाषण करते समय गांधी जी ने यह घोषित किया कि भारतीयों की राजनीतिक हीनता उनके अस्पृश्यता रूपी पाप का ही परिणाम है और इसलिये वे अंग्रेजी साम्राज्य से 'जाति बहिष्कृत' के समान हैं। बहुधा वह लोगों के सामने अपने इस विश्वास का प्रदर्शन किया करते थे कि जब तक अस्पृश्यता का अन्त नहीं हो जायेगा उस समय तक स्वराज्य की प्राप्ति असम्भव होगी। उनके शब्द हैं कि 'जब हिन्दू जान-बूझकर सच्चे हृदय से नीति के रूप में नहीं वरन् आत्म शुद्धि की भावना से स्पृश्यता का अन्त करेंगे तो उनका यह कार्य राष्ट्र को

उचित कार्य करने की एक नई शक्ति देगा और इसलिये स्वराज्य की प्राप्ति में सहायक होगा। हममें एकता का अभाव है इसलिए हम शक्तिहीन हैं। जब हम इन पांच करोड़ अछूतों को अपना समझेंगे तो एकता का महत्व हमारी समझ में आयेगा। यह एक कार्य कदाचित हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का भी निवारण करेगा, क्योंकि इसमें भी अस्पृश्यता का विष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्यमान है। हिन्दुत्व की रक्षा के लिए यदि इस प्रकार की कृत्रिम दीवार की आवश्यकता है तो वह अवश्य ही एक दुर्बल धर्म है।' अहमदाबाद में १३ अप्रैल १६२१ को एक भाषण में गांधी जी ने कहा था कि 'अछूतों का उद्धार तथा गौ-माता की रक्षा ही उसकी प्रबल रचनाओं में से दो ऐसी हैं जिन्होंने उन्हें जीवित रख छोड़ा है। इन दो इच्छाओं की पूर्ति में ही स्वराज्य निहित है और मेरा अपना मोक्ष है।'

इन दोनों के उन्मूलन में अनवरत प्रचार का गहरा प्रभाव पड़ा, किन्तु फिर भी जनता ने वास्तव में इसके विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाई। इसके लिये और शक्तिशाली कदम का उठाना आवश्यक था। १६३२ और १६३३ में महात्मा जी के दो बड़े उपवासों से इस अभाव की पूर्ति हुई। इसके प्रभाव से जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा और प्रश्न बौद्धिक धरातल से उठकर भावनात्मक धरातल पर जा पहुँचा। ब्रिटिश भारत में अनेक स्थानों पर अछूतों के लिए मन्दिर खोल दिये गये। इसके अतिरिक्त ट्रावनकोर तथा अन्य देशी राज्यों ने अछूतों सहित सभी जातियों के लिए मन्दिरों को खोलने का आदेश दिया। सुवर्ण हिन्दू इन लोगों की बस्तियों में जाकर गलियों में झाड़ू लगाते तथा उनकी सफाई करते थे, उनके बच्चों को स्नान कराते थे तथा अन्य प्रकार से वे उनको अपना ही अंग दिखलाने की चेष्टा करते थे। बाद में महात्मा गांधी जब कभी दिल्ली जाते तो भंगी बस्ती में ही ठहरते थे। इसका भी हिन्दू हृदय तथा मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन लोगों की उन्नति तथा अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए आन्दोलन बराबर चलता रहा। इस महान् कार्य में अनेक समितियाँ कार्य कर रही हैं जिनमें 'हरिजन सेवक संघ' प्रमुख है। इससे अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि अछूतों में स्वयं एक चेतना आ गई है और वे अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिए विशेष प्रयत्नशील हैं।

मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य के प्रधान मन्त्रित्व काल में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने सिविल 'डिसबिलिटीज रिमूवल एक्ट' (Civil Disabilities Removal Act) तथा 'मलाबार टेम्पिल एण्ट्री एक्ट' (Malabar Temple Entry Act) पारित किये थे। हाल में ही बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश की सरकार ने भी इस ओर पग उठाया। बम्बई सरकार ने अस्पृश्यता में विचार तक को दण्डित किया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि संविधान ने अस्पृश्यता को किसी भी रूप में नहीं माना है। अस्पृश्यता द्वारा उत्पन्न हुई किसी भी असमर्थता का प्रयोग दण्डनीय होगा। इस प्रकार इसमें सन्देह का लेशमात्र भी अब नहीं कि जहाँ तक हिन्दू समाज की वैधानिक आत्मा का सम्बन्ध है, अस्पृश्यता अतीत की समस्या बन गई है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि यह अब साररूप में भी अवशेष नहीं है। उद्देश्य तक पहुँचने तथा अछूत वर्ग को अन्य वर्गों के साथ

समानता का स्थान दिलाने और उनको विशाल हिन्दू-समाज के सदस्य बनाने में भी अटूट लगन और अनेक परिश्रम की आवश्यकता है।

भारतीय संविधान और हरिजन (*Indian Constitution and the Harijans*)—*भारतीय संविधान द्वारा उनकी उन्नति करने के लिये उनको विशेष सुविधायें प्रदान की गई हैं जिनका कार्य-काल १० वर्ष निश्चित किया गया है। राज्यों के विधान मण्डलों तथा लोक-सभा में उनके स्थान सुरक्षित हैं। जनसंख्या के अनुसार इनको इन सभाओं में प्रतिनिधित्व दिया गया है। इनके मन्त्री राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार में भी हैं। सार्वजनिक सेवाओं में भी इनको विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। इनके लिये कुछ स्थान सुरक्षित रहते हैं जो १२½ से १७ प्रतिशत तक है। इनको शिक्षा-प्राप्ति के लिए राज्य तथा केन्द्रीय सरकार की ओर से वजीफे दिए जाते हैं।*

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। (१९५२)

(२) "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में धर्म और समाज-सुधार की एक बड़ी उग्र लहर उठी।" इस पर प्रकाश डालिए। (१९५३)

(३) सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के क्या विचार थे और उन्होंने इस क्षेत्र में क्या-क्या कार्य किए? (१९५४)

मध्य प्रदेश—

(१) राजा राममोहन राय पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५४)

(२) रामकृष्ण मिशन पर एक टिप्पणी लिखो। (१९५६)

(३) राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का निर्माता कहना कहाँ तक उचित है? (१९५४)

(४) भारत के आधुनिक धार्मिक आन्दोलनों को भारतीय राष्ट्रीयता के जागृत करने में कितना श्रेय है? (१९५५)

राजस्थान—

(१) उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का उल्लेख करो। (१९ ५)

(२) स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में तुम क्या जानते हो? (१९५५)

(३) राजा राममोहन राय तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी पर टिप्पणी लिखो। (१९५७)

१० सांस्कृतिक-प्रगति

(Cultural Achievement)

गत अध्यायों में भारत के धार्मिक तथा सामाजिक विकास तथा उनकी प्रगति में जो आन्दोलन हुये उनका वर्णन किया जा चुका है, इस अध्याय में भारत की सांस्कृतिक प्रगति पर प्रकाश डाला जायगा। इसके अन्तर्गत (१) शिक्षा, (२) साहित्य और (३) कला का वर्णन किया जायगा।

शिक्षा (Education)

शिक्षा के महत्व से सब लोग भली-भांति परिचित हैं। वास्तव में शिक्षा नागरिक जीवन का आधार है और उसके गुण तथा शिक्षित व्यक्तियों की संख्या पर ही समाज की उन्नति बहुत सीमा तक निर्भर है। भारत के सुधारकों आदि ने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को प्रगट किया और भारत की सांस्कृतिक प्रगति में उनका हाथ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारत में शिक्षा (Education on the eve of the comming of the Britishers)—जिस समय अंग्रेजों का भारत में आगमन हुआ उस समय भारत में शिक्षा का अभाव न था। शिक्षा की दृष्टि से वह अपने समय के किसी यूरोपियन देश से आगे था। उस समय हमारे देश में सतोषजनक व्यवस्था थी। देश में प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की पर्याप्त तथा विस्तृत व्यवस्था थी। मिस्टर केर हार्डी के अनुसार "सरकारी कागजों तथा मिशन सम्बन्धी रिपोर्ट के आधार पर अंग्रेजों के आगमन के पूर्व बंगाल की शिक्षा-स्थिति के विषय में मैक्स-मूलर का कथन है कि बंगाल में ८०,००० स्कूल तथा कुल जन-संख्या के प्रत्येक ४०० व्यक्तियों के पीछे एक स्कूल था।" श्री एफ० डब्लू० टॉमस (F. W. Thomas) के अनुसार "अंग्रेजों को भारत में प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की एक विस्तृत व्यवस्था मिली जिसमें प्राथमिक शिक्षा व्यवहारिक तथा उच्च शिक्षा, दर्शन, साहित्य तथा धर्म से सम्बन्धित थी।"

कम्पनी के शासन-काल में शिक्षा (Education during the Company's Rule)—गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि कम्पनी के शासन-काल में शिक्षा की क्या प्रगति हुई। सर चार्ल्स वुड की शिक्षा-सम्बन्धी योजना के अनुसार तीनों प्रेसीडेन्सियों तथा पश्चिमोत्तर प्रान्तों और पंजाब में सर्वजन शिक्षा विभाग तथा समूचे भारत में क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना हुई और प्रत्येक प्रान्त में एक शिक्षा सचालक (Director of Public Instruction) की नियुक्ति हुई। इसने विश्वविद्यालयों की स्थापना का भी विचार प्रगट किया जो लन्दन विश्वविद्यालय के समान होवे।

हंटर कमीशन (Hunter Commission)—सन् १८८२ ई० में लार्ड रिपन के शासन-काल में शिक्षा-पद्धति में सुधार करने के अभिप्राय से सर डब्लू० हंटर को

अध्यक्षता मे एक आयोग की नियुक्ति की गई जो उसके सभापति के नाम से हंटर कमीशन (Hunter Commission) के नाम से विख्यात है। इस कमीशन ने ये सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षा स्थानीय संस्थाओं को सौंप दी जाए तथा उच्च शिक्षा पर से सरकारी नियन्त्रण कम से कम कर दिया जाय। स्त्रियों तथा दलित वर्ग के व्यक्तियों के लिए भी शिक्षा की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

लार्ड कर्जन की नीति (Policy of Lord Curzon)—लार्ड कर्जन शिक्षण संस्थाओं पर सरकारी नियन्त्रण का पक्षपाती था और उसने उसके पुनर्संगठन की ओर कदम उठाया। उसने १९०१ ई० में शिमला मे शिक्षा-अधिकारियों का एक सम्मेलन सितम्बर के माह मे आमन्त्रित किया। इसके पश्चात् १९०२ ई० में उसने सर रैले की अध्यक्षता मे एक आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग मे हैदराबाद राज्य के शिक्षा सचालक तथा कलकत्ता हाइकोर्ट के न्यायाधीश श्री गुरुदास बनर्जी भी सदस्य थे। इस कमीशन की रिपोर्ट पर १९०४ ई० मे कर्जन की सरकार ने यूनिवर्सिटी एक्ट (University Act) पास किया। यद्यपि भारतीयों ने इस बिल का भयकर विरोध किया और स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने तो इसकी धज्जियाँ ही उड़ा दीं किन्तु अन्त मे बहुमत से यह पास हो गया।

भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट (Indian Universities Act)—इस एक्ट के द्वारा विश्वविद्यालयों के सगठन तथा शासन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये जिनको निम्न सात भागों मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) विश्वविद्यालयो के कार्यों का विस्तार कर दिया गया और उनको प्रोफेसर तथा लेक्चरर नियुक्त करने तथा रिसर्च के लिये सुविधायें प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

(२) इसके द्वारा सीनेट को उपयुक्त आकार का बनाने का सुझाव देकर स्थापित किया गया। इससे यह निश्चय हो गया कि फैलो की संख्या न पचास मे कम होगी और न १०० मे अधिक होगी तथा उनका कार्यकाल ५ वर्ष निश्चित किया गया।

(३) इसके अनुसार बम्बई मद्रास तथा कलकत्ते के विश्वविद्यालयों में २० तथा अन्य में १५ फैलो का निर्वाचन होगा।

(४) सिंडीकेट को कानूनी स्थिति प्रदान की गई और यह भी निश्चय किया गया कि विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का सिंडीकेट मे प्रतिनिधित्व होगा।

(५) इस एक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया कि विश्वविद्यालयों से कॉलिजों का सम्बन्ध स्थापित करने के नियम कड़े कर दिये गये और नियमित रूप से सम्बन्धित कॉलिजों के स्तर को उन्नत करने के लिये सिंडीकेट द्वारा उनके निरीक्षण की व्यवस्था होगी।

(६) इस एक्ट द्वारा यह नियम बना दिया गया कि सीनेट के बनाये हुए नियमों की स्वीकृति के अतिरिक्त सरकार यदि आवश्यक समझे तो वह उनमें कमी बढ़ोतरी कर सकती है और यदि एक निश्चित समय तक सीनेट नियम बनाने में रहती है तो सरकार को नियम बनाने का भी अधिकार होगा।

(७) वाइसराय की परिषद् को यह अधिकार भी प्रदान किया गया कि वह भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों की प्रादेशिक क्षेत्र-सीमा को भी निर्धारित कर दे।

गोखले का बिल (Gokhale's Bill)—१६ मार्च सन् १६०१ ई० को स्वर्गीय गोखले ने धारा-सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव प्राथमिक शिक्षा के निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने के लिये रखा—

'इस परिषद् की राय में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये और निश्चित प्रस्ताव बनाने के लिये सरकारी तथा गैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त कमीशन शीघ्र नियुक्त किया जाना चाहिये।"

अन्त में सरकार के आश्वासन देने पर प्रस्ताव वापिस ले लिया गया किन्तु सरकार ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। १६१० ई० में शिक्षा विभाग की स्थापना हुई, किन्तु शिक्षा को प्रांतीय सरकारों के आधीन ही रहने दिया गया। नये शिक्षा-विभाग में स्वास्थ्य तथा भूमि को भी स्थान दिया गया।

स्वर्गीय गोखले ने बाध्य होकर १६ मार्च १६११ ई० को अपना ऐतिहासिक बिल धारा-सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया, किन्तु १६ मार्च को यह बिल असफल हो गया यद्यपि गोखले ने अपने धारा-प्रवाह व्याख्यानों द्वारा अनेक अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये किन्तु उनको असफलता मिली।

१६१३ का सरकार का प्रस्ताव (Proposal of the Government 1913)—यद्यपि गोखले का प्रस्ताव धारा सभा द्वारा स्वीकृत न हो पाया किन्तु सरकार का ध्यान परिवर्तन की ओर अवश्य आकर्षित हुआ और उसने अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति को स्पष्ट करना आवश्यक समझा। इसी उद्देश्य से २१ फरवरी १६१३ ई० को सरकार का शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ। इसकी मुख्य धारायें इस प्रकार थीं—

(१) लोअर प्राइमरी स्कूलों का विस्तार किया जाय जहां लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त ड्राइंग, गाव का नक्शा, प्रकृति निरीक्षण तथा शारीरिक व्यायाम की शिक्षा प्रदान की जाय।

( ) उचित स्थानों पर अपर प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की जाय और आवश्यकता पड़ने पर लोअर प्राइमरी स्कूलों को अपर प्राइमरी स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जाय।

(३) सहायता प्राप्त व्यक्तिगत स्कूलों के स्थान पर बोर्ड के स्कूल स्थापित किये जायें तथा मकतब एवं पाठशालाओं को उदारतापूर्वक अधिक सहायता प्रदान की जाय। व्यक्तिगत स्कूलों का प्रबन्ध तथा निरीक्षण अधिक अच्छा करने की व्यवस्था हो।

(४) शिक्षक मिडिल पास हों तथा एक वर्ष की ट्रेनिंग पास किये हों।

(५) दीक्षित अध्यापकों का वेतन कम से कम १२ रुपये प्रति मास हो। उनको पेंशन, छुट्टियों तथा प्रोविडेन्ट फण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(६) कक्षा में ५० विद्यार्थियों से अधिक नहीं होने चाहियें। साधारणतः विद्यार्थियों की संख्या ३० और ४० के बीच में होनी चाहिये।

(७) स्त्री शिक्षा पर भी प्रस्ताव ने विशेष बल प्रदान किया गया।

(८) विश्वविद्यालय शिक्षा में और अधिक विस्तार किया जाना चाहिये। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में औद्योगिक महत्व के विषयों का समावेश और इच्छुक विद्यार्थियों के लिये अनुसंधान की अधिक सुविधायें प्रदान करने की सिफारिश की गई। विद्यार्थियों के चरित्र तथा छात्रावास जीवन पर प्रस्ताव के सुझाव रखे गये।

इन सुझावों का माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के क्षेत्र में विशेष महत्व है। १९२१ ई० तक जो सर्वांगीण उन्नति शिक्षा-विकास में हुई उसका समस्त श्रेय इन्हीं सुझावों को प्राप्त है।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय कमीशन (Calcutta University Commission)—१९१७ ई० में भारत सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा के विषय में जाँच करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष डाक्टर माइकेल सैडलर थे। इसके अतिरिक्त अन्य सदस्य डाक्टर ग्रेगरी, प्रोफेसर रैम्जे म्योर, सर हार्टग, श्री हार्नेल, डाक्टर जियाउद्दीन अहमद तथा सर आसुतोष मुकर्जी थे। इस कमीशन ने १७ मास के अकथनीय परिश्रम के उपरान्त अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में निम्न प्रमुख प्रस्ताव रखे गये—

(१) इंटरमीडियेट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से अलग कर दिया जाए और बी० ए० II की उपाधि पास करने के लिये ३ वर्ष के लिये पाठ्यक्रम निश्चित हो।

(२) प्रत्येक प्रांत में हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट (High School and Intermediate Board) की स्थापना की जाये जिसमें सरकार, विश्वविद्यालय, हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट कालिजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों।

(३) इनके अतिरिक्त कमीशन ने विश्वविद्यालयों पर से सरकारी नियन्त्रण कम करने का प्रस्ताव किया तथा वास्तविक शिक्षण कार्य करने वाले विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जाए।

(४) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक वैतनिक वाइस-चांसलर की नियुक्ति हो।

(५) विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सम्बन्धों में अधिक साम्य तथा सहयोग करने के लिए एक अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थापना की जाये।

इस कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका लखनऊ तथा हैदराबाद में स्थानीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तथा उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन हुआ। इसका प्रभाव कलकत्ता विश्वविद्यालय पर कुछ भी नहीं पड़ा।

हरटोग-समिति (Hertog Committee,—१९१९ भारत सरकार अधिनियम द्वारा शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रांतीय मन्त्रियों के हाथ में आ गया। भारत-सरकार ने एक समिति सन् १९२८ ई० में नियुक्त की जिसके सभापति हरटोग थे। १९३५ के अधिनियम के अनुसार शिक्षा प्रांतीय विषय घोषित कर दिया गया। इसके उपरान्त शिक्षा का प्रसार दिन प्रतिदिन होने लगा।

वर्धा-योजना
(Wardha Plan)

आधुनिक शिक्षा के दोषों को देखते हुये महात्मा गांधी का ध्यान इनको दूर करने की ओर आकर्षित हुआ। यह सत्य है कि शिक्षा में पर्याप्त दोष विद्यमान होते हुए भी पाश्चात्य शिक्षा ने आधुनिक भारत के निर्माण में बहुत बड़ा महत्वपूर्ण भाग प्रदान किया। महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में २ अक्टूबर १९३७ ई० को एक लेख लिखा जिसमें २२, २३ अक्टूबर को अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन वर्धा का उल्लेख किया। इस सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से शिक्षा-शास्त्रियों तथा प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्रियों ने भाग लिया। महात्मा गांधी ने सम्मेलन का सभापतित्व पद धारण किया और स्कीम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किए। इस योजना की मुख्य विशेषता यह थी कि शिक्षा का माध्यम बेसिक क्राफ्ट हो तथा बालक की मातृ भाषा हो। महात्मा गांधी की मृत्यु के उपरांत इसकी विशेष प्रगति नहीं हो पाई।

सार्जेण्ट-योजना
(Sargeat Plan

भारत-सरकार के आदेश पर सर जॉन सारजेंट ने जो भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सलाहकार थे शिक्षा के सम्बन्ध में एक योजना का निर्माण किया जो सार्जेण्ट योजना के नाम से विख्यात है। इस रिपोर्ट में नर्सरी शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का बहुत ही विशद-विवरण उसका संगठन दोष-सुधारने के उपाय तथा भविष्य के लिए सुझाव आदि हैं। इस योजना में यह प्रस्तावित किया गया था कि ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाये। यह योजना सीनियर और जूनियर दो भागों में विभक्त थी। इण्टरमीडियेट कक्षा समाप्त कर दी जायें और बी० ए० का कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाये। यद्यपि स्कीम में शिक्षा के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया गया था, किन्तु समस्त देश में लागू नहीं हो पाई।

राधा कृष्णन् योजना
(Racha Krishnan Plan)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत शिक्षा व्यवस्था को उन्नत करने के उद्देश्य से नवम्बर १९४८ में डाक्टर राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की गई जिसके प्रमुख सदस्य डा० ताराचन्द, सर जेम्स डफ, डा० मुदालियर डा० मेघनादशाह थे। २५ अगस्त १९४९ को आयोग आपनी रिपोर्ट पेश की। इसकी प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं।

(१) इण्टरमीडियेट कक्षाओं का अन्त कर हायर सेकेण्डरी तथा डिग्री कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाए —

(२) छात्रवृत्ति तथा अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए।

(३) विद्यार्थियों के लिये हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।
(४) विशिष्ट विद्यार्थियों को ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का
प्राप्त होना चाहिए।
(५) ग्राम विश्वविद्यालयों की स्थापना की व्यवस्था की जानी चाहि

साहित्य
(Literature)

१८५७ की क्रांति के उपरांत साहित्य के क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति हुई
भारतीयों का ध्यान पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा तथा संस्कृति के सम्पर्क में
कारण साहित्य की प्रगति की ओर आकर्षित हुआ।

संस्कृत-साहित्य (Sanskrit Literature)—इस काल में संस्कृत
ने बड़ी प्रगति की। यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य का अध्ययन कि
विभिन्न योरोपीय भाषाओं में उसका अनुवाद किया। संसार को इस साहित्य
हुआ और उसकी दृष्टि में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गौरव
भारतीयों को भी अपनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त हु
कार्य में एशियाटिक सोसाइटी ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

हिन्दी साहित्य (Hindi Literature)—हिन्दी साहित्य का इतिह
प्राचीन है। मुसलमानों के काल में हिन्दी का विशेष उत्थान नहीं हो पाय
फारसी का उस समय अधिक बोलबाला था। आधुनिक हिन्दी साहित्य क
अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों से होता है। अठारहवीं शताब्दी
वर्षों में मुन्शी सदासुखलाल और इंशा अल्ला खां दो प्रमुख लेखक थे। सदा
ने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग कर सुखसागर की रचना गद्य में की और इंशा
ने उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी लिखी। हिन्दी गद्य के
विकास का श्रेय भी लल्लू लाल तथा सदल मिश्र को प्राप्त है। लल्लू
के ग्रन्थों में "प्रेमसागर", 'सिंहासन बत्तीसी' विशेष प्रसिद्ध हैं। सदल
"नासिकेतोपाख्यान" की रचना की। इस क्षेत्र में भी रामपुर के धर्म प्रचा
डाक्टर बाद गिलक्राइस्ट ने भी विशेष कार्य किया। इनके प्रयत्नों के
हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा। हिन्दी साहित्य के विकास में भार
हरिश्चन्द्र का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था जिन्होंने हिन्दी भाषा को सरल,
लोकप्रिय बनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। उन्होंने 'कविवचन सुधा' तथा
चन्द्रिका' नामक दो समाचार-पत्रों की स्थापना की तथा उनका सम्पाद
उन्होंने कई नाटकों की रचना की जिनमें चन्द्रावली, विषस्य विषमौषध
दुर्दशा', 'अन्धेर नगरी' विशेष प्रसिद्ध है। आपने कई संस्कृत भाषा के
अनुवाद किया जिनमें 'विद्यासुन्दर', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्राराक्षस' मु
उन्होंने काश्मीर कुसुम' तथा 'बादशाह दर्पण' की रचना भी की। इस प्र
प्रयत्नों के द्वारा हिन्दी साहित्य की विशेष प्रगति हुई और भारतेन्दु नवयुवक
बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इनके बाद हिन्दी साहित्य में गद्य और पद

लेखक हुये हैं जिन्होंने साहित्य की बड़ी सेवा की। इनमें प्रताप नारायण मिश्र उपाध्याय बद्रीनाथ चौधरी, ठाकुर जगमोहन, पं० बाल कृष्ण भट्ट, गजाधरसिंह, प्रभाकर भट्ट चन्द्रशेखर बाजपेयी राजा शिवप्रसाद, लाला श्री निवास दास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य की प्रगति में नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। बाद के लेखकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, प्रेम चन्द, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा आदि महान् विभूतियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

उर्दू साहित्य (Urdu Literature)—यद्यपि उर्दू साहित्य का विकास तथा प्रगति मुसलमानों के शासन-काल में आरम्भ हो गई थी, किन्तु उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में इस क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इस साहित्य के क्षेत्र में गालिब और सर सैयद अहमद खां का विशेष हाथ था। गालिब उच्च कोटि का विद्वान तथा कवि था। यह दिल्ली का रहने वाला था। गालिब में विचार, भाव प्रकाशन, उपमा, रूपक, अलंकार, कल्पना, शब्द चयन और बनावट की मौलिकता थी। उसने उर्दू के साहित्यिक स्तर को बहुत उन्नत किया। सर सैयद की भाषा सरल तथा प्रभावोत्पादक थी। उनकी शैली का बाद के लेखकों ने अनुकरण किया। गालिब के अतिरिक्त उर्दू के कवियों में ज़ौक़, मौलवी अलताफ हुसैन अली तथा मौलाना शिबली का स्थान भी उच्च था। सर मुहम्मद इकबाल की गणना भी उच्च कवियों में की जाती है। लखनऊ के प्रसिद्ध लेखक पंडित रतननाथ शरशार और मौलवी अब्दुल हलीम थे। ये दोनों उपन्यासकार थे। मुस्लिम विश्वविद्यालय और इस्लामिया विश्वविद्यालय की स्थापना से उर्दू-साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उर्दू साहित्य की प्रगति में प्रेमचन्द तथा कृष्णचन्द्र का विशेष हाथ था।

बंगला साहित्य (Bengali Literature)—बंगला साहित्य भी बड़ा प्राचीन है किन्तु इसका आधुनिक काल सन् १८०० ई० से आरम्भ होता है जब कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना हुई जहां बंगला भाषा साहित्य का विधिवत् अध्ययन आरम्भ हुआ। यहीं से एक साहित्य का आरम्भ होता है। राजा राम मोहन राय ने भी इसकी प्रगति में बड़ा सहयोग दिया। छापेखाने के खुल जाने के कारण इसका विस्तार और भी अधिक तेजी के साथ होना आरम्भ हुआ। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, अक्षय कुमार दत्त महर्षि देवेन्द्र नाथ टाकुर, केशव चन्द्र सेन, मधुसूदन ने बंगला साहित्य के निर्माण में बड़ा सहयोग दिया। माइकेल मधुसूदन दत्त ने अंग्रेजी कवि मिल्टन के आधार पर सोनेट (Sonnet) की रचना बंगला में की। आधुनिक युग में रवीन्द्र नाथ ठाकुर, हेमचन्द्र बनर्जी आदि विशेष उल्लेखनीय हुए हैं। जिनकी देन

बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो की है उतनी किसी अन्य व्यक्ति की नहीं इन्होंने कवितायें, उपन्यास, नाटक कहानियाँ, समालोचनायें और निबन्ध द्वार साहित्य की बड़ी प्रगति की। सन् १९१२ ई० में उनको गीताञ्जली पर नो पुरस्कार प्रदान किया गया। शरतचन्द्र तथा बंकिम चन्द्र का भी बंगला साहि क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। उपन्यासों का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हो चुका है। साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं और साहित्य से बहुत उन्नत और सम्पन्न है।

मराठी साहित्य (Marathi Literature)—मरहठा-प्रदेश पर अंग्रेजों अधिकार स्थापित होने के साथ-साथ मराठी साहित्य की प्रगति का युग आरम्भ जाता है। बहुत सी अंग्रेजी पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद किया गया। मौ पुस्तकों की भी रचना आरम्भ हुई। इसके लेखकों में विष्णु शास्त्री, अगे किर्लोस्कर काशीनाथ, त्रैम्बक तेलंग, वासुदेव शास्त्री, हरिनारायण आप्टे, गंगाधर तिलक, प्रोफेसर बी० एस० जोशी विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके प्रयत्नों के मराठी साहित्य की विशेष प्रगति हुई।

गुजराती साहित्य (Gujrate Literature)—इस काल में गुजराती साहि का भी पर्याप्त विकास हुआ। दलपत राय और नर्मदा शंकर आधुनिक गुजरा साहित्य के प्रवंतक के रूप माने जाते हैं। बहराम जी गुजराती भाषा के अच्छे लेख थे। इस साहित्य की प्रगति तथा विकास में नन्द शंकर, तुल्जाशंकर, के० एम० मु ने विशेष प्रयत्न किया।

अन्य भाषायें (Other Languages)—दक्षिणी-भारत में तामिल, तेल आदि भाषाओं का भी पर्याप्त विकास हुआ। तामिल साहित्य पर्याप्त प्राचीन किन्तु उसका आधुनिक रूप अंग्रेजी सम्पर्क से आरम्भ होता है। तामिल भाषा प्रसिद्ध कवियों में ज्योति मुनि, शिवप्रसाद स्वामी विशेष महत्वपूर्ण हैं तथा तामि अन्य साहित्य के निर्माताओं में चिम मुनि तथा गुरुभुन नालवट विशेष प्रसिद्ध हैं। इ काल में उड़ीसा, मैथिली, आसामी साहित्य की भी विशेष प्रगति हुई।

कला
(Art)

मुगल काल के पतन के उपरान्त भारतीय कला का पतन होना आरम्भ हो गया क्योंकि देश में अव्यवस्था की स्थापना हो गई। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली मरहठे तथा अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होने से देशी नरेशों की आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई और उनका ध्यान कला के प्रोत्साहन तथा उसके विकास की ओर आकर्षित नहीं हो पाया। इसका कारण यह था कि देशी राज्य ही कलाकारों को संरक्षण प्रदान करते थे। जब उनकी अवस्था गिरने लगी तो कलाकारों की सृजनात्मक प्रतिभा तथा कलात्मक योग्यता का स्वतः अन्त हो गया। इसके अतिरिक्त जिन देशी राजाओं ने इस ओर कुछ प्रयत्न भी किया वे उसको उच्च कोटि तक पहुँचाने में सफल नहीं हो सके।

वास्तु कला (Sculpture)—इस अव्यवस्थित दशा का प्रभाव वास्तु कला पर

विशेष रूप रूप से पड़ा। इसका दिन प्रतिदिन पतन होने लगा। देशी कलाकारों ने पाश्चात्य शैलियों की नकल करना आरम्भ किया। लखनऊ मे वाजिदअली शाह द्वारा निर्मित 'कैसर बाग' और नासिरउद्दीन हैदर द्वारा बनाये हुए 'छतर मंजिल' इसके उदाहरण हैं। सरकार द्वारा भी कुछ भव्य भवनों का निर्माण किया गया किन्तु वे सब शैलीहीन थे। अंग्रेजों ने अपनी अलग वास्तु कला के आधार पर भव्य भवनों का निर्माण किया। उसका उदाहरण कलकत्ते का 'विक्टोरिया मेमोरियल' (Victoria Memorial) है। २०वीं शताब्दी मे एक नई शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसको प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य शैलियों का सम्मिश्रण कहा जा सकता है इस कार्य मे श्री हैवल (Havall) का सहयोग बड़ा सराहनीय है जो कलकत्ता कला-विद्यालय के प्रिंसिपल थे।

चित्रकला (Painting)—चित्रकला को प्रोत्साहन देने मे भी कलकत्ता कला-विद्यालय के प्रिंसिपल श्री हैवल को श्रेय प्राप्त है। बगाल मे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रयत्नों से भारत मे चित्रकला के क्षेत्र मे एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो भारतीय तथा पश्चिमी शैली का सुन्दर सम्मिश्रण कहा जा सकता है। इस क्षेत्र में नन्द लाल बसु, असित कुमार हालदार, यामिनीराय, देवी प्रसाद राय, चौधरी रहमान चुगताई विशेष महत्वपूर्ण है। इसमे तैल तथा जल चित्रों का भी विकास होना आरम्भ हुआ। लन्दन के म्यूजियम में प्राचीन चित्रकला के कुछ उत्कृष्ट नमूनों के सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया। मूर्तिकला की उन्नति के लिए भी श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने घोर प्रयत्न किया।

संगीत कला (Music)—भारतीय सगीत कला का पुनरुद्धार करने की ओर भी प्रयास किया गया। सर्वप्रथम अंग्रेजों मे सर विलियम जान्स का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १८१३ ई० के पटना निवासी मुहम्मद रिजा ने 'नगमाते आसफी' की रचना की। जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने 'सगीत सार' की रचना करवाई। कृष्णानन्द व्यास ने 'सगीत राग कल्पद्रुम' नामक हिन्दी गीतों का एक सग्रह प्रकाशित करवाया। आधुनिक सगीत को पुनर्जीवन प्रदान करने का श्रेय भी विष्णु दिगम्बर तथा भरत खण्डे को प्राप्त है। ओंकारनाथ पटवर्धन, रत्नाकर, उस्ताद फैयाज खां आदि महापुरुषों के प्रयत्नों से सगीत कला की विशेष उन्नति हुई।

नृत्य कला (Dancing)—नृत्य-कला को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये शान्ति-निकेतन, केरल कला मन्दिर आदि कुछ संस्थाओं ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। उदय शंकर, रामगोपाल, रुक्मिणीदेवी तथा मेनकाजी ने नृत्य-कला को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। नाटक-कला का विकास करने के प्रयत्न में पृथ्वीराज कपूर सलग्न है।

विज्ञान (Science)—विज्ञान की ओर भारत विशेष प्रगति अभी तक नहीं कर पाया है। इसका प्रधान कारण यह है कि अंग्रेजों ने इस ओर विशेष प्रयत्न किया तथा पर्याप्त समय तक भारतीय भी उदासीन रहे। पाश्चात्य देशों से सम्पर्क बढ़ने के कारण इस ओर ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ। महेन्द्रलाल सरकार ने सन् १८८३ ई० मे कलकत्ते में 'वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परिषद्' का निर्माण किया।

१८९७ ई० में सर जगदीश चन्द्र बसु ने भौतिक-विज्ञान (Physics) सम्बन्धी कुछ अन्वेषण किया जिसके आधार पर उनकी विश्व में प्रतिष्ठा स्थापित हो गई। आपने १९०२ ई० में सिद्ध किया कि पेड़-पौधों में जीवन है जिसको पाश्चात्य जगत ने स्वीकार कर आपको सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त रमन, श्री मेघनादशाह, श्री बीरबल साहनी तथा श्री सत्येन्द्र बोस ने विज्ञान के अपने-अपने क्षेत्रों में विशेष प्रगति की। सन् १९२१ ई० में इण्डियन इंसटीट्यूट आफ साइंस (Indian Institute of Science) की स्थापना बंगलौर में की गई जिसने विज्ञान की प्रगति में बड़ा सहयोग प्रदान किया। सन् १९४८ ई० में वैज्ञानिक अनुसन्धान (Scientific Research) के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की गई। सरकार की ओर से अणुशक्ति की खोज के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। भारत के वैज्ञानिक खोजों में निरन्तर प्रयत्नशील हैं और आशा है कि उनको शीघ्र ही अपने प्रयत्नों में आशातीत सफलता प्राप्त होगी और भारत किसी विदेशी राज्य से पीछे न रहेगा।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) सन् १८५८ ई० के पश्चात् भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विकास की और उनके परिणामों की व्याख्या कीजिए। (१९५४, १९५६)

(२) सन् १८५८ ई० के पश्चात् भारत में हुए सांस्कृतिक परिवर्तनों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (१९५८)

मध्य प्रदेश—

(१) सन् १८५८ के पश्चात् ब्रिटिश शासन की शैक्षणिक नीति का ब्यौरा लिखिए। क्या आपके अनुसार उसस सच्ची शिक्षा की उन्नति हुई? (१९५४)

राजस्थान—

(१) सन् १८५८ से १९०५ ई० तक के साहित्यिक और कलात्मक विकास का वर्णन करो। (१९५६)

(२) सन् १८५८ ई० के पश्चात् भारत में शिक्षा के विकास का वर्णन करो। (१९५७)

११ भारत का नया संविधान

(New Constitution of India)

नवीन संविधान का निर्माण (Framing of the New Constitution)

कैबिनेट-मिशन योजना के अनुसार भारत के लिए एक नया संविधान निर्माण करने के लिए संविधान-सभा निर्मित की गई जिसने ९ दिसम्बर १९४६ ई० से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। २६ नवम्बर १९४९ को संविधान सभा द्वारा बनाया हुआ संविधान डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के हस्ताक्षर करने पर स्वीकार हुआ। २६ जनवरी

१९५० ई० से यह संविधान कार्य-रूप में लाया गया। इसके अनुसार भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) घोषित किया गया।

भारत-संघ (Indian Union)

संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार भारत राज्यों का एक संघ (Union) है। इसमें सम्मिलित राज्यों का संविधान की प्रथम अनुसूची क, ख, ग और घ में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया था। इन राज्यों को भारत संघ से निकालने या अपना सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार नहीं था।

'क' वर्ग के राज्य ('A' States)—'क' वर्ग के अन्तर्गत वे राज्य सम्मिलित थे जो अंग्रेजी शासनकाल के प्रान्तों के नाम से विख्यात थे और गवर्नर के अधीन थे। संविधान के निर्माण के समय इनकी संख्या ९ कर दी गई, किन्तु बाद में इनकी संख्या आन्ध्र राज्य के मद्रास से अलग होने पर १० हो गई। इन राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) आसाम (असम), (२) बिहार, (३) बम्बई, (४) मध्य प्रदेश, (५) मद्रास, (६) उड़ीसा, (७) पूर्वी पंजाब, (८) उत्तर प्रदेश, (९) पश्चिमी बंगाल और (१०) आन्ध्र राज्य।

'ख' वर्ग के राज्य ('B' States)—इस वर्ग के अन्तर्गत अंग्रेजी शासन-काल के देशी राज्य थे। प्राचीन तीन बड़े देशी राज्य पूर्ववत् रहे और अन्य देशी राज्यों को सम्मिलित कर कुछ संघों का निर्माण किया गया। इन राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) हैदराबाद, (२) मैसूर, (३) मध्य प्रदेश, (४) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब संघ राज्य, (५) राजस्थान, (६) सौराष्ट्र, (७) तिरुवांकुर-कोचीन, (८) जम्मू और काश्मीर और (९) विन्ध्य प्रदेश।*

'ग' वर्ग के राज्य ('C' States)—इस वर्ग के अन्तर्गत तीन ऐसे प्रदेश थे जो अंग्रेजी-काल में मुख्य आयुक्त (Chief Commissioner) के प्रान्त के नाम से विख्यात थे। शेष देशी राज्य थे इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) अजमेर, (२) कुर्ग, (३) दिल्ली, (४) भोपाल, (५) विलासपुर, (६) कच्छ, (७) मणिपुर, (८) त्रिपुरा, (९) हिमाचल प्रदेश।

'घ' वर्ग के राज्य ('D' States)—इस वर्ग के अन्तर्गत अंडमान और निकोबार द्वीप थे।

राज्य पुनर्संगठन-आयोग (Reorgonization of States)—भाषावार राज्यों के निर्माण की माग बराबर तीव्र वेग पकड़ती जा रही थी। १ अक्टूबर १९५३ को आन्ध्र राज्य का जन्म इसी आधार पर हुआ। विवश होकर भारत-सरकार को अक्टूबर के महीने में श्री फजल अली की अध्यक्षता में राज्य-पुनर्गठन-आयोग (States'

* विन्ध्य प्रदेश बाद में 'ग' वर्ग के राज्यों में सम्मिलित कर दिया गया।

Re-organization Commission) का निर्माण करना पड़ा जिसके सदस्य श्री के० एम० पणिक्कर तथा पंडित हृदय नाथ कुञ्जरू थे। इस आयोग ने १६ राज्यों तथा ३ केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रों की स्थापना की सिफारिश की जो इस प्रकार है—

राज्यों के नाम—मद्रास, केरल, कर्नाटक, हैदराबाद, आन्ध्र, बम्बई, विदर्भ, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम (असम) उड़ीसा तथा जम्मू और काश्मीर।

केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र (Centrally administered areas)—दिल्ली, मणिपुर तथा अंडमान और निकोबार।

राज्य पुनर्संगठन अधिनियम (Reorganization of states' Act)—राज्यों के पुनर्संगठन-आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार ने कुछ संशोधन के साथ भारतीय संसद में राज्य पुनर्संगठन विधेयक प्रस्तावित किया जो १ नवम्बर १९५६ को लागू हुआ। इस समय भारत-संघ में निम्न राज्यों तथा केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र हैं—

राज्यों के नाम—१. आन्ध्र, २. असम, ३. बंगाल, ४. बिहार, ५. उड़ीसा, ६. उत्तर प्रदेश, ७. मध्य प्रदेश, ८. मद्रास, ९. मैसूर, १०. केरल, ११. गुजरात, १२. पंजाब, १३. राजस्थान और १४. जम्मू काश्मीर १५. महाराष्ट्र।

केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र—१ दिल्ली, २. त्रिपुरा, ३. मणिपुर, ४. हिमाचल प्रदेश ५ निकोबार और अंडमान ६. लक्षद्वीप मिनिकोय और अमीदीव द्वीप, ७. दादरा और नागर हवेली, ८. गोवा, दामन, द्यु।

संविधान की विशेषतायें

(१) दोहरी नागरिकता का अभाव।
(२) न्यायालयों के संगठन में एकता।
(३) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था।
(४) राज्यों का संघ से सम्बन्ध-विच्छेद करने का अभाव।
(५) समस्त विषयों का तीन सूचियों में विभाजन।
(६) आवश्यकता पड़ने पर एकात्मक बनाने की व्यवस्था।
(७) परिवर्तन प्रणाली में सरलता।
(८) संसदीय सरकार।
(९) वयस्क मताधिकार।
(१०) निर्वाचन में संयुक्त प्रणाली।
(११) लौकिक राज्य।
(१२) पिछड़ी हुई तथा अनुचित जातियों के हितों की रक्षा।
(१३) अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अन्त।
(१४) स्त्रियों का समानाधिकार।

संविधान की विशेषतायें
(Special Features of the Constitution)

संविधान की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) दोहरी नागरिकता का अभाव (Absence of Dual Citizenship)—सिद्धान्त की दृष्टि से संघ में एक नागरिक को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, एक नागरिक निवास करता है। भारत के संविधान में नागरिक को एक ही नागरिकता (भारतीय नागरिकता) प्रदान की है। इस प्रकार वह भारत का नागरिक होगा और भारत के प्रति ही उसकी राजभक्ति होगी।

(२) न्यायालयों के सगठन में एकता (Unifi d Judiciary)—संघ-शासन को दृढ़ बनाने के हेतु न्यायालय के संगठन में एकता रखी गई है। भारत के सम्पूर्ण न्यायालय सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) के आधीन होंगे और सम्पूर्ण देश में दीवानी और फौजदारी कानून समान होंगे।

(३) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था (Establishment of all Indian Services)—संघ तथा विभिन्न राज्यों के लिये अखिल भारतीय सेवाओं की भी व्यवस्था की गई।

(४) राज्यों का संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अभाव (No Separation from the Union)—किसी भी राज्य को संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

(५) समस्त विषयों का तीन सूचियों में विभाजन (Subjects divided into three Catagories)—विभिन्न राज्यों के अधिकार निश्चित करने के उद्देश से तीन सूचियां बनाई गई हैं। प्रथम संघ सूची के अन्तर्गत वे विषय हैं जिन पर अधिनियम बनाने का अधिकार भारतीय ससद को प्राप्त है, द्वितीय राज्य सूची में उन विषयों का उल्लेख है जिन पर अधिनियम बनाने का अधिकार राज्यों के विधान-मण्डलों को प्राप्त है, तृतीय-समवर्ती सूची में दोनों के अधिकार समान हैं। साधारणतः इन अधिकारों का प्रयोग राज्य के विधान-मण्डल करेंगे, किन्तु आवश्यकता के समय संघीय सरकार उन पर अधिनियम बना सकती है। जिन विषयों का उल्लेख इन तीनों सूचियों के अन्तर्गत नहीं है वे संघ शासन के अधीन होंगे।

(६) आवश्यकता पड़ने पर एकात्मक बनने की सरलता (Unitary at the time of Emergency)—प्रायः सभी संघीय विधान अपरिवर्तनशील होते हैं और वे किसी भी दशा में एकात्मक नहीं बनाये जा सकते हैं किन्तु हमारे संविधान की यह विशेषता है कि इसमें परिवर्तन सरलता से किया जा सकता है और आवश्यकता के समय उसको एकात्मक बनाया जा सकता है। साधारणतः तो हमारा संविधान संघात्मक ही रहेगा परन्तु युद्ध या किसी अन्य राष्ट्रीय संकट के समय सारे देश में एकात्मक व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है।

(७) परिवर्तन प्रणाली में सरलता (Flexibility)—संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार भारतीय संसद को प्राप्त है न कि राज्यों के विधान-मण्डल को। हमारा संविधान न इतना कठोर है जितना अमेरिका का और न इतना परिवर्तनशील है जितना ग्रेट-ब्रिटेन का। संविधान में बीच का मार्ग अपनाया गया है। संविधान संशोधन का प्रस्ताव विधेयक के रूप में संसद में किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकता है। यदि वह विधेयक प्रत्येक सदन में सदस्यों की संख्या के बहुमत से और उपस्थित तथा मत देने वालों की संख्या के मत से स्वीकार कर लिया जाता है तो संविधान में संशोधन किया जा सकता है, किन्तु कुछ विषयों पर जैसे प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त, राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिये नहीं भेजा जा सकता है, जब तक कि आधे राज्य के विधान-मण्डल (Legislatures) उसमें सहमत न हों।

(८) संसदीय सरकार (Parliamentary Government)—प्राय: संघीय सरकार में कार्यकारिणी विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। कार्यकारिणी का प्रधान भारत का राष्ट्रपति है, किन्तु वह केवल वैधानिक प्रधान है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रि-परिषद् है जो भारतीय संसद के समक्ष अपने समस्त कार्यों के लिये उत्तरदायी है। वह उसी समय तक शासन-भार का संचालन कर सकती है जब तक कि भारतीय संसद का उस पर विश्वास हो अन्यथा वह कार्य नहीं कर सकती।

(९) वयस्क मताधिकार (Adult Franchise)—संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यस्क भारतीय को नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है। अब नागरिकता के अधिकार के लिये कोई शर्त नहीं है।

(१०) निर्वाचन में संयुक्त प्रणाली (Joint Election)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था थी, किन्तु अब संयुक्त प्रणाली को अपनाया गया है। दलित वर्ग के लिये कुछ स्थान अवश्य सुरक्षित कर दिये गये हैं किन्तु उनकी अवधि केवल दस वर्ष है।

(११) लौकिक राज्य (Secular State)—संविधान ने भारत को लौकिक राज्य की संज्ञा प्रदान की है। भारतीय राज्य धर्म के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। उसके सामने सब धर्म एक समान हैं और संविधान ने देश के निवासियों को उस दशा में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है। प्रत्येक भारतीय को, चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी है, भारतीय नागरिकता प्राप्त है।

(१२) पिछड़ी हुई तथा अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा (Protection to backward and Scheduled tribes)—नवीन संविधान द्वारा पिछड़ी हुई तथा अनुसूचित जातियों की भी उन्नति करने की ओर ध्यान दिया गया है। उनके लिये भारतीय संसद में कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं तथा उनकी शिक्षा आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ये समस्त सुविधायें उनको दस वर्ष तक प्राप्त होंगी।

(१३) अस्पृश्यकता तथा उपाधियों का अन्त (Abolition of Untouchability and titles)—नवीन संविधान द्वारा अस्पृश्यकता तथा उपाधियों का अन्तकर भारतीय समाज में उन दो दोषों का अन्त कर दिया गया है जिनके द्वारा हमारे समाज में ऊँच-नीच की भावना विद्यमान थी और इसको प्रोत्साहन मिलता था। इनके द्वारा समाज में समता की स्थापना की गई।

१४ स्त्रियों को समानाधिकार (Equal rights to women)—नवीन संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के समान समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान किये हैं। अब तक असमानता के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी हीन थी। इसके द्वारा नवीन संविधान ने भारतीय समाज की बड़ी सेवा की।

नागरिक के मौलिक अधिकार (Fundamental Rights of the Citizens)

इससे पूर्व भारत के नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। सन् १९३५ एवं १९१९ के भारत-सरकार अधिनियमों में इनका समावेश नहीं था। नवीन संविधान में इनको स्थान देकर भारत में वास्तविक प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना हुई।

इससे नागरिकों में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है और उनको प्रोत्साहन भी प्राप्त होता है। संविधान ने नागरिक के मौलिक अधिकारों को निम्न भागों में विभक्त किया—

(१) समता का अधिकार (Right to Equality)—हमारे संविधान ने नागरिकों को समान माना है। प्रत्येक नागरिक को कानून के सामने समता तथा कानून के संरक्षण का समान अधिकार प्राप्त है। राज्य की ओर से धर्म, रक्त, जाति, लिंग आदि किसी बात के कारण किसी नागरिक के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायेगा। राज्य के पदों को प्राप्त करने में सबको समानता रहेगी। संविधान ने दलित वर्ग को कुछ सुविधायें अवश्य प्रदान की हैं किन्तु इनकी अवधि केवल १० वर्ष है। इसके पश्चात नागरिकों में पूर्ण समानता की स्थापना हो जायेगी।

(२) स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to liberty)—समता के अधिकार के समान स्वतन्त्रता का अधिकार भी नागरिकों के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। जिन राज्यों ने अपने नागरिकों को इस अधिकार से वंचित किया है वहाँ के नागरिक अन्ध-विश्वासी होते हैं और वे किसी भी प्रकार अपनी उन्नति करने में सफल नहीं होते। कोई भी नागरिक अपने जीवन एवं अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति से कानूनी कार्यवाही के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है तथा कोई भी नागरिक बिना कारण बतलाये हुये कारावास में बन्द नहीं किया जा सकता। बन्दी किये जाने के २४ घण्टों के अन्दर वह मजिस्ट्रेट के सामने अवश्य उपस्थित किया जायेगा। कोई भी व्यक्ति तीन मास से अधिक नज़रबन्द नहीं किया जा सकता है किन्तु भारतीय संसद को यह अधिकार प्रदान कर दिया है वह तीन मास से अधिक के लिये भी नज़रबन्दी कानून बना सकती है।

> **नागरिक के मौलिक अधिकार**
>
> (१) समता का अधिकार।
> (२) स्वतन्त्रता का अधिकार।
> (३) शोषण के विरुद्ध अधिकार।
> (४) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।
> (५) संस्कृति और शिक्षा का अधिकार।
> (६) सम्पत्ति का अधिकार।
> (७) संविधानिक उपचारों के अधिकार।

(३) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)—कोई भी मनुष्य किसी भी रूप में किसी अन्य व्यक्ति का शोषण नहीं कर सकता। वह न तो किसी मनुष्य का क्रय कर सकता है और न किसी का विक्रय कर सकता है। कोई मनुष्य किसी से बेगार अथवा जबरदस्ती काम नहीं करवा सकता है। इससे भारतीय समाज के दोषों का उन्मूलन किया गया। यदि कोई मनुष्य ऐसा करने का प्रयत्न करेगा तो उसका अपराध दण्डनीय होगा, किन्तु इस सम्बन्ध में राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह सार्वजनिक कार्यों के लिए अनिवार्य सेवा का नियम बना सकता है। चौदह वर्ष की आयु से कम का बालक किसी कारखाने अथवा खान में काम नहीं कर सकता और न उसे ऐसे कार्य में लगाया जा सकता है जहाँ किसी प्रकार उसका जीवन संकट में पड़ने की सम्भावना हो।

(४) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to religious Freedom)-इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने विश्वास के अनुसार किसी भी धर्म को मनवाये एवं उसके अनुसार आचरण करे। वह अपने धर्म के प्रचार के लिये प्रयत्न कर सकता है। किन्तु उसके ऐसा करने से सार्वजनिक हित में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न होनी चाहिये। ऐसा होने पर राज्य उसके विरुद्ध नियम बना सकता है।

(५) संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (Right to Culture and education)—इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपनी भाषा, संस्कृति, लिपि आदि की सुरक्षा कर सके। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी शिक्षा केन्द्र में शिक्षा प्राप्त कर सकता है, चाहे वह किसी धर्म अथवा जाति का क्यों न हो। अल्प संख्यक वर्ग को अपने विद्यालयों की स्थापना का अधिकार होगा और उनको भी सरकारी सहायता उसी समान प्रदान की जायेगी जिस प्रकार अन्य विद्यालयों को मिलती है।

(६) सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property)—भारतीय संविधान ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार स्वीकार किया है। किसी व्यक्ति की सम्पत्ति कानूनी अधिकार के बिना नहीं छीनी जा सकती है। राज्य सार्वजनिक हित के लिए किसी भी मनुष्य की सम्पत्ति ले सकता है, किन्तु केवल उस समय उसकी उसकी क्षति-पूर्ति की व्यवस्था कर दी जाये। यदि किसी राज्य का विधान-मण्डल इस प्रकार सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कोई कानून बनायेगा तो उसको उस समय तक लागू नहीं किया जा सकता है जब तक कि राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे।

(७) सांविधानिक उपचारों के अधिकार (Remedies for the enforcement of Fundamental Rights)—यदि इन अधिकारों पर किसी प्रकार का कुठाराघात किया जाये तो प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की माग समुचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से कर सकता है। इन अधिकारों में से किसी को लागू करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय किसी भी प्रकार का आदेश दे सकता है। संसद विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त अधिकार मे बिना बाधा पहुँचाये किसी भी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आदेश जारी करने का अधिकार दे सकता है। सार्वजनिक शान्ति की रक्षक सेनाओं में अनुशासन बनाये रखने के लिए संसद इन अधिकारों को कम अथवा समाप्त कर सकती है।

उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों को नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए निम्नलिखित आदेश या लेख जारी करने का अधिकार है—

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas-Corpus), (ii) परमादेश (Mandamus) (iii) प्रतिषेध (Prohibition), (iv) उत्प्रेक्षण (Critiorari) (v) अधिकार पृच्छा।

नागरिक के मौलिक अधिकारों की समाप्ति
(Supension of Fundamental Rights)

साधारणतः भारतीय संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों को इनके अन्त तथा इनमें किसी प्रकार की कमी करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। संघ तथा राज्यों की

कार्यपालिकाओं के लिये उनका पालन अनिवार्य है, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर राज्य उनको स्थगित कर सकता है जो इस प्रकार हैं—

(१) संविधान में संशोधन करने पर—संविधान में संशोधन करने के उपरांत नागरिक के मौलिक अधिकारों का अन्त तथा उनमें कमी की जानी सम्भव है। सन् १९५१ ई० के प्रथम संशोधन अधिनियम द्वारा नागरिक के मौलिक अधिकारों में कुछ परिवर्तन कर दिया गया।

(२) रक्षा करने वाली सेवाओं के विषय मे—भारतीय संसद को यह निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है कि सेना मे या सार्वजनिक शान्ति की रक्षा करने वाली सेवाओं मे नागरिक के मौलिक अधिकार किस अवस्था तक कम या पूर्णतया समाप्त किये जा सकते हैं जिससे उनमे अनुशासन बनाये रखने तथा उनमें कर्तव्य पालन करवाने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव प्राप्त न हो।

> **नागरिकों के मौलिक अधिकारों की समाप्ति**
>
> (१) संविधान में संशोधन करने पर।
> (२) रक्षा करने वाली सेवाओं के विषय में।
> (३) सेना विधि लगे हुए क्षेत्रों में।
> (४) संकटकालीन उद्घोषणा द्वारा।

(३) सेना विधि लगे हुए क्षेत्रों में—भारतीय संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सेना-विधि (Court martial) में लगे हुए क्षेत्रों मे किसी अधिकारी द्वारा व्यवस्था को बनाये रखने के उद्देश्य से किये हुए किसी काम को मान्यता प्रदान कर सकती है। इसका कार्य-रूप मे यह अर्थ है कि सेना-विधि-क्षेत्र मे नागरिक को मौलिक अधिकारों का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

(४) संकटकालीन उद्घोषणा द्वारा—भारत के राष्ट्रपति के संकटकालीन उद्घोषणा करने पर भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता, संघ और सभा करने की स्वतन्त्रता आदि उस काल तक समाप्त कर दिये जायेंगे जिस समय तक उस घोषणा की मान्यता है। इसके साथ-साथ अन्य मौलिक अधिकारों को भी स्थगित किया जा सकता है यदि भारत के राष्ट्रपति का इस प्रकार का कोई आदेश हो। इस घोषणा के अन्त होने पर नागरिकों को मौलिक अधिकार पूर्ववत् प्राप्त हो जायेंगे।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)

राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त भारतीय संविधान की एक विशेषता है। इन सिद्धान्तों से अभिप्राय उन आदेशों से है जो राज्यों को अपनी नीति का निर्धारण करने के लिये दिये जाते है। उनके अनुसार राज्य की नीति लगभग एक समान चल सकेगी चाहे किसी भी राजनीतिक दल के हाथ में शासन की सत्ता आये। इन सिद्धान्तों के पीछे विधि की कोई सत्ता अथवा बल नहीं है। परन्तु देश के शासन के लिए इनको मौलिक स्वीकार किया जाता है। (Fundamental in the governance of the country)। यदि राज्य दुभाग्यवश इन सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करे तो अन्ततः न्यायालय किसी भी प्रकार उनके कार्यों को अवैध घोषित नहीं कर

सकता है। वास्तव में ये केवल व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका शक्तियों को
मात्र है। संविधान में निम्नलिखित नीति निर्देशक सिद्धान्तों का समावेश है—

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त

(१) लोक-कल्याण के हेतु सामाजिक व्यवस्था की स्थापना।
(२) राज्य द्वारा अनुसरणीय नीति तत्व।
(३) ग्राम पंचायतों का संगठन।
(४) नागरिकों को काम, शिक्षा और लोक-कल्याण।
(५) कार्य की मानवोचित दशाओं का निर्धारण एवं स्त्रियों को प्रसूति-सहायता।
(६) श्रमिकों के लिए उचित पारिश्रमिक।
(७) समस्त नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता कराने की ओर प्रयत्नशील।
(८) चौदह वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा।
(९) दलित वर्ग एवं आदि जातियों की अर्थ तथा शिक्षा सम्बंधी उन्नति।
(१०) जन-साधारण के स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न।
(११) कृषि और पशुपालन का संगठन।
(१२) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण।
(१३) कार्यपालिका और न्यायपालिका का भिन्न होना।
(१४) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति।

(१) लोक-कल्याण के हेतु
जिक व्यवस्था की स्थापना—राज्य
सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं
करने का प्रयत्न करेगा जिससे सार्व
कल्याण की वृद्धि हो और समस्त ना
तथा राष्ट्रीय संस्थाओं को सामा
आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त

(२) राज्य द्वारा अनुस
नीति तत्व—राज्य ऐसा प्रयत्न क
कि समान रूप से देश के सब नाग
को आजीविका प्राप्त करने के सब स
उपलब्ध हों। समाज के भौतिक सा
का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्र
विभाजित होना चाहिये जिससे
साधारण पूर्णरूप से लाभ उठा स
आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार हो जि
धन और उत्पादन के साधन कुछ व्यक्ति
के हाथ में एकत्रित न हो सकें। पुरुषों
स्त्रियों को समान कार्य के लिये स
वेतन मिलना चाहिए। आर्थिक व्यव
में श्रमजीवियों के स्वास्थ्य और श
अथवा बालकों का दुरुपयोग न हो अ
आर्थिक आवश्यकताओं के कारण उन
ऐसे कार्यों तथा व्यवसायों में कार्य
करना पड़े जो उनकी आयु तथा शक्ति
प्रतिकूल हों। बालकों तथा युवकों
शोषण तथा नैतिक और आर्थिक पतन
रक्षा की जानी चाहिए।

(३) ग्राम-पंचायतों का संगठन—राज्य को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि ग्राम पंचायतें अधिक से अधिक सं
में बनाई जावें और इनको अधिक से अधिक अधिकार प्रदान किये जावें जिससे
स्वायत्त शासन की इकाई का रूप धारण कर सकें।

(४) नागरिकों को काम, शिक्षा और लोक-कल्याण—राज्य को आर्थिक स्थिति के अनुसार ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य अपनी योग्यतानुसार

काम कर सके और वृद्धावस्था तथा बीमारी के समय राज्य उसकी भरसक सहायता करने में सफल हो सके। इसका यह अर्थ है कि ऐसी दशा में उन्हें यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वे राज्य से सहायता प्राप्त कर सकें।

(५) **कार्य की मानवोचित दशाओं का निर्धारण एवं स्त्रियों को प्रसूति सहायता**—राज्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तियों को मानवोचित दशाओं में ही कार्य करना पड़े। उनको ऐसे कार्य में नहीं लगाना चाहिए जो अपमानजनक हों। स्त्रियों को प्रसूती अवस्था में राज्य की ओर से सहायता अवश्य मिलनी चाहिए।

(६) **श्रमिकों के लिए उचित पारिश्रमिक**—राज्य किसी भी प्रकार ऐसा प्रयत्न करेगा कि प्रत्येक श्रमजीवी को चाहे वह कृषक हो अथवा किसी उद्योग-धन्धे में काम करता हो इतना वेतन अवश्य मिले कि वह अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सके और अवकाश के समय का पूर्ण उपभोग कर सके। इसके साथ-साथ घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति में पूर्ण सहायक होगा।

(७) **समस्त नागरिकों के लिए समान व्यवहार-संहिता बनाने की ओर प्रयत्नशील होना**—राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में समान व्यवहार संहिता के निर्माण करने का प्रयत्न करेगा। इसका अर्थ यह है कि समस्त देश के अन्तर्गत समान विधियों का प्रचलन होगा और उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखा जायेगा।

(८) **चौदह वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा**—राज्य इस संविधान के लागू होने से दस वर्ष के अन्दर ऐसी व्यवस्था करेगा कि चौदह वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करना सम्भव हो सके।

(९) **दलित वर्ग एवं आदि जातियों की धर्म तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति**—राज्य इन जातियों के अर्थ तथा शिक्षा-सम्बन्धी हितों की ओर पूर्ण ध्यान देगा तथा हर प्रकार से इनके शोषण की रक्षा करेगा। इनका अर्थ यह है कि राज्य किसी भी दशा में उनका शोषण होना स्वीकार नहीं करेगा।

(१०) **जन-साधारण के स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न**—राज्य जन-साधारण के स्वास्थ्य को उन्नत करने का भरसक प्रयत्न करेगा और हानिकारक मादक द्रव्यों का निषेध करेगा। केवल चिकित्सा के लिए ही इनका उपभोग किया जाना सम्भव होगा।

(११) **कृषि और पशु-पालन का संगठन**—राज्य कृषि और पशुपालन की आधुनिक वैज्ञानिक रीति से व्यवस्था करेगा। दूध देने वाले जानवरों की नस्लों को उन्नत करेगा और दूध देने वाले, बोझा ढोने वाले पशुओं की हत्या को समाप्त करेगा।

(१२) **राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण**—राज्य का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करने का भरसक प्रयत्न करेगा। संसद इनकी रक्षा के सम्बन्ध में विधि बना सकती है और राज्य की सरकार इनका पालन करके उनकी रक्षा करेगी।

(१३) कार्यपालिका और न्यायपालिका का भिन्न होना—कार्य राज्यपालि को न्यायपालिका से पूर्णतया भिन्न करने का प्रयत्न करेगा।

(१४) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति—राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शा और सुरक्षा स्थापित करने के लिए निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा—

(क) विभिन्न राष्ट्रों के बीच महत्वपूर्ण और सम्मानीय सम्बन्ध स्थापि करने का,

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय विधि (International Laws) और ग्रन्थि में कर्त्तव्यों लिए आदर-भाव उत्पन्न करने का तथा

(ग) राष्ट्रीय विवादों का पच निर्णय द्वारा निबटारा करने का।

राज्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का महत्व

(Importance of the Directive Principles of State Policy)

इसके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि इनक मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत स्थान मिलना चाहिये और कुछ का कहना है कि इ को संविधान में स्थान देने की आवश्यकता ही नहीं थी। इसका लाभ केवल इतना है कि इनके द्वारा प्रत्येक राज्य तथा संघ की उन्नति के लिये एक कार्य-क्रम निर्धारित कर दिया गया है और उनके उन पर कार्य करने की आशा की जाती है।

संघ का शासन (Union Administration)

राष्ट्रपति (President)—भारत संघ का मुख्य अधिकारी राष्ट्रपति होग जिसमे सम्पूर्ण राज्य की कार्यपालिका शक्ति निहित होगी। वह उस शक्ति का उपभोग या तो स्वयं कर सकता है या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करा सकता है। उसको सहायता तथा परामर्श देने के लिये एक मन्त्री-मण्डल होगा जो उसके प्रति उत्तरदायी होगा।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President)—राष्ट्रपति का निर्वाचन परोक्ष रूप से होगा, किन्तु भारतीय निर्वाचन प्रणाली बड़ी रहस्यमयी है। यहाँ केवल इतना ही ज्ञान पर्याप्त होगा कि राष्ट्रपति का निर्वाचन भारतीय संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य तथा राज्यों की विधान-मण्डल (जिन राज्यों मे दो सदन हैं वहाँ का प्रथम सदन) के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्मित निर्वाचन मण्डल (Electoral College) अनुमानिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की प्रणाली के आधार पर एकल परिवर्तनीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा गुप्त रूप से होगा।

राष्ट्रपति का कार्य-काल (Term of the President)—राष्ट्रपति का कार्य-काल पांच वर्ष होगा। पद ग्रहण करने की तिथि से ठीक पांच वर्ष तक वह अपने पद पर कार्य कर सकता है। इससे पूर्व वह अपनी इच्छा से त्याग-पत्र दे सकता है तथा संविधान के उल्लंघन करने पर संविधान में दी हुई पद्धति के अनुसार अभियोग लगा कर उसको पद से हटाया जा सकता है। वह अपने पद पर निश्चित कार्य-काल समाप्त होने के पश्चात् भी कार्य करता रहेगा जब तक कि उसका उत्तराधिकारी राष्ट्रपति-पद को ग्रहण नहीं करता है।

राष्ट्रपति का वेतन तथा भत्ता (Pay and Allowance of the President)—संविधान ने राष्ट्रपति को १०,००० रुपये मासिक देने की व्यवस्था की है। इसके भत्ते आदि के निर्णय का अधिकार संसद को सौंपा गया है। ऐसा बतलाया जाता है कि समस्त टैक्स आदि कटने के उपरान्त इस समय राष्ट्रपति को २७,०० रुपये मासिक मिलते हैं।

राष्ट्रपति की योग्यतायें (Qualifications of the President)—राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें।

(१) वह भारत का नागरिक हो,
(२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, तथा
(३) उसमें लोक-सभा के सदस्य होने की योग्यतायें हों।

राष्ट्रपति के अधिकार (Powers of the President)—संविधान ने राष्ट्रपति को विशेष अधिकारों से सुशोभित किया है, किन्तु उसके समस्त अधिकारों का प्रयोग मन्त्रि-मण्डल करता है क्योंकि भारत में संसदीय शासन व्यवस्था है। राष्ट्रीय अधिकारों को निम्न छः भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार (Executive Powers)—संघ की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। समस्त शासन उसके नाम से होता है। उसको युद्ध की घोषणा तथा संधि करने का अधिकार है। वह विदेशों में राजदूतों तथा अन्य राज्य-प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। संघ के समस्त प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति वह करता है। वह प्रधान मन्त्री एवं उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है जो राष्ट्रपति को शासन-सम्बन्धी कार्यों में परामर्श एवं सहायता प्रदान करते हैं।

(२) विधायनी अधिकार (Legislative Powers)—राष्ट्रपति भारतीय संसद का एक अभिन्न अंग है। वह संसद के अधिवेशन को आमन्त्रित करने तथा लोक-सभा को भंग करने का अधिकार रखता है। संसद द्वारा पास किया हुआ विधेयक उस समय तक अधिनियम नहीं बन सकता जिस समय तक वह उस पर अपने हस्ताक्षर न कर दे। धन-विधेयक और वित्तीय विधेयक उस समय तक लोक-सभा में प्रस्तावित नहीं किये जा सकते जब तक राष्ट्रपति से पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाये। उसको राज्यों के विधान मण्डलों के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं।

(३) न्याय सम्बन्धी अधिकार (Judicial Powers)—राष्ट्रपति को क्षमा करने का अधिकार प्राप्त है। वह प्राण दण्ड पाये हुये व्यक्तियों को मुक्त कर सकता है अथवा उनका दण्ड कम कर सकता है तथा दण्ड के प्रयोग को स्थगित कर सकता है। अपने कार्य के करने के लिये वह किसी न्यायालय के सामने उपस्थित नहीं किया जा सकता। उसको उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का अधिकार है।

(४) वित्त-सम्बन्धी अधिकार (Financial Powers)—राष्ट्रपति प्रति वर्ष संसद के सम्मुख बजट प्रस्तुत करता है। उसकी पूर्व सम्मति प्राप्त किये बिना धन-

विधेयक या वित्त-विधेयक लोक-सभा में प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India) पर उसका अधिकार है।

(५) संकटकालीन अधिकार (Emergency Powers)—राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकार बहुत विस्तृत हैं। वह संकटकालीन उद्घोषणा (Declaration of Emergency) के द्वारा संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार की घोषणा का प्रभाव केवल दो मास तक है, किन्तु यदि भारतीय संसद उसकी घोषणा से सहमत हो तो उद्घोषणा की अवधि में वृद्धि की जा सकती है।

राष्ट्रपति के अधिकार

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार।
(२) विधायनी अधिकार।
(३) न्याय-सम्बन्धी अधिकार।
(४) वित्त-सम्बन्धी अधिकार।
(५) संकटकालीन अधिकार।
(६) विशेष अधिकार।

इस काल में सम्पूर्ण शासन सत्ता पर राष्ट्रपति का अधिकार हो जाता है। जनता से उसके अधिकार छीन लिये जाते हैं। उस समय उच्चतम न्यायालय भी नागरिक के अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता। वह किसी भी राज्य के विधान को स्थगित कर सकता है। यदि संसद का अधिवेशन न हो रहा हो तो वह किसी भी व्यय की स्वीकृति दे सकता है। इस काल में ससद के अधिवेशन न होने के समय पर वह अध्यादेश भी बना सकता है।

(६) विशेष अधिकार (Special Powers) राष्ट्रपति अपने अधिकार सम्बन्धी कार्यों के करने में किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं है। उसके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसके विरुद्ध बन्दी किये जाने का कोई अधिपत्र (Warrant) जारी नहीं किया जा सकता है। दो मास की लिखित सूचना देने के पूर्व उसके विरुद्ध दीवानी कार्यवाही हो सकती है।

इस प्रकार संविधान ने राष्ट्रपति को बहुत अधिकार प्रदान किये हैं। इस सम्बन्ध में आलोचकों का कथन है कि किसी समय ऐसा सम्भव हो सकता है कि भारत में तानाशाही शासन की स्थापना हो जाये और नागरिको के मौलिक अधिकारों का कोई महत्व ही नहीं रहे। सम्भावना ऐसी अवश्य हो सकती है, किन्तु उसको इन अधिकारों का प्रयोग संसदीय व्यवस्था का प्रधान होने के नाते मन्त्रि-मण्डल की सलाह से करना होगा जो राष्ट्रपति के कार्यों तथा अधिकारों के प्रयोग में उसको सलाह तथा सहायता प्रदान करेगी।

भारत का उप-राष्ट्रपति (Vice Pres Id n tof I dia)

भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा जो भारतीय संसद के द्वितीय भवन राज्य परिषद् (Council of States) का सभापति होगा। जिस समय किसी भी कारणवश राष्ट्रपति का पद रिक्त हो वह जब तक कि नये राष्ट्रपति का निर्वाचन न हो जाये राष्ट्रपति के पद पर कार्य करता रहेगा। उस समय इसको वे सब अधिकार प्राप्त होंगे जो ... प्राप्त होते हैं। इस समय वह राज्य-परिषद् का सभापति नहीं रहेगा।

उपराष्ट्रपति की योग्यतायें (Qualifications of Vice-President)—उपराष्ट्रपति बनने के लिये किसी भी व्यक्ति मे निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें :—

(१) भारत का नागरिक हो,

(२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, और

(३) राज्य-परिषद् का सदस्य होने की योग्यता रखता हो।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of Vice-President)—उपराष्ट्रपति का निर्वाचन ससद के दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित सम्मेलन मे अनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की प्रणाली के आधार पर एकल सक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा गुप्त रीति से होगा।

उपराष्ट्रपति का कार्य-काल एवं पद-त्याग (Term and resignation of Vice-President)—उपराष्ट्रपति की अवधि उस तिथि से जब से उसने कार्य-भार सभाला पाच वर्ष निश्चित है। वह स्वय अपना त्याग-पत्र भारत के राष्ट्रपति को सम्बोधित करके दे सकता है। राज्य-परिषद् उस पर अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे पदच्युत कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव लोक-सभा से भी पास होना आवश्यक है। उपराष्ट्रपति अपने पद पर उस समय तक कार्य करता रहेगा जब तक कि उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति न हो चुका हो।

मन्त्रि-मण्डल
(Council of Ministers)

भारतीय सविधान ने मन्त्रि-परिषद्-पद्धति को अपनाया है। सविधान मे उल्लिखित है कि एक मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका कार्य राष्ट्रपति को उसके कार्यों मे सहायता तथा परामर्श देना होगा। यह मन्त्रि-परिषद् राष्ट्रपति तथा भारतीय ससद के प्रति सयुक्ति रूप से उत्तरदायी होगी। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति वह प्रधान मन्त्री की सलाह से करेगा। वास्तव में शासन का समस्त कार्य-भार मन्त्रि-परिषद् पर होगा और राष्ट्रपति केवल वैधानिक शासक के समान होगा। प्रत्येक मन्त्री को ससद का सदस्य होना आवश्यक है। सविधान ने ऐसी भी व्यवस्था की है कि ऐसा व्यक्ति भी मन्त्री-पद पर आसीन किया जा सकता है जो ससद का सदस्य न हो, किन्तु उसको छह महीने के अन्दर ही ससद का सदस्य होना आवश्यक है अन्यथा उसको अपना पद त्यागना पड़ेगा। मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। वह उस समय तक अपने पद पर आसीन रह सकती है जब तक लोक-सभा का इस पर विश्वास हो।

भारतीय ससद
(Union Parliament)

सघ के लिए एक ससद होगी जिसके अन्तर्गत भारत के राष्ट्रपति के अतिरिक्त दो सदन होंगे जिनमें से एक का नाम राज्य-सभा (Council of States) और दूसरे का नाम लोक-सभा (House of the People) होगा।

राज्य-सभा की बनावट (Composition of Council of States)—राज्य-परिषद् के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक २५० होगी जिनमें से १२ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। ये व्यक्ति ऐसे होंगे जो कला, साहित्य, विज्ञान तथा समाज-सेवा के विषय में विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव रखते हों। शेष २३८ सदस्यों का निर्वाचन संघ में सम्मिलित राज्यों द्वारा होगा। इन सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष रीति से होगा। राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन राज्यों के विधान-मण्डल (जहाँ दो सदन है वहाँ का प्रथम सदन) अनुपातिक निर्वाचन पद्धति के अनुसार एकल परिवर्तनीय वोट द्वारा गुप्त रीति से करेगा। यह एक अस्थायी संस्था होगी। यह कभी भंग नहीं की जा सकती है, किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अपने पद से हट जायेंगे और उनके स्थान पर नया निर्वाचन होगा। इस सभा का सभापति भारत का उपराष्ट्रपति होगा।

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members)—राज्य-परिषद् के सदस्य होने वाले व्यक्ति के लिये निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो।

(२) उनकी आयु तीस वर्ष से अधिक हो तथा

(३) उसमें से वे सब योग्यतायें भी हों जो भारतीय संसद समय-समय पर निश्चित करे।

अधिकार (Powers)—धन विधेयक तथा वित्त विधेयक को छोड़कर अन्य कोई भी विधेयक इस सभा में भी प्रस्तावित किया जा सकता है। धन विधेयक तथा वित्त विधेयक को छोड़कर दोनों सदनों के अधिकार समान हैं, किन्तु इस सभा को अधिनियम सम्बन्धी अधिकार कम हैं। मतभेद के अवसर पर लोक-सभा के विचारों को मान्यता है।

लोक-सभा का निर्माण (Composition of the House of the People)—लोक-सभा के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ५०० होगी। लोक-सभा के सदस्यों का निर्वाचन राज्यों की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होगा। निर्वाचन के समस्त राज्य प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित कर दिये जायेंगे। संविधान ने ऐसी व्यवस्था की है कि ७५०,००० व्यक्तियों के लिये कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य हो और ५,००० ,०० के लिये एक से अधिक सदस्य न हों। अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एंग्लो इंडियनों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित हैं। यह केवल १० वर्ष तक के लिये है। यदि राष्ट्रपति अनुभव करते हैं कि लोक-सभा में एंग्लो इंडियनों को पर्याप्त मात्रा में निर्वाचन प्राप्त नहीं हुआ है तो उनको अधिकार है कि वे दो एंग्लो इंडियनों को मनोनीत कर सकते हैं।

सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members)—लोक सभा के सदस्य होने वाले उम्मीदवार में निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है:—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु कम से कम २५ वर्ष हो, और

(३) उसमें वे सब योग्यतायें हों जो भारतीय संसद समय-समय पर निर्धारित करती है।

लोक-सभा का राज्य-काल (Term of the House of the People)—साधारणतः लोक-सभा का कार्य-काल पांच वर्ष है, किन्तु भारत के राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह इस अवधि के पूर्व इस सभा को भंग कर दे और इस सभा का नया निर्वाचन कराये। साधारण परिस्थितियों में इस अवधि की समाप्ति पर लोक-सभा भंग हो जायगी। केवल संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह केवल एक बार एक वर्ष के लिये इसका कार्य-काल बढ़ा दे, किन्तु किसी भी दशा में यह एक वर्ष से अधिक नहीं किया जा सकता है।

राज्यों का शासन
(States' Administration)

राज्यपाल (Governor)—राज्य के शासन की समस्त कार्यपालिका-शक्ति राज्यपाल में निहित है। शासन का समस्त कार्य उनके नाम से होता है। वह अपने अधिकारों का प्रयोग या तो स्वयं कर सकता है अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करा सकता है। उसको उसके कार्यों में सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी जो उसके प्रति उत्तरदायी होगी।

राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of Governor)—राज्यपाल की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। साधारणतः उनका कार्य-काल पांच वर्ष है, किन्तु वह अपने पद पर उस समय तक आसीन रहेगा जब तक राष्ट्रपति का उस पर विश्वास हो। पांच वर्ष की समाप्ति पर भी वह उस समय तक अपने पद पर कार्य करता रहेगा जब तक कि उसके पद पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो जाती है। वह अपने कार्य-काल की समाप्ति के पूर्व भी राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र दे सकता है और अपने कार्य से मुक्त हो सकता है।

योग्यतायें (Qualifications)—राज्यपाल होने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो, और

(३) देश का कोई सम्मानित एवं गण्य-मान्य व्यक्ति हो।

वेतन एवं भत्ता (Pay and Allowance)—राज्यपाल के वेतन, भत्ते आदि का निर्णय भारतीय संसद करेगी किन्तु जब तक ऐसा निश्चय नहीं किया जाता उस समय तक उसको ५,५०० रुपये मासिक वेतन मिलेगा और वे सब भत्ते तथा उपलब्धियां प्राप्त होंगी जो संविधान लागू होने से पूर्व प्रान्तों के गवर्नरों (Governors) को मिलती थीं।

राज्यपाल के अधिकार (Powers of the Governor)—राष्ट्रपति के अधिकारों के समान राज्यपाल के अधिकार भी बहुत विस्तृत हैं किन्तु उन सब अधिकारों का प्रयोग राज्यपाल स्वयं न करके मन्त्रि-परिषद् करेगी क्योंकि राज्यों में भी संसदीय शासन-प्रणाली को संविधान में अपनाया गया है। राज्यपाल केवल एक

वैधानिक शासक होगा। असाधारण अवस्था में वह अपनी व्यक्तिगत इच्छा (Individual Judgment) से भी कार्य कर सकता है। राज्यपाल के अधिकारों को साधारणतः निम्न चार भागों में विभाजित किया जाता है—

राज्यपाल के अधिकार
(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार।
(२) विधायनी अधिकार।
(३) न्याय सम्बन्धी अधिकार।
(४) वित्त सम्बन्धी अधिकार।

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार (Executive Powers)—वह राज्य कार्यपालिका का प्रधान है। समस्त कार्यपालिका शक्ति उसमें निहित है। वह शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये नियम बना सकता है। वह राज्य के प्रमुख अधिकारियों तथा मुख्यमन्त्री की सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।

(२) विधायनी अधिकार (Legislative Powers —राज्यपाल विधान-मण्डल का अभिन्न अंग है। विधान-मण्डल का अधिवेशन उसके निमन्त्रण पर होता है। व विधान-सभा को भंग कर सकता है और उसका कार्यकाल बढ़ा सकता है। वह विधान मण्डल में अपना सन्देश भेज सकता है अथवा उसमें भाषण दे सकता है। उस समय तक कोई विधेयक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि उस प राज्यपाल की अनुमति प्राप्त न हो जाए। वह किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए रोक सकता है। वह विधेयक को पुनर्विचार के लिए विधान-मण्डल में भेज सकता है। दूसरी बार स्वीकृत किये हुए विधेयक पर उसको अपनी अनुमति देनी होगी। जब विधान-मण्डल का अधिवेशन नहीं हो रहा हो उस समय राज्यपाल उन समस्त विषयों का अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है जिस पर विधि निर्मित करने का अधिकार राज्य के विधान-मण्डल को प्राप्त है। ये अध्यादेश विधान-मण्डल के अधिवेशन के आरम्भ से ६ सप्ताह के बाद और यदि उसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व विधान-मण्डल उनको अस्वीकार कर दे तो उस तिथि से वे रद्द माने जायेंगे किन्तु जिन विषयों पर अधिनियम बनाते समय राज्य की सरकार को राष्ट्रपति की सलाह लेनी पड़ती है, इनके विषय में अध्यादेश घोषित करते समय राज्यपाल को राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति लेनी होगी।

(३) वित्त-सम्बन्धी अधिकार (Judicial Powers)—राज्यपाल को उन समस्त विषयों से सम्बन्धित अपराधों के लिये जो राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत आते हैं दिए गये दण्ड को कम करने, रद्द करने स्थगित करने और बदल देने का अधिकार प्राप्त है किन्तु जिन अपराधों का सम्बन्ध संघ सरकार से है उनके सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई अधिकार नहीं है।

(४) वित्त-सम्बन्धी अधिकार (Financial Powers)—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ के पूर्व राज्यपाल को विधान-मण्डल के सम्मुख आय-व्यय का लेखा (Budget) रखना होगा। विधान-मण्डल से किसी भी समय धन की माग राज्यपाल की सिफारिश पर ही की जा सकती है। विधान-मण्डल के सामने पूरक माग

Supplementary Demand) बढ़े हुए व्यय के लिए उपस्थित कर सकता है। समस्त धन-सम्बन्धी विधेयक विधान सभा में उसी समय उपस्थित किये जा सकते हैं जब राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर ली गई हो।

इस प्रकार राज्यपाल के अधिकार भी बहुत विस्तृत हैं। मन्त्रि-मण्डल प्रणाली के अनुसार उसके सब अधिकारों का उपभोग मन्त्रि-मण्डल ही करेगा। किसी-किसी स्थान पर जनहित का ध्यान रखते हुए वह मन्त्रि-मण्डल की सलाह की अवहेलना भी कर सकता है, किन्तु ऐसा अवसर शायद ही कभी उपस्थित हो सकेगा।

मन्त्रि-मण्डल
(Council of Ministers)

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि शासन की वास्तविक सत्ता मन्त्रि-मण्डल के हाथ में होगी और राज्यपाल वैधानिक शासक के रूप में कार्य करेगा। संविधान के अनुसार मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल को उसके कार्यों में सहायता तथा परामर्श देगी किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। जिन विषयों पर राज्यपाल को अपने विवेक से शासन करने का अधिकार है उन पर मन्त्रि-मण्डल की सलाह की कोई आवश्यकता नहीं।

मन्त्रि-मण्डल की बनावट (Composition of Council of the Ministers)—राज्यपाल मुख्य मन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्तियां करता है। प्रत्येक मन्त्री को विधान-मण्डल का सदस्य होना आवश्यक है। ऐसे भी व्यक्ति मन्त्रि-मण्डल में सम्मिलित किये जा सकते हैं जो विधान मण्डल के सदस्य न हों, किन्तु इनको छह महीने के अन्दर विधान-मण्डल का सदस्य होना आवश्यक है अन्यथा उनको अपना पद रिक्त करना होगा। मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल तथा विधान-सभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी है। अतः केवल वे ही मन्त्री नियुक्त किये जा सकते हैं जिन पर विधान-सभा का विश्वास हो। उड़ीसा, बिहार और मध्य-प्रदेश में आदिम जातियों, दलित वर्गों एवं पिछड़ी हुई जातियों के हितों की रक्षा के लिये भी एक मन्त्री की व्यवस्था संविधान द्वारा की गई है।

विधान-मण्डल
(Legislature)

संविधान ने कुछ राज्यों में दो भवन और कुछ राज्यों में एक भवन की व्यवस्था की है। बिहार, बम्बई, मद्रास, मध्य-प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा मैसूर में दो सदनों की व्यवस्था है। अन्य राज्यों में एक भवन की व्यवस्था है। जहाँ केवल एक ही सदन है वहाँ उसका नाम विधान-सभा होगा और जहाँ दो सदन हैं वहाँ प्रथम सदन का नाम विधान-सभा और द्वितीय सदन का नाम विधान-परिषद् होगा।

विधान सभा का निर्माण (Composition of Legislative Assembly)—राज्यों को विधान-सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिए राज्य प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों (Territorial Constituencies) में विभक्त कर दिये जायेंगे। इस सभा

का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होगा अर्थात् जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन स्वयं
करेगी। संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रति ७५,००० जनसंख्या के
पीछे एक सदस्य होगा उससे अधिक नहीं। लेकिन यह नियम के जिलों और शिलांग के
नगर-क्षेत्र और कटक के लिए लागू नहीं होगा। विधान-सभा के कुल सदस्यों की संख्या
५०० से अधिक और ६० से कम नहीं होगी। संविधान ने आदिम जातियों तथा
अल्पमतों के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था की है। ये स्थान उन जातियों की जन-
संख्या के अनुपात के आधार पर निश्चित होंगे। यदि राज्य का राज्यपाल ऐसा अनुभव
करता है कि ऐंग्लो इण्डियन समुदाय के प्रतिनिधि पर्याप्त संख्या में निर्वाचित नहीं
हुए तो वह उस समुदाय के जितने सदस्य उचित समझे मनोनीत कर सकता है। यह
व्यवस्था दस वर्ष के उपरान्त समाप्त कर दी जायेगी।

विधान-सभा का कार्य-काल (Time of the Legislative Assembly)—
विधान-सभा का कार्य-काल साधारणतः पांच वर्ष है, किन्तु राज्यपाल को यह अधिकार
प्राप्त है कि वह इससे पूर्व भी उसको भंग कर सकता है। यदि यह सभा नियत समय
के भीतर भंग नहीं हो जाती है तो वह अपने प्रथम अधिवेशन की तिथि से पांच वर्ष
तक कार्य करती रहेगी और इसके उपरान्त स्वयं भंग हो जायेगी। संकटकालीन अव-
स्था में भारतीय संसद इसका कार्य-काल एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है किन्तु यह
अवधि एक बार में एक वर्ष से अधिक समय के लिए नहीं बढ़ाई जा सकती। इस
अवस्था की समाप्ति पर यह अतिरिक्त अवधि छह मास से अधिक नहीं हो सकती।

विधान-सभा के सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of members)—
विधान-सभा के सदस्य होने के लिए निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो और

(३) उसमें वे सब योग्यतायें होनी आवश्यक हैं और जो विधान-मण्डल वि-
द्वारा निश्चित करें।

विधान-परिषद् का निर्माण (Composition of Legislative council)
विधान-परिषद् एक स्थायी संस्था है जो कभी भंग नहीं होगी किन्तु इसके ए-
तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अपना स्थान रिक्त कर देंगे और उनके स्थान पर न-
निर्वाचन होगा। इसके सदस्यों की संख्या विधान-सभा के सदस्यों की संख्या से ए-
चौथाई से अधिक न होगी, किन्तु किसी भी दशा में इसके सदस्यों की संख्या ४०
कम नहीं होगी। इसका निर्माण इस प्रकार होगा—

(१) इस परिषद् की कुल संख्या के एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन स्थानी-
संस्थाओं द्वारा होगा।

(२) कुल संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन ऐसे व्यक्तियों द्वारा होगा
कम से कम तीन वर्ष से किसी भारतीय विश्वविद्यालय के अथवा उसके समान कि-
अन्य विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त किये हुए हों।

(३) कुल संख्या का बारहवां भाग ऐसे व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित होगा

कम से कम तीन वर्ष से किसी हायर सेकेण्डरी विद्यालयों तथा उनसे उच्च विद्यालयों मे शिक्षण का कार्य कर रहे हों।

(४) एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान-सभा के सदस्य करेंगे। ये बाहरी मनुष्यों म से होगे न कि विधान-सभा के सदस्यो मे से।

(५) शेष सदस्य अर्थात् कुल सख्या का छठा भाग राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जायेगा। ये ऐसे व्यक्ति होने चाहियें जिनको साहित्य, कला, विज्ञान तथा सहकारी आन्दोलनों के सम्बन्ध मे विशेष अथवा व्यवहारिक अनुभव हो।

विधान-परिषद् के सदस्यों की योग्यतायें (Qualifications of the Members of Legislative Council)—विधान-परिषद् के सदस्यों के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक हो, और

(३) उसमे वे सब योग्यतायें हो जिनको विधान-मण्डल विधि द्वारा निश्चित करे।

विधान-सभा और विधान-परिषद् का सम्बन्ध (Relation between the Assembly and Council)—विधान-परिषद् से विधान-सभा अधिक शक्तिशाली है। धन-विधेयक तथा वित्त-विधेयक केवल विधान-सभा मे ही प्रस्तावित किये जा सकते है। दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक राज्यपाल के हस्ताक्षरों के लिए भेज दिया जाता है। जब किसी विधेयक पर दोनों भवनो में मतभेद उत्पन्न हो जाता है और यदि विधेयक विधान-सभा द्वारा पुनः स्वीकृत कर दिया जाये और फिर भी विधान-परिषद् उसे पास नहीं करती तो यह समझा जायेगा कि उसको दोनों सदनो ने स्वीकार कर लिया है।

प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) स्वतन्त्र भारत के नये विधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो। (१६५२)

(२) हमारे राष्ट्रीय संविधान के अन्तर्गत व्यक्तिगत अधिकार क्या हैं और उनकी रक्षा के लिए क्या व्यवस्था रखी गई है ? (१६५६)

देशी राज्यों का एकीकरण

अंग्रेजों के शासन-काल में भारत ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में वि
था। ब्रिटिश भारत पर अंग्रेजों का प्रत्यक्ष शासन था और देशी, राज्यों पर उ
अधिकार परोक्ष था। ये राज्य न तो ब्रिटिश भारत के राज्य थे और न इन
ब्रिटिश ससद् का ही नियन्त्रण था। इस कारण शक्ति हस्तान्तरण (Transfe
Power) का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १६ मई १९४६ की कैबीनट मि
योजना (Cabinet Mission Plan) में स्पष्ट कर दिया था कि स्वतन्त्रता की प्र
पर ब्रिटिश ताज और देशी राज्यों में सम्बन्ध समाप्त हो जायेंगे। सार्वभौम स
ब्रिटिश राज्य के अधिकार में होगी और न उसका हस्तांतरण नई सरकार को
जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जो सम्बन्ध ब्रिटिश ताज और देशी राज्यों क
वह समाप्त हो जायेगा और राज्यों को वे समस्त अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जो र
की ओर से ब्रिटिश ताज को प्राप्त थे। देशी राज्यों ने कैबिनट मिशन योजन
स्वीकार कर लिया था। ३ जून १९४७ के वक्तव्य में इसको पुनः दोहराया गया
यह कहा गया कि सार्वभौम सत्ता का सदा के लिए अन्त कर दिया जायगा। १
के स्वतन्त्रता अधिनियम द्वारा स्पष्ट कर दिया गया कि निश्चित तिथि पर देशी र
पर से ब्रिटिश ताज का अधिकार समाप्त हो जायेगा तथा उन समस्त सन्धियों क
अन्त हो जायेगा जो ब्रिटिश राज्य और देशी राज्यों के शासकों के बीच हुई
उनको अपना निश्चय करने का अधिकार प्रदान किया गया और १५ अगस्त १
के उपरान्त वे भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो सकते हैं। कुछ
शासकों की इस सम्बन्ध में यह धारणा थी कि देशी राज्य नेताओं के अधिका
स्वीकार नहीं करेंगे और यह सम्भव है कि भारत में गृह-युद्ध आरम्भ हो जा
हैदराबाद, त्रावनकोर और भुपाल के नरेशों का भी यह विचार था। महाराजा
की भी यह धारणा थी। जब भारत-सरकार को इसका आभास हुआ तो उन
राज्यों को विलीन करने का निश्चय किया और देशी राज्यों के नव-निर्मित वि
मंत्री सरदार पटेल ने बड़ी तत्परता, साहस तथा बुद्धिमत्ता से इस समस्या का स
कर इस सकट से देश की रक्षा की। त्रावनकोर की जनता ने वहाँ के राजा के
विद्रोह किया। दीवान को वहाँ से भागना पड़ा। हैदराबाद में गृह युद्ध आर
गया। इसका अन्त करने के अभिप्राय से भारत-सरकार को पुलिस का
... Action) करना पड़ा। ... थी जिनको बहुत अरा

में केवल १५ इकाइयों में पुनर्गठित कर दिया गया। इस महत्वपूर्ण कार्य का श्रेय उपप्रधान मन्त्रि सरदार पटेल को है। राजाओं ने भी समझ लिया था कि अब सामन्तशाही और निरंकुशता का समय जाता रहा और अब उनका भारत राज्य के साथ सम्मिलित होने में ही हित है। फिर भी जूनागढ़, त्रावनकोर, भोपाल, हैदराबाद तथा काश्मीर आदि कुछ रियासतों ने आपत्ति की। उनके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियों में प्रकाश संक्षेप में डाला जायेगा।

(१) जूनागढ़ (Junagarh)—जूनागढ काठियावाड में एक छोटी सी मुसलमान रियासत थी जिसकी अधिकाश जनता हिन्दू थी। नवाब पाकिस्तान के साथ मिलना चाहता था और जनता भारत के साथ। जब जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान से जूनागढ़ को सम्बद्ध करने की घोषणा की तो जनता ने आन्दोलन किया। अक्टूबर १९४७ को नवाब ने भागकर पाकिस्तान म शरण ली और नवम्बर १९४७ को जनता की इच्छा एव सम्मति के अनुसार रियासत को भारत का एक अग बनाकर उसमे सम्मिलित कर लिया गया।

(२) हैदराबाद (Hydrabad)—हैदराबादके साथ भी यही हुआ। हैदराबाद का निजाम पाकिस्तान मे मिलना चाहता था जबकि वहाँ की अधिकाश जनता हिन्दू थी। मुस्लिम रजाकार आन्दोलन कासिम रिजवी के नेतृत्व मे राज्य मे आरम्भ हुआ और जनता पर आतक छा गया। हिन्दुओ के साथ अत्याचार होने लगे। मुस्लिम नेता विजयी लाल किले पर निजामशाही झण्डा फहराने का स्वप्न देखने लगा। लाचार होकर १३ दिसम्बर १९४८ ई० को भारत को पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी। चार दिन मे ही हैदराबाद ने हथियार डाल दिए। निजाम ने भारत-राज्य मे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

(३) काश्मीर (Kashmir)—काश्मीर भी भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित न होकर पृथक एक स्वतन्त्र राज्य रहना चाहता था, परन्तु पाकिस्तान ने काश्मीर को भयभीत करके अपने साथ मिलाने के लिए कबाईलियों को भड़काकर उस पर आक्रमण करा दिया। लूट, मार-काट, बलात् अपहरण के काण्ड होने लगे। तब काश्मीर नरेश ने शेरे काश्मीर अब्दुला को प्रधान मन्त्रि बनाकर उनकी सलाह से भारत मे सम्मिलित होने की प्रार्थना की, जिसको स्वीकार कर लिया गया। जब काश्मीर अपनी स्वेच्छा से भारत का एक अग बन गया तो वहाँ की जनता की जान-माल की रक्षा करना भारत सरकार का कर्त्तव्य हो गया। निदान भारतीय सेना काश्मीर पहुँची। पाकिस्तान ने पहले ही सैनिक सहायता देना आरम्भ कर दिया था। यह बात अन्तर्राष्ट्रीय नियम के विरुद्ध थी। इसलिए भारत ने काश्मीर की समस्या को संयुक्त राष्ट्र सघ के सामने रख दिया। सयुक्त राष्ट्र सघ के कहने से पाकिस्तान और भारत का युद्ध १ जनवरी १९४९ को बन्द तो हो गया, परन्तु अभी तक इस समस्या का निराकरण नहीं हुआ है। कई बार यह प्रश्न सुरक्षा परिषद् में उठाया गया, किन्तु कोई निर्णय अभी तक नहीं हो पाया। अन्त में पाकिस्तान ने काश्मीर पर अधिकार करने के उद्देश से ५ अगस्त १९६५ को लगभग ५००० घुसपैठिये जम्मू और काश्मीर सीमा

[illegible] आधुनिक युद्ध [illegible] । [illegible] भारतीय अधिकारियों का यह समाचार प्राप्त हुआ [illegible] के लिए भेजा गया । [illegible] भारतीय सेनाओं को उनकी रोक-थाम करने के लिए भेजा गया । [illegible] ब्रिगेड और ७० टैंकों से आक्रमण [illegible] सितम्बर को पाकिस्तान ने छम्ब क्षेत्र पर [illegible] सितम्बर को भारतीय सेना ने लाहौर क्षेत्र पर अपनी सुरक्षा के उद्देश्य [illegible] सितम्बर को भारतीय सेना ने [illegible] क्षेत्र में प्रवेश किया और आक्रमण किया । [illegible] सितम्बर को [illegible] । २२ सितम्बर को संयुक्त राष्ट्र संघ के सेक्रेटरी [illegible] भारत के प्रधान मन्त्री लाल बहादुर [illegible] भारत आये और उन्होंने [illegible] । २० सितम्बर को सुरक्षा परिषद् ने युद्ध बन्द करने [illegible] की । [illegible] भारत ने इसको स्वीकार किया और बाद में पाकिस्तान ने [illegible] किया । [illegible] को दोनों देशों में युद्ध बन्द हो गया । अन्त में दोनों देशों [illegible] प्रधान मन्त्री [illegible] के प्रयत्न से ताशकन्द समझौता (१० जनवरी १९६६) को हुआ । इस समझौते की स्याही सूखने भी न पाई थी कि [illegible] भारत के प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की हृदय रोग के कारण ताशकन्द [illegible] में मृत्यु हो गई (११ जनवरी १९६६ को) । समस्त देश पर शोक छा गया । [illegible] है कि वे ताशकन्द समझौते [illegible] पाकिस्तान [illegible] भारत पर आक्रमण [illegible] स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है । [illegible] पाकिस्तान भारत पर आक्रमण [illegible] और यह [illegible] है कि [illegible] पूर्णतया सजग है ।

भारत की योजनाएँ (Plans of India)

[illegible] (Necessity of Plans)—कोई भी देश उन्नति [illegible] आयोजनाओं की आवश्यकता का अनुभव [illegible] पर ही आर्थिक विकास के लिए आयोजनायें बन[illegible] कार्य करता है । सर्वप्रथम इस ओर रूस का ध्यान आक[illegible] आवश्यकताओं को समझा गया । सन् १९५१ में प्र[illegible] लागू की गई और १९५६ ई० में द्वितीय पंचवर्षीय योजना [illegible]

(१) प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan)—भारत के [illegible] योजना आयोग (Planning Commission) का निर्माण किया [illegible] प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूप-रेखा तैयार की ।

योजना के उद्देश्य
(Aims of the Plan)

(१) भारत की जनता के जीवन-स्तर को उन्नत करना और लोगों [illegible] सुखमय तथा सम्पन्न जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त कराना ।

[illegible] भारत के आर्थिक उत्पादन के साधनों का विकास तथा उपयोग [illegible] के साधनों को मानव-साधन के द्वारा उपयोग कर दे[illegible] विकास किया जाये ।

(३) देश की आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास करना जिससे कि जनता की आय और धन में समानता की स्थापना हो। इसके साथ-साथ यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि धन का वितरण इस प्रकार से हो जिससे विषमता का अन्त हो।

प्रथम योजना पर व्यय तथा उसकी सफलता (Expenses on First Five Year Plan and its Success)—प्रथम पंचवर्षीय योजना पर २०६९ करोड़ रु० व्यय करने की व्यवस्था की गई थी। यह धन इस प्रकार प्राप्त किया जायगा—

(१) केन्द्रीय सरकार द्वारा बचत—१६० करोड़ रुपये
(२) रेलों की बचत—१७० करोड़ रुपये
(३) राज्य सरकारों द्वारा बचत—४०८ करोड़ रुपये
(४) सार्वजनिक ऋण—११५ करोड़ रुपये
(५) छोटी बचतें—१७० करोड़ रुपये
(६) डिपाजिट तथा प्रावीडेन्ट फण्ड—२२५ करोड़ रुपये
(७) विदेशी सहायता—५२१ करोड़ रुपये
(८) घाटे का बजट—२९० करोड़ रुपये

योग—२०६९ करोड़ रुपये

इस योजना को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई क्योंकि खेती की पैदावार में वृद्धि हुई और सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास हुआ। अनाज, तिलहन और कपास की पैदावार में बहुत वृद्धि हुई तथा जूट और गन्ने की पैदावार अधिक नहीं बढ़ सकी। सिंचाई तथा बिजली के उत्पादन में भी बड़ी वृद्धि हुई। अब एक करोड़ एकड़ भूमि की अधिक सिंचाई होने लगी है। नदी घाटी की योजनाओं के सफल होने पर इस दिशा का लक्ष्य भी पूर्ण हो गया। बिजली के उत्पादन में लक्ष्य से भी अधिक सफलता प्राप्त हो चुकी है। अन्य क्षेत्रों में भी इस योजना को बहुत सफलता प्राप्त हुई है। इसके अन्तर्गत १५ रेलवे लाइनों का निर्माण किया जा चुका है और ११ पुरानी रेलवे लाइनों को फिर से बनाया गया जो महायुद्ध के समय उखाड़ ली गई थीं। लगभग १००० रेलवे इंजिनों का निर्माण हुआ और बहुत से सवारी तथा सामान के डिब्बों का निर्माण हुआ। प्रसूति गृह तथा तदैनिक के अस्पताल खोले गये। सरकारी क्षेत्रों में बड़े व्यवसाय के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य हुए। सिन्दरी रासायनिक खाद का कारखाना, चितरंजन में रेलवे इंजिन बनाने का कारखाना, पेंसलीन तथा डी० डी० टी० बनाने के कारखाने और जहाजों के निर्माण के लिये शिपयार्ड (Shipyard) विशेष उल्लेखनीय हैं।

(२) द्वितीय पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)—प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्त भी नहीं होने पाई थी कि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की रूप-रेखा तैयार कर ली गई। इसका निर्माण १९५६ ई० में हुआ।

इसके उद्देश्य (Aims)—इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(१) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—राष्ट्रीय आय की वृद्धि की जाय जिससे साधा-

रण जनता का जीवन-स्तर उन्नत हो सके ।

(२) आधारभूत उद्योगों का विकास—देश का औद्योगिकरण किया जाये तथा आधारभूत उद्योगों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाये ।

(३) बेकारी की समस्या का समाधान—बेकारी की समस्या का समाधान किया जाये ।

(४) सामाजिक अर्थ-व्यवस्था—सम्पत्ति का वितरण सामाजिक न्याय के आधार पर किया जाये ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये पूंजी की व्यवस्था—द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम बहुत ही विस्तृत है और इसकी पूर्ति के लिए बहुत अधिक धन की आवश्यकता है । ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसके लिए ६५०० करोड़ रुपए की आवश्यकता होगी । इसमे सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजि क्षेत्र को भी स्थान दिया गया है । यद्यपि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना भारत का आदर्श है । ४३०० करोड रुपया सरकार द्वारा तथा १ करोड रुपया पूंजीपतियो तथा जनता द्वारा इस योजना को सफल बनाने के हेतु व्यय किया जायगा ।

भारत सरकार ने इस प्रकार भारतीय आर्थिक व्यवस्था को संभालने और देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिए द्वितीय पचवर्षीय योजना के रूप मे एक ठोस कदम उठाया है । एक निश्चित अवधि मे इस देश की राष्ट्रीय आमदनी को दुगना करन इन योजनाओं का लक्ष्य है । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारी दूसरी पचवर्षी योजना मे सरकारी तथा नीजि क्षेत्रों मे लगभग ६५०० करोड रुपया व्यय करने क अनुमान है । इसमे से लगभग ४३०० करोड़ रुपया सरकारी क्षेत्र मे व्यय होगा औ २२०० करोड रुपया निजी क्षेत्र मे । नेहरू जी ने अपने एक भाषण मे कहा था कि "आज देश के सामने अपने जीवन-यापन का स्तर बढ़ाने तथा देश मे फैलती हु बेकारी को दूर करने की कठिन समस्या है । इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लि हमे साधारण या अवसर आने पर असाधारण उपायों से काम लेना होगा । कि भी कीमत पर हमें अपने विकास-कार्य को आगे बढ़ाना है । इस योजना के लिये ह सरकार के कोष में करों बचत, ऋण तथा श्रमदान द्वारा अधिक से अधिक रक प्रदान करनी चाहिये तभी हम अपनी तथा देश की ठोस सेवा कर सकते हैं ।"

सरकारी क्षेत्र में निम्नलिखित विषयों पर व्यय करना होगा—

(१) खेती में, (२) बिजली आदि में, (३) कारखाने तथा खानों मे, (४) निर्म व सामाजिक सुविधाओं मे, (५) यातायात व सचार मे तथा (६) विविध ।

निजी क्षेत्र का विषय—

(१) मकानों के निर्माण मे ।

(२) व्यवसायों, खानों और यातायात मे ।

(३) खेती व उससे सम्बन्ध व्यापार मे ।

(४) व्यापार व विविध ।

तृतीय योजना (Third Five year Plan)—यह योजना १९ से आरम्भ होगी । इसके लिए १०,२०० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी

जिसमे ६२०० करोड रुपया सार्वजनिक क्षेत्र मे ४००० करोड रुपया निजी क्षेत्र मे व्यय किया जायेगा। तृतीय पचवर्षीय योजना की रूप-रेखा भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा जून १९६० मे प्रकाशित की गई है और इसमे यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि भारत के सामाजिक तथा आर्थिक विकास का रूप तथा उसकी सम्भावना किस आधार पर निर्धारित की जानी चाहिये। (i) तृतीय योजना मे योजना का आकार, उसके लिए आवश्यक साधन की उपलब्धि तथा अन्य सम्बन्धित समस्याओं पर योजना के विचार व्यक्त किए गये हैं। तृतीय योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय का ४७ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना है ताकि इस योजना को विकसित राष्ट्रीय आय में कुल ८० प्रतिशत वृद्धि हो जावे। (ii) इस योजना का दूसरा उद्देश्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना है तथा कृषि के उत्पादन को इस सीमा तक बढ़ाना है ताकि उद्योग तथा निर्यात की आवश्यकतायें पूरी हो सकें। (iii) तीसरे स्पात, ईंधन तथा शक्ति सम्बन्धी उद्योगो का इस सीमा तक विस्तार करना जिससे कि भावी औद्योगिकरण की आवश्यकतायें दस वर्ष के भीतर देश स्वय अपने साधनों को पूरा कर सकें। (iv) चौथे देश की जनशक्ति का पूर्णरूप से प्रयोग किया जावे तथा रोजगार की स्थिति मे सुधार किया जाये। (v) पाचवें, धन तथा आय के वितरण की असमानताओं को दूर किया जावे (vi) छठें, राष्ट्रीय औद्योगिकरण किया जावे क्योंकि प्राइवेट उद्योगों से राज्य को तथा जनता को लाभ नहीं है। (vii) प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की जावे। (viii) आवश्यक वस्तुओं के मूल्यो मे अपेक्षाकृत स्थिरता रक्खी जावे। (ix) समाज-सेवा तथा समाज-सम्बन्धी विकास कार्यों के लिये भी व्यवस्था की गई है।

योजना के लक्ष्य तथा निशाने—योजना के पूर्ण व्यय पर से राष्ट्रीय आय मे ३० प्रतिशत वृद्धि की आशा की जाती है तथा प्रति व्यक्ति आय १७% बढ़ जायगी।

मदे	प्रथम योजना में पूर्ण व्यय	प्रतिशत	द्वितीय योजना में व्यय लक्ष	प्रतिशत	तृतीय योजना मे व्यय लक्ष	प्रतिशत
१. कृषि तथा सामुदायिक विकास	२९१	१५	५३०	११	१०६८	१४
२. सिंचाई	३१०	१६	४२०	९	६५०	९
३. कुटीर तथा लघु उद्योग-धन्धे	४३	२	१ ५	४	२६४	५
४. बड़े उद्योग तथा खनिज पदार्थ	७४	४	९००	२०	१५२०	२०
५. परिवहन, गमनागमन	५२३	२७	१३००	२८	८८६	२०
६. समाजिक सेवायें	४५९	२३	८३०	१८	१३००	१७
७. शक्ति	२६०	१३	४४५	१०	१०१२	१३
८. इनवेन्टरीज					२००	२
कुल	१९६०	१००	४६००	१००	७५००	१००

तीसरी योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य ७५०० करोड़ रुपये है जब कि प्रथम योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य १६०० करोड़ रुपये तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य ४८०० करोड़ रुपये था। इसके अतिरिक्त तृतीय पंचवर्षीय योजना में निजी क्षेत्र में ४१०० करोड़ रुपये का व्यय किया जायगा।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में अनुमानित व्यय २१,५०० करोड़ रुपयों से २२,५०० करोड़ रुपये निश्चित किये गये हैं। २२,५०० करोड़ रुपये का व्यय उसी समय सम्भव होगा जिस समय धन की उपलब्धता में सरलता हो, अर्थात् यह धन सरलता द्वारा प्राप्त हो सके। योजना के अनुसार यह आशा की जाती है कि इसके द्वारा आर्थिक प्रगति की गति का विस्तार ६·५% होगा। कुल व्यय लक्ष्यों में से १५,५१० करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में तथा ७००० करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में व्यय किये जायेंगे। इस योजना में कृषि, शिक्षा तथा स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर अधिक धन व्यय किया जायगा और उद्योग शक्ति, यातायात पर कम व्यय किया जायगा। लघु तथा कुटीर उद्योग धन्धों के विकास पर पहले से अधिक व्यय किया जायगा। इसके लिये लगभग ३००० करोड़ रुपये का व्यय किया जायगा।

योजना के मुख्य उद्देश्य—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(१) कृषि उत्पादन में प्रति वर्ष ५% की कम से कम वृद्धि करना; ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि करना, खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करना;

(२) कृषि के उत्पादन को वृद्धि करने के लिये समस्त आवश्यक साधनों तथा शक्तियों का प्रबंध करना;

(३) उपभोग की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करना।

(४) मकानों के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना।

(५) धातुओं, दवाओं तथा रसायनों, मशीनों का उत्पादन, खनिजों, वि... शक्ति तथा यातायात के साधनों का विकास चालू करना।

(६) उत्पादन की वृद्धि करने के लिये मानव शक्ति का अधिक से अ... उत्पादन बढ़ाना।

(७) बेकारी को दूर करना तथा सामाजिक न्याय स्थापित करना।

विभिन्न मदों पर व्यय—सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं पर १५... करोड़ रुपया व्यय किया जायगा, जिसमें से ७५२५ करोड़ रुपया केन्द्रीय स... व्यय करेगी, ७६६० करोड़ रुपया राज्य की सरकारें तथा ४३५ करोड़ रुपये के... अधीन क्षेत्रों पर व्यय किया जायगा। विभिन्न क्षेत्रों में चौथी योजना के लक्ष्य... प्रकार हैं :—

विवरण	चौथी पञ्चवर्षीय योजना में व्यय लक्ष्य (करोड़ रुपयों में)
१. कृषि	२४००
२ सिंचाई	१०००
३. सगठित उद्योग	३२००
४. लघु उद्योग	४५०
५. शक्ति	१६५०
६. यातायात तथा परिवहन	३०००
७. शिक्षा	८००
८. वैज्ञानिक अनुसंधान	१७५
९. स्वास्थ्य	१०१०
१०. आवास	४००
११. अविकसित जाति के लोगों के विकास के लिये	२०५
१२. समाज कल्याण	६५
१३. श्रम तथा प्रशिक्षण	१४५
१४. जन-सहयोग	१५
१५. ग्रामीण कार्य	२५
१६. पुर्नवास	५०
१७. श्रम	५०
	१५६२०

भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्ध (India and the U. N. O.)—भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। वह इसकी साधारण सभा का सदस्य है तथा संघ से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट संस्थाओं की सदस्यता इसको प्राप्त है। सन् १९५० में वह उसकी सुरक्षा परिषद् (Security Council) का भी सदस्य निर्वाचित किया गया था। भारत को साधारण सभा (General Assembly) के सभापति का आसन ग्रहण करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत विश्व-शांति में पूर्ण विश्वास रखता है। उसका संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में पूर्ण विश्वास है और उसकी धारणा है कि इस प्रकार के उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणत करने से विश्व-शांति की स्थापना सम्भव है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की दल-बन्दियों तथा गुट बन्दियों में कोई भाग नहीं लेता। वह सदा न्याय का पक्ष लेता है और अपनी शक्ति पर विश्वास करता है। उसके ऐसा करने से कभी-कभी विश्व के प्रमुख तथा शक्तिशाली राष्ट्र अप्रसन्न हो जाते हैं किन्तु अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में उसका मान बहुत ऊंचा होता चला जा रहा है। छोटे-छोटे तथा दलित राष्ट्रों की आँखें भारत की ओर लगी रहती हैं, और वे उससे उसकी सहायता तथा समर्थन प्राप्त करने की आशा करते रहते हैं और भारत भी कभी उनकी ओर से उदासीन नहीं रहता। वह सदा उनका पक्ष लेता है।

भारत ने काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में रखा। काश्मीर पर दबाव डालने के लिये पाकिस्तान तथा कबाइलियों ने सेना द्वारा आक्रमण किया। काश्मीर के राजा ने काश्मीर को भारत संघ में सम्मिलित करने का निश्चय किया और २७ अक्टूबर, १९४७ को यह भारत में विलय हो गया। भारतीय सेना ने काश्मीर की रक्षा पाकिस्तान से करने के लिये भारतीय सेनाएं भेजीं। कबाइली तथा पाकिस्तानी सेना को पीछे हटना पड़ा। ३१ दिसम्बर को भारत ने काश्मीर का मामला सुरक्षा-परिषद् में उपस्थित किया। उसके हस्तक्षेप से युद्ध का अन्त हुआ और दोनों देशों ने जनमत कराने के लिये अपनी अनुमति दी। २४ जुलाई १९५२ को भारत और काश्मीर में एक समझौता हुआ, किन्तु शेख अब्दुल्ला ने इस समझौते की पुष्टि करने में आनाकानी की। अगस्त १९५३ में वह नजरबन्द कर दिया गया और उसके स्थान पर बख्शी गुलाम मुहम्मद वहाँ के प्रधान मन्त्री बने। फरवरी १९५४ में काश्मीर की संविधान-सभा ने दिल्ली समझौते को सर्व सम्मति से स्वीकार किया और इस प्रकार काश्मीर का भारत में विलय हो गया। काश्मीर संविधान-सभा ने काश्मीर के लिये एक संविधान का निर्माण किया जो २६ जनवरी १९५७ से लागू हुआ। इसके पूर्व ही पाकिस्तान ने काश्मीर का प्रश्न सुरक्षा-परिषद् में रखा। इसके आरोपों का करारा उत्तर श्री कृष्ण मेनन ने दिया। पाश्चिमी राष्ट्रों का रुख भारत के लिये अच्छा नहीं है, और उन्होंने पाकिस्तान का समर्थन किया, किन्तु भारत के प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने यह कह दिया कि जिस समय तक वह संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को मानने के लिये तैयार नहीं जब तक यह घोषित न कर दिया जाये कि पाकिस्तान आक्राता के रूप में आया। अभी तक सुरक्षा-परिषद् इस प्रश्न का हल नहीं कर सका और वह पाकिस्तान को आक्राता घोषित करने के लिये तैयार नहीं है। इस प्रश्न का निर्णय भविष्य के गर्भ में है। काश्मीर भारत का है और वह भारत का होकर रहेगा यह नारा समस्त भारतीयों का है।

भारत ने दक्षिणी अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के साथ किये जाने वाले अन्यायपूर्ण व्यवहार का प्रश्न साधारण सभा में उठाया। उस में दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के विरोध पर भी विचार किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से एक आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट में दक्षिणी अफ्रीका सरकार की जाति-भेद नीति की कटु-आलोचना की, किन्तु अभी तक इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो पाया है।

भारत के प्रयत्नों से इन्डोनेशिया को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और वहाँ की सरकार भारत के प्रति बड़ी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त अभी हाल में भारत सरकार द्वारा अंग्रेज और फ्रांस की मिश्र सम्बन्धी नीति तथा रूस की हंगरी सम्बन्धी नीति के विरुद्ध आवाज उठाई गई। वास्तव में भारत ने सदैव न्याय का ही पक्ष लिया। इसी कारण उसका मान दिन प्रति-दिन बढ़ता आ रहा है।

भारत और कॉमनवेल्थ (India and the Commonwealth)—ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त को शासन सत्ता का पूर्ण परित्याग कर भारत को स्वतन्त्र कर

दिया। इससे पूर्व भारत ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का सदस्य था। इसमें ग्रेट-ब्रिटेन के अन्तर्गत समस्त उपनिवेश सम्मिलित थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को अधिकार था कि वह इसका सदस्य रहे अथवा सदस्यता का परित्याग कर दे। भारत ने अपना हित कॉमनवेल्थ की सदस्यता में ही समझा और वह अभी तक उसका सदस्य है। पंडित जवाहर लाल नेहरू कॉमनवेल्थ के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन में भाग ले चुके हैं। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त स्वतन्त्र भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ही रहे।

जिस समय नव-संविधान-संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा गणतन्त्र शासन की घोषणा कर दी गई उस समय यह प्रश्न उठा कि अब भारत किस प्रकार कॉमनवेल्थ का सदस्य रह सकता है। इस प्रश्न के समाधान के लिये लन्दन में ग्रेट ब्रिटेन के उपनिवेशों के प्रधान मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि भारत इसका सदस्य रह सकता है। वास्तव में इसका सदस्य रहने से भारत की स्थिति में तथा उसकी स्वतन्त्रता में न कोई अन्तर पड़ता है न कोई बाधा ही उत्पन्न होती है। भारत के कुछ विद्वानों ने भारत के कॉमनवेल्थ के सदस्य होने पर बड़ी आपत्ति की। उनका कहना था कि भारत अपनी स्वतन्त्र विदेशी नीति का निर्माण नहीं कर सकेगा और वह अंग्रेजों के हाथ में कठ-पुतली के समान होगा किन्तु उनकी इस आलोचना में कोई तथ्य नहीं। भारत की अपनी अलग एक विदेशी नीति है जो ग्रेट-ब्रिटेन की नीति से पूर्णतया भिन्न है और पूर्णतया स्वतन्त्र है। आलोचनाओं का उत्तर देते समय भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू और स्वर्गीय सरदार पटेल ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था कॉमनवेल्थ की सदस्यता का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि हम उनके समस्त आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य हैं बल्कि हम स्वतन्त्र हैं। समस्त विषयों पर हमारी स्वतन्त्र राय है। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि कॉमनवेल्थ में सम्मिलित रहने पर हमको इंगलैण्ड के नेताओं के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सकेगा और समय समय पर हम उनकी आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर सकेंगे। वास्तव में भारत को कॉमनवेल्थ का सदस्य होने से कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। उसका सदस्य होने से अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की समस्या का कोई उचित समाधान नहीं हो पाया। बाध्य होकर उनका मामला भारत की ओर से संयुक्त राष्ट्र संघ में लाया गया, किन्तु उसका भी विशेष परिणाम नहीं हुआ। इस प्रकार कॉमनवेल्थ के अन्तर्गत राज्यों की नीति एक समान नहीं है। जहाँ तक आर्थिक सहायता का प्रश्न है, ग्रेट ब्रिटेन उन देशों की भी यथा-सम्भव सहायता कर रहा है जो कॉमनवेल्थ के सदस्य नहीं हैं। वह बर्मा को पर्याप्त सहायता पहुँचा रहा है, किन्तु फिर भी भारत उसका सदस्य है।

भारत और पाकिस्तान के बीच में कूच-सिन्ध सीमा पर भी झगड़ा हुआ, यद्यपि यह सीमा पूर्णतया निर्धारित है। पाकिस्तान ने अंग्रेजी और अमेरिकन हथियारों से इस सीमा में प्रवेश किया। ग्रेट-ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री हैरोल्ड विलसन

ने इस झगड़े की समाप्ति के लिये दोनों देशों के सामने कई प्रस्ताव रक्खे। अन्त में युद्ध-बन्दी प्रस्ताव ३० जून १९६५ को भारत और पाकिस्तान ने स्वीकार किया जिसके द्वारा यह निश्चय किया गया कि दोनों देश उस स्थिति को स्वीकार करें जो '१ जनवरी १९६५ को थी' ग्रेट-ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने जिस प्रकार इस समस्या का समाधान करने का प्रयत्न किया उससे देश में यह भावना उत्पन्न हो गई कि अब समय आगया जब भारत को अपना सम्बन्ध कॉमनवेल्थ से समाप्त करने दिया जाये अन्त में सरकार ने *यह निर्णय किया कि उसको कॉमनवेल्थ में रहना ही चाहिये।*

भारत का एशिया के राज्यों से सम्बन्ध (India and the Asian Countries)—भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व यूरोपीय राज्यों ने एशिया के विभिन्न देशों को अपने चंगुल में फंसा रक्खा था और किसी भी देश में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह विदेशियों की शक्ति का अन्त कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर सकता था, किन्तु जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो उसने पददलित जातियों का समर्थन किया। उसने एशिया के समस्त देशों के साथ मैत्रिक सम्बन्ध की स्थापना का भरसक प्रयत्न किया। *पंडित जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में समस्त एशियाई राष्ट्रों का* सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। इसमें एशियाई राज्यों की एकता का स्वागत किया गया। भारत ने समस्त एशियाई सम्मेलनों में भाग लिया और सदा इस ओर प्रयत्नशील रहा कि युद्ध का आरम्भ न हो और समस्त विषय आपसी सम्मेलनों द्वारा *निश्चय कर दिये जायें, यद्यपि पाकिस्तान का व्यवहार भारत से अथवा उस राज्य* में स्थित भारतीयों से अच्छा नहीं रहा। किसी भी समय युद्ध किया जा सकता था, किन्तु भारत सदा युद्ध से दूर रहा। उसका संयुक्त राष्ट्र-संघ में विश्वास है और वह शान्तिमय उपायों को ही प्रयोग में लाता रहा। अन्त में दोनों देशों में समझौता हुआ। काश्मीर का प्रश्न अभी तक उसी तरह पड़ा हुआ है। भारत ने चीन को संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित कराने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु अभी तक उसको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई है। पर्याप्त समय तक भारत और साम्यवादी चीन में सन्धि रही है। दोनों देशों में तिब्बत के प्रश्न पर भी एक समझौता किया गया है किन्तु चीन की साम्राज्यवादी भावना के कारण दोनों देशों के सम्बन्ध खराब होने लगे। चीन ने भारत की सीमा पर आक्रमण कर उत्तर तथा पूर्व की ओर के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। भारत-सरकार इस ओर से पूर्णतया सजग है *और वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किसी भी रूप में सहन करने को तैयार नहीं* है। जिस समय भारत और पाकिस्तान का युद्ध हो रहा था तो उस समय चीन ने भारत को ३ दिन का अल्टीमेटम दिया। भारत के प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने इसके सम्बन्ध में दृढ़ *नीति का अनुकरण* किया और चीन अपने आप शान्त हो गया। अब चीन पाकिस्तान के साथ पूर्ण सहयोग की नीति का अनुकरण कर रहा है और अन्य प्रकार की सहायता के साथ साथ वह उसको पर्याप्त सैनिक सहायता प्रदान कर रहा है। पूर्वी पाकिस्तान में चीनी पाकिस्तानियों को पर्याप्त प्रशिक्षित कर रहे हैं। भारत ने जो कार्य कोरिया में किया वह भी बड़ा ही प्रशंसनीय है।

भारत द्वारा ही कोरिया का प्रश्न हल हो सका। उसकी बर्मा से भी मित्रता है और दोनों देशों में सन्धि है।

भारत की विदेशी नीति (India's Foreign Policy)—भारत की विदेशी नीति तटस्थता की है। वास्तव में वह किसी भी दल में सम्मिलित नहीं है। उसकी नीति बिल्कुल स्वतन्त्र है। भारत जैसा शान्ति की स्थापना के लिये उचित समझता है वैसा करता है। आज विश्व दो भागों में विभाजित है—(१) ऐंग्लो-अमेरिकन दल और (२) रूस, चीन आदि साम्यवादी दल। भारत के दोनों दलों के देशों से मैत्रिक सम्बन्ध हैं। भारत का हित इसी में है कि वह दोनों दलों से पृथक् रह कर दोनों से आवश्यक सहायता प्राप्त कर सके, किन्तु भारत अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से उदासीन नहीं है। इस नीति के द्वारा ही आज भारत एशियाई देशों का नेतृत्व कर रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसका बड़ा मान है। विश्व में जितना मान हमारे प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू का उसके जीवन में रहा उतना मान किसी भी अन्य राज्य के व्यक्ति का नहीं रहा। सब लोग उनको आदर की दृष्टि से देखते थे और उनको शान्तिदूत समझते थे।

पंचशील—पंचशील का प्रयोग सर्वप्रथम इंडोनेशिया के प्रधान मन्त्री ने किया था। यह पांच सिद्धान्तों से मिल कर बना है जो इस प्रकार हैं—

१. सब राज्य अन्य राज्यों की प्रभुता और भौगोलिक सीमाओं को स्वीकार करें।

२. कोई राज्य अन्य राज्यों की सीमा पर आक्रमण न करें।

३. कोई राज्य किसी दूसरे राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें।

४. सब राज्य एक दूसरे को समान समझें व पारस्परिक हितों में सहयोग प्रदान करें।

५. सब राज्य शान्तिपूर्वक एक दूसरे के साथ रहें और अपनी पृथक् सत्ता व स्वतन्त्रता स्थायी रखें।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन भारत के सर्वप्रथम उस समय किया जब भारत और चीन में तिब्बत के प्रश्न पर संधि हुई। सन् १९५४ में चीन के प्रधान मन्त्री चाऊ-एन लाई ने भारत आगमन पर इसका समर्थन किया। बांडुंग सम्मेलन में कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ पंचशील के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। यह सम्मेलन १९५५ ई० में हुआ था, और इसमें एशिया तथा अफ्रीका के २२ राष्ट्रों ने भाग लिया था। यूरोप के कुछ देशों ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। इससे स्पष्ट है कि भारत की विदेशी नीति पर्याप्त लोकप्रिय बन गई। इसी आधार पर अधिकांश देश चीन के आक्रमण के विरुद्ध भारत की सहायता करने को तैयार हो गये।

भारत के लोकप्रिय नेता तथा प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु २७ मई १९६४ को हुई। यह प्रश्न उनके जीवन-काल में ही बड़ा महत्वपूर्ण था कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका उत्तराधिकारी कौन होगा? न केवल भारत के राजनीतिक क्षेत्रों में वरन् समस्त विश्व के राजनीतिक क्षेत्रों में इस प्रश्न पर बड़ी

अटकलें लगाई जा रही थीं। अन्त मे इस पद पर श्री लाल बहादुर शास्त्री हुये। एक सच्चे देश भक्त, नेक व ईमानदार व्यक्ति थे। जून १९६४ मे वे मन्त्री के पद पर आसीन हुये। लोगों को यह शंका थी कि यह छोटा सा किस प्रकार उन समस्त समस्याओं का सामना कर सकेगा जो उस समय भा सामने थीं और कितने ही क्षेत्रों मे उनके छोटे शरीर और धोती-कुरते पर व्यंग गया। लेकिन श्री शास्त्री ने आरम्भ के कुछ दिनों के अनिश्चय के उपरान्त समस का समाधान जिस ढंग के करना आरम्भ किया और विशेषतया उस समय पाकिस्तानी आक्रमण भारत पर हुआ था। वे एक दम लोकप्रिय नेता बन गये भारतीय जनता हृदय सम्राट नेहरू को भूल गई। वे केवल भारत का नेतृत्व महिने तक ही कर सके। यह शान्ति का पुजारी इस शान्ति की खोज मे ताद गया और फिर भारत वापिस न आ सका और समझौते के अगले दिन ही उ मृत्यु हो गई। देश मे हाहाकार मच गया।

उनकी मृत्यु के उपरान्त प्रधान मन्त्री पद के लिये संघर्ष हुआ। अन्त में मुरारजी देसाई को हटाकर श्री मति इन्दरा गाँधी इस पद पर आसीन हुई आजकल वे ही इस पद को सुशोभित कर रही हैं। इनके सामने पर्याप्त समस्यायें देश के विभिन्न भागों में अकाल, मंहगाई, पाकिस्तान और चीन की समस्या, ताश समझौते का पालन आदि। आर्थिक स्थिति को उन्नत करने के उद्देश्य से उ सरकार ने रुपये का अवमूल्यन कर दिया है जिससे भारतीय रुपये का मूल्य कम गया है। इससे यह आशा की जाती है कि आयात और निर्यात मे वृद्धि होगी देश की आर्थिक स्थिति उन्नत होगी। इसके परिणामस्वरूप देश मे मंहगाई बढ़ रही और सरकार को इसे रोकने के लिये घोर प्रयत्न करना आवश्यक है। इसके चौथी योजना के व्यय और काम के लक्ष्य पूरे होते दिखलाई नहीं देते। क्यों अनुमानित व्यय २१५०० करोड़ रुपये से बढ़कर २८००० करोड़ रुपये हो गया है